विज्ञान भैरव तंत्र—ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र—ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र का जगत बौद्धिक नहीं है। वह दार्शनिक भी नहीं है। तंत्र शब्द का अर्थ है। विधि, उपाय, मार्ग। इस लिए यह एक वैज्ञानिक ग्रंथ है। विज्ञान ''क्यों'' की नहीं, ''कैसे'' की फिक्र करता है। दर्शन और विज्ञान में यही बुनियादी भेद है। दर्शन पूछता है। यह अस्तित्व क्यों है? विज्ञान पूछता है, यह आस्तित्व कैसे है? जब तुम कैसे का प्रश्न पूछते हो, तब उपाय, विधि, महत्वपूर्ण हो जाती है। तब सिद्धांत व्यर्थ हो जाती है। अनुभव केंद्र बन जाता है।

विज्ञान का मतलब है चेतना है। और भैरव का विशेष शब्द है, तांत्रिक शब्द, जो पारगामी के लिए कहा जाता है। इसीलिए शिव को भैरव कहते है, और देवी को भैरवी—वे जो समस्त द्वैत के पार चले जाते है।
पार्वती कहती है—
आपका सत्य रूप क्या है?

यह आपका आश्चर्य-भरा जगता क्या है?

इसका बीज क्या है?

विश्व चक्र की धूरी क्या है?

यह चक्र चलता ही जाता है—महा परिवर्तन, सतत प्रवाह।

इसका मध्य बिंदु क्या है?

इसकी धूरी कहां है?

अचल केंद्र कहां है?

रूपों पर छाए लेकिन रूप के परे यह जीवन क्या है?

देश और काल, नाम और प्रत्यय के परे जाकर हम इसमे कैसे पूर्णत: प्रवेश करे?

मेरे संशय निर्मूल करे......

लेकिन संशय निर्मूल कैसे होंगे? किसके ऊपर से? क्या कोई उत्तर है जो कि मन के संशय दूर कर दे? मन ही तो संशय है। जब तक मन नहीं मिटता है, संशय निर्मूल कैसे होंगे?

शिव उत्तर देंगे। उनके उत्तर में सिर्फ विधियां है—सबसे पुरानी, सबसे प्रचीन विधियां। लेकिन तुम उन्हें अत्याधुनिक भी कह सकते हो। क्योंकि उनमें जोड़ा नहीं जा सकता। वे पूर्ण है, एक सौ बारह विधियां। उनमें सभी संभावनाओं का समावेश है; मन को शुद्ध करने के, मन के अतिक्रमण के सभी उपाय उनमें समाएँ है। शिव की एक सौ बारह विधियों में एक और विधि नहीं जोड़ी जा सकती। कुछ जोड़ने की गुंजाईश ही नहीं है। यह सर्वागीण है, संपूर्ण है, अंतिम है। यह सब से प्राचीन है और साथ ही सबसे आधुनिक, सबसे नवीन। पुराने पर्वतों की भांति ये तंत्र पुराने है, शाश्वत जैसे लगते है। और साथ ही सुबह के सूरज के सामने खड़े ओस-कण की भांति ये नए है। ये इतने ताजे है।

ध्यान की इन एक सौ बारह विधियों से मन के रूपांतरण का पूरा विज्ञान निर्मित हुआ है। एक-एक कर हम उनमें प्रवेश करेंगे। पहले हम उन्हें बुद्धि से समझने की चेष्टा करेंगे। लेकिन बुद्धि को मात्र एक यंत्र की तरह काम में लाओ, मालिक की तरह नहीं। समझने के लिए यंत्र की तरह उसका उपयोग करों। लेकिन उसके जरिए नए व्यवधान मत पैदा करो। जिस समय हम इन विधियों की चर्चा करेंगे। तुम अपने पुराने ज्ञान को पुरानी जानकारियों को एक किनारे धर देना। उन्हें अलग ही कर देना। वे रास्ते की धूल भर है।

इन विधियों का साक्षात्कार निश्चित ही सावचेत मन से करो; लेकिन तर्क को हटा कर करो। इस भ्रम में मत रहो कि विवाद करने वाला मन सावचेत मन है। वह नहीं है। क्योंकि जिस क्षण तुम विवाद में उतरते हो, उसी क्षण सजगता खो जाती है। सावचेत नहीं रहते हो। तुम तब यहां हो ही नहीं।

ये विधियां किसी धर्म की नहीं है। वे ठीक वैसे ही हिंदू नहीं है जैसे सापेक्षवाद का सिद्धांत आइंस्टीन के द्वारा प्रतिपादित होने के कारण यहूदी नहीं हो जाता है। रेडियों टेलीविजन ईसाई नहीं है। ये विधियां हिंदुओं की ईजाद अवश्य है, लेकिन वे स्वयं हिंदू नहीं है। इस लिए इन विधियों में किसी धार्मिक अनुष्ठान का उल्लेख नहीं रहेगा। किसी मंदिर की जरूरत नहीं है। तुम स्वयं मंदिर हो। तुम ही प्रयोगशाला हो, तुम्हारे भीतर ही पूरा प्रयोग होने वाला है। और विश्वास की भी जरूरत नहीं है।

तंत्र धर्म नहीं है। विज्ञान है। किसी विश्वास की जरूरत नहीं है। कुरान या वेद में, बुद्ध या महावीर में आस्था रखने की आवश्यकता नहीं है। नहीं, किसी विश्वास की आवश्यकता है। प्रयोग करने का महा साहस पर्याप्त है, प्रयोग करने की हिम्मत काफी है। एक मुसलमान प्रयोग कर सकता है। वह कुरान के गहरे अर्थों को उपलब्ध हो जाएगा। एक हिंदू अभ्यास कर सकता है। और वह पहली दफा जानेगा कि वेद क्या है? वैसे ही एक जैन इस साधना में उतर सकता है, बौद्ध इस साधना में उतर सकता है, एक ईसाई इस साधना में उतर सकता है...वे जहां है तंत्र उन्हें आप्तकाम करेगा। उनके अपने चुने हुए रास्ते जो भी हो, तंत्र सहयोगी होगा।

यहीं कारण है कि जनसाधारण के लिए तंत्र नहीं समझा गया। और सदा यह होता है कि जब तुम किसी चीज को नहीं समझते हो तो उसे गलत जरूर समझते हो। क्योंकि तब तुम्हें लगता है। कि समझते जरूर हो। तुम रिक्त स्थान में बने रहने को राज़ी नहीं हो।

दूसरी बात कि जब तुम किसी चीज को नहीं समझते हो, तुम उसे गाली देने लगते हो। यह इसलिए कि यह तुम्हें अपमानजनक लगता है। तुम सोचते हो, मैं और नहीं समझूं, यह असंभव है। इस चीज के साथ ही कुछ भूल होगी। और तब तुम गाली देने लगते हो। तब तुम ऊलजलूल बकने लगते हो। और कहते हो कि अब ठीक है।

इस लिए तंत्र को नहीं समझा गया। और तंत्र को गलत समझा गया। महान राज भौज ने पवित्र उज्जैन नगरी में तंत्र के विद्यि पीठ को खत्म कर दिया। एक लाख तांत्रिक जोड़ों को काट दिया। क्यों ये क्या है, हमारी समझ में नहीं आता। कुछ सालों पहले वहीं पर राजा विक्रमादित्य ने उन्हीं तांत्रिकों कितना सम्मान दिया.....यह इतना गहरा और उँचा था कि यह होना स्वाभाविक था।

तीसरी बात कि चूंकि तंत्र द्वैत के पार जाता है, इसलिए उसका दृष्टिकोण अति नैतिक है। कृपया कर इन शब्दों को समझो: नैतिक, अनैतिक, अति नैतिक। नैतिक क्या है हम समझते है; अनैतिक क्या है हम समझते है; लेकिन जब कोई चीज अति नैतिक हो जाती है, दौनों के पार चली जाती है। तब उसे समझना कठिन है।

तंत्र अति नैतिक है। तंत्र कहता है। कोई नैतिकता जरूरी नहीं है। कोई खास नैतिकता जरूरी नहीं है। सच तो यह है कि तुम अनैतिक हो, क्योंकि तुम्हारा चित अशांत है। इसलिए तंत्र शर्त नहीं लगता कि पहले तुम नैतिक बनो तब तंत्र की साधना कर सकते हो। तंत्र के लिए यह बात ही बेतुकी है। कोई बीमार है, बुखार में है, डाक्टर आकर कहता है: पहले अपना बुखार कम करो, पहले पूरा स्वस्थ हो लो और तब मैं दवा दूँगा।

यही तो हो रहा है, चौर साधु के पास जाता है। और कहता है, मैं चौर हूं, मुझे ध्यान करना सिखाएं। साधु कहता है, पहले चौरी छोड़ो, चौर रहते ध्यान कैसे कर सकते हो। एक शराबी आकर कहता है, मैं शराब पीता हूं, मुझे ध्यान बताएं। और साधु कहता है, पहली शर्त कि शराब छोड़ो तब ध्यान कर सकोगे।

तंत्र तुम्हारी तथा कथित नैतिकता की, तुम्हारे समाजिक रस्म-रिवाज आदि की चिंता नहीं करता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि तंत्र तुम्हें अनैतिक होने को कहता है। नहीं, तंत्र जब तुम्हारी नैतिकता की ही इतनी परवाह नहीं करता। तो वह तुम्हें अनैतिक होने को नहीं कह सकता। तंत्र तो वैज्ञानिक विधि बताता है कि कैसे चित को बदला जाए। और एक बार चित दूसर हुआ कि तुम्हारा चरित्र दूसरा हो जाएगा। एक बार तुम्हारे ढांचे का आधार बदला कि पूरी इमारत दूसरी हो जाएगी।

इसी अति नैतिक सुझाव के कारण तंत्र तुम्हारे तथाकथित साधु-महात्माओं को बर्दाश्त नहीं हुआ। वे सब उसके विरोध में खड़े हो गए। क्योंकि अगर तंत्र सफल होता है तो धर्म के नाम पर चलने वाली सारी नासमझी समाप्त हो जाएगी।

तंत्र कहता है कि उस अवस्था का नाम भैरव है जब मन नहीं रहता—अ-मन की अवस्था है। और तब पहल दफा तुम यथार्थत: उसको देखते हो जो है। जब तक मन है, तुम अपना ही संसार रचे जाते हो, तुम उसे आरोपित, प्रक्षेपित किए जाते हो, इसलिए पहल तो मन को बदलों और तब मन को अ-मन में बदलों।

और ये एक सौ बारह विधियों सभी लोगों के काम आ सकती है। हो सकता है, कोई विशेष उपाय तुमको ठीक न पड़े, इसलिए तो शिव अनेक उपाय बताए चले जाते है। कोई एक विधि चुन लो जो तुमको जंच जाए।

और यह जानना कठिन नहीं है। कि कौन सी विधि तुम्हें जँचती है। हम यहां प्रत्येक विधि को समझने की कोशिश करेंगे। तुम अपने लिए वह विधि चुन लो जो कि तुम्हें और तुम्हारे मन को रूपांतरित कर दे। यह समझ, यह बौद्धिक समझ बुनियादी तौर से जरूरी है। लेकिन अंत नहीं है। जिस विधि की भी चर्चा में यहां करूं उसको प्रयोग करो। सच में यह है कि जब तुम अपनी सही विधि का प्रयोग करते हो तब झट से उसका तार तुम्हारे किसी तार से लगाकर बज उठता है।

एक विधि लो उसके साथ तीन दिन खेलो। अगर तुम्हें उसके साथ निकटता की अनुभूति हो, अगर उसके साथ तुम थोड़ा स्वस्थ महसूस करो, अगर तुम्हें लगे कि यह तुम्हारे लिए है तो फिर उसके प्रति गंभीर हो जाओ। तब दूसरी विधियों को भूल जाओ, उनमें खेलना बंद करो। और अपनी विधि के साथ टीको, कम से कम तीन महीने टीको। चमत्कार संभव है, बस इतना

होना चाहिए कि वह विधि सचमुच तुम्हारे लिए हो। यदि तुम्हारे लिए नहीं है तो कुछ नहीं होगा। तब उसके साथ जन्मों-जन्मों तक प्रयोग करके भी कुछ नहीं होगा।

लेकिन ये एक सौ बारह विधियां तो समस्त मानव-जाति के लिए है। और वे उन सभी युगों के लिए है जो गुजर गए है और आने वाले है। और किसी भी युग में एक भी एका आदमी नहीं हुआ और न होने वाला ही है। जो कह सके कि ये सभी एक सौ बारह विधियां मेरे लिए व्यर्थ है। असंभव , यह असंभव है।

प्रत्येक ढंग के चित के लिए यहां गुंजाइश है। तंत्र में प्रत्येक किस्म के चित के लिए विधि है। कई विधियां है जिनके उपयुक्त आदमी अभी उपलब्ध नहीं है, वे भविष्य के लिए है। और ऐसी विधियां भी है जिनके उपयुक्त मनुष्य रहे ही नहीं। वे अतीत के लिए है। लेकिन डर मत जाना। अनेक विधियां है जो तुम्हारे लिए ही है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

प्रवचन—1
भाग—1(तंत्र सूत्र)

तंत्र-सूत्र–विधि—01

शिव कहते है:

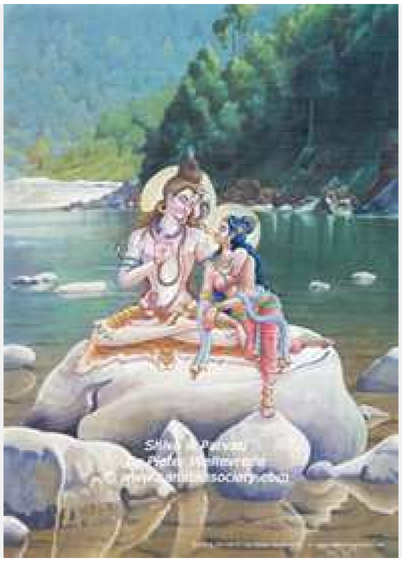

विज्ञान भैरव तंत्र–ओशो
तंत्र-सूत्र, ध्यान विधि–

हे देवी, यह अनुभव दो श्वासों के बीच घटित हो सकता है।

श्वास के भीतर आने के पश्चात और बाहर लौटने के ठीक पूर्व—

श्रेयस् है, कल्याण है।

आरंभ की नौ विधियां श्वास-क्रिया से संबंध रखती है। इसलिए पहले हम श्वास-क्रिया के संबंध में थोड़ा समझ लें और विधियों में प्रवेश करेंगे।

हम जन्म से मृत्यु के क्षण तक निरंतर श्वास लेते रहते है। इन दो बिंदुओं के बीच सब कुछ बदल जाता है। सब चीज बदल जाती है। कुछ भी बदले बिना नहीं रहता। लेकिन जन्म और मृत्यु के बीच श्वास क्रिया अचल रहती है। बच्चा जवान होगा, जवान बूढ़ा होगा। वह। बीमार होगा। उसका शरीर रूग्ण और कुरूप होगा। सब कुछ बदल जायेगा। वह सुखी होगा, दुःखी होगा, पीड़ा में होगा, सब कुछ बदलता रहेगा। लेकिन इन दो बिंदुओं के बीच आदमी श्वास भर सतत लेता रहेगा। श्वास क्रिया एक सतत प्रवाह है, उसमें अंतराल संभव नहीं है। अगर तुम एक क्षण के लिए भी श्वास लेना भूल जाओं तो तुम समाप्त हो जाओगे। यही कारण है कि श्वास लेने का जिम्मा तुम्हारी नहीं है। नहीं तो मुश्किल हो जायेगी। कोई भूल जाये श्वास लेना तो फिर कुछ भी नहीं किया जा सकता।

इसलिए यथार्थ में तुम श्वास नहीं लेते हो, क्योंकि उसमे तुम्हारी जरूरत नहीं है। तुम गहरी नींद में हो और श्वास चलती रहती है। तुम गहरी मूर्च्छा में हो और श्वास चलती रहती है। श्वासन तुम्हारे व्यक्तित्व का एक अचल तत्व है।

दूसरी बात यह जीवन के अत्यंत आवश्यक और आधारभूत है। इस लिए जीवन और श्वास पर्यायवाची हो गये। इस लिए भारत में उसे प्राण कहते है। श्वास और जीवन को हमने एक शब्द दिया। प्राण का अर्थ है, जीवन शक्ति, जीवंतता। तुम्हारा जीवन तुम्हारी श्वास है।

तीसरी बात श्वास तुम्हारे और तुम्हारे शरीर के बीच एक सेतु है। सतत श्वास तुम्हें तुम्हारे शरीर से जोड़ रही है। संबंधित कर रही है। और श्वास ने सिर्फ तुम्हारे और तुम्हारे शरीर के बीच सेतु है, वह तुम्हारे और विश्व के बीच भी सेतु है। तुम्हारा शरीर विश्व का अंग है। शरीर की हरेक चीज, हरेक कण, हरेक कोश विश्व का अंश है। यह विश्व के साथ निकटतम संबंध है। और श्वास सेतु है। और अगर सेतु टूट जाये तो तुम शरीर में नहीं रह सकते। तुम किसी अज्ञात आयाम में चले जाओगे। इस लिए श्वास तुम्हारे और देश काल के बीच सेतु हो जाती है।

श्वास के दो बिंदु है, दो छोर है। एक छोर है जहां वह शरीर और विश्व को छूती है। और दूसरा वह छोर है जहां वह विश्वातीत को छूती है। और हम श्वास के एक ही हिस्से से परिचित है। जब वह विश्व में, शरीर में गति करती है। लेकिन वह सदा ही शरीर से अशरीर में गति करती है। अगर तुम दूसरे बिंदू को, जो सेतु है, धुव्र है, जान जाओं। तुम एकाएक रूपांतरित होकर एक दूसरे ही आयाम में प्रवेश कर जाओगे।

लेकिन याद रखो, शिव जो कहते है वह योग नहीं है। वह तंत्र है। योग भी श्वास पर काम करता है। लेकिन योग और तंत्र के काम में बुनियादी फर्क है। योग श्वास-क्रिया को व्यवस्थित करने की चेष्टा करता है। अगर तुम अपनी श्वास को व्यवस्था दो तो तुम्हारा स्वास्थ सुधर जायेगा। इसके रहस्यों को समझो, तो तुम्हें स्वास्थ और दीर्घ जीवन मिलेगा। तुम ज्यादा बलि, ज्यादा ओजस्वी, ज्यादा जीवंत, ज्यादा ताजा हो जाओगे।

लेकिन तंत्र का इससे कुछ लेना देना नहीं है। तंत्र स्वास की व्यवस्था की चिंता नहीं करता। भीतर की और मुड़ने के लिए वह श्वास क्रिया का उपयोग भर करता है। तंत्र में साधक को किसी विशेष ढंग की श्वास का अभ्यास नहीं करना चाहिए। कोई विशेष प्राणायाम नहीं साधना है, प्राण को लयवद्ध नहीं बनाना है; बस उसके कुछ विशेष बिंदुओं के प्रति बोधपूर्ण होना है।

श्वास प्रश्वास के कुछ बिंदु है जिन्हें हम नहीं जानते। हम सदा श्वास लेते है। श्वास के साथ जन्मते है, श्वास के साथ मरते है। लेकिन उसके कुछ महत्व पूर्ण बिंदुओं को बोध नहीं है। और यह हैरानी की बात है। मनुष्य अंतरिक्ष की गहराइयों में उतर रहा है, खोज रहा है, वह चाँद पर पहुंच गया है। लेकिन वह अपने जीवन के इस निकटतम विंदु को समझ नहीं सका। श्वास के

कुछ बिंदु है, जिसे तुमने कभी देखा नहीं है। वे बिंदु द्वार है, तुम्हारे निकटतम द्वार है, जिनसे होकर तुम एक दूसरे ही संसार में, एक दूसरे ही अस्तित्व में, एक दूसरी ही चेतना में प्रवेश कर सकते हो।

लेकिन वह बिंदु बहुत सूक्ष्म है। जो चीज जितनी निकट हो उतनी ही कठिन मालूम पड़ेगी, श्वास तुम्हारे इतना करीब है, कि उसके बीच स्थान ही नहीं बना रहता। या इतना अल्प स्थान है कि उसे देखने के लिए बहुत सूक्ष्म दृष्टि चाहिए। तभी तुम उन बिंदुओं के प्रति बोध पूर्ण हो सकते हो। ये बिंदु इन विधियों के आधार है।

शिव उत्तर में कहते है—हे देवी, यह अनुभव दो श्वासों के बीच घटित हो सकता है। श्वास के भीतर आने के पश्चात और बाहर लौटने के ठीक पूर्व—श्रेयस् है, कल्याण है।

यह विधि है: हे देवी, यह अनुभव दो श्वासों के बीच घटित हो सकता है। जब श्वास भीतर अथवा नीचे को आती है उसके बाद फिर श्वास के लौटने के ठीक पूर्व—श्रेयस् है। इन दो बिंदुओं के बीच होश पुर्ण होने से घटना घटती है।

जब तुम्हारी श्वास भीतर आये तो उसका निरीक्षण करो। उसके फिर बाहर या ऊपर के लिए मुड़ने के पहले एक क्षण के लिए, या क्षण के हज़ारवें भाग के लिए श्वास बंद हो जाती है। श्वास भीतर आती है, और वहां एक बिंदु है जहां वह ठहर जाती है। फिर श्वास बाहर जाती है। और जब श्वास बाहर जाती है। तो वहां एक बिंदु पर ठहर जाती है। और फिर वह भीतर के लौटती है।

श्वास के भीतर या बाहर के लिए मुड़ने के पहले एक क्षण है जब तुम श्वास नहीं लेते हो। उसी क्षण में घटना घटनी संभव है। क्योंकि जब तुम श्वास नहीं लेते हो तो तुम संसार में नहीं होते हो। समझ लो कि जब तुम श्वास नहीं लेते हो तब तुम मृत हो; तुम तो हो, लेकिन मृत। लेकिन यह क्षण इतना छोटा है कि तुम उसे कभी देख नहीं पाते।

तंत्र के लिए प्रत्येक बहिर्गामी श्वास मृत्यु है और प्रत्येक नई स्वास पुनर्जन्म है। भीतर आने वाली श्वास पुनर्जन्म है; बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु है। बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु का पर्याय है; अंदर जाने वाली श्वास जीवन का। इसलिए प्रत्येक श्वास के साथ तुम मरते हो और प्रत्येक श्वास के साथ तुम जन्म लेते हो। दोनों के बीच का अंतराल बहुत क्षणिक है, लेकिन पैनी दृष्टि, शुद्ध निरीक्षण और अवधान से उसे अनुभव किया जा सकता है। और यदि तुम उस अंतराल को अनुभव कर सको तो शिव कहते है कि श्रेयस् उपलब्ध है। तब और किसी चीज की जरूरत नहीं है। तब तुम आप्तकाम हो गए। तुमने जान लिया; घटना घट गई।

श्वास को प्रशिक्षित नहीं करना। वह जैसी है उसे वैसी ही बनी रहने देना। फिर इतनी सरल विधि क्यों? सत्य को जानने को ऐसी सरल विधि? सत्य को जानना उसको जानना है। जिसका न जन्म है न मरण। तुम बहार जाती श्वास को जान सकते हो, तुम भीतर जाती श्वास को जान सकते हो। लेकिन तुम दोनों के अंतराल को कभी नहीं जानते।

प्रयोग करो और तुम उस बिंदु को पा लोगे। उसे अवश्य पा सकते हो। वह है। तुम्हें या तुम्हारी संरचना में कुछ जोड़ना नहीं है। वह है ही। सब कुछ है; सिर्फ बोध नहीं है। कैसे प्रयोग करो? पहले भीतर आने वाली श्वास के प्रति होश पूर्ण बनो। उसे देखो। सब कुछ भूल जाओ और आने वाली श्वास को, उसके यात्रा पथ को देखो। जब श्वास नासापुटों को स्पर्श करे तो उसको महसूस करो। श्वास को गति करने दो और पूरी सजगता से उसके साथ यात्रा करो। श्वास के साथ ठीक कदम से कदम मिलाकर नीचे उतरो; न आगे जाओ और ने पीछे पड़ो। उसका साथ न छूटे; बिलकुल साथ-साथ चलो।

स्मरण रहे, न आगे जाना है और न छाया की तरह पीछे चलना है। समांतर चलो। युगपत। श्वास और सजगता को एक हो जाने दो। श्वास नीचे जाती है तो तुम भी नीचे जाओं; और तभी उस बिंदु को पा सकते हो, जो दो श्वासों के बीच में है। यह आसान नहीं है। श्वास के साथ अंदर जाओ; श्वास के साथ बाहर आओ।

बुद्ध ने इसी विधि का प्रयोग विशेष रूप से किया; इसलिए यह बौद्ध विधि बन गई। बौद्ध शब्दावली में इसे अनापानसति योग कहते है। और स्वयं बुद्ध की आत्मोपलब्धि इस विधि पर ही आधारित थी। संसार के सभी धर्म, संसार के सभी द्रष्टा किसी न किसी विधि के जरिए मंजिल पर पहुंचे है। और वह सब विधियां इन एक सौ बारह विधियों में सम्मिलित है। यह पहली विधि बौद्ध विधि है। दुनिया इसे बौद्ध विधि के रूप में जानती है। क्योंकि बुद्ध इसके द्वारा ही निर्वाण को उपलब्ध हुए थे।

बुद्ध न कहा है। अपनी श्वास-प्रश्वास के प्रति सजग रहो। अंदर जाती, बहार आती, श्वास के प्रति होश पूर्ण हो जाओ। बुद्ध अंतराल की चर्चा नहीं करते। क्योंकि उसकी जरूरत ही नहीं है। बुद्ध ने सोचा और समझा कि अगर तुम अंतराल की, दो श्वासों के बीच के विराम की फिक्र करने लगे, तो उससे तुम्हारी सजगता खंडित होगी। इसलिए उन्होंने सिर्फ यह कहा कि होश रखो, जब श्वास भीतर आए तो तुम भी उसके साथ भीतर जाओ और जब श्वास बहार आये तो तुम उसके साथ बहार आओ। विधि के दूसरे हिस्से के संबंध में बुद्ध कुछ नहीं कहते।

इसका कारण है। कारण यह है कि बुद्ध बहुत साधारण लोगों से, सीधे-सादे लोगों से बोल रहे थे। वे उनसे अंतराल की बात करते तो उससे लोगों में अंतराल को पाने की एक अलग कामना निर्मित हो जाती। और यह अंतराल को पाने की कामना बोध में बाधा बन जाती। क्योंकि अगर तुम अंतराल को पाना चाहते हो तो तुम आगे बढ़ जाओगे; श्वास भीतर आती रहेगी। और तुम उसके आगे निकल जाओगे। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि अंतराल पर है जो भविष्य में है। बुद्ध कभी इसकी चर्चा नहीं करते; इसीलिए बुद्ध की विधि आधी है।

लेकिन दूसरा हिस्सा अपने आप ही चला आता है। अगर तुम श्वास के प्रति सजगता का, बोध का अभ्यास करते गए तो एक दिन अनजाने ही तुम अंतराल को पा जाओगे। क्योंकि जैसे-जैसे तुम्हारा बोध तीव्र, गहरा और सघन होगा, जैसे-जैसे तुम्हारा बोध स्पष्ट आकार लेगा। जब सारा संसार भूल जाएगा। बस श्वास का आना जाना ही एकमात्र बोध रह जाएगा—तब अचानक तुम उस अंतराल को अनुभव करोगे। जिसमें श्वास नहीं है।

अगर तुम सूक्ष्मता से श्वास-प्रश्वास के साथ यात्रा कर रहे हो तो उस स्थिति के प्रति अबोध कैसे रह सकते हो। जहां स्वास नहीं है। वह क्षण आ ही जाएगा जब तुम महसूस करोगे। कि अब श्वास न जाती है, न आती है। श्वास क्रिया बिलकुल ठहर गई है। और उसी ठहराव में श्रेयस् का वास है।

यह एक विधि लाखों-करोड़ों लोगों के लिए पर्याप्त है। सदियों तक समूचा एशिया इस एक विधि के साथ जीया और उसका प्रयोग करता रहा। तिब्बत, चीन, जापन, बर्मा, श्याम, श्रीलंका। भारत को छोड़कर समस्त एशिया सदियों तक इस एक विधि का उपयोग करता रहा। और इस एक विधि के द्वारा हजारों-हजारों व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हुए। और यह पहली ही विधि है। दुर्भाग्य की बात कि चूंकि यह विधि बुद्ध के नाम से संबंद्ध हो गई। इसलिए हिंदू इस विधि से बचने की चेष्टा में लगे रहे। क्योंकि यह बौद्ध विधि की तरह बहुत प्रसिद्ध हुई। हिंदू इसे बिलकुल भूल गये। इतना ही नहीं, उन्होंने और एक कारण से इसकी अवहेलना की। क्योंकि शिव ने सबसे पहले इस विधि का उल्लेख किया, अनेक बौद्धों ने इस विज्ञान भैरव तंत्र के बौद्ध ग्रंथ होने का दावा किया। वे इसे हिंदू ग्रंथ नहीं मानते।

यह न हिंदू है और न बौद्ध, और विधि मात्र विधि है। बुद्ध ने इसका उपयोग किया, लेकिन यह उपयोग के लिए मौजूद ही थी। और इस विधि के चलते बुद्ध-बुद्ध हुए। विधि तो बुद्ध से भी पहले थी। वह मौजूद ही थी। इसको प्रयोग में लाओ। यह सरलतम

विधियों में से है—अन्य विधियों की तुलना में। मैं यह नहीं कहता कि यह विधि तुम्हारे लिए सरल है। अन्य विधियां अधिक कठिन होंगी। यही कारण है कि पहली विधि की तरह इसका उल्लेख हुआ है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन—2,

तंत्र-सूत्र—विधि—02

जब श्वास नीचे से ऊपर की और मुड़ती है, और फिर जब श्वास ऊपर से नीचे की और मुड़ती है—इन दो मोड़ों के द्वारा उपलब्ध हो।

विज्ञान भैरव तंत्र ;;;;तंत्र-सूत्र—विधि—02 (ओशो)

थोड़े फर्क के साथ यह वही विधि है; और अब अंतराल पर न होकर मोड़ पर है। बाहर जाने वाली और अंदर जाने वाली श्वास एक वर्तुल बनाती है। याद रहे, वे समांतर रेखाओं की तरह नहीं है। हम सदा सोचते है कि आने वाली श्वास और जाने वाली श्वास दो समांतर रेखाओं की तरह है। मगर वे ऐसी है नहीं। भीतर आने वाली श्वास आधा वर्तुल बनाती है। और शेष आधा वर्तुल बाहर जाने वाली श्वास बनाती है।
इसलिए पहले यह समझ लो कि श्वास और प्रश्वास मिलकर एक वर्तुल बनाती है। और वे समांतर रेखाएं नहीं है; क्योंकि समांतर रेखाएं कही नहीं मिलती है। दूसरी यह कि आने वाली और जाने वाली श्वास दो नहीं है। वे एक है। वही श्वास भीतर आती है, बहार भी जाती है। इसलिए भीतर उसका कोई मोड़ अवश्य होगा। वह कहीं जरूर मुड़ती होगी। कोई बिंदु होगा, जहां आने वाली श्वास जाने वाली श्वास बन जाती होगी।

लेकिन मोड़ पर इतना जोर क्यों है?

क्योंकि शिव कहते है, ''जब श्वास नीचे से ऊपर की और मुड़ती है, और फिर जब श्वास ऊपर से नीचे की और मुड़ती है—इन दो मोड़ों के द्वारा उपलब्ध हो।''

बहुत सरल है। लेकिन शिव कहते है कि मोड़ों को प्राप्त कर लो। और आत्मा को उपलब्ध हो जाओगे। लेकिन मोड़ क्यों?

अगर तुम कार चलाना जानते हो तो तुम्हें गियर का पता होगा। हर गियर बदलते हो तो तुम्हें न्यूट्रल गियर से गुजरना पड़ता है जो कि गियर बिलकुल नहीं है। तुम पहले गियर से दूसरे गियर में जाते हो और दूसरे से तीसरे गियर में। लेकिन सदा तुम्हें न्यूट्रल गियर से होकर जाना पड़ता है। वह न्यूट्रल गियर घुमाव का बिंदु है। मोड़ है। उस मोड़ पर पहला गियर दूसरा गियर बन जाता है। और दूसरा तीसर बन जाता है।

वैसे ही जब तुम्हारी श्वास भीतर जाती है और घूमने लगती है तो उस वक्त वह न्यूट्रल गियर में होती है। नहीं तो वह नहीं धूम सकती। उसे तटस्थ क्षेत्र से गुजरना पड़ता है।

उस तटस्थ क्षेत्र में तुम न तो शरीर हो और न मन ही हो; न शारीरिक हो, न मानसिक हो। क्योंकि शरीर तुम्हारे अस्तित्व का एक गियर है और मन उसका दूसरा गियर है। तुम एक गियर से दूसरे गियर में गति करते हो, इस लिए तुम्हें एक न्यूट्रल गियर की जरूरत है जो न शरीर हो और न मन हो। उस तटस्थ क्षेत्र में तुम मात्र हो, मात्र अस्तित्व–शुद्ध, सरल, अशरीरी और मन से मुक्त। यही कारण है कि घुमाव बिंदु पर, मोड़ पर इतना जोर है।

मनुष्य एक यंत्र है—बड़ा और बहुत जटिल यंत्र। तुम्हारे शरीर और मन में भी अनेक गियर है। तुम्हें उस महान यंत्र रचना का बोध नहीं है। लेकिन तुम एक महान यंत्र हो। और अच्छा है कि तुम्हें उसका बोध नहीं है। अन्यथा तुम पागल हो जाओगे। शरीर ऐसा विशाल यंत्र है कि वैज्ञानिक कहते है, अगर हमें शरीर के समांतर एक कारखाना निर्मित करना पड़े तो उसे चार वर्ग मिल जमीन की जरूरत होगी। और उसका शोरगुल इतना भारी होगा कि उससे सौ वर्ग मील भूमि प्रभावित होगी।

शरीर एक विशाल यांत्रिक रचना है—विशालतम। उसमे लाखों-लाखों कोशिकांए है, और प्रत्येक कोशिका जीवित है। तुम सात करोड़ कोशिकाओं के एक विशाल नगर में हो; तुम्हारे भी तर सात करोड़ नागरिक बसते है; और सारा नगर बहुत शांति और व्यवस्था से चल रहा है। प्रतिक्षण यंत्र-रचना काम कर रही है। और वह बहुत जटिल है।

कई स्थलों पर इन विधियों का तुम्हारे शरीर और मन की एक यंत्र-रचना के साथ वास्ता पड़ेगा। लेकिन याद रखो। कि सदा ही जोर उन बिंदुओं पर रहेगा जहां तुम अचानक यंत्र-रचना के अंग नहीं रह जाते हो। जब एकाएक तुम यंत्र रचना के अंग नहीं रहे तो ये ही क्षण है जब तुम गियर बदलते हो।

उदाहरण के लिए, रात जब तुम नींद में उतरते हो तो तुम्हें गियर बदलना पड़ता है। कारण यह है कि दिन में जागी हुई चेतना के लिए दूसरे ढंग की यंत्र रचना की जरूरत रहती है। तब मन का भी एक दूसरा भाग काम करता है। और जब तुम नींद में उतरते हो तो वह भाग निष्क्रिय हो जाता है। और अन्य भाग सक्रिय होता है। उस क्षण वहां एक अंतराल, एक मोड़ आता है। एक गियर बदला। फिर सुबह जब तुम जागते हो तो गियर बदलता है।

तुम चुपचाप बैठे हो और अचानक कोई कुछ कह देता है, और तुम क्रुद्ध हो जाते हो। तब तुम भिन्न गियर में चले गए। यही कारण है कि सब कुछ बदल जाता है। तुम क्रोध में हुए श्वास क्रिया बदल जायेगी। वह अस्तव्यस्त हो जायेगी। तुम्हारी श्वास क्रिया में कंपन आ जाएगा। किसी चीज को चूर-चूर कर देना चाहेगा, ताकि यह घुटन जाए। तुम्हारी श्वास क्रिया बदल जाएगी, तुम्हारे खून की लय दुसरी होगी। शरीर में और ही तरह का रस द्रव्य सक्रिय होगा। पूरी ग्रंथि व्यवस्था ही बदल जाएगी। क्रोध में तुम दूसरे ही आदमी हो जाते हो।

एक कार खड़ी है, तुम उसे स्टार्ट करो। उसे किसी गियर में न डालकर न्यूट्रल गियर में छोड़ दो। गाड़ी हिलेगी, कांपेगी, लेकिन चलेगी नहीं। वह गरम हो जाएगी। इसी तरह क्रोध में नहीं कुछ कर पाने के कारण तुम गरम हो जाते हो। यंत्र रचना तो कुछ करने के लिए सक्रिय है और तुम उसे कुछ करने नहीं देते तो उसका गरम हो जाना स्वाभाविक है। तुम एक यंत्र-रचना हो, लेकिन मात्र यंत्र-रचना नहीं हो। उससे कुछ अधिक हो। उस अधिक को खोजना है। जब तुम गियर बदलते हो तो भीतर सब कुछ बदल जाता है। जब तुम गियर बदलते हो तो एक मोड़ आता है।

शिव कहते है, ''जब श्वास नीचे से ऊपर की और मुड़ती है, और फिर जब श्वास ऊपर से नीचे की और मुड़ती है। इन दो मोड़ों के द्वारा उपलब्ध हो जाओ।''

मोड़ पर सावधान हो जाओ, सजग हो जाओ। लेकिन यह मोड़ बहुत सूक्ष्म है और उसके लिए बहुत सूक्ष्म निरीक्षण की जरूरत पड़ेगी। हमारी निरीक्षण की क्षमता नहीं के बराबर है; हम कुछ देख ही नहीं सकते। अगर मैं तुम्हें कहूं कि इस फूल को देखो—इस फूल को जो तुम्हें मैं देता हूं। तो तुम उसे नहीं देख पाओगे। एक क्षण को तुम उसे देखोगें और फिर किसी और चीज के संबंध में सोचने लगोगे। वह सोचना फूल के विषय में हो सकता है। लेकिन वह फूल नहीं हो सकता। तुम फूल के बारे में सोच सकते हो। कि देखो वह कितना सुंदर है। लेकिन तब तुम फूल से दूर हट गए। अब फूल तुम्हारे निरीक्षण क्षेत्र में नहीं रहा। क्षेत्र बदल गया। तुम कहोगे कि यह लाल है, नीला है, लेकिन तुम उस फूल से दूर चले गए।

निरीक्षण का अर्थ होता है: किसी शब्द या शाब्दिकता के साथ, भीतर की बदलाहट के साथ न रहकर मात्र फूल के साथ रहना। अगर तुम फूल के साथ ऐसे तीन मिनट रह जाओ, जिसमे मन कोई गति न करे, तो श्रेयस् घट जाएगा। तुम उपलब्ध हो जाओगे।

लेकिन हम निरीक्षण बिलकुल नहीं जानते है। हम सावधान नहीं है, सतर्क नहीं है, हम किसी भी चीज को अपना अवधान नहीं दे पाते है। हम ता यहां-वहां उछलते रहत है। वह हमारी वंशगत विरासत है, बंदर-वंश की विरासत। बंदर के मन से ही मनुष्य का मन विकसित हुआ है। बंदर शांत नहीं बैठ सकता। इसीलिए बुद्ध बिना हलन-चलन के बैठने पर, मात्र बैठने पर इतना जौर देते है। क्योंकि तब बंदर-मन का अपनी राह चलना बंद हो जाता है।

जापान में एक खास तरह का ध्यान चलता है जिसे वे झा झेन कहते है। झा झेन शब्द का जापानी में अर्थ होता है, मात्र बैठना और कुछ भी नहीं करना। कुछ भी हलचल नहीं करनी है, मूर्ति की तरह वर्षों बैठे रहना है—मृतवत्, अचल। लेकिन मूर्ति की तरह वर्षों बैठने की जरूरत क्या है? अगर तुम अपने श्वास के घुमाव को अचल मन से देख सको तो तुम प्रवेश पा जाओगे? तुम स्वयं में प्रवेश पा जाओगे। अंतर के भी पार प्रवेश पा जाओगे। लेकिन ये मोड़ इतने महत्वपूर्ण क्यों है?

वे महत्वपूर्ण है, क्योंकि मोड़ पर दूसरी दिशा में घूमने के लिए श्वास तुम्हें छोड़ देती है। जब वह भीतर आ रही थी तो तुम्हारे साथ थी; फिर जब वह बाहर जाएगी तो तुम्हारे साथ होगा। लेकिन घुमाव-बिंदु पर न वह तुम्हारे साथ है और न तुम उसके साथ हो। उस क्षण में श्वास तुमसे भिन्न है और तुम उससे भिन्न हो। अगर श्वास क्रिया ही जीवन है तो तब तुम मृत हो। अगर श्वास-क्रिया तुम्हारा मन है तो उस क्षण तुम अ-मन हो।

तुम्हें पता हो या न हो, अगर तुम अपनी श्वास को ठहरा दो तो मन अचानक ठहर जाता है। अगर तुम अपनी श्वास को ठहरा दो तो तुम्हारा मन अभी और अचानक ठहर जाएगा; मन चल नहीं सकता। श्वास का अचानक ठहरना मन को ठहरा देता है। क्यों? क्योंकि वे पृथक हो जाते है। केवल चलती हुई श्वास मन से शरीर से जुड़ी होती है। अचल श्वास अलग हो जाती है। और जब तुम न्यूट्रल गियर में होते हो।

कार चालू है, ऊर्जा भाग रही है, कार शोर मचा रही है। वह आगे जाने को तैयार है। लेकिन वह गियर में ही नहीं है। इसलिए कार का शरीर और कार का यंत्र-रचना, दोनों अलग-अलग है। कार दो हिस्सों में बंटी है। वह चलने को तैयार है, लेकिन गति का यंत्र उससे अलग है।

वही बात तब होती है जब श्वास मोड़ लेती है। उस समय तुम उसे नहीं जुड़े हो। और उस क्षण तुम आसानी से जान सकते हो कि मैं कौन हूं, यह होना क्या है, उस समय तुम जान सकते हो कि शरीर रूपी घर के भीतर कौन है, इस घर का स्वामी कौन है। मैं मात्र घर हूं या वहां कोई स्वामी भी है, मैं मात्र यंत्र रचना हूं, या उसके परे भी कुछ है। और शिव कहते है कि उस घुमाव बिंदु पर उपलब्ध हो। वे कहते है, उस मोड़ के प्रति बोधपूर्ण हो जाओ और तुम आत्मोपलब्ध हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

प्रवचन-2(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

तंत्र-सूत्र—विधि—03

या जब कभी अंत: श्वास और बहिर्श्वास एक दूसरे में विलीन होती है, उस क्षण में ऊर्जारहित, ऊर्जापूरित केंद्र को स्पर्श करो।

विज्ञान भैरव तंत्र–ध्यान विधि–03–ओशो

हम केंद्र और परिधि में विभाजित है। शरीर परिधि है। हम शरीर को, परिधि को जानते है। लेकिन हम यह नहीं जानते कि कहां केंद्र है। जब बहिर्श्वास अंत:श्वास में विलीन होती है। जब वे एक हो जाती है। जब तुम यह नहीं कह सकते कि यह अंत:श्वास है कि बहिर्श्वास, जब यह बताना कठिन हो कि श्वास भीतर जा रही है कि बाहर जा रही है। जब श्वास भी तर प्रवेश कि बाहर की तरफ मुड़ने लगती है, तभी विलय का क्षण है। तब श्वास जाती है और न भीतर आती है। श्वास गतिहीन है। जब वह बहार जाती है, गतिमान है, जब वह भीतर आती है, गतिमान है। और जब वह दोनों में कुछ भी नहीं करती है। तब वह मौन है, अचल है। और तब तुम केंद्र के निकट हो। आने वाली और जाने वाली श्वासों का यह विलय विंदु तुम्हारा केंद्र है। इसे इस तरह देखो। जब श्वास भीतर जाती है तो कहां जाती है? वह तुम्हारे केंद्र को जाती है। और जब वह बाहर जाती है तो कहां जाती है? केंद्र से बाहर जाती है। इसी केंद्र को स्पर्श करना है। यही कारण हे कि ताओ वादी संत और झेन संत कहते है कि सिर तुम्हारा केंद्र नहीं है, नाभि तुम्हारा केंद्र है। श्वास नाभि-केंद्र को जाती है, फिर वहां से लौटती है, फिर उसकी यात्रा करती है।

जैसा मैंने कहा, श्वास तुम्हारे और तुम्हारे शरीर के बीच सेतु है। तुम शरीर को तो जानते हो, लेकिन यह नहीं जानते कि केंद्र कहां है। श्वास निरंतर केंद्र को जा रही है। और वहां से लौट रही है। लेकिन हम पर्याप्त श्वास नहीं लेते है। इस कारण से साधारण: वह केंद्र तक नहीं पहुंच पाती है। खासकर आधुनिक समय में तो वह केंद्र तक नहीं जाती। और नतीजा यह है कि हरेक व्यक्ति विकेंद्रित अनुभव करता है। अपने को केंद्र से च्यूत महसूस करता है। पूरे आधुनिक संसार में जो लोग भी थोड़ा सोच-विचार करते है। वे महसूस करते है कि उनका केंद्र खो गया है।

एक सोए हुए बच्चे को देखो, उसकी श्वास का निरीक्षण करो। जब उसकी श्वास भीतर जाती है तो उसका पेट ऊपर उठता है। उसकी छाती अप्रभावित रहती है। यही वजह है कि बच्चों के छाती नहीं होती। उनके केवल पेट होते है। जीवंत पेट। श्वास प्रश्वास के साथ उनका पेट ऊपर नीचे होता है। उनका पेट ऊपर-नीचे होता है और बच्चे अपने केंद्र पर होते है, केंद्र में होते है, और यही कारण है कि बच्चे इतने सुखी है, इतने आनंदमग्न है। इतनी ऊर्जा से भरे है कि कभी थकते नहीं और ओवर फ्लोइंग है। वे सदा वर्तमान क्षण में होते है। न उनका अतीत है न भविष्य।

एक बच्चा क्रोध कर सकता है। जब वह क्रोध करता है तो समग्रता से क्रोध करता है। वह क्रोध ही हो जाता है। और तब उसका क्रोध भी कितना सुंदर लगता है। जब कोई समग्रता से क्रोध ही हो जाता है। तो उसके क्रोध का भी अपना सौंदर्य है। क्योंकि समग्रता सदा सुंदर होती है।

तुम क्रोधी और सुंदर नहीं हो सकते। क्रोध में तुम कुरूप लगोगे। क्योंकि खंड सदा कुरूप होता है। क्रोध के साथ ही ऐसा नहीं है। तुम प्रेम भी करते हो तो कुरूप लगते हो। क्योंकि उसमे भी तुम खंडित हो, बंटे-बंटे हो। जब तुम किसी को प्रेम कर रहे हो, जब तुम संभोग में उतर रहे हो तो अपने चेहरे को देखो। आईने के सामने प्रेम करो और अपना चेहरा देखो। वह कुरूप और पशुवत होगा।

प्रेम में भी तुम्हारा रूप कुरूप हो जाता है। क्यों? तुम्हारे प्रेम में भी द्वंद्व है, तुम कुछ बचाकर रख रहे हो, कुछ रोक रहे हो; तुम बहुत कंजूसी से दे रहे हो। तुम अपने प्रेम में भी समग्र नहीं हो। तुम समग्रता से, पूरे-पूरे दे भी नहीं पाते।

और बच्चा क्रोध और हिंसा से भी समग्र होता है। उसका मुखड़ा दीप्त और सुंदर हो उठता है। वह यहां और अभी होता है। उसके क्रोध का न किसी अतीत से कुछ लेना-देना है और न किसी भविष्य से; वह हिसाब नहीं रखता है। वह मात्र क्रुद्ध है। बच्चा अपने केंद्र पर है। और जब तुम केंद्र पर होते हो तो सदा समग्र होते हो। तब तुम तो कुछ करते हो वह समग्र होता है। भला या बुरा, वह समग्र होता है। और जब खंडित होते हो, केंद्र से च्युत होते हो तो तुम्हारा हरेक काम भी खंडित होता है। क्योंकि उसमे तुम्हारा खंड ही होता है। उसमे तुम्हारा समग्र संवेदित नहीं होता है। खंड समग्र के खिलाफ जाता है। और वही कुरूपता पैदा करता है।

कभी हम सब बच्चो थे। क्या बात है कि जैसे-जैसे हम बड़े होते है हमारी श्वास क्रिया उथली हो जाती है। तब श्वास पेट तक कभी नहीं जाती है, नाभि केंद्र को नहीं छूती है। अगर वह ज्यादा से ज्यादा नीचे जाएगी तो वह कम से कम उथली रहेगी। लेकिन वि तो सीने को छूकर लौट आती है। वह केंद्र तक नहीं जाती है। तुम केंद्र से डरते हो, क्योंकि केंद्र पर जाने से तुम समग्र हो जाओगे। अगर तुम खंडित रहना चाहो तो खंडित रहने की यही प्रक्रिया है।

तुम प्रेम करते हो, अगर तुम केंद्र से श्वास लो तो तुम प्रेम में पूरे बहोगे। तुम डरे हुए हो। तुम दूसरे के प्रति, किसी के भी प्रति खुल होने से, असुरक्षित और संवेदनशील होने से डरते हो। तुम उसे अपना प्रेमी कहो कि प्रेमिका कहो, तुम डरे हुए हो। वह दूसरा है, और अगर तुम पूरी तरह खुले हो, असुरक्षित हो तो तुम नहीं जानते कि क्या होने जा रहा है। तब तुम हो, समग्रता से हो—दूसरे अर्थों में। तुम पूरी तरह दूसरे में खो जाने से डरते हो। इसलिए तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते। तुम अपनी श्वास को

शिथिल और ढीला नहीं कर सकते हो। क्योंकि वह केंद्र तक चली जायेगी। क्योंकि जिस क्षण श्वास केंद्र पर पहुँचेगी, तुम्हारा कृत्य अधिकाधिक समग्र होने लगेगा।

क्योंकि तुम समग्र होने से डरते हो, तुम उथली श्वास लेते हो। तुम अल्पतम श्वास लेते हो। अधिकतम नहीं। यही कारण है कि जीवन इतना जीवनहीन लगता है। अगर तुम न्यूनतम श्वास लोगे तो जीवन जीवनहीन ही होगा। तुम जीते भी न्यूनतम हो, अधिकतम नहीं। तुम अधिकतम जियो तो जीवन अतिशय हो जाए। लेकिन तब कठिनाई होगी। यदि जीवन अतिशय हो तो तुम न पति हो सकते हो और न पत्नी। सब कुछ कठिन हो जाएगी। अगर जीवन अतिशय हो तो प्रेम अतिशय होगा। तब तुम एक से ही बंधे नहीं रह सकते। तब तुम सब तरफ प्रवाहित होने लगोगे। सभी आयाम में तुम भर जाओगे। और उस हालत में मन खतरा महसूस करता है; इसलिए जीवित ही नहीं रहना उसे मंजूर है।

तुम जितने मृत होगें उतने सुरक्षित होगें। जितने मृत होगें उतना ही सब कुछ नियंत्रण में होगा। तुम नियंत्रण करते हो तो तुम मालिक हो, क्योंकि नियंत्रण करते हो इसलिए अपने को मालिक समझते हो। तुम अपने क्रोध पर, अपने प्रेम पर, सब कुछ पर नियंत्रण कर सकते हो। लेकिन यह नियंत्रण ऊर्जा के न्यूनतम तक पर ही संभव है।

कभी न कभी हर आदमी ने यह अनुभव किया है कि वह अचानक न्यूनतम से अधिकतम तल पर पहुंच गया। तुम किसी पहाड़ पर चले जाओ। अचानक तुम शहर से, उसकी कैद से बाहर हो जाओ। अब तुम मुक्त हो। विराट आकाश है, हरा जंगल है, बादलों को छूता शिखर है। अचानक तुम गहरी श्वास लेते हो। हो सकता है, उस पर तुम्हारा ध्यान न को छूता शिखर है। अचानक तुम गहरी श्वास लेते हो। हो सकता है, उस पर तुम्हारा ध्यान न गया हो। अब जब पहाड़ जाओ तो इसका ख्याल रखना। केवल पहाड़ के कारण बदलाहट नहीं मालूम होती, श्वास के कारण मालूम होती है। तुम गहरी श्वास लेते हो और कहते हो, अहा, तुमने केंद्र छू लिया, क्षण भर के लिए तुम समग्र हो गए। और सब कुछ आनंदपूर्ण है। वह आनंद पहाड़ से नहीं, तुम्हारे केंद्र से आ रहा है। तुमने अचानक उसे छू जो लिया।

शहर में तुम भयभीत थे। सर्वत्र दूसरा मौजूद था और तुम अपने को काबू में किए रहते थे। न रो सकते थे, न हंस सकते थे। कैसे दुर्भाग्य, तुम सड़क पर गा नहीं सकते थे। नाच नहीं सकते थे। तुम डरे-डरे थे। कहीं सिपाही खड़ा था, कहीं पुरोहित, कहीं जज खड़ा था। कहीं राजनीतिज्ञ, कहीं नीतिवादी। कोई न कोई था कि तुम नाच नहीं सकते थे।

बर्ट्रेंड रसेल न कहीं कहा है कि मैं सभ्यता से प्रेम करता हूं, लेकिन हमने यह सभ्यता भारी कीमत चुका कर हासिल की है।

तुम सड़क पर नहीं नाच सकते, लेकिन पहाड़ चले जाओ और वहां अचानक नाच सकते हो। तुम आकाश के साथ अकेले हो और आकाश कारागृह नहीं है। वह खुलता ही जाता है, खुलता ही जाता है। अंनत तक खुलता ही जाता है। एकाएक तुम एक गहरी श्वास लेते हो; केंद्र छू जाता है; और तब आनंद ही आनंद है।

लेकिन वह लंबे समय तक टिकने वाला नहीं है। घंटे दो घंटे में पहाड़ विदा हो जाएगा। तुम वहां रह सकते हो, लेकिन पहाड़ विदा हो जाएगा। तुम्हारी चिंताएं लौट आएँगी। तुम शहर देखना चाहोगे, पत्नी को पत्र लिखने की सोचोगे या सोचोगे कि तीन दिन बाद वापस जाना है तो उसकी तैयारी शुरू करें। अभी तुम आए हो और जाने की तैयारी होने लगी। फिर तुम वापस आ गए। वह गहरी श्वास सच में तुमसे नहीं आई थी। वह अचानक घटित हुई थी, बदली परिस्थिति के कारण गियर बदल गया था। नई परिस्थिति में तुम पुराने ढंग से श्वास नहीं ले सकते थे। इसलिए क्षण भर को एक नयी श्वास आ गई, उसने केंद्र छू लिया और तुम आनंदित थे।

शिव कहते है, तुम प्रत्येक क्षण केंद्र को स्पर्श कर रहे हो, या यदि नहीं स्पर्श कर रहे हो तो कर सकते हो। गहरी, धीमी श्वास लो और केंद्र को स्पर्श करो। छाती से श्वास मत लो। वह एक चाल है; सभ्यता, शिक्षा और नैतिकता ने हमें उथली श्वास सिखा दी है। केंद्र में गहरे उतरना जरूरी है, अन्यथा तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते।

जब तक मनुष्य समाज कामवासना के प्रति गैर-दमन की दृष्टि नहीं अपनाता, तब तक वह सच में श्वास नहीं ले सकता। अगर श्वास पेट तक गहरी जाए तो वह काम केंद्र को ऊर्जा देती है। वह काम केंद्र को छूती है। उसकी भीतर से मालिश करती है। तब काम-केंद्र अधिक सक्रिय, अधिक जीवंत हो उठता है। और सभ्यता कामवासना से भयभीत है।

हम अपने बच्चों को जननेंद्रिय छूने नहीं देते है। हम कहते है, रुको, उन्हें छुओ मत। जब बच्चा पहली बार जननेंद्रिय छूता है तो उसे देखो; और कहो, रुको; और तब उसकी श्वास क्रिया को देखो। जब तुम कहते हो, रुको, जननेंद्रिय मत छुओ। तो उसकी श्वास तुरंत उथली हो जायेगी। क्योंकि उसका हाथ ही काम केंद्र को नहीं छू रहा। गहरे में उसकी श्वास भी उसे छू रही है। अगर श्वास उसे छूती रहे तो हाथ को रोकना कठिन है। और अगर हाथ रुकता है तो बुनियादी तौर से जरूरी हो जाता है कि श्वास गहरी न होकर उथली रहे।

हम काम से भयभीत है। शरीर का निचला हिस्सा शारीरिक तल पर ही नहीं मूल्य के तल पर भी निचला हो गया है। वह निचला कहकर निंदित है। इसलिए गहरी श्वास नहीं, उथली श्वास लो। दुर्भाग्य की बात है कि श्वास नीचे को ही जाती है। अगर उपदेशक की चलती तो वह पूरी यंत्र रचना को बदल देता। वह सिर्फ ऊपर की और, सिर में श्वास लेने की इजाजत देता। और तब कामवासना बिलकुल अनुभव नहीं होती।

अगर काम विहीन मनुष्य को जन्म देना है तो श्वास-प्रणाली को बिलकुल बदल देना होगा। तब श्वास को सिर में सहस्त्रार में भेजना होगा। और वहां से मुंह में वापस लाना होगा। मुंह से सहस्त्रार उसका मार्ग होगा। उसे नीचे गहरे में नहीं जाने देना होगा। क्योंकि वहां खतरा है। जितने गहरे उतरोगे उतने ही जैविकी के गहरे तलों पर पहुंचोगे। तब तुम केंद्र पर पहुंचोगे। और वह केंद्र काम केंद्र के पास ही है। ठीक भी है, क्योंकि काम ही जीवन है।

इसे इस तरह देखो। श्वास ऊपर से नीचे को जाने वाला जीवन है। काम ठीक दूसरी दिशा से नीचे से ऊपर को जाने वाला जीवन है। काम-ऊर्जा बह रही है। और श्वास ऊर्जा बह रही है। श्वास का रास्ता ऊपर शरीर में है और काम का रास्ता निम्न शरीर में है। और जब श्वास और काम मिलते है। जीवन को जन्म देते है। इस लिए अगर तुम काम से डरते हो, तो दोनों के बीच दूरी बनाओ। उन्हें मिलने मत दो। सच तो यह है कि सभ्य आदमी बधिया किया हुआ आदमी है। यही कारण है कि हम श्वास के संबंध में नह जानते, और हमें यह सूत्र समझना कठिन है।

शिव कहते है: जब कभी अंत:श्वास और बहिर्श्वास एक दूसरे में विलीन होती है। उस क्षण में ऊर्जारहित, ऊर्जापूरित केंद्र को स्पर्श करों।

शिव परस्पर विरोधी शब्दावली का उपयोग करते है। ऊर्जारहित, ऊर्जापूरित। वह ऊर्जारहित है, क्योंकि तुम्हारे शरीर, तुम्हारे मन उसे ऊर्जा नहीं दे सकते। तुम्हारे शरीर की ऊर्जा और मन की ऊर्जा वहां नहीं है। इसलिए जहां तक तुम्हारे तादात्म्य का संबंध है, वह ऊर्जारहित है। लेकिन वह ऊर्जापूरित है, क्योंकि उसे ऊर्जा का जागतिक स्त्रोत उपलब्ध है।

तुम्हारे शरीर की ऊर्जा को ईंधन है—पेट्रोल जैसी। तुम कुछ खाते-पीते हो उससे ऊर्जा बनती है। खाना पीना बंद कर दो और शरीर मृत हो जाएगा। तुरंत नहीं कम से कम तीन महीने लगेंगे। क्योंकि तुम्हारे पास पेट्रोल का एक खजाना भी है। तुमने बहुत ऊर्जा जमा की हुई है, जो कम से कम तीन महीने काम दे सकती है। शरीर चलेगा, उसके पास जमा ऊर्जा थी। और किसी आपत्काल में उसका उपयोग हो सकता है। इसलिए शरीर ऊर्जा-ईंधन ऊर्जा है।

केंद्र को ईंधन-ऊर्जा नहीं मिलती है। यही कारण है कि शिव उसे ऊर्जारहित कहते है। वह तुम्हारे खाने पीने पर निर्भर नहीं है। वह जागतिक स्त्रोत से जुड़ा हुआ है, वह जागतिक ऊर्जा है। इसलिए शिव उसे ''ऊर्जारहित, ऊर्जापूरित केंद्र कहते है। जिस क्षण तुम उस केंद्र को अनुभव करोगे जहां से श्वास जाती-आती है, जहां श्वास विलीन होती है, उस क्षण तुम आत्मोपलब्ध हुए।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र,

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-2

तंत्र-सूत्र—विधि-05

भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर विचार को मन के सामने करो। फिर सहस्त्रार तक रूप को श्वास-तत्व से, प्राण से भरने दो। वहां वह प्रकाश की तरह बरसेगा।

Shira तंत्र-सूत्र—विधि-05 (विज्ञान भैरव तंत्र–ओशो)

यह विधि पाइथागोरस को दी गई थी। पाइथागोरस इसे लेकर यूनान वापस गए। और वह पश्चिम के समस्त रहस्यवाद के आधार बन गए। पश्चिम में अध्यात्मवाद के वे पिता है। यह विधि बहुत गहरी विधियों में ऐ एक है। इसे समझने की कोशिश करो।

''भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर करो।''
आधुनिक शरीर-शस्त्र कहता है, वैज्ञानिक शोध कहती है कि दो भृकुटियों के बीच में ग्रंथि है वह शरीर का सबसे रहस्यपूर्ण भाग है। जिसका नाम पाइनियल ग्रंथि है। यही तिब्बतियों की तीसरी आँख है। और यही है शिव का नेत्र। तंत्र के शिव का त्रिनेत्र। दो आंखों के बीच एक तीसरी आँख भी है। लेकिन यह सक्रिय नहीं है। यह है, और यह किसी भी समय सक्रिय हो सकती है। निसर्गत: यह सक्रिय नहीं है। इसको सक्रिय करने के लिए संबंध में तुम को कुछ करना पड़ेगा। यह अंधी नहीं है, सिर्फ बंद है। यह विधि तीसरी आँख को खोलने की विधि है।

''भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर.....।''

आंखे बंद कर लो और फिर दोनों आंखों को बंद रखते हुए भौंहों के बीच में दृष्टि को स्थिर करो—मानो कि दोनों आंखों से तुम देख रहे हो। और समग्र अवधान को वही लगा दो।

यह विधि एकाग्र होने की सबसे सरल विधियों में से एक है। शरीर के किसी दूसरे भाग में इतनी आसानी से तुम अवधान को नहीं उपलब्ध हो सकते। यह ग्रंथि अवधान को अपने में समाहित करने में कुशल है। यदि तुम इस पर अवधान दोगे तो तुम्हारी दोनों आंखे तीसरी आँख से सम्मोहित हो जाएंगी। वे थिर हो जाएंगी, वे वहां से नहीं हिल सकेंगी। यदि तुम शरीर के किसी दूसरे हिस्से पर अवधान दो तो वहां कठिनाई होगी। तीसरी आँख अवधान को पकड़ लेती है। अवधान को खींच लेती है। अवधान के लिए वह चुंबक का काम करती है।

इसलिए दुनिया भी की सभी विधियों में इसका समावेश किया गया है। अवधान को प्रशिक्षित करने में यह सरलतम है, क्योंकि इसमे तुम ही चेष्टा नही करते, यह ग्रंथि भी तुम्हारी मदद करती है। यह चुंबकीय है। तुम्हारे अवधान को यह बलपूर्वक खींच लेती है।

तंत्र के पुराने ग्रंथों में कहा गया है कि अवधान तीसरी आँख का भोजन है। यह भूखी है; जन्मों-जन्मों से भूखी है। जब तुम इसे अवधान देते हो यह जीवित हो उठती है। इसे भोजन मिल गया है। और जब तुम जान लोगे कि अवधान इसका भोजन है, जान लोगे कि तुम्हारे अवधान को यह चुंबक की तरह खींच लेती है। तब अवधान कठिन नहीं रह जाएगा। सिर्फ सही बिंदु को जानना है।

इस लिए आँख बंद कर लो, और अवधान को दोनों आंखों के बीच में घूमने दो और उस बिंदू को अनुभव करो। जब तुम उस बिंदु के करीब होगें। अचानक तुम्हारी आंखे थिर हो जाएंगी। और जब उन्हें हिलाना कठिन हो जाए तब जानो कि सही बिंदु मिल गया।

''भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर विचार को मन के सामने रखो।''

अगर यह अवधान प्राप्त हो जाए तो पहली बार एक अद्भुत बात तुम्हारे अनुभव में आएगी। पहली बार तुम देखोगें कि तुम्हारे विचार तुम्हारे सामने चल रहे है, तुम साक्षी हो जाओगे। जैसे कि सिनेमा के पर्दे पर दृश्य देखते हो, वैसे ही तुम देखोगें कि विचार आ रहे है, और तुम साक्षी हो। एक बार तुम्हारा अवधान त्रिनेत्र-कैंद्र पर स्थिर हो जाए तुम तुरंत विचारों के साक्षी हो जाओगे।

आमतौर से तुम साक्षी नहीं होते, तुम विचारों के साथ तादात्म्य कर लेते हो। यदि क्रोध है तो तुम क्रोध हो जाते हो। यदि एक विचार चलता है तो उसके साक्षी होने की बजाएं तुम विचार के साथ एक हो जाते हो। उससे तादात्म्य करके साथ-साथ चलने लगते हो। तुम विचार ही बन जाते हो, विचार का रूप ले लेते हो, जब क्रोध उठता है तो तुम क्रोध बन जाते हो। और जब लोभ उठता है तब लोभ बन जाते हो। कोई भी विचार तुम्हारे साथ एकात्म हो जाता है। और उसके ओर तुम्हारे बीच दूरी नहीं रहती।

लेकिन तीसरी आँख पर स्थिर होते ही तुम एकाएक साक्षी हो जाते हो। तीसरी आँख के जरिए तुम साक्षी बनते हो। इस शिवनेत्र के द्वारा तुम विचारों को वैसे ही चलता देख सकते हो जैसे आसमान पर तैरते बादलों को, या रहा पर चलते लोगो को देखते हो।

जब तुम अपनी खिड़की से आकाश कोया रहा चलते लोगों को देखते हो तब तुम उनसे तादात्म्य नहीं करते। तब तुम अलग होते हो, मात्र दर्शक रहते हो—बिलकुल अलग। वैसे ही अब जब क्रोध आता है तब तुम उसे एक विषय की तरह देखते हो। अब

तुम यह नहीं सोचते कि मुझे क्रोध हुआ। तुम यही अनुभव करते हो कि तुम क्रोध से घिरे हो। क्रोध की एक बदली तुम्हारे चारो और घिर गई। और जब तुम खुद क्रोध नहीं रहे तब क्रोध नापुंसग हो जाता है। तब वह तुमको नहीं प्रभावित कर सकता। तब तुम अस्पर्शित रह जाते हो। क्रोध आता है और चला जाता है। और तुम अपने में केंद्रित रहते हो।

यह पाँचवीं विधि साक्षित्व को प्राप्त करने की विधि है।

''भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर विचार को मन के सामने करो।''

अब अपने विचारों को देखो, विचारों का साक्षात्कार करो।

''फिर सहस्त्रार तक रूप को श्वास तत्व से प्राण से भरने दो। वहां वह प्रकाश की तरह बरसेगा।''

जब अवधान भृकुटियों के बीच शिवनेत्र के केंद्र पर स्थिर होता है। तब दो चीजें घटित होती है।

और यही चीज दो ढंगों से हो सकती है। एक, तुम साक्षी हो जाओ तो तुम तीसरी आँख पर थिर हो जाते हो। साक्षी हो जाओ, जो भी हो रहा हो उसके साक्षी हो जाओ। तुम बीमार हो, शरीर में पीड़ा है, तुम को दुःख और संताप है, जो भी हो, तुम उसके साक्षी रहो, जो भी हो, उससे तादात्म्य न करो। बस साक्षी रहो—दर्शक भर। और यदि साक्षित्व संभव हो जाए, तो तुम तीसरे नेत्र पर स्थिर हो जाओगे।

इससे उलटा भी हो सकता है। यदि तुम तीसरी आँख पर स्थिर हो जाओ, तो साक्षी हो जाओगे।। ये दोनों एक ही बात है।

इसलिए पहली बात: तीसरी आँख पर केंद्रित होते ही साक्षी आत्मा का उदय होगा। अब तुम अपने विचारों का सामना कर सकते हो। और दूसरी बात: और अब तुम श्वास-प्रश्वास की सूक्ष्म और कोमल तरंगों को भी अनुभव कर सकते हो। अब तुम श्वसन के रूप को ही नहीं, उसके तत्व को , सार को, प्राण को भी समझ सकते हो।

पहले तो यह समझने की कोशिश करें कि ''रूप'' और ''श्वास-तत्व'' का क्या अर्थ है। जब तुम श्वास लेते हो, तब सिर्फ वायु की ही श्वास नहीं लेते। वैज्ञानिक तो यही कहते है कि तुम वायु की ही श्वास लेते हो। जिसमें आक्सीजन, हाइड्रोजन तथा अन्य तत्व रहते है। वे कहते है कि तुम वायु की श्वास लेते हो।

लेकिन तंत्र कहता है कि हवा तो मात्र वाहन है, असली चीज नहीं है। असल में तुम प्राण की श्वास लेते हो। हवा तो माध्यम भर है। प्राण उसका सत्व है, सार है। तुम न सिर्फ हवा की, बल्कि प्राण की श्वास लेते हो।

आधुनिक विज्ञान अभी नहीं जान सका है कि प्राण जैसी कोई वस्तु भी है। लेकिन कुछ शोधकर्ताओं ने कुछ रहस्यमयी चीज का अनुभव किया है। श्वास में सिर्फ हवा हम नहीं लेते, वह बहुत से आधुनिक शोधकर्ताओं ने अनुभव किया है। विशेषकर एक नाम उल्लेखनीय है। वह है जर्मन मनोवैज्ञानिक विलहेम रेख का। जिसने इसे आर्गन एनर्जी या जैविक ऊर्जा का नाम दिया है। वह प्राण ही है। वह कहता है कि जब आप श्वास लेते है, तब हवा तो मात्र आधार है, पात्र है, जिसके भीतर एक रहस्यपूर्ण तत्व है, जिसे आर्गन या प्राण या एलेन वाइटल कह सकते है। लेकिन वह बहुत सूक्ष्म है। वास्तव में वह भौतिक नहीं है। पदार्थ गत नहीं है। हवा भौतिक है, पात्र भौतिक है; लेकिन उसके भीतर से कुछ सूक्ष्म, अलौकिक तत्व चल रहा है।

इसका प्रभाव अनुभव किया जा सकता है। जब तुम किसी प्राणवान व्यक्ति के पास होते हो, तो तुम अपने भीतर किसी शक्ति को उगते देखते हो। और जब किसी बीमार के पास होते हो, तो तुमको लगता है कि तुम चूसे जा रहे हो। तुम्हारे भीतर

से कुछ निकाला जा रहा है। जब तुम अस्पताल जाते हो, तब थके-थके क्यों अनुभव करते हो? वहां चारों ओर से तुम चूसे जाते हो। अस्पताल का पूरा माहौल बीमार होता है और वहां सब किसी को अधिक प्राण की, अधिक एलेन वाइटल की जरूरत है। इसलिए वहां जाकर अचानक तुम्हारा प्राण तुमसे बहने लगता है। जब तुम भीड़ में होते हो, तो तुम घुटन महसूस क्यों करते हो। इसलिए कि वहां तुम्हारा प्राण चूसा जाने लगता है। और जब तुम प्रात: काल अकेले आकाश के नीचे या वृक्षों के बीच होते हो, तब फिर अचानक तुम अपने में किसी शक्ति का, प्राण का उदय अनुभव करते हो। प्रत्येक का एक खास स्पेस की जरूरत है। और जब वह स्पेस नहीं मिलता है तो तुमको घुटन महसूस होती है।

विलहेम रेख ने कई प्रयोग किए। लेकिन उसे पागल समझा गया। विज्ञान के भी अपने अंधविश्वास है। और विज्ञान बहुत रूढ़िवादी होता है। विज्ञान अभी भी नहीं समझता है कि हवा से बढ़कर कुछ है; वह प्राण है। लेकिन भारत सदियों से उस पर प्रयोग कर रहा है।

तुमने सुना होगा—शायद देखा भी हो—कि कोई व्यक्ति कई दिनों के लिए भूमिगत समाधि में प्रवेश कर गया। जहां हवा का कोई प्रवेश नहीं था। 1880 में मिस्त्र में एक आदमी चालीस वर्षों के लिए समाधि में चला गया था। जिन्होंने उसे गाड़ा था वे सभी मर गए। क्योंकि वह 1920 में समाधि से बहार आने वाला था।

1920 में किसी को भरोसा नहीं था कि वह जीवित मिलेगा। लेकिन वह जीवित था और उसके बाद भी वह दस वर्षों तक जीवित रहा। वह बिलकुल पीला पड़ गया था, परंतु जीवित था। और उसको हवा मिलने की कोई संभावना नहीं थी।

डॉक्टरों ने तथा दूसरों ने उससे पूछा कि इसका रहस्य क्या है? उसने कहां हम नहीं जानते; हम इतना ही जानते है कि प्राण कही भी प्रवेश कर सकता है। और वह है। हवा वहां नहीं प्रवेश कर सकती, लेकिन प्राण कर सकता है।

एक बार तुम जान जाओ कि श्वास के बिना भी कैसे तुम प्राण को सीधे ग्रहण कर सकते हो, तो तुम सदियों तक के लिए भी समाधि में जा सकते हो।

तीसरी आँख पर केंद्रित होकर तुम श्वास के सार तत्व को, श्वास को नहीं, श्वास के सार तत्व प्राण को देख सकेत हो। और अगर तुम प्राण को देख सके, तो तुम उस बिंदु पर पहुंच गए जहां से छलांग लग सकती है, क्रांति घटित हो सकती है।

सूत्र कहता है: ''सहस्त्रार तक रूप को प्राण से भरने दो।''

और जब तुम को प्राण का एहसास हो, तब कल्पना करो कि तुम्हारा सिर प्राण से भर गया है। सिर्फ कल्पना करो, किसी प्रयत्न की जरूरत नहीं है। और मैं बताऊंगा कि कल्पना कैसे काम करती है। तब तुम त्रिनेत्र-बिंदु पर स्थिर हो जाओ तब कल्पना करो, और चीजें आप ही और तुरंत घटित होने लगती है।

अभी तुम्हारी कल्पना भी नपुंसक है। तुम कल्पना किए जाते हो और कुछ भी नहीं होता। लेकिन कभी-कभी अनजाने साधारण जिंदगी में भी चीजें घटित होती है। तुम अपने मित्र की सोच रहे हो और अचानक दरवाजे पर दस्तक होती है। तुम कहते हो कि सांयोगिक था कि मित्र आ गया। कभी तुम्हारी कल्पना संयोग की तरह भी काम करती है।

लेकिन जब भी ऐसा हो, तो याद रखने की चेष्टा करो और पूरी चीज का विश्लेषण करो। जब भी लगे कि तुम्हारी कल्पना सच हुई है। तुम भीतर जाओ और देखो। कहीं न कहीं तुम्हारा अवधान तीसरे नेत्र के पास रहा होगा। दरअसल यह संयोग नहीं था। यह वैसा दिखता है; क्योंकि गुह्म विज्ञान का तुमको पता नहीं है। अनजाने ही तुम्हारा मन त्रिनेत्र केंद्र के पास चला गया होगा। और अवधान यदि तीसरी आँख पर है तो किसी घटना के सृजन के लिए उसकी कल्पना काफी है।

यह सूत्र कहता है कि जब तुम भृकुटियों के बीच स्थिर हो और प्राण को अनुभव करते हो, तब रूप को भरने दो। अब कल्पना करो कि प्राण तुम्हारे पूरे मस्तिष्क को भर रहे है। विशेषकर सहस्त्रार को जो सर्वोच्च मनस केंद्र है। उस क्षण तुम कल्पना करो। और वह भर जाएगा। कल्पना करो कि वह प्राण तुम्हारे सहस्त्रार से प्रकाश की तरह बरसेगा। और वह बरसने लगेगा। और उस प्रकाश की वर्षा में तुम ताजा हो जाओगे। तुम्हारा पुनर्जन्म हो जाएगा। तुम बिलकुल नए हो जाओगे। आंतरिक जन्म का यही अर्थ है।

यहां दो बातें है। एक, तीसरी आँख पर कैंद्रित होकर तुम्हारी कल्पना पुंसत्व को, शुद्धि को उपलब्ध हो जाती है। यही कारण है कि शुद्धता पर, पवित्रता पर इतना बल दिया गया है। इस साधना में उतरने के पहले शुद्ध बने।

तंत्र के लिए शुद्धि कोई नैतिक धारणा नहीं हे। शुद्धि इसलिए अर्थपूर्ण है कि यदि तुम तीसरी आँख पर स्थिर हुए और तुम्हारा मन अशुद्ध रहा, तो तुम्हारी कल्पना खतरनाक सिद्ध हो सकती है—तुम्हारे लिए भी और दूसरें के लिए भी। यदि तुम किसी की हत्या करने की सोच रहे हो, उसका महज विचार भी मन में है। तो सिर्फ कल्पना से उस आदमी की मृत्यु घटित हो जाएगी। यही कारण है कि शुद्धता पर इतना जोर दिया जाता है।

पाइथागोरस को विशेष उपवास और प्राणायाम से गुजरने को कहा गया; क्योंकि यहां बहुत खतरनाक भूमि से यात्री गुजरता है। जहां भी शक्ति है, वहां खतरा है। यदि मन अशुद्ध है तो शक्ति मिलने पर आपके अशुद्ध विचार शक्ति पर हावी हो जाएंगे।

कई बार तुमने हत्या करने की सोची है; लेकिन भाग्य से वहां कल्पना न काम नहीं किया। यदि वह काम करे, यदि वह तुरंत वास्तविक हो जाए तो वह दूसरों के लिए ही नहीं तुम्हारे लिए भी खतरनाक सिद्ध हो सकती है। क्योंकि कितनी ही बार तुमने आत्म हत्या की सोची है। अगर मन तीसरी आँख पर कैंद्रित है तो आत्महत्या का विचार भी आत्महत्या बन जाएगा। तुमको विचार बदलने का समय भी नहीं मिलेगा। वह तुरंत घटित हो जाएगी।

तुमने किसी को सम्मोहित होते देखा है। जब कोई सम्मोहित किया जाता है, तब सम्मोहन विद जो भी कहता है, सम्मोहित व्यक्ति तुरंत उसका पालन करता है। आदेश कितना ही बेहूदा हो तर्कहीन हो असंभव ही क्या न हो। सम्मोहित व्यक्ति उसका पालन करता है। क्या होता है?

यह पांचवी विधि सब सम्मोह न की जड़ में है। जब कोई सम्मोहित किया जाता है, तब उसे एक विशेष बिंदू पर, किसी प्रकाश पर या दीवार पर लगे किसी चिन्ह पर या किसी भी चीज पर या सम्मोहक की आँख पर ही अपनी दृष्टि कैंद्रित करने को कहा जाता है। और जब तुम किसी खास बिंदू पर दृष्टि कैंद्रित करते हो, उसके तीन मिनट के अंदर तुम्हारा आंतरिक अवधान तीसरी आँख की और बहने लगता है। तुम्हारे चेहरे की मुद्रा बदलने लगती है। और सम्मोहन विद जानता है कि कब तुम्हारा चेहरा बदलने लगा। एकाएक चेहरे से सारी शक्ति गायब हो जाती है। वह मृत वत हो जाता है। मानों गहरी तंद्रा में पड़े हो। जब ऐसा होता है, सम्मोहक को उसका पता हो जाता है। उसका अर्थ हुआ कि तीसरी आँख अवधान को पी रही है। आपका चेहरा पीला पड़ गया है। पूरी ऊर्जा त्रिनेत्र कैंद्र की और बह रही है।

अब सम्मोहित करने वाला तुरंत जान जाता है। कि जो भी कहा जाएगा। वह घटित होगा। वह कहता है कि अब तुम गहरी नींद में जा रहे हो, और तुम तुरंत सो जाते हो। वह कहता है कि अब तुम बेहोश हो रहे हो और तुम बेहोश हो जाते हो। अब कुछ भी किया जा सकता है। अब अगर वह कहे कि तुम नेपोलियन या हिटलर हो गए हो तो तुम हो जाओगे। तुम्हारी मुद्रा बदल जायेगी। आदेश पाकर तुम्हारा अचेतन उसका वास्तविक बना देता है। अगर तुम किसी रोग से पीडित हो तो रोग को हटने का आदेश देगा, और मजेदार बात रोग दूर हो जायेगा। या कोई नया रोग भी पैदा किया जा सकता है।

यही नहीं, सड़क पर से एक कंकड़ उठा कर अगर सम्मोहन विद तुम्हारी हथेली पर रख दे और कहे कि यह अंगारा है तो तुम तेज गर्मी महसूस करोगे और तुम्हारी हथेली जल जाएगी—मानसिक तल पर नहीं, वास्तव में ही। वास्तव में तुम्हारी चमड़ी जब लायेगी और तुम्हें जलन महसूस होगी। क्या होता है? अंगारा नहीं, बस एक मामूली कंकड़ है वह भी ठंडा, फिर भी जलना ही नहीं हाथ पर फफोले तक उगा देता है।

तुम तीसरी आँख पर केंद्रित हो और सम्मोहन विद तुमको सुझाव देता है और वह सुझाव वास्तविक हो जाता है। यदि सम्मोहन विद कहे कि अब तुम मर गए, तो तुम तुरंत मर जाओगे। तुम्हारी ह्रदय गति रूक जायेगी। रूक ही जाएगी।

यह होता है त्रिनेत्र के चलते। त्रिनेत्र के लिए कल्पना और वास्तविकता दो चीजें नहीं है। कल्पना ही तथ्य है। कल्पना करें और वैसा ही जाएगा। स्वप्न और यथार्थ में फासला नहीं है। स्वप्न देखो और सच हो जायेगा।

यही कारण है कि शंकर ने कहा कि यह संसार परमात्मा के स्वप्न के सिवाय और कुछ नहीं है—यह परमात्मा की माया है। यह इसलिए कि परमात्मा तीसरी आँख में बसता है—सदा, सनातन से। इसलिए परमात्मा जी स्वप्न देखता है वह सच हो जाता है। और यदि तुम भी तीसरी आँख में थिर हो जाओ तो तुम्हारे स्वप्न भी सच होने लगेंगे।

सारिपुत्र बुद्ध के पास आया। उसने गहरा धान किया। तब बहुत चीजें घटित होने लगीं, बहुत तरह के दृश्य उसे दिखाई देने लगे। जो भी ध्यान की गहराई में जाता है। उसे यह सब दिखाई देने लगता है। स्वर्ग और नरक; देवता और दानव, सब उसे दिखाई देने लगे। और वह ऐसे वास्तविक थे कि सारिपुत्र बुद्ध के पास दौड़ा आया। और बोला कि ऐसे-ऐसे दृश्य दिखाई देते है। बुद्ध ने कहा, वे कुछ नहीं है। मात्र स्वप्न है।

लेकिन सारिपुत्र ने कहा कि वे इतने वास्तविक है कि मैं कैसे उन्हें स्वप्न कहूं? जब एक फूल दिखाई पड़ता है, वह फूल किसी भी फूल से अधिक वास्तविक मालूम पड़ता है। उसमे सुगंध है। उसे मैं छू सकता हूं। अभी जो मैं आपको देखता हूं वह उतना वास्तविक नहीं है; आप जितना वास्तविक मेरे सामने है, वह फूल उससे अधिक वास्तविक है। इसलिए कैसे मैं भेद करूं कि कौन सच है, और कौन स्वप्न।

बुद्ध ने कहा, अब चूंकि तुम तीसरी आँख में केंद्रित हो, इसलिए स्वप्न और यथार्थ एक हो गए है। जो भी स्वप्न तुम देखोगें सच हो जाएगा।

और उससे ठीक उलटा भी घटित हो सकता है। जो त्रिनेत्र पर थिर हो गया, उसके लिए स्वप्न यथार्थ हो जाएगा। और यथार्थ स्वप्न हो जाएगा। क्योंकि जब तुम्हारा स्वप्न सच हो जाता है तब तुम जानते हो कि स्वप्न और यथार्थ में बुनियादी भेद नहीं है।

इसलिए जब शंकर कहते है कि सब संसार माया है, परमात्मा का स्वप्न है, तब यह कोई सैद्धांतिक प्रस्तावना या कोई मीमांसक वक्तव्य नहीं है। यह उस व्यक्ति का आंतरिक अनुभव है जो शिवनेत्र में थिर हो गया है।

अंत: जब तुम तीसरे नेत्र पर केंद्रित हो जाओ तब कल्पना करो कि सहस्त्रार से प्राण बरस रहा है; जैसे कि तुम किसी वृक्ष के नीचे बैठे हो और फूल बरस रहे है, या तुम आकाश के नीचे हो और कोई बदली बरसने लगी। या सुबह तुम बैठे हो और सूरज उग रहा है और उसकी किरणें बरसने लगी है। कल्पना करो और तुरंत तुम्हारे सहस्त्रार से प्रकाश की वर्षा होने लगेगी। यह वर्षा मनुष्य को पुनर्निर्मित करती है, उसका नया जन्म दे जाती है। तब उसका पुनर्जन्म हो जाता है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-5

तंत्र-सूत्र—विधि-06

सांसरिक कामों में लगे हुए, अवधान को दो श्वासों के बीच टिकाओ। इस अभ्यास से थोड़े ही दिन में नया जन्म होगा।

विधि-6 विज्ञान भैरव तंत्र (तंत्र-सूत्र—भाग-1)osho

''सांसरिक कामों में लगे हुए, अवधान को दो श्वासों के बीच टिकाओ…।''

श्वासों को भूल जाओं और उनके बीच में अवधान को लगाओ। एक श्वास भी तर आती है। इसके पहले कि वह लौट जाए, उसे बाहर छोड़ा जाए, वहां एक अंतराल होता है।

''सांसारिक कामों में लगे हुए।'' यह छठी विधि निरंतर करने की है। इसलिए कहा गया है, ''सांसारिक कामों में लगे हुए….'' जो भी तुम कर रहे हो, उसमे अवधान को दो श्वासों के अंतराल में थिर रखो। लेकिन काम-काज में लगे हुए ही इसे साधना है। ठीक ऐसी ही एक दूसरी विधि की चर्चा हम कर चुके है। अब फर्क इतना है कि इसे सांसारिक कामों में लगे हुए ही करना है। उससे अलग होकर इसे मत करो। यह साधना ही तब करो जब तुम कुछ और काम कर रहे हो।

तुम भोजन कर रहे हो, भोजन करते जाओ और अंतराल पर अवधान रखो। तुम चल रहे हो, चलते जाओ और अवधान को अंतराल पर टिकाओ। तुम सोने जा रहे हो, लेटो और नींद को आने दो। लेकिन तुम अंतराल के प्रति सजग रहो।

पर काम-काज में क्यों? क्योंकि काम-काज मन को डांवाडोल करता है। काम-काज में तुम्हारे अवधान को बार-बार भुलाना पड़ता है। तो डांवाडोल न हों; अंतराल में थिर रहें। काम-काज भी न रूके, चलता रहे। तब तुम्हारे अस्तित्व के दो तल हो जाएंगे। करना ओर होना। अस्तित्व के दो तल ओ गए; एक करने का जगत और दूसरा होने का जगत। एक परिधि है और दूसरा केंद्र। परिधि पर काम करते रहो, रूको नहीं; लेकिन केंद्र पर भी सावधानी से काम करते रहो। क्या होगा?

तुम्हारा काम-काज तब अभिनय हो जाएगा। मानों तुम कोई पार्ट अदा कर रहे हो। उदाहरण के लिए, तुम किसी नाटक म पार्ट कर रहे हो। तुम राम बने हो या क्राइस्ट बने हो। यद्यपि तुम राम या क्राइस्ट का अभिनय करते हो, तो भी तुम स्वयं बने रहते हो। केंद्र पर तुम जानते हो कि तुम कौन हो और परिधि पर तुम राम या क्राइस्ट का या किसी का पार्ट अदा करते हो। तुम जानते हो कि तुम राम नहीं हो, राम का अभिनय भर कर रहे हो। तुम कौन हो तुमको मालूम है। तुम्हारा अवधान तुममें केंद्रिय है। और तुम्हारा काम परिधि पर जारी है।

यदि इस विधि का अभ्यास हो तो पूरा जीवन एक लंबा नाटक बन जाएगा। तुम एक अभिनेता होगें। अभिनय भी करोगे और सदा अंतराल में केंद्रित रहोगे। जब तुम अंतराल को भूल जाओगे, तब तुम अभिनेता नहीं रहोगे, तब तुम कर्ता हो जाओगे। तब वह नाटक नहीं रहेगा। उसे तुम भूल से जीवन समझ लोगे।

यही हम सबने किया है। हर आदमी सोचता है कि वह जीवन जी रहा है। यह जीवन नहीं है। यह तो एक रोल है, एक पार्ट है, जो समाज ने, परिस्थितियों ने, संस्कृति ने, देश की परंपरा ने तुमको थमा दिया है। और तुम अभिनय कर रहे हो। और तुम इस अभिनय के साथ तादात्म्य भी कर बैठे हो। उसी तादात्म्य को तोड़ने के लिए यह विधि है।

कृष्ण के अनेक नाम है, कृष्ण सबसे कुशल अभिनेताओं में से एक है। वे सदा अपने में थिर है और खेल कर रहे है। लीला कर रहे है, बिलकुल गैर-गंभीर है। गंभीरता तादात्म्य से पैदा होती है।

यदि नाटक में तुम सच ही राम हो जाओ तो अवश्य समस्याएं खड़ी होगी। जब-जब सीता की चोरी होगी, तो तुमको दिल का दौरा पड़ सकता है। और पूरा नाटक बंद हो जाना भी निश्चित है। लेकिन अगर तुम बस अभिनय कर रहे हो तो सीता की चोरी से तुमको कुछ भी नहीं होता है। तुम अपने घर लौटोगे। और चैन से सो जाओगे। सपने में भी ख्याल न आएगा। की सीता की चोरी हुई।

जब सचमुच सीता चोरी गई थी तब राम स्वयं रो रहे थे। चीख रहे थे और वृक्षों से पूछ रहे थे कि सीता कहां है? कौन उसे ले गया? लेकिन यह समझने जैसी बात है। अगर राम सच में रो रहे है और पेड़ों से पूछ रहे है, तब तो वे तादाम्तयता कर बैठे , तब वे राम न रहे, ईश्वर न रहे, अवतार न रहे। यह स्मरण रखना चाहिए। कि राम के लिए उनका वास्तविक जीवन भी अभिनय ही था। जैसे दूसरे अभिनेताओं को तुमने राम का अभिनय करते देखा है, वैसे ही राम भी अभिनय कर रहे थे—नि:संदेह एक बड़े रंग मंच पर।

इस संबंध में भारत के पास एक खुबसूरत कथा है। मेरी दृष्टि में यह कथा अद्भुत है। संसार के किसी भी भाग में ऐसी कथा नहीं मिलेगी। कहते है कि वाल्मीकि ने राम के जन्म से पहले ही रामायण लिख दी। राम को केवल उसका अनुगमन करना था। इसलिए वास्तव में राम का पहला कृत्य भी अभिनय ही था। उनके जन्म के पहले ही कथा लिख दी गई थी, इसलिए उन्हें केवल उसका अनुगमन करना पडा। वे और क्या कर सकते थे। वाल्मीकि जैसा व्यक्ति जब कथा लिखता है, तब राम को अनुगमन करना होगा। इसलिए एक तरह से सब कुछ नियम था। सीता की चोरी होनी थी। और युद्ध का लड़ा जाना था।

यदि यह तुम समझ सको तो भाग्य के सिद्धांत को भी समझ सकते हो। इसका बड़ा गहरा अर्थ है। और अर्थ यह है कि यदि तुम समझ जाते हो कि तुम्हारे लिए यह सब कुछ नियम है तो जीवन नाटक हो जाता है। अब यदि तुमको राम का अभिनय करना है। तो तुम कैसे बदल सकते हो। सब कुछ नियत है, यहां तक कि तुम्हारा संवाद भी, डायलाग भी। अगर तुम सीता से कुछ कहते हो तो वह किसी नीयत वचन का दोहराना भर है।

यदि जीवन नियत है, तो तुम उसे बदल नहीं सकते। उदाहरण के लिए, एक विशेष दिन को तुम्हारी मृत्यु होने वाली है। यह नियत है। और तुम जब मरोगे तब रो रहे होगें; यह भी निश्चित है। और फलां-फलां लोग तुम्हारे पास होंगे। यह भी तय है।

और यदि सब कुछ नीयत है, तय है, तब सब कुछ नाटक हो जाता है। यदि सब कुछ निश्चित है तो उसका अर्थ हुआ कि तुम केवल उसे अंजाम देने वाले हो। तुमको उसे जीना नहीं है। उसका अभिनय करना है।

यह विधि, छठी विधि , तुमको एक साइकोड्रामा, एक खेल बना देती है। तुम दो श्वासों के अंतराल में थिर हो और जीवन परिधि पर चल रहा है। यदि तुम्हारा अवधान केंद्र पर है, तो तुम्हारा अवधान परिधि पर नहीं है। परिधि पर जो है वह उपावधान है, वह कहीं तुम्हारे अवधान के पास घटित होता है। तुम उसे अनुभव कर सकते हो, उसे जान सकते हो, पर वह महत्वपूर्ण नहीं है। यह ऐसा है जैसे तुमको नहीं घटित हो रहा है।

मैं इसे दोहराता हूं, यदि तुम इस छठी विधि की साधना करो तो तुम्हारा समूचा जीवन ऐसा हो जाएगा जैसे वह तुमको न घटित होकर किसी दूसरे व्यक्ति को घटित हो रहा है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-5

तंत्र-सूत्र—विधि-07

सातवीं श्वास विधि:

shira तंत्र-सूत्र—विधि-07 –ओशो

ललाट के मध्य में सूक्ष्म श्वास (प्राण) को टिकाओ। जब वह सोने के क्षण में हृदय तक पहुंचेगा तब स्वप्न और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।
तुम अधिकारिक गहरी पर्तों में प्रवेश कर रहे हो।

''ललाट के मध्य में सूक्ष्म श्वास (प्राण) को टिकाओ।''

अगर तुम तीसरी आँख को जान गए हो तो तुम ललाट के मध्य में स्थिर सूक्ष्म श्वास को, अदृश्य प्राण को जान गए, और तुम यह भी जान गए कि वह उर्जा, वह प्रकाश बरसता है।

''जब वह सोन के क्षण में ह्रदय तक पहुंचेगा—जब वह वर्षा तुम्हारे ह्रदय तक पहुँचेगी—''तब स्वप्न और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।''
इस विधि को तीन हिस्सों में लो। एक, श्वास के भीतर जो प्राण है, जो उसका सूक्ष्म, अदृष्य, अपार्थिव अंश है, उसे तुमको अनुभव करना होगा। यह तब होता है, जब तुम भृकुटियों के बीच अवधान को थिर रखते हो। तब यह आसानी से घटित होता है। अगर तुम अवधान को अंतराल में टिकाते हो, तो भी घटित होता है, मगर उतनी आसानी से नहीं। यदि तुम नाभि केंद्र के प्रति सजग हो, जहां श्वास आती है। और छूकर चली जाती है। तो भी यह घटित होता है, पर कम आसानी से। उस सूक्ष्म प्राण को जानने का सबसे सुगम मार्ग है, तीसरी आँख में थिर होना। वैसे तुम जहां भी केंद्रित होगें। वह घटित होगा। तुम प्राण को प्रभावित होते अनुभव करोगे।

यदि तुम प्राण को अपने भीतर प्रवाहित होता अनुभव कर सको तो तुम यह भी जान सकते हो कि कब तुम्हारी मृत्यु होगी। यदि तुम सूक्ष्म श्वास को, प्राण को महसूस करने लगे। तो मरने के छह महीने पहले से तुम अपनी आसन्न मृत्यु को जानने लगते हो। कैसे इतने संत अपनी मृत्यु की तिथि बना देते है? यह आसान है। क्योंकि यदि तुम प्राण के प्रवाह को जानते हो तो जब उसकी गति उलट जाएगी। तब उसको भी तुम जान लोगे। मृत्यु के छह महीने पहले प्रक्रिया उलट जाती है। प्राण तुम्हारी बाहर जाने लगता है। तब श्वास इसे भीतर नहीं ले जाती, बल्कि उलटे बाहर ले जाने लगती है—वह श्वास।

तुम इसे जान पाते हो, क्योंकि तुम उसके अदृश्य भाग को नहीं देखते, केवल वाहन को ही देखते हो। और वाहन तो एक ही रहेगा। अभी श्वास प्राण को भीतर ले जाती है और वहां छोड़ देती है। फिर वाहन बाहर खाली वापस जाता है। और प्राण से पुन: भरकर भीतर जाता है। इसलिए याद रखो कि भीतर आने वाली श्वास और बाहर जाने वाली श्वास, दोनों एक नहीं है। वाहन के रूप में तो पूरक श्वास और रेचक श्वास एक ही है, लेकिन जहां पूरक प्राण से भरा होता है। वहीं रेचक उससे रिक्त रहता है। तुमने प्राण को पी लिया और श्वास खाली हो गई।

जब तुम मृत्यु के करीब होते हो, तब उलटी प्रक्रिया चालू होती है। भीतर आने वाली श्वास प्राण विहीन आती है। रिक्त आती है। क्योंकि तुम्हारा शरीर अस्तित्व से प्राण को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाता है। तुम मरने वाले हो, तुम्हारी जरूरत न रही। पूरी प्रक्रिया उलट जाती है। अब जब श्वास बाहर जाती है, जब प्राण को साथ लिए बाहर जाती है।

इसलिए जिसने सूक्ष्म प्राण को जान लिए वह अपनी मृत्यु का दिन भी तुरंत जान सकता है। छह महीने पहले प्रक्रिया उलटी हो जाती है।

यह सूत्र बहुत-बहुत महत्वपूर्ण है।

''ललाट के मध्य में सूक्ष्म श्वास (प्राण) को टिकाओ। जब सोने के क्षण में वह ह्रदय तक पहुंचेगा। तब स्वप्न और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।''

जब तुम नींद में उतर रहे हो, तभी इस विधि को साधना है, अन्य समय में नहीं। ठीक सोने का समय इस विधि के अभ्यास के लिए उपयुक्त समय है।

तुम नींद में उतर रहे हो, धीरे-धीर नींद तुम पर हावी हो रही है। कुछ ही क्षणों में भीतर तुम्हारी चेतना लुप्त होगी। तुम अचेत हो जाओगे। उस क्षण के आने के पहले तुम अपनी श्वास और उसके सूक्ष्म अंश प्राण के प्रति सजग हो जाओ। और उसे ह्रदय तक जाते हुए अनुभव करो। अनुभव करते जाओ कि वह ह्रदय तक आ रहा है। ह्रदय तक आ रहा है। प्राण ह्रदय से होकर तुम्हारे शरीर में प्रवेश करता है, इसलिए यह अनुभव करते ही जाओ। कि प्राण ह्रदय तक आ रहा है। और इस निरंतर अनुभव के बीच ही नींद को आने दो। तुम अनुभव करते जाओ और नींद को आने दो; नींद को तुमको अपने में समेट लेने दो।

यदि यह संभव हो जाए कि तुम अदृश्य प्राण को हृदय तक जाते देखो और नींद को भी, तो तुम अपने सपनों के प्रति भी सजग हो जाओगे। तब तुमको बोध रहेगा कि तुम सपना देखते हो तो तुम समझते हो कि यह यथार्थ ही है। वह भी तीसरी आँख के कारण ही संभव होता है। क्या तुमने किसी को नींद में देखा है। उसकी आंखे ऊपर चली जाती है, और तीसरी आँख में स्थिर हो जाती है। यदि नहीं देखा तो देखो।

तुम्हारा बच्चा सोया है, उसकी आंखे खोलकर देखो कि उसकी आंखे कहां है। उसकी आँख की पुतलियाँ ऊपर को चढ़ी है। और त्रिनेत्र पर केंद्रित है। मैं कहता हूं कि बच्चों को देखो, सयानों को नहीं। सयाने भरोसे योग्य नहीं है। क्योंकि उनकी नींद गहरी नहीं है। वे सोचते भर है कि सोये है। बच्चों को देखो। उनकी आंखें ऊपर को चढ़ जाती है।

इसी तीसरी आँख में थिरता के कारण तुम अपने सपनों को सच मानते हो। तुम यह नहीं समझ सकते की वे सपने है। वह तुम तब जानोंगे, जब सुबह जागोगे। तब तुम जानोंगे कि यह स्वप्न है। यदि समझ जाओ तो दो तल हो गए—स्वप्न है और तुम सजग हो, जागरूक हो। जो नींद में स्वप्न के प्रति जाग सके, उसके लिए यह सूत्र चमत्कारिक है।

यह सूत्र कहता है: ''स्वप्न पर और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।''

यदि तुम स्वप्न के प्रति जागरूक हो जाओ तो तुम दो काम कर सकते हो। एक कि तुम स्वप्न पैदा कर सकते हो। आमतौर से तुम स्वप्न नहीं पैदा कर सकते। आदमी कितना नपुंसक है। तुम स्वप्न भी नहीं पैदा कर सकते। अगर तुम कोई खास स्वप्न देखना चाहो तो नहीं देख सकते; यह तुम्हारे हाथ में नहीं है। मनुष्य कितना शक्तिहीन है। स्वप्न भी उससे नहीं निर्मित किए जा सकते। तुम स्वप्नों के शिकार भर हो। उनके स्त्रष्टा नहीं। स्वप्न तुम में घटित होता है। तुम कुछ नहीं कर सकते हो। न तुम उसे रोक सकते हो, न उसे पैदा कर सकते हो।

लेकिन अगर तुम यह देखते हुए नींद में उतरो कि हृदय प्राण से भर रहा है। निरंतर हर श्वास में प्राण से स्पर्शित हो रहा है तो तुम अपने स्वप्नों के मालिक हो जाओगे। और यह मलकियत बहुत अनूठी है, दुर्लभ है। तब तुम जो भी स्वप्न देखना चाहते हो, तुम वह स्वप्न देख सकते हो। और सोत समय कहो कि मैं फलां स्वप्न देखना चाहता हूं और वह स्वप्न कभी तुम्हारे मन में प्रवेश नहीं कर सकेगा।

लेकिन अपने स्वप्नों के मालिक बनने का क्या प्रयोजन है। क्या यह व्यर्थ नहीं है? नहीं, यह व्यर्थ नहीं है। एक बार तुम स्वप्न के मालिक हो गए तो दुबारा तुम कभी स्वप्न नहीं देखोगें। वह व्यर्थ हो गया। जरूरत नहीं रही। जैसे ही तुम अपने स्वप्नों के मालिक होते हो, स्वप्न बंद हो जाते है। उनकी जरूरत नहीं रहती। और जब स्वप्न बंद हो जाते है, तब तुम्हारी नींद का गुण धर्म ही और होता है। वह गुणधर्म वही है, जो मृत्यु का है।

मृत्यु गहन नींद है। अगर तुम्हारी नींद मृत्यु की तरह गहरी हो जाए तो उसका अर्थ है कि सपने विदा हो गए। सपने नींद को उथला करते है। सपनों के चलते तुम सतह पर ही घूमते रहते हो। सपनों में उलझे रहने के कारण तुम्हारी नींद उथली हो जाती है। और जब सपने नहीं रहते, तब तुम नींद के सागर में उतर जाते हो। उसकी गहराई छू लेते है। वही मृत्यु है।

इसलिए भारत न सदा कहा है कि नींद छोटी मृत्यु है। और मृत्यु लंबी नींद है। गुणात्मक रूप से दोनों समान है। नींद दिन-दिन की मृत्यु है, मृत्यु जीवन-जीवन की नींद है। प्रतिदिन तुम थक जाते हो, तुम सो जाते हो, और दूसरी सुबह तुम फिर अपनी शक्ति और अपनी जीवंतता को वापस पा लेते हो। तुम मानो फिर से जन्म लेते हो। वैसे ही सत्तर या अस्सी वर्ष के जीवन के बाद तुम पूरी तरह थक जाते हो। अब छोटी अविधि की मृत्यु से काम नहीं चलेगा, अब तुमको बड़ी मृत्यु की जरूरत है। उस बड़ी मृत्यु या नींद के बाद तुम बिलकुल नए शरीर के साथ पुनर्जन्म लेते हो।

और एक बार यदि तुम स्वप्न-शुन्य नींद को जान जाओ और उसमे बोध पूर्वक रहो तो फिर मृत्यु का भय जाता रहता है। कोई कभी नहीं मर सकता। मृत्यु असंभव है, अभी एक दिन पहले मैं कहता था कि केवल मृत्यु निश्चित है। और अब कहता हूं कि मृत्यु असंभव है। कोई कभी नहीं मरा है। कोई कभी मर नहीं सकता। संसार में यदि कुछ असंभव है तो वह मृत्यु है। क्योंकि अस्तित्व जीवन है। तुम फिर-फिर जन्मते हो। लेकिन नींद ऐसी गहरी है कि पुरानी पहचान भूल जाते हो। तुम्हारे मन से स्मृतियां पोंछ दी जाती है।

इसे इस तरह सोचो। मान लो कि आज तुम सोने जा रहे हो, और कोई ऐसा यंत्र बन गया है—शीध्र ही बनने वाला है—जो कि जैसे टेपरिकार्डर के फीते से आवाज पोंछ दी जाती है, वैसे ही मन से स्मृति को पोंछ डालता है। क्योंकि स्मृति भी एक गहरी रिकार्डिंग है। देर-अबेर हम ऐसा यंत्र निकाल लेंगे। जो तुम्हारे फिर में लगा दिया जाएगा। और जो तुम्हारे दिमाग को पोंछकर बिलकुल साफ कर देगा। तो कल सुबह तुम वही आदमी नहीं रहोगे जो सोने गया था। क्योंकि तुमको याद नहीं रहेगा कि कौन सोने गया था। तब तुम्हारी नींद मृत्यु जैसी हो जाएगी। एक गैप आ जाएगा। तुमको याद नहीं रहेगा। कि कौन सोया था। यही चीज स्वाभाविक ढंग से घट रही है। जब तुम मरते हो ओर फिर जन्म लेते हो तब तुमको याद नहीं रहता है कि कौन मरा। तुम फिर से शुरू करते हो।

इस विधि के द्वारा पहले तो तुम स्वप्नों के मालिक हो जाओगे। उसका अर्थ हुआ कि सपने आना बंद हो जाएंगे। या यदि तुम खुद सपने देखना चाहोगे तो सपना देख भी सकते हो। लेकिन तब वह ऐच्छिक सपना होगा। वह अनिवार्य नहीं रहेगा। वह तुम पर लादा नहीं जाएगा। तुम उसके शिकार नहीं होंगे। और तब तुम्हारी नींद का गुणधर्म ठीक मृत्यु जैसा हो जाएगा। तब तुम जानोगे कि मृत्यु भी नींद है।

इसलिए यह सूत्र कहता है: ‘’स्वप्न और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।‘’

तब तुम जानोंगे कि मृत्यु एक लंबी नींद है—और सहयोगी है, और सुंदर है। क्योंकि वह तुमको नव जीवन देती है। वह तुमको सब कुछ नया देती है, फिर तो मृत्यु भी समाप्त हो जाती है। स्वप्न के शेष होते ही मृत्यु समाप्त हो जाती है।

मृत्यु पर नियंत्रण पाने, अधिकार पाने का दूसरा अर्थ भी है। अगर तुम समझ लो कि मृत्यु नींद है तो तुम उसको दिशा दे सकते हो। अगर तुम अपने सपनों को दिशा दे सकते हो। तो मृत्यु को भी दे सकते हो। तब तुम चुनाव कर सकते हो, कि कहां पैदा हो? कब पैदा हो, किससे पैदा हो, और किस रूप में पैदा हो, तब तुम अपने जीवन के मालिक होते हो।

बुद्ध की मृत्यु हुई, मैं उनके अंतिम जन्म के पूर्व के जन्म की चर्चा कर रहा हूं। जब वे बुद्ध नहीं थे। मरने के पूर्व उन्होंने कहा: ‘’मैं अमुक मां बाप से पैदा होऊंगा, ऐसी मेरी मां होगी, ऐसे मेरे पिता होंगे, और मेरी मां मेरे जन्म के बाद ही मर जायेगी। और जब मैं जनमुगां तो मेरी मां ऐसे-ऐसे सपने देखेगी। न तुमको सिर्फ अपने सपनों पर अधिकार होगा दूसरे के स्वप्नों पर भी अधिकार हो जायेगा। सो बुद्ध ने उदाहरण के तौर पर बताया कि जब मैं मां के पेट में होऊंगा, तब मेरी मां ये-ये स्वप्न देखेगी। और जब कोई इस क्रम से इन स्वप्नों को देखे, तब तुम समझ जाना की मैं जन्म लेने वाला हूं।

और ऐसा ही हुआ। बुद्ध की माता ने उसी क्रम से सपने देखे। वह क्रम सारे भारत को पता था। विशेषकर उनको जो धर्म में, जीवन की गहन चीजों में और उसके गुह्म पथों में उत्सुक थे। पता था, इसलिए उन स्वप्नों की व्याख्या हुई। स्वप्नों की व्याख्या करने वाला पहला आदमी फ्रायड नहीं था। और न उसकी व्याख्या में गहराई थी। पला वह केवल पश्चिम के लिए था।

तो बुद्ध के पिता ने स्वप्नों के व्याख्याकारों को, उस जमाने के फ्रायडों और जुंगों को तुरंत बुलवाया और उनसे पूछा, इस क्रम का क्या अर्थ है। मुझे डर लगता है, ये सपने अद्भुत है। और एक ही क्रम से आ रहे है, एक ही तरह के सपने, बारी-बारी से आ रहे है। मानों कोई एक ही फिल्म को बार-बार देखता हो। क्या हो रहा है।

और व्याख्याकारों ने बताया कि आप एक महान आत्मा के पिता होने जा रहे है। वह बुद्ध होने वाला है। लेकिन आपकी पत्नी को संकट है। क्योंकि जब ऐसे बुद्ध जन्म लेते है, तब मां का जीना कठिन हो जाता है। बुद्ध के पिता ने कारण पूछा। व्याख्याकारों ने कहा कि हम यह नहीं बता सकते। लेकिन जो आत्मा पैदा होने वाली है, उसका ही वक्तव्य है कि उसके जन्म लेने पर उसकी मां की मृत्यु हो जायेगी।

बाद में बुद्ध से पूछा गया कि आपकी माता की मृत्यु तुरंत क्यो हुई? उन्होंने कहा कि एक बुद्ध को जन्म देना इतनी बड़ी घटना है कि उसके बाद और सब कुछ व्यर्थ हो जाता है। इसलिए मां जीवित नहीं रह सकती। उसे नया जीवन शुरू करने के लिए फिर से जन्म लेना होगा। एक बुद्ध को जन्म देना परम अनुभव है। ऐसा शिखर है कि मां उसके बाद नहीं बची रह सकती। इसलिए मां की मृत्यु हुई।

बुद्ध ने अपने पिछले जन्म में कहा था कि मैं उस समय जन्म लूंगा, जब मेरी मां एक ताड़ वृक्ष के नीचे खड़ी होगी। और वही हुआ। बुद्ध का जब जन्म हुआ तब उनका मां ताड़ वृक्ष के नीचे खड़ी थी। और बुद्ध ने यह भी कहां की। जन्म लेने के बाद में तुरंत सात कदम चलूंगा। यह-यह पहचान होगी। जो बताए देता हूं, ताकि तुम जान सको कि बुद्ध का जन्म हो गया। और बुद्ध ने सब कुछ का इंगित किया।

और यह केवल बुद्ध के लिए ही सही नहीं है। यही जीसस के लिए सही है, यही महावीर के लिए सही है। यही और भी कई अन्यों के लिए सही है। प्रत्येक जैन तीर्थंकर ने अपने पिछले जन्म में भविष्यवाणी की थी कि उनका जन्म किस तरह होगा। उन्होंने भी स्वप्नों के क्रम बताए थे। उन्होंने भी प्रतीक बताए थे, और कहा था कि किस तरह सब कुछ घटित होने वाला है।

तुम दिशा दे सकते हो, एक बार तुम अपने स्वप्नों को दिशा देने लगो तो सब कुछ को दिशा दे सकते हो। क्योंकि यह संसार स्वप्नों का ही बना हुआ है। और स्वप्नों का ही यह जीवन बना है। इसलिए जब तुम्हारा अधिकार सपने पर हुआ तब सब कुछ पर हो गया।

यह सूत्र कहता है: ''स्वयं मृत्यु पर।''

तब कोई व्यक्ति अपने को एक विशेष तरह का जन्म भी दे सकता है। विशेष तरह का जीवन भी दे सकता है।

हम लोग तो शिकार है। हम नहीं जानते है कि क्यों जन्मते है, क्यों मरते है। कौन हमें चलाता है और क्यों? काई कारण नहीं दिखाई देता है। सब कुछ अराजकता, संयोग जैसा है। ऐसा इसलिए है कि हम मालिक नहीं है। एक बार मालिक हो जाएं तो फिर ऐसा नहीं रहेगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-5

तंत्र-सूत्र—विधि-08

आठवीं श्वास विधि:
आत्यंतिक भक्ति पूर्वक श्वास के दो संधि-स्थलों पर केंद्रित होकर ज्ञाता को जान लो।

Lord Shiva तंत्र-सूत्र–ओशो

इन विधियों के बीच जरा-जरा से है, तो भी तुम्हारे लिए वे भेद बहुत हो सकते है। एक अकेला शब्द बहुत फर्क पैदा करता है।

''आत्यंतिक भक्ति पूर्वक श्वास के दो संधि-स्थलों पर केंद्रित होकर…..।''

भीतर आने वाली श्वास को एक संधि स्थल है। जहां वह मुड़ती है। इन दो संधि-स्थलों—जिसकी चर्चा हम कर चुके है—के साथ यहां जरा सा भेद किया गया है। हालांकि यह भेद विधि में तो जरा सा ही है, लेकिन साधक के लिए बड़ा भेद हो सकता है। केवल एक शर्त जोड़ दी गई है—''आत्यंतिक भक्ति पूर्वक'', और पूरी विधि बदल गयी।

इसके प्रथम रूप में भक्ति का सवाल नहीं था। वह मात्र वैज्ञानिक विधि थी। तुम प्रयोग करो और वह काम करेगी। लेकिन लोग है जो ऐसी शुष्क वैज्ञानिक विधियों पर काम नहीं करेंगे। इसलिए जो हृदय की और झुके है। जो भक्ति के जगत के है, उनके लिए जरा सा भेद किया गया है: आत्यंतिक भक्ति पूर्वक श्वास के दो संधि-स्थलों पर केंद्रित होकर ज्ञाता को जान लो।''

अगर तुम वैज्ञानिक रुझान के नहीं हो, अगर तुम्हारा मन वैज्ञानिक नहीं है, तो तुम इस विधि को प्रयोग में लाओ।

आत्यंतिक भक्ति पूर्वक—प्रेम श्रद्धा के साथ—श्वास के दो संधि स्थलों पर केंद्रित होकर ज्ञाता को जान लो।''

यह कैसे संभव होगा।

भक्ति तो किसी के प्रति होती है। चाहे वे कृष्ण हों या क्राइस्ट। लेकिन तुम्हारे स्वयं के प्रति, श्वास के दो संधि-स्थलों के प्रति भक्ति कैसी होगी। यह तत्व तो गैर भक्ति वाला है। लेकिन व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर है।

तंत्र का कहना है कि शरीर मंदिर है। तुम्हारा शरीर परमात्मा का मंदिर है, उसका निवास स्थान है। इसलिए इसे मात्र अपना शरीर या एक वस्तु न मानो। यह पवित्र है, धार्मिक है। जब तुम एक श्वास भीतर ले रहे हो तब तुम ही श्वास नहीं ले रहे हो, तुम्हारे भीतर परमात्मा भी श्वास ले रहा है। तुम चलते फिरते हो—इसे इस तरह देखो—तुम नहीं, स्वयं परमात्मा तुममें चल रहा है। तब सब चीजें पूरी तरह भक्ति हो जाती है।

अनेक संतों के बारे में कहा जाता है कि वे अपने शरीर को प्रेम करते थे, वे उसके साथ ऐसा व्यवहार करते थे। मानो वे शरीर उनकी प्रेमिकाओं के रहे हों।

तुम भी अपने शरीर को यह व्यवहार दे सकते हो। उसके साथ यंत्रवत व्यवहार भी कर सकते हो। वह भी एक रूझान है, एक दृष्टि है। तुम इसे अपराधपूर्ण पाप भरा और गंदा भी मान सकते हो। और इसे चमत्कार भी समझ सकते हो, परमात्मा का घर भी समझ सकते है, यह तुम पर निर्भर है।

यदि तुम अपने शरीर को मंदिर मान सको तो यह विधि तुम्हारे काम आ सकती है, ''आत्यंतिक भक्ति पूर्वक....।'' इसका प्रयोग करो। जब तुम भोजन कर रहे हो तब इसका प्रयोग करो। यह न सोचो कि तुम भोजन कर रहे हो, सोचो कि परमात्मा तुममें भोजन कर रहा है। और तब परिवर्तन को देखो। तुम वही चीज खा रहे हो। लेकिन तुरंत सब कुछ बदल जाता है। अब तुम परमात्मा को भोजन दे रहे हो। तुम स्नान कर रहे हो। कितना मामूली सा काम है। लेकिन दृष्टि बदल दो, अनुभव करो कि तुम अपने में परमात्मा को स्नान करा रहे हो, तब यह विधि आसान होगी।

''आत्यंतिक भक्ति पूर्वक श्वास के दो संधि स्थलों पर केंद्रित होकर ज्ञाता को जान लो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-5

तंत्र-सूत्र—विधि-09

नौवीं विधि:

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र
(तंत्र-सूत्र—भाग-1)
प्रवचन-5

मृतवत लेटे रहो। क्रोध में क्षुब्ध होकर उसमे ठहरे रहो। या पुतलियों को घुमाएं बिना एकटक घूरते रहो। या कुछ चुसो और चूसना बन जाओ।

''मृतवत लेटे रहो।''

प्रयोग करो कि तुम एकाएक मर गए हो। शरीर को छोड़ दो, क्योंकि तुम मर गए हो। बस कल्पना करो कि मृत हूं, मैं शरीर नहीं हूं, शरीर को नहीं हिला सकता। आँख भी नहीं हिला सकता। मैं चीख-चिल्ला भी नहीं सकता। न ही मैं रो सकता हूं, कुछ भी नहीं कर सकता। क्योंकि मैं मरा हुआ हूं। और तब देखो तुम्हें कैसा लगता है। लेकिन अपने को धोखा मत दो। तुम शरीर को थोड़ा हिला सकते हो, नहीं, हिलाओ नहीं। लेकिन मच्छर भी आ जाये, तो भी शरीर को मृत समझो। यह सबसे अधिक उपयोग की गई विधि है।

रमण महर्षि इसी विधि से ज्ञान को उपलब्ध हुए थे। लेकिन यह उनके इस जन्म की विधि नहीं थी। इस जन्म में तो अचानक सहज ही यह उन्हें घटित हो गई। लेकिन जरूर उन्होंने किसी पिछले जन्म में इसकी सतत सधाना की होगी। अन्यथा सहज कुछ भी घटित नहीं होता। प्रत्येक चीज का कार्य-कारण संबंध रहता है।

जो जब वे केवल चौदह या पंद्रह वर्ष के थे, एक रात अचानक रमण को लगा कि मैं मरने वाला हूं, उनके मन में यक बात बैठ गई कि मृत्यु आ गई है। वे अपना शरीर भी नहीं हिला सकते थे। उन्हें लगा कि मुझे लकवा मार गया है। फिर उन्हें अचानक घुटन महसूस हुई और वे जान गए कि उनकी हृदय-गति बंद होने वाली है। और वे चिल्ला भी नहीं सके, बोल भी नहीं सके कि मैं मर रहा हूं।

कभी-कभी किसी दुस्वप्न में ऐसा होता है कि जब तुम न चिल्ला पाते हो और न हिल पाते हो। जागने पर भी कुछ क्षणों तक तुम कुछ नहीं कर पाते हो। यही हुआ रमण को अपनी चेतना पर तो पूरा अधिकार था। पर अपने शरीर पर बिलकुल नहीं। वे जानते थे कि मैं हूं, चेतना हूं, सजग हूं, लेकिन मैं मरने वाला हूं। और यह निश्चय इतना घना था कि कोई विकल्प भी नहीं था। इसलिए उन्होंने सब प्रयत्न छोड़ दिया। उन्होंने आंखे बद कर ली और मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे।

धीरे-धीरे उनका शरीर सख्त हो गया। शरीर मर गया। लेकिन एक समस्या उठ खड़ी हुई। वे जान रहे थे कि शरीर नहीं हूं। लेकिन मैं तो हूं, वे जान रहे थे कि मैं जीवित हूं, और शरीर मर गया है। फिर वे उस स्थिति से वापस आए। सुबह में शरीर स्वास्थ था। लेकिन वही आदमी नहीं लौटा था जो मृत्यु के पूर्व था। क्योंकि उसने मृत्यु को जान लिया था।

अब रमण ने एक नए लोक को देख लिया था। चेतना के एक नए आयाम को जान लिया था। उन्होंने घर छोड़ दिया। उस मृत्यु के अनुभव ने उन्हें पूरी तरह बदल दिया। और वे इस यूग के बहुत थोड़े से प्रबुद्ध पुरूषों में हुए।

और यहीं विधि है जो रमण को सहज घटित हुई। लेकिन तुमको यह सहज ही नहीं घटित होने वाली। लेकिन प्रयोग करो तो किसी जीवन में यह सहज हो सकती है। प्रयोग करते हुए भी यह घटित हो सकती है। और यदि नहीं घटित हुई तो भी प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं जाता है। यह प्रयत्न तुम में रहेगा। तुम्हारे भीतर बीज बनकर रहेगा। कभी जब उपयुक्त समय होगा और वर्षा होगी, यह बीज अंकुरित हो जाएगा।

सब सहजता की यही कहानी है। किसी काल में बीज बो दिया गया था। लेकिन ठीक समय नहीं आया था। और वर्षा नहीं हुई थी। किसी दूसरे जन्म और जीवन में समय तैयार होता है, तुम अधिक प्रौढ़, अधिक अनुभवी होते हो। और संसार में उतने ही निराश होते हो, तब किसी विशेष स्थिति में वर्षा होती है और बीज फूट निकलता है।

''मृतवत लेटे रहो। क्रोध में क्षुब्ध होकर उसमें ठहरे रहो।''

निश्चय ही जब तुम मर रहे हो तो वह कोई सुख का क्षण नहीं होगा। वह आनंदपूर्ण नहीं हो सकता। जब तुम देखते हो कि तुम मर रहे हो। भय पकड़ेगा। मन में क्रोध उठेगा, या विषाद, उदासी, शोक, संताप, कुछ भी पकड़ सकता है। व्यक्ति-व्यक्ति में फर्क है।

सूत्र कहता है—''क्रोध में क्षुब्ध होकर उसमे ठहरे रहो, स्थित रहो।''

अगर तुमको क्रोध घेरे तो उसमे ही स्थित रहो। अगर उदासी घेरे तो उसमे भी। भय, चिंता, कुछ भी हो, उसमें ही ठहरे रहो, डटे रहो, जो भी मन में हो, उसे वैसा ही रहने दो, क्योंकि शरीर तो मर चुका है।

यह ठहरना बहुत सुंदर है। अगर तुम कुछ मिनटों के लिए भी ठहर गए तो पाओगे कि सब कुछ बदल गया। लेकिन हम हिलने लगते है। यदि मन में कोई आवेग उठता है तो शरीर हिलने लगता है। उदासी आती है, तो भी शरीर हिलता है। इसे आवेग इसीलिए कहते है कि यह शरीर में वेग पैदा करता है। मृतवत महसूस करो—और आवेगों को शरीर हिलाने इजाजत मत दो। वे भी वहां रहे और तुम भी वहां रहो। स्थिर, मृतवत। कुछ भी हो, पर हलचल नहीं हो, गति नहीं हो। बस ठहरे रहो।

''या पुतलियों को घुमाएं बिना एकटक घूरते रहो।''

यह—या पुतलियों को घुमाएं बिना एकटक घूरते रहो। मेहर बाबा की विधि थी। वर्षो वे अपने कमरे की छत को घूरते रहे, निरंतर ताकते रहे। वर्षो वह जमीन पर मृतवत पड़े रहे और पुतलियों को, आंखों को हिलाए बिना छत को एक टक देखते रहे। ऐसा वे लगातार घंटो बिना कुछ किए घूरते रहते थे। टकटकी लगाकर देखते रहते थे।

आंखों से घूरना अच्छा है। क्योंकि उससे तुम फिर तीसरी आँख मैं स्थित हो जाते हो। और एक बार तुम तीसरी आँख में थिर हो गए तो चाहने पर भी तुम पुतलियों को नहीं घूमा सकते हो। वे भी थिर हो जाती है—अचल।

मेहर बाबा इसी घूरने के जरिए उपलब्ध हो गए। और तुम कहते हो कि इन छोटे-छोटे अभ्यासों से क्या होगा। लेकिन मेहर बाबा लगातार तीन वर्षो तक बिना कुछ किए छत को घूरते रहे थे। तुम सिर्फ तीन मिनट के लिए ऐसी टकटकी लगाओ और तुमको लगेगा कि तीन वर्ष गुजर गये। तीन मिनट भी बहुत लम्ब समय मालूम होगा। तुम्हें लगेगा की समय ठहर गया है। और घड़ी बंद हो गई है। लेकिन मेहर बाबा घूरते रहे, घूरते रह, धीरे-धीरे विचार मिट गए। और गति बंद हो गई। मेहर बाबा मात्र चेतना रह गए। वे मात्र घूरना बन गए। टकटकी बन गए। और तब वे आजीवन मौन रह गए। टकटकी के द्वारा वे अपने भीतर इतने शांत हो गए कि उनके लिए फिर शब्द रचना असंभव हो गई।

मेहर बाबा अमेरिका में थे। वहां एक आदमी था जो दूसरों के विचार को, मन को पढ़ना जानता था। और वास्तव में वह आमी दुर्लभ था—मन के पाठक के रूप में। वह तुम्हारे सामने बैठता, आँख बंद कर लेता और कुछ ही क्षणों में वह तुम्हारे साथ ऐसा लयवद्ध हो जाता कि तुम जो भी मन में सोचते, वह उसे लिख डालता था। हजारों बार उसकी परीक्षा ली गई। और वह सदा सही साबित हुआ। तो कोई उसे मेहर बाबा के पास ले गया। वह बैठा और विफल रहा। और यह उसकी जिंदगी की पहली विफलता थी। और एक ही। और फिर हम यह भी कैसे कहें कि यह उसकी विफलता हुई।

वह आदमी घूरता रहा, घूरता रहा, और तब उसे पसीना आने लगा। लेकिन एक शब्द उसके हाथ नहीं लगा। हाथ में कलम लिए बैठा रहा और फिर बोला—किसी किस्म का आदमी है। यह, मैं नहीं पढ़ पाता हूं, क्योंकि पढ़ने के लिए कुछ है ही नहीं। यह आदमी तो बिलकुल खाली है। मुझे यह भी याद नहीं रहता की यहां कोई बैठा है। आँख बंद करने के बाद मुझे बार-बार आँख खोल कर देखना पड़ता है कि यह व्यक्ति यहां है कि नहीं। या यहां से हट गया है। मेरे लिए एकाग्र होना भी कठिन हो गया है। क्योंकि ज्यों ही मैं आँख बंद करता हूं कि मुझे लगता है कि धोखा दिया जा रहा है। वह व्यक्ति यहां से हट जाता है। मेरे सामने कोई भी नहीं है। और जब मैं आँख खोलता हूं तो उसको सामने ही पाता हूं। वह तो कुछ भी नहीं सोच रहा है।

उस टकटकी ने, सतत टकटकी ने मेहर बाबा के मन को पूरी तरह विसर्जित कर दिया था।

''या पुतलियों को घुमाएं बिना एकटक घूरते रहो। या कुछ चुसो और चूसना बन जाओ।''

यहां जरा सा रूपांतरण है। कुछ भी काम दे देगा। तुम मर गए, यह काफी है।

''क्रोध में क्षुब्ध होकर उसमे ठहरे रहो।''

केवल यह अंश भी एक विधि बन सकता है। तुम क्रोध में हो; लेटे रहो और क्रोध में स्थित रहो। पड़े रहो। इससे हटो नहीं, कुछ करो नहीं, स्थिर पड़ें रहो।

कृष्णामूर्ति इसी की चर्चा किए चले जा रहे थे। उनकी पूरी विधि इस एक चीज पर निर्भर है: क्रोध से क्षुब्ध होकर उसमे ठहरे रहो।'' यदि तुम क्रुद्ध हो तो क्रुद्ध होओ और क्रुद्ध रहो। उससे हिलो नहीं, हटो नहीं। और अगर तुम वैसे ठहर सको तो क्रोध चला जाता है। और तुम दूसरे आदमी बन जाते हो। और एक बार तुम क्रोध को उससे आंदोलित हुए बिना देख लो तो तुम उसके मालिक हो गए।

''या पुतलियों को घुमाएं बिना एक टक घूरते रहो। या कुछ चुसो और चूसना बन जाओ।''

यह अंतिम विधि शारीरिक है। और प्रयोग में सुगम है। क्योंकि चूसना पहला काम है, जो कि कोई बच्चा करता है। चूसना जीवन का पहला कृत्य है। बच्चा जब पैदा होता है, तब वह पहले रोता है। तुमने यह जानने की कोशिश नहीं की होगी कि बच्चा क्यों रोता है। सच में वह रोता नहीं है। वह रोता हुआ मालूम होता है। वह सिर्फ हवा का पी रहा है। चूर रहा है। अगर वह नहीं रोंए तो मिनटों के भीतर मर जाए। क्योंकि रोना हवा लेने का पहला प्रयत्न है। जब वह पेट में था, बच्चा स्वास नहीं लेता है। बिना स्वास लिए वह जीता था। वह वहीं प्रक्रिया कर रहा था। जो भूमिगत समाधि लेने पर योगी जन करते है। वह बिना श्वास लिए प्राण को ग्रहण कर रहा था—मां से शुद्ध प्राण ही ग्रहण कर रहा था।

यही कारण है कि मां और बच्चे के बीच जो प्रेम है, वह और प्रेम से सर्वथा भिन्न होता है। क्योंकि शुद्धतम प्राण दोनों को जोड़ता है। अब ऐसा फिर कभी नहीं होगा। उनके बीच एक सूक्ष्म प्राणमय संबंध था। मां बच्चे को प्राण देती थी। बच्चा श्वास तक नहीं लेता था।

लेकिन जब वह जन्म लेता है, तब वह मां के गर्भ से उठाकर एक बिलकुल अनजानी दुनिया में फेंक दिया जाता है। अब उसे प्राण या ऊर्जा उस आसानी से उपलब्ध नहीं होगी। उसे स्वयं ही श्वास लेनी होगी। उसकी पहली चीख चूसने का पहला प्रयत्न है। उसके बाद वह मां के स्तन से दूध चूसता है। ये बुनियादी कृत्य है जो तुम करते हो। बाकी सब काम बाद में आते है। जीवन के वे बुनियादी कृत्य है, और प्रथम कृत्य उसका अभ्यास भी किया जा सकता है।

यह सूत्र कहता है: ''या कुछ चुसो और चूसना बन जाओ।''

किसी भी चीज को चुसो , हवा को ही चुसो, लेकिन तब हवा को भूल जाओ और चूसना ही बन जाओ। इसका अर्थ क्या हुआ? तुम कुछ चूस रहे हो, इसमें तुम चूसने वाले हो, चोषण नहीं। तुम चोषण के पीछे खड़े हो। यह सूत्र कहता है कि पीछे मत खड़े रहो, कृत्य में भी सम्मिलित हो जाओ और चोषण बने जाओ।

किसी भी चीज से तुम प्रयोग कर सकते हो, अगर तुम दौड़ रहे हो तो दौड़ना ही बन जाओ और दौड़ने वाले न रहो। दौड़ना बन जाओ। दौड़ बन जाओ और दौड़ने वाले को भूल जाओ। अनुभव करो कि भीतर कोई दौड़ने वाला नहीं है। मात्र दौड़ने की प्रक्रिया है। वह प्रक्रिया तुम हो—सरिता जैसी प्रक्रिया। भीतर कोई नहीं है। भीतर सब शांत है। और केवल यह प्रक्रिया है।

चूसना, चोषण अच्छा है। लेकिन तुमको यह कठिन मालूम पड़ेगा। क्योंकि हम इसे बिलकुल भूल गए है। यह कहना भी ठीक नहीं है कि बिलकुल भूल गए है। क्योंकि उसका विकल्प तो निकालते ही रहते है। मां के स्तन की जगह सिगरेट ले लेती है। और तुम उसे चूसते रहते हो। यह स्तन ही है, मां का स्तन, मां का चूचुक। और गर्म धुआँ निकलता है, वह मां का दूध।

इसलिए छुटपन में जिनको मां के स्तन के पास उतना नहीं रहने दिया गया, जितना वे चाहते थे, वे पीछे चलकर धूम्रपान करने लगते है। यह बिलकुल भूल गए है, और विकल्प से भी काम चल जाएगा। इसलिए अगर तुम सिगरेट पीते हो तो धुम्रपान ही बन जाओ। सिगरेट को भूल जाओ, पीने वाले को भूल जाओ और धूम्रपान ही बने रहो।

एक विषय है जिसे तुम चूसते हो, एक विषयी है जो चूसता है। और उनके बीच चूसने की, चोषण की प्रक्रिया है। तुम चोषण बन जाओ प्रक्रिया बन जाओ। इसे प्रयोग करो। पहले कई चीजों से प्रयोग करना होगा और तब तुम जानोंगे कि तुम्हारे लिए क्या चीज सही है।

तुम पानी पी रहे हो। ठंडा पानी भीतर जा रहा है। तुम पानी बन जाओ। पानी न पीओ। पानी को भूल जाओ। अपने को भूल जाओ, अपनी प्यास को भी, और मात्र पानी बन जाओ। प्रक्रिया में ठंडक है, स्पर्श है, प्रवेश है, और पानी है—वही सब बने रहो।

क्यों नहीं? क्या होगा? यदि तुम चोषण बन जाओ तो क्या होगा?

यदि तुम चोषण बन जाओ तो तुम निर्दोष हो जाओगे—ठीक वैसे जैसे प्रथम दिन जन्मा हुआ शिशु होता है। क्योंकि वह प्रथम प्रक्रिया है। एक तरह से आप पीछे की और यात्रा करेंगे। लेकिन उसकी ललक, लालसा भी तो है। आदमी का पूरा अस्तित्व उस स्तन पान के लिए तड़पता है। उसके लिए वह कई प्रयोग करता है, लेकिन कुछ भी काम नहीं आता। क्योंकि वह बिंदु ही खो गया है। जब तक तुम चूसना नहीं बन जाते, तब तक कुछ भी काम नहीं आएगा। इसलिए इसे प्रयोग में लाओ।

एक आदमी को मैंने यह विधि दी थी। उसने कई विधियां प्रयोग की थी। तब वह मेरे पास आया। उससे मैंने कहा, यदि मैं समूचे संसार से केवल एक चीज ही तुम्हें चुनने को दूँ तो तुम क्या चुनोगे? और मैंने तुरंत उसे यह भी कहा कि आँख बंद करो और इस पर तुम कुछ भी सोचे बिना मुझे बताओ। वह डरने लगा, झिझकने लगा। तो मैंने कहा, न डरों और न झिझाको। मुझे स्पष्ट बताओ। उसने कहा, यह तो बेहूदा मालूम पड़ता है। लेकिन मेरे सामने एक स्तन उभर रहा है। और यह कहकर वह अपराध भाव अनुभव करने लगा। तो मैंने कहा, मत अपराध भाव अनुभव करो। स्तन में गलत क्या है ? सर्वाधिक सुंदर चीजों में स्तन एक है, फिर अपराध भाव क्यों?

लेकिन उस आदमी ने कहा, यह चीज तो मेरे लिए ग्रस्तता बन गई है। इसलिए अपनी विधि बताने के पहले आप कृपा कर यक बताएं कि मैं क्यों स्त्रियों के स्तनों में इतना उत्सुक हूं? जब भी मैं किसी स्त्री को देखता हुं, पहले उसका स्तन ही मुझे दिखाई देता है। शेष शरीर उतने महत्व का नह रहता।

और यह बात केवल उसके साथ ही लागू नहीं है। प्रत्येक के साथ, प्रात: प्रत्येक के साथ लागू है। और यह बिलकुल स्वाभाविक है। क्योंकि मां का स्तन की जगत के साथ आदमी का पहला परिचय बनता है। यह बुनियादी है। जगत के साथ पहला संपर्क मां के स्तन बनता है। यही कारण है कि स्तन में इतना आकर्षण है, स्तन इतना सुंदर लगता है। उसमे एक चुंबकीय शक्ति है।

इसलिए मैंने उस व्यक्ति से कहा कि अब मैं तुमको विधि दूँगा। और यही विधि थी जो मैंने उसे दी: किसी चीज को चुसो और चूसना बन जाओ। मैंने बताया कि आंखें बंद कर लो और अपनी मां का स्तन याद करो या और कोई स्तन जो तुम्हें पंसद हो, कल्पना करो और ऐसे चूसना शुरू करो कि यह असली स्तन है। शुरू करो।

उसने चूसना शुरू किया। तीन दिन के अंदर वह इतनी तेजी से, पागलपन के साथ चूसने लगा। और वह इसके साथ इतना मंत्र मुग्ध हो गया कि उसने एक दिन आकर मुझसे कहा, यह तो समस्या बन गई है। सात दिन में चूसता ही रहा हूं। और यह इतना सुंदर है और इसमे ऐसी गहरी शांति पैदा होती है।'' और तीन महीने के अंदर उसका चोषण एक मौन मुद्रा बन गया। तुम होंठों से समझ नहीं सकते कि वह कुछ कर रहा है। लेकिन अंदर से चूसना जारी था। सारा समय वह चूसता रहता। यह जब बन गया।

तीन महीने बाद उसके मुझसे कहा, ''कुछ अनूठा मेरे साथ घटित हो रहा है। निरंतर कुछ मीठी द्रव सिर से मेरी जीभ पर बरसता है। और यह इतना मीठा और शक्तिदायक है। कि मुझे किसी और भोजन की जरूरत नहीं रही। भूख समाप्त हो गई है। और भोजन मात्र औपचारित हो गया। परिवार में समस्या न बने, इसलिए मैं दूध लेता हूं। लेकिन कुछ मुझे मिल रहा है जो बहुत मीठा है। बहुत जीवनदायी है।''

मैंने उसे यह विधि जारी रखने को कहा।

तीन महीने और। और वह एक दिन नाचता हुआ, पागल सा मेरे पास आया। और बोला, चूसना तो चला गया, लेकिन अब मैं दूसरा ही आदमी हो गया हूं। अब मैं वही नहीं रहा हूं। जो पहले था। मरे लिए कोई द्वार खुल गया है। कुछ टूट गया है। और कोई आकांक्षा शेष नहीं रही। अब मैं कुछ भी नहीं चाहता हूं, न परमात्मा। न मोक्ष, अब जो है, जैसा है, ठीक है। मैं उसे स्वीकारता हूं और आनंदित हूं।''

इसे प्रयोग में लाओ। किसी चीज को चुसो और चूसना बन जाओ। यह बहुतों के लिए उपयोगी होगा। क्योंकि यह इतना आधारभूत है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-5

तंत्र-सूत्र—विधि-10

शिथिल होने की पहली विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि-10 विज्ञान भैरव तंत्र–ओशो

प्रिय देवी, प्रेम किए जाने के क्षण में प्रेम में ऐसे प्रवेश करो जैसे कि वह नित्‍य जीवन हो।
शिव प्रेम से शुरू करते है। पहली विधि प्रेम से संबंधित है। क्‍योंकि तुम्‍हारे शिथिल होने के अनुभव में प्रेम का अनुभव निकटतम है। अगर तुम प्रेम नहीं कर सकते हो तो तुम शिथिल भी नहीं हो सकते हो। और अगर तुम शिथिल हो सके तो तुम्‍हारा जीवन प्रेमपूर्ण हो जाएगा।
एक तनावग्रस्‍त आदमी प्रेम नहीं कर सकता। क्‍यों? क्‍योंकि तनावग्रस्‍त आदमी सदा उद्देश्‍य से, प्रयोजन से जीता है। वह धन कमा सकता है। लेकिन प्रेम नहीं कर सकता। क्‍योंकि प्रेम प्रयोजन-रहित है। प्रेम कोई वस्‍तु नहीं है। तुम उसे संग्रहीत नहीं कर सकते, तुम उसे बैंक खाते में नहीं डाल सकते। तुम उससे अपने अहंकार की पुष्‍टि नहीं कर सकते। सच तो यह है कि प्रेम सब से अर्थहीन काम है; उससे आगे उसका कोई अर्थ नहीं है। उससे आगे उसका कोई प्रयोजन नहीं है। प्रेम अपने आप में जीता है। किसी अन्‍य चीज के लिए नहीं।

तुम धन कमाते हो—किसी प्रयोजन से। वह एक साधन नहीं है। तुम मकान बनाते हो—किसी के रहने के लिए। वह भी एक साधन है। प्रेम साधन नहीं है। तुम क्‍यों प्रेम करते हो? किस लिए प्रेम करते हो?

प्रेम अपना लक्ष्‍य आप है। यही कारण है कि हिसाब किताब रखने वाला मन, तार्किक मन, प्रयोजन की भाषा में सोचने वाला मन प्रेम नहीं कर सकता। और जो मन प्रयोजन की भाषा में सोचता है। वह तनावग्रस्‍त होगा। क्‍योंकि प्रयोजन भविष्‍य में ही पूरा किया जा सकता है। यहां और अभी नहीं।

तुम एक मकान बना रहे हो। तुम उसमें अभी ही नहीं रह सकते। पहले बनाना होगा। तुम भविष्‍य में उसमे रह सकते हो; अभी नहीं। तुम धन कमाते हो। बैंक बैलेंस भविष्‍य में बनेगा, अभी नहीं। अभी साधन का उपयोग कर सकते हो, साध्‍य भविष्‍य में आएँगे।

प्रेम सदा यहां है और अभी है। प्रेम का कोई भविष्‍य नहीं है। यही वजह है कि प्रेम ध्‍यान के इतने करीब है। यही वजह है कि मृत्‍यु भी ध्‍यान के इतने करीब है। क्‍योंकि मृत्‍यु भी यहां और अभी है, वह भविष्‍य में नहीं घटती।

क्या तुम भविष्य में मर सकते हो? वर्तमान में ही मर सकते हो। कोई कभी भविष्य में नहीं मरा। भविष्य में कैसे मर सकते हो? या अतीत में कैसे मर सकते हो। अतीत जा चुका वह अब नहीं है। इसलिए अतीत में नहीं मर सकते। और भविष्य अभी आया नहीं है। इसलिए उसमे कैसे मरोगे?

मृत्यु सदा वर्तमान में होती है। मृत्यु प्रेम और ध्यान सब वर्तमान में घटित होते है। इसलिए अगर तुम मृत्यु से डरते हो तो तुम प्रेम नहीं कर सकते। अगर तुम मृत्यु से भयभीत हो तो तुम ध्यान नहीं कर सकते। और अगर तुम ध्यान से डरे हो तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ होगा। किसी प्रयोजन के अर्थ में जीवन व्यर्थ नहीं होगा। वह व्यर्थ इस अर्थ में होगा कि तुम्हें उसमें किसी आनंद की अनुभूति नहीं होगी। जीवन अर्थहीन होगा।

इन तीनों को—प्रेम, ध्यान और मृत्यु को—एक साथ रखना अजीब मालूम पड़ेगा। वह अजीब है नहीं। वे समान अनुभव है। इसलिए अगर तुम एक में प्रवेश कर गए तो शेष दो में भी प्रवेश पा जाओगे।

शिव प्रेम से शुरू करते है: ''प्रिय देवी, प्रेम किए जाने के क्षण में प्रेम में ऐसे प्रवेश करो जैसे कि वह नित्य जीवन है।''

इसका क्या अर्थ है? कई चीजें, एक जब तुम्हें प्रेम किया जाता है तो अतीत समाप्त हो जाता है। और भविष्य भी नहीं बचता। तुम वर्तमान के आयाम में गति कर जाते हो। तुम अब में प्रवेश कर जाते हो। क्या तुमने कभी किसी को प्रेम किया है? यदि कभी किया है तो जानते हो कि उस क्षण मन नहीं होता है।

यही कारण है कि तथाकथित बुद्धिमान कहते है कि प्रेम अंधे होते है, मन: शून्य और पागल होते है। वस्तुत: वे सच कहते है। प्रेमी इस अर्थ में अंधे होते है। कि भविष्य पर अपने किए का हिसाब रखने वाली आँख उनके पास नहीं होती। वे अंधे है, क्योंकि वे अतीत को नहीं देख पाते। प्रेमियों को क्या हो जाता है?

वे अभी और यही में सरक आते है, अतीत और भविष्य की चिंता नहीं करते, क्या होगा इसकी चिंता नहीं लेते। इस कारण वे अंधे कहे जाते है। वे है। जो गणित करते है, उनके लिए वे अंधे है, और जो गणित नहीं करते उनके लिए आँख वाले है। जो हिसाबी नहीं है वे देख लेंगे कि प्रेम ही असली आँख है, वास्तविक दृष्टि है।

इसलिए पहली चीज के प्रेम के क्षण में अतीत और भविष्य नहीं होते है। तब एक नाजुम बिंदु समझने जैसा है। जब अतीत और भविष्य नहीं रहते तब क्या तुम इस क्षण को वर्तमान कह सकते हो? यह वर्तमान है दो के बीच, अतीत और भविष्य के बीच; यह सापेक्ष है। अगर अतीत और भविष्य नहीं रहे तो इसे वर्तमान कहते में क्या तुक है। वह अर्थहीन है। इसीलिए शिव वर्तमान शब्द का व्यवहार नहीं करते। वे कहते है, नित्य जीवन। उनका मतलब शाश्वत से है—शाश्वत में प्रवेश करो।

हम समय को तीन हिस्सों में बांटते है—भूत, भविष्य और वर्तमान। यह विभाजन गलत है। सर्वथा गलत है। केवल भूत और भविष्य समय है, वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है। वर्तमान शाश्वत का हिस्सा है। जो बीत गया वह समय है। जो आने वाला है समय है।

लेकिन जो है वह समय नहीं है। क्योंकि वह कभी बीतता नहीं है। वह सदा है। अब सदा है। वह सदा है। यह अब शाश्वत है।

अगर तुम अतीत से चलो तो तुम कभी वर्तमान में नहीं आते। अतीत से तुम सदा भविष्य में यात्रा करते हो। उसमे कोई क्षण नहीं आता जो वर्तमान हो। तुम अतीत से सदा भविष्य में गति करते रहते हो। आकर वर्तमान से तुम और वर्तमान में गहरे उतरते हो, अधिकाधिक वर्तमान में। यही नित्य जीवन है।

इसे हम इस तरह भी कह सकते है। अतीत से भविष्य तक समय है। समय का अर्थ है कि तुम समतल भूमि पर और सीधी रेखा में गति करते हो। या हम उसे क्षैतिज कह सकते है। और जिस क्षण तुम वर्तमान में होते हो, आयाम बदल जाता है। तुम्हारी गति ऊर्ध्वाधर ऊपर-नीचे हो जाती है। तुम ऊपर, ऊँचाई की और जाते हो या नीचे गहराई की और जाते हो। लेकिन तब तुम्हारी गति क्षैतिज या समतल नहीं होती है।

बुद्ध और शिव शाश्वत में रहते है, समय में नहीं।

जीसस से पूछा गया कि आपके प्रभु के राज्य में क्या होगा? जो पूछ रहा था वह समय के बारे में नहीं पूछ रहा था। वह जानना चाहता था कि वहां उसकी वासनाओं का क्या होगा। वे कैसे पूरी होंगी? वह पूछ रहा था कि क्या वहां अनंत जीवन होगा या वहां मृत्यु भी होगी। क्या वहां दुःख भी रहेगा। और छोटे और बड़े लोग भी होंगे। जब उसने पूछा कि आपके प्रभु के राज्य में क्या होगा। तब वह इसी दुनिया की बात पूछ रहा था।

और जीसस ने उत्तर दिया—यह उत्तर झेन संत के उत्तर जैसा है—''वहां समय नहीं होगा।'' जिस व्यक्ति को यह उत्तर दिया गया था उसने कुछ नहीं समझा होगा। जीसस ने इतना ही कहा—वहां समय नहीं होगा। क्यों? क्योंकि समय क्षैतिज है, और प्रभु का राज्य ऊर्ध्वगामी है। वह शाश्वत है। वह सदा यहां है। उसमे प्रवेश के लिए तुम्हें समय से हट भर जाना है।

तो प्रेम पहला द्वारा है। इसके द्वारा तुम समय के बाहर निकल सकते हो। यही कारण है कि हर आदमी प्रेम चाहता है, हर आदमी प्रेम करना चाहता है। और कोई नहीं जानता है कि प्रेम को इतनी महिमा क्यों दी जाती है? प्रेम के लिए इतनी गहरी चाह क्यों है? और जब तक तुम यह ठीक से न समझ लो, तुम ने प्रेम कर सकते हो और न पा सकते हो। क्योंकि इस धरती पर प्रेम गहन से गहन घटना है।

हम सोचते है कि हर आदमी, जैसा वह है, प्रेम करने को सक्षम है। वह बात नहीं है। और इसी कारण से तुम प्रेम में निराशा होते हो। प्रेम एक और ही आयाम है। यदि तुमने किसी को समय के भीतर प्रेम करने की कोशिश की तो तुम्हारी कोशिश हारेगी। समय के रहते प्रेम संभव नहीं है।

मुझे एक कथा याद आती है। मीरा कृष्ण के प्रेम में थी। वह गृहिणी थी—एक राजकुमार की पत्नी। राजा को कृष्ण से ईर्ष्या होने लगी। कृष्ण थे नहीं। वे शरीर से उपस्थित नहीं थे। कृष्ण और मीरा की शारीरिक मौजूदगी में पाँच हजार वर्षों का फासला था। इसलिए यथार्थ में मीरा कृष्ण के प्रेम में कैसे हो सकती थी। समय का अंतराल इतना लंबा था।

एक दिन राणा ने मीरा से पूछा, तुम अपने प्रेम की बात किए जाती हो, तुम कृष्ण के आसपास नाचती-गाती हो। लेकिन कृष्ण है कहां? तुम किसके प्रेम में हो? किससे सतत बातें किए जाती हो?

मीरा ने कहां: कृष्ण यहां है, तुम नहीं हो। क्योंकि कृष्ण शाश्वत है। तुम नहीं हो, वे यहां सदा होंगे। सदा थे। वे यहां है, तुम यहां नहीं हो। एक दिन तुम यहां नहीं थे, किसी दिन फिर यहां नहीं होओगे। इसलिए मैं कैसे विश्वास कुरू कि इन दो अनस्तित्व के बीच तुम हो। दो अनस्तित्व के बीच अस्तित्व क्या संभव है?

राणा समय में है और कृष्ण शाश्वत में है। तुम राणा के निकट हो सकते हो। लेकिन दूरी नहीं मिटाई जा सकती। तुम दूर ही रहोगे। और समय में तुम कृष्ण से बहुत दूर हो सकते हो, तो भी तुम उनके निकट हो सकते हो। यह आयाम ही और है।

मैं आपने सामने देखता हूं वहां दीवार है। फिर मैं अपनी आंखों को आगे बढ़ाता हूं और वहां आकाश है। जब तुम समय में देखते हो तो वहां दीवार है। और जब तुम समय के पार देखते हो तो वहां खुला आकाश है, अनंत आकाश।

प्रेम अनंत का द्वार खोल सकता है। अस्तित्व की शाश्वतता का द्वार। इसलिए अगर तुमने कभी सच में प्रेम किया है तो प्रेम को ध्यान की विधि बनाया जा सकता है। यह वहां विधि है: ''प्रिय देवी प्रेम किए जाने के क्षण में प्रेम में ऐसे प्रवेश करो जैसे कि यह नित्य जीवन हो।''

बाहर-बाहर रहकर प्रेमी मत बनो, प्रेमपूर्ण होकर शाश्वत में प्रवेश करो। जब तुम किसी को प्रेम करते हो तो क्या तुम वहां प्रेमी की तरह होते हो? अगर होते हो तो समय में हो, और तुम्हारा प्रेम झूठा है। नकली है, अगर तुम अब भी वहां हो और कहते हो कि मैं हूं तो शारीरिक रूप से नजदीक होकर भी आध्यात्मिक रूप से तुम्हारे बीच दो ध्रुवों की दूरी कायम रहती है।

प्रेम में तुम न रहो, सिर्फ प्रेम रहे; इसलिए प्रेम ही हो जाओ। अपने प्रेमी या प्रेमिका को दुलार करते समय दुलार ही हो जाओ। चुंबन लेते समय चूसने वाले या चूमे जाने वाले मत रहो, चुंबन ही बन जाओ। अहंकार को बिलकुल भूल जाओ। प्रेम के कृत्य में धुल-मिल जाओ। कृत्य में इतनी गहरे समा जाओ कि कर्ता न रहे।

और अगर तुम प्रेम में नहीं गहरे उतर सकते तो खाने और चलने में गहरे उतरना कठिन होगा। बहुत कठिन होगा। क्योंकि अहंकार को विसर्जित करने के लिए प्रेम सब से सरल मार्ग है। इसी वजह से अहंकारी लोग प्रेम नहीं कर पाते। वे प्रेम के बारे में बातें कर सकते है। गीत गा सकते है। लिख सकते है; लेकिन वे प्रेम नहीं कर सकते। अहंकार प्रेम नहीं कर सकता है।

शिव कहते है, प्रेम ही हो जाओ। जब आलिंगन में हो तो आलिंगन हो जाओ। चुंबन लेते समय चुंबन हो जाओ। अपने को इस पूरी तरह भूल जाओ कि तुम कह सको कि मैं अब नहीं हूं, केवल प्रेम है। तब ह्रदय नहीं धड़कता है, प्रेम की धड़कता है। तब खून नहीं दौड़ता है, प्रेम ही दौड़ता है। तब आंखे नहीं देखती है, प्रेम ही देखता है। तब हाथ छूने को नहीं बढ़ते है, प्रेम ही छूने को बढ़ता है। प्रेम बन जाओ और शाश्वत जीवन में प्रवेश करो।

प्रेम अचानक तुम्हारे आयाम को बदल देता है। तुम समय से बाहर फेंक दिये जाते हो। तुम शाश्वत के आमने-सामने खड़े हो जाते हो। प्रेम गहरा ध्यान बन सकता है—गहरे से गहरा। और कभी-कभी प्रेमियों ने वह जाना है जो संतों न भी नहीं जाना। कभी-कभी प्रेमियों ने उस केंद्र को छुआ है जो अनेक योगियों ने नहीं छुआ।

शिव को अपनी प्रिया देवी के साथ देखो। उन्हें ध्यान से देखो। वे दो नहीं मालूम होते। वे एक ही है। यह एकांत इतना गहरा है। हम सबने शिव लिंग देखे है। ये लैंगिक प्रतीक है। शिव के लिंग का प्रतीक है। लेकिन वह अकेला नहीं है, वह देवी की योनि में स्थित है। पुराने दिनों के हिंदू बड़े साहसी थे। अब जब तुम शिवलिंग देखते हो तो याद नह रहता कि यह एक लैंगिक प्रतीक है। हम भूल गए है। हमने चेष्टा पूर्वक इसे पूरी तरह भुला दिया है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जुंग ने अपनी आत्मकथा में, अपने संस्मरणों में एक मजेदार घटना का उल्लेख किया है। वह भारत आया और कोणार्क देखने को गया। कोणार्क के मंदिर में शिवलिंग है। जो पंडित उसे समझाता था उसने शिवलिंग के सिवाय सब कुछ समझाया। और वे इतने थे कि उनसे बचना मुश्किल था। जुंग तो सब जानता था, लेकिन पंडित को सिर्फ चिढ़ाने के लिए पूछता रहा की ये क्या है? तो पंडित ने आखिर जुंग के कान में कहा कि मुझे यहां मत पूछिये, मैं पीछे आपको बताऊंगा। यह गोपनीय है।

जुंग मन ही मन हंसा होगा। ये है आज के हिंदू। फिरा बहार आकर पंडित ने कहा कि दूसरों के सामने आपका पूछना उचित न था। अब में बताता हूं। यह गुप्त चीज है। और तब फिर उसने जुंग के कान में कहा ये हमारे गुप्तांग है।

जुंग जब यहां से वापस गया तो वहां वह एक महान विद्वान से मिला। पूर्वीय चिंतन मिथक और दर्शन के विद्वान, हेनरिख जिमर से। जुंग ने यह किस्सा जिमर को सुनाया। जिमर उन थोड़े से मनीषियों में था जिन्होंने भारतीय चिंतन में डूबने की

चेष्टा की थी। और वह भारत का उसकी विचारणा का, जीवन के प्रति उसके अतार्किक रहस्यवादी दृष्टि वादी दृष्टिकोण का प्रेमी था। जब उसने जुंग से यह सूना तो वह हंसा और बोला, बदलाहट के लिए अच्छा है। मैंने बुद्ध, कृष्ण, महावीर जैसे महान भारतीयों के बारे में सुना है। तुम तो सुना रहे हो वह किसी महान भारतीय के संबंध में नहीं, भारतीयों के संबंध में कुछ कहता है।

शिव के लिए प्रेम महाद्वार है। और उनके लिए कामवासना निंदनीय नहीं है। उनके लिए काम बीज है और प्रेम उसका फूल है। और अगर तुम बीज की निंदा करते हो तो फूल की भी निंदा अपने आप हो जाती है। काम प्रेम बन सकता है। और अगर वह कभी प्रेम नहीं बनता है तो वह पंगु हो जाता है। पंगुता की निंदा करो, काम की नहीं। प्रेम को खिलना चाहिए। उसको प्रेम बनना चाहिए। और अगर यह नहीं होता है तो यह काम दोष नहीं है, यह दोष तुम्हारा है।

काम को काम नहीं रहना है। यहीं तंत्र की शिक्षा है। उसे प्रेम में रूपांतरित होना ही चाहिए। और प्रेम को भी प्रेम ही नहीं रहना है। उसे प्रकाश में , ध्यान के अनुभव में अंतिम, परम रहस्यवादी शिखर में रूपांतरित होना चाहिए। प्रेम को रूपांतरित कैसे किया जाए?

कृत्य हो जाओ और कर्ता को भूल जाओ। प्रेम करते हुए प्रेम, महज प्रेम हो जाओ। तब यह तुम्हारा प्रेम मेरा प्रेम या किसी अन्य का प्रेम नहीं है। तब यह मात्र प्रेम है, जब कि तुम नहीं हो, जब कि तुम परम स्त्रोत या धारा के हाथ में हो। तब कि तुम प्रेम में हो तुम प्रेम में नहीं हो, प्रेम न ही तुम्हें आत्मसात कर लिया है। तुम तो अंतर्धान हो गए हो। मात्र प्रवाहमान ऊर्जा बनकर रह गए हो।

इस यूग का एक महान सृजनात्मक मनीषी डी. एच. लॉरेंस, जाने अनजाने तत्र विद था। पश्चिम में वि पूरी तरह निंदित हुआ। उसकी किताबें जब्त हुई। उस पर अदालतों में अनेक मुकदमे चले, सिर्फ इसलिए कि उसने कहा कि काम ऊर्जा एक मात्र ऊर्जा है। और अगर तुम उसकी निंदा करते हो, दमन करते हो, तो तुम जगत के खिलाफ हो। और तब तुम कभी भी इस ऊर्जा की परम खिलावट को नहीं जान पाओगे। और दमित होने पर यह कुरूप हो जाती है। और यही दुस्चक्र है।

पुरोहित, नीतिवादी, तथाकथित धार्मिक लोग, पोप, शंकराचार्य, और दूसरे लोग काम की सतत निंदा करते है। वे कहते है कि यह एक कुरूप चीज है। और तुम इसका दमन करते होत तो यह सचमुच कुरूप हो जाती है। तब वे कहते है कि देखो, जो हम कहते थे वह सच निकला। तुमने ही इसे सिद्ध कर दिया। तुम जो भी कर रहे हो वह कुरूप है, और तुम जानते हो कि वह कुरूप है।

लेकिन काम स्वयं में कुरूप नहीं है। पुरोहितों ने उसे कुरूप कर दिया है। और जब वे इसे कुरूप कर चूकते है तब वे सही साबित होते है। ओर जब वे सही साबित होते है तो तुम उसे कुरूप से कुरूप तर किए देते हो। काम तो निर्दोष ऊर्जा है। तुम में प्रवाहित होता जीवन है, जीवंत अस्तित्व है। उसे पंगु मत बनाओ। उसे उसके शिखरों की यात्रा करने दो। उसका अर्थ है कि काम को प्रेम बनना चाहिए। फर्क क्या है?

जब तुम्हारा मन कामुक होता है तो तुम दूसरे का शोषण कर रहे हो। दूसरा मात्र एक यंत्र होता है। जिसे इस्तेमाल करके फेंक देना है। और जब काम प्रेम बनता है तब दूसरा यंत्र नहीं होता, दूसरे का शोषण नहीं किया जाता, दूसरा सच में दूसरा नहीं होता। तब तुम प्रेम करते हो तो यह स्व-केंद्रित नहीं है। उस हालत में तो दूसरा ही महत्वपूर्ण होता है। अनूठा होता है। तब तुम एक दूसरे का शोषण नहीं करते, तब दोनों एक गहरे अनुभव में सम्मिलित हो जाते हो। साझीदार हो जाते हो। तुम शोषक और शोषित न होकर एक दूसरे को प्रेम की और ही दुनिया में यात्रा करने में सहायता करते हो। काम शोषण है, प्रेम एक भिन्न जगत में यात्रा है।

अगर यह यात्रा क्षणिक न रहे, अगर यह यात्रा ध्यान पूर्ण हो जाए, अर्थात अगर तुम अपने को बिलकुल भूल जाओ और प्रेमी प्रेमिका विलीन हो जाएं और केवल प्रेम प्रवाहित होता रहे, तो शिव कहते है—''शाश्वत जीवन तुम्हारा है।''

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-7

तंत्र-सूत्र—विधि-11

शिथिल होने की दूसरी विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि-11 विज्ञान भैरव तंत्र-ओशो

जब चींटी के रेंगने की अनुभूति हो तो इंद्रियों के द्वार बंद कर दो। तब।
यह बहुत सरल दिखता है। लेकिन उतना सरल है नहीं। मैं इसे फिर से पढ़ता हूं, '' जब चींटी के रेंगने की अनुभूति हो तो इंद्रियों के द्वार बंद कर दो। तब।'' यक एक उदाहरण मात्र है। किसी भी चीज से काम चलेगा। इंद्रियों के द्वार बंद कर दो जब चींटी के रेंगने की अनुभूति हो। और तब—तब घटना घट जाएगी। शिव कह क्या रहे है?
तुम्हारे पाँव में कांटा गड़ा है। वह दर्द देता है, तुम तकलीफ में हो। या तुम्हारे पाँव पर एक चींटी रेंग रही है। तुम्हें उसका रेंगना महसूस होता है। और तुम अचानक उसे हटाना चाहते हो। किसी भी अनुभव को ले सकते है। तुम्हें धाव है जो दुखता है। तुम्हारे सिर में दर्द है, या कहीं शरीर में दर्द है। विषय के रूप में किसी से भी काम चलेगा। चींटी का रेंगना उदाहरण भर है।

शिव कहते है: ''जब चींटी के रेंगने की अनुभूति हो तो इंद्रियों के द्वारा बंद कर दो।''

जो भी अनुभव हो, इंद्रियों के सब द्वार बंद कर दो करना क्या है? आंखें बंद कर लो और सोचो कि मैं अंधा हूं और देख नहीं सकता। अपने कान बंद कर लो और सोचो कि मैं सुन नहीं सकता। पाँच इंद्रियाँ है, उन सब को बंद कर लो। लेकिन उन्हें बंद कैसे करोगे।

यह आसान नहीं है। क्षण भर के लिए श्वास लेना बंद कर दो, और तुम्हारी सब इंद्रियाँ बंद हो जायेगी। और जब श्वास रुकी है और इंद्रियाँ बंद है, तो रेंगना कहां है? चींटी कहां है? अचानक तुम दूर, बहुत दूर हो जाते हो।

मरे एक मित्र है, वृद्ध है। वे एक बार सीढ़ी से गिर पड़े। और डॉक्टरों ने कहा कि अब वे तीन महीनों तक खाट से नहीं हिल सकेंगे। तीन महीने विश्राम में रहना है। और वे बहुत अशांत व्यक्ति थे। पड़े रहना उनके लिए कठिन था। मैं उन्हें देखने गया। उन्होंने कहा कि मेरे लिए प्रार्थना करें और मुझे आशीष दें कि में मर जाऊं। क्योंकि तीन महीने पड़े रहना मौत से भी बदतर है। मैं पत्थर की तरह कैसे पडा रह सकता हूं। और सब कहते है कि हिलिए मत।

मैंने उनसे कहा, यह अच्छा मौका है। आंखें बंद करें और सोचें कि मैं पत्थर हूं, मूर्तिवत। अब आप हिल नहीं सकते। आखिर कैसे हिलेंगे। आँख बंद करें और पत्थर की मूर्ति हो जाएं। उन्होंने पूछा कि उससे क्या होगा। मैंने कहा की प्रयोग तो करें। मैं यहां बैठा हूं। और कुछ किया भी नहीं जा सकता। जैसे भी हो आपको तो यहां तीन महीने पड़े रहना है। इसलिए प्रयोग करें।

वैसे तो वे प्रयोग करने वाले जीव नहीं थे। लेकिन उनकी यह स्थिति ही इतनी असंभव थी कि उन्होंने कहा कि अच्छा मैं प्रयोग करूंगा। शायद कुछ हो। वैसे मुझे भरोसा नहीं आता कि सिर्फ यह सोचने से कि मैं पत्थरवत हूं, कुछ होने वाला है। लेकिन मैं प्रयोग करूंगा। और उन्होंने किया।

मुझे भी भरोसा नहीं था कि कुछ होने वाला है। क्योंकि वे आदमी ही ऐसे थे। लेकिन कभी-कभी जब तुम असंभव और निराश स्थिति में होते हो तो चीजें घटित होने लगती है। उन्होंने आंखें बंद कर ली। मैं सोचता था कि दो तीन मिनट में वे आंखे खोलेंगे। और कहेंगे कि कुछ नहीं हुआ। लेकिन उन्होंने आंखें नहीं खोली। तीस मिनट गुजर गए। और मैं देख सका कि वे पत्थर हो गए है। उनके माथे पर से सभी तनाव विलीन हो गए। उनका चेहरा बदल गया। मुझे कही और जाना था, लेकिन वे आंखे बंद किए पड़े थे। और वे इतने शांत थे मानो मर गए है। उनकी श्वास शांत हो चली थी। लेकिन क्योंकि मुझे जाना था, इसलिए मैंने उनसे कहा कि अब आंखे खोलें और बताएं कि क्या हुआ।

उन्होंने जब आंखे खोली तब वे एक दूसरे ही आदमी थे। उन्होंने कहा, यह तो चमत्कार है। आपने मेरे साथ क्या किया, मैंने कुछ भी नहीं किया। उन्होंने फिर कहा कि आपने जरूर कुछ किया, क्योंकि यह तो चमत्कार है। जब मैंने सोचना शुरू किया कि मैं पत्थर जैसा हूं तो अचानक यह भाव आया कि यदि मैं अपने हाथ हिलाना भी चाहता हूं तो उन्हें हिलाना भी असंभव है। मैंने कई बार अपनी आंखें खोलनी चाही, लेकिन वे पत्थर जैसी हो गई थी। और नहीं खुल पा रही थी। और उन्होंने कहा, मैं चिंतित भी होने लगा कि आप क्या कहेंगे, इतनी देर हुई जाती है, लेकिन मैं असमर्थ था। मैं तीस मिनट तक हिल नहीं सका। और जब सब गति बंद हो गई तो अचानक संसार विलीन हो गया। और मैं अकेला रह गया। अपने आप में गहरे चला गया। और उसके साथ दर्द भी जाता रहा।

उन्हें भारी दर्द था। रात को ट्रैंक्विलाइजर के बिना उन्हें नींद नहीं आती थी। और वैसा दर्द चला गया। मैंने उनसे पूछा कि जब दर्द विलीन हो रहा था तो उन्हें कैसा अनुभव हो रहा था। उन्होंने कहा कि पहले तो लगा कि दर्द है, पर कहीं दूर पर है, किसी और को हो रहा है। और धीरे-धीरे वह दूर और दूर होता गया। और फिर एक दम से ला पता हो गया। कोई दस मिनट तक दर्द नहीं था। पत्थर के शरीर को दर्द कैसे हो सकता है।

यह विधि कहती है: ‘‘इंद्रियों के द्वारा बंद कर दो।‘’

पत्थर की तरह हो जाओ। जब तुम सच में संसार के लिए बंद हो जाते हो तो तुम अपने शरीर के प्रति भी बंद हो जाते हो। क्योंकि तुम्हारा शरीर तुम्हारा हिस्सा न होकर संसार का हिस्सा है। जब तुम संसार के प्रति बिलकुल बंद हो जाते हो तो अपने शरीर के प्रति भी बंद हो गए। और तब शिव कहते है, तब घटना घटेगी।

इसलिए शरीर के साथ इसका प्रयोग करो। किसी भी चीज से काम चल जाएगा। रेंगती चींटी ही जरूरी नहीं है। नहीं तो तुम सोचोगे कि जब चींटी रेंगेगी तो ध्यान करेंगे। और ऐसी सहायता करने वाली चींटियाँ आसानी से नहीं मिलती। इसलिए किसी

सी भी चलेगा। तुम अपने बिस्तर पर पड़े हो और ठंडी चादर महसूस हो रही है। उसी क्षण मृत हो जाओ। अचानक चादर दूर होने लगेगी। विलीन हो जाएगी। तुम बंद हो, मृत हो, पत्थर जैसे हो, जिसमे कोई भी रंध्र नहीं है, तुम हिल नहीं सकते।

और जब तुम हिल नहीं सकते तो तुम अपने पर फेंक दिये जाते हो। अपने में केंद्रित हो जाते हो। और तब पहली बार तुम अपने केंद्र से देख सकते हो। और एक बार जब अपने केंद्र से देख लिया तो फिर तुम वही व्यक्ति नहीं रह जाओगे जो थे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-7

तंत्र-सूत्र—विधि-12

शिथिल होने की तीसरी विधिः

तंत्र-सूत्र—विधि-12 , विज्ञान भैरव तंत्र–ओशो

जब किसी बिस्तर या आसमान पर हो तो अपने को वजनशून्य हो जाने दो—मन के पार।
तुम यहां बैठे हो; बस भाव करो कि तुम वजनशून्य हो गए हो। तुम्हारा वज़न न रहा। तुम्हें पहले लगेगा कि कहीं यहां वज़न है। वजनशून्य होने का भाव जारी रखो। वह आता है। एक क्षण आता है। जब तुम समझोगे कि तुम वज़न शून्य हो। वज़न नहीं है। और जब वज़न शून्य नहीं रहा तो तुम शरीर नहीं रहे। क्योंकि वज़न शरीर का है; तुम्हारा नहीं, तुम तो वज़न शून्य हो।
इस संबंध में बहुत प्रयोग किए गये है। कोई मरता है तो संसार भर में अनेक वैज्ञानिकों ने मरते हुए व्यक्ति का वज़न लेने की कोशिश की है। अगर कुछ फर्क हुआ, अगर कुछ चीज शरीर के बहार निकली है, कोई आत्मा या कुछ अब वहां नहीं है। क्योंकि विज्ञान के लिए कुछ भी बिना वज़न के नहीं है।

सब पदार्थ के लिए वज़न बुनियादी है। सूर्य की किरणों का भी वज़न है। वह अत्यंत कम है, न्यून है, उसको मापना भी कठिन है; लेकिन वैज्ञानिकों ने उसे भी मापा है। अगर तुम पाँच वर्ग मील के क्षेत्र पर फैली सब सूर्य किरणों को इकट्ठा कर सको तो उनका वज़न एक बाल के वज़न के बराबर होगा। सूर्य किरणों का भी वज़न है। वे तौली जा सकती है। विज्ञान के लिए कुछ भी वज़न के बिना नहीं है। और अगर कोई चीज वज़न के बिना है तो वह पदार्थ नहीं, उप पदार्थ। और विज्ञान पिछले बीस पच्चीस

वर्षो तक विश्वास करता था कि पदार्थ के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसलिए जब कोई मरता है और कोई चीज शरीर से निकलती है तो वज़न में फर्क पड़ना चाहिए।

लेकिन यह फर्क कभी न पडा, वज़न वही का वही रहा। कभी-कभी थोड़ा बढ़ा ही है। और वह समस्या है। जिंदा आदमी का वज़न कम हुआ, मुर्दा का ज्यादा। उसमे उलझने बढ़ी, क्योंकि वैज्ञानिक तो यह पता लेने चले थे कि मरने पर वज़न घटता है। तभी तो वे कह सकते है कि कुछ चीज बाहर गई। लेकिन वहां तो लगता है। कि कुछ चीज अंदर ही आई। आखिर हुआ क्या।

वज़न पदार्थ का है, लेकिन तुम पदार्थ नहीं हो। अगर वजन शून्यता की हम विधि का प्रयोग करना है तो तुम्हें सोचना चाहिए। सोचना ही नहीं, भाव करना चाहिए कि तुम्हारा शरीर वजनशून्य हो गया है। अगर तुम भाव करते ही गए। भाव करते ही गए। तो तुम वजनशून्य हो, तो एक क्षण आता है कि तुम अचानक अनुभव करते हो कि तुम वज़न शुन्य हो गये। तुम वजनशून्य ही हो। इसलिए तुम किसी समय भी अनुभव कर सकते हो। सिर्फ एक स्थिति पैदा करनी है। जिसमें तुम फिर अनुभव करो कि तुम वजनशून्य हो। तुम्हें अपने को सम्मोहन मुक्त करना है।

तुम्हारा सम्मोहन क्या है? सम्मोह न यह है कि तुमने विश्वास किया है कि मैं शरीर हूं, और इसलिए वज़न अनुभव करते हो। अगर तुम फिर से भाव करों, विश्वास करो कि मैं शरीर नहीं हूं, तो तुम वज़न अनुभव नहीं करोगे। यही सम्मोहन मुक्ति है कि जब तुम वज़न अनुभव नहीं करते तो तुम मन के पार चले गए।

शिव कहते है: ''जब किसी बिस्तर या आसन पर हो तो अपने को वजनशून्य हो जाने दो—मन के पार।'' तब बात घटती है।

मन का भी वज़न है। प्रत्येक आदमी के मन का वज़न है। एक समय कहा जाता था कि जितना वज़नी मस्तिष्क हो उतना बुद्धिमान होता है। और आमतौर से यह बात सही है। लेकिन हमेशा सही नहीं है। क्योंकि कभी-कभी छोटे मस्तिष्क के भी महान व्यक्ति हुए है। और महा मूर्ख मस्तिष्क भी वज़नी होते है।

कुछ बातें। कभी-कभी मुर्दो का वज़न क्यों बढ़ जाता है। ज्यों ही चेतना शरीर को छोड़ती है कि शरीर असुरक्षित हो जाता है। बहुत सी चीजें उसमें प्रवेश कर जा सकती है। तुम्हारे कारण वे प्रवेश नहीं कर सकती है। एक शिव में उनके तरंगें प्रवेश कर सकती है। तुममें नहीं कर सकती है। तुम यहां थे, शरीर जीवित था। वह अनेक चीजों से बचाव कर सकता था। यही कारण है कि तुम एक बार बीमार पड़े कि यह एक लंबा सिलसिला हो जाता है। एक के बाद दूसरी बीमारी आती चली जाती है। एक बार बीमार होकर तुम असुरक्षित हो जाते हो। हमले के प्रति खुल जाते हो। प्रतिरोध जाता रहता है। तब कुछ भी प्रवेश कर सकता है। तुम्हारी उपस्थिति शरीर की रक्षा करती है। इसलिए कभी-कभी मृत शरीर का वज़न बढ़ सकता है। क्योंकि जिस क्षण तुम उससे हटते हो, उसमे कुछ भी प्रवेश कर सकता है।

दूसरी बात है कि जब तुम सुखी होते हो तो तुम वजनशून्य अनुभव करते हो। और दुःखी होते हो तो वज़न अनुभव करते हो। लगता है कि कुछ तुम्हें नीचे को खींच रहा है। तब गुरुत्वाकर्षण बहुत बढ़ जाता है। दुःख की हालत में वज़न बढ़ जाता है। जब तुम सुखी होते हो तो हलके होते हो, तुम ऐसा अनुभव करते हो। क्यों? क्योंकि जब तुम सुखी हो, जब तुम आनंद का क्षण अनुभव करते हो। तो तुम शरीर को बिलकुल भूल जाते हो। और जब उदास होते हो, दुःखी होते हो तब, शरीर के अति निकट आ जाते हो। उसे भूल नहीं पाते। उससे जूड़ जाते हो। तब तुम भार अनुभव करते हो। ये भार तुम्हारा नहीं है, तुम्हारे शरीर से चिपकने का है, शरीर का है। वह तुम्हें नीचे की और खींच रहा है। जमीन की तरफ खींचता है, मानों तुम जमीन में गड़े जा रहे हो। सुख में तुम निर्भार होते हो। शोक में, विषाद में वज़नी हो जाते हो।

इसलिए गहरे ध्यान में, जब तुम अपने शरीर को बिलकुल भूल जाते हो, तुम जमीन से ऊपर हवा में उठ सकते हो। तुम्हारे साथ तुम्हारा शरीर भी ऊपर उठ सकता है। कई बार ऐसा होता है।

बोलिविया में वैज्ञानिक एक स्त्री का निरीक्षण कर रहे है। ध्यान करते हुए वह जमीन से चार फीट ऊपर उठ जाती है। अब तो यह वैज्ञानिक निरीक्षण की बात है। उसके अनेक फोटो और फिल्म लिए जा चुके हे। हजारों दर्शकों के सामने वह स्त्री अचानक ऊपर उठ जाती है। उसके लिए गुरुत्वाकर्षण व्यर्थ हो जाता है। अब तक इस बात की सही व्याख्या नहीं की जा सकी है कि क्यों होता है। लेकिन वह स्त्री गैर-ध्यान की अवस्था में ऊपर नहीं उठ सकती। या अगर उसके ध्यान में बाधा हो जाए तो भी वह ऊपर से झट नीचे आ जाती है। क्या होता है?

ध्यान की गहराई में तुम अपने शरीर को बिलकुल भूल जाते हो। तादात्म्य टूट जाता है। शरीर बहुत छोटी चीज है और तुम बहुत बड़े हो। तुम्हारी शक्ति अपरिसीम है। तुम्हारे मुकाबले में शरीर तो कुछ भी नहीं है। यह तो ऐसा ही है कि जैसे एक सम्राट ने अपने गुलाम के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया है। इसलिए जैसे गुलाम भीख मांगता है। वैसे ही सम्राट भी भीख मांगता है। जैसे गुलाम रोता है। वैसे ही सम्राट भी रोता है। और जब गुलाम कहता है कि मैं ना कुछ हूं तो सम्राट भी कहता है। मैं ना कुछ हूं लेकिन एक बार सम्राट अपने अस्तित्व को पहचान ले, पहचान ले कि वह सम्राट है और गुलाम बस गुलाम है, से कुछ बदल जाएगा। अचानक बदल जाएगा।

तुम वह अपरिसीम शक्ति हो जो क्षुद्र शरीर से एकात्म हो गई है। एक बार यह पहचान हो जाए, तुम अपने स्व को जान लो, तो तुम्हारी वजन शून्यता बढ़ेगी। और शरीर का वज़न घटेगा। तब तुम हवा मैं उठ सकते हो, शरीर ऊपर जा सकता है।

ऐसी अनेक घटनाएं है जो अभी साबित नहीं की जा सकती। लेकिन वे साबित होंगी। क्योंकि जब एक स्त्री चार फीट ऊपर उठ सकती है। तो फिर बाधा नहीं। दूसरा हजार फीट ऊपर उठ सकता है। तीसरा अनंत अंतरिक्ष में पूरी तरह जा सकता है। सैद्धांतिक रूप से यह काई समस्या नहीं है। चार फीट ऊपर उठे कि चार सौ फीट कि चार हजार फीट, इससे क्या फर्क पड़ता है।

राम तथा कई अन्य के बारे में कथाएं है कि वे शरीर विलीन हो गए थे। अनेक मृत शरीर इस धरती पर कहीं नहीं पाए गए। मोहम्मद बिलकुल विलीन हो गए थे। शरीर ही नहीं आपने घोड़ के साथ। वे कहानियां असंभव मालूम पड़ती है। पौराणिक मालूम पड़ती है। लेकिन जरूरी नहीं है कि वे मिथक ही हों। एक बार तुम वज़न शून्य शक्ति को जान जाओ। तो तुम गुरुत्वाकर्षण के मालिक हो गए। तुम उसका उपयोग भी कर सकते हो, यह तुम पर निर्भर करता हे। तुम सशरीर अंतरिक्ष में विलीन हो सकत हो।

लेकिन हमारे लिए वज़न शून्यता समस्या रहेगी। सिद्घासन की विधि है। जिस में बुद्ध बैठते है, वजनशून्य होने की सर्वोतम विधि है। जमीन पर बैठो, किसी कुर्सी या अन्य आसन पर नहीं। मात्र जमीन पर बैठो। अच्छा हो कि उस पर सीमेंट या कोई कृत्रिमता नहीं हो। जमीन पर बैठो कि तुम प्रकृति के निकटतम रहो। और अच्छा हो कि तुम नंगे बैठो। जमीन पर नंगे बैठो—बुद्धासन में, सिद्घासन में।

वज़न शून्य होने के लिए सिद्घासन सर्वश्रेष्ठ आसन है। क्यों? क्योंकि जब तुम्हारा शरीर इधर-उधर झुका होता है तो तुम ज्यादा वज़न अनुभव करते हो। तब तुम्हारे शरीर को गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित होने के लिए ज्यादा क्षेत्र है। यदि मैं इस कुर्सी पर बैठा हूं तो मेरे शरीर का बड़ा क्षेत्र गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित होता है। जब तुम खड़े हो तो प्रभावित क्षेत्र कम हो जाता है। लेकिन बहुत देर तक खड़ा नहीं रहा जा सकता है। महावीर सदा खड़े-खड़े ध्यान करते थे, क्योंकि उस हालत में गुरुत्वाकर्षण का न्यूनतम क्षेत्र घेरता है। तुम्हारे पैर भर जमीन को छूते है। जब पाँव पर खड़े हो तो गुरुत्वाकर्षण तुम पर न्यूनतम प्रभाव करता है। और गुरुत्वाकर्षण की वज़न है।

पाँवों और हाथों को बांधकर सिद्घासन में बैठना ज्यादा कारगर होता है। क्योंकि तब तुम्हारी आंतरिक विद्युत एक वर्तुल बन जाती है। रीढ़ सीधी रखो। अब तुम समझ सकते हो कि सीधी रीढ़ रखने पर इतना जोर क्या दिया जाता है। क्योंकि सीधी रीढ़ से कम से कम जगह घेरी जाती है। तब गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव कम रहता है। आंखे बंद रखते हुए अपने को पूरी तरह

संतुलित कर लो, अपने को केंद्रित कर लो। पहले दाई और झुककर गुरुत्वाकर्षण का अनुभव करो। फिर बाई और झुककर गुरुत्वाकर्षण का अनुभव करो। तब उस केंद्र को खोजों जहां गुरुत्वाकर्षण या वज़न कम से कम अनुभव होता है। और उस स्थिति में थिर हो जाओ।

और तब शरीर को भूल जाओ और भाव करो कि तुम वज़न नहीं हो। तुम वज़न शून्य हो। फिर इस वज़न शून्यता का अनुभव करते रहो। अचानक तुम वज़न शून्य हो जाते हो। अचानक तुम शरीर नहीं रह जाते हो, अचानक तुम शरीर शून्यता के एक दूसरे ही संसार में होते हो।

वज़न शून्यता शरीर शून्यता है। तब तुम मन का भी अतिक्रमण कर जाते हो। मन भी शरीर का हिस्सा है, पदार्थ का हिस्सा है। पदार्थ का वज़न होता है। तुम्हारा कोई वज़न नहीं है। इस विधि का यही आधार है।

किसी भी एक विधि को प्रयोग में लाओ। लेकिन कुछ दिनों तक उसमे लगे रहो। ताकि तुम्हें पता हो क वह तुम्हारे लिए कारगर है या नहीं।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-7

तंत्र-सूत्र—विधि-13

‘’या कल्पना करो कि मयूर पूंछ के पंचरंगे वर्तुल निस्सीम अंतरिक्ष में तुम्हारी पाँच इंद्रियाँ है।

SHIVA विज्ञान भैरव तंत्र (तंत्र-सूत्र—विधि-13 ओशो

अब उनके सौंदर्य को भीतर ही घुलने दो। उसी प्रकार शून्य में या दीवार पर किसी बिंदु के साथ कल्पना करो, जब तक कि वह बिंदु विलीन न हो जाए। तब दूसरे के लिए तुम्हारी कामना सच हो जाती है।‘’

ये सारे सूत्र, भीतर के केंद्र को कैसे पाया जाए, उससे संबंधित है। उसके लिए जो बुनियादी तरकीब, जो बुनियादी विधि काम में लायी गयी है, वह यह है कि तुम अगर बाहर कहीं भी, मन में, ह्रदय में या बाहर की किसी दीवार में एक केंद्र बना सके और उस पर समग्रता से अपने अवधान को केंद्रित कर सके और उस बीच समूचे संसारा को भूल सके और एक वहीं बिंदू तुम्हारी चेतना में रह जाए। तो तुम अचानक अपने आंतरिक केंद्र पर फैंक दिए जाओगे। यह कैसे काम करता है, इसे समझो। तुम्हारा मन एक भगोड़ा है, एक भाग दौड़ ही है। वह कभी एक बिंदु पर नहीं टिकता है। वह निरंतर कहीं जा रहा है। गति कर रहा है। पहूंच रहा है। लेकिन वह कभी एक बिंदू पर नहीं टिकता है। वह एक विचार से दूसरे विचार की और, अ से ब की और यात्रा करता रहता है। लेकिन कभी वह अ पर नहीं टिकता है, कभी वह ब पर नहीं टिकता है। वह निरंतर गतिमान है।
यह याद रहे कि मन सदा चलायमान है। वह कहीं पहुंचने की आशा तो करता है, लेकिन कहीं पहुंचता नहीं है। वह पहुंच नहीं सकता। मन की संरचना ही गीतिमय है। मन केवल गति करता है। वह मन का अंतर्भूत स्वभाव है। गति ही उसकी प्रक्रिया है। अ से ब को, ब से अ को, वह चलता ही जाता है।

अगर तुम अ या ब या किसी बिंदु पर ठहर गए, तो मन तुमसे संघर्ष करेगा। वह कहेगा कि आगे चलो। क्योंकि अगर तुम रूक गए, मन तुरंत मर जायेगा। वह गति में रहकर ही जीता है। मन का अर्थ ही प्रक्रिया है। अगर तुमने गति नहीं की तुम रूक गये तो मन अचानक समाप्त हो जायेगा। वह नहीं बचेगा। केवल चेतना बचेगी।

चेतना तुम्हारी स्वभाव है। मन तुम्हारा कर्म है। चलने जैसा। इसे समझना कठिन है। क्योंकि हम समझते है कि मन कोई ठोस वास्तविक वस्तु है। वह नहीं है। मन महज एक क्रिया है। यह कहना बेहतर होगा कि यह मन नहीं, मनन है। चलने की तरह यह एक प्रक्रिया है। चलना प्रक्रिया है; अगर तुम रूक जाओ, तो चलना समाप्त हो जायेगा। तुम तब नहीं कह सकते कि चलना बैठना है। तुम रूक जाओ, तो चलना समाप्त है। तुम रूक जाओ तो चलना कहां है। चलना बंद। पैर है, पर चलना नहीं है। पैर चल सकते है। लेकिन अगर तुम रूक जाओ तो, चलना नहीं होगा।

चेतना पैर जैसी है, वह तुम्हारा स्वभाव है। मन चलने जैसा है, वह एक प्रक्रिया है। जब चेतना एक जगह से दूसरी जगह जाती है तब वह प्रक्रिया मन है। जब चेतना अ से ब और ब से स को जाती है तब यह गति मन है। अगर तुम गति को बंद कर दो, तो मन नहीं रहेगा। तुम चेतन हो, लेकिन मन नहीं है। जैसे पैर तो है, लेकिन चलना नहीं है। चलना क्रिया है। कर्म है; मन भी क्रिया है, कर्म है।

अगर तुम कहीं रूक जाओ तो मन संघर्ष करेगा, मन कहेगा, बढ़े चलो। मन हर तरह से तुम्हें आगे या पीछे या कहीं भी धकाने की चेष्टा करेगा। कहीं भी सही, लेकिन चलते रहो। अगर तुम जीद्द करो, अगर तुम मन की नहीं मानना चाहों, तो वह कठिन होगा। कठिन होगा, क्योंकि तुमने सदा मन का हुक्म माना है। तुमने कभी मन पर हुक्म नहीं किया है। तुम कभी उसके मालिक नहीं रहे हो। तुम हो नहीं सकते, क्योंकि तुमने कभी अपने को मन से तादात्म्य रहित नहीं किया है। तुम सोचते हो कि तुम मन ही हो। यह भूल कि तुम मन ही हो मन को पूरी स्वतंत्रता दिए देती है। क्योंकि तब उस पर मलकियत करने वाला, उसे नियंत्रण में रखने वाला कोई न रहा। तब कोई रहा ही नहीं, मन ही मालिक रह जाता है।

लेकिन मन की यह मलकियत तथाकथित है। वह स्वामित्व झूठा है। एक बार प्रयोग करो और तुम उसके स्वामित्व को नष्ट कर सकते हो। वह झूठा है। मन महज गुलाम है जो मालिक होने का दावा करता है। लेकिन उसकी यह दावेदारी इतनी पुरानी है, इतने जन्मों से है कि वह अपने को मालिक मानने लगा है। गुलाम मालिक हो गया है। वह एक महज विश्वास है, धारणा है। तुम उसके विपरीत प्रयोग करके देखो और तुम्हें पता चलेगा। कि यह धारणा सर्वथा निराधार थी।

यह पहला सूत्र कहता है: ''या कल्पना करो कि मोर की पूंछ के पंचरंगे वर्तुल निस्सीम अंतरिक्ष में तुम्हारी पाँच इंद्रियाँ है। अब उनके सौंदर्य को भीतर ही घुलने दो।''

भाव करो की तुम्हारी पाँच इंद्रियाँ पाँच रंग है। और वे पाँच रंग समस्त अंतरिक्ष को भर रहे है। सिर्फ कल्पना करो कि तुम्हारी पंचेंद्रियां पाँच रंग है। सुंदर-सुंदर रंग। सजीव रंग और वे अनंत आकाश में फैले है। और तब उन रंगों के बीच भ्रमण करो, उनके बीच गति करो और भाव करो कि तुम्हारे भीतर एक केंद्र है, जहां ये रंग मिलते है। यह मात्र कल्पना है, लेकिन यह सहयोगी है। भाव करो कि ये पांचों रंग तुम्हारे भीतर प्रवेश कर रहे है और किसी बिंदु पर मिल रहे है।

ये पाँच रंग सच ही किसी बिंदु पर मिलेंगे और सारा जगत विलीन हो जाएगा। तुम्हारी कल्पना में पाँच ही रंग है। और तुम्हारी कल्पना के रंग आकाश को भर देंगे। तुम्हारे भीतर गहरे उतर जाएंगे, किसी बिंदु पर मिल जाएंगे।

किसी भी बिंदु से काम चलेगा। लेकिन हारा बेहतर रहेगा। भाव करो कि सारा जगत रंग ही रंग हो गया है। और वे रंग तुम्हारे नाभि केंद्र पर, तुम्हारे हारा केंद्र-बिंदु पर मिल रहे है। उस बिंदु को देखो, उस बिंदु पर अवधान को एकाग्र करो और तब एकाग्र करो तब ति वह बिंदु विलीन न हो जाए। वह विलीन हो जाता है। क्योंकि वह भी कल्पना है। याद रहे कि जो कुछ भी हमने किया है सब कल्पना है। अगर तुम उस पर एकाग्र होओ, तो तुम अपने केंद्र पर स्थिर हो जाओगे। तब संसार विलीन हो जायेगा। तुम्हारे लिए संसार नहीं रहेगा।

इस ध्यान में केवल रंग है। तुम समूचे संसार को भूल गये हो। तुम सारे विषयों को भूल गए हो। तुमने केवल पाँच रंग चुने है। कोई पाँच रंग चून जो। ये ध्यान उन लोगों के लिए है जिनकी दृष्टि पैनी है, जिनकी रंग की संवेदना गहरी है। यह सबके लिए नहीं है। ये उन्हें लोगों के लिए सहयोगी है, जिसके पास चित्रकार की नजर हो। यदि तुम्हें हरे रंग एक हजार हरे नजर नहीं आते तो तुम भूल जाओ इस ध्यान को और आगे बढ़ो। ये काम उनके काम का है, जो चित्रकार की पैन निगाह रखते है।

और जो आदमी रंग के प्रति संवेदनशील है उसको तुम कहो कि समूचे आकाश को रंग से भरा होने की कल्पना करो, तो वह यह कल्पना नहीं कर पाएगा। वह यदि कल्पना करने की कोशिश भी करेगा। वह लाल रंग की सोचेगा। तो लाल शब्द को देखेगा, लेकिन उसे कल्पना में लाल रंग दिखाई नहीं पड़ेगा। वह हरा शब्द तो कहेगा। शब्द भी वहां होगा, लेकिन हरियाली वहां नहीं होगी।

तो तुम अगर रंग के प्रति संवेदनशील हो, तो इस विधि का प्रयोग करो। पाँच रंग है। समूचा जगत पाँच रंग है। और वे रंग तुममें मिल रहे है। तुम्हारे भीतर कही गहरे में वे पांचों रंग मिल रहे है। उस बिंदु पर चित को एकाग्र करो और एकाग्र करो। उससे हटो नहीं, उस पर डटे रहो। मन को मत आने दो। रंगों के संबंध में हरे। लाल और पीले रंगों के बारे में विचार मत करो। सोचो। ही मत। बस, उन्हें अपने भीतर मिलते हुए देखो उनके बारे में विचार मत करो। अगर तुम विचार किया, तो मन प्रवेश कर गया। सिर्फ रंगों के भर जाओ। उन रंगों को अपने भीतर मिलने दो और तब उस मिलन बिंदु पर अवधान को केंद्रित करो। सोचो मत। एकाग्रता सोचना नहीं है। विचारणा नहीं है। मनन नहीं है।

तुम अगर सचमुच रंगों से भर जाओ और तुम एक इंद्रधनुष एक मोर ही बन जाओ और तुम्हारा आकाश रंगमय हो जाए, तो उसमें तुम्हें एक सौंदर्य-बोध होगा। गहरा, गहरा सौंदर्य बोध। लेकिन उसके संबंध में विचार मत करो। यह मत कहो कि यह सुंदर है। विचारणा में मत चले जाओ। उस बिंदु पर एकाग्र होओ जहां, ये रंग मिल रहे है। और एकाग्रता। को बढ़ाते जाओ, गहराते हो, तो कल्पना नहीं टिक सकती। वह विलीन हो जाएगी।

संसार पहले ही विलीन हो चुका है। सिर्फ रंग रह गए थे। वे रंग तुम्हारी कल्पना थे और वे काल्पनिक रंग एक बिंदु पर मिल रहे है। वह बिंदु भी काल्पनिक था। अब गहरी एकाग्रता से वह बिंदु भी विलीन हो जाएगा। अब तुम कहां रहोगे। अब तुम कहां हो। तुम अपने केंद्र में स्थित हो जाओगे।

इस लिए सूत्र कहता है: ''शून्य में या दीवार में किसी बिंदू पर.......।

यह सहयोगी होगा। अगर तुम रंगों की कल्पना नहीं कर सकते, तो दीवार पर किसी बिंदु से काम चलेगा। काई भी चीज एकाग्रता के विषय के रूप में ले लो। अगर वह आंतरिक हो, अंतस का हो तो बेहतर।

लेकिन फिर दो तरह के व्यक्तितत्व होते है। जो लोग अंतर्मुखी है उनके लिए उनके भीतर ही सब रंगों के मिलने की धारण आसान है। लेकिन जो बहिर्मुखी लोग है वे भीतर की धारणा नहीं बना सकते। वे बाहर की ही कल्पना कर सकते है। उनकी चित बाहर ही यात्रा करता है। वे भीतर नहीं गति कर सकते उनके भीतर कोई आंतरिकता नहीं है।

अंग्रेज दार्शनिक डेविड ह्मूम ने कहा है, जब भी मैं भीतर जाता हूं वहां मुझे कोई आत्मा नहीं मिलती। जो भी मिलता है वह बाहर के प्रतिबिंब है—कोई विचार, कोई भाव। कभी किसी आंतरिकता का दर्शन नहीं होता। सदा बाहरी जगत ही वहां प्रतिबिंबित मिलता है। यह श्रेष्ठतम बहिर्मुखी चित है। और डेविड ह्मूम सर्वाधिक बहिर्मुखी चित वालों से एक है।

इसलिए अगर तुम्हें भी तर कुछ धारणा के लिए न मिले और तुम्हारा मन पूछे कि यह आंतरिकता क्या है। तो अच्छा है कि दीवार पर किसी बिंदु का प्रयोग करो।

लोग मेरे पास आते है और पूछते है कि भीतर कैसे जाया जाए। उनके लिए यह समस्या है। क्योंकि अगर तुम बहिर्गामिता ही जानते हो, तुम्हें अगर बाहर-बाहर गति करना ही आता है। तो तुम्हारे लिए भीतर जाना कठिन होगा। और अगर तुम बहिर्मुखी हो, तो भीतर इस बिंदु का प्रयोग मत करो। उसे बाहर करो। नतीजा वही होगा। दीवार पर एक बिंदु बनाओ और उस पर चित को एकाग्र करो। लेकिन तब खुली आँख से एकाग्रता साधनी होगी। अगर तुम भीतर केंद्र बनाते हो, तो बंद आँखो से एकाग्रता साधनी है।

दीवार पर बिंदु बनाओ और उस पर एकाग्र होओ। असली बात एकाग्रता के कारण घटती है। बिंदु के कारण नहीं। बाहर है या भीतर यक प्रासंगिक नहीं है। यह तुम पर निर्भर है। अगर दीवार पर देख रहे हो, एकाग्र हो रहे हो, तो तब तक एकाग्रता साधो जब तक वह बिंदु विलीन न हो जाए।

इस बात को ख्याल में रख लो: जब तक बिंदु विलीन न हो जाए।''

पलकों को बंद मत करो। क्योंकि उससे मन को फिर गति करने के लिए जगह मिल जाती है। इसलिए अपलक देखते रहो। क्योंकि पलक के गिरने से मन विचार में संलग्न हो जाता है। पलक के गिराने से अंतराल पैदा होता है। और एकाग्रता नष्ट हो जाती है। इसलिए पलक झपकना नहीं है।

तुमने बोधिधर्म के विषय में सुना होगा। मनुष्य के पूरे इतिहास में जो बड़े ध्यानी हुए है वह उनमें से एक था। उसके संबंध में एक प्रीतिकर कथा कही जाती है। वह बाहर की किसी वस्तु पर ध्यान कर रहा था। उसकी आंखें झपक जाती थी। और ध्यान टूट-टूट जाता था। तो उसने अपनी पलकों को उखाड़कर फेंक दिया। बहुत सुंदर कथा है कि उसने अपनी पलकों को उखाड़कर फेंक दिया और फिर ध्यान करना शुरू किया। कुछ हफ्तों के बाद उसने देखा कि जहां उसकी पलकें गिरी थी उस स्थान पर कोई पौधे उग आए थे।

यह घटना चीन के एक पहाड़ पर घटित हुई थी। उस पहाड़ का नाम टा था। इसलिए जो पौधे वहां उग आए थे उनका नाम टी पडा। और यही कारण है कि चाय जागरण में सहयोगी होती है। इसलिए जब तुम्हारी पलकें झपकने लगें और तुम नींद में उतरने लगो, तो एक प्याली चाय पी लो। वे बोधिधर्म की पलकें है। इसी वजह से झेन संत चाय को पवित्र मानते है। चाय कोई मामूली चीज नहीं है। वह पवित्र है, बोधिधर्म की आँख की पलक है।

जापान में तो वे चायोत्सव करते है। प्रत्येक परिवार में एक चायघर होता है। जहां धार्मिक अनुष्ठान के साथ चाय पी जाती है। यह पवित्र है। और बहुत ही ध्यान पूर्ण मुद्रा में चाय पी जाती है। जापान ने चाय के इर्द-गिर्द बड़े सुंदर अनुष्ठान निर्मित किये है। वे चाय घर में ऐसे प्रवेश करते है जैसे वे किसी मंदिर में प्रवेश करते हो। तब चाय तैयार की जाएगी। और हरेक व्यक्ति मौन होकर बैठेगा। और समोवार के उबलते स्वर को सुनेगा। उबलती चाय का, उसके वाष्प का गीत सब सुनेंगे। वह कोई अदना वस्तु नहीं है। बोधिधर्म की आँख की पलक है। और चूंकि बोधिधर्म खुली आंखों से जागने की कोशिश में लगा था। इसलिए चाय सहयोगी है। और चूंकि यह कथा टा पर्वत पर घटित हुई इसलिए वह टी कहलाती है।

सच हो या न हो, यह कहानी सुंदर है। अगर तुम बाहर एकाग्रता साध रहे हो, तो अपलक देखना जरूरी है। समझो कि तुम्हारे पलकें नहीं है। पलकों को उखाड़ फेंकने का यही अर्थ है। तुम्हें आंखें तो है, लेकिन उनके ऊपर झपकने को पलकें नहीं है। और तब एकाग्रता साधो जब तक बिंदु विलीन नहीं हो जाता।

बिंदु विलीन हो जाता है। अगर तुम लगे रहे, अगर तुमने संकल्प के साथ मन को चलायमान नहीं होने दिया। तो बिंदु विलीन हो जाता है। अगर तुम उस बिंदु पर एकाग्र थे और तुम्हारे लिए संसार में इस बिंदु के अलावा कुछ भी नहीं था। अगर सारा संसार पहले ही विलीन हो चुका था और वहीं बिंदु बचा था और यह बिंदु भी विदा हो गया। तो अब चेतना कहीं और गति नहीं कर सकती। उसके लिए जाने को कहीं न रहा; सारे आयाम बंद हो गए। अब चित अपने ऊपर फेंक दिया जाता है। अब चेतना अपने आप में लौट आती है। और तब तुम केंद्र में प्रविष्ट हो गए।

तो चाहे भीतर हो या बाहर, तब तक एकाग्रता साधो जब तक बिंदु विसर्जित नहीं होता। यह बिंदु दो कारणों से विसर्जित होगा। अगर वह भीतर है, तो काल्पनिक है और इसलिए विलीन हो जाएगा। और अगर यह बाहर है, तो वह काल्पनिक नहीं असली है। तुमने दीवार पर बिंदु बनाया है और उस पर अवधान को एकाग्र किया है। तो यह बिंदु क्यों विलीन होगा। भीतर के बिंदु का विलीन होना तो समझा जा सकता है। क्योंकि वह वहां था नहीं। तुमने उसे कल्पित कर लिया था। लेकिन दीवार पर तो वह है। वह क्यों विलीन होगा।

वह एक विशेष कारण से विलीन होता है। अगर तुम किसी बिंदु पर चित को एकाग्र करते हो, तो यथार्थ में वह बिंदु विसर्जित नहीं होता है। तुम्हारा मन ही विसर्जित होता है। अगर तुम किसी बह्म बिंदु पर एकाग्र हो रहे हो, तो मन की गति बंद हो जाती है। और मन गति के बिना जी नहीं सकता। वह रूक जाता है। वह मर जाता है। और जब मन रूक जाता है। तुम बाहर की किसी भी चीज के साथ संबंधित नहीं हो सकते हो। तब अचानक सभी सेतु टूट जाते है, क्योंकि मन ही तो सेतु है।

जब तुम दीवार पर, किसी बिंदु पर मन को एकाग्र कर रहे हो, तो तुम्हारा मन क्या करता है। वह निरंतर तुमसे बिंदु तक और बिंदु से तुम तक उछलकूद करता रहता है। एक सतत उछलकूद की प्रक्रिया चलती है। जब मन विचलित होता है, तो तुम बिंदु को नहीं देख सकते। क्योंकि तुम यथार्थ आँख में से नहीं मन से और आँख से बिंदु को देखते हो। अगर मन वहां न रहे, तो आंखें काम नहीं कर सकती। तुम दीवार को घूरते रह सकते हो। लेकिन बिंदु नहीं दिखाई पड़ेगा। क्योंकि मन न रहा, सेतु टूट गया। बिंदु तो सच है, वह है। इसलिए जब मन लौट आएगा। तो फिर उसे देख सकोगे। लेकिन अभी नहीं देख सकते, अभी तुम बाहर गति नहीं कर सकते। अचानक तुम अपने केंद्र पर हो।

यह केंद्रस्थता तुम्हें तुम्हारे अस्तित्वगत आधार के प्रति जागरूक बना देगी। तब तुम जानोंगे कि कहां से तुम अस्तित्व के साथ संयुक्त हो, जुड़े हो। तुम्हारे भीतर ही वह बिंदु है जो समस्त अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है। जो उसके साथ एक है। और जब एक बार इस केंद्र को जान गए। तो तुम घर आ गए। तब यह संसार परदेश नहीं रहा। और तुम परदेशी नहीं रहे। तब जान गए। तो तुम घर आ गए। तब तुम संसार के हो गए। तब किसी संघर्ष की, किसी लड़ाई की जरूरत नहीं रही। तब तुम्हारे और अस्तित्व के बीच शत्रुता न रही, अस्तित्व तुम्हारी मां हो गई।

यह अस्तित्व ही है जो तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हुआ और बोधपूर्ण हुआ है। यह अस्तित्व ही है जो तुम्हारे भीतर प्रस्फुटित हुआ है। यह अनुभूति, यह प्रतीति, यह घटना और फिर दुःख नहीं रहेगा। तब आनंद कोई घटना नहीं है—ऐसी घटना, जो आती है। और चली जाती है। तब आनंद तुम्हारा स्वभाव है। जब कोई अपने केंद्र में स्थित होता है। तो आनंद स्वाभाविक है। तब कोई आनंदपूर्ण हो जाता है।

फिर धीरे-धीरे उसे यह बोध भी जाता रहता है कि वह आनंदपूर्ण है। क्योंकि बोध के लिए विपरीत का होना जरूरी है। अगर तुम दुःखी हो, तो आनंदित होने पर तुम्हें आनंद की अनुभूति होगी। लेकिन जब दुःख नहीं है। तो धीरे-धीरे तुम दुःख को पूरी तरह भूल जाते हो। और तब तुम अपने आनंद को भी भूल जाते हो। और जब तुम अपने आनंद को भी भूलते हो तभी तुम सच में आनंदित हो। तब वह स्वाभाविक है। जैसे तारे चमकते है, नदिया बहती है। वैसे ही तुम आनंदपूर्ण हो। तुम्हारा होना ही आनंदमय है। तब यह कोई घटना नहीं है। तब तुम ही आनंद हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-9

तंत्र-सूत्र—विधि-14

दूसरे सूत्र के साथ भी यही तरकीब, वही वैज्ञानिक आधार, यही प्रक्रिया काम करती है:

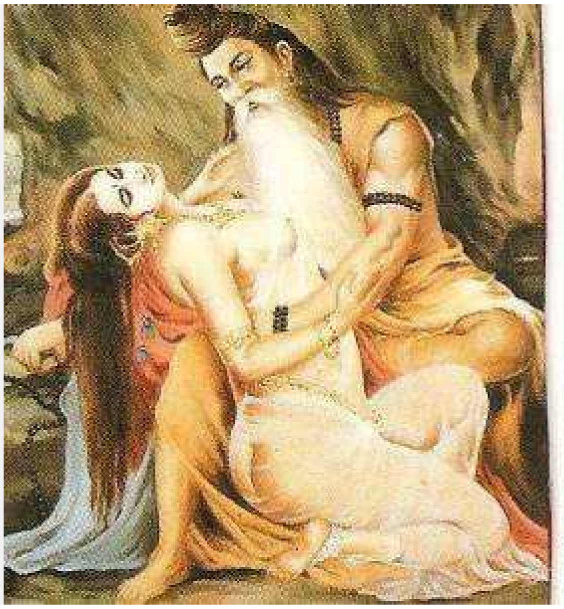

ShivaParvati तंत्र-सूत्र—विधि-14 (विज्ञान भैरव तंत्र; ओशो

अपने पूरे अवधान को अपने मेरुदंड के मध्य में कमल-तंतु सी कोमल स्नायु में स्थित करो। और इसमे रूपांतरित हो जाओ।
इस सूत्र के लिए, ध्यान की इस विधि के लिए तुम्हें अपनी आंखे बंद कर लेनी चाहिए। और अपने मेरुदंड को, अपनी रीढ़ की हड्डी को देखना चाहिए, देखने का भाव करना चाहिए। अच्छा हो कि किसी शरीर शास्त्र की पुस्तक में या किसी चिकित्सालय या मेडिकल कालेज में जाकर शरीर की संरचना को देखो-समझ लो, तब आंखे बंद करो और मेरुदंड पर

अवधान लगाओ। उसे भीतर की आँखो से देखो और ठीक उसके मध्य से जाते हुए कमल तंतु जैसे कोमल स्नायु का भाव करो।
''और इसमे रूपांतरित हो जाओ।''

अगर संभव हो तो इस मेरुदंड पर अवधान को एकाग्र करो और तब भीतर से, मध्य से जाते हुए कमल तंतु जैसे स्नायु पर एकाग्र होओ। और यही एकाग्रता तुम्हें तुम्हारे केंद्र पर आरूढ़ कर देगी। क्यों?

मेरुदंड तुम्हारी समूची शरीर-संरचना का आधार है। सब कुछ उससे संयुक्त है, जुड़ा हुआ है। सच तो यह है कि तुम्हारा मस्तिष्क इसी मेरुदंड का एक छोर है। शरीर शास्त्री कहते है कि मस्तिष्क मेरुदंड का ही विस्तार है। तुम्हारा मस्तिष्क मेरुदंड को विकास है। और तुम्हारी रीढ़ तुम्हारे सारे शरीर से संबंधित है, सब कुछ उससे संबंधित है। यही कारण है कि उसे रीढ़ कहते है। आधार कहते है।

इस रीढ़ के अंदर एक तंतु जैसी चीज है। लेकिन शरीर शास्त्री इसके संबंध में कुछ नहीं कह सकते। यह इसलिए कि यह पौदगलिक नहीं है। इस मेरुदंड में, इसके ठीक मध्य में एक रजत-रज्जु है, एक बहुत कोमल नाजुम स्नायु है। शारीरिक अर्थ में वह स्नायु भी नहीं है। तुम उसे काट-पीट कर नहीं निकाल सकते। वह वहां नहीं मिलेगा। लेकिन गहरे ध्यान में वह देखा जाता है। यह है, लेकिन वह अपदार्थ है, अवस्तु है। वह पदार्थ नहीं, उर्जा है। और यथार्थत: तुम्हारे मेरुदंड की वही ऊर्जा-रज्जु तुम्हारा जीवन है। उसके द्वारा ही तुम अदृश्य अस्तित्व के साथ संबंधित हो। वही दृश्य और अदृश्य के बीच सेतु है। उस तंतु के द्वारा ही तुम अपने शरीर से संबंधित हो, और उस तंतु के द्वारा ही तुम आत्मा से संबंधित हो।

तो पहल तो मेरुदंड की कल्पना करो, उसे मन की आंखों से देखो। और तुम्हें अद्भुत अनुभव होगा। अगर तुम मेरुदंड का मनोदर्शन करने की कोशिश करोगे, तो यह दर्शन बिलकुल संभव है। और अगर तुम निरंतर चेष्टा में लगे रहे, तो कल्पना में ही नहीं, यथार्थ में भी तुम अपने शरीर से संबंधित हो, और उस तंतु के द्वारा ही तुम आत्मा से संबंधित हो।

मैं एक साधक को इस विधि का प्रयोग करवा रहा था। मैंने उसे शरीर-संस्थान का एक चित्र देखने को दिया। ताकि वह उसके जरिए अपने भीतर के मेरुदंड को मन की आंखों से देखने में समर्थ हो सके। उसने प्रयोग शुरू किया और सप्ताह भर के अंदर आकर उसने मुझसे कहा, आश्चर्य की बात है कि मैने आपके दिए चित्र को देखने की कोशिश की, लेकिन अनेक बार वह चित्र मेरी आंखों के सामने से गायब हो गया और एक दूसरा मेरुदंड मुझे दिखाई दिया। यह मेरुदंड चित्र वाले मेरुदंड जैसा नहीं था। मैंने उस साधक को कहां की अब तुम सही रास्ते पर हो। अब चित्र को बिलकुल भूल जाओ। और उस मेरुदंड को देखा करो जो तुम्हारे लिए दृश्य हुआ है।

मनुष्य भीतर से अपने शरीर संस्थान को देख सकता है। हम इसको देखने की कोशिश नहीं करते। क्योंकि वह दृश्य डरावना है, वीभत्स है। जब तुम्हें तुम्हारे रक्त मांस और अस्थिपंजर दिखाई पड़ेंगे तो तुम भयभीत हो जाओगे। इसलिए हमने अपने मन को भीतर देखने से बिलकुल रोक रखा है। हम भी अपने शरीर को उसी तरह बहार से देखते है जैसे दूसरे लोग देखते है।

वह वैसा ही है जैसे तुम इस कमरे को इसके बहार जाकर देखो; तुम सिर्फ इसकी बहारी दीवारों को देखोगें। फिर तुम भीतर आ जाओ और देखो, तब तुम्हें भीतरी दीवारें दिखाई देंगी। तुम तो सिर्फ बाहर से अपने शरीर को इस तरह देखते हो जिस तरह कोई दूसरा आदमी उसे देखता हो। भीतर से तुमने अपने शरीर को नहीं देखा है। हम देख सकते है। लेकिन इस भय के कारण वह हमारे लिए आश्चर्य की चीज बना है।

भारतीय योग की पुस्तकें शरीर के संबंध में ऐसी बातें बताती है। जो नए वैज्ञानिक शोध से हूबहू सही है। लेकिन विज्ञान यह समझने में असमर्थ है कि योग को इनका पता कैसे चला। वह इन्हें कैसे जान सका। शल्य-चिकित्सा और मानव शरीर का

ज्ञान बहुत हाल की घटनाएं है। इस हालत में योग इन सारी स्नायुओं को सभी केंद्रों को, शरीर के पूरी आंतरिक संस्थान को कैसे जान गया। जो अत्यंत हाल की खोज है। आश्चर्य कि वे उन्हें भी जानते थे, उन्होने उसकी चर्चा भी कि थी। उन पर काम भी किया था। योग को शरीर की बुनियादी और महत्वपूर्ण चीजों के विषय में सब कुछ मालूम रहा है। लेकिन योग चीर फाड़ नहीं करता था। फिर उसे उसकी इतनी सारी बातें कैसे मालूम हुई थी।

सच तो यह है कि शरीर को देखने जानने का एक दूसरा ही रास्ता है। वह उसे अंदर से देखना है। अगर तुम भीतर एकाग्र हो सको। तो तुम अचानक अंदरूनी शरीर को, उसके भीतर रेखा चित्र को देखने लगोगे।

यह विधि उन लोगो के लिए उपयोगी है जो शरीर से जुडे है। अगर तुम भौतिकवादी हो, अगर तुम सोचते हो कि तुम शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो, तो यह विधि तुम्हारे बहुत काम की होगी। अगर तुम चार्वाक या मार्क्स के मानने वाले हो, अगर तुम मानते हो कि मनुष्य शरीर के अलावा कुछ नहीं है, तो तुम्हें यह विधि बहुत सहयोगी होगी। तो तुम जाओ और मनुष्य के अस्थि संस्थान को देखो।

तंत्र या योग की पुरानी परंपराओं में वे अनेक तरह की हड्डियों का उपयोग करते थे। अभी भी तांत्रिक अपने पास कोई न कोई हड्डी या खोपड़ी रखता है। दरअसल वह भीतर से एकाग्रता साधने का उपाय है। पहले वह उस खोपड़ी पर एकाग्रता साधता है। फिर आंखें बंद करता है। और अपनी खोपड़ी का ध्यान करता है। वह बाहर की खोपड़ी की कल्पना भीतर करता जाता है। और इस तरह धीरे-धीर अपनी खोपड़ी की प्रतीति उसे होने लगती है। उसकी चेतना केंद्रित होने लगती है।

वह बाहरी खोपड़ी उसका मनोदर्शन, उस पर ध्यान, सब उपाय है। और अगर तुम एक बार अपने भीतर केंद्रीभूत हो गए तो तुम अपने अंगूठे से सिर तक यात्रा कर सकते हो। तुम भीतर चलो, वहां एक बड़ा ब्रह्मांड है। तुम्हारा छोटा शरीर एक बड़ा ब्रह्मांड है।

यह सूत्र मेरुदंड का उपयोग करता है, क्योंकि मेरुदंड के भीतर ही जीवन रज्जु छिपा है। यही कारण है कि सीधी रीढ़ पर इतना जोर दिया जाता है। क्योंकि अगर रीढ़ सीधी न रही तो तुम भीतरी रज्जु को नहीं देख पाओगे। वह बहुत नाजुक है। बहुत सूक्ष्म है। वह ऊर्जा का प्रवाह है। इसलिए अगर तुम्हारी रीढ़ सीधी है, बिलकुल सीधी, तभी तुम्हें उस सूक्ष्म जीवन रज्जु की झलक मिल सकती है।

लेकिन हमारे मेरुदंड सीधे नहीं है। हिंदू बचपन सेही मेरुदंड को सीधा रखने का उपाय करते है। उनके बैठने, उठने चलने सोने तक के ढंग सीधी रीढ़ पर आधारित थे। और अगर रीढ़ सीधी नहीं है तो उसके भीतर तत्वों को देखना बहुत कठिन बहुत कठिन होगा। वह नाजुम है, सूक्ष्म है, वास्तव में पौदगलिक नहीं है। वह अपौदगलिक है, वह शक्ति है। इसलिए जब मेरुदंड बिलकुल सीधा होता है तो वह रज्जुवत शक्ति देखने में आती है।

''और इसमे रूपांतरित हो जाओ।''

और अगर तुम इस रज्जु पर एकाग्र हुए, तुमने उसकी अनुभूति और उपलब्धि की, तब तुम एक नए प्रकाश से भर जाओगे। वह प्रकाश तुम्हारे मेरुदंड से आता होगा। वह तुम्हारे पूरे शरीर पर फैल जाएगा। वह तुम्हारे शरीर के पास भी चला जाएगा।

और जब प्रकाश शरीर के पार जाता है तब प्रभामंडल दिखाई देते है। हरेक आदमी का प्रभामंडल है। लेकिन साधारणत: तुम्हारे प्रभामंडल छाया की तरह है। जिनमे प्रकाश नहीं होता। वे तुम्हारे चारों और काली छाया की तरह फैले होते है। और वे प्रभामंडल तुम्हारे प्रत्येक मनोभाव को अभिव्यक्त करते है। तब तुम क्रोध में होते हो तो तुम्हारा प्रभामंडल रक्त रंजित जैसा हो जाता है। उसमे क्रोध लाल रंग में अभिव्यक्त होता है। जब तुम उदास, बुझे-बुझे हतप्रभ होते हो तो तुम्हारा प्रभामंडल

काले तंतुओं से भरा होता है। मानों तुम मृत्यु के निकट हो—सब मृत और बोझिल। और जब यह मेरुदंड के भीतर का तंतु उपलब्ध होता है तब तुम्हारा प्रभामंडल सचमुच में प्रभा मंडित होता है।

इस लिए बुद्ध, महावीर, कृष्ण क्राइस्ट, महज सजावट के लिए प्रभामंडल से नहीं चित्रित किए जाते है। वे प्रभामंडल सच में होता है। तुम्हारा मेरुदंड प्रकाश विकिरणित करने लगता है। भीतर तुम बुद्धत्व को प्राप्त होते हो, बहार तुम्हारा सारा शरीर प्रकाश, प्रकाश शरीर हो उठता है। और तब उसकी प्रभा बहार भी फैलने लगती है। इसलिए किसी बुद्ध पुरूष के लिए किसी से यह पूछना जरूरी नहीं है कि तुम क्या हो। तुम्हारा प्रभामंडल सब बता देगा। और जब कोई शिष्य बुद्धत्व प्राप्त करता है तो गुरु को पता हो जाता है। क्योंकि प्रभामंडल सब प्रकट कर देता है।

मैं तुम्हें एक कहानी बताऊ। एक चीनी संत, हुई नेंग, जब पहले-पहल अपने गुरु के पास पहुंचा तो गुरु ने कहा कि तुम किस लिए आए हो। तुम्हें मेरे पास आने की जरूरत नहीं थी। हुई नेंग की समझ में कुछ नहीं आया। उसने सोचा कि अभी गुरु द्वारा स्वीकृत होने की उसकी पात्रता नहीं है। लेकिन गुरु कुछ और ही चीज देख रहा था, वह द्वारा स्वीकृत होने की उसकी पात्रता नहीं है। लेकिन गुरु कह रहा था कि अगर तुम मेरे पास नहीं भी आओ तो भी देर-अबेर यह घटना घटने ही वाली है। तुम उसमे ही हो। इसलिए मेरे पास आने की जरूरत नहीं है।

लेकिन हुई नेंग ने प्रार्थना की कि मुझे अस्वीकार न करें। तो गुरु ने उसे प्रवेश दिया और कहा कि आश्रम के पिछवाड़े में जो रसोईघर है उसमे जाकर काम करो। और फिर दूसरी बार मेरे पास मत आना। जब जरूरत होगी, मैं ही तुम्हारे पास आऊँगा।

हुई नेंग को कोई ध्यान करने को नहीं बताया गया न कोई शास्त्र पढ़ने को कहा गया। उसे कुछ भी नहीं सिखाया गया। उसे बस रसोईघर में रख दिया गया। वह एक बहुत बड़ा आश्रम था। जिसमें कोई पाँच सौ भिक्षु रहते थे। उनमें पंडित विद्घान ध्यानी योगी सब थे। और सब साधना में लगे थे। लेकिन हुई नेंग केवल चावल साफ कतरा, या कुटता था। और रसोई के भीतर ही काम करता रहा। इस तरह से बारह वर्ष बीत गये। हुई नेंग इस बीच गुरु के पास दुबारा नहीं गया। क्योंकि इजाजत नहीं थे। वह प्रतीक्षा करता रहा। वह सिर्फ प्रतीक्षा ही करता रहा और लोग उसे महज नौकर समझते थे। कोई उस पर ध्यान भी नहीं देता था। उस आश्रम में पंडितों और ध्यानियों की कमी नहीं थी। उनके बीच एक चावल कूटनें वाले की क्या बिसात थी।

और फिर एक दिन गुरु ने घोषणा की कि मेरी मृत्यु निकट हे और मैं अब चाहता हूं कि किसी को अपना उत्तराधिकारी बनाऊं। इसलिए जो समझते हों कि वे बुद्धत्व को प्राप्त है, वे चार पंक्तियों की एक कविता रचे। जिसमे वह सब व्यक्त कर दें जो उन्होंने जाना है। गुरु ने यह भी कहा कि जिसकी कविता में सच में बुद्धत्व व्यक्ति होगा, उसे में अपना उतराधिकारी चुनूंगा।

उस आश्रम में एक महापंडित था। इसलिए उस प्रतियोगिता में किसी ने भाग नहीं लिया। सब यही सोचते थे कि महापंडित जीतेगा। वह शास्त्रों का बड़ा ज्ञाता था। सो उसने चार पंक्तियां लिखी। उन चार पंक्तियों में उसने लिखा-

मन एक दर्पण है, जिस पर धूल जम जाती है।
धूल को साफ कर दो, सत्य अनुभव में आ जाता है।

बुद्धत्व प्राप्ति हो जाती है।
लेकिन वह महापंडित भी डरता था। क्योंकि गुरु को पता था कि कौन ज्ञान को उपलब्ध है। कौन नहीं। यद्यपि महापंडित ने जो लिखा था वह बहुत सुंदर था। सब शास्त्रों का सार-निचोड था। यही तो सब वेदों का सार था। लेकिन पंडित डरता था कि यह उसने शास्त्रों से लिया था। इसमे उसका अपना कुछ भी नहीं है। इस लिए वह सीधा गुरु के पास नहीं गया। वह रात के अंधेरे में

गुरु की झोपड़ी पर गया, और उनकी दीवार पर वे चार पंक्तियां लिख दी। उसने नीचे हस्ताक्षर भी नहीं किया। उसने सोचा कि अगर गुरु ने उन्हें स्वीकृति दी तो मैं कहूंगा कि मैंने लिखा है। और अगर गुरु ने ठीक नहीं कहां तो चुप रहूंगा।

लेकिन गुरु ने स्वीकृति दे दी। सुबह उन्होंने कहां कि जिस व्यक्ति ने ये पंक्ति लिखी है वह ज्ञानी है। समूचे आश्रम में उसकी चर्चा होने लगी। सब तो जानते थे कि किसने लिखा है। वे चर्चा करने लगे कि पंक्तियां तो सुंदर है। सचमुच सुंदर थी।

इसी चर्चा में लगे कुछ भिक्षु रसोईघर में पहुंचे। ये चाय पीते थे। और चर्चा करते थे। हुई नेंग उन्हें चाय पील रहा था। उसने सह बात सुनी। जब वे चार पंक्तियां उसने सुनी तब वह हंसा। इस पर किसी ने उससे पूछा कि तुम क्यों हंस रहे हो। तुम तो कुछ जानते भी नहीं हो। बारह वर्षों से तुम तो चोंके से बहार भी नहीं निकले हो। तुम्हें किस बात को पता है। तुम क्यों हंस रहे हो।

किसी ने इससे पहले उस भिक्षु को हंसते नहीं देखा था। वह तो महा मूढ़ समझा जाता था। जिसे बात करनी भी नहीं आती थी। उसने कहा कि मैं लिखना नहीं जानता हूं और मैं ज्ञानी भी नहीं हूं। लेकिन वे चार पंक्तियां गलत है। अगर कोई व्यक्ति मेरे साथ आये तो मैं चार पंक्तियां बना सकता हूं। और वह उसे दीवार पर लिख दे। मैं लिखना नहीं जानता हूं।

एक भिक्षु मजाक में उसके साथ चल दिया। उसने पीछे ऐ भीड़ भी वहां पहूंच गई। सब के लिए ये कुतूहल भर बात थी कि एक चावल कूटनें वाला, ब्रह्म ज्ञान की चार लाईनें बातयेगा। नेंग ने लिखवाया:

कैसा दर्पण, कैसी धूल।
न कोई मन है,

न कोई दर्पण,

फिर धूल जमेगी कहां?

जो यह जान गया

वह उपल्बध हो गया धर्म को।
लेकिन जब गुरु आया तो उसने कहा की ये गलत है। हुई नेंग ने गुरु के पैर छुए और वह रसोई घर में लोट गया।

रात में जब सब सोए थे, गुरु नेंग के पास आया। और चुप से कहां, तुम सही हो, लेकिन मैं तुम्हारी बात को उन मूर्खों के सामने सही नहीं कह सकता। वे विद्घान मूर्ख है। और अगर मैं कहता हूं कि मेरे उत्तराधिकारी तुम हो तो वह तुम्हें मार देंगे। और यह बात दूसरों को मत कहाना। तुम यहां से भाग जाओ। जिस दिन तुम यहां आये थे। उसी दिन मैं जान गया था तुम्हारे प्रभामंडल को देख कर। कि तुम ही मेरे उतराधिकारी हो। और बारह वर्ष के मौन ने, जिसमे तुम्हारा प्रभामंडल पूर्ण हो चला। तुम पूर्ण चंद्र हो गए हो। लेकिन यहां से निकल जाओ वरना वे लोग तुम्हें मार देंगे। तुम यहां बारह वर्ष से हो, निरंतर तुम्हारे प्रकाश विकिरण हो रहा है। लेकिन कोई उसे देख नहीं सका। यद्यपि हर दिन कोई न कोई तुम्हें दो या तीन बार दिन में देखता है। इसी लिए मैंने तुम्हें रसोई घर में रखा था। कोई तुम्हारे प्रभामंडल को नहीं देख सका। इस लिए तुम यहां से भाग जाओ।

जब मेरुदंड का यह तंतु देख लिया जाता है, उपलब्ध होता है, तब तुम्हारे चारों और एक प्रभामंडल बढ़ने लगता है। इसमें रूपांतरित हो जाओ। उस प्रकाश से भर जाओ और रूपांतरित हो जाओ। यह भी केंद्रित होना है, मेरुदंड में केंद्रित होना।

अगर तुम शरीर वादी हो तो यह तुम्हारे काम आयेगी। अगर नहीं तो यह कठिन है। तब भीतर से शरीर को देखना कठिन होगा। यह विधि पुरूषों की बजाएं स्त्रियों के लिए ज्यादा कारगर होगी। स्त्रियां ज्यादा शरीवादी होती है। वे शरीर में अधिक रहती है। और कल्पनाशील भी होती है। शरीर का मनोदर्शन उनके लिए आसान है। स्त्रियां पुरूषों से ज्यादा शरीर केंद्रित होती है। लेकिन जो कोई भी शरीर को महसूस कर सकता है। जो कोई भी आँख बंद कर अंदर शरीर को देख सकता है। उसके लिए यह विधि बहुत सहयोगी है।

पहले अपने मेरुदंड को देखो, फिर उसके बीच से जाती हुई रजत-रज्जु को। पहले तो वह कल्पना ही होगी। लेकिन धीरे-धीरे तुम पाओगे कि कल्पना विलीन हो गई है। और जिस क्षण तुम आंतरिक तत्व को देखोगें, अचानक तुम्हें तुम्हारे भीतर प्रकाश का विस्फोट अनुभव होगा।

कभी-कभी यह घटना प्रयास के बिना भी घटती है। यह होता है। फिर तुम्हें कहुं, किसी गहरे संभोग के क्षण में यह होता है। तंत्र जानता है कि गहरे काम-कृत्य में तुम्हारी सारी ऊर्जा रीढ़ के पास इकट्ठी हो जाता है। असल में गहरे काम कृत्य में रीढ़ बिजली छोड़ने लगती है। कभी-कभी तो ऐसा होता है। कि रीढ़ को छूने से तुम्हें धक्का लगता है। और अगर संभोग गहरा हो, प्रेमपूर्ण हो, लंबा हो, अगर दो प्रेमी प्रगाढ़ प्रेमालिंगन में हों, शांत और निश्चल, एक दूसरे को भरते हुए। तो घटना घटती है। कई बार ऐसा हुआ है कि अँधेरा कमरा अचानक रोशनी से भर जाता है। और दोनों शरीरों काक एक नीली प्रभामंडल घेर लेता है।

ऐसी अनेक घटनाएं हुई है। तुम्हारे अनुभव में भी ऐसा हुआ होगा। कि अंधेरे कमरे में गहरे प्रेम में उतरने पर तुम्हारे दो शरीरों के चारों और एक रोशनी सी हो गई है। और फैल कर पूरे कमरे में भर गई हो। कई बार ऐसा हुआ है कि किसी दृश्य कारण के बिना ही कमरे की मेज पर से अचानक चीजें उछल कर नीचे गिर गई है। ओर अब मानस्विद बताते है कि गहरे काम-कृत्य में बिजली की तरंगें छूटती है। और उसके कई प्रभाव और परिमाण हो सकते है। चीजें अचानक गिर सकती है। हिल सकती है। टूट सकती है। ऐसे प्रकाश के फोटो भी लिए गए है। लेकिन यह प्रकाश सदा मेरुदंड के इर्द-गिर्द इकट्ठा होता है।

तो कभी-कभी काम-कृत्य के दौरान भी तुम जाग सकते हो। अगर तुम अपने मेरुदंड के बीच से जाती हुई रजत-रज्जु को देख सको। तंत्र को यह बात भलीभंति पता है और उसने इस पर काम भी किया है। तंत्र नपे इस उपलब्धि के लिए संभोग का भी उपयोग किया है। लेकिन उसके लिए काम कृत्य को सर्वथा भिन्न ढंग का होना पड़ेगा। उसका गुण धर्म भिन्न होगा। उस हालत में काम कृत्य किसी तरह निबट लेने की, महज स्खलन क द्वारा छुट्टी पा लेने की, झट-पट उससे गुजर जाने की बात नहीं रहेगी। तब वह एक शारीरिक कर्म नहीं रहेगा। तब वह एक गहरा आध्यात्मिक मिलन होगा। तब यथार्थ में वह दो देहों के द्वारा दो आंतरिकताओं का, दो आत्माओं का एक दूसरे में प्रवेश होगा।

इसलिए मेरा सुझाव है कि जब तुम गहरे काम कृत्य में होओ तो इस विधि को प्रयोग में लाओ। यह आसान हो जायेगी। यौन को भूल जाओ। जब गहरे आलिंगन में उतरो बस भीतर रहो। और दूसरे व्यक्ति को भूल जाओ। भीतर जाओ और अपने मेरुदंड को देखो। उस समय मेरू दंड के पास अधिक उर्जा प्रवाहित होती है। क्योंकि तुम शांत होते हो और तुम्हारा शरीर विश्राम में होता है। प्रेम गहरे से गहरा विश्राम है, लेकिन हमने उसे भी तनाव बना लिया है। हमने उसे एक चिंता एक बोझ में बदल लिया है।

प्रेम की ऊष्मा में, जब तुम भरे-भरे और शिथिल हो, आंखें बंद कर लो। सामान्यत: पुरूष आंखें बंद नहीं करते। स्त्रियां करती है। इसलिए मैंने कहा कि पुरूषों की बजाएं स्त्रियां अधिक शरीर वादी है। काम-कृत्य के गहरे आलिंगन में उतरने पर स्त्रियां आंखें बंद कर लेती है। दरअसल वे खुली आंखों से प्रेम नहीं कर सकती। आंखों के बंद रहने पर वे भीतर से शरीर को अधिक महसूस कर पाती है।

तो आंखें बंद कर लो और शरीर को महसूस करो। विश्राम में उतर जाओ और मेरूदंड पर चित एकाग्र करो। और यह सूत्र बहुत सरल ढंग से कहता है: ‘’इसमें रूपांतरित हो जाओ।‘’ तुम इसके द्वारा रूपांतरित हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-9

तंत्र-सूत्र—विधि-15 ओशो

केंद्रित होने की तीसरी विधि:

lord-shiva-तंत्र-सूत्र—विधि-15 विज्ञान भैरव तंत्र–ओशो

‘’सिर के सात द्वारों को अपने हाथों से बंद करने पर आंखों के बीच का स्थान सर्वग्राही हो जाता है।‘’
यह एक पुरानी से पुरानी विधि है और इसका प्रयोग भी बहुत हुआ है। यह सरलतम विधियों में एक है। सिर के सभी द्वारों को, आँख, कान, नाक, मुंह, सबको बंद कर दो। जब सिर के सब द्वार दरवाजे बंद हो जाते है तो तुम्हारी चेतना तो सतत बहार बह रही है। एकाएक रूक जाती है। ठहर जाती है। वह अब बाहर नहीं जा सकती।

तुमने ख्याल नहीं किया कि अगर तुम क्षण भर के लिए श्वास लेना बंद कर दो तो तुम्हारा मन भी ठहर जाता है। क्यों? क्योंकि श्वास के साथ मन चलता है। वह मन का एक संस्कार है। तुम्हें समझना चाहिए कि यह संस्कार क्या है। तभी इस सूत्र को समझना आसान होगा।
रूस के अति प्रसिद्ध मानस्विद पावलफ ने संस्कारजनित प्रतिक्रिया को, कंडीशंड रिफ्लेक्स को दुनियाभर में आम बोलचाल में शामिल करा दिया है। जो व्यक्ति भी मनोविज्ञान से जरा भी परिचित है, इस शब्द को जानता है। विचार की दो श्रृंखलाएं कोई भी दो श्रृंखलाएं इस तरह एक दूसरे से जुड़ सी जाती है। कि अगर तुम उनमें से एक को चलाओ तो दूसरी अपने आप शुरू हो जाती है।

पावलफ ने एक कुत्ते पर प्रयोग किया। उसने देखा कि तुम अगर कुत्ते के सामने खाना रख दो वक उसकी जीभ से लार बहने लगती है। जीभ बहार निकल आती है। और वह भोजन के लिए तैयार हो जाता है। कुत्ता जब भोजन देखता है या उसकी कल्पना करता है तो लार बहने लगती है। लेकिन पावलफ ने इस प्रक्रिया के साथ दूसरी बात जोड़ दी। जब भी भोजन रखा

जाए और कुत्ते की लार टपकने लगे। वह दूसरी चीज करता; उदाहरण के लिए, वह एक घंटी बजाता और कुत्ता उस घंटी को सुनता।

पंद्रह दिन तक जब भी भोजन रखा जाता, घंटी भी बजती। और तब सोलहवें दिन कुत्ते के सामने भोजन नहीं रखा गया, केवल घंटी बजाईं गई। लेकिन तब भी कुत्ते के मुहँ से लार बहने लगी। और जीभ बाहर आ गई, मानो भोजन सामने रखा हो।

वहां भोजन नहीं था, सिर्फ घंटी थी। अब घंटी बजने और लार टपकने के बीच कोई स्वाभाविक संबंध नहीं था। लार का स्वाभाविक संबंध भोजन के साथ है। लेकिन अब घंटी का रोज-रोज बजना लार के साथ जुड़ गया था, संबंधित हो गया था। और इसलिए मात्र घंटी के बजने पर भी लार बहने लगी।

पावलफ के अनुसार—और पावलफ सही है—हमारा समूचा जीवन एक कंडीशंड प्रोसेस है। मन संस्कार है। इसलिए अगर तुम उस संस्कार के भीतर कोई एक चीज बंद कर दो तो उससे जूड़ी और सारी चीजें भी बंद हो जाती है।

उदाहरण के लिए विचार और श्वास है। विचारणा सदा ही श्वास के साथ चलती है। तुम बिना श्वास विचार नहीं कर सकते। तुम श्वास के प्रति सजग नहीं रहते, लेकिन श्वास सतत चलती रहती है। दिन-रात चलती रहती है। और प्रत्येक विचार, विचार की प्रक्रिया ही श्वास की प्रक्रिया से जुड़ी है। इसलिए अगर तुम अचानक अपनी श्‍वास रोक लो तो विचार भी रूक जाएगा।

वैसे ही अगर सिर के सातों छिद्र, उसके सातों द्वार बंद कर दिए जाएं तो तुम्हारी चेतना अचानक गति करना बंद कर देगी। तब चेतना भीतर थिर हो जाती है। और उसका यह भीतर थिर होना तुम्हारी आंखों के बीच के बीच स्थान बना देता है। वह स्थान ही त्रिनेत्र, तीसरी आँख कहलाती है। अगर सिर के सभी द्वार बंद कर दिये जाये तो तुम बाहर गति नहीं कर सकते। क्योंकि तुम सदा इन्हीं द्वारों से बाहर जाते रहे हो। तब तुम भीतर थिर हो जाते हो। और वह थिर होना, एकाग्र इन दो आंखों, साधारण आंखों के बीच घटित होता है। चेतना इन दो आंखों के बीच के स्थान पर केंद्रित हो जाती है। उस स्थान को ही त्रिनेत्र कहते है।

यह स्थान सर्वग्राही सर्वव्यापक हो जाता है। यह सूत्र कहता है कि इस स्थान में सब सम्मिलित है सारा आस्तित्व समाया है। अगर तुम इस स्थान को अनुभव कर लो तो तुमने सब को अनुभव कर लिया। एक बार तुम्हें इन दो आंखों के बीच के आकाश की प्रतीति हो गई तो तुमने पूरे अस्तित्व को जाने लिया, उसकी समग्रता को जान लिया, क्योंकि यह आंतरिक आकाश सर्वग्राही है, सर्वव्यापक है, कुछ भी उसके बाहर नहीं है।

उपनिषाद कहते है: ''एक को जानकर सब जान लिया जाता है।''

ये दो आंखें तो सीमित को ही देख सकती है; तीसरी आँख असीम को देखती है। ये दो आंखे तो पदार्थ को ही देख सकती है; तीसरी आँख अपदार्थ को, अध्यात्म को देखती है। इन दो आंखों से तुम कभी ऊर्जा की प्रतीति नहीं कर सकते , ऊर्जा को नहीं देख सकते, सिर्फ पदार्थ को देख सकते हो। लेकिन तीसरी आँख से स्वयं ऊर्जा देखी जाती है।

द्वारों का बंद किया जाना केंद्रित होने का उपाय है। क्योंकि एक बार जब चेतना के प्रवाह का बाहर जाना रूक जाता है। वह अपने उदगम पर थिर हो जाती है। और चेतना का यह उदगम ही त्रिनेत्र है। अगर तुम इस त्रिनेत्र पर केंद्रित हो जाओ तो बहुत चीजें घटित होती है। पहली चीज तो यह पता चलती है कि सारा संसार तुम्हारे भीतर है।

स्वामी राम कहा करते थे कि सूर्य मेरे भीतर चलता है। तारे मेरे भीतर चलते है, चाँद मेरे भीतर उदित होता है; सारा ब्रह्मांड मेरे भीतर है। जब उन्होंने पहली बार यह कहा तो उनके शिष्यों कि वे पागल हो गए है। राम तीर्थ के भीतर सितारे कैसे हो सकते है।

वे इसी त्रिनेत्र की बात कर रहे थे। इसी आंतरिक आकाश के संबंध में। जब पहली बार यह आंतरिक आकाश उपलब्ध होता है तो यही भाव होता है। जब तुम देखते हो कि सब कुछ तुम्हारे भी तर है तब तुम ब्रह्मांड ही हो जाते हो।

त्रिनेत्र तुम्हारे भौतिक शरीर का हिस्सा नहीं है। वह तुम्हारे भौतिक शरीर का अंग नहीं है। तुम्हारी आंखों के बीच का स्थान तुम्हारे शरी तक ही सीमित नहीं है। वह तो वह अनंत आकाश है जो तुम्हारे भीतर प्रवेश कर गया है। और एक बार यह आकाश जान लिया जाए तो तुम फिर वही व्यक्ति नहीं रहते। जिस क्षण तुमने इस अंतरस्थ आकाश को जान लिया उसी क्षण तुमने अमृत को जान लिया तब कोई मृत्यु नहीं है।

जब तुम पहली बार इस आकाश को जानोंगे, तुम्हारा जीवन प्रामाणिक और प्रगाढ़ हो जाएगा; तब पहली बार तुम सच में जीवंत होओगे। तब किसी सुरक्षा की जरूरत नहीं रहेगी। अब कोई भय संभव नहीं है। अब तुम्हारी हत्या नहीं हो सकती। अब तुमसे कुछ भी छीना नहीं जा सकता। अब सारा ब्रह्मांड तुम्हारा है, तुम ही ब्रह्मांड हो। जिन लोगों ने इस अंतरस्थ आकाश को जाना है उन्होंने ही आनंदमग्न होकर उरदघोषणा की है: अहं ब्रह्मास्मि। मैं ही ब्रह्मांड हूं, मैं ही ब्रह्मा हूं........।

सूफी संत मंसूर को इसी तीसरी आँख के अनुभव के कारण कत्ल कर दिया गया। जब उसने पहली बार इस आंतरिक आकाश को जाना, वह चिल्लाकर कहने लगा: अनलहक़, मैं ही परमात्मा हूं, भारत में वह पूजा जाता। क्योंकि भारत ने ऐसे अनेक लोग देखे है जिन्हें इस तीसरी आँख आंतरिक आकाश का बोध हुआ। लेकिन मुसलमानों के देश में यह बात कठिन हो गई। और मंसूर का यह वक्तव्य कि मैं परमात्मा हूं, अनलहक़, अहं ब्रह्मास्मि, धर्मविरोधी मालूम हुआ। क्योंकि मुसलमान यह सोच भी नहीं सकते कि मनुष्य और परमात्मा एक है। मनुष्य–मनुष्य है। मनुष्य सृष्टि है, और परमात्मा सृष्टा। सृष्टि स्त्रष्टा कैसे हो सकता है।

इस लिए मंसूर का यह वक्तव्य नहीं समझा जा सका। और उसकी हत्या कर दी गई। लेकिन जब उसको कत्ल किया जा रहा था तब वह हंस रहा था। तो किसी ने पूछा कि हंस क्यों रहे हो। मंसूर। कहते है कि मंसूर ने कहा मैं इसलिए हंस रहा हूं कि तुम मुझे नहीं मार रहे हो। तुम मेरी हत्या नहीं कर सकते। तुम्हें मेरे शरीर से धोखा हुआ है। लेकिन मैं शरीर नहीं हूं। मैं इस ब्रह्मांड को बनाने वाला हूं; यह मेरी अंगुलि थी जिसने आरंभ में समूचे ब्रह्मांड को चलाया था।

भारत में मंसूर आसानी से समझा जाता, सदियों-सदियों से यह भाषा जानी पहचानी है। हम जानते हे कि एक घड़ी आती है जब यह आंतरिक आकाश जाना जाता है। तब जानने वाला पागल हो जाता है। और यह ज्ञान इतना निश्‍चित है कि यदि तुम मंसूर की हत्या भी कर दो तो वह अपना वक्तव्य नहीं बदलेगा। क्योंकि हकीकत में, जहां तक उसका संबंध है,

तुम उसकी हत्या नहीं कर सकते। अब वह पूर्ण हो गया है। उसे मिटाने का उपाय नहीं है।

मंसूर के बाद सूफी सीख गए कि चुप रहना बेहतर है। इसलिए मंसूर के बाद सूफी परंम्परा में शिष्यों को सतत सिखाया गया कि जब भी तुम तीसरी आँख को उपल्बध करो चुप रहो, कुछ कहो मत। जब भी घटित हो, चुप्पी साध लो। कुछ भी मत कहो। या वे ही चीजें औपचारिक ढंग से कहे जाओ जो लोग मानते है।

इसलिए अब इस्लाम में दो परंपराएं है। एक सामान्य परंपरा है—बाहरी, लौकिक। और दूसरी परंपरा असली इसलाम है, सूफीवाद जो गुह्म है। लेकिन सूफी चुप रहते है। क्योंकि मंसूर के बाद उन्होंने सीख लिया कि उस भाषा में बोलना जो कि तीसरी आँख के खुलने पर प्रकट होती है। व्यर्थ की कठिनाई में पड़ना है, और उससे किसी को मदद भी नहीं होती।

यह सूत्र कहता है: ''सिर के सात द्वारों को अपने हाथों से बंद करने पर आंखों के बीच का स्थान सर्वग्राही, सर्वव्यापी हो जाता है।''

तुम्हारा आंतरिक आकाश पूरा आकाश हो जाता है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-9

तंत्र-सूत्र—विधि-16 (ओशो)

केंद्रित होने की चौथी विधि:
''हे भगवती, जब इंद्रियाँ ह्रदय में विलीन हों, कमल के केंद्र पर पहुँचों।''

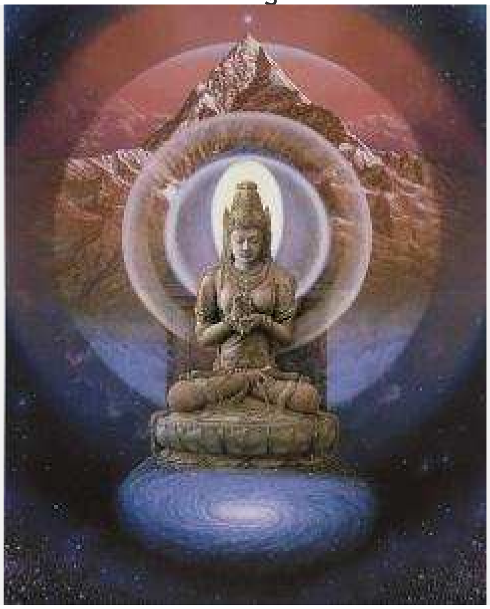

विज्ञान भैरव तंत्र–ध्यान विधि–16 (ओशो)

प्रत्येक विधि किसी मन-विशेष के लिए उपयोगी है। जि विधि की अभी हम चर्चा कर रहे थे—तीसरी विधि, सिर के द्वारों को बंद करने वाली विधि—उसका उपयोग अनेक लोग कर सकते है। वह बहुत सरल है और बहुत खतरनाक नहीं है। उसे तुम आसानी से काम में ला सकते हो।

यह भी जरूरी नहीं है कि द्‌वारों को हाथ से बंद करो; बंद करना भी जरूरी है। इसलिए कानों के लिए डाट और आंखों के लिए पट्टी से काम चल जाएगा असली बात यह कि कुछ क्षणों के लिए ये कुछ सेंकेंड के लिए सिर के द्‌वारों को पूरी तरह से बंद कर लो।

इसका प्रयोग करो, अभ्यास करो। अचानक करने से ही यह कारगर है, अचानक में ही राज छिपा है। बिस्तर में पड़े-पड़े अचानक सभी द्‌वारों को कुछ सेकेंड के लिए बंद कर लो। और तब भीतर देखो क्या होता है।
जब तुम्हारा दम घुटने लगे, क्योंकि श्वास भी बंद हो जाएगी, तब भी इसे जारी रखे और तब तक जारी रखो जब तक कि असह्य न हो जाये। और जब असह्य हो जाएगा, तब तुम द्‌वारों को ज्यादा देर बंद नहीं रख सकोगे, इसलिए उसकी फिक्र छोड़ दो। तब आंतरिक शक्ति सभी द्‌वारों के खुद खोल देगी। लेकिन जहां तक तुम्हारा संबंध है, तुम बंद रखो। जब दम घुटने लगे, तब वह क्षण आता है, निर्णायक क्षण, क्योंकि घुटन पुराने एसोसिएशन तोड़ डालती है। इसलिए कुछ और क्षण जारी रख सको तो अच्छा।

यह काम कठिन होगा, मुश्किल होगा, और तुम्हें लगेगा कि मौत आ गई। लेकिन डरों मत। तुम मर नहीं सकते। क्योंकि द्‌वारों को बंद भर करने से तुम नहीं मरोगे। लेकिन जब लगे कि में मर जाऊँगा, तब समझो कि वह क्षण आ गया।

अगर तुम उस क्षण में धीरज से लगे रहे तो अचानक हर चीज प्रकाशित हो जाएगी। तब तुम उस आंतरिक आकाश को महसूस करोगे। जो कि फैलता ही जाता है, और जिसमें समग्र समाया हुआ है। तब द्‌वारों को खोल दो और तब इस प्रयोग को फिर-फिर करो। जब भी समय मिले, इसका प्रयोग में लाओ।

लेकिन इसका अभ्यास मत बनाओ। तुम श्वास को कुछ क्षण के लिए रोकने का अभ्यास कर सकते हो। लेकिन उससे कुछ लाभ नहीं होगा। एक आकस्मिक, अचानक झटक की जरूरत है। उस झटके में तुम्हारी चेतना के पुराने स्रोतों का प्रवाह बंद हो जाता है। और कोई नयी बात संभव हो जाती है।

भारत में अभी भी सर्वत्र अनेक लोग इस विधि का अभ्यास करते है। लेकिन कठिनाई यह है कि वे अभ्यास करते है। जब कि यह एक अचानक विधि हे। अगर तुम अभ्यास करो तो कुछ भी नहीं होगा। कुछ भी नहीं होगा। अगर मैं तुम्हें अचानक इस कमरे से बाहर निकाल फेंकूंगा तो तुम्हारे विचार बंद हो जाएंगे। लेकिन अगर हम रोज-रोज इसका अभ्यास करें तो कुछ नहीं होगा। तब वह एक यांत्रिक आदत बन जाएगी।

इसलिए अभ्यास मत करो; जब भी हो सके प्रयोग करो। तो धीरे-धीरे तुम्हें अचानक एक आंतरिक आकाश का बोध होगा। वह आंतरिक आकाश तुम्हारी चेतना में तभी प्रकट होता है जब तुम मृत्यु के कगार पर होते हो। तब तुम्हें लगता है कि अंग में एक क्षण भी नहीं जीऊंगा। अब मृत्यु निकट है; तभी वह सही क्षण आता है। इसलिए लगे रहो, डरों मत।

मृत्यु इतनी आसान नहीं है। कम से कम इस विधि को प्रयोग में लाते हुए कोई व्यक्ति अब तक मरा नहीं है। इसमे अंतर्निहित सुरक्षा के उपाय है, यही कारण है कि तुम नहीं मरोगे। मृत्यु के पहले आदमी बेहोश हो जाता है। इसलिए होश में रहते हुए यह भाव आए कि मैं मर रहा हूं तो डरों मत। तुम अब भी होश में हो, इसलिए मरोगे नहीं। और अगर तुम बेहोश हो गए तो तुम्हारी श्वास चलने लगेगी। तब तुम उसे रोक नहीं पाओगे।

और तुम कान के लिए डाट काम में ला सकते हो। आंखों के पट्टी बाँध सकते हो। लेकिन नाक और मुंह के लिए कोई डाट उपयोग नहीं करने है। क्योंकि तब वह संघातक हो सकता है। कम से कम नाक को छोड़ रखना ठीक है। उसे हाथ से ही बंद करो। उस हालत में जब बेहोश होने लगोगे तो हाथ अपने आप ही ढीला हो जाएगा। और श्वास वापस आ जाएगी। तो इसमे अंतर्निहित सुरक्षा है। यह विधि बहुतों के काम की है।

चौथी विधि उनके लिए है जिनका ह्रदय बहुत विकसित है, जो प्रेम और भाव के लोग है, भाव-प्रवण लोग है।

''हे भगवती, जब इंद्रियाँ ह्रदय में विलीन हों, कमल के केंद्र पर पहुंचो।''

यह विधि ह्रदय-प्रधान व्यक्ति के द्वारा काम में लायी जा सकती है। इसलिए पहले यह समझने की कोशिश करो कि ह्रदय प्रधान व्यक्ति कौन है। तब यह विधि समझ सकोगे।

जो ह्रदय-प्रधान है, उस व्यक्ति के लिए सब कुछ ह्रदय ही है। अगर तुम उसे प्यार करोगे तो उसका ह्रदय उस प्यार को अनुभव करेगा, उसका मस्तिष्क नहीं। मस्तिष्क-प्रधान व्यक्ति प्रेम किए जाने पर भी प्रेम का अनुभव मस्तिष्क से लेता है। वह उसके संबंध में सोचता है, आयोजन करता है; उसका प्रेम भी मस्तिष्क का ही सुचिंतित आयोजन होता है, लेकिन भावपूर्ण व्यक्ति तर्क के बिना जीता है। वैसे ह्रदय के भी अपने तर्क है, लेकिन ह्रदय सोच-विचार नहीं करता है।

अगर कोई तुम्हें पूछे कि क्यों प्रेम करते हो और तुम उसे क्यों का जवाब दे सको तो तुम मस्तिष्क प्रधान व्यक्ति हो। और अगर तुम कहां कि मैं नहीं जानता, मैं सिर्फ प्रेम करता हूं, तो तुम ह्रदय प्रधान व्यक्ति हो। अगर तुम इतना भी कहते हो कि मैं उसे इसलिए प्यार करता हूं, कि वह सुंदर है, तो वहां बुद्धि आ गई। ह्रदयोन्मुख व्यक्ति के लिए कोई सुंदर इसलिए है कि वह उसे प्रेम करता है। मस्तिष्क वाला व्यक्ति किसी को इसलिए प्रेम करता है कि वह सुंदर है। बुद्धि पहले आती है और तब प्रेम आता है। ह्रदय प्रधान व्यक्ति के लिए प्रेम प्रथम है और शेष चीजें प्रेम के पीछे-पीछे चली आती है। वह ह्रदय में केंद्रित है, इसलिए जो भी घटित होता है वह पहले उसके ह्रदय को छूता है।

जरा अपने को देखो। हरेक क्षण तुम्हारे जीवन में अनेक चीजें घटित हो रही है। वे किसी स्थल को छूती है। तुम जा रहे हो और एक भिखारी सड़क पार करता है। वह भिखारी तुम्हें कहां छूता है। क्या तुम आर्थिक परिस्थिति पर सोच विचार करते हो। या क्या तुम यह विचारने लगते हो कि कैसे कानून के द्वारा भिखमंगी बंद की जाए। या कि कैसे एक समाजवादी समाज बनाया जाए। जहां भिखमँगे न हो।

यह एक मस्तिष्क प्रधान आदमी है। जो ऐसा सोचने लगता है। उसके लिए भिखारी महज विचार करने का आधार बन जाता हे। उसका ह्रदय अस्पर्शित रह जाता है। सिर्फ मस्तिष्क स्पर्शित होता है। वह इस भिखारी के लिए अभी और यहां कुछ नहीं करने जा रहा है। नहीं, वह साम्यवाद के लिए कुछ करेगा। वह भविष्य के लिए, किसी ऊटोपिया के लिए कुछ करेगा। वह उसके लिए अपना पूरा जीवन भी दे-दे, लेकिन अभी तत्क्षण वह कुछ नहीं कर सकता है। मस्तिष्क सदा भविष्य में रहता है। ह्रदय सदा यहां और अभी रहता है।

एक ह्रदय प्रधान व्यक्ति अभी ही भिखारी के लिए कुछ करेगा। यह भिखारी आदमी है, आंकड़ा नहीं। मस्तिष्क वाले आदमी के लिए वह गणित का आंकड़ा भर है। उसके लिए भिखमंगी बंद करना समस्या है, इस भिखारी की मदद की बात अप्रासंगिक है।

तो अपने को देखो, परखो। देखो कि तुम कैसे काम करते हो, देखो कि तुम ह्रदय की फिक्र करते हो या मस्तिष्क की। ह्रदयोन्मुख व्यक्ति हो तो यह विधि तुम्हारे काम की है। लेकिन यह बात भी ध्यान रखो कि हर आदमी आने को यह धोखा देने में लगा है कि मैं ह्रदयोन्मुख व्यक्ति हूं। हर आदमी सोचता है कि मैं बहुत प्रेमपूर्ण व्यक्ति हूं, भावुक किस्म का हूं। क्योंकि प्रेम एक ऐसी बुनियादी जरूरत है। कि अगर किसी को पता चले कि मेरे पास प्रेम करने वाला ह्रदय नहीं है। तो वह चैन से नहीं रह सकता। इसलिए हर आदमी ऐसा सोचे और माने चला जाता है।

लेकिन विश्वास करने से क्या होगा? निष्पक्षता के साथ अपना निरीक्षण करो। ऐसे जैसे कि तुम किसी दूसरे का निरीक्षण कर रहे हो और तब निर्णय लो। क्योंकि अपने को धोखा देने की जरूरत क्या है? और उससे लाभ भी क्या है? और अगर तुम अपने को धोखा भी दे दो तो तुम विधि को धोखा नहीं दे सकते। क्योंकि तब विधि को प्रयोग करने पर तुम पाओगे कि कुछ भी नहीं होता है।

लोग मेरे पास आते है। मैं उनसे पूछता हूं कि तुम किस कोटि के हो। उन्हें यथार्थत: कुछ पता नहीं है। उन्होंने कभी इस संबंध में सोचा ही नहीं कि वे किस कोटि के है। उन्हें अपने बारे में धुँधली धारणाएं है। दरअसल मात्र कल्पनाएं है। उनके पास कुछ आदर्श है, कुछ प्रतिमाएं है और वे सोचते है—सोचते क्या चाहते है—कि हम वे प्रतिमाएं होते। सच में वे है नहीं। और अक्सर तो यह होता है कि वे उसके ठीक विपरीत होते है।

इसका कारण है। जो व्यक्ति जोर देकर कहता है कि मैं ह्रदय प्रधान आदमी हूं, हो सकता है। वह ऐसा इसलिए कह रहा हो कि उसे अपने ह्रदय का अभाव खलता है। और वह भयभीत है। वह इस तथ्य को नहीं जान सकेगा। कि उसके पास ह्रदय नहीं है।

इस संसार पर एक नजर डालों। अगर अपने ह्रदय के बारे में हरेक आदमी का दावा सही है तो वह संसार इतना ह्रदय हीन नहीं हो सकता। यह संसार हम सबका कुछ जोड़ है। इसलिए कहीं कुछ अवश्य गलत है। वहां ह्रदय नहीं है।

सच तो यह है कि कभी ह्रदय को प्रशिक्षित ही नहीं क्या गया। मन प्रशिक्षित किया गया है। इसलिए मन है। मन को प्रशिक्षित करने के लिए स्कूल, कालेज, और विश्व विद्यालय है। लेकिन ह्रदय के प्रशिक्षण के लिए कोई जगह नहीं है। और मन का प्रशिक्षण लाभ दायी है, लेकिन ह्रदय का प्रशिक्षण खतरनाक है। क्योंकि अगर तुम्हारा ह्रदय प्रशिक्षित किया जाए तो तुम इस संसार के लिए बिलकुल व्यर्थ हो जाओगे। यह सारा संसार तो बुद्धि से चलता है। अगर तुम्हारा ह्रदय प्रशिक्षित हो तो तुम पूरे ढांचे से बाहर हो जाओगे। जब सारा संसार दाएं जाता होगा। तुम बाएं चलोगे। सभी जगह तुम अड़चन में पड़ोगे।

सच तो यह है कि मनुष्य जितना अधिक सुसभ्य बनता है। ह्रदय का प्रशिक्षण उतना ही कम हो जाता है। हम ता उसे भूल ही गए है। भूल गए है कि ह्रदय भी है या उसके प्रशिक्षण की जरूरत है। यही कारण है कि ऐसी विधियां जो आसानी से काम कर सकती थी, कभी काम नहीं करती।

अधिकांश धर्म ह्रदय-प्रधान विधियों पर आधारित है। ईसाइयत, इस्लाम, हिंदू तथा अन्य कई धर्म ह्रदयोन्मुख लोगो पर आधारित है। जितना ही पुराना कोई धर्म है वह उतना ही अधिक ह्रदय आधारिक है। तब वेद लिखे गए और हिंदू धर्म विकसित हो रहा था। तब लोग ह्रदयोन्मुख थे। उस समय मन प्रधान लोग खोजना मुश्किल था। लेकिन अभी समस्या उलटी है। तुम प्रार्थना नहीं कर सकते। क्योंकि प्रार्थना ह्रदय-आधारित विधि है।

यही कारण है कि पश्चिम में, जहां ईसाइयत का बोलबाला है—और ईसाइयत, खासकर कैथोलिक ईसाइयत प्रार्थना का धर्म है—प्रार्थना कठिन हो गई है। ईसाइयत में ध्यान के लिए कोई स्थान नहीं है। लेकिन अब पश्चिम में भी लोग ध्यान के लिए पागल हो रहे है। कोई अब चर्च नहीं जाता है। और अगर कोई जाता भी है तो वह महज औपचारिकता है। रविवारीय धर्म। क्यों? क्योंकि आज पश्चिम का जो आदमी है उसके लिए प्रार्थना सर्वथा असंगत हो गई है।

ध्यान ज्यादा मनोन्मुख है, प्रार्थना ज्यादा ह्रदयोन्मुख व्यक्ति की ध्यान-विधि है। यह विधि भी ह्रदय वाले व्यक्ति के लिए ही है।

''हे भगवती, जब इंद्रियाँ ह्रदय में विलीन हों, कमल के केंद्र पर पहुंचो।'

इस विधि के लिए करना क्या है? ''जब इंद्रियाँ हृदय में विलीन हों.......।'' प्रयोग करके देखो। कई उपाय संभव है। तुम किसी व्यक्ति को स्पर्श करते हो; अगर तुम हृदय वाले आदमी हो तो वह स्पर्श शीध्र ही तुम्हारे हृदय में पहुंच जाएगा। और तुम्हें उसकी गुणवत्ता महसूस हो सकती है। अगर तुम किसी मस्तिष्क वाले व्यक्ति का हाथ अपने हाथ में लोगे तो उसका हाथ ठंडा होगा—शारीरिक रूप से नहीं, भावात्मक रूप से। उसके हाथ में एक तरह का मुर्दा पन होगा। और अगर वह व्यक्ति हृदय वाला है तो उसके हाथ में एक ऊष्मा होगी; तब उसका हाथ तुम्हारे साथ पिघलने लगेगा। उसके हाथ से कोई चीज निकलकर तुम्हारे भीतर बहने लगेगी। और तुम दोनों के बीच एक तालमेल होगा। ऊष्मा का संवाद होगा।

यह ऊष्मा हृदय से आ रही है। यह मस्तिष्क से नहीं आ सकती, क्योंकि मस्तिष्क सदा ठंडा और हिसाबी है। हृदय ऊष्मा वाला है। वह हिसाबी नहीं है। मस्तिष्क सदा यह सोचता है कि कैसे ज्यादा लें। हृदय का भाव रहता है कि कैसे ज्यादा दें। वह जो ऊष्मा है वह दान है—ऊर्जा का दान, आंतरिक तरंगों का दान, जीवन का दान। यही वजह है कि तुम्हें उसमे एक गहरे घुलने का अनुभव होगा।

स्पर्श करो, छुओ। आँख बंद करो और किसी चीज को स्पर्श करो। अपने प्रेमी या प्रेमिका को छुओ, अपनी मां को या बच्चे को छुओ। या मित्र को, या वृक्ष फूल या महज धरती को छुओ। आंखें बंद रखो। और धरती और अपने हृदय के बीच, प्रेमिका और अपने बीच होते आंतरिक संवार को महसूस करो। भाव करो कि तुम्हारा हाथ ही तुम्हारा हृदय है। जो धरती को स्पर्श करने को बढ़ा है। स्पर्श की अनुभूति को हृदय से जुड़ने दो।

तुम संगीत सुन रहे हो, उसे मस्तिष्क से मत सुनो। अपने मस्तिष्क को भूल जाओ और समझो कि मैं बिना मस्तिष्क के हूं। मेरा कोई सिर नहीं है। अच्छा है कि अपने सोने के कमरे में अपना एक चित्र रख लो जिसमें सिर न हो। उस पर ध्यान को एकाग्र करो और भाव करो कि तुम बिना सिर के हो। सिर को आने ही मत दो और संगीत को हृदय से सुनो। भाव करो कि संगीत तुम्हारे हृदय में जा रहा है। हृदय को संगीत के साथ उद्वेलित होने दो। तुम्हारी इंद्रियों को भी हृदय से जुड़ने दो, मस्तिष्क से नहीं।

यह प्रयोग सभी इंद्रियों के साथ करो, और अधिकाधिक भाव करो। के प्रत्येक ऐंद्रिक अनुभव हृदय में जाता है और विलीन हो जाता है।

''हे भगवती, जब इंद्रियाँ हृदय में विलीन हों, कमल के केंद्र पर पहुँचों।''

हृदय ही कमल है। और इंद्रियाँ कमल के द्वार है, कमल का पंखुडियां है। पहली बात कि अपनी इंद्रियों को हृदय के साथ जुड़ने दो। और दूसरी कि सदा भाव करो कि इंद्रियाँ सीधे हृदय में गहरी उतरती है। और उसमे धुल मिल रही है। जब ये दो काम हो जाएंगे तभी तुम्हारी इंद्रियाँ तुम्हारी सहायता करेंगी। तब वे तुम्हें तुम्हारे हृदय तक पहुंचा देंगी। और तुम्हारा हृदय कमल बन जाएगा।

यह हृदय कमल तुम्हें तुम्हारा केंद्र देगा। और जब तुम अपने हृदय के केंद्र को जान लोगे तब नाभि केंद्र को पाना बहुत आसान हो जाएगा। यह बहुत आसान है। यह सूत्र उसकी चर्चा भी नहीं करता। उसकी जरूरत नहीं है। अगर तुम सच में और समग्रता से हृदय में विलय हो गए, और बुद्धि ने काम करना छोड़ दिया तो तुम नाभि केंद्र पर पहुंच जाओगे।

हृदय ने नाभि की और द्वारा खुलता है। सिर्फ सिर से नाभि की और जाना कठिन है। या अगर तुम कहीं सिर और हृदय के बीच में हो तो नाभि पर जाना कठिन है। एक बासर तुम हृदय में विलय हो जाओ तो तुम हृदय के पार नाभि-केंद्र में उतर गए। और वही बुनियादी है। मौलिक है।

यही कारण है कि प्रार्थना काम करती है। और इसी कारण से जीसस कह सके कि प्रेम ईश्वर है। यह बात पूरी-पूरी सही नहीं है, लेकिन प्रेम द्वार है। अगर तुम किसी के गहरे प्रेम में हो—किसके प्रेम में हो महत्व का नहीं है, प्रेम ही महत्व का है—इतने प्रेम में कि संबंध मस्तिष्क का न रहे, सिर्फ हृदय काम करे, तो यही प्रेम प्रार्थना बन जाएगा। और तुम्हारा प्रेमी या प्रेमिका भगवती बन जाएगी।

सच तो यह है कह हृदय की आँख और कुछ नहीं देख सकती है। यह बात तो साधारण प्रेम में भी घटित होती है। अगर तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो तो वह तुम्हारे लिए दिव्य हो उठता है। हो सकता है कि यह भाव बहुत स्थायी न हो और बहुत गहरा भी नहीं, लेकिन तत्क्षण तो प्रेमी या प्रेमिका दिव्य हो उठती है। देर-अबेर बुद्धि आकर पूरी चीज को नष्ट कर देगी। क्योंकि बुद्धि हस्तक्षेप कर सब व्यवस्था बिठाने लगेगी। उसे प्रेम की भी व्यवस्था बिठानी पड़ती है। और एक बार बुद्धि व्यवस्थापक हुई कि सब चीजें नष्ट हो जाती है।

आगर तुम सिर की व्यवस्था के बिना प्रेम में हो सको तो तुम्हारा प्रेम अनिवार्यत: प्रार्थना बनेगा। और तुम्हारी प्रेमिका द्वार बन जाएगी। तुम्हारा प्रेम तुम्हें हृदय में केंद्रित कर देगा। और एक बार तुम हृदय में केंद्रित हुए कि तुम अपने ही आप नाभि केंद्र में गहरे उतर जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-9

तंत्र-सूत्र—विधि-17 (ओशो)

केंद्रित होने की पांचवी विधि:

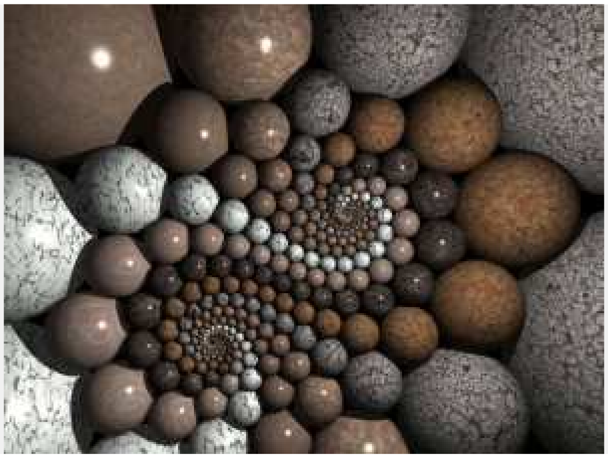

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र
(तंत्र-सूत्र—भाग-1)
प्रवचन-9

''मन को भूलकर मध्य में रहो—जब तक।''

यह सूत्र इतना ही है। किसी भी वैज्ञानिक सूत्र की तरह यह छोटा है, लेकिन ये थोड़ से शब्द भी तुम्हारे जीवन को समग्ररतः: बदल सकते है।

‘’मन को भूल कर मध्य में रहो—जब तक।‘’

‘’मध्य में रहो।‘’—बुद्ध ने अपने ध्यान की विधि इसी सूत्र के आधार पर विकसित की। उनका मार्ग मज्झम निकाय या मध्य मार्ग कहलाता है। बुद्ध कहते है, सदा मध्य में रहो, प्रत्येक चीज में।

एक बार राजकुमार श्रोण दीक्षित हुआ, बुद्ध ने उसे सन्यास में दीक्षित किया। वह राजकुमार अद्भुत व्यक्ति था। और जब वह संन्यास में दीक्षित हुआ तो सारा राज्य चकित रह गया। लोगों को यकीन नहीं हुआ कि राजकुमार श्रोण संन्यासी हो गया। किसी ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। क्योंकि श्रोण पूरा सांसारिक था। भोग-विलास में सर्वथा लिप्त रहता था। सारा दिन सूरा और सुंदरी ही उसका संसार थी।
तभी अचानक एक दिन बुद्ध उसके नगर में आए। राजकुमार श्रोण उनके दर्शन को गया। वह बुद्ध के चरणों में गिरा और बोला कि मुझे दीक्षित कर लें, मैं संसार छोड़ दूँगा।

जो लोग उसके साथ आए थे उन्हें भी इसकी खबर नहीं थी। ऐसी अचानक घटना थी यह। उन्होंने बुद्ध से पूछा कि यह क्या हो रहा है। यह तो चमत्कार है। श्रोण उस कोटि का व्यक्ति नहीं है। वह तो भोग विलास में रहा है। यह तो चमत्कार है। हमने तो कल्पना भी नहीं की थी कि श्रोण संन्यासी होगा। यह क्या हो रहा है। आपने कुछ कर दिया है।

बुद्ध ने कहा कि मैंने कुछ नहीं किया है। मन एक अति से दूसरी अति पर जा सकता है। वह मन का ढंग है। एक अति से दूसरी अति पर जाना। श्रोण कुछ नया नहीं कर रहा है। यह होना ही था। क्योंकि तुम मन के नियम नहीं जानते, इसलिए तुम चकित हो रहे हो।

मन एक अति से दूसरी अति पर गति करता रहता है। मन का यही ढंग है। यह रोज-रोज होता है। जो आदमी धन के पीछे पागल था वह अचानक सब कुछ छोड़कर नंगा फकीर हो जाता है। हम सोचते है कि चमत्कार हो गया। लेकिन यह सामान्य नियम के सिवाय कुछ नहीं है। जो आदमी धन के पीछे पागल नहीं है। उसके यह उपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वह त्याग करेगा। क्योंकि तुम एक अति से ही दूसरी अति पर जा सकेत हो। वैसे ही जैसे घड़ी का पैंडुलम एक अति से दूसरी अति पर डोलता रहता है।

इसलिए जो आदमी धन के लिए पागल था वह पागल होकर धन के खिलाफ जाएगा। लेकिन उसका पागलपन कायम रहेगा। वही मन है। जो आदमी कामवासना के लिए जीता था वह ब्रह्मचारी हो जा सकता है। एकांत में चला जा सकता है। लेकिन उसका पागलपन कायम रहेगा। पहले वह कामवासना के लिए जीता था अब वह कामवासना के खिलाफ होकर जिएगा। लेकिन उसका रूख उसकी दृष्टि वहीं की वहीं रहेगी। इसलिए ब्रह्मचारी सच में कामवासना के पार नहीं गया है। उसका पूरा चित काम-वासना प्रधान हे। वह सिर्फ विरूद्ध हो गया है। उसने काम का अतिक्रमण नहीं किया है। अतिक्रमण का मार्ग सदा मध्य में है। वह कभी अति में नहीं है।

तो बुद्ध ने कहा कि यह होना ही था। यह कोई चमत्कार नहीं है। मन ऐसे ही व्यवहार करता है।

श्रोण भिक्खु बन गया, संन्यासी हो गया। शीध्र ही बुद्ध के दूसरे शिष्यों ने देखा कि वह दूसरी अति पर जा रहा था। बुद्ध ने किसी को नग्न रहने को नहीं कहा था, लेकिन श्रोण नग्न रहने लगा। बुद्ध नग्नता के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने कहा कि यह

दूसरी अति है। लोग है जो कपड़ों के लिए ही जीते है, मानों वही उनका जीवन हो। और ऐसे लोग भी है जो नग्न हो जाते है। लेकिन दोनों वस्त्रों में विश्वास करते है।

बुद्ध ने कभी नग्नता की शिक्षा नहीं दी। लेकिन श्रोण नग्न हो गया। वह बुद्ध का अकेला शिष्य था जो नग्न हुआ। श्रोण आत्म उत्पीड़न में भी गहरे अतर गया। बुद्ध ने अपने संन्यासियों को दिन में एक बार भोजन की व्यवस्था दी थी। लेकिन श्रोण दो दिनों में एक बार भोजन लेने लगा। वह बहुत दुर्बल हो गया। दूसरे भिक्षु पेड़ की छाया में ध्यान करते। लेकिन श्रोण कभी छाया में नहीं बैठता था। वह सदा कड़ी घूप में रहता था। वह बहुत सुंदर आदमी था, उसकी देह बहुत सुंदर थी। लेकिन छह महीने के भीतर पहचानना मुश्किल हो गया कि यह वही आदमी है। वह कुरूप, काला, झुलसा-झुलसा दिखने लगा।

एक रात बुद्ध श्रोण के पास गए और उससे बोले: श्रोण मैंने सूना है कि जब तुम राजकुमार थे, तब तुम्हें वीणा बजाने का शोक था। और तुम एक कुशल वीणावादक और बड़े संगीतज्ञ थे। तो मैं तुमसे एक प्रश्न पूछने आया हूं। अगर वीणा के तार बहुत ढीले हो तो क्या होता है? अगर तार ढीले होंगे तो कोई संगीत संभव नहीं है।

और फिर बुद्ध ने पूछा कि अगर तार बहुत कसे हों तो क्या होगा? श्रोण ने कहा कि तब भी संगीत नहीं पैदा होगा। तारों को मध्य में होना चाहिए। वे न ढीले हो और न कसे हुए, ठीक मध्य में हो। और श्रोण ने कहा कि वीणा बजाना तो आसान है। लेकिन एक परम संगीतज्ञ ही तारों को मध्य में रख सकता है।

तो बुद्ध ने कहा कि छह महीनों तक तुम्हारा निरीक्षण करने के बाद मैं तुमसे यही कहने आया हूं, कि जीवन में भी संगीत तभी जन्मता है जब उसके तार न ढीले हो और न कसे हुए ठीक मध्य में हों। इसलिए त्याग करना आसान है, लेकिन परम कुशल ही मध्य में रहना जानता है। इसलिए श्रोण, कुशल बनो और जीवन के तारों को मध्य में, ठीक मध्यम में रखो। इस या उस अति पर मत जाओ। और प्रत्येक चीज के दो छोर है, दो अतियां है। लेकिन तुम्हें सदा मध्य में रहना है।

लेकिन मन बहुत बेहोश है। इसलिए सूत्र में कहा गया है: ''मन को भूलकर।'' तुम यह बात सुन भी लोगे, तुम इसे समझ भी लोगे, लेकिन मन उसको नहीं ग्रहण करेगा। मन सदा अतियों को चुनता है। मन में अतियों के लिए बड़ा आकर्षण है। मोह है। क्यों? क्योंकि मध्य में मन की मृत्यु हो जाती है।

घड़ी के पैंडुलम को देखो। अगर तुम्हारे पास कोई पुरानी घड़ी हो तो उसके पैंडुलम को देखो। पैंडुलम सारा दिन चलता रहता है। यदि वह अतियों तक आता जाता रहे। जब वह बांए जाता है तब दांए जाने के लिए शक्ति अर्जित कर रहा है। जब वह दांए जा रहा है तो मत सोचो की वह दांए जा रहा है। वह बांए जाने के लिए ऊर्जा इकट्ठी कर रहा है। अतियां ही दांए-बांए है। पैंडुलम को बीच में ठहरने दो और सब गति बंद कर दो, तब पैंडुलम में उर्जा नहीं रहेगी। क्यों‍कि उर्जा तो एक अति से आ रही थी। एक अति से दूसरी अति उसे दूसरी अति की और फेंकती है। उससे एक वर्तुल बनता है। और पैंडुलम गतिमान होता है। उसको बीच में होने दो और तब सब गति ठहर जाएगी।

मन पैंडुलम की भांति है। और अगर तुम इसका निरीक्षण करो तो रोज ही इसका पता चलेगा। तुम एक अति के पक्ष में निर्णय लेते हो और तब तुम दूसरी अति की और जाने लगते हो। तुम अभी क्रोध करते हो, फिर पश्चाताप करते हो। तुम कहते हो, नहीं, बहुत हुआ, अब में कभी क्रोध न करूंगा। लेकिन तुम कभी अति को नहीं देखते।

यह ''कभी नहीं'' अति है। तुम कैसे निशचित हो सकते हो कि तुम कभी नहीं क्रोध करोगे। तुम कह क्या रहे है? एक बार और सोचो। कभी नहीं? अतीत में जाओ और याद करो कि कितनी बार तुमने निश्चय किया है। कि मैं कभी क्रोध नहीं करूंगा। जब तुम कहते हो कि मैं कभी क्रोध नहीं करूंगा। तो तुम नहीं जानते हो कि क्रोध करते समय। ही तुमने दूसरे छोर पर जाने की ऊर्जा इकट्ठी कर ली थी। अब तुम पश्चाताप कर रहे हो। अब तुम्हें बुरा लग रहा है। तुम्हारी आत्म छवि हिल गई है। गिर गई

है। अब तुम नहीं कह सकते कि मैं अच्छा आदमी हूं। धार्मिक आदमी हूं। मैंने क्रोध किया और धार्मिक व्यक्ति क्रोध नहीं करता। है। अच्छा आदमी क्रोध कैसे करेगा? तो तुम अपनी अच्छाई को वापस पाने के लिए पश्चाताप करते हो। कम से कम अपनी नजर में तुम्हें लगेगा कि मैंने पश्चाताप कर लिया, चैन हो गया और अब फिर क्रोध नहीं होगा। इससे तुम्हारी हिली हुई आत्म-छवि पुरानी अवस्था में लौट आएगी। अब तुम चैन महसूस करोगे। क्योंकि अब तुम दूसरी अति पर चले गए।

लेकिन जो मन कहता है कि अब मैं फिर कभी क्रोध नहीं करूंगा। वह फिर क्रोध करेगा। अब जब तुम फिर क्रोध में होगें तो तुम अपने पश्चाताप को, अपने निर्णय को, सब को बिलकुल भूल जाओगे। और क्रोध के बाद फिर वह निर्णय लौटेगा। और पश्चाताप वापस आएगा। और तुम कभी उसके धोखे को नहीं समझ पाओगे। ऐसा सदा हुआ है। मन क्रोध से पश्चाताप और पश्चाताप से क्रोध के बीच डोलता रहता है।

बीच में रहो। न क्रोध करो, न पश्चाताप करो। और अगर क्रोध कर गए तो कृपा कर क्रोध ही करो। पश्चाताप मत करो। दूसरी अति पर मत जाओ। बीच में रहो। कहो कि मैंने क्रोध किया है। मैं बुरा आदमी हूं। हिंसक हूं। मैं ऐसा ही हूं। लेकिन पश्चाताप मत करो। दूसरी अति पर मत जाओ। मध्य में रहो। और अगर तुम मध्य में रह सके तो फिर तुम क्रोध करने के लिए ऊर्जा इकट्ठी नहीं कर पाओगे।

इसलिए यह सूत्र कहता है: ''मन को भूलकर मध्य में रहो—जब तक।''

इस ''जब तक'' का क्या मतलब है? मतलब यह है कि जब तक तुम्हारा विस्फोट न हो जाए। मतलब यह है कि तब तक मध्य में रहो जब तक मन की मृत्यु न हो जाए। तब तक मध्य में रहो जब तक मन अ-मन न हो जाए। अगर मन अति पर है तो अ-मन मध्य में होगा।

लेकिन मध्य में होना संसार में सबसे कठिन काम है। दिखता तो सरल है। दिखता तो यह आसान है। तुम्हें लगेगा कि मैं कर सकता हूं, और तुम्हें यह सोचकर लगेगा कि पश्चाताप की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन प्रयोग करो। और तब तुम्हें पता चलेगा। कि जब क्रोध करोगे तो मन पश्चाताप करने पर जोर देगा।

पति-पत्नियों का झगड़ा सदा से चलता आया है। और सदियों से महापुरुष और सलाहकार समझा रहे है कि कैसे रहें और प्रेम करें। और यह झगड़ा जारी है। पहली बार फ्रायड को इस तथ्य को बोध हुआ। कि जब भी तुम प्रेम, तथाकथित प्रेम में होओगे। तुम्हें धृणा में भी होना पड़ेगा। सुबह प्रेम करोगे और श्याम घृणा करोगे। और इस तरह पैंडुलम हिलता रहेगा। प्रत्येक पति-पत्नी को इसका पता है। लेकिन फ्रायड की अनंतदृष्टि बड़ी अद्भुत है। वह कहता है कि अगर किसी दंपति ने झगड़ा बंद कर दिया है तो समझो कि उनका प्रेम मर गया। घृणा और लड़ाई। के साथ जो प्रेम है, वह मर गया।

अगर किसी जोड़े का तुम देखो कि वह कभी लड़ता नहीं है तो यह मत समझो कि यह आदर्श जोड़ा है। उसका इतना ही अर्थ है कि यह जोड़ा ही नहीं है। वे समांतर रह रहे है। लेकिर साथ-साथ नहीं रहते। वे समांतर रेखाएं है। जो कहीं नहीं मिलती। लड़ने के लिए भी नहीं। वे दोनों साथ रहकर भी अकेले-अकेले है—अकेले-अकेले और समांतर।

मन विपरीत पर गति करता है। इसलिए अब मनोविज्ञान के पास दंपतियों के लिए बेहतर निदान है—बेहतर और गहरा। वह कहता है। कि अगर तुम सचमुच प्रेम-इसी मन के साथ—करना चाहते हो तो लड़ने झगड़ने से मत डरों। सच तो यह है कि तुम्हें प्रामाणिक ढंग से लड़ना चाहिए। ताकि तुम प्रामाणिक प्रेम के दूसरे छोर को प्राप्त कर सको। इसलिए अगर तुम अपनी पत्नी के लड़ रहे हो तो लड़ने से चूको मत। अन्यथा प्रेम से भी चूक जाओगे। झगड़े से बचो मत। उसका मौका आए तो अंत तक लड़ों। तभी संध्या आते-आते तुम फिर प्रेम करने योग्य हो जाओगे। मन तब तक शक्ति जुटा लेगा।

सामान्य प्रेम संघर्ष के बिना नहीं जी सकता। क्योंकि उसमे मन की गति संलग्न है। सिर्फ वही प्रेम संघर्ष के बिना जिएगा जो कि मन का नहीं है। लेकिन वह बात ही और है। बुद्ध का प्रेम और ही बात है।

लेकिन अगर बुद्ध तुम्हें प्रेम करें तो तुम बहुत अच्छा नहीं महसूस करोगे। क्यों? क्योंकि उसमें कुछ दोष नहीं रहेगा। वह मीठा ही मीठा होगा। और उबाऊ होगा। क्योंकि दोष तो झगड़े से आता है। बुद्ध क्रोध नहीं कर सकते। वे केवल प्रेम कर सकते है। तुम्हें उनका प्रेम पता नहीं चलेगा। क्योंकि पता तो विरोध में विपरीतता में चलता है।

जब बुद्ध बाहर वर्षों के बाद अपने नगर वापस आए तो उनकी पत्नी उनके स्वागत को नहीं आई। सारा नगर उनके स्वागत के लिए इकट्ठा हो गया, लेकिन उनकी पत्नी नहीं आई। बुद्ध हंसे। और उन्होंने अपने मुख्य शिष्य आनंद से कहा कि यशोधरा नहीं आई, मैं उसे भली-भांति जानता हूं। ऐसा लगता है कि वह मुझे अभी भी प्रेम करती है। वह मानिनी है, वह आहत अनुभव कर रही है। मैं तो सोचता था बाहर वर्ष का लम्बा समय है, वह अब प्रेम में न होगी। लेकिन मालूम होता है कि यह अब भी प्रेम में है। अब भी क्रोध में है। वह मुझे लेने नहीं आई, मुझे ही उसके पास जाना होगा।

और बुद्ध गए। आनंद भी उनके साथ था। आनंद को एक वचन दिया हुआ था। जब आनंद ने दीक्षा ली थी तो उसने एक शर्त रखी—और बुद्ध ने मान ली। कि मैं सदा आपके साथ रहूंगा। वह बुद्ध का बड़ा चचेरा भाई था। इसलिए उन्हें मानना पडा था। सो आनंद राजमहल तक उनके साथ गया। वहां बुद्ध ने उनसे कहां। कि कम से कम यहां तुम मेरे साथ मत चलो। क्योंकि यशोधरा बहुत नाराज होगी। मैं बाहर वर्षों के बाद लौट रहा हूं। और उसे खबर किए बिना यहाँ से चला गया था। वह अब भी नाराज है। तो तुम मेरे साथ मत चलो, अन्यथा वह समझेगा कि मैंने उसे कुछ कहने का भी अवसर नहीं दिया। वह बहुत कुछ कहना चाहती होगी। तो उसे क्रोध कर लेने दो, तुम कृपा इस बार मेरे साथ मत आओ।

बुद्ध भीतर गए। यशोधरा ज्वालामुखी बनी बैठी थी। वह फूट पड़ी। वह रोने चिल्लाने लगी। बकने लगी, बुद्ध चुपचाप बैठे सुनते रहे। धीरे-धीरे वह शांत हुई और तब वह समझी कि उस बीच बुद्ध एक शब्द भी नहीं बोले। उसने अपनी आंखें पोंछी और बुद्ध की और देखा।

बुद्ध ने कहा कि मैं यह कहने आया हूं कि मुझे कुछ मिला है, मैंने कुछ जाना है। मैंने कुछ उपल्बध किया है। अगर तुम शांत होओ तो मैं तुम्हें वह संदेश, वह सत्य दूँ, जो मुझे उपलब्ध हुआ है। मैं इतनी देर इसलिए रुका रहा कि तुम्हारा रेचन हो जाए। बारह साल लंबा समय है। तुमने बहुत घाव इकट्ठे किए होंगे। और तुम्हारा क्रोध समझने योग्य है। मुझे इसकी प्रतीक्षा थी। उसका अर्थ है कि तुम अब भी मुझे प्रेम करती हो। लेकिन इस प्रेम के पार भी एक प्रेम है, और उसी प्रेम के कारण मैं तुम्हें कुछ कहने वापस आया हूं।

लेकिन यशोधरा उस प्रेम को नहीं समझ सकी। इसे समझना कठिन है। क्योंकि यह इतना शांत है। यह प्रेम इतना शांत है। कि अनुपस्थित सा लगता है।

जब मन विसर्जित होता है तो एक और ही प्रेम घटित होता है। लेकिन उस प्रेम का कोई विपरीत पक्ष नहीं है। विरोधी पक्ष नहीं है। जब मन विसर्जित होता है तब जो भी घटित होता है उसका विपरीत पक्ष नहीं रहता। मन के साथ सदा उसका विपरीत खड़ा रहता है। और मन एक पैंडुलम की भांति गति करता है।

यह सूत्र अद्भुत है। उससे चमत्कार घटित हो सकता है।

''मन को भूलकर मध्य में रहो—जब तक।''

इस प्रयोग में लाओ। और यह सूत्र तुम्हारे पूरे जीवन के लिए है। ऐस नहीं है कि उसका अभ्यास यदा-कदा किया और बात खत्म हो गई। तुम्हें निरंतर इसका बोध रखना होगा। होश रखना होगा। काम करते हुए चलते हुए, भोजन करते हुए। संबंधों में, सर्वत्र मध्य में रहो। प्रयोग करके देखो और तुम देखोगें कि एक मौन, एक शांति तुम्हें घेरने लगी है और तुम्हारे भीतर एक शांत केंद्र निर्मित हो रहा है।

अगर ठीक मध्य में होने में सफल न हो सको तो भी मध्य में होने की कोशिश करो। धीरे-धीरे तुम्हें मध्य की अनुभूति होने लगेगी। जो भी हो, घृणा या प्रेम, क्रोध या पश्चाताप, सदा ध्रुवीय विपरीतताओं को ध्यान में रखो और उनके बीच मे रहो। और देर अबेर तुम ठीक मध्य को पा लोगे।

और एक बार तुमने इसे जान लिया तो फिर तुम उसे नहीं भूलोगे। क्योंकि मध्य बिंदू मन के पार है। और वह मध्य बिंदु अध्यात्म का सार सूत्र है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-9

तंत्र-सूत्र—विधि-18 (ओशो)

केंद्रित होने की छठवीं विधि:

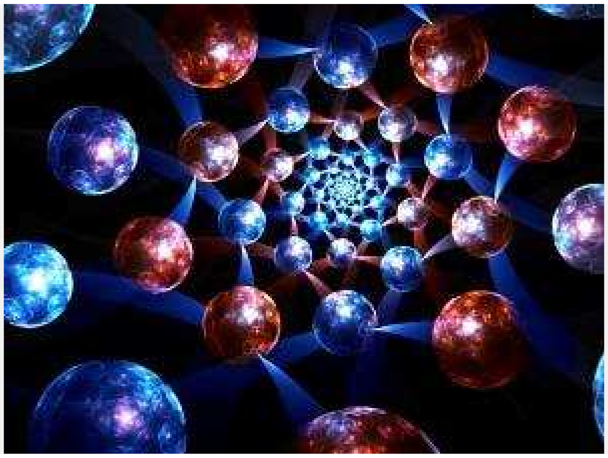

तंत्र-सूत्र—विधि-18 (ओशो) किसी विषय को प्रेमपूर्वक देखो;……….

"किसी विषय को प्रेमपूर्वक देखो; दूसरे विषय पर मत जाओ। यहीं विषय के मध्य में—आनंद।"
मैं फिर दोहराता हूं: ''किसी विषय को प्रेमपूर्वक देखो, दूसरे विषय पर मत जाओ, किसी दूसरे विषय पर ध्यान मत ले जाओ, यही विषय के माध्य में—आनंद।

''किसी विषय को प्रेम पूर्ण देखो……..।''

प्रेमपूर्वक में कुंजी है। क्या तुमने कभी किसी चीज को प्रेमपूर्वक देखा है? तुम हां कह सकते हो, क्योंकि तुम नहीं जानते कि किसी चीज को प्रेमपूर्वक देखने का क्या अर्थ है। तुमने किसी चीज को लालसा-भरी आंखों से देखा होगा। कामना पूर्वक देखा होगा। वह दूसरी बात है। वह बिलकुल भिन्न् विपरीत बात है। पहले इस भेद को समझो।
तुम एक सुंदर चेहरे को, सुंदर शरीर को देखते हो और तुम सोचते हो कि तुम उसे प्रेमपूर्वक देख रहे हो। लेकिन तुम उसे क्यों देख रहे हो? क्या तुम उससे कुछ पाना चाहते हो? तब वह वासना है, कामना है, प्रेम नहीं है। क्या तुम उसका शोषण करना चाहते हो? तब वह वासना है, प्रेम नहीं। तब तुम सच में यह चाहते हो कि मैं कैसे इस शरीर को उपयोग में लाऊं, कैसे इसका मालिक बनूं। कैसे इसे अपने सुख का साधन बना लूं।

वासना का अर्थ है कि कैसे किसी चीज को अपने सुख के लिए उपयोग में लाऊं। प्रेम का अर्थ है कि उससे मेरे सुख का कुछ लेना देना नहीं है। सच तो यह है कि वासना कुछ लेना चाहती है। और प्रेम कुछ देना चाहता है। वे दोनों सर्वथा एक दूसरे के प्रतिकूल है।

अगर तुम किसी सुंदर व्यक्ति को देखते हो और उसके प्रति प्रेम अनुभव करते हो तो तुम्हारी चेतना में तुरंत भाव उठेगा। कि कैसे इस व्यक्ति को, इस पुरूष या स्त्री को सुखी करूं। यह फिक्र अपनी नहीं, दूसरे की है। प्रेम में दूसर महत्वपूर्ण है; वासना में तुम महत्वपूर्ण हो। वासना में तुम दूसरें को साधन बनाने की सोचते हो; और प्रेम में तुम स्वयं साधन बनने की सोचते हो। वासना में तुम दूसरे को पोंछ देना चाहते हो। प्रेम में तुम स्वयं मिट जाना चाहते हो। प्रेम का अर्थ है देना। वासना का अर्थ है लेना। प्रेम समर्पण है; वासना आक्रमण है।

तुम क्या कहते हो, उसका कोई अर्थ नहीं है। वासना में भी तुम प्रेम की भाषा काम में लाते हो। तुम्हारी भाषा का बहुत मतलब नहीं है। इसलिए धोखे में मत पड़ो। भीतर देखो और तब तुम समझोगे कि तुमने जीवन में एक बार भी किसी व्यक्ति या वस्तु को प्रेमपूर्वक नहीं देखा है।

एक दूसरा भेद भी समझ लेने जैसा है।

सूत्र कहता है: ''किसी विषय को प्रेमपूर्वक देखो......।''
असल में तुम किसी पार्थिव, जड़ वस्तु को भी प्रेमपूर्वक देखो तो वह वस्तु व्यक्ति बन जाती है। तुम्हारा प्रेम वस्तु को भी व्यक्ति में रूपांतरित करने की कुंजी है। अगर तुम वृक्ष को प्रेमपूर्वक देखो तो वृक्ष व्यक्ति बन जाता है।

उस दिन मैं विवेक से बात करता था। मैंने उससे कहा कि जब हम नए आश्रम में जाएंगे तो वहां हम हरेक वृक्ष को नाम देंगे। क्योंकि हरेक वृक्ष व्यक्ति है। क्या कभी तुमने सुना है कि कोई वृक्षों को नाद दे? कोई वृक्षों को नाम नहीं देता। क्योंकि कोई वृक्षों को प्रेम नहीं करता। अगर प्रेम करे तो व्यक्ति बन जाए। तब वह भीड़ का, जंगल का हिस्सा नहीं रहा। वह अनूठा हो गया।

तुम कुत्तों और बिल्लियों को नाम देते हो। जब तुम कुत्ते को नाम देते हो, उसे ''टाइगर'' कहते हो, तो कुत्ता व्यक्ति बन जाता है। तब वह बहुत से कुत्तों में एक कुत्ता नहीं रहा। तब उसको व्यक्तितत्व मिल गया। तुमने निर्मित कर दिया। जब भी तुम किसी चीज को प्रेमपूर्वक देखते हो वह चीज व्यक्ति बन जाती है।

और इसका उलटा भी सही है। जब तुम किसी व्यक्ति को वासना पूर्वक देखते हो तो वह व्यक्ति वस्तु बन जाता है। यही कारण है कि वासना भरी आंखों में विकर्षण होता है। क्योंकि कोई भी वस्तु होना नहीं चाहता। जब तुम अपनी पत्नी को, या किसी दूसरी स्त्री को, या पुरूष को, वासना की दृष्टि से देखते हो, तो उसके दूसरे को चोट पहुँचती है। तुम असल में क्या कर

रह हो? तुम एक जीवित व्यक्ति को मृत साधन में, यंत्र में बदल रहे हो। ज्यों ही तुमने सोचा कि कैसे उसका उपयोग करें कि तुमने उसकी हत्या कर दी।

यही कारण है कि वासना भरी आंखें विकर्षण होती है। कुरूप होती है। और जब तुम किसी को प्रेम से भरकर देखते हो। तो दूसरा ऊँचा उठ जाता है। वह अनूठा हो जाता है। अचानक वह व्यक्ति हो उठता है।

एक वस्तु बदली जा सकती है। ठीक उसकी जगह वैसी ही चीज लाई जा सकती है। लेकिन उसी तरह एक व्यक्ति नहीं बदला जा सकता। वस्तु का अर्थ है जो बदली जा सके; व्यक्ति का अर्थ है जो नहीं बदला जा सके। किसी पुरूष या स्त्री के स्थान पर ठीक वैसा ही पुरूष या स्त्री नहीं लायी जा सकती है। हर एक व्यक्ति अनूठा है। वस्तु नहीं।

प्रेम किसी को भी अनूठा बना देता है। यही कारण है कि प्रेम के बिना तुम नहीं महसूस करते कि मैं व्यक्ति हूं। जब तक कोई तुम्हें गहन प्रेम न करे, तुम्हारे अनूठेपन का एहसास ही नही होता। तब तक तुम भीड़ के हिस्से हो—एक नंबर, एक संख्या। और तुम बदले जा सकते हो।

यह सूत्र कहता है: ''किसी विषय को प्रेमपूर्वक देखो..........।''
यह किसी विषय या व्यक्ति में कोई फर्क नहीं करता। उसकी जरूरत नहीं है। क्योंकि जब तुम प्रेमपूर्वक देखते हो तो कोई भी चीज व्यक्ति हो उठती है। यह देखना ही बदलता है, रूपांतरित करता है।

तुमने देखा हो या न देखा हो, जब तुम किसी खास कार को, समझो वह फिएट है, चलाते हो तो क्या होता है। एक ही जैसे हजारों-हजार फिएट है, लेकिन तुम्हारी कार, अगर तुम पनी कार को प्रेम करते हो, अनूठी हो जाती है। व्यक्ति बन जाती है। उसे बदला नहीं जा सकता; एक नाता-रिश्ता निर्मित हो गया। अब तुम इस कार को एक व्यक्ति समझते हो।

अगर कुछ गड़बड़ हो जाए, जरा सी आवाज आने लगे, तो तुम्हें तुरंत उसका एहसास होता है। और कारें बहुत तुनकमिज़ाज होती है। तुम अपनी कार के मिज़ाज से परिचित हो कि कब वह अच्छा महसूस करती है। और कब बुरा। धीरे-धीर कार व्यक्ति बन जाती है। क्यो?

अगर प्रेम का संबंध है तो कोई भी चीज व्यक्ति बन जाती है। और अगर वासना का संबंध हो तो व्यक्ति भी वस्तु बन जाता है। और यह बड़े से बड़ा अमानवीय कृत्य है जो आदमी कर सकता है कि वह किसी को वस्तु बना दे।

''किसी विषय को प्रेमपूर्वक देखो......।''
इसके लिए कोई क्या करे? प्रेम से जब देखते हो तो क्या होता है? पहली बात: अपने को भूल जाओ। अपने को बिलकुल भूल जाओ। एक फूल को देखो और अपने को बिलकुल भूल जाओ। फूल तो हो, लेकिन तुम अनुपस्थित हो जाओ। फूल को अनुभव करो और तुम्हारी चेतना से गहरा प्रेम फूल की और प्रवाहित होगा। और तब अपनी चेतना को एक ही विचार से भर जाने दो कि कैसे मैं इस फूल के ज्यादा खिलनें में, ज्यादा सुंदर होने में, ज्यादा आनंदित होने में सहयोगी हो सकता हूं। मैं क्या कर सकता हूं।

यह महत्व की बात नहीं है कि तुम कुछ कर सकते हो या नहीं। यह प्रासंगिक नहीं है। यह भाव कि मैं क्या कर सकता हूं, यह पीड़ा, गहरी पीड़ा कि इस फूल को ज्यादा सुंदर, ज्यादा जीवंत और ज्यादा प्रस्फुटित बनाने के लिए मैं क्या करू, ज्यादा महत्व की है। इस विचार को आने पूरे प्राणों में गूंजने दो। अपने शरीर और मन के प्रत्येक तंतु को इस विचार से भीगने दो। तब तुम समाधिस्थ हो जाओगे। और फूल एक व्यक्ति बन जाएगा।

‘’दूसरे विषय पर मत जाओ.....।‘’
तुम जा नहीं सकते। अगर तुम प्रेम में हो तो नहीं जा सकते। अगर तुम इस समूह में बैठे किसी व्यक्ति को प्रेम करते हो तो तुम्हारे लिए सब भीड़ भूल जाती है और केवल यही चेहरा बचता है। सच में तुम और किसी को नहीं देखते, उस एक चेहरे को ही देखते हो। सब वहां है, लेकिन वे नहीं के बराबर है, वे तुम्हारी चेतना की महज परिधि पर होते है। वे महज छायाएं है। मात्र एक चेहरा रहता है। अगर तुम किसी को प्रेम करते हो तो मात्र वही चेहरा रहता है। इसलिए दूसरे पर तुम नहीं जा सकते।

दूसरे विषय पर मज जाओ। एक के साथ ही रहो। गुलाब के फूल के साथ या अपनी प्रेमिका के चेहरे के साथ रहो। ओर उसके साथ प्रेमपूर्वक रहो। प्रवाहमान रहो। समग्र ह्रदय से उसके साथ रहो। और इस विचार के साथ रहो कि मैं अपनी प्रेमिका को ज्यादा सुखी और आनंदित बनाने के लिए क्या कर सकता हूं।

‘’यहीं विषय के मध्य में—आनंद।‘’
और जब ऐसी स्थिति बन जाए कि तुम अनुपस्थित हो, अपनी फिक्र नहीं करते, अपनी सुख संतोष की चिंता नहीं लेते। अपने को पूरी तरह भूल गए हो, जब तुम सिर्फ दूसरे के लिए चिंता करते हो, दूसरा तुम्हारे प्रेम का केंद्र बन गया है। तुम्हारी चेतना दूसरे में प्रवाहित हो रही है। जब गहन करूणा और प्रेम के भाव से तुम सोचते हो कि मैं अपनी प्रेमिका को आनंदित करने के लिए क्या कर सकता हूं। तब इस स्थिति में अचानक, ‘’यहीं विषय के मध्य में—आनंद, अचानक उप-उत्पति की तरह तुम्हें आनंद उपलब्ध हो जाता है। तब अचानक तुम केंद्रित हो गए।

यह बात विरोधाभासी लगती है। क्योंकि सूत्र कहता है कि अपने को बिलकुल भूल जाओ, आत्म केंद्रित मत बनो। दूसरे में पूरी तरह प्रवेश करो।

बुद्ध निरंतर कहते थे कि जब भी तुम प्रार्थना करो तो दूसरों के लिए करों—अपने लिए नहीं। अन्यथा प्रार्थना व्यर्थ जायेगी।

एक आदमी बुद्ध के पास आया और उसने कहा कि मैं आपके उपदेश को स्वीकार करता हूं, लेकिन उसकी एक बात मानना बहुत कठिन है। आप कहते है जब भी तुम प्रार्थना करो तो अपनी मत सोचो। अपने लिए मत कुछ मांगो। सदा यही कहो कि मेरी प्रार्थना से जो फल आए वह सबको मिले, कोई आनंद उतरे तो वह सब में बंट जाए। उस आमदी ने कहा यह बात भी ठीक है। लेकिन कोई आनंद उतरे तो वह सब में बंट जाए। उस आदमी ने कहा, यह बात भी ठीक है, लेकिन मैं इसमे एक अपवाद, एक ही अपवाद करना चाहूंगा। और वह यह कि यह कृपा मेरे पड़ोसी को न मिले। क्योंकि वह मेरा शत्रु है। यह आनंद मेरे पड़ोसी को छोड़कर सबको प्राप्त हो।

मन आत्म केंद्रित है। बुद्ध ने उस आदमी से कहा कि तब तुम्हारी प्रार्थना व्यर्थ है। अगर तुम सब कुछ सबको बांटने को तैयार नहीं हो तो कुछ भी फल नहीं होगा। और सबमें बांट दोगे तो सब तुम्हारा होगा।

प्रेम में तुम्हें अपनी को भूल जाना है। लेकिन तब यह बात विरोधाभासी लगने लगती है। तब केंद्रित होना कब और कैसे घटित होगा? दूसरे में समग्ररूपेण संलग्न होने से। जब तुम स्वयं को पूरी तरह भूल जाते हो और जब दूसरा ही बचता है, तुम आनंद से आशीर्वाद से भर दिये जाते हो।

क्यो? क्योंकि जब तुम अपनी फिक्र नहीं रहती तो तुम खाली, रिक्त हो जाते हो। तब आंतरिक आकाश निर्मित हो जाता है। जब तुम्हारा मन पूरी तरह दूसरे में संलग्न है तो तुम अपने भीतर मन रहित हो जाते हो। तब तुम्हारे भीतर विचार नहीं रह जाता है। और तब यह विचार भी कि मैं दूसरे को अधिक सूखी अधिक आनंदित बनाने के लिए क्या कर सकता हूं। जाता रहता है, क्योंकि सच में तुम कछ नहीं कर सकते। तब यह विचार विराम बन जाता है। तुम कुछ नहीं कर सकते। क्या कर सकते हो? क्योंकि अगर सोचते हो कि मैं कुछ कर सकता हूं तो अब भी अहंकार की भाषा में सोच रहे हो।

स्मरण रहे, प्रेमपात्र के साथ व्यक्ति बिलकुल असहाय हो जाता है। जब भी तुम किसी को प्रेम करते हो, तुम असहाय हो जाते हो। यही प्रेम की पीड़ा है, कि तुम्हें पता नहीं चलता कि मैं क्या कर सकता हूं। तुम सब कुछ करना चाहोगे, तुम अपने प्रेमी या प्रेमिका को सारा ब्रह्मांड दे देना चाहोगे। लेकिन तुम कर क्या सकते हो? अगर तुम सोचते हो कि यह या वह कर सकते हो तो तुम अभी प्रेम में नहीं हो। प्रेम बहुत असहाय है, बिलकुल असहाय है। और वह असहायपन सुंदर है, क्योंकि उसी असहायपन में तुम समर्पित हो जाते हो।

किसी को प्रेम करो और तुम असहाय अनुभव करोगे। किसी को धृणा करो और तुम्हें लगेगा कि तुम कुछ कर सकते हो। प्रेम करो और तुम बिलकुल असमर्थ हो। तुम क्या कर सकते हो? जो भी तुम कर सकते हो वह इतना क्षुद्र लगता है, इतना अर्थहीन। वह कभी भी पर्याप्त नहीं मालूम होता। कुछ नहीं किया जा सकता। और जब कोई समझता है कि कुछ नहीं किया जा सकता तब वह असहाय अनुभव करता है। जब कोई सब कुछ करना चाहता है और समझता है कि कुछ नहीं किया जा सकता। तब मन रूक जाता है। और इसी असहायावस्था में समर्पण घटित होता है। तुम खाली हो गए।

यही कारण है कि प्रेम गहन ध्यान बन जाता है। अगर सच में तुम किसी को प्रेम करते हो तो किसी अन्य ध्यान की जरूरत न रही। लेकिन क्योंकि कोई भी प्रेम नहीं करता है। इसलिए एक सौ बारह विधियों की जरूरत पड़ी। और वे भी काफी कम है।

उस दिन कोई यहां था। वह कहा रहा था कि इससे मुझे बहुत आशा बंधी है। मैंने पहली दफा आप से ही सुना है कि एक सौ बारह विधियां है। इससे बहुत आशा होती है। लेकिन मन में कही एक विषाद भी उठता है कि क्या कुल एक सौ बारह विधियों से काम चल सकता है। अगर मेरे लिए वह सब की सब व्यर्थ हुई तो क्या होगा? क्या कोई एक सौ तेरहवीं विधि नहीं है?

और वह आदमी सही है। वह सही है। अगर ये एक सौ बारह विधियां तुम्हारे काम न आ सकी तो कोई उपाय नहीं है। इसलिए उसका कहना ठीक है। कि आशा के पीछे-पीछे विषाद भी घेरता है। लेकिन सच तो यह है कि विधियों की जरूरत इसलिए पड़ती है कि बुनियादी विधि खो गई है। अगर तुम प्रेम कर सको तो किसी विधि की जरूरत नहीं है। प्रेम स्वयं सबसे बड़ी विधि है।

लेकिन प्रेम कठिन है, एक तरह से असंभव। प्रेम का अर्थ है अपने को ही अपनी चेतना से निकाल बाहर करना। और उसकी जगह अपने अहंकार की जगह दूसरे को स्थापित करना। प्रेम का अर्थ है अपनी जगह दूसरे को स्थापित करना। मानों कि अब तुम नहीं है। सिर्फ दूसरा है।

ज्याँ पाल सार्त्र कहता है कि दूसर नरक है। और वह सही है। क्योंकि दूसरा तुम्हारे लिए नरक ही बनाता है। लेकिन सार्त्र गलत भी हो सकता है। क्योंकि दूसरा अगर नरक है तो वह स्वर्ग भी हो सकता है।

अगर तुम वासना से जीते हो तो दूसरा नरक है। क्योंकि तुम उस व्यक्ति की हत्या करने में लगे हो, तुम उसे वस्तु में बदलने में लगे हो। तब वह व्यक्ति भी प्रतिक्रिया में तुम्हें वस्तु बनाना चाहेगा। और उससे ही नरक पैदा होता है।

तो सब पति-पत्नी एक दूसरे के लिए नरक पैदा कर रहे है। क्योंकि हरेक दूसरे पर मलकियत करने में लगा है। मलकियत सिर्फ चीजें की हो सकती है। व्यक्तियों की नहीं। तुम किसी वस्तु को तो अधिकार में कर सकते हो, लेकिन किसी व्यक्ति को अधिकार में नहीं कर सकते। लेकिन तुम व्यक्ति पर अधिकार करने की कोशिश करते हो। और उस कोशिश में व्यक्ति बन जाता है। तब तुम भी मुझे वस्तु बनाने की कोशिश करोगे। उससे ही नरक बनता है।

तुम अपने कमरे में अकेले बैठे हो। और तभी तुम्हें अचानक पता चलता है कि कोई चाबी के छेद से भीतर झांक रहा है। गौर से देखो कि क्या होता है। तुम्हें कोई बदलाहट महसूस हुई? तुम क्यों इस झांकने वाले पर नाराज होते हो। उसने तुम्हें वस्तु में

बदल दिया। वह झांक रहा है और झांक कर उसने तुम्हें वस्तु बना दिया। आब्जेक्ट्स बना दिया। उसने ही तुम्हें बेचैनी होती है।

और वही बात उस आदमी के साथ होगी। अगर तुम उस चाबी के छेद के पास आकर बाहर देखने लगो तो दूसरा व्यक्ति घबरा जाएगा। एक क्षण पहले वह द्रष्टा था और तुम दृश्य थे। अब वह अचानक पकड़ा गया। और तुम्हें देखते हुए पकड़ा गया। और अब वही वस्तु बन गया है।

जब कोई तुम्हें देख रहा है तो तुम्हें लगता है कि मेरी स्वतंत्रता बाधित हुई। नष्ट हुई। यही कारण है कि प्रेमपात्र को छोड़कर तुम किसी को घूर नहीं सकते, टकटकी लगाकर देख नहीं सकते। अगर तुम प्रेम में नहीं हो तो वह घूरना कुरूप होगा। हिंसक होगा। हां, अगर तुम प्रेम में हो तो वह घूरना सुंदर है। क्योंकि तब तुम घूरकर किसी को वस्तु में नहीं बदल रहे हो। तब तुम दूसरे की आँख से सीधे झांक सकते हो। तब तुम दूसरे की आँख में गहरे प्रवेश कर सकते हो। तुम उसे वस्तु में नहीं बदलते बल्कि तुम्हारा प्रेम उसे व्यक्ति बना देता है। यही कारण है कि सिर्फ प्रेमियों को घूरना सुंदर होता है। शेष सब घूरना कुरूप है, गंदा है।

मानस्विद कहते है कि तुम किसी व्यक्ति को, अगर वह अजनबी है, कितनी देर तक घूरकर देख सकते हो। इसकी सीमा है।

तुम इसका निरीक्षण करो और तुम्हें पता चल जाएगा। कि इसकी अवधि कितनी है। इस समय की सीमा है। उससे एक क्षण ज्यादा घूरों और दूसरा व्यक्ति क्रुद्ध हो जायेगा। सार्वजनिक रूप से एक चलती हुई नजर क्षमा की जा सकती है। क्योंकि उससे लगेगा कि तुम देख भर रहे थे, घूर नहीं रहे थे। दृष्टि गड़ा कर देखना दूसरी बात है।

अगर मैं तुम्हें चलते-चलते देख लेता हूं तो उससे कोई संबंध नहीं बनता है। या मैं गुजर रहा हूं और तुम मुझ पर निगाह डालों तो उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। वह अपराध नहीं है। ठीक है। लेकिन अगर तुम अचानक रुककर मुझे देखने लगो तो तुम निरीक्षक हो गए। तब तुम्हारी दृष्टि से मुझे अड़चन होगी। और मैं अपमानित अनुभव करूंगा। तुम कर क्या रहे हो? मैं व्यक्ति हूं, वस्तु नहीं। यह कोई देखने का ढंग है?

इसी वजह से कपड़े महत्वपूर्ण हो गए है। अगर तुम किसी के प्रेम में हो तभी तुम उसके समक्ष नग्न हो सकते हो। क्योंकि जिस क्षण तुम नग्न होते हो। तुम्हारा समूचा शरीर दृष्टि का विषय बन जाता है। कोई तुम्हारे पूरे शरीर को निहार रहा है। और अगर वह तुम्हारे प्रेम में नहीं है तो उसकी आंखे तुम्हारे पूरे शरीर को, तुम्हारे पूरे अस्तित्व को वस्तु में बदल देंगी। लेकिन अगर तुम किसी के प्रेम में हो, तो तुम उसके सामने लज्जा महसूस किए बिना ही नग्न हो सकते हो। बल्कि तुम्हें नग्न होना रास आएगा। क्योंकि तुम चाहोगे कि यह रूपांतरकारी प्रेम तुम्हारे पूरे शरीर को व्यक्ति में रूपांतरित कर दे।

जब भी तुम किसी को वस्तु में बदलते हो तो वह कृत्य अनैतिक है। लेकिन अगर तुम प्रेम से भरे हो तो उस प्रेम भरे क्षण में घटना, यह आनंद किसी भी विषय के साथ संभव हो जाता है।

''यही विषय के मध्य में—आनंद।''
अचानक तुम अपने को भूल गए हो। दूसरा ही है। और तब वह सही क्षण आएगा। जब कि तुम पूरे के पूरे अनुपस्थित हो जाओगे, तब दूसरा भी अनुपस्थित हो जाएगा। और तब दोनों के बीच वह धन्यता घटती है। प्रेमियों की यही अनुभूति है।

यह आनंद एक अज्ञात और अचेतन ध्यान के कारण घटता है। जहां दो प्रेमी है वहां धीरे-धीरे दोनों अनुपस्थित हो जाते हो। और वहां एक शुद्ध असतित्व बचता है। जिसमें कोई अहंकार नहीं है। कोई द्वंद्व नहीं है। वहां मात्र संवाद है, साहचर्य है,

सहभागिता है। उस संभोग में ही आनंद उतरता है। वह समझना गलत है कि यह आनंद तुम्हें किसी दूसरे से मिला है। वह आनंद आया है। क्योंकि तुम अनजाने ही एक गहरे ध्यान विधि में उतर गये हो।

तुम यह सचेतन भी कर सकते हो। और जब सचेतन करते हो तो तुम और गहरे जाते हो। क्योंकि तब तुम विषय से बंधे नहीं हो। यह रोज ही होता है। जब तुम किसी को प्रेम करते हो तो तुम जो आनंद अनुभव करते हो उसका कारण दूसरा नहीं है। उसका कारण बस प्रेम है। और प्रेम क्यों कारण है? क्योंकि यह घटना है, यह सूत्र घटता है।

लेकिन तब तुम एक गलतफहमी से ग्रस्त हो जाते हो। तुम सोचते हो कि अ या ब के सान्निध्य के कारण यह आनंद घटा। और तुम सोचते हो कि मुझे अ को अपने कब्जे में करना चाहिए। क्योंकि अ की उपस्थिति के बिना मुझे यह आनंद नहीं मिलता। और तुम ईर्ष्यालु हो जाते हो। तुम्हें डर लगने लगता है। कि अ किसी दूसरे के कब्जे में न चला जाये। क्योंकि तब दूसरा आनंदित होगा और तुम दुःखी होओगे। इसलिए तुम पक्का कर लेना चाहते हो कि अ किसी और के कब्ज में न जाए। अ को तुम्हारे ही कब्जे में होना चाहिए। क्योंकि उसके द्वारा तुम्हें किसी और लोक की झलक मिली।

लेकिन जिस क्षण तुम मालिकीयत की चेष्टा करते हो उसी क्षण उस घटना का सब सौंदर्य, सब कुछ नष्ट हो जाता है। जब प्रेम पर कब्जा हो जाता है। प्रेम समाप्त हो जाता है। तब प्रेमी सहज एक वस्तु होकर रह जाता है। तुम उसका उपयोग कर सकते हो। लेकिन फिर वह आनंद नहीं घटित होगा। वह आनंद तो दूसरे के व्यक्ति होने से आता है। दूसरा तो निर्मित हुआ था; तुमने उसके भीतर व्यक्ति को निर्मित किया था। उसने तुम्हारे भीतर वहीं किया था। तब कोई आब्जेक्ट्स नहीं था। तब दोनों दो जीवंत निजात थे। ऐसा नहीं था एक व्यक्ति था और दूसरा वस्तु। लेकिन ज्यों ही तुमने मालकियत की कि आनंद असंभव हो गया।

और मन सदा स्वामित्व करना चाहेगा। क्योंकि मन सदा लोभ की भाषा में सोचता है। सोचता है कि एक दिन जो आनंद मिला वह रोज-रोज मिलना चाहिए, इसलिए मुझे स्वामित्व जरूरी है। लेकिन यह आनंद ही तब घटता है जब स्वामित्व की बात नहीं रहती। और आनंद दूसरे के कारण नहीं, तुम्हारे कारण घटता है। यह स्मरण रहे कि आनंद तुम्हारे कारण घटता है। क्योंकि तुम दूसरे में इतना समाहित हो गए कि आनंद घटित हुआ।

यह घटना गुलाब के फूल के साथ भी घट सकती है। चट्टान या वृक्ष या किसी भी चीज के साथ घट सकती है। एक बार तुम उस स्थिति से परिचित हो गए जिसमें यह आनंद घटता है। तो वह कहीं भी घट सकता है। यदि तुम जानते हो कि तुम नहीं हो ओ किसी गहन प्रेम में तुम दूसरे की और प्रवाहित हो जाए तो अहंकार तुम्हें छोड़ देता है। और अहंकार की उस अनुपस्थिति में आनंद फलित होता है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-9

तंत्र-सूत्र—विधि-19 (ओशो)

केंद्रित होने की सातवीं विधि:

शिव…तंत्र-सूत्र—विधि-19 –ओशो(नितंबो पर बैठो)

‘’पाँवों या हाथों को सहारा दिए बिना सिर्फ नितंबों पर बैठो। अचानक केंद्रित हो जाओगे।‘’
चीन में ताओ वादियों ने सदियों से इस विधि को प्रयोग किया है। यह एक अद्भुत विधि है और बहुत सरल भी।

इसे प्रयोग करो: ‘’पाँवों या हाथों को सहारा दिए बिना सिर्फ नितंबों पर बैठो। अचानक केंद्रित हो जाओगे।‘’

इसमें करना क्या है? इसके लिए दो चीजें जरूरी है। एक तो बहुत संवेदनशील शरीर चाहिए, जो कि तुम्हारे पास नहीं है। तुम्हारा शरीर मुर्दा है। वह एक बोझ है। संवेदनशील बिलकुल नहीं है। इसलिए पहले तो उसे संवेदनशील बनाना होगा, अन्यथा यह विधि काम नहीं करेगी। मैं पहले तुम्हें बताऊंगा कि शरीर को संवेदनशील कैसे बनाया जाए—खासकर नितंब को।
तुम्हारी जो नितंब है वह तुम्हारे शरीर का सब से संवेदनशील अंग है। उसे संवेदनहीन होना पड़ता है। क्योंकि तुम सारा दिन नितंब पर ही बैठे रहते हो। अगर वह बहुत संवेदनशील हो तो अड़चन होगी। तुम्हारे नितंब को संवेदनहीन होना जरूरी है। पाँव के तलवे जैसी उसकी दशा है। निरंतर उन पर बैठे-बैठे पता नहीं चलता कि तुम नितंबों पर बैठे हो। इसके पहले क्या कभी तुमने उन्हें महसूस किया है? अब कर सकते हो, लेकिन पहले कभी नहीं किया। और तुम पूरी जिंदगी उन पर ही बैठते हो—बिना जाने। उनका काम ही ऐसा है कि वे बहुत संवेदनशील नहीं हो सकते।

तो पहले तो उन्हें संवेदनशील बनाना होगा। एक बहुत सरल उपाय काम में लाओ। यह उपाय शरीर के किसी भी अंग के लिए काम आ सकता है। तब शरीर संवेदनशील हो जाएगा। एक कुर्सी पर विश्राम पूर्वक, शिथिल होकर बैठो। आंखे बंद कर लो और शिथिल होकर कुर्सी पर बैठो। और बाएं हाथ को दाहिने हाथ पर महसूस करो। कोई भी चलेगा। बाएं हाथ को महसूस करो। शेष शरीर को भूल जाओ। और बांए हाथ को महसूस करो।

तुम जितना ही उसे महसूस करोगे वह उतना ही भारी होगा। ऐसे बाएं हाथ को महसूस करते जाओ। पूरे शरीर को भूल जाओ। बाएं हाथ को ऐसे महसूस करो जैसे तुम बायां हाथ ही हो। हाथ ज्यादा से ज्यादा भारी होता जाए। जैसे-जैसे वह भारी होता जाए वैसे-वैसे उसे और भारी महसूस करो। और तब देखो कि हाथ में क्या हो रहा है।

जो भी उत्तेजना मालूम हो उसे मन में नोट कर लो—कोई उत्तेजना। कोई झटका, कोई हलकी गति, सबको मन में नोट करते जाओ। इस तरह रोज तीन सप्ताह तक प्रयोग जारी रखो। दिन के किसी समय भी दस-पंद्रह मिनट तक यह प्रयोग करो। बाएं हाथ को महसूस करो और सारे शरीर को भूल जाओ।

तीन सप्ताह के भीतर तुम्हें अपने एक नए बाएं हाथ का अनुभव होगा। और वह इतना संवेदनशील होगा, इतना जीवंत। और तब तुम्हें हाथ की सूक्ष्म और नाजुक संवेदनाओं का भी पता चलने लगेगा।

जब हाथ सध जाए तो नितंब पर प्रयोग करो। तब यह प्रयोग करो: आंखें बंद कर लो और भाव करो कि सिर्फ दो नितंब है। तुम नहीं है। अपनी सारी चेतना को नितंब पर जाने दो। यही कठिन नहीं है। अगर प्रयोग करो तो यह आश्चर्यजनक है, अद्भुत है। उससे शरीर में जा जीवंतता का भाव आता है वह अपने आप में बहुत आनंददायक है। और जब तुम्हें अपने नितंबों का एहसास होने लगे, जब वे खूब संवेदनशील हो जाएं। जब भीतर कुछ भी हो उसे महसूस करने लगो, छोटी सी हलचल, नन्हीं सी पीड़ा भी महसूस करने लगो। तब तुम निरीक्षण कर सकते हो। जान सकते हो। तब समझो कि तुम्हारी चेतना नितंबों से जुड़ गयी।

पहले हाथ से प्रयोग शुरू करो, क्योंकि हाथ बहुत संवेदनशील है। एक बार तुम्हें यह भरोसा हो जाए कि तुम अपने हाथ को संवेदनशील बना सकते हो। तब वहीं भरोसा तुम्हें तुम्हारे नितंब को संवेदनशील बनाने में मदद करेगा। और तब इस विधि को प्रयोग में लाओ। इसलिए इस विधि को प्रयोग में लाओ। इसलिए इस विधि में प्रवेश करने के लिए तुम्हें कम से कम छह सप्ताह की तैयारी करनी चाहिए। तीन सप्ताह हाथ के साथ और तीन सप्ताह नितंबों के साथ। उन्हें ज्यादा से ज्यादा संवेदनशील बनाना है।

बिस्तर पर पड़े-पड़े शरीर को बिलकुल भूल जाओ, इतना ही याद रखो कि सिर्फ दो नितंब बचे है। स्पर्श अनुभव करो— बिछावन की चादर का, सर्दी का या धीरे-धीरे आती हुई उष्णता का। अपने स्नान टब में पड़े-पड़े शरीर को भूल जाओ। नितंबों को ही स्मरण रखो।

उन्हें महसूस करो। दीवार से नितंब सटाकर खड़े हो जाओ और दीवार की ठंडक को महसूस करो। अपनी प्रेमिका, या पति के साथ नितंब से नितंब मिलाकर खड़े जाओ और एक-दूसरे को नितंबों के द्वारा महसूस करो। यह विधि महज तुम्हारे नितंब को पैदा करने के लिए है। उन्हें उस स्थिति में लाने के लिए जहां वे महसूस करने लगें।

और जब इस विधि को काम में लाओ: ‘’**पाँवों या हाथों को सहारा दिए बिना.....।**‘’
जमीन पर बैठो, पाँवों या हाथों के सहारे के बिना सिर्फ नितंबों के सहारे बैठो। इसमें बुद्ध का पद्मासन काम करेगा या सिद्घासन या कोई मामूली आसन भी चलेगा। लेकिन अच्छा होगा कि हाथ का उपयोग न करो। सिर्फ नितंबों के सहारे रहो। नितंबों पर ही बैठो। और तब क्या करो? आंखे बद कर लो और नितंबों का जमीन के साथ स्पर्श महसूस करो। और चूंकि नितंब संवेदनशील हो चूके है। इसलिए तुम्हें पता चलेगा कि एक नितंब जमीन को अधिक स्पर्श कर रहा है। उसका अर्थ हुआ कि तुम एक नितंब पर ज्यादा झुके हुए हो। और दूसरा जमीन से कम सटा हुआ है। और तब दूसरे नितंब पर बारी-बारी से झुकते जाओ और तब धीरे-धीरे संतुलन लाओ।

संतुलन लाने का अर्थ है कि तुम्हारे दोनों नितंब एक सा अनुभव करते है। दोनों के ऊपर तुम्हारा भार बिलकुल समान हो। और तब तुम्हारे नितंब संवेदनशील हो जाएंगे तो यह संतुलन कठिन नहीं होगा। तुम्हें उसका एहसास होगा। और एक बार दोनों नितंब संतुलन में आ जाएं तो तुम केंद्र पर पहूंच गए। उस संतुलन में तुम अचानक अपने नाभि केंद्र पर पहुंच जाओगे और भीतर केंद्रित हो जाओगे। तब तुम अपने नितंबों को भूल जाओगे। अपने शरीर को भूल जाओगे। तब तुम अपने आंतरिक केंद्र पर स्थित होओगे।

इसी वजह से मैं कहता हूं कि केंद्र नहीं, केंद्रित होना महत्वपूर्ण है। चाहे वह घटना ह्रदय में या सिर म या नितंब में घटित हो, उसका महत्व नहीं है। तुमने बुद्धों को बैठे देखा होगा। तुमने नहीं सोचा होगा कि वे अपने नितंबों का संतुलन किए बैठे है।

किसी मंदिर में जाओ और महावीर को बैठे देखो या बुद्ध को बैठे देखो, तुमने नहीं सोचा होगा कि यह बैठना नितंबों का संतुलन भर है। यह वही है। और जब असंतुलन न रहा तो संतुलन से तुम केंद्रित हो गए।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-13

तंत्र-सूत्र—विधि-20 (ओशो)

केंद्रित होने की आठवीं विधि:

विज्ञान भैरव तंत्र-शिव भाग-1, तंत्र-सूत्र—विधि-20(ओशो)

''किसी चलते वाहन में लयवद्ध झुलने के द्वारा, अनुभव को प्राप्त हो। या किसी अचल वाहन में अपने को मंद से मंदतर होते अद्दश्य वर्तृलों में झुलने देने से भी।''
दूसरे ढंग से यह वही है। ''किसी चलते वाहन में.........।''

तुम रेलगाड़ी या बैलगाड़ी से यात्रा कर रहे हो। जब यह विधि विकसित हुई थी तब बैलगाड़ी ही थी। तो तुम एक हिंदुस्तानी सड़क पर—आज भी सडकें वैसी ही है—बैलगाड़ी में यात्रा कर रहे हो। लेकिन चलते हुए अगर तुम्हारा सारा शरीर हिल रहा है तो बात व्यर्थ हो गई।

''किसी चलते वाहन में लयवद्ध झुलने के कारण........।''

लयवद्ध ढंग से झूलों। इस बात को समझो, बहुत बारीक बात है। जब भी तुम किसी बैलगाड़ी या किसी वाहन में चलते हो तो तुम प्रतिरोध करते होते हो। बैलगाड़ी बाई तरफ झुकती है, लेकिन तुम उसका प्रतिरोध करते हो, तुम संतुलन रखने के लिए दाई तरफ झुक जाते हो। अन्यथा तुम गिर जाओगे। इसलिए तुम निरंतर प्रतिरोध कर रहे हो। बैल गाड़ी में बैठे-बैठे तुम बैलगाड़ी के हिलने-डुलते से लड़ रहे हो। वह इधर जाती है तो तुम उधर जाते हो। यही वजह है कि रेलगाड़ी में बैठे-बैठे तुम थक जाते हो। तुम कुछ करते नहीं हो तो थक क्यों जाते हो। अन्यथा ही तुम बहुत कुछ कर रहे हो। तुम निरंतर रेलगाड़ी से लड़ रहे हो, प्रतिरोध कर रहे हो।

प्रतिरोध मत करो, यह पहली बात है। अगर तुम इस विधि को प्रयोग में लाना चाहते हो तो प्रतिरोध छोड़ दो। बल्कि गाड़ी की गति के साथ-साथ गति करो, उसकी गति के साथ-साथ झूलों। बैलगाड़ी का अंग बन जाओ, प्रतिरोध मत करो। रास्ते पर बैलगाड़ी जो भी करे, तुम उसके अंग बनकर रहो। इसी कारण यात्रा में बच्चे कभी नहीं थकते है।

पूनम हाल ही में लंदन से अपने दो बच्चों के साथ आई है। चलते समय वह भयभीत थी कि इतनी लंबी यात्रा के कारण बच्चें थ जाएंगे। बीमार हो जाएंगे। वह थक गई और वे हंसते हुए यहां पहुँचे। वह जब यहां पहुंची तो थक कर चूर-चूर हो गई थी। जब वह मेरे कमरे में प्रविष्ट हुई, वह थकावट से टूट रही थी। और दोनों बच्चें वहीं तुरंत खेलने लग गये। लंदन से बंबई अठारह घंटे की यात्रा है। लेकिन वे जरा भी थके नहीं। क्यों? क्योंकि अभी वे प्रतिरोध करना नहीं जानते है।

एक पियक्कड़ सारी रात बैलगाड़ी में यात्रा करेगा। और सुबह वह ताजा का ताजा रहेगा। लेकिन तुम नहीं। कारण यह है कि पियक्कड़ भी प्रतिरोध नहीं करता है। वह गाड़ी के साथ गति करता है। वह लड़ता नहीं है। वह गाड़ी के साथ झूलता है, और एक हो जाता है।

''किसी चलते वाहन में लयवद्ध झुलने के द्वारा........।''
तो एक काम करो, प्रतिरोध मत करो। और दूसरी बात कि एक लय पैदा करो, अपने हिलने डुलनें में लय पैदा करे, उसे लय में बांधों। उसमे एक छंद पैदा करो। सड़क को भूल जाओ। सड़क या सरकार को गालियां मत दो, उन्हें भी भूल जाओ। वैसे ही बैल और बैलगाड़ी को या गाड़ीवान को गाली मत दो। उन्हें भी भूल जाओ। आंखें बंद कर लो। प्रतिरोध मत करो। लयवद्ध ढंग से गति करो और अपनी गति में संगीत पैदा करो। उसे एक नृत्य बना लो।

''किसी चलते वाहन में लयवद्ध झुलने के द्वारा......अनुभव को प्राप्त हो।''
सूत्र कहता है कि तुम्हें अनुभव प्राप्त हो जाएगा।

''या किसी अचल वाहन में....।''

यह मत पूछो कि बैलगाड़ी कहां मिलेगी। अपने को धोखा मत दो।

क्योंकि यह सूत्र कहता है: ''या किसी अचल वाहन में अपने को मंद से मंदतर होते अदृश्य वर्तुलों में झुलने देने से भी।''

यही बैठे-बैठे हुए वर्तुल में झूलों, घूमों। वर्तुल को छोटे से छोटा किए जाओ—इतना छोटा कि तुम्हारा शरीर दृश्य से झूलता हुआ न रहे। लेकिन भीतर एक सूक्ष्म गति होती रहे। आंखे बंद कर लो। और बड़े वर्तुल से शुरू करे। आंखे बंद कर लो, अन्यथा जब शरीर रूक जाएगा तब तुम भी रूक जाओगे। आंखे बंद करके बड़े वर्तुल को छोटा, और छोटा किए चलो।

दृश्य रूप से तुम रूक जाओगे। किसी को नहीं मालूम होगा कि तुम अब भी हिल रहे हो। लेकिन भीतर तुम एक सूक्ष्म गति अनुभव करते रहोगे। अब शरीर नहीं चल रहा है। केवल मन चल रहा है। उसे भी मंद से मंदतर किए चलो। और अनुभव करो; वही केंद्रित हो जाओगे। किसी वाहन में, किसी चलते वाहन में एक अप्रतिरोध और लयबद्ध गति तुम्हें केंद्रित हो जाओगे।

गुरूजिएफ ने इन विधियों के लिए अनेक नृत्य निर्मित किए थे। वह इस विधि पर काम करता था। वह अपने आश्रम में जितने नृत्यों का प्रयोग करता था वह सच में वर्तुल में झूमने से संबंधित थे। सभी नृत्य वर्तुल में चक्कर लगाने से संबंधित है। बाहर चक्कर लगाकर लगाना होता, भीतर होश पूर्ण रहना होता। फिर वे धीरे-धीरे वर्तुल को छोटा और छोटा किए जाते है। तब एक समय आता है कि शरीर ठहर जाता है। लेकिन भीतर मन गति करता रहता है।

अगर तुम लगातार बीस घंटे तक रेलगाड़ी में सफर करके घर लोटों और घर में आंखे बंद करके देखो तो तुम्हें लगेगा। कि तुम अब भी गाड़ी में यात्रा कर रहे हो। शरीर तो ठहर गया है, लेकिन मन का लगता है कि यह गाड़ी में ही है। वैसे ही इस विधि का प्रयोग करो। गुरजिएफ ने अद्भुत नृत्य पैदा किए और सुंदर नृत्य। इस सदी में उसने सचमुच चमत्कार किया है। वे चमत्कार सत्य साईं बाबा के चमत्कार नहीं थे। साई बाबा के चमत्कार तो कोई गली-गली फिरने वाला मदारी भी कर सकता है। लेकिन गुरूजिएफ ने असली चमत्कार पैदा किए। ध्यान पूर्ण नृत्य के लिए उसने सौ नर्तकों की एक मंडली बनाई। और पहली बार उसने न्यूयार्क के एक समूह के सामने उनका प्रदर्शन किया।

सौन नर्तक मंच पर गोल-गोल नाच रहे थे। उन्हें देखकर अनेक दर्शकों के भी सिर घूमने लगे। ऐसे सफेद पोशाक में वे सौ नर्तक नृत्य करते थे। जब गुरूजिएफ हाथों से नृत्य का संकेत करता था तो वे नाचते थे और ज्यों ही वह रूकने का इशारा करता था, वे पत्थर की तरह ठहर जाते थे। और मंच पर सन्नाटा हो जाता था। वह रूकना दर्शकों के लिए था। नर्तकों के लिए नही; क्योंकि शरीर तो तुरंत रूक सकता है। लेकिन मन तब नृत्य को भीतर ले जाता है। और वहां नृत्य चलता रहता है।

उसे देखना भी एक सुंदर अनुभव था कि सौ लोग अचानक मृत मूर्तियों जैसे हो जाते है। उसके दर्शकों में एक आघात पैदा होता था, क्योंकि सौ नृत्य, सुंदर और लयवद्ध नृत्य अचानक ठहरकर जाम हो जाते थे। तुम देख रहे हो, कि वे घूम रहे है, गोल-गोल नाच रह है और अचानक सब नर्तक ठहर गए। तब तुम्हारा विचार भी ठहर जाता है। न्यूयार्क में अनेक को लगा कि यह तो एक बेबूझ, रहस्यपूर्ण नृत्य है। क्योंकि उनके विचार भी उसके साथ तुरंत ठहर जाते थे। लेकिन नर्तकों के लिए नृत्य भीतर चलता रहता था। भीतर नृत्य के वर्तुल छोटे से छोटे होते जाते थे और अंत में वह केंद्रित हो जाते थे।

एक दिन ऐसा हुआ कि सारे नर्तक नाचते हुए मंच के किनारे पर पहुंच गए। लोग सोचते थे कि अब गुरूजिएफ उन्हें रो देंगे। अन्यथा वे दर्शकों की भीड़ पर गिर पड़ेंगे। सौ नर्तक नाचते-नाचते मंच के किनारे पर पहुंच गए है। एक कदम और, और वे नीचे दर्शकों पर गिर पड़ेंगे। सारे दर्शक इस प्रतीक्षा में थे कि गुरूजिएफ रुको कहकर उन्हें वहीं रो देगा। लेकिन उसी क्षण गुरूजिएफ ने उनकी तरफ से मुख फैर लिया और पीठ कर के खड़ा हो कर अपना सिंगार चलाने लगा। और सौ नर्तकों की पूरी मंडली मंच से नीचे नंगे फर्श पर गिर पड़ी।

सभी दर्शक उठ खड़े हुए। उनकी चीख़ें निकल गई। गिरना इस धमाके के साथ हुआ था कि उन्हें लगा कि अनेक दर्शकों के हाथ पैर टूट गए होंगे। लेकिन एक भी व्यक्ति को चोट नहीं लगा थी। किसी को खरोंच तक भी नहीं आई थी।

उन्होंने गुरूजिएफ से पूछा कि क्या हुआ कि एक आदमी भी घायल नहीं हुआ। जब कि नर्तकों का नीचे गिरना इतना बड़ा था। यह तो एक असंभव घटना मालूम होती है।

कारण इतना ही था कि उस क्षण नर्तक अपने शरीरों में नहीं थे। वे अपने भीतर के वर्तुलों को मंदतर किए जा रहे थे। और जब गुरजिएफ ने देखा कि वे पूरी तरह अपने शरीरों को भूल गये है तब उसने उन्हें नीचे गिरने दिया।

तुम जब शरीर को बिलकुल भूल जाते हो तो कोई प्रतिरोध नहीं रह जाता है। और हड्डी तो टूटती है प्रतिरोध के कारण। जब तुम गिरने लगते हो तो तुम प्रतिरोध करते हो, अपने को गिरने से रोकते हो। गिरते समय तुम गुरुत्वाकर्षण के विरूद्ध संघर्ष करते हो। और वही प्रतिरोध, वही संघर्ष समस्या बन जाता है। गुरुत्वाकर्षण नहीं, प्रतिरोध से हड्डी टूटती है। अगर तुम गुरूत्वाकर्षण के साथ सहयोग करो; उसके साथ-साथ गिरो, तो चोट लगने की कोई संभावना नहीं है।

सूत्र कहता है: ''किसी चलते वाहन में लयवद्ध झुलने के द्वारा, अनुभव को प्राप्त हो। या किसी अचल वाहन में अपने को मंद से मंदतर होते अदृश्य वर्तुलों में झुलने देने से भी।''

यह तुम ऐसे भी कर सकते हो, वाहन की जरूरत नहीं है। जैसे बच्चें गोल-गोल घूमते है वैसे गोल-गोल घूमों। और जब तुम्हारा सिर घूमने लगे और तुम्हें लगे कि अब गिर जाऊँगा तो भी नाचना बंद मत करो। नाचते रहो। अगर गिर भी जाओ तो फिक्र मत करो। आँख बंद कर लो और नाचते रहो। तुम्हारा सिर चकर खानें लगेगा। और तुम गिर जाओगे। तुम्हारा शरीर गिर जाए तो भीतर देखो; भीतर नाचना जारी रहेगा। उसे महसूस करो। वह निकट से निकटतर होता जाएगा। और अचानक तुम केंद्रित हो जाओगे।

बच्चे इसका खूब मजा लेते है। क्योंकि इससे उन्हें बहुत ऊर्जा मिलती है। लेकिन उनके मां-बाप उन्हें नाचने से रोकते है। जो कि अच्छा नहीं है। उन्हें नाचने देना चाहिए, उन्हें इसके लिए उत्साहित करना चाहिए। और अगर तुम उन्हें अपने भीतर के नाच से परिचित करा सको तो तुम उन्हें उसके द्वारा ध्यान सिखा दोगे।

वे इसमे रस लेते है। क्योंकि शरीर-शून्यता का भाव उनमें है। जब वे गोल-गोल नाचते है तो बच्चों को अचानक पता चलता है कि उनका शरीर तो नाचता है, लेकिन वे नहीं नाचते। अपने भीतर वे एक तरह से केंद्रित हो गए महसूस करते है। क्योंकि उनके शरीर और आत्मा में अभी दूरी नहीं बनी हे। दोनों के बीच अभी अंतराल है। हम सयाने लोगों को यह अनुभव इतनी आसानी से नहीं हो सकता।

जब तुम मां के गर्भ में प्रवेश करते हो तो तुरंत ही शरीर में नहीं प्रविष्ट हो जाते हो। शरीर में प्रविष्ट होने में समय लगता है। और जब बच्चा जनम लेता है तब भी वह शरीर से पूरी तरह नहीं जुड़ा होता है, उसकी आत्मा पूरी तरह स्थित नहीं होती है। दोनों के बीच थोड़ा अंतराल बना रहता है। यही कारण है कि कई चीजें बच्चा नहीं कर सकता। उसका शरीर तो उन्हें करने को तैयार है, लेकिन वह नहीं कर पाता।

अगर तुमने खयाल किया हो तो देखा होगा नवजात शिशु दोनों आंखों से देखने में समर्थ नहीं होते है। वे सदा एक आँख से देखते है। तुमने गौर किया होगा कि जब बच्चे कुछ देखते है, निरीक्षण करते है, तो दोनों आंखों से नहीं करते। वे एक आँख से ही देखते है, उनकी वह आँख बड़ी हो जाती है। देखते क्षण उनकी एक आँख की पुतली फैल कर बड़ी हो जाती है। और दूसरी पुतली छोटी हो जाती है। बच्चे अभी स्थिर नहीं हुए है। उनकी चेतना अभी स्थिर नहीं है। उनकी चेतना अभी ढीली–ढीली है। धीरे-धीरे वह स्थिर होगी और तब वे दोनों आँख से देखने लगेंगे।

बच्चें अभी अपने और दूसरे के शरीर में फर्क करना नहीं जानते है। यह कठिन है। वे अभी अपने शरीर से पूरी तरह नहीं जुडे है। यह जोड़ धीरे-धीरे आएगा।

ध्यान फिर से अंतराल पैदा करने की चेष्टा है। तुम अपने शरीर से जुड़ गए हो, शरीर के साथ ठोस हो चुके हो। तभी तो तुम समझते हो कि मैं शरीर हूं। अगर फिर से एक अंतराल बनाया जा सके तो फिर समझने लगोगे कि मैं शरीर नहीं हूं। शरीर से परे कुछ हूं। इसलिए झूलना और गोल-गोल घूमना सहयोगी होते है। वे अंतराल पैदा करते है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-13

तंत्र-सूत्र—विधि-21(ओशो)

केंद्रित होने की नौवीं विधि:

शिव तंत्र-सूत्र—विधि-21 किसी अंग को सुई से भेदो–ओशो

''अपने अमृत भरे शरीर के किसी अंग को सुई से भेदो, और भद्रता के साथ उस भेदन में प्रवेश करो, और आंतरिक शुद्धि को उपलब्ध होओ।''

यह सूत्र कहता है: ''अपने अमृत भरे शरीर के किसी अंग को सुई से भेदों.....।''

तुम्हारा शरीर मात्र शरीर नहीं है, वह तुमसे भरा है, और यह तुम अमृत हो। अपने शरीर को भेदों, उसमें छेद करो। जब तुम अपने शरीर को छेदते, सिर्फ शरीर छिदता है। लेकिन तुम्हें लगता है कि तुम ही छिद गए। इसी से तुम्हें पीड़ा अनुभव होती है। और अगर तुम्हें यह बोध हो कि सिर्फ शरीर छिदा है, मैं नहीं छिदा हूं, तो पीड़ा के स्थान पर आनंद अनुभव करोगे।
सुई से भी छेद करने की जरूरत नहीं है। रोज ऐसी अनेक चीजें घटित होती है। जिन्हें तुम ध्यान के लिए उपयोग में ला सकते हो। या कोई ऐसी स्थिति निर्मित भी कर सकते हो।

तुम्हारे भीतर कहीं कोई पीड़ा हो रही है। एक काम करो। शेष शरीर को भूल जाओ, केवल उस भाग पर मन को एकाग्र करो जिसमे पीड़ा है। और तब एक अजीब बात अनुभव में आएगी। जब तुम पीड़ा वाले भाग पर मन को एकाग्र करोगे तो देखोगें कि वह भाग सिकुड़ रहा है, छोटा हो रहा है। पहले तुमने समझा था कि पूरे पाँव में पीड़ा है, लेकिन जब एकाग्र होकर उसे देखोगें तो मालूम होगा कि दर्द पाँव में नहीं है। वह तो अतिशयोक्ति है, दर्द सिर्फ घुटने में है।

और ज्यादा एकाग्र होओ और तुम देखोगें कि दर्द पूरे घुटने में नहीं है। एक छोटे से बिंदु में है। सिर्फ उस बिंदु पर एकाग्रता साधो, शेष शरीर को भूल जाओ। आंखें बंद रखो और एकाग्रता को बढ़ाए जाओ। और खोजों कि पीड़ा कहां है। पीड़ा का क्षेत्र सिकुड़ता जाएगा। छोटे से छोटा हो जाएगा। और एक क्षण आएगा जब वह मात्र सुई की नोक पर रह जाएगा। उस सुई की नोक पर भी एकाग्रता की नजर गड़ाओ, और अचानक वह नोक भी विदा हो जाएगी। और तुम आनंद से भर जाओगे। पीड़ा की बजाएं तुम आनंद से भर जाओगे।

ऐसा क्यों होता है। क्योंकि तुम और तुम्हारे शरीर एक नहीं है। वे दो है। अलग-अलग है। वह जो एकाग्र होता है। वह तुम हो। एकाग्रता शरीर पर होती है। शरीर विषय हे। जब तुम एकाग्र होते हो तो अंतराल बड़ा होता है। तादात्म्य टूटता है। एकाग्रता के लिए तुम भीतर सरक पड़ते हो। और यह दूर जाना अंतराल पैदा करता है।

जब तुम पीड़ा पर एकाग्रता साधते हो तो तुम तादात्म्य भूल जाते हो। तुम भूल जाते हो कि मुझे पीड़ा हो रही है। अब तुम द्रष्टा हो और पीड़ा कहीं दूसरी जगह है। तुम अब पीड़ा को देखने वाले हो, भोगने वाले नहीं। भोक्ता के द्रष्टा में बदलने के कारण अंतराल पैदा होता है। और जब अंतराल बड़ा होता है तो अचानक तुम शरीर को बिलकुल भूल जाते हो। तुम्हें सिर्फ चेतना का बोध होता है।

तो तुम इस विधि का प्रयोग भी कर सकते हो।

''अपने अमृत भरे शरीर के किसी अंग को सुई से भेदों, और भद्रता के साथ उस भेदन में प्रवेश करो......।''
अगर कोई पीड़ा हो तो पहले तुम्हें उसके पूरे क्षेत्र पर एकाग्र होना होगा। फिर धीरे-धीर वह क्षेत्र घटकर सुई की नोक के बराबर रह जाएगा। लेकिन पीड़ा की प्रतीक्षा क्या करनी। तुम एक सुई से काम ले सकते हो। शरीर के किसी संवेदनशील अंग पर सुई चुभोओ। पर शरीर में ऐसे भी कई स्‍थल है जो मृत है, उनसे काम नहीं चलेगा।

तुमने शरीर के इन मृत स्थलों के बारे में नहीं सूना होगा, किसी मित्र के हाथ में एक सुई दे दो और तुम बैठ जाओ और मित्र से कहो कि वह तुम्हारी पीठ में कई स्थलों पर सुई चुभाएं। कई स्थलों पर तुम्हें पीड़ा का एहसास नहीं होगा। तुम मित्र से कहोगे कि तुमने सुई अभी नहीं चुभोई है, मुझे दर्द नहीं हो रहा है। वे ही मृत स्‍थल है। तुम्हारे गाल पर ही ऐसे दो मृत स्‍थल है जिनकी जांच की जा सकती है।

अगर तुम भारत के गांव में जाओ तो देखोगें कि धार्मिक त्योहारों के समय कुछ लोग अपने गालों को तीन से भेद देते है। वह चमत्कार जैसा मालूम होता है। लेकिन चमत्कार है नहीं । गाल पर दो मृत स्‍थल है। अगर तुम उन्हें छेदों तो न खून निकलेगा। और न पीडा ही होगी। तुम्हारी पीठ में तो ऐसे हजारों मृत स्‍थल है। वहां पीड़ा नहीं होती।

तो तुम्हारे शरीर में दो तरह के स्‍थल है—संवेदनशील, जीवित स्‍थल और मृत स्‍थल। कोई संवेदनशील स्‍थल खोजों जहां तुम्हें जरा से स्पर्श का भी पता चल जायेगा। तब उसमे सुई चुभोकर चुभन में प्रवेश कर जाओ। वही असली बात है। वही ध्यान है। और भद्रता के साथ भेदन म प्रवेश कर जाओ। जैसे-जैसे सुई तुम्हारी चमड़ी के भीतर प्रवेश करेगी और तुम्हें पीड़ा होगी, वैसे-वैसे तुम भी उसमे प्रवेश करते जाओ। यह मत देखो कि तुम्हारे भीतर पीड़ा प्रवेश कर रही है। पीड़ा को मत देखो, उसके साथ तादम्यता करो। सुई के साथ, चुभन के साथ तुम भी भीतर प्रवेश करो। आंखें बंद कर लो। पीड़ा का निरीक्षण करो। जैसे पीड़ा भीतर जाए वैसे तुम भी अपने भीतर जाओ। चुभाती हुई सुई के साथ तुम्हारा मन आसानी से एकाग्र हो जाएगा। पीड़ा के तीव्र पीड़ा के उस बिंदु को गोर से देखो, वही भद्रता के साथ भेदन म प्रवेश करना हुआ।

''और आंतरिक शुद्धि को उपलब्‍ध होओ।''

अगर तुमने निरीक्षण करते हुए, तादात्म्य ने करते हुए अलग दूर खड़ रहते हुए, बिना यह समझे हुए कि पीड़ा तुम्हें भेद रही है। बल्कि यह देखते हुए कि सुई शरीर को भेद रही है। और तुम द्रष्टा हो प्रवेश किया तो तुम आंतरिक शुद्धता को उपल्‍बध हो जाओगे। तब आंतरिक निर्दोषता तुम पर प्रकट हो जाएगी। तब पहली बार तुम्हें बोध होगा कि मैं शरीर नहीं हूं।

और एक बार तुमने जाना कि मैं शरीर नहीं हूं, तुम्हारा सारा जीवन आमूल बदल जाएगा। क्योंकि तुम्हारा सारा जीवन शरीर के इर्द-गिर्द चक्कर काटता रहता है। एक बार जान गए कि मैं शरीर नहीं हूं, तुम फिर इस जीवन को नहीं ढो सकते। उसका

केंद्र ही खो गया। जब तुम शरीर नहीं रहे तो तुम्हें दूसरा जीवन निर्मित करना पड़ेगा। वही जीवन संन्यासी का जीवन है। यह और ही जीवन होगा। क्योंकि अब केंद्र ही और होगा। अब तुम संसार में शरीर की भांति नहीं, बल्कि आत्मा की भांति रहोगे।

जब तक तुम शरीर की तरह रहते हो तब तक तुम्हारा संसार भौतिक उपलब्धियों का, लोभ, भोग, वासना और कामुकता का संसार होगा। और वह संसार शरीर प्रधान संसार होगा। लेकिन जब जान लिया है कि मैं शरीर नहीं हूं तो तुम्हारा सार संसार विलीन हो जाता है। तुम अब उसे सम्हालकर नहीं रख सकते हो। तब एक दूसरा संसार उदय होगा जो आत्मा के इर्द-गिर्द होगा। वह संसार करूणा प्रेम, सौंदर्य, सत्य, शुभ और निर्दोषता का संसार होगा। केंद्र हट गया वह अब शरीर में नहीं है। अब केंद्र चेतना में है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-13

तंत्र-सूत्र—विधि-22 (ओशो)

केंद्रित होने की दसवीं विधिः

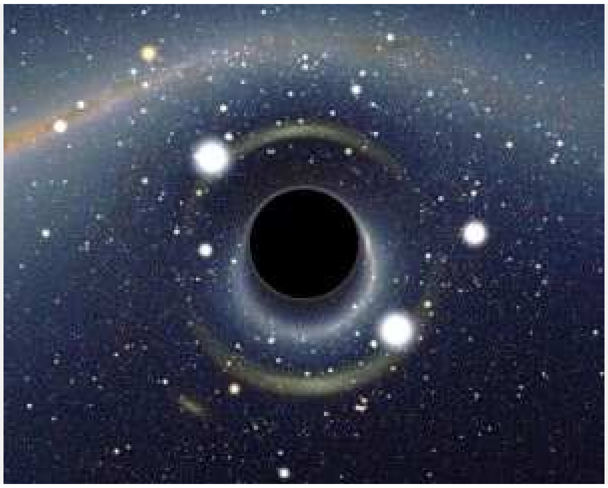

तंत्र सूत्र- शिव विज्ञान भैरव तंत्र, विधि -22 ओशो

''अपने अवधान को ऐसी जगह रखो, जहां अतीत की किसी घटना को देख रहे हो और अपने शरीर को भी। रूप के वर्तमान लक्षण खो जायेगे, और तुम रूपांतरित हो जाओगे।''

तुम अपने अतीत को याद कर रहे हो। चाहे वह कोई भी घटना हो; तुम्हारा बचपन, तुम्हारा प्रेम, पिता या माता की मृत्यु, कुछ भी हो सकता है। उसे देखो। लेकिन उससे एकात्म मत होओ। उसे ऐसे देखो जैसे वह किसी और जीवन में घटा है। उसे ऐसे देखो जैसे वह घटना पर्दे पर फिर घट रही हो, फिल्माई जा रही हो, और तुम उसे देख रहे हो—उससे अलग, तटस्थ साक्षी की तरह।

उस फिल्म में, कथा में तुम्हारा बीता हुआ रूप फिर उभर जाएगा। यदि तुम अपनी कोई प्रेम-कथा स्मरण कर रहे हो, अपने प्रेम की पहली घटना, तो तुम अपनी प्रेमिका के साथ स्मृति के पर्दे पर प्रकट होओगे और तुम्हारा अतीत का रूप प्रेमिका के साथ उभर आएगा। अन्यथा तुम उसे याद न कर सकोगे। अपने इस अतीत के रूप से भी तादात्म्य हटा लो। पूरी घटना को

ऐसे देखो मानो कोई दूसरा पुरूष किसी दूसरी स्त्री को प्रेम कर रहा हो। मानो पूरी कथा से तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है। तुम महज द्दष्टा हो।

यह विधि बहुत-बहुत बुनियादी है। इसे बहुत प्रयोग में लाया गया—विशेषकर बुद्ध के द्वारा। और इस विधि के अनेक प्रकार है। इस विधि के प्रयोग का अपना ढंग तुम खुद खाज ले सकते हो। उदाहरण के लिए, रात में जब तुम सोने लगो, गहरी नींद में उतरने लगो तो पूरे दिन के अपने जीवन को याद करो। इस याद की दिशा उलटी होगी, यानी उसे सुबह से न शुरू कर वहां से शुरू करो जहां तुम हो। अभी तुम बिस्तरे में पड़े हो तो बिस्तर में लेटने से शुरू कर पीछे लोटों। और इस प्रकार कदम-कदम पीछे चलकर सुबह की उस पहली घटना पर पहुंचो जब तुम नींद से जागे थे अतीत स्मरण के इस क्रम में सतत याद रखो कि पूरी घटना से तुम पृथक हो, अछूते हो।

उदाहरण के लिए, पिछले पहर तुम्हारा किसी ने अपमान किया था; तुम अपने रूप को अपमानित होते देखो, लेकिन द्रष्टा बने रहो। तुम्हें उस घटना में फिर नहीं उलझना है, फिर क्रोध नहीं करना है। अगर तुमने क्रोध किया तो तादात्म्य पैदा हो गया। तब ध्यान का बिंदु तुम्हारे हाथ से छूट गया।

इसलिए क्रोध मत करो। वह अभी तुम्हें अपमानित नहीं कर रहा है। वह तुम्हारे पिछले पहर के रूप को अपमानित कर रहा है। वह रूप अब नहीं है। तुम तो एक बहती नदी की तरह हो जिसमें तुम्हारे रूप भी बह रहे है। बचपन में तुम्हारा एक रूप था, अब वह नहीं रहा। वह जा चुका। नदी की भांति तुम निरंतर बदलते जा रहे हो।

रात में ध्यान करते हुए जब दिन की घटनाओं को उलटे क्रम में, प्रतिक्रम में याद करो तो ध्यान रहे कि तुम साक्षी हो, कर्ता नहीं। क्रोध मत करो। वैसे ही जब तुम्हारी कोई प्रशंसा करे तो आह्लादित मत होओ। फिल्म की तरह उसे भी उदासीन होकर देखो।

प्रतिक्रमण बहुत उपयोगी है, खासकर उनके लिए जिन्हें अनिद्रा की तकलीफ हो। अगर तुम्हें ठीक से नींद आती है। अनिद्रा का रोग है। तो यह प्रयोग तुम्हें बहुत सहयोगी होगा। क्यों? क्योंकि यह मन को खोलने का, निर्ग्रंथ करने का उपाय है। जब तुम पीछे लौटते हो तो मन की तहें उघड़ने लगती है। सुबह में जैसे घड़ी में चाबी देते हो वैसे तुम अपने मन पर भी तहें लगाता शुरू करते हो। दिन भर में मन पर अनेक विचारों और घटनाओं के संस्कार जब जाते है; मन उनसे बोझिल हो जाता है। अधूरे और अपूर्ण संस्कार मन में झूलते रहते है। क्योंकि उनके घटित होते समय उन्हें देखने का मौका नहीं मिला था।

इस लिए रात में फिर उन्हें लौटकर देखो—प्रतिक्रम में। यह मन के निर्ग्रंथ की, सफाई की प्रक्रिया है। और इस प्रक्रिया में जब तुम सुबह बिस्तर से जागते की पहली घटना तक पहुंचोगे तो तुम्हारा मन फिर से उतना ही ताजा हो जाएगा। जितना ताजा बह सुबह था। और तब तुम्हें वैसी नींद आएगी जैसी छोटे बच्चे को आती है।

तुम इस विधि को अपने पूरे अतीत जीवन में जाने के लिए भी उपयोग कर सकते हो। महावीर ने प्रतिक्रमण की इस विधि का बहुत उपयोग किया।

अभी अमेरिका में एक आंदोलन है, जिसे डायनेटिक्स कहते है। वे इसी विधि का उपयोग करता है। यह रोग मानसिक मालूम होता है। तो उसके लिए क्या किया जाए। यदि किसी को कहां कि तुम्हारा रोग मानसिक मालूम होता है। तो उससे बात बनने की बजाएं बिगड़ती है। यह सुनकर कि मेरा रोग मानसिक है। किसी भी व्यक्ति को बुरा लगता है। तब उसे लगता है कि अब कोई उपाय नहीं है। और वह बहुत अहसास महसूस करता है।

प्रतिक्रमण एक चमत्कारिक विधि है। अगर तुम पीछे लौटकर अपने मन की गाँठें खोलों तो तुम धीरे-धीरे उस पहले क्षण को पकड़ सकते हो जब यह रोग शुरू हुआ था। उस क्षण को पकड़कर तुम पता चलेगा कि यह रोग अनेक मानसिक घटनाओं और कारणों से निर्मित हुआ है। प्रतिक्रमण से वे कारण फिर से प्रकट हो जाते है।

अगर तुम उसी क्षण से गुजर सको जिसमे पहले पहल इस रोग ने तुम्हें घेरा था, अचानक तुम्हें पता चल जाएगा। कि किन मनोवैज्ञानिक कारणों से यह रोग बना था। तब तुम्हें कुछ करना नहीं है। सिर्फ उन मनोवैज्ञानिक कारणों को बोध में ले आना है। इस प्रतिक्रमण से अनेक रोगों की ग्रंथियां टूट जाती है। और अंतत: रोग विदा हो जाता है। जिन ग्रंथियों को तुम जान लेते हो वे ग्रंथियां विसर्जित हो जाती है। और उनसे बने रोग समाप्त हो जाते है।

यह विधि गहरे रेचन की विधि है। अगर तुम इसे रोज कर सको तो तुम्हें एक नया स्वास्थ और एक नई ताजगी का अनुभव होगा। और अगर हम अपने बच्चों को रोज इसका प्रयोग करना सिखा दें तो उन्हें उनका अतीत कभी बोझल नहीं बना सकेगा। तब बच्चों को अपने अतीत में लौटने की जरूरत नहीं रहेगी। वे सदा यहां और अब, यानी वर्तमान में रहेंगे।

तब उन पर अतीत का थोड़ा सा भी बोझ नहीं रहेगा। वे सदा स्वच्छ और ताजा रहेंगे।

तुम इसे रोज कर सकते हो। पूरे दिन को इस तरह उलटे क्रम से पुन: खोलकर देख लेने से तुम्हें नई अंत दृष्टि प्राप्त होती है। तुम्हारा मन तो चाहेगा कि यादों को सिलसिला सुबह से शुरू करें। लेकिन उससे मन निर्ग्रंथक नहीं होता। उलटे पूरी चीज दुहरा कर और मजबूत हो जाती है। इस लिए सुबह से शुरू करना गलत होगा।

भारत में ऐसे अनेक तथाकथित गुरु है। जो सिखाते है कि पूरे दिन का पुनरावलोकन करो और इस प्रक्रिया को सुबह से शुरू करो। लेकिन यह गलत और नुकसानदेह है। उससे मन मजबूत होगा और अतीत का जाल बड़ा और गहरा हो जाएगा। इसलिए सुबह से श्याम की तरफ कभी मत चलो, सदा पीछे की और गति करो। और तभी तुम मन को पूरी तरह निर्ग्रंथ कर पाओगे, खाली कर पाओगे। स्वच्छ कर पाओगे।

मन तो सुबह से शुरू करना चाहेगा। क्योंकि वह आसान है। मन उस क्रम को भलीभाँति जानता है। उसमें कोई अड़चन नहीं है। प्रतिक्रमण में भी मन उछल कर सुबह पर चला जाता है। और फिर आगे चला चलेगा। वह गलत है, वैसा मत करो। सजग हो जाओ और प्रतिक्रम से चलो।

इसमें मन को प्रशिक्षित करने के लिए अनय उपाय भी काम में लाए जा सकते है। सौ से पीछे की तरह गिनना शुरू करो—निन्यानवे, अट्ठानवे, सत्तानवे,। प्रतिक्रम से सौ से एक तक गिनो। इसमे भी अड़चन होगी। क्योंकि मन की आदत है एक से सौ कि और जाने की है। सौ से एक की और जाने की नहीं। इसी क्रम में घटनाओं को पीछे लौटकर स्मरण करना है।

क्या होगा? पीछे लौटते हुए मन को फिर से खोलकर देखते हुए तुम साक्षी हो जाओगे। अब तुम उन चीजों को देख रहे हो जो कभी तुम्हारे साथ घटित हुई थी, लेकिन अब तुम्हारे साथ घटित नहीं हो रही है। अब तो तुम सिर्फ साक्षी हो, और वे घटनाएं मन के पर्दे पर घटित हो रही है।

अगर इस ध्यान को रोज जारी रखो तो किसी दिन अचानक तुम्हें दुकान पर या दफ्तर में काम करते हुए ख्याल होगा कि क्यों नहीं अभी घटने वाली घटनाओं के प्रति भी साक्षी भाव रख जाए। अगर समय में पीछे लौटकर जीवन की घटनाओं को देखा जा सकता है। उनका गवाह हुआ जा सकता है। दिन में किसी ने तुम्हारा अपमान किया थ और तुम बिना क्रोधित हुए उस घटना को फिर से देख सकते हो—तो क्या कारण है कि उस घटनाओं को जो अभी घट रही है, नहीं देखा जा सकता है। कठिनाई क्या है?

कोई तुम्हारा अपमान कर रहा है। तुम अपने को घटना से पृथक कर सकते हो। और देख सकते हो। कि कोई तुम्हारा अपमान कर रहा है। तुम यह भी देख सकते हो कि तुम अपने शरीर से, अपने मन से और उससे भी जो अपमानित हुआ है। पृथक हो। तुम सारी चीज के गवाह हो सकते हो। और अगर ऐसे गवाह हो सको तो फिर तुम्हें क्रोध नहीं होगा। क्रोध तब असंभव हो जायेगा। क्रोध तो तब संभव होता है जब तुम तादात्म्य करते हो। अगर तादात्म्य नहीं है तो क्रोध असंभव है। क्रोध का अर्थ तादात्म्य है।

यह विधि कहती है कि अतीत की किसी घटना को देखो, उसमें तुम्हारा रूप उपस्थित होगा। यह सूत्र तुम्हारी नहीं, तुम्हारे रूप की बात करता है। तुम तो कभी वहां थे ही नहीं। सदा किसी घटना में तुम्हारा रूप उलझता है। तुम उसमे नहीं होते। जब तुम मुझे अपमानित करते हो तो सच में तुम मुझे अपमानित नहीं करते। तुम मेरा अपमान कर ही नहीं सकते। केवल मेरे रूप का अपमान कर सकते हो। मैं जो रूप हूं तुम्हारे लिए तो उसी की उपस्थिति अभी है और तुम उसे अपमानित कर सकत हो। लेकिन मैं अपने को अपने रूप से पृथक कर सकता हूं।

यही कारण है कि हिंदू-रूप से अपने को पृथक करने की बात पर जोर देता है। तुम तुम्हारा नाम रूप नहीं हो, तुम वह चैतन्य हो जो नाम रूप को जानता है। और चैतन्य पृथक है, स्र्वथा पृथक है।

लेकिन यह कठिन है। इसलिए अतीत से शुरू करो। वह सरल है। क्योंकि अतीत के साथ कोई तात्कालिकता का भाव नहीं रहता है। किसी ने बीस साल पहले तुम्हें अपमानित किया था, उसमें तात्कालिकता का भा अब कैसे होगा। वह आदमी मर चुका होगा और बात समाप्त हो गई है। यह एक मुर्दा घटना है। अतीत से याद की हुई। उसके प्रति जागरूक होना आसान है। लेकिन एक बार तुम उसके प्रति जागना सीख गए तो अभी और यहां होने वाली घटनाओं के प्रति भी जाना हो सकता है। लेकिन अभी और यहां से आरंभ करना कठिन है। समस्या इतनी तात्कालिक है, निकट है, जरूरी है कि उसमे गति करने के लिए जगह ही कहां है। थोड़ा दूरी बनाना और घटना से पृथक होना कठिन बात है।

इसीलिए सूत्र कहता है कि अतीत से आरंभ करो। अपने ही रूप को अपने से अलग देखो और उसके द्वारा रूपांतरित हो जाओ।

इसके द्वारा रूपांतरित हो जाओगे। क्योंकि यह निर्ग्रंथन है—एक गहरी सफाई है, धुलाई है। और तब तुम जानोंगे कि समय में जो तुम्हारा शरीर है, तुम्हारा मन है। अस्तित्व है, वह तुम्हारा वास्तविक यथार्थ नहीं है। वह तुम्हारा सत्य नहीं है। सार-सत्य सर्वथा भिन्न है। उस सत्य से चीजें आती जाती है। और सत्य अछूता रह जाता है। तुम अस्पर्शित रहते हो। निर्दोष रहते हो, कुँवारे रहते हो। सब कुछ गुजर जाता है। पूरा जीवन गुजर जाता है। शुभ और अशुभ सफलता और विफलता, प्रशंसा और निंदा, सब कुछ गुजर जाता है। रोग और स्वास्थ्य, जवानी और बुढ़ापा, जन्म और मृत्यु, सब कुछ व्यतीत हो जाता है। और तुम अछूते रहते हो।

लेकिन इस अस्पर्शित सत्य को कैसे जाना जाए?

इस विधि का वही उपयोग है। अपने अतीत से आरंभ करो। अतीत को देखने के लिए अवकाश उपलब्ध है। अंतराल उपलब्ध है, परिप्रेक्ष्य संभव है। या भविष्य को देखो, भविष्य का निरीक्षण करो। लेकिन भविष्य को देखना भी कठिन है। सिर्फ थोडे से लोगों के लिए भविष्य को देखना कठिन नहीं है। कवियों और कल्पनाशील लोगों के लिए भविष्य को देखना कठिन नहीं है। वे भविष्य को ऐसे देख सकते है जैसे वे किसी यथार्थ को देखते है। लेकिन सामान्यत: अतीत को उपयोग में लाना अच्छा है। तुम अतीत में देख सकते हो।

जवान लोगों के लिए भविष्य में देखना अच्छा रहता है। उनके लिए भविष्य में झांकना सरल है, क्योंकि वे भविष्योन्मुख होते है। बूढे लोगों के लिए मृत्यु के सिवाय कोई भविष्य नहीं है। वे भविष्य में नहीं देख सकते है। वे भयभीत है। यही वजह है कि बूढ़े लोग सदा अतीत के संबंध में विचार करते है। वे पुन:-पुन: अपने अतीत की स्मृति में घूमते रहते है। लेकिन वे भी वही भूल करते है। वे अतीत से शुरू कर वर्तमान की और आते है। यह गलत है। उन्हें प्रतिक्रमण करना चाहिए।

अगर वे बार-बार अतीत में प्रतिक्रम से लौट सकें तो धीरे-धीरे उन्हें महसूस होगा कि उनका सारा अतीत बह गया। तब कोई आदमी अतीत से चिपके बिना, अटके बिना मर सकता है। अगर तुम अतीत को अपने से चिपकने न दो, अतीत में न अटकों, अतीत को हटाकर मर सको। तब तुम सजग मरोगे। तब तुम पूरे बोध में, पूरे होश में मरोगे। और तब मृत्यु तुम्हारे लिए मृत्यु नहीं रहेगी। बल्कि वह अमृत के साथ मिलन में बदल जाएगी।

अपनी पूरी चेतना को अतीत के बोझ से मुक्त कर दो। उससे अतीत के मैल को निकालकर उसे शुद्ध कर दो। और तब तुम्हारा जीवन रूपांतरित हो जाएगा।

प्रयोग करो। यह उपाय कठिन नहीं है। सिर्फ अध्यवसाय की, सतत चेष्टा की जरूरत है। विधि में कोई अंतर्भूत कठिनाई नहीं है। यह सरल है। और तुम आज से ही इसे शुरू कर सकते हो। आज ही रात अपने बिस्तर में लेट कर शुरू करो, और तुम बहुत सुंदर और आनंदित अनुभव करोगे। पूरा दिन फिर से गुजर जाएगा।

लेकिन जल्दबाजी मत करो। धीरे-धीर पूरे क्रम से गूजरों, ताकि कुछ भी दृष्टि से चूके नहीं। यह एक आश्चर्यजनक अनुभव है। क्योंकि अनेक ऐसी चीजें तुम्हारी निगाह के सामने आएँगी जिन्हें दिन में तुम चुक गये थे। दिन में बहुत व्यस्त रहने के कारण तुम बहुत सुंदर चीजें चूकते हो, लेकिन मन उन्हें भी अपने भीतर इकट्ठा करता जाता है। तुम्हारी बेहोशी में भी मन उनको ग्रहण करता जाता है।

तुम सड़क पर जा रहे हो। और कोई आदमी गा रहा था। हो सकता है कि तुमने उसके गीत पर कोई ध्यान नहीं दिया हो। तुम्हें यह भी बोध न हुआ हो कि तुमने उसकी आवाज भी सुनी। लेकिन तुम्हारे मन ने उसके गीत को भी सुना और अपने भीतर स्मृति में रख लिया था अब वह गीत तुम्हें पकड़े रहेगा। वह तुम्हारी चेतना पर अनावश्यक बोझ बना रहेगा।

तो पीछे लौट कर देखो, लेकिन बहुत धीरे-धीरे उसमे गति करो। ऐसा समझो कि पर्दे पर बहुत धीमी गति से कोई फिल्म दिखायी जा रही है। ऐसे ही अपने बीते दिन की छोटी से छोटी घटना को गौर से देखो, उसकी गहराई में जाओ। और तब तुम पाओगे कि तुम्हारा दिन बहुत बड़ा था। वह सचमुच बड़ा था। क्योंकि मन को उसमे अनगिनत सूचनाएं मिली और मन ने सबको इकट्ठा कर लिया।

तो प्रतिक्रमण करो। धीरे-धीरे तुम उस सबको जानने में सक्षम हो जाओगे। जिन्हें तुम्हारे मन ने दिन भर में अपने भीतर इकट्ठा कर लिया था। वह टेप रिकार्डर जैसा है। और तुम जैसे-जैसे पीछे जाओगे। मन का टेप पुछता जाएंगा। साफ होता जाएगा। और तब तक तुम सुबह की घटना के पास पहुंचोगे तुम्हें नींद आ जाएगी। और तब तुम्हारी नींद की गुणवता और होगी। वह नींद भी ध्यान पूर्ण होगी।

और दूसरे दिन सुबह नींद से जागने पर अपनी आंखों को तुरंत मत खोलों। एक बार फिर रात की घटनाओं में प्रतिक्रम से लोटों। आरंभ में यह कठिन होगा। शुरू में बहुत थोड़ी गति होगी। कभी कोई स्वप्न का अंश, उस स्वप्न का अंश जिसे ठीक जागने के पहले तुम देख रहे थे। दिखाई पड़ेगा। लेकिन धीरे-धीरे तुम्हें ज्यादा बातें स्मरण आने लगेंगी। तुम गहरे प्रवेश करने लगोंगे। और तीन महीने के बाद तुम समय के उस छोर पर पहूंच जाओगे। जब तुम्हें नींद लगी थी। जब तुम सो गए थे।

और अगर तुम अपनी नींद में प्रतिक्रम से गहरे उतर सके तो तुम्हारी नींद और जागरण की गुणवता बिलकुल बदल जाएगी। तब तुम्हें सपने नहीं आएँगे, तब सपने व्यर्थ हो जायेंगे। अगर दिन और रात दोनों में तुम प्रतिक्रमण कर सके तो फिर सपनों की जरूरत नहीं रहेगी।

अब मनोवैज्ञानिक कहते है कि सपना भी मन को फिर से खोलने, खाली करने की प्रक्रिया है। और अगर तुम स्वयं यह काम प्रतिक्रमण के द्वारा कर लो तो स्वप्न देखने जरूरत ही नहीं रहेगी। सपना इतना ही तो करता है कि जो कुछ मन में अटका है। अधूरा पडा था, अपूर्ण था, उसे वह पूरा कर देता है।

तुम सड़क से गुजर रहे थे और तुमने एक सुंदर मकान देखा और तुम्हारे भीतर उस मकान को पाने की सूक्ष्म वासना पैदा हो गई। लेकिन उस समय तुम दफ्तर जा रहे थे। और तुम्हारे पास दिवा-स्वप्न देखने का समय नहीं था। तुम उस कामना को टाल गये। तुम्हें यह पता भी नहीं चला कि मन ने मकान को पाने की कामना निर्मित कर ली है। लेकिन यह कामना अब भी मन के किसी कोने में अटकी पड़ी है। और अगर तुमने उसे वहां से नहीं हटाया तो वह तुम्हारी नींद मुश्किल कर देगी।

नींद की कठिनाई यही बताती है कि तुम्हारा दिन अभी भी तुम पर हावी है और तुम उससे मुक्त नहीं हो पा रहे हो। तब रात में तुम स्वप्न देखेंगे कि तुम उस मकान के मालिक हो गए हो, और अब तुम उस मकान में वास कर रहे हो। और जिस क्षण यह स्वप्न घटित होता है। क्योंकि सपने तुम्हारी अधूरी चीजों को पूरा करने में सहयोगी होते है।

और ऐसी चीजें है जो पूरी नहीं हो सकती। तुम्हारा मन अनर्गल कामनाए किए जाता है। वे यथार्थ में पूरी नहीं हो सकती। तो क्या किया जाए? वे अधूरी कामनाए तुम्हारे भीतर बनी रहती है। और तुम आशा किए जाते हो। सोच विचार किए जाते हो। तो क्या किया जाए? तुम्हें एक सुंदर स्त्री दिखाई देती है। और तुम उसके प्रति आकर्षित हो गए। अब उसे पाने की कामना तुम्हारे भीतर पैदा हो गई। जो हो सकता है संभव न हो। हो सकता है वह स्त्री तुम्हारी तरफ ताकना भी पसंद न करे। तब क्या हो?

स्वप्न यहां तुम्हारी सहायता करता है। स्वप्न में तुम उस स्त्री को पा सकते हो। और तब तुम्हारा मन हलका हो जाएगा। जहां तक मन का संबंध है, स्वप्न और यथार्थ में कोई फर्क नहीं है। मन के तल पर क्या फर्क? किसी स्त्री को यथार्थत: प्रेम करने और सपने में प्रेम करने में क्या फर्क है?

कोई फर्क नहीं है। अगर फर्क है तो इतना ही कि स्वप्न यथार्थ से ज्यादा सुंदर होगा। स्वप्न की स्त्री कोई अड़चन नहीं खड़ी करेगी। स्वप्न तुम्हारा और उसमे तुम जो चाहे कर सकते हो। वह स्त्री तुम्हारे लिए कोई बाधा नहीं पैदा करेगी। वह तो है ही नहीं, तुम ही हो। वहां कोई अड़चन नहीं है। तुम जो चाहो कर सकते हो, मन के लिए कोई भेद नहीं है। मन स्वप्न और यथार्थ में कोई भेद नहीं कर सकता है।

उदाहरण के लिए तुम्हें यदि एक साल के लिए बेहोश करके रख दिया जाए और उस बेहोशी मे तुम सपने देखते रहो। तो एक साल तक तुम्हें बिलकुल पता नहीं चलेगा कि जो भी तुम देख रहे हो वह सपना है। सब यथार्थ जैसा लगेगा। और स्वप्न साल भर चलता रहेगा। मनोवैज्ञानिक कहते है कि अगर किसी व्यक्ति को सौ साल के लिए कौमा में रख दिया जाए तो वह सौ साल तक सपने देखता रहेगा। और उसे क्षण भर के लिए भी संदेह नहीं होगा। कि जो मैं कर रहा हूं वह स्वप्न है। और यदि कोमा में ही मर जाएगा तो उसे कभी पता नहीं चलेगा कि मेरा जीवन एक स्वप्न था। सच नहीं था।

मन के लिए कोई भेद नहीं है। सत्य और स्वप्न दोनों समान है। इसलिए मन अपने को सपनों में भी निर्ग्रंथ कर सकता है। अगर इस विधि का प्रयोग करो तो सपना देखने की जरूरत नहीं है। तब तुम्हारी नींद की गुणवता ही पूरी तरह से बदल जायेगी। क्योंकि सपनों की अनुपस्थिति में तुम अपने अस्तित्व की आत्यंतिक गहराई में उतर सकोगे। और तब नींद में भी तुम्हारा बोध कायम रहेगा।

कृष्ण गीता में यही बात कह रहे है कि जब सभी गहरी नींद में होते है तो योगी जागता रहता है। इसका यह अर्थ नहीं कि योगी नहीं सोता। योगी भी सोता है। लेकिन उसकी नींद का गुणधर्म भिन्न है। तुम्हारी नींद ऐसी है जैसे नशे की बेहोशी होती है। योगी की नींद प्रगाढ़ विश्राम है। जिसमे कोई बेहोशी नहीं रहती है। उसका सारा शरीर विश्राम में होता है। एक-एक कोश विश्राम में होता है। वहां जरा भी तनाव नहीं रहता। और बड़ी बात कि योगी अपनी नींद के प्रति जागरूक रहता है।

इस विधि का प्रयोग करो। आज रात से ही प्रयोग शुरू करो। और फिर सुबह भी इसका प्रयोग करना। एक सप्ताह में तुम्हें मालूम होगा कि तुम विधि से परिचित हो गए हो। एक सप्ताह के बाद अपने अतीत पर प्रयोग करो। बीच में एक दिन की छुट्टी रख सकेत हो। किसी एकांत स्थान में चले जाओ। अच्छा हो कि उपवास करा—उपवास और मौन। एकांत समुद्र तट पर या किसी झाड़ के नीचे लेटे रहो, वहां से, उसी बिंदु से अपने अतीत में प्रवेश करो। अगर तुम समुद्र तट पर लेटे हो तो रेत को अनुभव करो। धूप को अनुभव करो और तब पीछे की और सरको। और सरकते चले जाओ। अतीत में गहरे उतरते चले जाओ। देखो कि कौन सी आखिर बात स्मरण आती है।

तुम्हें आश्चर्य होगा कि सामान्यत: तुम बहुत कुछ स्मरण नहीं कर सकते हो। सामान्यत: अपनी चार या पाँच वर्ष की उम्र के आगे नहीं जा सकोगे। जिनकी याददाश्त बहुत अच्छी है वे तीन वर्ष की सीमा तक जा सकते है। उसके बाद अचानक एक अवरोध मिलेगा। जिसके आगे सब कुछ अँधेरा मिलेगा। लेकिन अगर तुम इस विधि का प्रयोग करते रहे तो धीरे-धीरे यह अवरोध टूट जाएगा। तुम अपने जन्म के प्रथम दिन को भी याद कर पाओगे।

और वह एक बड़ा रहस्योद्घाटन होगा। तब धूप, बालू और सागर तट पर लौटकर तुम एक दूसरे ही आदमी होगें।

यदि तुम श्रम करो तो तुम गर्भ तक जा सकते हो। तुम्हारे पास मां के पेट की स्मृतियां है। मां के साथ नौ महीने होने की बातें भी तुम्हें याद है। तुम्हारे मन में उन नौ महीनों की कथा भी लिखी है। जब तुम्हारी मां दुःखी हुई थी तो तुमने उसको भी मन में लिख लिया था। क्योंकि मां के दुःखी होने से तुम भी दुःखी हुये थे। तुम अपनी मां के साथ इतने जुडे थे। संयुक्त थे कि जो कुछ तुम्हारी मां को होता था वह तुम्हें भी होता था। जब वह क्रोध करती थी तो तुम भी क्रोध करते थे। जब वह खुश थी तो तुम भी खुश थे। जब कोई उसकी प्रशंसा करता था तो तुम भी प्रशंसित होते थे। और जब वह बीमार होती थी तो उसकी पीड़ा से तुम भी पीडित होते थे।

यदि तुम गर्भ की स्मृति में प्रवेश कर सको तो समझो कि मिल गई। और जब तुम और गहरे उतर सकते हो। तब तुम उस क्षण को भी याद कर सकते हो जब तुमने मां के गर्भ में प्रवेश किया था। इसी जाति स्मरण के कारण महावीर और बुद्ध कह सके कि पूर्वजन्म है और पुनर्जन्म काई सिद्वांत नहीं है। वह एक गहन अनुभव है।

और अगर तुम उस क्षण की स्मृति को पकड़ सको, जब तुमने मां के गर्भ में प्रवेश किया था तो तुम उससे भी आगे जा सकते हो। तुम अपने पूर्व जीवन की मृत्यु को भी याद कर सकते हो। और एक बार तुमने उस बिंदू को छू लिया तो समझो कि विधि तुम्हारे हाथ लग गई। तब तुम आसानी से अपने सभी पूर्व जन्मों में गति कर सकते हो।

यह एक अनुभव है, और इसके परिणाम आश्चर्यजनक है। जब तुम्हें पता चलता है कि तुम जन्मों –जन्मों से उसी व्यर्थता को जी रहे हो। जो अभी तुम्हारे जीवन में है। एक ही मूढ़ता को तुम जन्मों-जन्मों में दुहराते रहे हो। भीतरी ढंग ढांचा वही है। सिर्फ ऊपर-ऊपर थोड़ा फर्क है। अभी तुम इस स्त्री के प्रेम में हो, कल किसी अन्य स्त्री के प्रेम मैं थे। कल तुमने धन बटोरा था, आज भी धन बटोर रहे हो। फर्क इतना है कि कल के सिक्के और थे आज के सिक्के और है। लेकिन सारा ढांचा वही है, जो पुनरावृत्त होता रहा है।

और एक बार तुम देख लो कि जन्मों–जन्मों से एक ही तरह की मूढ़ता एक दुस्चक्र की भांति घूमती रही है। तो अचानक तुम जाग जाओगे। और तुम्हारा पूरा अतीत स्वप्न से ज्यादा नहीं रहेगा। तब वर्तमान सहित सब कुछ स्वप्न जैसा लगेगा। तब तुम उससे सर्वथा टूट जाओगे। और अब नहीं चाहोगे कि भविष्य में फिर से मूढ़ता दोहरे। तब वासना समाप्त हो जाएगी। क्योंकि वासना भविष्य में अतीत का प्रक्षेपण है। उससे अधिक कुछ नहीं है। तुम्हारा अतीत का अनुभव भविष्य में दुहराना चाहता है। वही तुम्हारी कामना है, चाह है।

पुराने अनुभव को फिर से भोगने की चाह कि कामना है। ओर जब तक तुम इस पुरी प्रक्रिया के प्रति होश पूर्ण नहीं होते हो तब तक वासना से मुक्त नहीं हो सकते। कैसे हो सकते हो? तुम्हारा समस्त अतीत एक अवरोध बनकर खड़ा है; चट्टान की तरह तुम्हारे सिर पर सवार है और वही तुम्हें तुम्हारे भविष्य की और धका रहा है। अतीत कामना को जन्म देकर उसे भविष्य में प्रक्षेपित करता है।

अगर तुम अपने अतीत को स्वप्न की तरह जान जाओ तो सभी कामनाए बांझ हाँ जाएंगी। और कामनाओं के गिरते ही भविष्य समाप्त हो जाता है। और इस अतीत और भविष्य की समाप्ति के साथ तुम रूपांतरित हो जाते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-15

तंत्र-सूत्र—विधि-23 (ओशो)

केंद्रित होने की ग्यारहवीं विधि:

किसी विषय को अनुभव करो, विज्ञान भैरव तंत्र-शिव (ओशो)

‘’अपने सामने किसी विषय को अनुभव करो। इस एक को छोड़कर अन्य सभी विषयों की अनुपस्थिति को अनुभव करो। फिर विषय-भाव और अनुपस्थिति भाव को भी छोड़कर आत्मोपलब्ध होओ।‘’

‘’अपने सामने किसी विषय को अनुभव करो।‘’
कोई भी विषय, उदाहरण के लिए एक गुलाब का फूल है—कोई भी चीज चलेगी।

‘’अपने सामने किसी विषय को अनुभव करो....’’

देखने से काम नहीं चलेगा, अनुभव करना है। तुम गुलाब के फूल को देखते हो, लेकिन उससे तुम्हारा हृदय आंदोलित नहीं होता है। तब तुम गुलाब को अनुभव नहीं करते हो। अन्यथा तुम रोते और चीखते, अन्यथा तुम हंसते और नाचते। तुम गुलाब को महसूस नहीं कर रहे हो, तुम सिर्फ गुलाब को देख रहे हो।

और तुम्हारा देखना भी पूरा नहीं है। अधूरा है। तुम कभी किसी चीज को पूरा नहीं देखते अतीत हमेशा बीच में आता है। गुलाब को देखते ही अतीत-स्मृति कहती है कि यह गुलाब है। और यह कहकर तुम आगे बढ़ जाते हो। लेकिन तब तुमने सच में गुलाब को नहीं देखा। जब मन कहता है कि यह गुलाब है तो उसका अर्थ हुआ कि तुम इसके बारे में सब कुछ जानते हो, क्योंकि तुमने बहुत गुलाब देखे है। मन कहता है कि अब और क्या जानना है। आगे बढ़ो। और आगे बढ़ जाते हो।
यह देखना अधूरा है। यह देखना-देखना नहीं है। गुलाब के फूल के साथ रहो। उसे देखो और फिर उसे महसूस करो। उसे अनुभव करो। अनुभव करने के लिए क्या करना है? उसे स्पर्श करो, उसे सूंघो; उसे गहरा शारीरिक अनुभव बनने दो। पहले अपनी आंखों को बंद करो और गुलाब को अपने पूरे चेहरे को छूने दो। इस स्पर्श को महसूस करो। फिर गुलाब को आँख से स्पर्श करो। फिर गुलाब को नाक से सूंधो। फिर गुलाब के पास हृदय को ले जाओ और उसके साथ मौन हो जाओ। गुलाब को अपना भाव अर्पित करो। सब कुछ भूल जाओ। सारी दूनिया को भूल जाओ। गुलाब के साथ समग्रत: रहो।

''अपने सामने किसी विषय को अनुभव करो। इस एक को छोड़कर अन्य सभी विषयों की अनुपस्थिति को अनुभव करो।

यदि तुम्हारा मन अन्य चीजों के संबंध में सोच रहा है तो गुलाब का अनुभव गहरा नहीं जाएगा। सभी अन्य गुलाबों को भूल जाओ। सभी अन्य लोगों को भूल जाओ। सब कुछ को भूल जाओ। केवल इस गुलाब को रहने दो। यही गुलाब हो, यही गुलाब। सब कुछ को भूल जाओ। केवल इस गुलाब को रहने दो। यही गुलाब, को तुम्हें आच्छादित कर लेने दो। समझो कि तुम इस गुलाब में डूब गये हो।

यह कठिन होगा, क्योंकि हम इतने संवेदनशील नहीं है। लेकिन स्त्रियों के लिए यह उतना कठिन नहीं होगा। क्योंकि वे किसी चीज को आसानी से महसूस करती है। पुरूषों के लिए यह ज्यादा कठिन होगा। हां, अगर उनका सौंदर्य बोध विकसित हो, कवि, चित्रकार या संगीतकार का सौंदर्य बोध विकसित होता है। तो बात और है। तब वे भी अनुभव कर सकते है। लेकिन इसका प्रयोग करो।

बच्चे यह प्रयोग बहुत सरलता से कर सकते है। मैं अपने एक मित्र के बेटे को यह प्रयोग सिखाता था। यह किसी चीज को आसानी से अनुभव करता था। फिर मैंने उसे गुलाब का फल दिया और उससे यह सब कहा जो तुम्हें अब कह रहा हूं। उसने यह किया और कहा कि मैं गुलाब का फूल बन गया हूं। मेरा भाव यही है कि मैं ही गुलाब का फूल हूं।

बच्चे इस विधि को बहुत आसानी से कर सकते है। लेकिन हम उन्हें इसमें प्रशिक्षित नहीं करते। प्रशिक्षित किया जाए तो बच्चे सर्वश्रेष्ठ ध्यानी हो सकते है।

''अपने सामने किसी विषय को अनुभव करो। इस एक को छोड़कर अन्य सभी विषयों की अनुपस्थिति को अनुभव करो।''
प्रेम में यही घटित होता है। अगर तुम किसी के प्रेम में हो तो तुम सारे संसार को भूल जाते हो। और अगर अभी भी संसार तुम्हें याद है तो भली भांति समझो कि यह प्रेम नहीं है। प्रेम में तुम संसार को भूल जाते हो, सिर्फ प्रेमिका या प्रेमी याद रहता है। इसलिए मैं कहता हूं कि प्रेम ध्यान है। तुम इस विधि को प्रेम-विधि के रूप में भी उपयोग कर सकते हो। अब अन्य सब कुछ भूल जाओ।

कुछ दिन हुए एक मित्र अपनी पत्नी के साथ मेरे पास आए। पत्नी को पति से कोई शिकायत थी। इसलिए पत्नी आई थी। मित्र ने कहा कि मैं एक वर्ष से ध्यान कर रहा हूं। और लगती है। यह आवाज मेरे ध्यान में सहयोगी है। लेकिन अब एक

आश्चर्य की घटना घटती है। जब मैं अपनी पत्नी के साथ संभोग करता हूं, और संभोग शिखर छूने लगता है तब भी मेरे मुंह से रजनीश-रजनीश की आवाज निकलने लगती है। और इस कारण मेरी पत्नी को बहुत अड़चन होती है। वह अक्सर पूछती है कि तुम प्रेम करते हो या ध्यान करते हो या क्या करते हो? और ये रजनीश बीच में कैसे आ जाते है।

उस मित्र ने कहा कि मुश्किल यह है कि अगर मैं रजनीश-रजनीश न चिल्लाउं तो संभोग का शिखर चूक जाता है। और चिल्लाउं तो पत्नी पीडित होती है। सह रोने चिल्लाने लगती है। और मुसीबत खड़ी कर देती है। तो उन्होंने मेरी सलाह पूछी और कहां कि पत्नी को साथ लाने का यही कारण है।

उनकी पत्नी की शिकायत दुरूस्त है। क्योंकि वह कैसे मान सकती है कि कोई दूसरा व्यक्ति उनके बीच में आये। यही कारण है कि प्रेम के लिए एकांत जरूरी है। बहुत जरूरी है। सब कुछ को भूलने के लिए एकांत अर्थपूर्ण है।

अभी यूरोप और अमेरिका में वे समूह संभोग का प्रयोग कर रहे है—एक कमरे में अनेक जोड़े संभोग में उतरते है। यह मूढ़ता है। अत्यंतिक मूढ़ता है। क्योंकि समूह में संभोग की गहराई नहीं छुई जा सकती है। वह सिर्फ काम क्रीड़ा बन कर रह जाएगी। दूसरों की उपस्थिति बाधा बन जाती है। तब इस संभोग को ध्यान भी नहीं बनाया जा सकता है।

अगर तुम शेष संसार को भूल सको तो ही तुम किसी विषय के प्रेम में हो सकते हो। चाहे वह गुलाब का फूल हो या पत्थर हो या कोई भी चीज हो, शर्त यही है कि उस चीज की उपस्थिति महसूस करो और अन्य चीजों की अनुपस्थिति महसूस करो। केवल वही विषय वस्तु तुम्हारी चेतना में अस्तित्वगत रूप से रहे।

अच्छा हो कि इस विधि के प्रयोग के लिए कोई ऐसी चीज चुनो जो तुम्हें प्रीतिकर हो। अपने सामने एक चट्टान रखकर शेष संसार को भूलना कठिन होगा। यह कठिन होगा, लेकिन झेन सदगुओं ने यह भी किया है। उन्होंने ध्यान के लिए रॉक गार्डन बना रखा है। वहां पेड़-पौधे या फूल नहीं होते। पत्थर और बालू होते है। और वे पत्थर पर ध्यान करते है।

वे कहते है कि अगर किसी पत्थर के प्रति तुम्हारा गहन प्रेम हो तो कोई भी आदमी तुम्हारे लिए बाधा नहीं हो सकता। और मनुष्य चट्टान जैसे ही तो है। अगर तुम चट्टान को प्रेम कर सकते हो तो मनुष्य को प्रेम करने में क्या कठिनाई। तब कोई अड़चन नहीं है। मनुष्य चट्टान जैसे है। उससे भी ज्यादा पथरीले। उन्हें तोड़ना उनमें प्रवेश करना अति कठिन है।

लेकिन अच्छा हो कि कोई ऐसी चीज चुनो जिसके प्रति तुम्हारा सहज प्रेम हो। और तब शेष संसार को भूल जाओ। उसकी उपस्थिति का मजा लो, उसका स्वाद लो आनंद लो। उस वस्तु में गहरे उतरो और उस वस्तु को अपने में गहरा उतरने दो।

''फिर विषय भाव को छोड़कर.......।''

अब इस विधि का कठिन अंश आता है। तुमने पहले ही सब विषय छोड़ दिए है। सिर्फ यह एक विषय तुम्हारे लिए रहा है। सबको भूलकर एक इसे तुमने याद रखा था। अब ''विषय भाव को छोड़कर....।'' अब उस भाव को भी छोड़कर। अब तो दो ही चींजे बची है, एक विषय की उपस्थिति है और शेष चीजों की अनुपस्थिति है। अब उस अनुपस्थिति को भी छोड़ दो। केवल यह गु लाब या केवल यह चेहरा। यह केवल यह स्त्री या केवल यह पुरूष या यह चट्टान की उपस्थिति बची है। उसे भी छोड़ दो। और उसके प्रति जो भाव है, उसे भी तुम अचानक एक आत्यंतिक शून्य में गिर जाते हो। जहां कुछ भी नहीं बचता।

और शिव कहते है: ''आत्मोपल्बध होओ।'' इस शून्य को, इस ना-कुछ को उपलब्ध हो, यही तुम्हारा स्वभाव है, यही शुद्ध होना है।

शून्य को सीधे पहुंचना कठिन होगा—कठिन और श्रम-साध्य। इसलिए किसी विषय को माध्यम बनाकर वहां अच्छा है। पहले किसी विषय को अपने मन में ले लो और उसे इस समग्रता से अनुभव करो। कि किसी अन्य चीज को याद रखने की जरूरत न रहे। तुम्हारी समस्त चेतना इस एक चीज से भर जाए। और तब इस विषय को भी छोड़ दो, इसे भी भूल जाओ। तब तुम किसी अगाध अतल में प्रविष्ट हो जाते हो। जहां कुछ भी नहीं है। वहां केवल तुम्हारी आत्मा है। शुद्ध और निष्कलुष। यह शुद्ध अस्तित्व यह शुद्ध चैतन्य ही तुम्हारा स्वभाव है।

लेकिन इस विधि को कई चरणों में बांटकर प्रयोग करो। पूरी विधि को एकबारगी काम में मत लाओ। पहल एक विषय का भाव निर्मित करो। कुछ दिन तक सिर्फ इस हिस्से का प्रयोग करो। पूरी विधि का प्रयोग मत करो। पहले कुछ दिनों तक या कुछ हफ्तों तक इस एक हिस्से की, पहले हिस्से की साधना करो। विषय-भाव पैदा करो। पहले विषय को महसूस करो। और एक ही विषय चुनो, उसे बार-बार बदलों मत। क्योंकि हर बदलते विषय के साथ तुम्हें फिर-फिर उतना ही श्रम करना होगा।

अगर तुमने विषय के रूप में गुलाब का फूल चुना है तो रोज-रोज गुलाब के फूल का ही उपयोग करो। उस गुलाब के फूल से तुम भर जाओ। भरपूर हो जाओ। ऐसे भर जाओ कि एक दिन कह सको की मैं फूल ही हूं। तब विधि का पहला हिस्सा सध गया, पूरा हूआ।

जब फूल ही रह जाए और शेष सब कुछ भूल जाए, तब इस भाव का कुछ दिनों तक आनंद लो। यह भाव अपने आप में सुंदर है। बहुत-बहुत सुंदर है। यह अपने आप में बहुत प्राणवान है, शक्तिशाली है। कुछ दिनों तक यही अनुभव करते रहो। और जब तुम उसके साथ रच-पच जाओगे, लयवद्ध हो जाओगे, तो फिर वह सरल हो जाएगा। फिर उसके लिए संघर्ष नहीं करना होगा। तब फूल अचानक प्रकट होता है। और समस्त संसार भूल जाता है। केवल फूल रहता है।

इसके बाद विधि के दूसरे भाग पर प्रयोग करो। अपनी आँख बंद कर लो और फूल को भी भूल जाओ। याद रहे, अगर तुमने पहल भाग को ठीक-ठीक साधा है तो दूसरा भाग कठिन नहीं होगा। लेकिन यदि पूरी विधि पर एक साथ प्रयोग करोगे तो दूसरा भाग कठिन ही नहीं असंभव होगा। पहले भाग में अगर तुमने एक फूल के लिए सारी दुनियां को भूला दिया तो दूसरे भाग में शून्य के लिए फूल को भूलाना आसानी से हो सकेगा। दूसरा भाग आएगा। लेकिन उसके लिए पहल भाग पहले करना जरूरी है।

लेकिन मन बहुत चालाक है। मन सदा कहेगा। कि पूरी विधि को एक साथ प्रयोग करो। लेकिन उसमे तुम सफल नहीं हो सकते हो। और तब मन कहेगा कि यह विधि काम की नहीं है। या यह तुम्हारे लिए नही है।

इसलिए अगर सफल होना चाहते हो तो विधि को क्रम में प्रयोग करो। पहले-पहले भाग को पूरा करो और तब दूसरे भाग को हाथ में लो। और तब विषय भी विलीन हो जाता है। और मात्र तुम्हारी चेतना रहती है। शुद्ध प्रकाश, शुद्ध ज्योति-शिखा।

कल्पना करो कि तुम्हारे पास दीया है, और दिए की रोशनी अनेक चीजों पर पड़ रही है। मन की आंखों से देखो कि तुम्हारे अंधेरे कमरे में अनेक-अनेक चीजें है। और तुम एक दिया वहां लाते हो और सब चीजें प्रकाशित हो जाती है। दीया उन सब चीजों को प्रकाशित करता है। जिन्हें तुम वहां देखते हो।

लेकिन अब तुम उनमें से एक विषय चून लो, और उसी विषय के साथ रहो। दीया वहीं है, लेकिन अब उसकी रोशनी एक ही विषय पर पड़ती है। फिर उस एक विषय को भी हटा दो। और तब दीए के लिए कोई विषय नहीं बचा।

वही बात तुम्हारी चेतना के लिए सही है। तुम प्रकाश हो, ज्योति शिखा हो। और सारा संसार तुम्हारा विषय है। तुम सारे संसार को छोड़ देते हो। और एक विषय पर अपने को एकाग्र करते हो। तुम्हारी ज्योति शिखा वही रहती है। लेकिन अब वह अनेक

विषयों में व्यस्त नहीं है। वह एक ही विषय में व्यस्त है। और फिर उस एक विषय को भी छोड़ दो। अचानक तब सिर्फ प्रकाश बचता है। चेतना बचती है। वह प्रकाश किसी विषय को नहीं प्रकाशित कर रहा है।

इसी को बुद्ध ने निर्वाण कहा है। इसी को महावीर ने कैवल्य कहा है। परम एकांत कहा है। उपनिषादो ने इसे ही ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान कहा है। शिव कहते है कि अगर तुम इस विधि को साध लो तो तुम ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-15

विज्ञान भैरव तंत्र ओशो part 2A

तंत्र-सूत्र—विधि-24 (ओशो)

केंद्रित होने की बारहवीं विधि:

विज्ञान भैरव तंत्र–शिव (जब किसी व्यक्ति के पक्ष विपक्ष पर भाव उठे…..

''जब किसी व्यक्ति के पक्ष या विपक्ष में कोई भाव उठे तो उसे उस व्यक्ति पर मत आरोपित करे।''

अगर हमें किसी के विरूद्ध घृणा अनुभव हो या किसी के लिए प्रेम अनुभव हो तो हम क्या करते है? हम उस घृणा या प्रेम को उस व्यक्ति पर आरोपित कर देते है। अगर तुम मेरे प्रति घृणा अनुभव करते हो तो उस घृणा के ही कारण तुम अपने को बिलकुल भूल जाते हो। और मैं तुम्हारा एक मात्र लक्ष्य या विषय बन जाता हूं। वैसे ही जब तुम मुझे प्रेम करते हो तो भी तुम अपने को बिलकुल ही भूल जाते हो। और मुझे अपना एक मात्र विषय बना लेते हो। तुम अपनी घृणा को प्रेम को या जो भी भाव हो, उसे मुझे पर प्रक्षेपित कर देते हो। उस दशा में तुम आंतरिक केंद्र को भूल जाते हो। और दूसरे को अपना केंद्र बना लेते हो।

यह सूत्र कहता है। कि जब किसी के प्रति घृणा, प्रेम या कोई और भाव पक्ष या विपक्ष में पैदा हो तो उसको, उस भाव को उस व्यक्ति पर आरोपित मत करो। बल्कि स्मरण रखो कि उस भाव का स्त्रोत तुम स्वयं हो।

मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। इसमें सामान्य भाव यह है कि तुम मेरे प्रेम के स्त्रोत हो। लेकिन यह हकीकत नहीं है। मैं ही स्त्रोत हूं, तुम तो महज वह पर्दा हो जिस पर मैं अपने प्रेम को प्रक्षेपित करता हूं। तुम मात्र पर्दा हो। मैं अपना प्रेम तुम पर प्रक्षेपित करता हूं। और मैं कहता हूं कि तुम मेरे प्रेम के स्त्रोत हो। लेकिन यह तथ्य नहीं है। यह झूठ है। यह मेरी ही प्रेम की ऊर्जा है जिसे मैं तुम पर प्रक्षेपित कर रहा हूं।

इस प्रेम की ऊर्जा की प्रभा में पड़ कर तुम सुंदर हो जाते हो। हो सकता है। किसी के लिए तुम सुंदर न होओ। हो सकता है कि किसी के लिए तुम बिलकुल कुरूप और विकर्षण से भरे होओ। ऐसा क्यों? अगर तुम ही प्रेम के स्त्रोत हो तो प्रत्येक व्यक्ति को तुम्हारे प्रति प्रेमपूर्ण होना चाहिए।

लेकिन तुम स्त्रोत नहीं हो। मैं तुम पर प्रेम आरोपित करता हूं तो तुम सुंदर हो जाते हो। कोई दूसरा व्यक्ति तुम पर घृणा आरोपित करता है और तुम कुरूप हो जाते हो। और हो सकता है कोई तीसरा व्यक्ति तुम्हारे प्रति बिलकुल उदासीन हो, तटस्थ हो। उसने तुम्हें देखा तक न हो। आखिर हो क्या रहा है? हम अपने-अपने भाव दूसरों पर फैला रहे है।

यही कारण है कि सुहागरात में चंद्रमा तुम्हें सुंदर, चमत्कारपूर्ण और अपूर्व दिखाई देता है। उस समय सारा संसार तुम्हें अपूर्व मालूम देता है। और हो सकता है उसी रात तुम्हारे पड़ोसी के लिए अद्भुत रात्रि अस्तित्व में न हो। और अगर उसका बच्चा मर

गया हो। तो वही चाँद उसके लिए उदास, दुःखी और असहनीय मालूम पड़ेगा। और वही चाँद तुम्हारे लिए इतना मोहक है, मादक है और तुम्हें पागल किए दे रहा है। क्यों? क्या चंद्रमा स्त्रोत है, आधार है? यह चंद्रमा केवल पर्दा है जिस पर तुम अपने को फैला रहे हो। प्रक्षेपित कर रहे हो।

यह सूत्र कहता है: ''जब किसी व्यक्ति के पक्ष या विपक्ष में कोई भाव उठे तो उसे उस व्यक्ति पर मत आरोपित करो, बल्कि केंद्रित रहो।''

यहां व्यक्ति की जगह कोई वस्तु भी हो सकती है। विषय के रूप में कुछ भी काम देगा। तुम सदा केंद्रित रहो। याद रहे कि तुम स्त्रोत हो और विषय की और गति करने की बजाएं स्त्रोत की और गति करो। जब घृणा का भाव उठे तो घृणा के विषय पर जाने की बजाएं उस बिंदु पर जाना बेहतर है जहां पर घृणा आ रही है। उस व्यक्ति को मत खोजों जो इस घृणा का विषय है। लक्ष्य है; उस केंद्र को खोजों जहां से घृणा उठ रही है। केंद्र की तरफ चलो, भीतर जाओ अपनी घृणा या प्रेम या जो भी भाव हो उसे केंद्र की और स्त्रोत की और, उदगम की और यात्रा का साधन बनाओ। उदगम पर जाओ, और वहां केंद्रित रहो।

इसे प्रयोग करो। यह बहुत ही मनोवैज्ञानिक विधि है। किसी ने तुम्हारा अपमान किया और तुम क्रोधित हो गए, ज्वरग्रस्त हो गए। अभी तुम्हारा यह क्रोध को उस आदमी प्रवाहित हो रहा है। जिसने तुम्हें अपमानित किया। तुम अपने पूरे क्रोध को उस आदमी पर प्रक्षेपित हो रहा है। जिसने तुम्हें अपमानित किया, अगर उसने तुम्हें अपमानित किया तो सच में क्या किया? उसने केवल तुम्हें थोड़ा कुरेदा। उसने तुम्हारे क्रोध को उभरने में थोड़ा सहायता कर दी। लेकिन यह क्रोध तुम्हारा है।

वह व्यक्ति बुद्ध के पास जाए और उन्हें अपमानित करे तो वह उनमें कोई क्रोध पैदा नहीं कर सकेगा। वह अगर जीसस के पास जाए तो जीसस उसे अपना दूसर गाल भी हाजिर कर देंगे। और बोधिधर्म के पाए जाए तो वह अट्टहास कर उठेंगे। यह व्यक्ति पर निर्भर है।

इसलिए दूसरा व्यक्ति स्त्रोत नहीं है। स्त्रोत सदा तुम्हारे भीतर है। दूसरा सिर्फ स्त्रोत पर चोट कर रहा है। लेकिन अगर तुम्हारे भीतर क्रोध नहीं है तो क्रोध बाहर नहीं आएगा। यदि तुम बुद्ध को चोट करो तो करूणा आएगी। क्योंकि वहां क्रोध नहीं है।

एक सूखे कुएं में बाल्टी डालों तो कुछ भी हाथ नहीं आता। पानी वाले कुएं में बाल्टी डालों और वह पानी से भरकर बाहर आती है। लेकिन पानी कुएं में है। कुआं स्त्रोत है। बाल्टी तो पानी को बाहर लाने का निमित मात्र है।

जो आदमी तुम्हें अपमानित करता है वह बाल्टी का काम करता है। वह तुम्हारे भीतर से तुम्हारे क्रोध, घृणा या किसी भी आग को बाहर ले आता है। तो स्मरण रहे। तुम स्त्रोत हो।

इस विधि के लिए विशेष रूप से इस बात को ध्यान में रख लो कि दूसरों पर तुम जो भी भाव प्रक्षेपित करते हो उसका स्त्रोत सदा तुम्हारे भीतर है। इसलिए जब भी कोई भाव पक्ष या विपक्ष में उठे तो तुरंत भीतर प्रवेश करो और उस स्त्रोत के पास पहुंचो जहां से यह भाव उठ रहा है। स्त्रोत पर केंद्रित रहो, विषय की चिंता ही छोड़ दो। किसी ने तुम्हें तुम्हारे क्रोध को जानने का मोका दिया है। इसके लिए उसे तुरंत धन्यवाद दो और उसे भूल जाओ। फिर आंखें बंद कर लो और अपने भीतर सरक जाओ। और उस स्त्रोत पर ध्यान दो जहां से यह प्रेम या क्रोध का भाव उठ रहा है।

भीतर गति करने पर तुम्हें वह स्त्रोत मिल जाएगा। क्योंकि ये भाव उसी स्त्रोत से आते है। घृणा हो या प्रेम, सब तुम्हारे स्त्रोत से आते है। इस स्त्रोत के पास उस समय पहुंचना आसान है जब तुम क्रोध या प्रेम या घृणा सक्रिय रूप से अनुभव करते हो।

इस क्षण में भीतर प्रवेश करना आसान होता है। जब तार गर्म है तो उसे पकड़कर भीतर जाना आसान होता है। और भीतर जाकर जब तुम एक शीतल बिंदू पर पहुंचोगे तो अचानक एक भिन्न आयाम, एक दूसरा ही संसार सामने खुलने लगता है।

इसलिए क्रोध, घृणा या प्रेम जो भी हो उसका उपयोग अंतर्यात्रा के लिए करो। हम सदा दूसरों की तरफ गति करने में इन भावों का उपयोग करते हे। और जब अपने भाव आरोपित करने के लिए हमें कोई नहीं मिलता तो बड़ी निराशा लगती है। तब हम अपने भावों को निर्जीव वस्तुओं पर भी आरोपित करने लगते है। मैंने लोग देखे है जो अपने जूतों पर क्रोध करते है। और क्रोध से उन्हें फेंकते है। वे क्या कर रहे है? मैंने लोगों को देखा है जो घर के दरवाजे पर क्रोध करते है, क्रोध में उसे खोलते है, उसे गालियां तक देते है। वे क्या कर रहे है?

इस प्रसंग में मैं एक झेन अंतदृष्टि की चर्चा से अपनी बात समाप्त करूं। एक बहुत बड़े झेन सदगुरू लिंची कहा करते थे:

मैं जब युवा था तो मुझे नौका-विहार का बहुत शौक था। मेरे पास एक छोटी सी नाव थी और उसे लेकर में अक्सर अकेला झील की सैर करता था। मैं घंटों झील में रहता था।

एक दिन ऐसा हुआ कि मैं अपनी नाव में आँख बंद कर सुंदर रात पर ध्यान कर रहा था। तभी एक खाली नाव उलटी दिशा में आई और मेरी नाव से टकरा गई। मेरी आंखे बंद थी। इसलिए मैंने मन में सोचा कि किसी व्यक्ति ने अपनी नाव मेरी नाव से टकरा दी है। और मुझे क्रोध आ गया।

मैंने आंखें खोली और मैं उस व्यक्ति को क्रोध में कुछ कहने ही जा रहा था कि मैंने देखा कि दूसरी नाव खाली है। अब मुझे कुछ करने का कोई उपाय न रहा। किस पर यह क्रोध प्रकट करूं? नाव तो खाली है। और वह नाव धार के साथ बहकर आई थी। और मेरी नाव से टकरा गई थी। अब मेरे लिए कुछ भी करने को न था। एक खाली नाव पर क्रोध उतारने की कोई संभावना न थी। तब फिर एक ही उपाय बाकी रहा। मैंने आंखें बंद कर ली। और अपने क्रोध को पकड़ कर उलटी दिशा में बहने लगा। और में पहूंच गया अपने केंद्र पर। वह खाली नाव में आत्म ज्ञान का कारण बन गई। उस मौन रात में मैं आपने भीतर सरक गया। और क्रोध मेरी सवारी बन गया। और खाली नाव मेरी गुरु हो गई।

और फिर लिंची ने कहा, अब जब कोई आदमी मेरा अपमान करता है तो मैं हंसता हूं और कहता हूं कि यह नाव भी खाली है। मैं आंखें बंद करता हूं और अपने भीतर चला जाता हूं।

इस विधि को प्रयोग करो। यह तुम्हारे लिए चमत्कार कर सकती है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-15

तंत्र-सूत्र— विधि—25 (ओशो)

अचानक रूकने की कुछ विधियां:

तंत्र-सूत्र— विधि—25
अचानक रूकने की कुछ विधियां:

पहली विधि:

''जैसे ही कुछ करने की वृति हो , रूक जाओ।''
ये सारी विधियां मध्य में रूकने से संबंधित है। जार्ज गुरजिएफ ने पश्चिम में इन विधियों को प्रचलित किया था, लेकिन उसे विज्ञान भैरव तंत्र का पता नहीं था। उसने ये विधियां तिब्बत में बौद्ध लामाओं से सीखी थी। पश्चिम में उसने इन विधियों पर काम किया और अनेक साधक इन विधियों के द्वारा केंद्र को उपलब्ध हो गए। वह उन्हें स्टाप एक्सरसाइज, रूक जाने का प्रयोग कहता था। लेकिन इन प्रयोगों का स्त्रोत विज्ञान भैरव तंत्र है।
बौद्धों ने भी विज्ञान भैरव तंत्र से ही सीखा था। सूफियों में भी ऐसे प्रयोग चलते है। सबने विज्ञान भैरव से ही लिया है। दुनिया में ऐसी जो भी विधियां चलती है। उन सबका स्त्रोत-ग्रंथ यही है।

गुरूजिएफ बहुत सरल ढंग से इसका प्रयोग करता था। उदाहरण के लिए, वह अपने शिष्यों को नाचने के लिए कहता था। बीस लोगों का समूह नाच रहा है। नाच के बीच ही वह अचानक जोर से कहता, ''स्टॉप।'' और जब गुरूजिएफ रूकने को कहता तो उन्हें तुरंत और समग्ररतः: रूकना पड़ता था। जब और जहां रूकने की आज्ञा होती तभी और वहां ही रूकना अनिवार्य था। उसमें जरा भी हेर-फेर या समायोजन की गुंजाइश नहीं थी। अगर तुम्हारा एक पैर जमीन से ऊपर उठा था और एक पैर पर तुम खड़े थे तो तुम्हें उसी मुद्रा में जम जाना पड़ता।

यह बात अलग है कि तुम गिर जाओ, लेकिन इस गिरने में कोई सहयोग नहीं देना था। अगर तुम्हारी आंखें खुली थी तो उन्हें खुली रहने देना था। अब तुम उन्हें बंद नही कर सकते। यह बात दूसरी है कि वे अपने आप ही बंद हो जाएं। जहां तक तुम्हारा संबंध है तुम्हें सचेतन रूप से ज्यों का त्यों रूक जाना है। तुम्हें पत्थर की मूर्ति जैसा हो जाना है।

और इसके अद्भुत नतीजे आते थे। क्योंकि जब तुम सक्रिय होते हो, नाचते होते हो गतिमान होते हो। और अचानक बीच में रूक जाते हो, तो जो उससे एक अंतराल पैदा होता है। सभी क्रिया का अचानक बंद होना तुम्हें दो भागों में बांट देता है। तुम्हें तुम्हारे शरीर से अलग कर देता है। अभी तुम और तुम्हारा शरीर दोनों गतिमान थे। तुम अचानक रूक जाते हो। शरीर इस आकस्मिक ठहराव के लिए तैयार नहीं है। तुम्हें अचानक लगता है कि शरीर अभी भी कुछ करना चाहता है। लेकिन तुम रूक जाते हो। इससे एक अंतराल पैदा हो गया है। तुम्हें लगता है, तुम्हारा शरीर तुमसे दूर है, बहुत दूर है, जिसमे अभी क्रिया का संवेग भरा है। लेकिन क्योंकि तुम ठहर गए थे और तुम अपने शरीर के साथ, शरीर के संवेग के साथ सहयोग नहीं कर रहे हो, इसलिए तुम उससे पृथक हो जाते हो।

लेकिन तुम अपने को धोखा भी दे सकते हो। जरा सा सहयोग, और अंतराल घटित नहीं होगा। उदाहरण के लिए तुम कुछ असुविधा अनुभव कर रहे हो। तभी गुरु ने कहा कि रूक जाओ। तुम सुन भी लेते हो, लेकिन अपनी सुविधा बनाकर रुकते हो। इतने से ही सब बात बिगड़ गई, अब कुछ नहीं होगा। तब तुमने को धोखा दिया—गुरु को नहीं। तब तुम चूक गए। तब विधि का पूरा महत्व ही नष्ट हो गया।

जब अचानक रूकने की आवाज सुनाई पड़े, तत्क्षण तुम्हें रूक जाना है। अब कुछ भी नहीं करना है। हो सकता है कि जिस मुद्रा में तुम थे वह असुविधाजनक थी। तुम्हें डर था कि तुम गिर जाओगे, तुम्हारी हड्डी टूट जाएगी। लेकिन कुछ भी हो तुम्हें चिंता नहीं लेनी है। यदि तुमने चिंता ली तो अपने को ही धोखा दोगे।

यह जो अचानक मृतवत होना है यह अंतराल पैदा करता है। रूकना तो शरीर के तल पर होता है, लेकिन रूकने वाला केंद्र है। परिधि और केंद्र अलग-अलग है। एकाएक रूकने की घटना में तुम पहली बार अपने को अनुभव करोगे। पहली बार केंद्र को महसूस करोगे।

गुरूजिएफ ने इस विधि के जरिए अनेक लोगो की मदद की। इस विधि के कई आयाम है, यह विधि कई ढंग से इस्तेमाल होती है। लेकिन पहल इसकी संरचना को समझने की चेष्टा करो। संरचना सरल है। तुम कोई काम करते हो। जब तुम काम में होते हो तो तुम अपने को पूरी तरह भूल जाते हो। तब कृत्य तुम्हारे अवधान का केंद्र हो जाता है।

समझो की कोई व्यक्ति मर गया है और तुम उसके लिए चीख-चिल्ला रहे हो, आंसू बहा रहे हो। अब तुम अपने को पूरी तरह भूल गये हो। मरने वाला केंद्र हो गये हो। और उसके चारों और रोने की, आंसू की, शोक की क्रिया घट रही है। अगर मैं एकाएक कहूं कि रूक जाओ और तुम तरह रूक जाओ तो तुम अपने शरीर और कर्म के जगत से सर्वथा अलग हो जाओगे। जब तुम काम में होते हो तो तुम उसमे खो जाते हो। अचानक ठहरना तुम्हारे संतुलन को हिला देता है। वह तुम्हें कर्मों के बाहर कर देता है। और वही चीज तुम्हें तुम्हारे केंद्र पर पहुंचा देती है।

सामान्यत: हम एक काम से दूसरे काम में गति करते रहते है। अ से ब में, ब से स में। ज्यों ही तुम सुबह जागते हो, कर्म का जगत शुरू हो जाता है। अब तुम सारा दिन सक्रिय रहोगे। तुम अनेक बार काम बदलोगे, लेकिन एक क्षण को भी निष्क्रिय नहीं रहोगे। निष्क्रिय रहना कठिन है। अगर तुम निष्क्रिय रहने की कोशिश करोगे। तो वही सक्रियता बन जाएगी।

अनेक लोग निष्क्रिय होने की चेष्टा करते है। वे बुद्ध की तरह बैठ जाते है और निष्क्रिय होने की चेष्टा करते है। लेकिन निष्क्रिय होने की चेष्टा कैसे हो सकती है। चेष्टा ही सक्रियता बन जाएगी। तुम निष्क्रियता को भी सक्रियता बना लोगे। तुम अपने को जबरदस्ती शांत बना ले सकते हो। लेकिन वह जबरदस्ती खुद मन की क्रिया होगी।

यही कारण है कि अनेक लोग ध्यान में जाने की चेष्टा करते है। लेकिन कही नहीं पहुंचते है। कारण है कि उनका ध्यान भी एक सक्रियता है। एक क्रिया है। क्रिया बदली जा सकती है। तुम एक साधारण गीत गा रहे थे, उसे छोड़कर भजन गा सकते हो। पहल तेज गा रहे थे, अब आहिस्ता से गा सकते हो। लेकिन दोनों क्रियाएं है। तुम दौड़ रहे हो, तुम चल रहे हो। तुम पढ़ रहे हो। सब कुछ सक्रियता है। तुम प्रार्थना करते हो—वह भी सक्रियता है। तुम एक क्रिया से दूसरी क्रिया में गति करते रहते हो। ऐसे रात सोने तक कर्म जारी रहता है।

और सोते-सोते भी तुम सक्रिय रहते हो। क्रिया रुकती नहीं है। यही कारण है कि स्वप्न धटित होता है। स्वप्न उसी सक्रियता का विस्तार है। नींद में भी क्रिया जारी रहती है। अब तुम्हारा अचेतन सक्रिय है—कुछ करता है। चीजें बटोरता है, कुछ गँवाता है। कही जाता है। स्वप्न का अर्थ है कि थक कर शरीर सो गया है। लेकिन क्रिया किसी तल पर जारी है।

केवल कभी-कभी और वह भी कुछ क्षणों के लिए—आधुनिक मनुष्य के लिए यह भी दुर्लभ है—स्वप्न बंद होता है। और तुम गाढ़ी नींद में होते हो। लेकिन यह निष्क्रियता अचेतन है। तुम अब चेतन नहीं हो, गहरी नींद में हो, सक्रियता बंद हो गई है। अब कोई परिधि नहीं है; अब तुम केंद्र पर हो, लेकिन सर्वथा थके हुए—अचेतन, मृतवत।

यही कारण है कि हिंदू सदा कहते है कि सुषुप्ति और समाधि समान है। उनमें एक ही भेद है; लेकिन यह भेद बड़ा है। भेद बोध का है। सुषुप्ति में स्पप्नरहित नींद में तुम अपने केंद्र पर होते हो; लेकिन अचेतन। समाधि में भी, जो ध्यान की परम अवस्था है, तुम केंद्र पर होते हो। लेकिन चेतन। यही भेद है। क्योंकि बेहोश होकर केंद्र पर होने का कोई अर्थ नहीं है। यह ठीक है कि इससे तुम ताजा हो जाते हो, जीवंत हो जाते हो; ऊर्जावान हो जाते हो। सुबह तुम अधिक ताजा और आनंदित रहते हो। लेकिन अगर तुम बेहोश हो, तो केंद्र पर होकर भी तुम आदमी वही रहते हो, जो थे।

समाधि में तुम पूरे होश से, पूरे चैतन्य के साथ प्रवेश करते हो। और जब तुम पूरे चैतन्य के साथ केंद्र पर होते हो तो फिर कभी वह आदमी नहीं रहोगे; जो पहले थे। अब तुम जानोंगे कि मैं कौन हूं। अब तुम जानोंगे कि तुम्हारी चीजें, तुम्हारे कर्म परिधि पर है; वे मात्र लहरे है। वे तुम्हारा स्वभाव नहीं है।

अचानक रूकने की इन विधियों का उदेश्य तुम्हें निष्क्रियता में डालना है। इसलिए इस बिंदु का अचानक आना महत्वपूर्ण है। क्योंकि अगर निष्क्रिय होने की चेष्टा की जाएगी तो वही चेष्टा सक्रियता बन जाएगी। तो चेष्टा मत करो, बस निष्क्रिय हो जाओ। रूक जाओ का यही अर्थ है। अगर तुम दौड़ रहे हो और मैं कहता हूं रूक जाओ। तो तुम तुरंत रूक जाओ, चेष्टा मत करो। अगर चेष्टा करोगे तो चूक जाओगे।

यह एक विधि है: ''जैसे ही कुछ करने की वृति हो, रूक जाओ।''

यह एक आयाम है। जैसे, तुम्हें छींक आ रही है। तुम्हें लगता है कि अब तुम छींकने-छींकने को हो, एक क्षण और, और छींक आ जायेगी। तब मैं कुछ न कर सकूंगा लेकिन छींकने की वृति के पहले एहसास के साथ ही, जब उसकी पहली-पहली अहाट सुनाई पड़े, तभी ठहर जाओ।

तुम क्या कर सकते हो, क्या छींक को रोक सकते हो?

अगर तुम छींक को रोकने की कोशिश करोगे तो वह और जल्दी आएगी। क्योंकि रोकने की चेष्टा तुम्हें सचेत कर देगी। और छींक की उतैजना को बड़ा देगी तुम ज्यादा संवेदनशील होओगे। तुम्हारा पूरा अवधान वही इकट्ठा हो जाएगा। और उसी अवधान के कारण छींक जल्दी घटित हो जाएगी। वह असह्य हाँ जायेगी।

तुम सीधे-सीधे छींक को नहीं रोक सकते। लेकिन तुम अपने को रोक सकते हो। क्या कर सकते हो? तुम्हें एहसास होता है कि छींक आ रही है—ठहर जाओ। छींक को रोकने की कोशिश मत करो। बस तुम स्वयं रूक जाओ। कुछ मत करो। पूरी तरह अचल रहो, जिससे श्वास का आना जाना भी न हो। क्षण भर के लिए बिलकुल ठहर जाओ। और तुम देखोगें कि छींकने की वृति वापस लौट गई खत्म हो गई और वृति के जाने के साथ ही तुम्हारे भीतर कोई सूक्ष्म ऊर्जा मुक्त होकर तुम्हें केंद्र पर ले जाती है।

छींकने के साथ या किसी भी वृति के साथ तुम्हारी कुछ ऊर्जा बहार जाती है। वृति का अर्थ है कि तुम्हारी कुछ उर्जा भारी हो गई है और तुम उसका कोई उपयोग नहीं कर सकते हो। वह ऊर्जा तुम में जज़्ब भी नहीं हो सकती। यह सिर्फ बाहर जाना चाहती है। निकास चाहती है। तुम्हें राहत की जरूरत है। और कारण है कि छींकने के बाद तुम अच्छा अनुभव करते हो—एक

सूक्ष्म सुख की अनुभूति। क्या हुआ? कुछ भी नहीं, तुमने कुछ ऊर्जा बाहर फेंक दी है जो व्यर्थ थी, फालतू थी, बोझ थी। इसलिए उसके निकल जाने पर तुम राहत अनुभव करते हो। तब तुम अपने भीतर एक सूक्ष्म विश्राम की अनुभूति होती है।

एक और बात ख्याल में रख लो कि ऊर्जा सदा गतिमान रहती है। या तो वह बाहर जाती है या भी तर आती है। ऊर्जा कभी ठहराव में नहीं होती। ये नियम है। और यदि तुमने नियमों को समझा तो इस विधि का सूत्र पकड़ में आ जायेगा। ऊर्जा सदा गति है। वह या तो बाहर जाती है या भीतर; पर वह कभी अगति में नहीं होती। वह अगर अगति में है तो वह ऊर्जा ही नहीं है। और ऐसा कुछ भी नहीं है जो ऊर्जा नहीं है। इसलिए प्रत्येक चीज कही न कहीं गति कर रही है।

तो जब कोई वृति तुम में पैदा होती है तो उसका मतलब है कि ऊर्जा बाहर जा रही है। इसी से तुम्हारी हाथ गिलास पर चला जाता है। तुम बाहर गए। कुछ करने की इच्छा पैदा हुई। सब सक्रियता गति है—भीतर से बाहर की और जब तुम अचानक ठहर जाते हो तो तुम्हारे साथ ऊर्जा नहीं ठहरती है। तुम अगति में हो; लेकिन ऊर्जा अगति में नहीं हो सकती। और जिस यंत्र के द्वारा वह बाहर गति करती थी। वह मरा नहीं है। मात्र ठहर गया है। जो ऊर्जा क्या करे? वह भीतर जाने के सिवाय और कुछ भी नहीं कर सकती। ऊर्जा स्थिर नहीं रह सकती। वह बाहर जा रही थी तुम रूक गए और यंत्र भी रूक गया। लेकिन जो यंत्र उसे केंद्र पर ले जा सकता है वह मौजूद है। अब वह ऊर्जा भीतर की और गति करेगी।

और तुम क्षण-क्षण जाने अनजाने अपनी ऊर्जा को रूपांतरित कर रहे हो। उसके आयाम को बदल रहे हो। तुम क्रोध में हो; तुम किसी को मारना चाहते हो, कोई चीज नष्ट करना चाहते हो, या कुछ हिंसा करना चाहते हो। इसी क्षण एक प्रयोग करो। किसी मित्र को, अपनी पत्नी का या अपने किसी बच्चे को प्रेम करने लगी। उसे चूमो, उसे गले लगाओ। तुम गुस्से में थे तुम किसी को मिटाने जा रहे थे। तुम हिंसा पर उतारू थे। तुम्हारा चित विध्वंस के लिए तत्पर था; तुम्हारी ऊर्जा हिंसा की और गति कर रही थी। और तभी तुम किसी को अचानक और तुरंत प्रेम करने लगते हो।

शुरू में तुम्हें लगेगा, यह तो अभिनय जैसा है। तुम्हें आश्चर्य होगा कि मैं प्रेम कैसे कर सकता हूं। मैं तो अभी क्रोध में हूं लेकिन तुम मन के यंत्र को नहीं समझते हो। इसी क्षण तुम गहरे प्रेम में उतर सकते हो। क्योंकि ऊर्जा जाग गई है। वह उस बिदुं पर पहूंच गई है। जहां उसे अभिव्यक्ति चाहिए। ऊर्जा को गति करने की जरूरत है। अगर इसी क्षण तुम किसी को प्रेम करने लगो तो ऊर्जा प्रेम में प्रविष्ट हो जायेगी। और तुम्हें ऊर्जा का यह प्रवाह अभिभूत कर देगा जिसका अनुभव संभवत: तुम्हें पहले कभी नहीं हुआ होगा।

तुम अपना निरीक्षण करो, और तुम यही पाओगे। तुम कहते एक बात हो और सोचते बिलकुल दूसरी बात हो। तुम बिलकुल दूसरी बात कहना चाहते थे; लेकिन अगर तुम सच बोल दो तो तुम किसी काम के न रहोगे। कारण यह है कि समूचा समाज झूठा है। और एक झूठे समाज में तुम झूठे होकर ही रह सकते हो। जितने तुम समाज से समायोजित होगें उतने ही झूठे हो जाओगे। और अगर सच्चे होना चाहोगे तो समाज के साथ ताल मेल नहीं होगा। तुम उखड़े-उखड़े रहोगे।

यही कारण है कि संन्यास का जन्म हुआ। वह झूठे समाज के कारण आया। बुद्ध को समाज का त्याग इसलिए नहीं करना पडा कि उसका कोई अपने में अर्थ था। उसका सिर्फ निषेधात्मक उपयोग था। झूठे समाज के साथ तुम सच्चे नहीं रह सकते। और यदि रहा तो कदम-कदम पर उसके साथ अनावश्यक संघर्ष करना होगा। उससे ऊर्जा नष्ट होती है। झूठे को छोड़ो ताकि तुम सच्चे हो सको। सब संन्यास का बुनियादी कारण यही था।

अपना निरीक्षण करो कि तुम कितने झूठे हो। अपने दोहरे मन को देखो। तुम कहते एक बात हो और सोचते बिलकुल विपरीत बात हो। साथ ही साथ तुम मन में कुछ कह रहे हो और बाहर कुछ और बोल रहे हो।

ऐसी किसी झूठी वृति के साथ ठहरने से यह विधि काम न करेगी। अपने बाबत कुछ प्रामाणिक खोजों, और उसके साथ ठहरने का प्रयोग करो। सब कुछ झूठ नहीं हो गया है। बहुत चीजें अभी भी वास्तविक है। सौभाग्य से कभी-कभी प्रत्येक व्यक्ति वास्तविक होता है। किसी-किसी क्षण में प्रत्येक व्यक्ति प्रामाणिक होता है। तब रुको।

तुम क्रोध में हो, और जानते हो कि क्रोध सच्चा है। तुम किसी को नष्ट करने जा रहे हो। या अपने बच्चे को पीटने जा रहे हो। वहां रुको। लेकिन किसी प्रयोजन से नहीं। मत कहो कि क्रोध करना बुरा है, इसलिए मैं रुकता हूं। किसी मानसिक सोच-विचार की जरूरत नहीं है। सोच-विचार से ऊर्जा उसमें ही लग जाती है। यह भीतरी व्यवस्था है। अगर तुम कहते हो कि मुझे बच्चे को नहीं मारना चाहिए। क्योंकि इससे उसका कोई लाभ नहीं होने वाला है। और इससे मेरा भी कोई लाभ नहीं हो सकता है। यह बात ही व्यर्थ है। किसी काम का नहीं है। तो जो ऊर्जा क्रोध बनने जा रही थी, वह सोच-विचार बन जाएगी। जब तुम सारी चीज पर विचार कर लोगे तो क्रोध की ऊर्जा उतर जाएगी और सोच-विचार में प्रवेश कर जायेगी। उस अवस्था में रूकने पर गति करने के लिए ऊर्जा नहीं रहती है। जब तुम क्रोध में हो विचार मत करो। यह मत कहो कि भला है या बुरा कुछ विचार ही मत करो। एकाएक विधि को स्मरण करो और रूक जाओ।

क्रोध शुद्ध ऊर्जा है—न बुरा है और न भला। क्रोध भला भी हो सकता है। और बुरा भी हो सकता है। यह उसके परिणाम पर निर्भर है। ऊर्जा पर नहीं है। यह बुरा हो सकता है। अगर यह बाहर जाए और किसी को नष्ट करे। अगर यह विध्वंसक हो जाए। वहीं क्रोध सुंदर समाधि में परिणत हो सकता है। अगर वह भीतर मुड़ जाए और वह तुम्हें तुम्हारे केंद्र पर फेंक दे। तब वह फूल बन जाएगा। ऊर्जा मात्र ऊर्जा है। स्वच्छ, निर्दोष, तटस्थ।

तो विचार मत करो। अगर तुम कुछ करने जा रहे हो तो सोचो मत; केवल ठहर जाओ। और ठहरे रहो। उस ठहरने में तुम्हें केंद्र की झलक मिलती है। तुम परिधि को भूल जाओगे। और तुम्हें केंद्र दिखने लगेगा।

''जैसे ही कुछ करने की वृति हो, रूक जाओ।''
इसका प्रयोग करो। इस संबंध में तीन बातें स्मरण रखो। एक, प्रयोग तभी करो जब वृति वास्तविक हो। दो, रूकने के संबंध में विचार मत करो। बस रूक जाओ। तीन, प्रतीक्षा करो। जब तूम ठहर गए तो श्वास न चले, कोई गति न हो—बस प्रतीक्षा करो कि क्या होता है। कोई चेष्टा न हो।

जब मैं कहता हूं कि प्रतीक्षा करो तो उससे मेरा मतलब है कि आंतरिक केंद्र के संबंध में विचार करने की चेष्टा मत करो। यदि चेष्टा की तो फिर चूक जाओगे। केंद्र की मत सोचो। मत सोचो कि अब झलक आने को है। कुछ भी मत सोचो। मात्र प्रतीक्षा करो। वृति को, ऊर्जा को स्वयं करने दो। अगर तुम केंद्र और आत्मा ब्रह्म के बारे में विचार करने लगे तो ऊर्जा उसी विचारणा में लग जाएगी।

तुम बहुत आसानी से आंतरिक ऊर्जा को गंवा सकते हो। एक विचार भी उसे गति देने के लिए काफी है। तब तुम सोचते चले जाओगे। जब मैं कहता हूं कि ठहर जाओ तो उसका मतलब है पूरी तरह, समग्ररूपेण ठहर जाओ। कुछ भी गति न हो—मानो कि सारा जगत ठहर गया है; कोई गति नहीं; केवल तुम हो। उस केवल अस्तित्व में अचानक केंद्र का विस्फोट होता है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—26 (ओशो)

अचानक रूकने की कुछ विधियां:

दूसरी विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि—26 (ओशो) शिव– विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

‘’जब कोई कामना उठे, उसे पर विमर्श करो। फिर, अचानक, उसे छोड़ दो।‘’
यह पहली विधि का ही दूसरा आयाम है।

‘’जब कोई कामना उठे, उस पर विमर्श करो। अचानक, उसे छोड़ दो।‘’

तुम्हें कोई इच्छा होती है—चाहे वह कामवासना हो, चाहे प्रेम की इच्छा हो, चाहे भोजन की इच्छा हो। तुम्हें इच्छा होती है तो उस पर विमर्श करो। जब यह सूत्र कहता है कि विमर्श करो तो उसका मतलब होता है कि उसके पक्ष या विपक्ष में विचार मत करो। बल्कि देखो कि वह इच्छा क्या है।

मन में कामवासना पैदा होती है और तुम कहते हो कि यह बुरी है। यह विमर्श करना नहीं हुआ। तुम्हें सिखाया गया है कि कामवासना बुरी है। इसीलिए उसे बुरा कहना विमर्श नहीं है। तुम शास्त्रों से पूछ रहे हो। तुम अतीत से पूछ रहे हो। तुम गुरूओ और ऋषियों से पूछ रहे हो। तुम स्वयं कामना पर विमर्श नहीं कर रहे हो। तुम किसी और चीज पर विमर्श कर रहे हो। हो सकता है, वह तुम्हारा संस्कार हो, तुम्हारे पालन-पोषण की शैली हो। तुम्हारी शिक्षा हो। तुम्हारी संस्कृति हो, तुम्हारा धर्म हो। तुम उन पर विचार कर रहे हो कामना पर विमर्श नहीं।
यह सीधी सी चाह पैदा हुई है। इसमे मन को मत बीच में लाओ। अतीत को शिक्षा को, संस्कार को मत बीच में लाओ। केवल इस चाह पर विमर्श करो की यह क्या है। अगर वह सब तुम्हारी खोपड़ी से बिलकुल पोंछ दिया जाए जो तुम्हें समाज से, मां-बाप से, शिक्षा और संस्कृति से मिला है। अगर तुम्हारा मन पोंछकर अलग कर दिया जाए तो भी कामवासना पैदा होगी। क्योंकि वह वासना तुम्हें समाज से नहीं मिलती है। वह वासना जैविक है। तुम में बिल्ट है। वह तुम में ही है।

उदाहरण के लिए, एक नवजात शिशु को लो। यदि उसे कोई भाषा न सिखायी जाए तो वह भाषा नहीं जानेगा। भाषा के बिना रहेगा। भाषा एक सामाजिक घटना है। वह सिखायी जाती है। लेकिन जब ठीक समय आएगा तो इस बच्चे को भी कामवासना

उठेगी। कामवासना समाजिक घटना नहीं है। वह जैविक रूप से बिल्ट है। सही और प्रौढ़ क्षण आने पर वह पैदा होगी। वह आएगी। वह समाजिक नहीं है। जैविक है और गहरी है। वह तुम्हारी कोशिकाओं में ही बिल्ट इन है।

तुम्हारा जन्म कामवासना से हुआ है, इसलिए तुम्हारे शरीर की प्रत्येक कोशिका काम-कोशिका है। तुम काम-कोशिकाओं से बने हो। जब तूम तुम्हारी बायोलाजी पूरी तरह न मिटा दी जाए तब के कामवासना रहेगी। वह आएगी ही, क्योंकि वह है ही । कामवासना बच्चे के जन्म के साथ-साथ आती है; क्योंकि बच्चा मैथुन की उप-उत्पती है। वह कामवासना से ही पैदा हुआ है। उसका समूचा शरीर काम कोशिकाओं से बना है। वासना मौजूद है, सिर्फ समय की जरूरत है। जब उसका शरीर प्रौढ़ होगा तो वासना आएगी और वह उसमें जाएगा। चाहे कोई तुम्हें सिखाये या न सिखाये। या तुम्हें लाख कहे की कामवासना बुरी चीज है। वह अच्छी नहीं है। वह पाप है। वह नरक में ले जाती है। या वह ये है या वो है। कामवासना सदा मौजूद रहती है।

पुरानी परंपराएं, पुराने धर्म खासकर ईसाइयत कामवासना के खिलाफ थी। वह उसके खिलाफ जोर दार प्रचार कर रही थी। यिप्पी या हिप्पी और अन्य संप्रदाय इसके विपरीत आंदोलन चला रहे है। वे कहते है कि कामवासना शुभ है। कि कामवासना में परम सुख है। वे कहते है कि संसार में कामवासना ही असली चीज है।

उसे अशुभ कहो या शुभ, दोनों ही सिखावन है। किसी सिखावन के मुताबिक अपनी चाह का विचार मत करो। कामना पर, उसकी शुद्धि में, वह जैसी है, एक तथ्य की तरह विमर्श करो। उसकी व्याख्या मत करो। यहां विमर्श का मतलब व्याख्या नहीं है। तथ्य को तथ्य की तरह देखना है। चाह है, उसे सीधा और प्रत्यक्ष देखो। विचारों और धारणाओं को बीच में मत लो। कोई विचार तुम्हारा नहीं है। कोई धारण तुम्हारी नहीं है। हर चीज तुम्हें दी गई है। हर धारणा उधार है। कोई विचार मौलिक नहीं है। कोई विचार मौलिक नहीं हो सकता। इसलिए विचार को बीच में मत लो। सिर्फ कामना को देखो कि वह क्या है। ऐसे देखो जैसे कि तुम्हें उसके संबंध में कुछ भी पता नहीं है। उसका साक्षात्कार करो। विमर्श का अर्थ यही है।

''जब कोई कामना उठे, उस पर विमर्श करो।''

उसे तथ्य की तरह देखा; देखो कि यह क्या है। दुर्भाग्य से यह सर्वाधिक कठिन कामों में से एक है। इसके मुकाबले चाँद पर जाना कठिन नहीं है। गौरी शंकर पर पहुंचना कठिन नहीं है। चाँद पर पहुंचना बहुत जटिल है। अत्यंत जटिल; लेकिन आंतरिक मन के किसी तथ्य के साथ जीने की बात के सामने चाँद पर पहुंचना कुछ भी नहीं है। क्योंकि तुम जो भी करते हो उसमें मन बहुत सूक्ष्म रूप से संलग्न रहता है। मन उसमें सदा समाया रहता है। उलझा रहता है।

इस शब्द को देखो, ज्यों ही मैंने कहां कि कामवासना या संभोग कि तुम तुरंत उसके पक्ष या विपक्ष में कुछ निर्णय लेते हो। जिस क्षण मैंने कहां संभोग कि तुम ने व्याख्या कर ली। तुम कहते हो, यह भला है या वह बुरा है। तुम शब्द की भी व्याख्या कर लेते हो।

जब ''संभोग'' से समाधि की और पुस्तक प्रकाशित हुई तो बहुत से लोग मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि कृपा कर यह नाम ''संभोग से समाधि की और'' बदल दीजिए। संभोग शब्द से उन्हें घबड़ाहट होती है। उन्होंने किताब भी नहीं पढ़ी। और वे भी नाम बदलने को कहते है। जिन्होंने किताब नहीं पढ़ी वे भी क्यों?

यह शब्द ही तुम्हारे भीतर व्याख्या को जन्म देता है। मन ऐसा व्याख्याकार है कि अगर मैंने कहा के नींबू का रस तो तुम्हारी लार टपकने लगती है। तुमने शब्दों की व्याख्या कर ली। ''नींबू का रस'' इन शब्दों में नींबू जैसी कोई चीज नहीं है। लेकिन तुम्हारे मुंह में खट्टापन भर जायेगा। मन ने व्याख्या कर ली; मन बीच में आ गया।

''फिर अचानक, उसे छोड़ दो।''

इस विधि के दो हिस्से है। पहला कि तथ्य के साथ रहो। जो हो रहा है उसके प्रति सजग रहो। अवधान पूर्ण रहो। देखो कि जब कामवासना पकड़ती है तो तुम्हारे भीतर क्या-क्या घटित होता है। तुम्हारा शरीर ज्वरग्रस्त हो जाता है। कांपने लगता है। तुम्हें लगता है। कि तुम किसी से आविष्ट हो। इसका अनुभव करो, इस पर विमर्श करो; कोई निर्णय न लो। सीधे तथ्य में प्रवेश करो। यह मत कहो कि यह बुरा है। अगर बुरा कहा तो विमर्श समाप्त हो गया, तुम ने द्वार बंद कर दिया। अब कामवासना की और तुम्हारी पीठ है, मुंह नहीं। तुम उससे दूर सरक गए। ऐसे तुम ने एक गहरा और कीमती क्षण गंवा दिया। जिसमें तुम अपने जीवन की एक जैविक पर्त का दर्शन कर सकते थे।

तुम अभी जिस पर्त से परिचित हो वह सामाजिक पर्त है, और तुम उससे ही चिपके हो। वह सतही है। कामवासना तुम्हारे शास्त्रों से गहरी है। क्योंकि वह जैविक है। अगर सभी शास्त्र नष्ट कर दिए जाए—ऐसा हो सकता है। ऐसा कई बार हुआ है। तो तुम्हारी व्याख्या खो जाएगी। लेकिन कामवासना तब भी रहेगी। वह ज्यादा गहरी है।

सतही चीजों को बीच में मत लाओ। तथ्य पर अवधान दो, उसमे प्रवेश करो, और देखो कि तुम्हें क्या हो रहा है। किसी ऋषि विशेष को, मोहम्मद को, महावीर को क्या हुआ। वह प्रासंगिक नहीं है। इस क्षण तुम्हें क्या हो रहा है। इस जीवंत क्षण में जो हो रहा है। वह प्रासंगिक है। उस पर विमर्श करो। उसका ही निरीक्षण करो।

और अब दूसरा हिस्सा; यह सचमुच अद्भुत है।

शिव कहते है: ''फिर, अचानक छोड़ दो।''

यहां ''अचानक'' को याद रखो। यह मत कहो कि यह खराब है, इसलिए छोड़ रहा हूं। यह मत कहो कि यह खराब है। इस लिए इसे नहीं रखूंगा। यह मत कहो कि यह बुरा है। यह पाप है, इसलिए इसके साथ गति नहीं करूंगा। मैं इसे त्याग दूँगा। मैं इसका दमन कर दूँगा। तब तो दमन घटित होगा। ध्यान नहीं। आरे दमन अपने ही हाथों अपना एक भ्रमित चित निर्मित करना है।

दमन मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है; उसके द्वारा तुम समूचे यंत्र को उपद्रव में डाल रहे हो।1 उन ऊर्जाओं को दबा रहे हो जो किसी ने किसी दिन फुटकर बहार आएँगी। ऊर्जा तो है ही, सिर्फ दमित हो गई है। न इसे बाहर जाने दिया गया है और न भीतर; उसे सिर्फ दमित कर दिया गया है। वह कोने कातर में छिप गई है। जहां वह पड़ी रहेगी। और विकृत होगी।

और स्मरण रहे, विकृत ऊर्जा ही मनुष्य की बुनियादी समस्या है। जो मानसिक रूग्णताएं है, वे विकृत ऊर्जा की उप-उत्पती है। तब वह ऊर्जा ऐसे ढंगों में अभिव्यक्त होगी जिसकी कोई कल्पना नहीं हो सकती है। और इन विकृतियां में भी वह फिर अपने को अभिव्यक्त करने की चेष्टा करेगी। और जब वह विकृत रूप में अभिव्यक्ति होती है। तो बहुत दुःख और संताप लाती है। विकृत ऊर्जा की अभिव्यक्ति से संतुष्टि नहीं मिलती है। और अड़चन यह है कि तुम विकृत नहीं रह सकते। तुम्हें विकृति को अभिव्यक्ति देना होगी। दमन विकृति पैदा करता है। इस सूत्र का दमन से कुछ लेना-देना नहीं है। यह सूत्र यह नहीं कहता कि नियंत्रण करो; यह सूत्र दमन की बात ही नहीं करता है।

यह सूत्र कहता है: ''अचानक, छोड़ दो।''

तो क्या किया जाए। कामना है; कामना पर तुमने विमर्श किया है। अगर कामना पर तुमने विमर्श किया है तो दूसरा भाग कठिन नहीं होगा। तब यह आसान होगा। यदि विमर्श नहीं किया है तो तुम्हारे मन में विचार चलते रहेंगे। मन कहेगा, यह अच्छा है कि कामवासना को हम अचानक छोड़ दे।

तुम छोड़ना चाहोगे। लेकिन यह सवाल नहीं है। यह पसंद तुम्हारी न होकर समाज की हो सकती है। यह पसंद तुम्हारा विमर्श न होकर मात्र परंपरा हो सकती है। इसलिए विमर्श करो। पसंद या गैर पसंद की बात मत उठाओ। केवल विमर्श करो। और तब तुम्हारा हिस्सा आसान हो जाएगा। तब तुम कामना को छोड़ सकते हो। कैसे छोड़ सकते हो।

जब किसी चीज पर तुम ने समग्र रूपेण विमर्श किया है तो उसे छोड़ना बहुत आसान हो जाता है। वह इतना ही आसान है जितना मेरे लिए इस कागज़ हो गिराना। ''इसे छोड़ दो।'' क्या होगा? कामना है; उसे तुम ने दबाया नहीं है। कामना है; और वह बाहर जाना चाहती है। वह उठ रही है। और तुम्हारे पूरे अस्तित्व को उद्वेलित कर दिया है। सच तो यह है कि जब तुम किसी कामना पर बिना किसी व्याख्या के विचार करोगे तो तुम्हारा पूरा अस्तित्व ही कामना बन जाएगा।

समझो कि कामवासना है और तुम उसके पक्ष या विपक्ष में नहीं हो। उसके संबंध में तुम्हारी कोई धारणा नहीं है, तुम सिर्फ उसे देख रहे हो। तो इस देखने भर से तुम्हारा पूरा अस्तित्व उस कामना में संलग्न हो जाएगा। एक अकेली कामवासना आग की लपट बन जाएगी। उस में तुम्हारा अस्तित्व जलने लगेगा—मानो कि तुम समग्र रूपेण कामुक हो उठे हो। तब कामवासना काम-कैंद्र पर ही सीमित नहीं रहेगी। वह तुम्हारे पूरे शरीर पर फैल जाएगी। तुम्हारे शरीर का एक-एक तंतु कांपने लगेगा। कामना अंगारा बन जाएगी। तब उसे छोड़ दो, उससे अचानक हट जाओ। उससे लड़ों मत, इतना ही कहो कि मैं छोड़ता हूं।

तब क्या होगा। ज्यों ही तुम कहते हो कि मैं छोड़ता हूं, एक अलगाव घटित होता है। तुम्हारा शरीर कामात्तप्त शरीर और तुम दो हो जाते हो। अचानक एक क्षण को भीतर उनके बीच जमीन-आसमान की दूरी पैदा हो गई। शरीर तो आवेग में, कामवासना से उद्वेलित है। और कैंद्र शांत है। मात्र देख रहा है। स्मरण रहे, वहां कोई संघर्ष नहीं है। सिर्फ अलगाव है। संघर्ष तुम अलग नहीं होते, जब तुम लड़ते हो, तुम लड़ाई के विषय के साथ एक होते हो। तुम जब मात्र छोड़ देते हो तब तुम अलग होते हो, तब तुम इसे देख सकते हो। मानो तुम नहीं दूसरा देख रहा है।

मेरे एक मित्र बहुत वर्षों तक मेरे साथ थे। वे सतत धूम्रपान करते थे—चेन स्मोकर थे। और जैसा कि सभी धूम्रपान करने वाले करते है। मेरे मित्र ने भी निरंतर उससे छूटने की चेष्टा की। किसी सुबह अचानक तय करते कि अब मैं धूम्रपान नहीं करूंगा। और श्याम होते-होते फिर पीने लगते। और फिर वह अपराधी अनुभव करते और अपना बचाव करते और तब कुछ दिनों तक धूम्रपान छोड़ने का नाम भी नहीं लेते। फिर वे यह सब भूल जाते और किसी दिन साहस जुटाकर फिर कहते कि अब मैं धूम्रपान नहीं करूंगा। और मैं सिर्फ हंसता, क्योंकि यह घटना इतनी बार दुहरा चुकी थी।

फिर वे खुद भी इस दुस्चक्र से ऊब उठे कि धूम्रपान करना और छोड़ना मानो हमेशा-हमेशा के लिए उनका संगी साथी बन गया है। वे गंभीरता से सोचने लगे कि क्या करू। और तब उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं क्या करूं। मैंने उनसे कहा कि पहली बात तो यह कि धूम्रपान का विरोध करना छोड़ दो, धूम्रपान करो और मजे से करो। सात दिनों तक इसका कोई विरोध मत करो, इसे स्वीकार कर लो।

उन्होंने कहा कि यह आप क्या कह रहे है। मैं इसके विरोध में रहकर भी इसे नहीं छोड़ सकता हूं। और आप इसे स्वीकार को कहते है। तब तो छोड़ने की जरा भी संभावना नहीं रहेगी। मैंने उन्हें समझाया कि तुम शत्रुता का रूख प्रयोग करके देख चुके, निष्फलता ही हाथ लगी है। अब मैत्री के रूख का प्रयोग करो। बस सात दिनों के लिए धूम्रपान का विरोध मत करो।

उन्होंने छूटते ही पूछा कि क्या तब धूम्रपान छूट जाएगा? मैंने कहा: तुम अब भी उसके प्रति शत्रुता का भाव रखते हो। छोड़ने के भाव में ही शत्रुता है। छोड़ने की बात ही भूल जाओ। धूम्रपान के साथ रहो। उसके साथ सहयोग करो। क्या कोई मित्र को छोड़ने का विचार करता है। सात दिन तक छोड़ने की बात को भूल जाओ। उसका सहयोग करो। जितना संभव हो उतने प्रगाढ़ ढंग से, उतने प्रेम के साथ पीओ। जब तुम धूम्रपान कर रहे हो तो उस समय सब कुछ भूलकर धूम्रपान ही हो जाओ। उसके

साथ आराम से रहो, उसके साथ संवाद साध लो। सात दिन तक जितना संवाद साध लो। सात दिन तक जितना चाहो उतना धुम्रपान करो, छोड़ने की बात ही भूल जाओ।

ये सात दिन उनके लिए विमर्श के दिन बन गये। वे धूम्रपान के तथ्य को सीधा-सीधा देख पाए। वे इसके विरोध में नहीं थे। इसलिए अब वे इसका साक्षात्कार कर सकते थे। जब तुम किसी व्यक्ति या वस्तु के विरोध में होते हो तो तुम उसका साक्षात्कार नहीं कर सकते। विरोध ही बाधा बन जाता है। तब विमर्श कहां। क्या तुम शत्रु पर विमर्श करते हो? तुम उसे देख भी नहीं सकते। तुम उसकी आँख से आँख नहीं मिला सकते। शत्रु को देखना बहुत कठिन है। तुम उसी व्यक्ति की आंखों में आँख डालकर देख सकते हो। जिसे तुम प्रेम करते हो। प्रेम में ही तुम गहरे उतर सकते हो। अन्यथा आँख मिलाना मुश्किल है।

मेरे उन मित्र ने धूम्रपान के तथ्य का गहराई से साक्षात्कार किया। सात दिन तक वे विमर्श करते रहे। उन्होंने विरोध छोड़ दिया था। इसीलिए ऊर्जा सुरक्षित थी। और वह ध्यान बन गया। उन्होंने सहयोग किया और वे धुम्रपान सी बन गए।

सात दिन बाद मेरे मित्र मुझे कहना भी भूल गये कि क्या हुआ था। मैं इंतजार कर रहा था कि वे और कहेंगे कि सात बित गये। अब मैं धूम्रपान कैसे छोड़ू। वे सात दिन की बात ही भूल गये। तीन सप्ताह गुजर गये तो मैंने ही उनसे पूछा कि आप बिलकुल भूल गये क्या? उन्होंने कहा कि यह अनुभव सुंदर रहा, इतना सुंदर कि अब मैं किसी चीज के विषय में सोचना ही नहीं चाहता। पहली बार मैंने तथ्य के साथ संघर्ष नहीं किया, पहली बार मैं सिर्फ अनुभव कर रहा हूं। उसे जो मेरे साथ घटित हो रहा है।

तब मैंने उनसे कहा, ''अब जि भी धुम्रपान की वृति पैदा हो, तो उसे छोड़ दो।'' उन्होंने फिर नहीं पूछा कि कैसे छोड़ना है। उन्होंने पूरी चीज पर विमर्श किया था। और उससे ही वह पूरी चीज बचकानी दिखने लगी थी। संघर्ष की गुंजाईश ही नहीं थी। तब मैंने उनसे कहा कि अब जब फिर धूम्रपान की चाह पैदा हो तो उसे देखो। और उसे छोड़ दो। सिगरेट को अपने हाथ में ले लो, एक क्षण के लिए रूको और तब सिगरेट को छोड़ दो, गिर जाने दो। और सिगरेट के गिरने के साथ-साथ धूम्रपान की वृति पैदा हो और तुम उसे छोड़ दो तो सारी ऊर्जा एक छलांग लेकर भीतर गति कर जाती है।

विधि एक ही है, केवल उसके आयाम भिन्न है।

''जब कोई कामना उठे, उस पर विमर्श करो। फिर, अचानक, उसे छोड़ दो।''

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—27 (ओशो)

Posted on जून 16, 2012

अचानक रूकने की कुछ विधियां:
तीसरी विधि:

विज्ञान भैवर तंत्र— अचानक रूकने की कुछ विधियां:

‘’पूरी तरह थकनें तक घूमते रहो, और तब जमीन पर गिरकर, इस गिरने में पूर्ण होओ।‘
वही है, विधि वही है।

पूरी तरह थकनें तक घूमते रहो।

बस वर्तुल में घूमों। कुदो, नाचो, दौड़ों, जब तक थ न जाओ घूमते रहा। यह घूमना तब तक जारी रहे जब तक ऐसा न लगे कि और एक कदम उठना असंभव है। लेकिन यह ख्याल रखो कि मन कह सकता है कि अब पूरी तरह थक गए। मन की बिलकुल मत सुनो। चलते चलो, दौड़ते रहो। नाचते रहो, कूदते रहो।

मन बार-बार कहेगा कि बस करो, अब बहुत थक गए। मन पर ध्यान ही मत दो। तब तक घूमना जारी रखो जब तक महसूस न हो—विचारना नहीं, महसूस करना महत्वपूर्ण है—कि शरीर बिलकुल थक गया है। और अब ऐ कदम भी उठाना संभव न होगा। और यदि उठाऊंगा तो गिर जाऊँगा। जब तुम अनुभव करो कि अब गिरा तब गिरा। अब आगे नहीं जा सकता, शरीर भारी और थक कर चूर हो गया है। ‘’तब जमीन पर गिरकर इस गिरने में पूर्ण होओ।‘’ तब गिर जाओ।
ध्यान रहे कि थकना इतना हो कि गिरना अपने आप ही घटित हो। अगर तुमने दौड़ना जारी रखा तो गिरना अनिवार्य है। जब यह चरम बिंदू आ जाए तब—सूत्र कहता है—गिरो और इस गिरने में पूर्ण होओ।

इस विधि का कैंद्रिय बिंदू यही है: जब तुम गिर रहे हो, पूर्ण होओ।

इसका क्या अर्थ है? पहली बात यह है कि मन के कहने से ही मत गिरो। क्योंकि आयोजन मत करो। बैठने की चेष्टा मत करो, लेटने की चेष्टा मत करो। पूरे के पूरे गिर जाओ मानो कि पूरा शरीर एक है। और वह गिर गया है। ऐसा न हो कि तुमने उसे गिराया है। अगर तुमने गिराया है तो तुम्हारे दो हिस्से हो गए। एक गिरने वाले तुम हुए और दूसरा गिराया हुआ शरीर हुआ। तब तुम पूर्ण न रहे। खंडित और विभाजित रहे।

उसे अखंडित गिरने दो; अपने को समग्ररतः: गिरने दो। 'गिरो' शब्द को याद रखो। व्यवस्था नहीं करनी है। मृतवत गिर जाना है। इस गिरने में पूर्ण होओ। अगर इस भांति गिरे तो पहली बार तुम्हें अपने पूरे अस्तित्व का, अपनी पूर्णता का एहसास होगा। पहली बार केंद्र को अखंड, अद्वैत, एक अनुभव करोगे। यह कैसे घटित होगा?

शरीर में ऊर्जा के तीन तल है। एक है दैनंदिन कामों का तल। इस तल को याद रखो। आसानी से चुक जाती है। यह दिनचर्या के कामों के लिए ही है। दूसरा तल आपातकालीन कामों के लिए है। यह ज्यादा गहरा ती है। जब तुम किसी संकट में होते हो तभी इस ऊर्जा का उपयोग करते हो। और तीसरा तल जागतिक ऊर्जा का है, जो अनंत है।

पहले तल की ऊर्जा आसानी से चुक जाती है। यदि मैं तुम्हें दौड़ने को कहूं तो तुम तीन चार चक्कर लगाकर कहोगे कि मैं थक गया हूं। सच में तुम थके नह हो। पहल तल की ऊर्जा समाप्त हो गई है। सुबह में यह इतनी आसानी से नहीं चुकती, शाम में जल्दी चुक जाती है। क्योंकि दिन भर तुमने उसका उपयोग किया है। अब इसे विश्राम की जरूरत है। यही वजह है। कि रात में शरीर आराम खोजता है। उसे गहरी नींद की जरूरत है। जागतिक ऊर्जा के भंडार से शरीर फिर अगले दिन के काम के लिए जरूरी ऊर्जा ले लेगा। यह पहली तल हुआ।

अभी यदि मैं तुमसे दौड़ने को कहूं तो तुम कहोगे कि मुझे नींद आ रही है। तभी कोई आता है और कहता है कि तुम्हारे घर में आग लग गई है। अचानक तुम्हारी नींद काफूर हो गई। थकावट जाती रही। तुम ताजा हो गए और दौड़ने लगे। अचानक क्या हुआ? तुम थके थे, लेकिन आपत्काल ने तुम्हें तुम्हारी ऊर्जा के दूसरे तल से जोड़ दिया, और तुम फिर ताजा हो गये। यह दूसरा तल है।

इस विधि में दूसरे तल की ऊर्जा का चुकाना है। पहला तल बहुत आसानी से चुक जाता है। उसने चुकने पर भी दौड़ते रहो। थकनें पर भी दौड़ते रहो। कुछ ही क्षण में ऊर्जा की एक नई लहर आएगी और तुम फिर ताजा हो जाओगे। और तुम्हारी थकावट चली जायेगी।

अनेक लोग मुझसे आकर कहते है कि जब हम साधना शिविर में होते है तब एक चमत्कार सा होता है कि हम इतना कर लेते है। सुबह में एक घंटा सक्रिय ध्यान, जिसमे हम पूरे पागल की तरह ध्यान करते है। पिछले पहर भी एक घंटा ध्यान करते है। और फिर रात में भी। तीन-तीन बार हम पागलों की तरह ध्यान करते है। अनेक लोगों ने कहां है कि यह हमें असंभव सा लगता है। लगता है कि अब और नहीं चलेगा। लगता है कि अगले दिन हाथ पाँव हिलाना भी असंभव होगा। लेकिन कोई थकता नहीं है। रोज तीन-तीन सत्र और इतना कठिन श्रम। और इसके बावजूद कोई भी नहीं थकता है। ऐसा क्यों है?

ऐसा इसलिए है कि लोग शिविर में दूसरे तल की ऊर्जा से संबंधित हो जाते है। यदि तुम अकेले करो तो थक जाओगे। किसी पहाड़ पर जाकर प्रयोग करके देखो, पहले तक के चूकते ही तुम चुक जाते हो। लेकिन एक बड़े समूह में, जहां पाँच सौ लोग सक्रिय ध्यान कर रहे हों, बात दूसरी है। तुम्हें लगता है, दूसरे लोग जब नहीं थके है तो तुमको भी कुछ देर जारी रखना चाहिए। और हरेक आदमी ऐसा ही सोच रहा है। कि जब कोई नहीं थका है तो मुझे भी जारी रखना चाहिए। जब सक काई ताजा और सक्रिय है तो मैं ही क्यों थकान अनुभव करूं?

यह समूह भाव तुम्हें प्ररेणा देता है। शक्ति देता है और तुम दूसरे तल पर पहूंच जाते हो। और दूसरा तल बहुत बड़ा है—आपातकालीन तल जो है। और जब आपातकालीन तल चुकता है तब और अभी, तुम जाग्रति तल में, प्रवेश कर जाते हो। अनंत से तुम्हारा संबंध स्थापित हो जाता है। इसलिए बहुत श्रम की जरूरत है। इतने श्रम की कि तुम्हें लगे कि अब यह मेरे बस की बात नहीं है।

लेकिन अभी भी यह तुम्हारे वश के बाहर नहीं है। यह सिर्फ तुम्हारे पहले तल कि ऊर्जा के वश के बाहर है। जब पहले तल की ऊर्जा चुकती है। तो थकावट महसूस होती है। दूसरे तल की ऊर्जा के चूकने पर तुम्हें लगेगा की अब अगर और ज्यादा किया तो मैं मर जाऊँगा।

अनेक लोग मरे पास आते है और कहते है कि जब हम ध्यान की गहराई में उतरते है तो एक क्षण के आता है कि हम भयभीत हो जाते है। आतंकित हो जाते है। क्योंकि लगता है कि मृत्यु करीब है। इससे आगे जाने पर मृतयु निशचित है।

यह मृत्यु का भय पकड़ लेता है। और लगता है कि ध्यान के बाहर आना नहीं हो सकेगा।

यही वह क्षण है, ठीक क्षण, जब तुम्हें साहस की जरूरत है। थोड़ा और साहस और तुम तीसरे तल में प्रविष्ट हो जाओगे। यह सबसे गहरा तल है—आत्यंतिक, अनंत।

यह विधि तुम्हें ऊर्जा के जागतिक सागर में आसानी से उतारने में सहयोगी है।

''पूरी तरह थकनें तक घूमते रहो, और तब जमीन पर गिरकर, इस गिरने में पूर्ण होओ।''

और जब तुम जमीन पर गिरते हो तो पहली बार तुम पूर्ण हो जाओगे—अद्‌वैत, एक कोई विभाजन, कोई द्‌वैत नही रहेगा। विभाजनों वाला मन विदा हो जाएगा। और पहली बार वह सत्ता प्रकट होगी जो अविभाजित है, अविभाज्य है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—28 (ओशो)

अचानक रूकने की कुछ विधियां:

चौथी विधि:

'कल्पना करो कि तुम धीरे-धीरे शक्ति या ज्ञान से वंचित किए जा रहे हो। वंचित किए जाने के क्षण में अतिक्रमण करो।'
इस विधि का प्रयोग किसी यथार्थ स्थिति में भी किया जो सकता है। और तुम ऐसी स्थिति की कल्पना भी कर सकते हो। उदाहरण के लिए लेट जाओ, शिथिल हो जाओ। और भाव करो कि तुम्हारा शरीर मर रहा है। आंखें बंद कर लो और भाव करो कि मैं मर रहा हूं। जल्दी ही तुम महसूस करोगे कि मेरा शरीर भारी हो रहा है। भाव करो: 'मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं।'
अगर भाव प्रामाणिक है तो तुम्हारा शरीर भारी होने लगेगा। तुम्हें महसूस होगा कि मेरा शरीर पत्थर जैसा हो गया है। तुम अपने हाथ हिलाना चाहोगे। लेकिन हिला नहीं पाओगे, क्योंकि वह इतना भारी और मुर्दा हो गया है। भाव किए जाओ कि मैं मर रहा हूं। मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं। और जब तुम्हें मालूम हो कि अब वह क्षण आ गया है, एक छलांग और कि मैं मर जाऊँगा। तब शरीर को भूल जाओ और अतिक्रमण करो।

'कल्पना करो कि तुम धीरे-धीरे शक्ति या ज्ञान से वंचित किए जा रहे हो। वंचित किए जाने के क्षण में, अतिक्रमण करो।'

जब तुम अनुभव करते हो कि शरीर मृत हो गया है, तब अतिक्रमण करने का क्या अर्थ है? शरीर को देखो। अब तक तुम भाव करते रहे थे कि मैं मर रहा हूं। अब शरीर मृत बोझ बन गया है। शरीर को देखा। भूल जाओ कि मर रहा हूं। अब द्रष्टा हो जाओ। शरीर मृत पडा है और तुम उसे देख रहे हो। अतिक्रमण घटित हो जाएगा। तुम अपने मन से बाहर निकल जाओ; क्योंकि मृत शरीर को मन की जरूरत नहीं होती। मृत शरीर इतना विश्राम में होता है कि मन की प्रक्रिया ही ठहर जाती है। तुम हो, शरीर भी है; लेकिन मन अनुपस्थित है।

स्मरण रहे, मन की जरूरत जीवन के लिए नहीं है। मृत्यु के लिए नहीं है। अगर तुम्हें अचानक पता चले कि मैं एक घंटे के अंदर मर जाऊँगा तो उस एक घंटे के अंदर तुम क्या करोगे। एक घंटा बचा है। और निश्चित है कि एक घंटे बाद, ठीक एक घंटे बाद तुम मर जाओगे। तो तुम क्या करोगे?

तुम्हारा विचार बिलकुल बंद हो जाएगा। क्योंकि सब विचारना अतीत से या भविष्य से संबंधित है। तुम एक घर खरीदने की सोच रहे थे। या एक कार खरीदना चाहते थे। या हो सकता है कि तुम किसी से विवाह की योजना बना रहे थे। या किसी को तलाक देना चाहते थे। तुम बहुत सी बातें सोच रहे थे। और वह सतत तुम्हारे मन पर भारी थी। अब जब कि सिर्फ एक घंटा हाथ में है तब न विवाह का कोई अर्थ है और न तलाक का। अब तुम सारी योजना उनके लिए छोड़ सकते हो जो जीने वाले है।

मृत्यु के साथ आयोजन समाप्त हो जाता है। मृत्यु के साथ चिंता समाप्त हो जाती है। क्योंकि हर आयोजन हर चिंता जीवन से संबधित है। कल तुम जीओगे, इसी कारण से चिंता होती है। और यही कारण है कि जो लोग ध्यान सिखते है वह सतत कहते है कि कल की मत सोचो। जीसस अपने शिष्यों से कहते थे कि कल की मत सोचो। क्योंकि कल की सोचोगे तो तुम ध्यान में नहीं उतर पाओगे। तुम चिंता में उतर जाओगे।

लेकिन हमें चिंताओं से इतना लगाव है कि हम कल की ही नहीं सोचते; आने वाले जन्म तक कि चिंता करते है। हम इस जीवन की ही नहीं सोचते आने वाले जीवन का भी आयोजन करते है। मृत्यु के बाद के जीवन की भी चिंता रहती है।

एक दिन मैं सड़क से गुजर रहा था कि किसी ने एक पुस्तिका मेरे हाथ में थमा दी। उसके मुख पृष्ठ पर एक बहुत ही सुंदर मकान का चित्र बना था। और उसके साथ ही एक सुंदर बग़ीचा भी था। वह सुंदर था। अद्भुत रूप से सुंदर था। और बड़े-बड़े

अक्षरों में यह प्रश्न लिखा था; क्या तुम एकसा सुंदर घर और ऐसा सुंदर बग़ीचा चाहते हो? और वह भी बिना मूल्य के ''मुफ्त''।

मैंने उस किताब को उलट-पुलट कर देखा; वह घर और बग़ीचा इस दुनियां के नहीं थे। वह ईसाइयों की पुस्तिका थी। उसमें लिखा था कि अगर तुम्हें ऐसे सुंदर घर और बग़ीचे की चाह है तो जीसस में विश्वास करो। जो लोग उनमें विश्वास करते है उन्हें प्रभु के राज्य में ऐसे घर मुफ्त में मिलते है।

मन कल की ही नहीं सोचता, वरन मृत्यु के बाद की भी सोचता है; वह अगले जन्मों के लिए भी व्यवस्था और आरक्षण करता रहता है। ऐसा मन धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक मन कल की चिंता नहीं करता है। इसलिए जो लोग जन्मों की चिंता करते है वि सतत सोचते रहते है। कि परमात्मा उनके साथ कैसा व्यवहार करेगा। चर्चिल मर रहा था और किसी ने उससे पूछा; 'तुम स्वर्ग में परम पिता से मिलने को तैयार हो?' चर्चिल ने कहा: 'वह मेरी चिंता नहीं है; मुझे तो यह चिंता है कि परम पिता मुझसे मिलने को तैयार है?' चाहे जो भी ढंग हो, तुम चिंता भविष्य की ही करते हो।

बुद्ध ने कहा है कि कोई स्वर्ग नहीं है और न कोई भावी जीवन है। और उन्होंने यह भी कहा है कि आत्मा नहीं है। और तुम्हारी मृत्यु समग्र ओर पूरी होगी। कुछ भी नहीं बचेगा।

इस पर लोगों ने सोचा कि बुद्ध नास्तिक है। वे नास्तिक नहीं थे। वे एक स्थिति पैदा कर रहे थे। जिसमें तुम कल को भूल जाओ और एक क्षण में, यहां और अभी जी सको। तब ध्यान बहुत सरल हो जाता है।

तो अगर तुम मृत्यु की सोच रहे हो—वह मृत्यु नहीं जो भविष्य में आएगी। तो जमीन पर लेट जाओ। मृतवत हो जाओ। शिथिल हो जाओ और भाव करो कि मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं। मैं मर रहा हूं। यह सिर्फ सोचो ही नहीं शरीर के एक-एक अंग में, शरीर के एक-एक तंतु में इसे अनुभव करो। मृत्यु को अपने भीतर सरकने दो यह एक अत्यंत सुंदर ध्यान –विधि है। और जब तुम समझो कि शरीर मृत बोझ हो गया है और जब तुम अपना हाथ या सिर भी नहीं हिला सकते, जब लगे कि सब कुछ मृतवत हो गया; तब एकाएक अपने शरीर को देखो तब मन वहां नहीं होगा। तब तुम देख सकते हो। तब सिर्फ तुम होगे चेतना होगी।

अपने शरीर को देखा। तुम्हें नहीं लगेगा कि यह तुम्हारा शरीर है। बस एक शरीर है। कोई शरीर, ऐसा लगेगा। अगर मन न हो, अनुपस्थिति हो, तो तुम नहीं कहोगे कि मैं शरीर हूं। या शरीर के बाहर हूं। तुम महज होगे। भीतर और बाहर नहीं होगे। भीतर और बाहर सापेक्ष शब्द खड़े होगे। तुम शरीर में नहीं होगे।

ध्यान रहे, मन के कारण ही अहं भाव उठता है कि मैं शरीर हूं। यह भाव कि मैं शरीर हूं मन के कारण है। अगर मन न हो, अनुपस्थित हो, तो तुम नहीं कहोगे। कि मैं शरीर हूं या शरीर के बाहर हूं। तुम महज होगे। भीतर और बाहर नहीं होगे। भीतर और बाहर सापेक्ष शब्द है। जो मन से संबंधित है। तब तुम मात्र साक्षी रहोगे। यही अतिक्रमण है।

तुम यह प्रयोग कई ढंगों से कर सकते हो। कभी-कभी वास्तविक स्थितियों में भी यह प्रयोग संभव है। तुम बीमार हो और तुम्हें लगता है कि अब कोई आशा न बची। मृत्यु निश्चित है। यह बहुत उपयोगी स्थिति है। ध्यान के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है।

और दूसरे ढंगों से भी इसका उपयोग कर सकते हो। कल्पना करो कि धीरे-धीरे तुम्हारी शक्ति क्षीण हो रही है। लेट जाओ और भाव करो कि समस्त अस्तित्व मेरी शक्ति को चूस रहा है। चारों और से मेरी शक्ति चूसी जा रही है। और शीध्र ही में नि: सत्व हो जाऊँगा। सर्वथा बलहीन हो जाऊँगा; मेरे भीतर कुछ भी नहीं बचेगा।

और जीवन ऐसा ही है। तुम चूसे जा रहे हो। तुम्हारे चारों और की चीजें तुम्हें चूस रही है। और एक दिन तुम मुर्दा हो जाओगे। सब कुछ चूस लिया जाएगा। जीवन तुम से जा चुकेगा और केवल शव पडा रह जायेगा।

इस क्षण भी तुम यह प्रयोग कर सकते हो। कल्पना कर सकते हो। लेट जाओ और भाव करो कि ऊर्जा चूसी जा रही है। थोड़े ही दिनों में तुम्हें साफ होने लगेगा। कि कैसे ऊर्जा बाहर जाती है। और जब तुम समझो कि सारी ऊर्जा बाहर निकल गई है, भीतर कुछ नहीं बची है, तब अतिक्रमण कर जाओ।

'वंचित किए जाने के क्षण में, अतिक्रमण करो।'

जब ऊर्जा का अंतिम कण तुम से बाहर जा रहा है। अतिक्रमण कर जाओ द्रष्टा हो जाओ मात्र साक्षी। तब यह जगत और यह शरीर दोनों तुम नहीं हो। तुम बस देखने वाले हो।

यह अतिक्रमण तुम्हें तुम्हारे मन के बाहर ले जाएगा। यह कुंजी है। और तुम अपनी पसंद के मुताबिक कई ढंगों से यह प्रयोग कर सकते हो। उदाहरण के लिए, हम लोग दौड़ने की बात कर रहे थे। उसमें ही अपने को थका दें। दौड़ते जाओ। खुद मत रुको। शरीर को अपने आप ही गिरने दो। जब शरीर का जर्रा-जर्रा थक जाएगा, तुम गिर पड़ोगे। और जब तुम गिर रह हो तभी सजग हो जाओ। सिर्फ देखो कि शरीर गिर रहा है।

कभी-कभी चमत्कारपूर्ण घटना घटती है। तुम खड़े रहते हो, शरीर गिर गया है, और तुम उसे देख सकते हो। तुम देख सकते हो, क्योंकि शरीर ही गिरा है और तुम खड़े हो। शरीर के साथ मत गिरो। चारों तरफ घूमों, दौड़ों, नाचो, शरीर को थका डालों। लेकिन ध्यान रहे, तुम्हें लेटना नहीं है। क्योंकि उस हालत में आंतरिक चेतना भी शरीर के साथ गति करके लेट जाती है। इसलिए लेटना नहीं है। तुम चलते ही चलो, जब तक कि शरीर अपने आप ही न गिर जाए। तब शरीर शव की तरह गिर जाता है। और तुरंत तुम्हें दिखाई देता है कि शरीर गिर रहा है और तुम कुछ नहीं कर सकते है।

उसी क्षण आँख खोलों, सजग हो जाओ। चूको मत। जागरूक होकर देखो कि क्या हो रहा है। हो सकता है। तुम खड़े हो और शरीर गिर पडा है। एक बार यह जान लो कि फिर तुम यह कभी न भूलोंगे कि मैं इस शरीर से पृथक हूं।

अंग्रेजी के शब्द 'एक्स्टसी' का यही अर्थ है। बाहर खड़ा होना। एक्स्टसी अर्थात बाहर खड़ा होना। अंग्रेजी में एक्स्टसी का प्रयोग समाधि के लिए होता है। और एक बार तुम समझ लो कि तुम शरीर के बाहर हो तो उस क्षण मन नहीं रह सकता। क्योंकि मन ही वह सेतु है जिससे यह भाव पैदा होता है कि मैं शरीर हूं। अगर तुम एक क्षण के लिए भी शरीर के बाहर हुए तो उस क्षण में मन नहीं रहेगा।

यह अतिक्रमण है। अब तुम शरीर में वापस हो सकते हो, मन में भी वापस हो सकते हो; लेकिन अब तुम इस अनुभव को नहीं भूल सकोगे। यह अनुभव तुम्हारे अस्तित्व का भाग बन गया है। यह सदा तुम्हारे साथ रहेगा।

इस प्रयोग को प्रतिदिन करो। और इस सरल प्रक्रिया से बहुत कुछ घटित होता है।

मन को लेकिन पश्चिम सदा चिंतित रहता है और उनके उपाय भी करता है। लेकिन अब तक कोई उपाय काम करता नजर नहीं आता। हरेक चीज फैशन बनकर समाप्त हो जाती है। मनोविश्लेषण अब एक मृत आंदोलन है। उसकी जगह नए आंदोलन आ गए है—एनकांउटर समूह है, समूह मनोविज्ञान है, कर्म मनोविज्ञान है—और भी ऐसी ही चीजें है। लेकिन वे फैशन की तरह आती है और चली जाती है। क्यो?

इसलिए कि मन के भीतर तुम ज्यादा से ज्यादा व्यवस्था ही बिठा सकते हो। आरे ये व्यवस्थाएं बार-बार उपद्रव में पड़ेगी। मन की व्यवस्था, उसके साथ समायोजन करना रेत पर घर बनाने जैसा है। ताश का घर बनाने जैसा है। वह घर सदा हिलता रहेगा। और यह डर सदा रहेगा कि अब गिरा तब गिरा। वह किसी भी क्षण गिर सकता है।

आंतरिक रूप से सुखी और स्वस्थ होने के लिए, संपूर्ण होने के लिए मन के पार जाना ही एकमात्र उपाय है। तब तुम मन में भी लौट सकते हो। और उसे उपयोग में भी ला सकते हो। तब मन यंत्र का काम करता है। और तुम उससे तादात्म्य नहीं रखते।

तो दो चीजें है। एक कि मन के साथ तुम्हारा तादात्म्य है। तंत्र के लिए यही रूग्णता है। दूसरे, मन के साथ तुम्हारा तादात्म्य नहीं रहा; तुम उसे यंत्र की तरह काम में लाते हो। तब तुम स्वस्थ और संपूर्ण हो।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—28 (ओशो)

तंत्र-सूत्र—विधि—29 (ओशो)

अचानक रूकने की कुछ विधियां:

तंत्र-सूत्र—विधि—29 (ओशो)
''भक्ति मुक्त करती है।''

पांचवी विधि:

थोड़े से शब्दों की यह विधि एक अर्थ में बहुत सरल है और दूसरे अर्थ में अत्यंत कठिन। यह पांचवी विधि कहती है:

''भक्ति मुक्त करती है।''
थोड़े से शब्द: भक्ति मुक्त करती है। सच में तो यह एक ही शब्द है। क्योंकि ''मुक्त करती है।'' भक्ति का परिणाम है। भक्ति का क्या मतलब है।

विज्ञान भैरव तंत्र में दो कोटि की विधियां है। एक कोटि उनके लिए है जो मस्तिष्क प्रधान है। विज्ञानोन्मुख है। और दूसरी उनके लिए है जो ह्रदय प्रधान है। भावोन्मुख है, कवि है। और दो ही तरह के मन है—वैज्ञानिक मन और काव्यात्मक मन। और इनमें जमीन आसमान का अंतर है। वे एक दूसरे से की नहीं मिलते है। मिलन असंभव है। कभी-कभी वे समानांतर चलते है। लेकिन मिलते कही नहीं।

कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई आदमी कवि भी है और वैज्ञानिक भी। यह दुर्लभ घटना है। कोई व्यक्ति कवि और विज्ञानी दोनो हो। तब उसका व्यक्तितत्व खंडित होगा। तब वह यथार्थ में दो होगा, एक नहीं। जब वह कवि होता है तब वैज्ञानिक नहीं होता। अन्यथा उसका वैज्ञानिक उपद्रव करेगा। और जब वह वैज्ञानिक होता है तो अपने कवि को बिलकुल भूल जाता है। और

तब वह दूसरे जगत में प्रवेश करता है—जो धारण, विचार, तर्क, बुद्धि और गणित का जगत है। वह जगत ही अलग है। और जब वह कविता के जगत में विचारण करता है तो वह गणित नहीं, संगीत होता है। वहां धारणाएं नहीं होती, वहां शब्द होते है। लेकिन तरल शब्द, ठोस नहीं। वहां एक शब्द दूसरे शब्द में प्रवेश कर जाता है। वहां एक शब्द के अनेक अर्थ हो सकते है। और हो सकता है कोई भी अर्थ न हो। वहां व्याकरण खो जाता है। सिर्फ काव्य रहता है। यह और ही दुनिया हे।
विचारक और भावुक, ये दो कोटियां है। पहली विधि, जिसकी चर्चा अभी मैंने की, वैज्ञानिक मन के लिए थी। ''भक्ति मुक्त करती है।'' भावुक मन के लिए है। और याद रहे कि तुम्हें अपनी कोटी खोज लेनी है। कोई भी कोटी छोटी या बड़ी नहीं है। यह मत सोचो की बौद्धिक मन श्रेष्ठ है। या भावुक मन श्रेष्ठ है। नहीं वे सिर्फ कोटियां है। ऊंच-नीच की कोई बात नहीं है। इसलिए खोजों कि तुम्हारी कोटि तथ्यतः: क्या है।

दूसरी विधि भावुक कोटि के लोगो के लिए है। क्यों? क्योंकि भक्ति किसी और के प्रति होती है। और भक्ति अंधी होती है। भक्ति में दूसरा तुमसे ज्यादा महत्वपूर्ण होता है। यह श्रद्धा है। बुद्धिवादी किसी पर श्रद्धा नहीं कर सकता है। वह सिर्फ आलोचना कर सकता है। श्रद्धा नहीं। वह संदेह कर सकता है। भरोसा नहीं। और अगर कभी कोई बुद्धि प्रधान व्यक्ति आस्था के निकट आता है तो उसकी आस्था प्रामाणिक नहीं होती।

पहली बात तो यह कि वह किसी तरह अपनी आस्था के संबंध में अपने को राज़ी करता है। ऐसी आस्था कभी प्रामाणिक नहीं होती। वह प्रमाण खोजता है। दलील खोजता है। और वह पाता है कि दलीलें ठोस है, तो ही विश्वास करता है। लेकिन यही वह चूक जाता है। क्योंकि आस्था तर्क नहीं करती है और न आस्था प्रमाणों पर आधारित है। अगर प्रमाण उपलब्ध है। तो आस्था की जरूरत क्या है।

तुम सूरज में विश्वास नहीं करते हो, तुम आसमान में विश्वास नहीं करते हो, तुम बस उन्हें जानते हो। सूरज उग रहा है। इसमें विश्वास करने की क्या बात है? अगर कोई तुमसे पूछे कि क्या तुम सूरज उग रहा है। इसमें विश्वास करते हो, तो तुम यह नहीं कहते कि हां, मैं विश्वास करती हू और एक बड़ा विश्वासी हूं। तुम यही कहती हो कि सूरज उग रहा है। और मैं यह जानता हूं। विश्वास या अविश्वास का प्रश्न की नहीं है। क्यों ऐसा व्यक्ति भी है जिसे सूरज में विश्वास हो? ऐसा कोई नहीं है।

श्रद्धा का अर्थ है: बिना किसी प्रमाण के अज्ञात में छलांग।

यह कठिन है, बौद्धिक कोटि के मनुष्य के लिए यह कठिन है। क्योंकि तब पूरी चीज बेतुकी हो जाती है। पागलपन की हो जाती है। पहले प्रमाण चाहिए। अगर तुम कहते हो कि ईश्वर है और उसके प्रति समर्पण करना है, तो पहले ईश्वर को सिद्ध करना होगा।

लेकिन तब ईश्वरा एक प्रमेय हो जाता है; सिद्ध तो हो जाता है। पर व्यर्थ हो जाता है। ईश्वर को असिद्ध ही रहना है; अन्यथा वह किसी काम का न रहेगा। क्योंकि तब श्रद्धा अर्थहीन हो जाती है। अगर तुम एक सिद्ध किए हुए ईश्वर में विश्वास करते हो तो तुम्हारा ईश्वर ज्यामिति का एक प्रमेय मात्र है। कोई यूक्लिड के प्रेमियों में विश्वास नहीं करता; उसकी जरूरत नहीं थी। वह प्रमेय सिद्ध किए जा सकते है। और जो सिद्ध किया जा सकता है वह श्रद्धा के लिए आधार नहीं हो सकता।

एक अत्यंत रहस्यवादी ईसाई संत तरतुलियन ने कहा है कि मैं ईश्वर में इसलिए विश्वास करता हूं क्योंकि वह बेतुका है। अविश्वासी है। और यह ठीक कहता है। भावुक लोगों की दृष्टि यही है। तरतुलियन कहता है कि चूंकि उसे सिद्ध नहीं किया जा सकता इसलिए मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं।

और वह एक अर्थ में सही है; क्योंकि श्रद्धा का अर्थ है। किन्हीं कारणों के बिना अज्ञात में छलांग। और सिर्फ भावपूर्ण व्यक्ति ही यह कर सकता है।

भक्ति को छोड़ो; पहले प्रेम को समझो और तब तुम भक्ति को भी समझ सकोगे।

तुम किसी के प्रेम में पड़े हुए हो। अंग्रेजी में इसे फालिंग इन लव—प्रेम में गिरना कहते है। हम प्रेम में गिरना क्यों कहते है। कुछ नहीं गिरता है सिर्फ तुम्हारा सिर गिरता है। प्रेम में सिर के सिवाय और क्या गिरता है। तुम अपने सिरा से नीचे गिर जाते हो। इसी से हम इसे ''प्रेम में गिरना'' कहते है। भाषा बौद्धिक कोटि के लोग निर्मित करते है। उनके लिए प्रेम पागलपन है। विक्षिप्तता है। कोई प्रेम में गिर गया है। इसका मतलब हुआ कि अब वह कुछ भी कर सकता है। अब वह पागल हो गया है। बुद्धि उसे काम न आएगी। तुम उसके साथ तर्क न कर सकोगे। क्या तुम किसी प्रेमी के साथ तर्क कर सकते हो। लोग चेष्टा करते है। लेकिन कुछ हाथ नहीं आता।

तुम किसी के प्रेम में पड़ गए हो। हर कोई कहता है कि यह तुम्हारे योग्य नहीं है। या कि तुम मुसीबत मोल ल रहे हो, या कि तुम मुर्ख बन रहे हो, और इससे अच्छा प्रेम पात्र मिल सकता था। लेकिन यह सब कहने का तुम पर कोई असर न होगा। कोई दलील काम न आएगी। तुम प्रेम में हो; अब बुद्धि व्यर्थ हो गई। प्रेम की अपनी तर्क सरणी है।

दो प्रेमी मौन हो जाते है। और जब दो प्रेमी फिर बातचीत करने लग जाते है तो समझ लेना कि प्रेम विदा हो चुका है। कि वे फिर अजनबी हो गए है। जाओ और पति-पत्नियों को देखो। जब वे अकेले होते है तो वे किसी भी चीज के बारे में बातचीत करते रहते है। और वह दोनों जानते है कि बातचीत गैर-जरूरी है। लेकिन चुप रहना कितना कठिन है। इसलिए किसी क्षुद्र सी बात पर भी बात किए जाओ। ताकि संवाद चलता रहे।

लेकिन दो प्रेमी मौन हो जाये भाषा खो जायेगी; क्योंकि भाषा बुद्धि की चीज है। शुरूआत तो बच्चों जैसी बातचीत से होगी। लेकिन फिर वह नहीं रहेगी। तब वे मौन में संवाद करेंगे। उनका संवाद क्या है। उनका संवाद अतर्क्य है। वे अस्तित्व के एक भिन्न आयाम के साथ लयवद्ध हो जाते है। और वे उस लयबद्धता में सुखी अनुभव करते है। और अगर तुम उनसे पूछो कि उनका सुख क्या है तो वे उसे प्रमाणित नहीं कर सकते।

सेक्स और प्रेम में यही भेद है। अगर सिर्फ दो शरीर एक होते हों तो बहुत अड़चन नहीं है और उसमें पीड़ा भी नहीं है। यह बहुत सरल बात है; कोई पशु भी कर सकता है। लेकिन जब दो व्यक्ति प्रेम में मिलते है तो कठिनाई है, बहुत कठिनाई है। क्योंकि तब दो मनों को विसर्जित होना पड़ता है। अनुपस्थित होना पड़ता है। तभी वह स्थान निर्मित होता है। जिसमे प्रेम का फूल खिल सके।

प्रेम में होता क्या है? प्रेम में दूसरा महत्वपूर्ण हो जाता है। तुमसे ज्यादा महत्वपूर्ण। चीजें मेरे चारों और घूमती है। और मेरे लिए घूमती है। और केंद्र मैं हूं। बुद्धि सदा इसी भांति काम करती है।

तर्क सदा स्व-केंद्रित होता है। मन सदा अहं-केंद्रित होता है। मैं केंद्र हूं और शेष सब चीजें मेरे चारो और घूमती है, और मेरे लिए घूमती है। लेकिन केंद्र मैं हूं। बुद्धि सदा सी भांति काम करती है।

अगर तुम बुद्धि के साथ बहुत दूर तक चलोगे तो तुम उसी निष्कर्ष पर पहुंचोगे जिस पर बर्कले पहुंचा था। उसने कहा: केवल मैं हूं और शेष सब चीजें मेरे मन की धारणाएं भर है। मैं कैसे सिद्ध कर सकता हूं कि तुम सचमुच हो? हो सकता है, कि तुम बिलकुल न होओ। तुम एक सपना होओ। और मैं भी एक सपना होऊं और सपने में ही बोल रहा हूं। और हो सकता है कि तुम बिलकुल न होओ। मैं कैसे अपने को समझाऊं कि तुम सचमुच हो? हालांकि मैं तुमको छू सकता हूं लेकिन ऐसा छूना तो सपना में भी होता है। और सपने में भी मुझे किसी के छूने पर छूने की अनुभूति होती है। मैं तुम्हें चोट कर सकता हूं। और तुम रोओगे, लेकिन ऐसे में सपने में भी किसी को चोट कर मैं उस स्वप्न के व्यक्ति को रुला सकता हूं। यह भेद कैसे किया जाए कि जो व्यक्ति मेरे सामने है वह स्वप्न नहीं यथार्थ है? हो सकता है, वह काल्पनिक हो।

हृदय का मार्ग इसके विपरीत है। मैं खो जाता हूं और दूसरा प्रेम-पात्र यथार्थ हो जाता है। अगर तुम प्रेम को उसकी पराकाष्ठा पर पहुंचा दो तो वह भक्ति हो जाता है। अगर तुम्हारा प्रेम इस चरम बिंदु पर पहुंच जाए कि जहां तुम बिलकुल भूल जाओ कि मैं हूं। जहां तुम्हें अपना होश न रहे, और जहां दूसरा ही रह जाए, तो वही भक्ति है।

प्रेम भक्ति बन सकता है। प्रेम पहला चरण है, तभी भक्ति का फूल खिलता है। लेकिन हमारे लिए तो प्रेम भी दूर का तारा है। हमारे लिए सेक्स या काम ही सच्चाई है।

प्रेम की दो संभावनाएं है। प्रेम अगर नीचे गिरे तो काम बन जाता है। शारीरिक रह जाता है। और अगर प्रेम ऊपर उठे तो भक्ति बन जाता है। आत्मा की चीज बन जाता है। प्रेम दोनों के बीच में है। प्रेम के नीचे सेक्स का पाताल है। और उसके उपर भक्ति का अनंत आकाश है।

यदि तुम्हारा प्रेम गहरा हो तो दूसरा ज्यादा-ज्यादा अर्थपूर्ण हो जाता है—वह इतना अर्थपूर्ण हो जाता है कि तुम उसे अपना भगवान कहने लगते हो। यही कारण है कि मीरा कृष्ण को प्रभु कहे चली जाती है। न कृष्ण को कोई देख सकता है , न मीरास सिद्ध कर सकती है कि कृष्ण वहां है। लेकिन मीरा इसे सिद्ध करने में उत्सुक नहीं है। मीरा ने कृष्ण को अपना प्रेम-पात्र बना लिया है।

और याद रहे, तुम किसी यथार्थ व्यक्ति को अपना प्रेम पात्र बनाते हो या किसी कल्पना के व्यक्ति को, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। कारण यह है कि सारा रूपांतरण भक्ति के माध्यम से आता है। प्रेम-पात्र के माध्यम से नहीं। इस बात को सदा स्मरण रखो। कृष्ण नहीं भी हो सकते है। यह अप्रासंगिक है। प्रेम के लिए अप्रासंगिक है।

''भक्ति मुक्त करती है।''

इसलिए हमें प्रेम में ही स्वतंत्रता की झलक मिलती है। जब तुम प्रेम में होते हो तो तुम्हें सूक्ष्म ढंग की स्वतंत्रता का अहसास होता है। यह विरोधाभासी है; क्योंकि दूसरे तो वही देखेंगे कि तुम गुलाम हो गए हो। अगर तुम किसी के प्रेम में हो तो तुम्हारे इर्द-गिर्द के लोग सोचेंगे कि तुम एक दूसरे के गुलाम हो गए हो। लेकिन तुम्हें स्वतंत्रता की झलकें मिलने लगेंगी।

प्रेम मुक्ति है। क्यो? इसलिए कि अहंकार ही बंधन है। और कोई बंधन नहीं है। कल्पना करो कि तुम कारागृह में हो और उसके बाहर निकलने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन तुम्हारी प्रेमिका उस कारागृह में पहूंच जाये तो वह कारागृह तत्क्षण खो जायेगा। दीवारें तो जहां की ताह होंगी। लेकिन अब तुम्हें कैद न कर सकेंगी। तुम उन्हें बिलकुल भूल जा सकते हो। तुम एक दूसरे में डूब सकते हो और तुम एक दूसरे के उड़ने के लिए आकाश बन जा सकते हो। कारागृह विलीन हो गया; वह कारागृह अब कारागृह न रहा।

और यह भी हो सकता है कि तुम खुले आकाश के नीचे हो सर्वथा बंधनहीन, सर्वथा मुक्त; लेकिन न हो कि कारागृह में ही हो। क्योंकि तब तुम्हारे उड़ने के लिए आकाश न रहा। यह बाहर का आकाश काम न देगा। इस आकाश में पक्षी उड़ते है; लेकिन तुम न उड़ सकोगे। तुम्हारे उड़ने के लिए एक भिन्न आकाश की जरूरत है। चेतना के आकाश में जरूरत है। कोई दूसरा हूं तुम्हें वह आकाश दे सकता है। उसका पहला स्वाद दे सकता है। जब दूसरा तुम्हारे लिए अपने को खोलना है तो तुम उसमें प्रवेश करते हो, तभी तुम उड़ सकते हो।

प्रेम स्वतंत्रता है। लेकिन समग्र स्वतंत्रता नहीं। जब प्रेम भक्ति बनता है तो ही वह समग्र स्वतंत्रता बनता है। उसका मतलब है कि तुम पूर्णरूपेण समर्पण कर दिया।

इसलिए ये सूत्र भक्ति मुक्त करती है। उनके लिए जो भाव प्रधान है। रामकृष्ण को लो। अगर राम कृष्ण को देखो तो तुम्हें लगेगा कि वे काली के, मां के गुलाम है। वे उसकी आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं करते सकते है। लेकिन उनसे ज्यादा कौन स्वतंत्र हो सकता है।

रामकृष्ण जब पहले-पहले दक्षिणेश्वर मंदिर के पुजारी नियुक्त हुए तो उनका रंग-ढंग ही हैरान करने वाला था। मंदिर के ट्रस्टियों ने बैठक बुलायी और कहा के इस आदमी को निकाल बाहर करो। यह तो अभक्त जैसा व्यवहार करता है। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि रामकृष्ण पहले खुद फूल को सूँघते और तब उसे काली के चरणों में चढ़ाते। लेकिन यह बात कर्मकांड के विपरीत हो जाती है। सूंघा हुआ फूल देवी-देवताओं को नहीं चढ़ाया जा सकता ; वह तो झूठा हो गया। अशुद्ध हो गया। रामकृष्ण पहले खुद चखते थे। फिर काली को भोग लगाते थे। और वे पुजारी थे। तो ट्रस्टियों ने कहा कि ऐसा नहीं चल सकता है।

रामकृष्ण ने ट्रस्टियों को जवाब दिया कि तब मुझे काम से मुक्त कर दो। मैं मंदिर से निकल जाना पसंद करूंगा। लेकिन मैं चखे बीन मां को भोग नहीं लगा सकता हूं। मेरी मां ऐसा ही करती थी। जब भी वह कुछ भोजन बनाती थी तो पहले खुद चखती थी। तब मुझे खिलाती थी। मैं सूंघ बिना कोई फूल नहीं चढ़ा सकता। मैं निकल जाने के राज़ी हूं। और तुम मुझे रोक नहीं सकते। मैं कहीं भी पूजा कर लुंगा। क्योंकि मां सर्वत्र है। वह तुम्हारे मंदिर में ही सीमित नहीं है। मैं जहां भी जाऊँगा इसी तरह मां की पूजा करता रहूंगा।

ऐसा हुआ कि किसी मुसलमान ने रामकृष्ण से कहा कि अगर आपकी काली सर्वत्र है तो आप हमारी मस्जिद में क्यों नहीं आते। उन्होंने कहा कि ठीक है, मैं आऊँगा। और वे छह महीने मस्जिद में रहे। वे दक्षिणेश्वर को पूरी तरह से भूल गये। और मस्जिद के ही होकर रह गये। तब उनके मित्रों ने आग्रह किया की अब तो बहुत दिन हो गये घर चलो। और उन मित्र ने कहां की आप सही है। और अब आप जा सकते है, सही में मां हर जगह है।

कोई सोच सकता है कि रामकृष्ण गुलाम है; लेकिन उनकी भक्ति ऐसी प्रगाढ़ है कि अब प्रेम-पात्र सब जगह है। जब तुम नहीं होते तो प्रेम-पात्र सर्वत्र होता है। और जब तुम होते हो तो प्रेम-पात्र कहीं नहीं होता।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—30 (ओशो)

देखने के संबंध में कुछ विधियां:

विज्ञान भैरव तंत्र, विधि–30 देखने की कुछ विधिया

''आंखें बंद करके अपने अंतरस्थ अस्तित्व को विस्तार से देखो। इस प्रकार अपने सच्चे स्वभाव को देख लो।''

''आंखें बंद करके......।''
अपनी आंखें बंद कर लो। लेकिन आंखे बंद करना ही काफी नहीं है। समग्र रूप से बंद करना है। उसका अर्थ है कि आँखो को बंद करते उनकी गति भी रोक दो।

अन्यथा आंखें बाहर की ही चीजें देखती रहेगी। बंद आंखें भी चीजों को चीजों के प्रतिबिंबों को देखती है। असली चीजें तो नहीं रहती। लेकिन उनके चित्र, विचार, संचित यादें तब भी सामने तैरती रहेंगी। ये चित्र ये यादें भी बाहर की है। इसलिए जब ते वे तैरती रहेगी तब तक आंखों को समग्ररूपेण बंद मत समझो। समग्र रूप से बंद होने का अर्थ है कि अब देखने को कुछ भी नहीं है।
इस फर्क को ठीक सक समझ लो। तुम अपनी आंखें बद कर सकते हो; वह आसान है। हर कोई हर क्षण आंखें बंद करता है। रात में भी तुम आंखें बंद रखते हो। लेकिन इससे अंतरस्थ स्वभाव प्रकट नहीं हो जाएगा। आंखें ऐसे बंद करो कि देखने को कुछ भी न बचे—न बाहर का विषय बचे न भीतर का विषय बचे। तुम्हारे सामने बस खाली अँधेरा रह जाए, मानो तुम अचानक अंधे हो गए हो—यथार्थ के प्रति ही नहीं, स्वप्न–यथार्थ के प्रति भी।

इसमे अभ्यास की जरूरत पड़ेगी—एक लंबे अभ्यास की जरूरत पड़ेगी। यह अचानक संभव नहीं है। एक लंबे प्रशिक्षण की जरूरत है। आंखें बंद कर लो जब भी तुम्हें लगे कि यह आसानी से किया जा सकता है और जब भी तुम्हें समय हो आंखें बंद कर लो। और आंखों की सभी भीतरी हलन-चलन को भी बंद कर दो। किसी तरह की भी गति मत होने दो। आंखों की सारी गतिया बंद हो जानी चाहिए। भाव करो कि आंखें पत्थर हो गई है। और तब आंखों की पथराई अवस्था में ठहरे रहो। कुछ भी मत करो; मात्र स्थित रहो। तब किसी दिन अचानक तुम्हें यह बोध होगा कि तुम अपने भीतर देख रहे हो।

यह विधि भीतर से देखने के लिए बहुत सहयोगी है। और यह दर्शन तुम्हारी समग्र चेतना को, तुम्हारे समूचे अस्तित्व को रूपांतरित कर देता है। कारण यह है कि जब तुम अपने को भी भीतर से देखते हो तो तुम तुरंत संसार से भिन्न हो जाते हो। यह झूठा तादात्म्य कि मैं शरीर हूं, इसलिए है कि हम अपने शरीर को बाहर से देखते है। अगर कोई उसे भीतर से देख सके तो

द्रष्टा शरीर से भिन्न हो जाता है। और तब तुम अपनी चेतना को अंगूठे से सिर तक अपने शरीर के भीतर गतिमान कर सकते हो; अब तुम शरीर के भीतर परिभ्रमण कर सकते हो।

और एक बार तुम शरीर को अंदर से देखने और उसमें गति करने में समर्थ हो गए तो फिर बाहर जाना जरा भी कठिन नहीं है। एक बार तुम गति करना सिख गये, एक बार तुम ने जान लिया कि तुम शरीर से पृथक हो, तो तुम एक महा बंधन से मुक्त हो गए। अब तुम पर गुरूत्वाकर्षण की पकड़ न रही। अब तुम्हारी कोई सीमा न रही। अब तुम परिपूर्ण स्वतंत्र हो, अब तुम शरीर के बाहर जा सकते हो। अब बाहर-भीतर होना आसान है। अब तुम्हारा शरीर महज निवास स्थान है।

आंखें बंद करो और अपने अंतरस्थ प्राणी को विस्तार से देखो। और भीतर-भीतर शरीर के अंग-अंग में परिभ्रमण करो। सबसे पहले अंगूठे के पास जाओ। पूरे शरीर को भूल जाओ। और अंगूठे पर पहुंचो। वहां रुको और उसका दर्शन करो। फिर पाँव से होकर ऊपर बढ़ो; और ऐसे प्रत्येक अंग को देखो।

तब बहुत सी बातें घटित होंगी—बहुत बातें। तब तुम्हारा शरीर ऐसा संवेदनशील वाहन बन जाएगा जिसका तुम कल्पना नहीं कर सकते। तब अगर तुम किसी को स्पर्श करोगे तो तुम पूरे अपने हाथ में गति कर जाओगे और वह स्पर्श रूपांतरकारी होगा। गुरु के स्पर्श का यही अर्थ है। गुरु अपने किसी अंग में भी समग्र रूप से पहुंच सकता है। और वहां एकाग्र हो सकता है।

अगर तुम समग्र रूप से अपने किसी अंग कसे चले जाओ तो वह अंग जीवंत हो जाता है। इतना जीवंत कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। कि उसे क्या हो गया है। तब तुम अपनी आंखों में समग्ररूपेण समा सकते हो। इस तरह आँखो में समाकर अगर तुम किसी दूसरे की आंखों में झांकोगे तो तुम उसमें प्रवेश कर जाओगे उसकी गहनत्म गहराई को छू जाओगे।

गुरु अनेक काम करता है। उनमें से एक बुनियादी काम यह है कि तुम्हारा विश्लेषण करने के लिए तुम में गहरे उतरता है। और वह तुम्हारे अंधेरे तल घरों में प्रवेश करता है। तुम्हें भी अपने इन तल घरों का पता नहीं है। अगर गुरु कहेगा कि तुम्हारे भी तर कुछ चीजें छीपी पड़ी है। तो तुम उसका विश्वास भी नहीं करोगे। कैसे विश्वास करोगे? तुम्हें उनका पता ही नहीं है। तुम अपने मन के एक ही हिस्से को जानते हो। और वह उसका बहुत छोटा हिस्सा है। ऊपरी हिस्सा है। वह उसका पहली पर्त भर है। उसके पीछे नौ पर्तें छिपी है जिनकी तुम्हें कोई खबर नहीं है। लेकिन आंखों के द्वारा उनमें प्रवेश किया जा सकता है।

''आंखें बंद करके अपने अंतरस्थ अस्तितत्व को विस्तार से देखो।''

इस दर्शन का पहल चरण, बाहरी चरण अपने शरीर को भीतर से, अपने आंतरिक केंद्र से देखना है। केंद्र पर खड़े हो जाओ और देखो। तब तुम शरीर से पृथक हो जाओगे। क्योंकि द्रष्टा कभी दृश्य नहीं होता है, निरीक्षक अपने विषय से भिन्न होता है। अगर तुम अंदर से अपने शरीर को देख सको तो तुम कभी फिर इस भ्रम में नहीं पड़ोगे कि मैं शरीर हूं। तब तुम सर्वथा पृथक रहोगे। तब तुम शरीर में रहोगे। लेकिन शरीर नहीं रहोगे।

यह पहला चरण है। फिर तुम और गति कर सकते हो। तब तुम गति करने के लिए स्वतंत्र हो। शरीर से मुक्त होकर, तादात्म्य से मुक्त होकर तुम गति करने के लिए मुक्त हो। अब तुम अपने मन में, मन की गहराइयों में प्रवेश कर सकते हो। अब तुम उन नौ पर्तों में, जो भीतर है और अचेतन है, प्रवेश कर सकते हो।

यह मन की अंतरस्थ गुफा है। और अगर मन की गुफा में प्रवेश करते हो तो तुम मन से भी प्रथक हो जाते हो। तब तुम देखोगें कि मन भी एक विषय है जिसे देखा जा सकता है। और जो मन में प्रवेश कर रहा है वह मन से पृथक और भिन्न है।

अंतरस्थ अस्तित्व को विस्तार से देखो इसका यही अर्थ है—मन में प्रवेश करो। शरीर और मन दोनों के भीतर जाना है। और भीतर से उन्हें देखना है। तब तुम केवल साक्षी हो। और इस साक्षी में प्रवेश नहीं हो सकता। इसी से यह तुम्हारा अंतरतम है; यही तुम हो। जिसमें प्रवेश किया जा सकता है। इसी से यह तुम्हारा अंतरतम है; यही तुम हो। जिसमें प्रवेश किया जा सकता है। जिसे देखा जा सकता है। इसी से यह तुम्हारा अंतरतम है; यही तुम हो। जब तुम वहां आ गए जिससे आगे नहीं जाया जा सकता, जिसमें प्रवेश नहीं किया जा सकता, वह तुम नहीं हो। जब तुम वहां आ गए जिससे आगे नहीं जाया जा सकता है। जिस देखा जा सकता है। जिसमें प्रवेश नहीं किया जा सकता। तभी तुम समझना कि तुम अपने सच्चे स्व के पास, अपनी आत्मा के पास पहुंचे।

तुम साक्षी के साक्षी नहीं हो सकते। यह स्मरण रह। यह बात ही बेतुकी है। अगर कोई कहता है कि मैंने अपने साक्षी को देखा है तो वह गलत कहता है। यह बात ही अनर्गल है। यह अनर्गल क्यों है?

यह इसलिए है कि अगर तुम ने साक्षी आत्मा को देख लिया तो वह साक्षी आत्मा साक्षी आत्मा ही नहीं है। साक्षी वह है जिसने उसको देखा है। जिसे तुम देख सकते हो वह तुम नहीं हो। जिसका तुम निरीक्षण कर सकते हो वह तुम नहीं हो। जिसका तुम्हें बोध हो सकता है वह तुम नहीं हो।

लेकिन मन के पार एक बिंदु आता है। जहां तुम मात्र होते हो। बस हो। अब तुम अपने अखंड अस्तित्व को दो में नहीं बांट सकते। दृश्य और द्रष्टा में नहीं बांट सकते।

वहां केवल द्रष्टा है, मात्र साक्षी भाव है। इस बात को बुद्धि से तर्क से समझना बहुत कठिन है। क्योंकि वहां बुद्धि की सभी कोटियां समाप्त हो जाती है।

तर्क की इस कठिनाई के कारण चार्वाक ने, जिसने संसार के एक अत्यंत तर्कपूर्ण दर्शनशास्त्र की स्थापना की। कहा कि तुम आत्मा हो नहीं जान सकते हो, कोई आत्म-ज्ञान नहीं होता। और क्योंकि आत्म-ज्ञान नहीं होता है, इसलिए तुम कैसे कह सकते हो कि आत्मा है। जो भी तुम जानते हो वह आत्मा नहीं है। जो जानता है वह आत्मा है। जो जाना जाता है वह आत्मा नहीं हो सकती है। इसलिए तुम तर्क के अनुसार नहीं कह सकते कि मैंने अपनी आत्मा को जान लिया। वह बेतुका है, तर्कहीन है। तुम अपनी आत्मा को कैसे जान सकते हो? क्योंकि तब कौन जानेगा और किसको जानेगा?

ज्ञान का अर्थ है द्वैत—विषय और विषयी के बीच, ज्ञाता और ज्ञात के बीच। इसलिए चार्वाक कहता है। कि जो लोग कहते है कि हमने आत्मा को जान लिया है वे मूढ़ता की बात करते है। आत्म ज्ञान असंभव है। क्योंकि आत्मा निर्विवाद रूप से जानने वाला है। उसे जाना जाने वाले में बदला नहीं जा सकता। और तब चार्वाक कहता है कि अगर तुम आत्मा को नह जान सकते तो यह कैसे कह सकते हो कि आत्मा है।

चार्वाक जैसे लोग, जो आत्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते, अनात्म वादी कहलाते है। वे कहते है कि आत्मा नह है; जिसे जाना नहीं जा सकता है।

और वे तर्क के अनुसार सही है। अगर तर्क ही सब कुछ है तो वे सही है। लेकिन जीवन का यह रहस्य है कि तर्क सिर्फ आरंभ है, अंत नहीं है। एक क्षण आता है जब तर्क समाप्त हो जाता है। लेकिन तुम समाप्त नहीं होते। एक क्षण आता है जब तर्क खतम हो जाता है, लेकिन तुम तब भी होते हो। जीवन अतर्क्य है। यही कारण है कि यह समझना बहुत कठिन होता है कि सिर्फ साक्षी बचता है।

आकाश को देखो नीला दिखाई देता है। लेकिन आकाश नीला नहीं है। वह कास्मिक किरणों से भरा है। क्योंकि वहां कोई विषय वस्तु नहीं है। इसीलिए आकाश नीला दिखाई देता है। वे किरणें प्रतिबिंबित नहीं कर सकती, तुम्हारी आंखों तक नहीं आ सकती। अगर तुम अंतरिक्ष में जाओ और वहां कोई वस्तु न हो तो तुम्हें वहां अँधेरा ही अँधेरा मालूम होगा। हालाकि तुम्हारे बगल से किरण गुजर रही है। लेकिन तुम्हें अँधेरा ही मालूम होगा। प्रकाश को जानने के लिए विषय वस्तु का होना अनिवार्य है।

तो चार्वाक कहता है कह अगर तुम भीतर जाते हो और उस बिंदू पर पहुंचते हो जहां सिर्फ साक्षी बचता है। और कुछ देखने को नहीं बचता। तो तुम यह बात कैसे जानोंगे? देखने के लिए कोई विषय अवश्य चाहिए। तभी तुम साक्षित्व को जान सकते हो।

तर्क के अनुसार विज्ञान के अनुसार यह सही है। लेकिन यह अस्तित्वत: यही नहीं है। जो लोग सचमुच भीतर प्रवेश करते है वे ऐसे बिंदू पर पहुंचते है जहां मात्र चैतन्य के अतिरिक्त कोई भी विषय नहीं रहता है। तुम हो, लेकिन देखने को कुछ भी नहीं है—मात्र दृष्टा है। एक मात्र दृष्टा। अपने आस-पास किसी विषय के बिना शुद्ध विषयी होता है। जिस क्षण तुम इस बिंदू पर पहुंचते हो। तुम अपने अस्तित्व के परम लक्ष्य पर पहूंच गए। उसे तुम आदि कह सकते हो। उसे तुम अंत भी कह सकते हो। वह आदि और अंत दोनों है। वह आत्म-ज्ञान है।

भाषागत रूप से आत्म ज्ञान शब्द गलत है। क्योंकि भाषा में इसके संबंध में कुछ भी नह कहा जा सकता। जब तुम अद्वैत के जगत में प्रवेश करते हो, तो भाषा व्यर्थ हो जाती है। भाषा तभी तक सार्थक है जब तक तुम द्वैत के जगत में हो। द्वैत के जगत में भाषा अर्थ वान है; क्योंकि भाषा द्वैतवादी जगत की कृति है। उसका हिस्सा है। अद्वैत में प्रवेश करते ही भाषा व्यर्थ हो जाती है।

लाओत्से ने कहा है कि जो कहा जा सकता है वह सच नहीं हो सकता और जो सच है वह कहा नह जा सकता। वह मौन रह गया। जिंदगी के अंतिम दिनों तक उसने कुछ भी लिखने से इनकार किया। उसने कहा कि अगर मैं कुछ कहूं तो वह असत्य हो जाएगा। क्योंकि उस जगत के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता जहां एक ही बचता है।

''आंखे बंद करके अपने अंतरस्थ अस्तित्व को विस्तार से देखो।''

शरीर और मन दोनों को विस्तार से देखो।

''इस प्रकार अपने सच्चे स्वभाव को देख लो।''

तो इस विधि का प्रयोग कैसे करे? आंखों को समग्र रूप से बंद होना जरूरी है। अगर तुम इसका प्रयोग करते हो तो पहले आंखें बंद करो और फिर आंखों की सारी गति रोक दो। अपनी आंखों को पत्थर की तरह हो जाने दो, गति बिलकुल बंद करो और फिर आंखों की सारी गति रोक दो। इसका अभ्यास करते हुए किसी दिन अचानक, हठात तुम अपने अंदर देखने में समर्थ हो जाओगे। वे आंखें जो सतत बाहर देखने की आदी थी भीतर को मूड जाएंगी। और तुम्हें अपने अंतरस्थ की एक झलक मिल जायेगी। और तब कोई कठिनाई नहीं रहेगी।

एक बार तुम्हें अंतरस्थ की झलक मिल गई तो तुम जानते हो कि क्या किया जाए और कैसे गति की जाए। पहल झलक ही कठिन है। उसके बाद तुम्हें तरकीब हाथ लग जायेगी। जब वह एक खेल, एक युक्ति की बात हो जाएगी। किसी भी क्षण तुम अपनी आंखे बंद कर सकते हो।

बुद्ध मर रहे थे। यह उनके जीवन का अंतिम दिन था। और उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि कुछ पूछना हो तो पूछो। शिष्य रो रहे थे। आंसू बह रहे थे। उन्होंने बुद्ध से कहा कि आपने हमें इतना समझाया, अब पूछने को क्या बाकी है। बुद्ध की आदत थी कि वे एक बात को तीन बार पूछते थे। वे एक बार ही पूछकर चुप नहीं रह जाते थे। उन्होंने एक बार फिर पूछा। और फिर तीसरी बार भी पूछा। कि कोई प्रश्न तो नहीं है तुम्हारा।

कहा जाता है कि बुद्ध की इस आंतरिक यात्रा के चार चरण थे। पहले उन्होंने आंखें बंद की और तब उन्होंने आंखों को स्थिर कर लिया। उनमें कोई गति नहीं थी। उस समय यदि तुम रैम-रिकार्डिग कर प्रयोग करते, तो उसमे कोई ग्राफ नहीं बनता। आंखें स्थिर हो गई, यह दूसरी बात है। और तीसरी बात कि उन्होंने अपने शरीर का देखा और अंत में अपने केंद्र पर, मुल स्त्रोत पर पहुंच गए।

यह वजह है कि उनकी मृत्यु नह कहलाती। हम उसे निर्वाण कहते है। मृत्यु नहीं। यह फर्क है। सामान्यत: हम मरते है, क्योंकि हमारी मृत्यु घटित होती है। बुद्ध के साथ यह मृत्यु घटित नहीं हुई। मृत्यु के आने के पहले वे अपने स्त्रोत को वापस लौट गए थे। उनके मृत शरीर की ही मृत्यु हुई। वे वहां मौजूद नहीं थे।

बौद्ध परंपरा में कहा जाता है कि बुद्ध की कभी मृत्यु नहीं घटित हुई; मृत्यु उन्हें पकड़ ही नहीं पाई। मृत्यु ने उनका पीछा किया। जैसे कि वह सबका पीछा करती है। लेकिन वे उसके जाल में नहीं आए। मृत्यु उनके द्वारा छली गई। बुद्ध मृत्यु के पार खड़े होकर हंस रहे होंगे। क्योंकि मृत्यु मृत शरीर के पास खड़ी थी।

यह वही विधि है इसके चार चरण करो और आगे बढ़ो। और जब एक झलक मिल जाएगी तो पूरी चीज आसान और सरल हो जाएगी। तब तुम किसी भी क्षण अंदर जा सकते हो। और बाहर आ सकते हो—वैसे ही जैसे तुम अपने घर के बाहर-भीतर होते हो।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—21

तंत्र-सूत्र—विधि—31 (ओशो)

देखने के संबंध में दूसरी विधि:

तंत्र सूत्र–विधि –31 ओशो
देखने के संबंध में दूसरी विधि

''किसी कटोरे को उसके पार्श्व-भाग या पदार्थ को देखे बिना देखो। थोड़े ही क्षणों में बोध का उपलब्ध हो जाओ।''

किसी भी चीज को देखो। एक कटोरा या कोई भी चीज काम देगी। लेकिन देखने की गुणवत्ता भिन्न हो।

''किसी कटोरे को उसके पार्श्व-भाग या पदार्थ को देखे बिना देखो।''
किसी विषय को पूरा का पूरा देखो, उसे टुकड़ो में मत बांटो। क्यो? इसलिए कि जब तुम किसी चीज को हिस्सों में बांटते हो तो आंखों को हिस्सों में देखने का मौका मिलता है। चीज को उसकी समग्रता में देखो। तुम यह कह सकते हो।
मैं तुम सभी को दो ढंग से देख सकता हूं। मैं एक तरफ से देखता हुआ आगे बढ़ सकता हूं। पहले अ को देखू, तब ब को तब स को, और इस तरह आगे बढ़ूं। लेकिन जब मैं अ, और ब या स को देखता हूं तो मैं उपस्थित नहीं रहता हूं। यदि उपस्थित भी रहूँ तो किनारे पर, परिधि पर उपस्थित रहता हूं। और उस हालत में मेरी दृष्टि एकाग्र और समग्र नहीं रहती है। क्योंकि जब मैं ब को देखता हूं तो अ से हट जाता हूं। और जब से को देखता हूं तो आ पूरी तरह खो जाता है। मेरी निगाह से बाहर चला जाता है। इस समूह को देखने का एक ढंग यह है। लेकिन मैं इस पूरे समूह को व्यक्तियों में, इकाइयों में बांटे बगैर भी पूरे का पूरा देख सकता हूं।

इसका प्रयोग करो। पले किसी चीज को अंश-अंश में देखो। एक अंश के बाद दूसरे अंश को। और तब अचानक उसे पूरे का पूरा देखो। उसे टुकड़ो-टुकड़ो में मत बांटो। जब तुम किसी चीज को पूरे का पूरा देखते हो, तो आंखों को गति करने की जरूरत नहीं रहती। आंखों को गति करने का मौका न मिले, इस उदेश्य से ही ये शर्तें रखी गई है।

पदार्थ कटोरे का भौतिक भाग है। और रूप उसका अभौतिक भाग है। और तुम पदार्थ से अपदार्थ की और गति करते हो। यह सहयोगी होगा; प्रयोग करो। किसी व्यक्ति के साथ भी प्रयोग कर सकते हो। कोई पुरूष या किसी स्त्री खड़ी है, उसे देखो। उस स्त्री या पुरूष को पूरे का पूरा समग्ररतः: अपनी दृष्टि में समेटो।

शुरू-शुरू में यह कुछ अजीब सा लगेगा। क्योंकि तुम इसके आदी नहीं हो। लेकिन अंत में यह बहुत सुंदर अनुभव होगा। और तब यह मत सोचो कि शरीर सुंदर है या असुंदर, गोरा है या काला, मर्द है या औरत। सोचो मत; रूप को देखो, सिर्फ रूप को, पदार्थ को भूल जाओ।

''थोड़े ही क्षणों में बोध को उपलब्ध हो जाओ।''

तुम एकाएक स्वयं के प्रति, अपने प्रति बोध कसे भर जाओगे। किसी चीज को देखते हुए तुम अपने को जान लोगे। क्यों? क्योंकि आंखों को बाहर गति करने की गुंजाइश नहीं है। रूप को समग्रता में लिया गया है। इसलिए तुम उसके अंशों में नहीं जा सकते। पदार्थ को छोड़ दिया गया है; शुद्ध रूप को लिया गया है। अब तुम उसके पदार्थ सोना, चाँदी, लकड़ी वगैरह के सबंध में नहीं सोच सकते । रूप शुद्ध है; उसके संबंध में सोचना संभव नहीं है। रूप बस रूप है; उसके संबंध में क्या सोचोगे।

स्वय के प्रति जागना जीवन का सर्वाधिक आनंदपूर्ण क्षण है। यही समाधि है। जब पहली बार तुम स्वयं के बोध से भरते हो तो उसके जो सौंदर्य, जो आनंद होता है, उसकी तुलना तुम किसी भी जानी हुई चीज से नहीं कर सकते हो। सच तो यह है कि पहली बार तुम स्वयं होते हो, आत्म वान होते हो। पहली बार तुम जानते हो कि मैं हूं। तुम्हारा होना बिजली की कौंध की तरह पहल बार प्रकट होता है। लेकिन यह क्यों होता है।

तुम ने देखा होगा, खासकर बच्चों की किताबों में या किसी मनोविज्ञान की किताब में—मुझे आशा है कि हरेक ने कहीं न कही देखा होगा—एक बूढ़ी स्त्री का चित्र। इस चित्र में, जिन रेखाओं से वह चित्र बना है, उसके भीतर ही एक सुंदर युवती का चित्र भी छिपा है। चित्र एक ही है। रेखाएं भी वही है। लेकिन आकृतियां दो है—एक बूढ़ी स्त्री की और दूसरी युवती की।

उस चित्र की देखो तो एक साथ दोनों चित्रों को नहीं देख पाओगे। एक बार में उनमें से एक का ही बोध तुम्हें हो सकता है। अगर बूढी स्त्री दिखाई देगी तो वह जवान स्त्री नहीं दिखाई देगी, वह छिपी रहेगी। तुम उसे ढूंढना भी चाहोगे तो कठिन होगा; प्रयास ही बाधा बन जाएगा। कारण कि तुम बूढी स्त्री के प्रति बोधपूर्ण हो गए हो, तुम उसे न ढूंढ सकोगे। तो इसके लिए तुम्हें एक तरकीब करनी होगी।

बूढी स्त्री को एकटक देखो; युवती को बिलकुल भूल जाओ। बूढी स्त्री विदा हो जाएगी और उसके पीछे छिपी युवती को तुम देख लोगे। क्यों? अगर तुमने उसको ढूंढने की कोशिश की तो तुम चूक जाओगे।

तुम्हारी आंखें किसी एक बिंदू पर रुकी नहीं रह सकती है। अगर तुम बूढ़ी स्त्री के चित्र पर टकटकी लगाओगे, तो तुम्हारी आंखें थक जायेगी। तब वे अकस्मात उस चित्र से हटने लगेंगी। और इस हटने के क्रम में ही तुम दूसरे चित्र को देख लोगे। जो उस बूढी स्त्री के चित्र के बाजू में छिपा था। उन्हीं रेखाओं में छिपा था।

लेकिन चमत्कार यह है कि अब तुम्हें युवा स्त्री का बोध होगा तो बूढ़ी स्त्री तुम्हारी आंखों से ओझल हो जाएगी। पर अब तुम्हें पता है कि दोनों वहां है। शुरू में तो चाहे तुम को विश्वास नहीं होता कि वहां एक युवती छिपी है। लेकिन अब तो तुम जानते हो कि बूढी स्त्री छिपी है। क्योंकि तुम उसे पहले देख चुके हो। अब तुम जानते हो कि बूढ़ी स्त्री वहां है। लेकिन जब तक युवती को देखते रहोगे, तुम साथ-साथ बूढ़ी स्त्री को नहीं देख सकोगे। और जब बूढ़ी स्त्री को देखोगें तो युवती गायब हो जाएगी। दोनों चित्र युगपत नहीं देखे जा सकते। एक बार में एक ही देखा जा सकता है।

बाहर और भीतर को देखने के संबंध में भी यही बात घटित होती है, तुम दोनों को एक साथ नहीं देख सकते। जब तुम कटोरे या किसी चीज को देखते हो तो तुम बाहर देखते हो। चेतना बाहर गति करती है। नदी बाहर बह रही है। तुम्हारा ध्यान कटोरे पर है; उसे एकटक देखते रहो। यह टकटकी ही भीतर जाने की सुविधा बना देगी। तुम्हारी आंखें थक जाएंगी। वे गति करना चाहेंगी। बाहर जाने का कोई उपाय न देखकर नदी अचानक पीछे मुड़ जाएगी। वही एकमात्र संभावना बची है। तुम ने अपनी चेतना को पीछे लौटने के लिए मजबूर कर दिया। और जब तुम अपने प्रति जागरूक होगे तो कटोरा विदा हो जाएगा। कटोरा वहां नहीं होगा।

यही वजह है कि शंकर या नागार्जुन कहते है कि सारा जगत माया है। उन्होंने ऐसा ही जाना। जब हम अपने को जानते है तो जगत नहीं रहता। हकीकत में जगत माया नहीं है; वह है। लेकिन समस्या यह है कि तुम दोनों जागतों को एक साथ नहीं सकते हो। जब शंकर अपने में प्रवेश करते है, अपनी आत्मा को जान लेते है, जब वे साक्षी हो जाते है। तो संसार नहीं रहता है। वे भी सही है। वे कहते है वह माया है; यह भासता है, है नहीं।

तो तथ्य के प्रति जागों। जब तुम संसार को जानते हो तो तुम नहीं हो। तुम हो, लेकिन प्रच्छन्न हो; और तुम विश्वास नहीं कर सकते कि मैं प्रच्छन्न हूं। तुम्हारे लिए संसार अतिशय मौजूद है। और अगर तुम अपने को सीधे देखने की कोशिश करोगे तो यह कठिन होगा। प्रयत्न ही बाधा बन जा सकता है।

इस लिए तंत्र कहता है कि अपनी दृष्टि को कहीं भी संसार में, किसी भी विषय पर स्थित करो। और वहां से मत हटो। वहां टिके रहो। टिके रहने का यह प्रयत्न ही सह संभावना पैदा कर देगा कि चेतना प्रतिक्रमण करने लगे। पीछे लौटने लगे। पीछे लौटने लगे। तब तुम स्वयं के प्रति बोध से भरोंगे।

लेकिन जब तुम स्वयं के प्रति जागोगे तो कटोरा नहीं रहेगा। कटोरा तो है लेकिन वह तुम्हारे लिए नहीं रहेगा। इस लिए शंकर कहते है कि संसार माया है। जब तुम स्वयं को जान लेते हो तो जगत नहीं रहता है। स्वप्नवत विलीन हो जाता है।

लेकिन चार्वाक, ऐपिकुरस और मार्क्स, वे भी सही है। वे कहते है कि जगत सत्य है। और आत्मा मिथ्या है। वह कहीं मिलती नहीं है। वे कहते है विज्ञान सही है। विज्ञान कहता है कि केवल पदार्थ है, केवल विषय है; विषयी नहीं है। वे भी सही है। क्योंकि उनकी आंखे अभी विषय पर टिकी है। वैज्ञानिक का ध्यान निरंतर विषयों से बंधा होता है। वह आत्मा को बिलकुल भूल बैठता है।

शंकर और मार्क्स दोनों एक अर्थ में सही है। और एक अर्थ में गलत है। अगर तुम संसार से बंधे हो, अगर तुम्हारी दृष्टि संसार पर टीकी है। तो आत्मा माया मालूम होगी। स्वप्न वत लगेगी। और अगर तुम भीतर देख रहे हो तो संसार स्वप्नवत हो जाएगा। संसार और आत्मा दोनों सत्य है। लेकिन दोनों के प्रति युगपत सजग नहीं हुआ जा सकता। यही समस्या है, और इसमे कुछ भी नहीं किया जा सकता। या तो तुम बूढी स्त्री से मिलोंगे या युवती से। उनमें से एक सदा माया रहेगी।

यह विधि सरलता से उपयोग की जा सकती है। और यह थोड़ा समय लेगी। लेकिन यह कठिन नहीं है। एक बार तुम चेतना की प्रतिगति को, पीछे लौटने की प्रक्रिया को ठीक से समझ लो, तो इस विधि का प्रयोग कहीं भी कर सकते हो। किसी बस या रेलगाड़ी से यात्रा करते हुए भी यह संभव है। कही भी संभव है। और कटोरा या किसी खास विषय की जरूरत नहीं है। किसी भी चीज से काम चलेगा। किसी भी चीज को एकटक देखते रहो। देखते ही रहो। और अचानक तुम भीतर मुड़ जाओगे और रेलगाड़ी या बस खो जाएगी।

निश्चित ही तब तुम अपनी आंतरिक यात्रा से लौटोगे तो तुम्हारी बाहरी यात्रा भी काफी हो चुकेगी। लेकिन रेलगाड़ी खो जायेगी। तुम एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन पहुंच जाओगे। और उनके बीच रेलगाड़ी नहीं, अंतराल रहेगा। रेलगाड़ी तो थी; अन्यथा तुम दूसरे स्टेशन पर कैसे पहुंचते। लेकिन वह तुम्हारे लिए नहीं थी।

जो लोग इस विधि का प्रयोग कर सकते है वह इस संसार में सरला से रहा सकते है। याद रहे, वे किसी भी क्षण किसी भी चीज को गायब करा सकते है। तुम अपनी पत्नी या अपने पति से तंग आ गए हो, तुम उसे विलीन करा सकते हो। तुम्हारी पत्नी तुम्हारे बाजू में ही बैठी है, और वह नहीं है। यह माया हो गई है। प्रच्छन्न हो गई है। सिर्फ टकटकी बांधकर और अपनी चेतना को भीतर ले जाकर उसे तुम अपने लिए अनुपस्थित कर सकते हो। और ऐसा कई बार हुआ है।

मुझ सुकरात की याद आती है, उसकी पत्नी जेनथिप्पे उसके लिए बहुत चिंतित रहा करती थी। और कोई भी पत्नी उसकी जगह वैसे ही परेशान रहती। सुकरात को पति के रूप में बर्दाश्त कना महा कठिन काम है। सुकरात शिक्षक के रूप में ठीक है; लेकिन पति के रूप में नहीं।

एक दिन की बात है, और इस घटना के चलते सुकरात की पत्नी दो हजार वर्षों से निरंतर निंदित रही है। लेकिन मेरे विचार में यह निंदा उचित नहीं है। उसने कोई भूल नहीं की थी। सुकरात बैठा था और उसने इस विधि जैसा ही कुछ किया होगा। इसका उल्लेख नहीं है; यह मरा अनुमान है। उसकी पत्नी उसके लिए ट्रे में चाय लेकिर आई। उसने देखा सुकरात वहां नहीं है। और इसलिए, कहा जाता है कि, उसने सुकरात के चेहरे पर चाय उड़ेल दी। और अचानक वह वापस आ गया। आजीवन उसके चेहरे पर जलने के दाग पड़े रहे।

इस घटना के कारण सुकरात की पत्नी बहुत निंदित हुई। लेकिन कोई नहीं जानता है कि सुकरात उस क्या कर रहा था। क्योंकि कोई पत्नी अचानक ऐसा नहीं कर सकती। उसकी कोई जरूरत नहीं है। उसने अवश्य कुछ किया होगा। कोई ऐसी बात अवश्य हुई होगी। जिस वजह से जेनथिप्पे को उस पर चाय उड़ेल देनी पड़ी। वह जरूर किसी आंतरिक समाधि में चला गया होगा। और गरम चाय की जलन के कारण समाधि से वापस लोटा होगा। इस जली के कारण ही उसकी चेतना लौटी होगी। ऐसा हुआ होगा, यह मेरा अनुमान है। क्योंकि सुकरात के संबंध में ऐसी ही अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है।

एक बार ऐसा हुआ कि सुकरात अड़तालीस घंटे तक लापता रहा। सब जगह उसकी खोजबीन की गई। सारा एथेंस सुकरात को तलाशता रहा। लेकिन वह कहीं नहीं मिला। और जब मिला तो वह नगर से बहुत दूर किसी वृक्ष के नीचे खड़ा था। उसका आधा शरीर बर्फ से ढक गया था। बर्फ गिर रही थी और वह बर्फ हो गया था। वह खड़ा था और उसकी आंखें खुली थी। लेकिन वे आंखें किसी भी चीज को देख नहीं रही थी।

जब लोग उसके चारों और जमा हो गए और उन्होंने उसकी आंखों में झाँका तो उन्हें लगा कि वह मर गया है। उसकी आंखें पत्थर जैसी हो गई थी। वे देख रही थी पर किसी खास चीज को नहीं देख रही थी। वे स्थिर थी, अचल थी। फिर लोगों ने उसकी छाती पर हाथ रखा और तब उन्हें भरोसा हुआ कि वह जीवित है। उसकी छाती हौले-हौले धड़क रही थी। तब उन्होंने उसे हिलाया-डुलाया और उसकी चेतना वापस लौटी।

होश में आने पर उससे पूछताछ की गई। पता चला कि अड़तालीस घंटों से वह यहां था और उसे इन घंटों का पता ही नी चला। मानो ये घंटे उसके लिए घटित नहीं हुए। इतनी देर वह देश काल से इस जगत में नहीं था। तो लोगों ने पूछा कि तुम इतनी देर से क्या कर रहे थे। हम तो समझे कि तुम मर गए। अड़तालीस घंटे।

सुकरात ने कहा: ''मैं तारों को एकटक देख रहा था और तब अचानक ऐसा हुआ कि तारे खो गए। और तब, मैं नहीं कह सकता, सारा संसार ही विलीन हो गया। लेकिन शीतल, शांत और आनंदपूर्ण अवस्था में रहा कि अगर उसे मृत्यु कहा जाए तो वह मृत्यु हजारों जिंदगी के बराबर है। अगर यह मृत्यु है तो मैं बार-बार मृत्यु में जाना पसंद करूंगा।

संभव है, यह बात उसकी जानकारी के बिना घटित हुई हो; क्योंकि सुकरात ने योगी था न तांत्रिक। सचेतन रूप से वह किसी आध्यात्मिक साधना से संबंधित नहीं था। लेकिन वह बड़ा चिंतक था। और हो सकता है यह बात आकस्मिक घटित हुई हो कि रात में वि तारों को देख रहा हो और अचानक उसकी निगाह अंतर्मुखी हो गई हो।

तुम भी यह प्रयोग कर सकते हो। तारे अद्भुत है और सुंदर है। जमीन पर लेट जाओ, अंधेरे आसमान को देखो और तब अपनी दृष्टि को किसी एक तारे पर स्थिर करो। उस पर अपने को एकाग्र करो। उस पर टकटकी बाँध दो। अपनी चेतना को समेटकर एक ही तारे को साथ जोड़ दो; शेष तारों को भूल जाओ। धीरे-धीरे अपनी दृष्टि को समेटो, एकाग्र करो।

दूसरे सितारे दूर हो जाएंगे। और धीरे-धीरे विलीन हो जायेगे। और सिर्फ एक तारा बच रहेगा। उसे एकटक देखते जाओ। देखते जाओ। एक क्षण आएगा जब वह तारा भी विलीन हो जाएगा। और जब वह तारा विलीन होगा तब तुम्हारा स्वरूप तुम्हारे सामने प्रकट हो जाएगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—21

तंत्र-सूत्र—विधि—32 (ओशो)

देखने के संबंध में तीसरी विधि:

''किसी सुंदर व्यक्ति या सामान्य विषय को ऐसे देखो जैसे उसे पहली बार देख रहे हो।''

''किसी सुंदर व्यक्ति या सामान्य विषय को ऐसे देखो जैसे उसे पहली बार देख रहे हो।''
पहले कुछ बुनियादी बातें समझ लो, तब इस विधि का प्रयोग कर सकते हो। हम सदा चीजों को पुरानी आंखों से देखते है। तुम अपने घर आते हो तो तुम उसे देखे बिना ही देखते हो। तुम उसे जानते हो, उसे देखने की जरूरत नहीं है। वर्षों से तुम इस घर में सतत आते रहे हो। तुम सीधे दरवाजे के पास आते हो, उसे खोलते हो और अंदर दाखिल हो जाते हो। उसे देखने की क्या जरूरत है?

यह पूरी प्रक्रिया यंत्र-मानव जैसी, रोबोट जैसी है। पूरी प्रक्रिया यांत्रिक है, अचेतन है। यदि कोई चूक हो जाए ताले में कुंजी न लेग, तो तुम ताले पर दृष्टि डालते हो। कुंजी जब जाए तो ताले को क्या देखना।
यांत्रिक आदत के कारण, एक ही चीज को बार-बार दुहराने के कारण तुम्हारी देखने की क्षमता नष्ट हो जाती है। तुम्हारी दृष्टि का ताजापन जाता रहता है। सच तो यह है कि तुम्हारी आँख का काम ही खत्म हो जाता है। इस बात को ख्याल में रख लो तो अच्छा। तुम बुनियादी रूप से अंधे हो जाते हो। आँख की जरूरत न रही।

स्मरण करो कि तुमने अपनी पत्नी को पिछली दफा कब देखा। संभव है, तुम्हें अपनी पत्नी या पति को देखे वर्षों हो गए हो। हालांकि दोनों साथ ही रहते हो। कितने वर्ष हो गये एक दूसरे को देखे। तुम एक दूसरे पर भागती नजर डालकर निकल जाते हो। लेकिन कभी उसे देखते नहीं। पूरी निगाह नहीं डालते। तो जाओ और अपनी पत्नी या पति को ऐसे देखो जैसे कि पहली बार देख रहे हो। क्यों?

क्योंकि जब तुम पहली बार देखते हो तो तुम्हारी आंखों में ताजगी होती है। तुम्हारी आंखें जीवंत होती है। समझो कि तुम रास्ते से गुजर रहे हो। एक सुंदर स्त्री सामने से आती है। उसे देखते ही तुम्हारी आंखें सजीव हो उठती है। दीप्त बन जाती है। उनमें अचानक एक ज्योति जलने लगती है। हो सकता है, यह स्त्री किसी की पत्नी हो। उसका पति उसे नहीं देखना चाहेगा। वह इस स्त्री के प्रति वैसे ही अंधा है जैसे तुम अपनी पत्नी के प्रति अंधे हो। क्यो? क्योंकि पहली बार ही आंखों की जरूरत पड़ती है। दूसरी बार उतनी नहीं और तीसरी बार बिलकुल नहीं। कुछ पुनरूक्तियां के बाद हम अंधे ही जीते है।

जरा होश से देखो। जब तुम अपने बच्चें से मिलते हो, क्या तुम उन्हें देखते भी हो? नहीं, तुम उन्हें नहीं देखते। नहीं देखने की आदत आंखों को मुर्दा बना देती है। आंखें ऊब जाती है। थक जाती है। उन्हें लगता है कि पुरानी चीज को ही बार-बार क्या देखना।

सच्चाई यह है कि कोई भी पुरानी नहीं है, तुम्हारी आदत के कारण ऐसा दिखाई पड़ता है। तुम्हारी पत्नी वही नहीं है। जो कल थी; हो नहीं सकती अन्यथा वह चमत्कार है। दूसरे क्षण कोई भी चीज वही नहीं रहती जो थी। जीवन एक प्रवाह है। सब कुछ बहा जा रहा है। कुछ भी तो वही नहीं है।

वही सूर्य कल नहीं होगा। जो आज ऊगा है। ठीक-ठीक अर्थों में सूरज कल वही नहीं रहेगा। हर रोज वह नया है। हर रोज उसमें बुनियादी बदलाहट हो रही है। आकाश भी कल वही नहीं था। आज की सुबह कल नहीं आयेगी। और प्रत्येक सुबह की अपनी निजता है, अपना व्यक्तितत्व है। आसमान और उसके रंग फिर उसी रूप में प्रकट नहीं होंगे।

लेकिन तुम ऐसे जीते हो जैसे कि सब कुछ वही का वही है। कहते है कि आसमान के नीचे कुछ भी नया नहीं है। लेकिन सचाई यह नहीं है। लेकिन सच्चाई यह है कि आसमान के नीचे कुछ भी पुराना नहीं है। सिर्फ तुम्हारी आंखें पुरानी हो गई है। चीजों की आदती हो गई है। तब कुछ नहीं है।

बच्चों के लिए सब कुछ नया है। इसलिए उन्हें सब कुछ उत्तेजित करता है। सुबह का सूरज, समुद्र-तट पर एक रंगीन पत्थर। किसी लकड़ी को टुकड़े को देख कर भी वह मचल उठता है। और तुम स्वंय भगवान को भी अपने घर आते देख कर भी उत्तेजित नहीं होते। तुम कहोगे, कि मैं उन्हें जानता हूं, मैंने उनके बारे में पढ़ा है। बच्चे उत्तेजित होते है। क्योंकि उनकी आंखें नई और ताजा है। और हरेक चीज एक नई दुनिया है, नया आयाम है। बच्चों की आंखों को देखो। उनकी ताजगी उनकी प्रभा पूर्ण सजीवता, उनकी जीवंतता को देखो। वे दर्पण जैसी है—शांत, किंतु गहरे जाने वाली और ऐसी आंखें ही भीतर पहुंच सकती है।

यह विधि कहती है: ''किसी सुंदर व्यक्ति या सामान्य विषय को ऐसे देखो जैसे उसे पहली बार देख रहे हो।''

कोई भी चीज काम देगी। अपने जूतों को ही देखो। तुम वर्षों से उनका इस्तेमाल कर रहे हो। आज उन्हें ऐसे देखो जैसे कि पहली बार देख रहे हो और फर्क को समझो। तुम्हारी चेतना की गुणवत्ता अचानक बदल जाती है।

पता नहीं, तुम ने वान गाग का अपने जूते का बना हुआ चित्र देखा है या नहीं। यह एक अति दुर्लभ चित्र है। एक पुराना जुता है—थका हुआ, उदास, मानो मृत्यु के मुंह में हो। यह एक महज फटा-पुराना जूता है। लेकिन उसे देखो, उसे महसूस करो। यह इतना दुःखी है, बिलकुल थका-मांदा है, जर्जरित है, कि बूढे आदमी की तरह यह बूढा जूता प्रार्थना कर रहा है कि है परमात्मा, मुझे दुनियां से उठा लो। सर्वाधिक मौलिक चित्रों में एक चित्र की गिनती है।

वान गाग के चित्र को गोर से देखो, और तब तुम्हें पता चलेगा कि उसे जूते में क्या–क्या दिखाई पडा था। उसमें सब कुछ है—उसके पहनने वाले का संपूर्ण जीवन-चरित्र। लेकिन उसने यह कैसे देख होगा?

चित्रकार होने के लिए बच्चे की दृष्टि की ताजगी फिर से प्राप्त करनी होती है। तभी वह किसी चित्र को देख सकता है। छोटी से छोटी चीज को भी देख सकता है। और केवल वही देख सकता है।

सिझान ने एक कुर्सी का चित्र बनाया है—महज मामूली कुर्सी का। और तुम हैरान होगे कि एक कुर्सी का क्या चित्र बनाना। उसकी जरूरत क्या है। लेकिन उसने उस चित्र पर महीनों काम किया। तुम उस कुर्सी को देखने के लिए एक क्षण भी नहीं देते

और सिझान ने उस पर महीनों काम किया। कारण कि वह कुर्सी को देख सकता था। कुर्सी के अपने प्राण है। उसकी अपनी कहानी है। उसके अपने सुख दुःख है। वह जिंदगी से गुजरी है। उसने जिंदगी देखी है। उसके अपने अनुभव है। अपनी स्मृतियां है। सिझान के चित्र में ये सब अभिव्यक्त हुआ है।

लेकिन क्या तुम अपनी कुर्सी को कभी देखते हो। नहीं, कोई नहीं देखता है और न किसी को ऐसा भाव ही उठता है।

कोई भी चीज चलेगी। वह विधि तुम्हारी आंखों को ताजा और जीवंत बना देगी। इतना ताजा और जीवंत कि वे भीतर मुड़ सकें और तुम अपने अंतरस्थ को देख लो। लेकिन ऐसे देखो, मानों पहली बार देख रहे हो। इस बात को ख्याल में रख लो कि किसी चीज को ऐसे देखना है जैसे कि पहली बार देख रहे हो। और तब अचानक किसी समय तुम चकित रह जाओगे। कि कैसा सौंदर्य भरा हुआ है संसार में।

अचानक होश से भर जाओ और अपनी पत्नी को देखो—ऐसे कि पहली बार देख रहे हो। और आश्चर्य नहीं कि तुम्हें उसके प्रति फिर उसी प्रेम की प्रतीति हो जिसका उद्रेक प्रथम मिलन में हुआ था। ऊर्जा की वह लहर, आकर्षण की वह पूर्णता तुम्हें अभिभूत कर देती है। लेकिन ''किसी सुंदर व्यक्ति या सामान्य विषय को ऐसे देखो जैसे कि पहली बार देख रहे हो।''

उससे क्या होगा। तुम्हारी दृष्टि तुम्हें वापस मिल जायेगी। तुम अंधे हो। अभी जैसे हो तुम अंधे हो। और वह अंधापन शारीरिक अंधेपन से ज्यादा घातक है; क्योंकि आँख के रहते हुए भी तुम नहीं देख सकते।

प्रत्येक क्षण अपने को अतीत से तोड़ते चलो। अतीत को अपने भीतर प्रवेश मत करने दो। अतीत को अपने साथ मत ढ़ोओ। अतीत को अतीत से ही छोड़ दो। और प्रत्येक चीज को ऐसे देखो जैसे कि पहली बार देख रहे हो। तुम्हें तुम्हारे अतीत से मुक्त करने की यह एक बहुत कारगर विधि है।

इस विधि के प्रयोग से तुम सतत वर्तमान में जीने लगोगे। और धीरे-धीरे वर्तमान के साथ तुम्हारी घनिष्ठता बन जाएगी। तब हरेक चीज नई होगी। और तब तुम हेराक्लाइटस के इस कथन को ठीक से समझ सकोगे। कि तुम एक ही नदी में दोबारा नहीं उतर सकते।

तुम एक ही व्यक्ति को दुबारा नहीं देख सकते। क्यो? क्योंकि जगत में कुछ भी स्थायी नहीं है। हर चीज नदी की भांति है—प्रवाहमान और प्रवाहमान। यदि तुम अतीत सक मुक्त हो जाओ और तुम्हें वर्तमान को देखने की दृष्टि मिल जाए तो तुम अस्तित्व में प्रवेश कर जाओगे। और यह प्रवेश दोहरा होगा। तुम प्रत्येक चीज में, उसके अंतरतम में प्रवेश कर सकोगे; और तुम अपने भीतर भी प्रवेश कर सकोगे।

वर्तमान द्वारा है। और सभी ध्यान किसी न किसी रूप में तुम वर्तमान से जोड़ने की चेष्टा करते हो। ताकि तुम वर्तमान में जी सको।

तो वह विधि सर्वाधिक सुंदर विधियों में से एक है और सरल भी है। और तुम इसका प्रयोग बिना किसी हानि क कर सकते हो।

तुम किसी गली से दूसरी बार गुजर रहे हो। लेकिन अगर उसे ताजा आंखों से देखते हो तो वही गली नई गली हो जाएगी। तब मिलने पर एक मित्र भी अजनबी मालूम पड़ेगा। ऐसे देखने पर तुम्हारी पत्नी ऐसी लगेगी जैसी पहली बार मिलने पर लगी थी। एक अजनबी। लेकिन क्या तुम कह सकते हो। कि तुम्हारी पत्नी या तुम्हारा पति तुम्हारे लिए आज भी अजनबी नहीं है। हो सकता है। तुम उसके साथ बीस, तीस या चालीस वर्षों से रह रहे हो। लेकिन क्या तुम कह सकते हो कि तुम उससे परिचित हो।

वह अभी भी अजनबी है। तुम दो अजनबी एक साथ रह रहे हो। तुम एक दूसरे की बाह्य आदतों को, बाहरी प्रतिक्रिया ओर को जानते हो; लेकिन अस्तित्व का अंतरस्थ अभी भी अपरिचित है, अस्पर्शित है। फिर अपनी पत्नी या पति को ताजा निगाह से देखो। मानो पहली बार देख रहे हो। नये-नये।

यह प्रयोग तुम्हारी दृष्टि को ताजगी से भर देगा। तुम्हारी आंखें निर्दोष हो जाएगी। वे निर्दोष आंखें ही देख सकती है। वे निर्दोष ही अंतरस्थ जगत में प्रवेश कर सकती है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—21

तंत्र-सूत्र—विधि—33 (ओशो)

देखने के संबंध में चौथी विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि—33 (ओशो)
देखने के संबंध में चौथी विधि:

''बादलों के पार नीलाकाश को देखने से शांति को सौम्यता को उपलब्ध होओ।''
मैंने इतनी बातें इसलिए बताई कि ये विधियां बहुत सरल है। और उन्हें प्रयोग करके भी तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। और तब तुम कहोगे, ये किस ढंग की विधियां है। तुम कहोगे कि इन विधियों को तो हम अपने आप ही कर सकते है। केवल आकाश को, बादलों के पर नीलाकाश को देखते-देखते कोई शांत हो जाए, आप्तकाम हो जाए।
बादलों के पार नीलाकाश को तुम देखते रह सकते हो, और कुछ भी घटित नहीं होगा। तब तुम कहोगे कि ये कैसी विधियां है। तुम कहोगे कि शिव के मन में जो भी आता है वे बोल देते है; उसमे कोई तर्क या बुद्धि नहीं है। यह कैसी विधि कि बादलों के पार नीलाकाश को देखते-देखते शांति को उपलब्ध हो जाओ।

लेकिन यदि तुम्हें मृत्यु, अर्थवत्ता और सिखावन के तीन सूत्र याद रहें तो यह विधि तुम्हें तुरंत भीतर की तरफ मुड़ने में सहायता देगी।

''बादलों के पार नीलाकाश को देखने मात्र से........।''

इस सूत्र से विचारना नहीं, देखना बुनियादी है। आकाश असीम है; उसका कहीं अंत नहीं है। उसे महज देखो। वहां कोई विषय वस्तु नहीं है। यही कारण है कि आकाश चुना गया है। आकाश कोई विषय नहीं है। भाषागत रूप से वह विषय है; लेकिन अस्तित्व में वि कोई विषय नहीं है। विषय वह है जिसका आरंभ और अंत हो। तुम किसी विषय के चारों और घूम सकते हो; लेकिन आकाश की परिक्रमा नहीं कर सकते। तुम आकाश में ही हो, लेकिन, लेकिन तुम आकाश के चारों और घूम नहीं सकते। तुम आकाश के विषय बन सकते हो। लेकिन आकाश तुम्हारा विषय नहीं बन सकता। आकाश में तो तुम झांक सकते हो; उसका कोई अंत नहीं है।

तो नीले आकाश को देखो। और देखते ही रहो। उसका अंत नहीं है; उसकी कोई सीमा नहीं है। और उसके संबंध में सोच-विचार मत करो। मत कहो कि यह कितना सुंदर है। मत को कि यह कितना मोहक है। उसके रंगों की प्रशंसा मत करो। उससे सोचना शुरू हो जाएगा। और सोचना शुरू करते ही देखना बंद हो जाता है; अब तुम्हारी आंखें अनंत आकाश में गति नहीं कर रहीं। इसलिए सिर्फ देखो। अनंत आकाश में गति करो। विचार मत करो। शब्द मत बनाओ। शब्द बाधा बन जाते है। इसलिए सिर्फ देखो। अनंत आकाश में गति करो। विचार मत करो। शब्द मत बनाओ। शब्द बाधा बन जाते है। इतना भी मत करो कि यह नीलाकाश है। इसे शब्द ही नहीं दो। इसे नीलाकाश का महज दर्शन रहने दो—निर्दोष दर्शन।

आकाश का कहीं अंत नहीं है। इसलिए तुम्हारे देखने का भी अंत नहीं आ सकता। तुम देखते जाओगे। देखते ही जाओगे। और क्योंकि वहां कोई विषय नहीं है। मात्र शून्य है, इसलिए अचानक तुम अपने प्रति जाग जाओगे। क्यो?

क्योंकि शून्य में इंद्रियाँ व्यर्थ हो जाती है। यदि कोई विषय हो तो इंद्रियाँ की सार्थकता है। अगर तुम किसी फूल को देख रहे हो तो वह किसी विषय को देखना हुआ। फूल है; लेकिन आकाश नहीं है।

हम किसे आकाश कहते है। उसे जो है नहीं। आकाश का अर्थ जगह या स्थान होता है। सभी चीजें आकाश में है। लेकिन आकाश स्वयं कोई चीज नहीं है। विषय नहीं है। आकाश शून्य है। रिक्तता है। खाली स्थान है। जिसमें विषय हो सकता है। आकाश स्वयं शुद्ध खालीपन है। इस शुद्ध खालीपन को देखो; इस शुद्ध रिक्तता को देखो।

इसलिए सूत्र कहता है कि बादलों के पार नीलाकाश को देखो। बादल आकाश नहीं है; वे आकाश में तैरते हुए विषय है। तुम बादलों को भी देख सकते हो; लेकिन उससे कुछ नहीं होगा। बादलों को नहीं, चाँद-तारों को भी नहीं , वरन विषय-शून्यता को देखना है, विराट रिक्तता को देखना है। उसे ही देखो। उससे होगा क्या?

शून्य में इंद्रियों के पकड़ने के लिए कोई विषय नहीं है। और जब पकड़ने को, चिपकने को कोई विषय न हो, तो इंद्रियाँ बेकार हो जाती है। और अगर तुम नीलाकाश को बिना सोचे-विचारे देखते ही चले जाओ तो अचानक किसी क्षण तुम्हें लगेगा कि सब कुछ विलीन हो गया है। सिर्फ शुन्य बचा है। और इस विलीनता में , इस शून्य में तुम्हें अपना बोध होगा। तुम अपने प्रति जाग जाओगे। रिक्तता को देखते-देखते तुम भी रिक्त हो जाओगे। क्यों? क्योंकि तुम्हारी आंखें दर्पण की भांति है। उनके सामने जो कुछ भी प्रकट होता है। दर्पण उसे प्रतिबिंबित कर देता है।

मैं तुम्हें देखता हूं; तुम दुःखी हो। और तब सहसा वह दुःख मुझे में प्रविष्ट हो जाता है। अगर कोई दुःखी आदमी तुम्हारे कमरे में प्रवेश करता है तो तुम भी दुःखी हो जाते हो। क्या हो जाता है? क्योंकि तुम्हारी आंखें दर्पण की भांति है। इस लिए वि दुःख तुममें प्रतिबिंबित हो जाता है। कोई व्यक्ति दिल खोलकर हंसता है और अचानक तुम भी हंसी से भर जाते हो।

लेकिन हुआ क्या? तुम दर्पण की तरह हो; तुम चीजों को प्रतिबिंबित करते हो। तुम कोई सुंदर चीज देखते हो; वह चीज तुममें प्रतिबिंबित हो जाती है। तुम कोई कुरूप चीज देखते हो; वह चीज भी तुममें प्रतिबिंबित हो जाती है। तुम जो कुछ भी देखते हो वह तुम्हारे भीतर गहरे रूप से प्रविष्ट हो जाता है; वह तुम्हारी चेतना का हिस्सा बन जाता है।

अगर तुम रिक्तता को, शून्य को देख रहे हो तो कुछ भी प्रतिबिंबित होने जैसा नहीं है। या है तो सिर्फ अनंत नीलाकाश है। और अगर यह असीम नीलाकाश तुममें प्रतिबिंबित हो जाए, अगर तुम अपने अंतस में उस आकाश को अनुभव कर सको। तो तुम शांत हो जाओगे। सौम्य हो जाओगे। आकाश शांत और सौम्य है। और अगर तुम शून्य को अनुभव कर सको—जहां नीलिमा। आकाश सब कुछ विलीन हो जाता है। तो तुम्हारे अंतस में भी वह शून्य प्रतिबिंबित होगा। और शून्य में मन कैसे सक्रिय रह सकता है? तनावग्रस्त कैसे हो सकते हो? शून्य में मन कैसे सक्रिय रह सकता है? शून्य में मन ठहर जाता है। और मन के विदा होते ही—मन जो तनाव और चिंता है, संगत-असंगत विचारों से भरा है—उसके विदा होते ही तुम शांति को उपलब्ध हो जाते हो।

एक बात और। शून्य जब अंतस में प्रतिबिंबित होता है, तो निर्वासना बन जाता है। अचाह बन जाता है। चाह ही तनाव है। चाह करते ही तुम चिंताग्रस्त हो जाते हो। तुम्हें एक सुंदर स्त्री दिखाई पड़ती है। और अचानक कामवासना पैदा हो जाती है। तुम्हें एक सुंदर मकान दिखाई पड़ता है और तुम उसे पाना चाहते हो। तुम्हारे पास से एक सुंदर कार निकलती है और तुम्हें इच्छा पकड़ती है कि मैं भी इस कार में बैठकर चलू। बस वासना पैदा हो गई। और वासना के साथ ही मन चिंतित हो उठता है। कि उसे कैसे पाया जाए, क्या किया जाए। मन आशावान हो उठता है या निराशा; लेकिन दोनों हालातों में वह सपने देख रहा है। कई बातें हो सकती है।

जब चाह पैदा होती है तो तुम उपद्रव में पड़ते हो। मन अनेक खंडों में टूट जाता है और अनेक योजनाएं, सपने और प्रक्षेपण शुरू हो जाते है। बस पागलपन शुरू हुआ। चाह पागलपन का बीज है।

लेकिन शून्य कोई विषय नहीं है। वह बस शून्य है। तुम शून्य को देखते हो तो कोई चाह नहीं पैदा होती। हो नहीं सकती है। तुम शून्य पर अधिकार करना नहीं चाहते; न तुम शून्य को प्रेम करना चाहते हो। शून्य में मन की सब गति रूक जाती है। कोई कामना नहीं उठती। और जहां चाह नहीं है वहीं शांति है। तुम सौम्य और शांत हो जाते हो। तुम्हारे भीतर सहसा शांति का विस्फोट होता है। तुम आकाश वत हो गए।

दूसरी बात कि तुम जिस चीज का भी मनन चिंतन करते हो, तुम उसके जैसे ही हो जाते हो। तुम वहीं हो जाते हो। क्योंकि मन अनंत रूप धारण कर सकता है। तुम जो भी चाहते हो, मन उसके ही रूप ले लेता है; तुम वही बन जाते हो। जो आदमी धन-दौलत के पीछे भागता है, उसका मन धन-दौलत ही बन जाता है। उसे हिलाओ तुम उसके भीतर रुपयों की झनझनाहट सुनोंगे। और कुछ नहीं सुनोंगे। तुम जो भी चाहते हो तुम वहीं हो जाते हो। इसलिए अपनी चाह के प्रति सावधान रहो; क्योंकि तुम वही हो जाते हो।

आकाश सर्वथा रिक्त है, खाली है। उससे ज्यादा रिक्त और क्या हो सकता है। और वह दूसरे तुम्हारे बिलकुल निकट है। उसके लिए कुछ खर्चा करना की भी जरूरत नहीं है। और उसे पाने के लिए तुम्हें हिमालय या तिब्बत या कहीं भी नहीं जाना है। विज्ञान ने, टेक्नोलॉजी ने सब कुछ नष्ट कर दिया है। लेकिन आकाश बचा हुआ है। तुम उसका उपयोग कर सकते हो। इसके पहले कि वे उसे नष्ट कर दें। तुम उसका उपयोग कर लो। किसी भी दिन वे उसे नष्ट कर देंगे।

उसे देखो, उसमे प्रवेश करो। उसमें गहरे डुबो। लेकिन याद रहे, यह देखना निर्विचार देखना हो। तब तुम अपने अंतस में उसी आकाश को अनुभव करोगे। उसी आयाम को अनुभव करोगे। तब वह विराट, वहीं नीलिमा, वही शून्य तुम्हारे भीतर होगा।

यही कारण है कि शिव कहते है: ''बादलों के पार नीलाकाश को देखने मात्र से शांति को, सौम्यता को उपलब्ध होओ।''

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—23

तंत्र-सूत्र—विधि—34 (ओशो)

देखने के संबंध में पांचवी विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि—34 (ओशो)

''जब परम रहस्यमय उपदेश दिया जा रहा हो, उसे श्रवण करो। अविचल, अपलक आंखों से; अविलंब परम मुक्ति को उपलब्ध होओ।''

''जब परम रहस्यम उपदेश दिया जा रहा हो। उसे श्रवण करो।''

यह एक गुह्म विधि है। इस गुह्म तंत्र में गुरु तुम्हें अपना उपदेश या मंत्र गुप्त ढंग से देता है। जब शिष्य तैयार होता है तब गुरु उसे उसकी निजता में वक परम रहस्य या मंत्र संप्रेषित करता है। वह उसके कान में चुपचाप कह दिया जाएगा। फुसफुसा दिया जाएगा। यह विधि उस फुसफुसाहट से संबंध रखती है।

''जब परम रहस्यमय उपदेश दिया जा रहा हो, उसे श्रवण करो।''

जब गुरु निर्णय करे कि तुम तैयार हो और उसके अनुभव का गुह्म रहस्य तुम्हें बताया जा सकता है। जब वह समझो कि वह क्षण आ गया है कि तुम्हें वह कहा जा सकता है। जो अकथनीय है। तब इस विधि का उपयोग होता है।

''अविचल, अपलक आंखों से; अविलंब परम मुक्ति को उपलब्ध होओ।''

जब गुरु अपना गुह्म ज्ञान या मंत्र तुम्हारे कान में कहे तो तुम्हारी आंखों को बिलकुल स्थिर रहना चाहिए। उनमें किसी तरह की भी गति नहीं होनी चाहिए।

इसका मतलब है कि मन निर्विचार हो, शांत हो। पलक भी नहीं हीले; क्योंकि पलक का हिलना आंतरिक अशांति का लक्षण है। जरा सी गति भी न हो। केवल कान बन जाओ। भीतर कोई भी हलचल न रहे। और तुम्हारी चेतना निष्क्रिय, खुली ग्राहक की अवस्था में रहे—गर्भ धारण करने की अवस्था में। जब ऐसा होगा, जब वह क्षण आएगा जिसमें तुम समग्रता: रिक्त होते हो, निर्विचार होते हो, प्रतीक्षा में होते हो—किसी चीज की प्रतीक्षा में नहीं। क्योंकि वह विचार कहना होगा, बस प्रतीक्षा में—

जब यह अचल क्षण, ठहरा हुआ क्षण घटित होगा, जब सब कुछ ठहर जाता है, समय का प्रवाह बंद हो जाता है, और चित समग्ररतः: रिक्त है, तब अ-मन का जन्म होता है। और अ-मन में ही गुरु उपदेश प्रेषित करता है।

और गुरु कोई लंबा प्रवचन नहीं देगा। वह बस दो या तीन शब्द ही कहेगा। उस मौन में उसके वे एक या दो या तीन शब्द तुम्हारे अंतर्तम में उतर जाएंगे। केंद्र में प्रविष्ट हो जायेंगे। और वे वहां बीज बनकर रहेंगे।

इस निष्क्रिय जागरूकता में, इस मौन में ''अविलंब परम मुक्ति को उपलब्ध होओ।''

मन से मुक्त होकर ही कोई मुक्त हो सकता है। मन से मुक्ति ही एकमात्र मुक्ति है; और कोई मुक्ति नहीं है, मन ही बंधन है, दासता है, गुलामी है।

इसलिए शिष्य को गुरु के पास उस सम्यक क्षण की प्रतीक्षा में रहना होगा जब गुरु उसे बुलाएगा और उपदेश देगा। उसे पूछना भी नहीं है। क्योंकि पूछने का मतलब चाह है, वासना है। उसे अपेक्षा भी नहीं करना है; क्योंकि अपेक्षा का अर्थ शर्त है। वासना है, मन है। उसे सिर्फ अनंत प्रतीक्षा में रहना है। और जब वह तैयार होगा। जब उसकी प्रतीक्षा समग्र हो जाएगी तो गुरु कुछ करेगा। कभी-कभी तो गुरु छोटी सी चीज करेगा और बात घट जाएगी।

और सामान्यत: यदि शिव एक सौ बारह विधियां भी समझा दें तो कुछ नहीं होगा। कुछ भी नहीं होगा। क्योंकि तैयारी नहीं है। तुम पत्थर पर बीज बोओ तो क्या होगा। उसमें बीज का दोष भी नहीं है। ऋतु के बाहर बीज बोने से कुछ नहीं होता है। उसमे बीज का दोष नहीं है। सम्यक मौसम चाहिए, सम्यक घड़ी चाहिए, सम्यक भूमि चाहिए। तो ही बीज जीवित हो उठेगा, रूपांतरित होगा।

तो कभी-कभी छोटी सी चीज काम कर जाती है। उदाहरण के लिए, लिंची ज्ञान को प्राप्त हुआ जब वह अपने गुरु के दालान में बैठा था। गुरु आया और हंसा। गुरु ने लिंची की आंखों में देखा और ठहाका मारकर हंस पडा। लिंची भी हंसा। गुरु के चरणों में सिर रखा और वहां से विदा हो गया।

लेकिन वह छह वर्षों से मौन प्रतीक्षा में था। वह दालान छह वर्षों तक उसका घर बना था। गुरु रोज आता था और लिंची को आँख उठाकर भी नहीं देखता था। और वह वहीं रहता था। दो वर्षों के बाद उसने पहली बार उसे देखा। जब और दो वर्ष बीते तो उसने उसकी पीठ थपथपाई। और लिंची प्रतीक्षा करता रहा, प्रतीक्षा करता रहा। छह वर्ष पूरे होने पर गुरु आया और उसकी आँख में आँख डालकर जोर से हंसा।

अवश्य ही लिंची ने इस विधि का अभ्यास किया होगा।

''जब परम रहस्यमय उपदेश दिया जा रहा हो। उसे श्रवण करो। अविचल, अपलक आंखों से; अविलंब परम मुक्ति को उपलब्ध होओ।''

गुरु ने देखा और हंसी को अपना माध्यम बनाया। वह महान सदगुरू था। सच तो यह है कि शब्द जरूरी नहीं थे। मात्र हंसी से काम हो गया। अचानक वह हंसी फूटी और लिंची के भीतर कुछ घटित हो गया। उसने सिर झुकाया, वह भी हंसा और विदा हो गया। उसने लोगो को बताया कि मैं अब नहीं हूं, कि मैं मुक्त हो गया।

वह अब नहीं था, यही मुक्ति का अर्थ है। तुम मुक्त नहीं होते, तुम अपने से मुक्त होते हो। और लिंची ने बताया की यह कैसे हुआ।

वह छह वर्षों तक प्रतीक्षा में रहा। यह लंबी प्रतीक्षा थी, धैर्य पूर्ण प्रतीक्षा थी। वह दालान में बैठा रहता था। गुरु रोज ही आता था। और वह ठीक घड़ी की प्रतीक्षा करता कि जब लिंची तैयार हो तो वह कुछ करे। और छह वर्षों तक प्रतीक्षा करते-करते तुम ध्यान में उतर ही जाओगे। और क्या करोगे। लिंची ने कुछ दिनों तक पुरानी बातों को सोचा विचारा होगा। लेकिन वह कब तक चलेगा।

अगर तुम मन को रोज-रोज भोजन न दो तो धीरे-धीरे मन ठहर जाता है। एक ही चीज को तुम कितने दिनों तक बार-बार चबाते रहोगे। वह बीती बातों पर विचार करता रहा। फिर धीरे-धीरे नया ईंधन न मिलने के कारण उसका मन ठहर गया। उसे न पढ़ने की इजाजत थी, न गपशप करने की। उसे घूमने-फिरने और किसी से मिलने की भी मनाही थी। उसे अपनी शारीरिक जरूरतों को पूरा करके चुपचाप इंतजार करना था। दिन आए और गए; रातें आई और गई। गर्मी आई और गई; जाड़ा आया और गया; वर्षा आई और गई। धीरे-धीरे वह समय की गिनती भूल गया। उसे पता नहीं था कि वह कहां कितने दिनों से टिका था।

और तब एक दिन सहसा गुरु आया और उसने लिंची की आंखों में झाँका। लिंची की आंखें भी सहसा ठहर गई होगी। अचल हो गई होगी। यही क्षण था। छह वर्षों की तपस्या के फल का। छह वर्ष लगे इसमें। उसकी आंखों में जरा भ गति नहीं थी। गति होती तो वह चूक जाता। सब कुछ मौन हो चुका था। और तब अचानक अट्टहास। गुरु पागल की तरह हंसने लगा। और वह हंसी लिंची के अंतर्तम से सुनी गई होगी। वहां तक पहुंच गई होगी।

तो जब लिंची से लोगो ने पूछा कि तुम्हें क्या हुआ तो उसने कहा: ''जब मेरे गुरु हंसे सहसा मुझे प्रतीति हुई कि सारी संसार एक मजाक है। उनकी हंसी में से संदेश था: सारा संसार महज एक मजाक है, नाटक है। उस प्रतीति के साथ गंभीरता विदा हो गई। अगर संसार एक मजाक है तो फिर कौन बंधन में है। और किसे मुक्त चाहिए।'' लिंची ने कहा कि, अब बंधन नहीं रहा। मैं सोचता था कि मैं बंधन में हूं। और इसलिए मैं बंधन-मुक्त होने की चेष्टा करता था गुरु की हंसी के साथ बंधन गिर गया।''

कभी-कभी इतनी छोटी-छोटी बातों से घटना घट गई है कि उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। ऐसी अनेक झेन कहानियां है। एक झेन गुरु मंदिर के घंटे की आवाज सुनकर संबोधि को प्राप्त हो गया। घंटे की आवाज सुनते-सुनते उसके भीतर कुछ चकनाचूर हो गया। एक झेन साध्वी पानी की बहँगी ढो रही थी। और ज्ञान को प्राप्त हो गई। एकाएक बांस टूट गया। और घड़े फूट गये। उसकी आवाज, घड़ों का फूटना पानी का बहना, और साध्वी आत्मोपलब्ध हो गई। क्या हुआ।

तुम बहुत से घड़े फोड़ दे सकते हो, और कुछ नहीं होगा। लेकिन साध्वी के लिए ठीक क्षण आ गया था। वह पानी भरकर लौट रही थी। उसके गुरु ने कहा था, आज रात मैं तुम्हें गुह्म मंत्र देने वाला हूं। इसलिए जाकर स्नान कर ले और मेरे लिए दो घड़े पानी ले आ। मैं भी स्नान कर लुंगा। और तब तुम्हें वह मंत्र बताऊंगा जिसके लिए तुम इंतजार कर रही थी।'' साध्वी जरूर आहलादित हो उठी होगी कि सौभाग्य का क्षण आ गया। उसने स्नान किया, घड़े भरे और उन्हें लेकिन वापस चली।

पूर्णिमा की रात थी। और जब वह नदी से आश्रम को जा रही थी कि राह में ही बांस टूट गया। और जब वह पहुंची तो गुरु उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। गुरु ने उसे देखा और कहा कि अब जरूरत न रही; घटना घट गई। अब मुझे कुछ नहीं कहना। तुमने पा लिया।

वह बूढी साध्वी कहा करती थी कि बांस के टूटने के साथ ही मेरे भीतर कुछ टूट गया, मेरे भीतर भी कुछ मिट गया। ये दो घड़े क्या फूटे मेरा शरीर ही टूट गिरा। मैने आकाश में चाँद को देखा और पाया कि मेरे भीतर सब कुछ शांत हो गया। और तब से मैं नहीं हूं। मुक्त या मोक्ष का यही अर्थ है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

तंत्र-सूत्र—विधि—35 (ओशो)

देखने के संबंध में छट्टी ओशो

''किसी गहरे कुएं के किनारे खड़े होकर उसकी गहराइ……….

''किसी गहरे कुएं के किनारे खड़े होकर उसकी गहराइयों में निरंतर देखते रहो—जब तक विस्मय-विमुग्ध न हो जाओ।''
ये विधियां थोड़े से फर्क के साथ एक जैसी है।

''किसी गहरे कुएं के किनारे खड़े होकर उसकी गहराईयों में निरंतर देखते रहो—जब तक विस्मय-विमुग्ध न हो जाओ।''

किसी गहरे कुएं में देखो; कुआं तुममें प्रतिबिंबित हो जाएगा। सोचना बिलकुल भूल जाओ; सोचना बिलकुल बंद कर दो; सिर्फ गहराई में देखते रहो। अब वे कहते है कि कुएं की भांति मन की भी गहराई है। अब पश्चिम में वे गहराई का मनोविज्ञान विकसित कर रहे है। वे कहते है कि मन कोई सतह पर ही नहीं है। वह उसका आरंभ भर है। उसकी गहराइयां है, अनेक गहराइयां है, छिपी गहराइयां है।
किसी कुएं में निर्विचार होकर झांको; गहराई तुममें प्रतिबिंबित हो जाएगी। कुआं भीतर गहराई का बाह्य प्रतीक है। और निरंतर झाँकते जाओ—जब तक कि तुम विस्मय विमुग्ध न हो जाओ। जब तक ऐसा क्षण न आए झाँकते चले जाओ, झाँकते ही चले जाओ। दिनों हफ्तों, महीनों झाँकते रहो। किसी कुएं पर चले जाओ। उसमे गहरे देखो। लेकिन ध्यान रहे कि मन में सोच-विचार न चले। बस ध्यान करो, गहराई में ध्यान करो। गहराई के साथ एक हो जाओ। ध्यान जारी रखो। किसी दिन तुम्हारे विचार विसर्जित हो जाएंगे। यह किसी क्षण भी हो सकता है। अचानक तुम्हें प्रतीत होगा। कि तुम्हारे भीतर भी वही कुआं है। वही गहराई है। और तब एक अजीब बहुत अजीब भाव का उदय होगा, तुम विस्मय विमुग्ध अनुभव करोगे।

च्वांत्सु अपने गुरु लाओत्से के साथ एक पुल पर से गुजर रहा था। कहा जाता है कि लाओत्से ने च्वांत्सु से कहा कि यहां रुको और यहां से नीचे देखो—और तब तक देखते रहो जब तक कि नदी रूक न जाये। और पुल न बहने लगे।

अब नदी बहती है, पुल कभी नहीं बहता। लेकिन च्वांत्सु को यह ध्यान दिया गया कि इस पुल पर रहकर नदी को देखते रहो। कहते है कि उसने पुल पर झोपड़ी बना ली और वहीं रहने लगा।

महीनों गुजर गये और वह पूल पर बैठकर नीचे नदी में झाँकता रहा, और उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगा जब नदी रूक जाए और पुल बहने लगे। ऐसा होने पर ही उसे गुरु के पास जाना था।

ओ एक दिन ऐसा ही हुआ। नदी ठहर गई और पुल बहने लगा।

यह कैसे संभव है? यदि विचार पूरी तरह ठहर जाये तो कुछ भी संभव है। क्योंकि हमारी बंधी बंधाई मान्यता कि कारण ही नदी बहती हुई मालूम पड़ती है। और पुल ठहरा हुआ। यह सापेक्ष है, महज सापेक्ष।

आइन्सटीन कहता है, भौतिकी कहती है कि सब कुछ सापेक्ष है। तुम एक तेज चलने वाली रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे हो। क्या होता है, पेड़ भाग रहे है। भागे जा रहे है। और अगर रेलगाड़ी में हलन-चलन न हो, जिससे रेल चलने का एहसास होता है। तो तुम खिड़की से बाहर देखो तो गाड़ी नहीं, पेड़ भागते हुए नजर आयेंगे।

आइन्सटीन ने कहा है कि अगर दो रेलगाड़ियाँ या दो अंतरिक्ष यान अंतरिक्ष में अगल-बगल एक ही गति से चले तो तुम्हें पता भी नहीं चलेगा कि वे चल रहे है। तुम्हें चलती गड़ी का पता इसलिए चलता है। क्योंकि उसके बगल में ठहरी हुई चीजें है। यदि वे न हों, या समझो कि पेड़ भी उसी गति से चलने लगे, तो तुम्हें गति का पता नहीं चलेगा। तुम्हें लगेगा कि सब कुछ ठहरा हुआ है। या दो गाड़ियाँ अगल-बगल विपरीत दिशा में भार रही हो तो प्रत्येक की गति दुगुनी हो जाएगी। तुम्हें लगेगा की वह बहुत तेज भाग रही है।

वे तेज नहीं भाग रही है। गाड़ियाँ वही है, गति वहीं है। लेकिन विपरीत दिशाओं में गति करने के कारण तुम्हें दुगुनी गति का अनुभव होता है। और अगर गति सापेक्ष है तो यह मन का कोई ठहराव है जो सोचता है कि नदी बहती है और पुल ठहरा हुआ है।

निरंतर ध्यान करते-करते च्वांत्सु को बोध हुआ कि सब कुछ सापेक्ष है। नदी बह रही है; क्योंकि तुम पुल को थिर समझते हो। बहुत गहरे में पुल भी बह रहा है। इस जगत में कुछ भी थिर नहीं है। परमाणु घूम रहे है; इलेक्ट्रॉन घूम रहे है। पुल भी अपने भीतर निरंतर घूम रहा है। सब कुछ बह रहा है। पुल भी बह रहा है। च्वांत्सु को पुल की आणविक संरचना की झलक मिल गई होगी।

अब तो वे कहते है कि यह जो दीवार थिर दिखाई देती हे। वह सच में थिर नहीं है। उसमे भी गति है। प्रत्येक इलेक्ट्रॉन भाग रहा है। लेकिन गति इतनी तीव्र है कि दिखाई नहीं देती। इसी वजह से तुम्हें थिर मालूम पड़ती है।

यदि यह पंखा अत्यंत तेजी से चलने लगे तो तुम्हें उसके पंख या उनके बीच के स्थान नहीं दिखाई देंगे। और अगर वह प्रकाश की गति से चलने लगा तो तुम्हें लगेगा की वह कोई थिर गोला है। क्योंकि इतनी तेज गति को आंखें पकड़ नहीं पाती।

च्वांत्सु को पुल के अणु-अणु की झलक जरूर मिल गई होगी। उसने इतनी प्रतीक्षा की कि उसकी बंधी बंधाई मान्यता विलीन हो गई। तब उसने देखा कि पुल बह रहा है और पुल का बहाव इतना तीव्र है कि उसकी तुलना में नदी ठहरी हुई मालूम हुई। तब च्वांत्सु भागा हुआ लाओत्से के पास गया। लाओत्से ने कहा कि ठीक है, अब पूछने की भी जरूरत नहीं है। घटना घट गई।

क्या घटना घटी? अ-मन घटित हुआ है।

यह विधि कहती है: ''किसी गहरे कुएं के किनारे खड़े होकर उसकी गहराईयों में निरंतर देखते रहो—जब तक विस्मय विमुग्ध न हो जाओ।''

जब तुम विस्मय-विमुग्ध हो जाओगे। जब तुम्हारे ऊपर रहस्य का अवतरण होगा। जब मन नहीं बचेगा। केवल रहस्य और रहस्य का माहौल बचेगा। तब तुम स्वयं को जानने में समर्थ हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—23

तंत्र-सूत्र—विधि—36 (ओशो)

देखने के संबंध में सातवीं ओशो

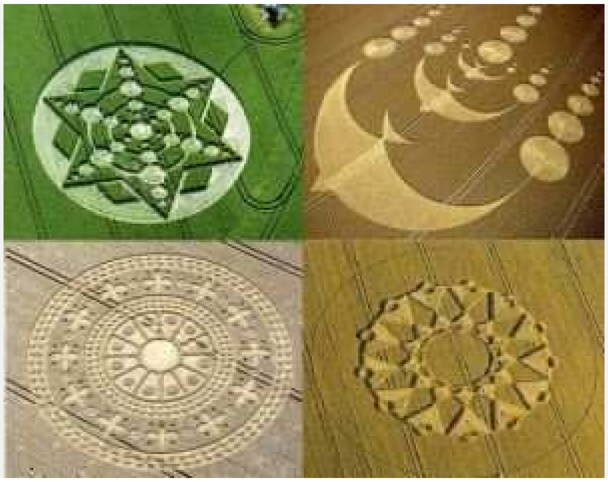

तंत्र-सूत्र—विधि—36 (ओशो)
देखने के संबंध में सातवीं ओशो

''किसी विषय को देखो, फिर धीरे-धीरे उससे अपनी दृष्टि हटा लो, और फिर धीरे-धीरे उससे अपने विचार हटा लो। तब।''

''किसी विषय को देखो..........।''
किसी फूल को देखो। लेकिन याद रहे कि इस देखने का अर्थ क्या है। केवल देखो, विचार मत करो। मुझे यह बार-बार कहने की जरूरत नहीं है। तुम सदा स्मरण रखो कि देखने का देखना भर है; विचार मत करो। अगर तुम सोचते हो तो वह देखना नहीं है; तब तुमने सब कुछ दूषित कर दिया। यह शुद्ध देखना है महज देखना।

''किसी विषय को देखा.......।''

किसी फूल को देखो। गुलाब को देखा।

''फिर धीरे-धीरे उससे अपनी दृष्टि हटा लो।''
पहले फूल को देखा, विचार हटाकर देखो। और जब तुम्हें लगे कि मन में कोई विचार नहीं बचा सिर्फ फूल बचा है। तब हल्के-हल्के अपनी आंखों को फूल से अलग करो। धीरे-धीर फूल तुम्हारी दृष्टि से ओझल हो जाएगा। पर उसका विंब तुम्हारे साथ रहेगा। विषय तुम्हारी दृष्टि से ओझल हो जाएगा। तुम दृष्टि हटा लोगे। अब बाहरी फूल तो नहीं रहा; लेकिन उसका प्रतिबिंब तुम्हारी चेतना के दर्पण में बना रहेगा।

''किसी विषय को देखा, फिर धीरे-धीरे उससे अपनी दृष्टि हटा लो, और फिर धीरे-धीरे उससे अपने विचार हटा लो। अब।''

तो पहल बाहरी विषय से अपने को अलग करो। तब भीतरी छवि बची रहेगी; वह गुलाब का विचार होगा। अब उस विचार को भी अलग करो। यह कठिन होगा। यह दूसरा हिस्सा कठिन है। लेकिन अगर पहले हिस्से को ठीक ढंग से प्रयोग में ला सको जिस ढंग से वह कहा गया है, तो यह दूसरा हिस्सा उतना कठिन नहीं होगा। पहले विषय से अपनी दृष्टि को हटाओं। और तब आंखें बद कर लो। और जैसे तुमने विषय से अपनी दृष्टि अलग की वैसे ही अब उसकी छवि से अपने विचार को, अपने को अलग कर लो। अपने को अलग करो; उदासीन हो जाओ। भीतर भी उसे मत देखो; भाव करो कि तुम उससे दूर हो। जल्दी ही छवि भी विलीन हो जाएगी।

पहले विषय विलीन होता है, फिर छवि विलीन होती है। और जब छवि विलीन होती है, शिव कहते है, ''तब, तब तुम एकाकी रह जाते हो। उस एकाकीपन में उस एकांत में व्यक्ति स्वयं को उपलब्ध होता है, वह अपने केंद्र पर आता है, वह अपने मूल स्त्रोत पर पहुंच जाता है।

यह एक बहुत बढ़िया ध्यान है। तुम इसे प्रयोग में ला सकते हो। किसी विषय को चुन लो। लेकिन ध्यान रहे कि रोज-रोज वही विषय रहे। ताकि भीतर एक ही प्रतिबिंब बने और एक ही प्रतिबिंब से तुम्हें अपने को अलग करना पड़े। इसी विधि के प्रयोग के लिए मंदिरों में मूर्तियां रखी गई थी। मूर्तियां बची है, विधि खो गई।

तुम किसी मंदिर में जाओ और इस विधि का प्रयोग करो। वहां महावीर या बुद्ध या राम या कृष्ण किसी की भी मूर्ति को देखो। मूर्ति को निहारो। मूर्ति पर अपने को एकाग्र करो। अपने संपूर्ण मन को मूर्ति पर इस भांति केंद्रित करो कि उसकी छवि तुम्हारे भीतर साफ-साफ अंकित हो जाए। फिर अपनी आंखों को मूर्ति से अलग करो और आंखों को बंद करो। उसके बाद छवि को भी अलग करो, मन से उसे बिलकुल पोंछ दो। तब वहां तुम अपने समग्र एकाकीपन में, अपनी समग्र शुद्धता में, अपनी समग्र निर्दोषता में प्रकट हो जाओगे।

उसे पा लेना ही मुक्त है। उसे पा लेना ही सत्य है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—23
तंत्र-सूत्र—विधि—37 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी पहली विधि:

''हे देवी, बोध के मधु-भरे दृष्टि पथ में संस्कृत वर्णमाला के अक्षरों की कल्पना करो—पहले अक्षरों की भांति, फिर सूक्ष्मतर ध्वनि की भांति, और फिर सूक्ष्मतर भाव की भांति। और तब, उन्हें छोड़कर मुक्त होओ।''

शब्द ध्वनि है। विचार एक अनुक्रम में, तर्कयुक्त अनुक्रम में बंधे, एक खास ढांचे में बंधे शब्द है। ध्वनि मूलभूत है। ध्वनि से शब्द बनते है और शब्दों से विचार बनते है। और तब विचार से धर्म और दर्शनशास्त्र बनता है। सब कुछ बनता है। लेकिन गहराई में ध्वनि है।

यह विधि विपरीत प्रक्रिया का उपयोग करती है।

शिव कहते है: ''हे देवी, बोध के मधु-भरे दृष्टि पथ में संस्कृत वर्णमाला के अक्षरों की कल्पना करो—पहल अक्षरों की भांति, फिर सूक्ष्मतर ध्वनि की भांति, फिर सूक्ष्म तम भाव की भांति। और जब उन्हें छोड़कर मुक्त होओ।''

हम दर्शनशास्त्र में जीते है। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई कुछ है। हम दर्शन शास्त्रों में जीते है। विचार तंत्रों में जीते है। और वे हमारे लिए इतने महत्वपूर्ण हो गए है कि हम उनके लिए अपनी जान दे सकते है। आदमी शब्दों के लिए मर सकता है। मात्र शब्दों के लिए। कोई उसके परमात्मा को, उसकी परमात्मा की धारणा को गलत कह दे और वह लड़ पड़ेगा। कोई राम या ईसा या किसी ऐसी धारणा को गलत कह दे और वह लड़ पड़ेगा। मनुष्य महज शब्द के लिए लड़ सकता है। हत्या कर सकता है।

शब्द इतना महत्वपूर्ण हो गया है। यह मूढ़ता है। लेकिन यही मूढ़ता हमारा इतिहास है। और हम अभी उसी भांति पेश आ रहे है। एक अकेला शब्द तुम्हारे भीतर इतना उपद्रव पैदा कर सकता है। कि तुम मरने-मारने को तैयार हो जाते हो। हम दर्शनशास्त्र में जीते है। विचार तंत्रों में जीते है।

दर्शनशास्त्र क्या है? तर्कयुक्त ढंग से, व्यवस्था से ढांचे में विचारों के जमाव को हम दर्शनशास्त्र कहते है। और विचार क्या है? व्यवस्था से और अर्थवता के साथ शब्दों के जमाव को हम विचार कहते है। और शब्द क्या है? शब्द वे ध्वनियां है जिनके बारे में आम सहमति है कि उनका मतलब यह या वह होगा।

ध्वनि बुनियादी है, आधारभूत है। मन की बुनियादी संरचना में ध्वनि है। दर्शनशास्त्र उसका शिखर है, लेकिन जिन ईंटों से पूरी इमारत बनी है वे ध्वनियां है। इससे गलत क्या है।

ध्वनि बस ध्वनि है। अर्थ हमारा दिया हुआ है। अर्थ आम सहमति से तय होता है। अन्यथा ध्वनि का काई अर्थ नहीं है। अर्थ हमारा दिया हुआ है। प्रक्षेपण है। अन्यथा राम शब्द मात्र ध्वनि है—अर्थहीन ध्वनि। अर्थ हम उसे देते है। और वह शब्द बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। और तब हम उसके इर्द-गिर्द विचारों का तंत्र निर्मित करते है। तब तुम सब कुछ कर सकते हो। कुछ भी कर सकते हो; उसके लिए जी मर सकते हो। अगर कोई इस ध्वनि राम का अपमान करे तो तुम क्रुद्ध हो जाओगे। और यह शब्द राम महज एक सहमति है, नियम गत सहमति है। कि इसका यह अर्थ होगा। अन्यथा अपने आप में किसी शब्द का कोई अर्थ नहीं है। वह महज ध्वनि है।

यह सूत्र प्रतिक्रमण करने को, विपरीत दिशा में चलने को कहता है। ध्वनि पर आ जाओ। फिर ध्वनि से भी ज्यादा बुनियादी चीज है भाव। जो कहीं गहरे में छिपा है। इसे समझना होगा।

आदमी शब्द का उपयोग करता है। शब्द का मतलब ऐसी ध्वनि है जिसको सहमति से अर्थ मिला हुआ है। पशु-पक्षी भी ध्वनि का प्रयोग करते है। लेकिन उनकी ध्वनि में कोई भाषा नहीं होती। उनकी कोई भाषा नहीं है। लेकिन वे मात्र भाव के

साथ ध्वनि करते है। कोई पक्षी गाता है। उसके गाने में भाव है। वह किसी भाव को प्रकट कर रहा है। हो सकता है कि वह अपनी प्रेमिका को पुकार रहा हो। या मां को पुकार रहा हो। या हो सकता है, बच्चा भूखा हो, और अपनी पीड़ा जता रहा हो। वह ध्वनि भाव-बोधक है।

ध्वनि के ऊपर शब्द है, विचार है, दर्शनशास्त्र है; ध्वनि के नीचे भाव है। और जब तुम भाव के नीचे नहीं उतरते तब तक मन के नीचे नहीं उतर सकते हो। सारा जगत ध्वनियों से भरा है। सिर्फ मनुष्य का जगत शब्दों से भरा है। मनुष्य का बच्चा भी जब तक भाषा नहीं सीखता है, ध्वनियों का ही प्रयोग करता है।

सच तो यह हे कि भाषा का सारा विकास उन ध्वनियों के आधार पर हुआ है जो दुनियाभर में बच्चें बोलते है। उदाहरण के लिए किसी भी भाषा में मां के लिए शब्द किसी न किसी रूप में मां ध्वनि से जुड़ा है। चाहे वह मातृ, मदर, मां; सब कमोवेश मां ध्वनि से जुड़ा है। बच्चा मां ध्वनि अत्यंत सरलता से बोल सकता है। यह वह पहली ध्वनि है जो बच्चा बोल सकता है। फिरा सारी इमारत मां ध्वनि पर उठती है। बच्चा मां कहना शुरू करता है; क्योंकि यह पहली ध्वनि है जिसे बच्चा आसानी से बोल सकता है। यह नियम सब देश और सब समय के लिए लागू है। शरीर और गले की संरचना ही ऐसी है कि मां बोलना उसके लिए सबसे आसान है। और बच्चे के लिए उसकी मां निकटतम व्यक्ति होता है। सबसे महत्वपूर्ण होता है। इसलिए पहली ध्वनि पहले अर्थपूर्ण व्यक्ति के साथ जुड़ गई और उससे ही मातृ, मदर, मादर, मां शब्द बने।

लेकिन बच्चा जब पहली दफा 'मां' कहता है तो उसमे कोई भाषागत अर्थ नहीं होता। पर भाव अवश्य रहता है। और उसी भाव के कारण यह ध्वनि मां का पर्याय बन गयी। वह भाव ध्वनि से ज्यादा बुनियादी है।

यह सूत्र कहता है कि ''संस्कृत वर्णमाला के अक्षरों की कल्पना करो।''

कोई भी भाषा काम दे देगी। क्योंकि शिव पार्वती से बोल रहे थे। इसलिए उन्होंने संस्कृत का नाम लिया। तुम अंग्रेजी, लैटिन या अरबी भाषा भी इस्तेमाल कर सकते हो। किसी भाषा से भी काम चल जाएगा। संस्कृत यहां इस लिए कही गई है कि क्योंकि शिव पार्वती से संस्कृत में चर्चा कर रहे थे। ऐसी बात नहीं है कि संस्कृत और भाषाओं से श्रेष्ठ है। नहीं, कोई भी भाषा चलेगी।

पहले अपने भीतर, अपनी चेतना में, ''बोध के मधु-भरे दृष्टि पथ'' में अ, ब, से, आदि अक्षरों को अनुभव करो। किसी भी भाषा के अक्षरों से काम चल जाएगा। और यह किया जा सकता है। यह बहुत सुंदर प्रयोग है। अगर तुम इसे प्रयोग करना चाहो तो पहले आँख बंद कर लो और भीतर अपने चेतना को इन अक्षरों से भर जाने दो। चेतना को काली पट्टी समझो और तब उस पर अ, ब, स अक्षरों की कल्पना करो। कल्पना में उन्हें सावचेत होकर और साफ-साफ लिखो और उनको देखो। फिर धीरे-धीरे अक्षर अ को भूल जाओ और उसकी ध्वनि को स्मरण रखो—सिर्फ ध्वनि को।

लेकिन पहले कल्पना की आंखों से देखना जरूरी है; क्योंकि हमारे लिए आँख बहुत महत्वूर्ण है। कान उतने महत्वपूर्ण नहीं है। हम आँख-केंद्रित है। कारण वही है कि आँख अन्या किसी भी चीज से ज्यादा हमें जीने में सहयोग देती है; हमारी नब्बे प्रतिशत चेतना आंखों में बसती है। आँख को हटाकर अपने संबंध में कल्पना करो और तुम मरे-मरे से हो जाओगे। बहुत न्यून बच रहेगा।

इसलिए पहले देखा। दृष्टि को भीतर ले जाओ और अक्षरों को देखो। वैसे अक्षर आंखों की बजाय कानों से ज्यादा संबंधित है; क्योंकि वे ध्वनियां है। लेकिन हमारे लिए वे आँख से जुड़ गए है। क्योंकि हम पढ़ने के इतने आदी हो गए है। बुनियादी रूप से वे कान से संबंधित है, वे ध्वनियां है। तो आँख से शुरू करो। और फिर धीरे-धीर आँख को भूल जाओ। और आँख से कान पर

चले जाओ। पहले उन्हें अक्षरों के रूप में कल्पना करो, फिर उन्हें देखो और फिर उन्हें सूक्ष्मतर ध्वनियों की भांति सुनो और अंत में सूक्ष्मतम भाव की भांति भाव करो।

यह एक बहुत सुंदर प्रयोग है। जब तुम अ कहते हो तो तुम्हारे भीतर क्या भाव होता है। हो सकता है, तुम्हें इसका बोध न हो कि क्या भाव रहता है। जब भी तुम कोई ध्वनि करते हो तो तुम्हारे भीतर कैसे भाव का उदय होता है? हम इतने भाव शून्य हो गये है कि भल ही गये है। जब तुम कोई ध्वनि देखते हो तो क्या होता है? तुम उसका उपयोग किए जाते हो और ध्वनि को बिलकुल भूल जाते हो। उसे तुम निरंतर देखते हो। यदि मैं अ कहता हूं तो तुम पहले अ को देखोगें, तुम्हारे मन में अ दृश्य हो जाएगा। लेकिन अब जब मैं अ कहूं तो उसे देखो नहीं, सुनो। और तब अनुभव करो कि तुम्हारे भाव-केंद्र में क्या घटित होता है। क्या कुछ भी नहीं होता है।

शिव कहते है कि अक्षरों से ध्वनि की तरफ चलो; इन अक्षरों के जरिए ध्वनि को उघाड़ो। पहले ध्वनि को उघाड़ो, और फिरा ध्वनि के जरिए भाव को उघाड़ो। तुम कैसा भाव होता है, इसके प्रति सजग होओ।

कहते है कि मनुष्य बहुत संवेदन शून्य हो गया है; वह अभी धरती पर सब से संवेदन शून्य जानवर है। मैं एक जर्मन कवि का संस्मरण पढ़ रहा था। वह अपने बचपन की एक घटना बताता है। उसके पिता को घोड़ों का बहुत शौक होता है। उसके घर में अनेक घोड़े थे; एक बड़ा अस्तबल था। लेकिन उसका बाप उसे घोड़ों के पास नहीं जाने देता था। बाप डरता था; क्योंकि बच्चा अभी बहुत छोटा था। लेकिन कभी-कभी जब बाप घर पर नहीं होता तो बच्चा चुपचाप अस्तबल में चला जाता था। वहां उसकी एक घोड़े से दोस्ती हो गई। और जब वह लड़का वहां पहुंचता तो घोड़ा हिनहिनाने लगता था।

उस कवि ने लिखा है कि तब मैं भी घोड़े के साथ कुछ ध्वनि करने लगा; क्योंकि उससे भाषा में बोलने का तो कोई उपाय न था। और तब घोड़े के साथ इस तरह संवाद करते हुए मुझे पहल बार ध्वनियों का बोध हुआ, उनके सौंदर्य का, उनके भाव का बोध हुआ।

तुम्हें किसी मनुष्य के साथ संवाद करके यह बोध नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य मुर्दा हो चला है। घोड़ा ज्यादा जीवंत है और उसके पास भाषा नहीं है। उसके पास शुद्ध ध्वनि है। वह ह्रदय से भरा है। मन से नहीं।

तो कवि ने संस्मरण में कहा ह कि पहली बार मुझे ध्वनि के सौंदर्य का, उसके अर्थ का बोध हुआ। यह वह अर्थ नहीं था जो शब्दों और विचारों से आता है। यह अर्थ भाव से भरा था। अगर वहां और कोई मौजूद होता तो घोड़ा नहीं हिनहिनाता; उससे बच्चा समझ जाता कि यहां मत आओ। यहां कोई है। और तुम्हारे पिता नाराज हो जायेगे। और जब वहां कोई नहीं होता तो घोड़ा हिनहिनाता, जिसका मतलब होता कि आ जाओ, यहां कोई नहीं है। कवि याद करता है कि यह एक साजिश थी जिससे मुझे बहुत सहायता मिली; उस घोड़े ने मेरी बड़ी मदद की।

कवि ने यह भी बताया कि जब मैं जाता था और घोड़े को प्रेम करता था तो यदि मेरा प्रेम घोड़े को पसंद आता तो वह एक ढंग से सिर हिलाता था। और यदि नहीं पसंद आता तो वह सिर ही नहीं हिलाता। पसंदगी की बात और थी। घोड़ा उसे प्रकट करता था। और जब उसका मूड उसकी भाव दशा और होती तो वह उस ढंग से सिर नहीं हिलाता था। और कवि कहता है कि यह सिलसिला वर्षों चला कि मैं जाता और घोड़े को सहलाता। और घोड़े के साथ यह प्रेम इतना प्रगाढ़ था कि मुझे कभी किसी और के साथ उस घनिष्ठता का एहसास नहीं हुआ।

कवि आगे कहता है कि एक दिन मैं घोड़े की गरदन सहला रहा था और वह मस्ती में डोलकर उसका आनंद ले रहा था। कि मैं अचानक पहली बार अपने हाथ के प्रति सजग हो गया। और मुझे ख्याल हुआ कि मैं घोड़े का सहला रहा हूं। इसके साथ ही घोड़े ने डोलना बंद कर दिया। और गरदन हिलाना बिलकुल बंद कर दिया। और वह कवि कहता है, फिर तो मैंने वर्षों कोशिश की;

लेकिन घोड़े से कोई प्रत्युतर नहीं मिला। बहुत समय बीतने पर मुझे बोध हुआ। कि मेरे हाथ के प्रति, मेरे अहंकार के प्रति सजग होते ही मेरा घोड़े के साथ संवाद समाप्त हो गया। और उसे मैं फिर कभी प्राप्त नहीं कर सका। क्या हुआ ?

वह भाव का संवाद था। ज्यों ही अहंकार आता है, शब्द आता है, भाषा आती है। विचार आता है, त्यों ही पूरा तल ही बदल जाता है। अब तुम ध्वनि के ऊपर हो; पहले ध्वनि के नीचे थे। वे घ्वनियां भाव है और घोड़ा भाव समझ सकता था। वह अहंकार की भाषा नहीं समझ सकता था, इसलिए संवाद टूट गया।

कवि ने बहुत चेष्टा की; लेकिन कोई चेष्टा सफल नहीं हुई। कारण यह है कि तुम्हारी चेष्टा भी तुम्हारे अहंकार का ही हिस्सा है। कवि ने अपने हाथ को भूलने की चेष्टा की; लेकिन भूल न सका। यह भूलना असंभव है। तुम जितनी भूलने की कोशिश करोगे उतनी ही हाथ की याद आयेगी। चेष्टा से कुछ भी भूला नहीं जा सकता है। चेष्टा स्मृति को और भी सबल बना देगी। कवि कहता है कि मैं अपने हाथ में उलझ गया; मैं घोड़े को फिर उद्वेलित न कर सका। मैं अपने हाथ ले जाता था, लेकिन उससे कोई उर्जा घोड़े की और नहीं बहती थी। और घोड़े को इसका पता चल गया।

अगर मैं अचानक कोई दूसरी भाषा बोलने लगू तो संवाद बंद हो जाएगा। तब तुम मुझे नहीं समझ सकोगे। और अगर यह भाषा तुम्हारे लिए परिचित नहीं है तो तुम अचानक रूक जाओगे। तुम्हें भाषा ही नहीं समझ पड़ेगी। घोड़ा ऐसे ही रूक गया था।

प्रत्येक बच्चा भाव के साथ जीता है। पहले ध्वनि आती है। तब वह ध्वनि भाव से भरती है। तब शब्द , विचार, व्यवस्था, धर्म और दर्शनशास्त्र आते है। और तब आदमी भाव के केंद्र से दूर-दूर हटता जाता है।

यह सूत्र कहता है कि ध्वनि से भाव पर लौट आओ, भाव की भूमि पर खड़े होओ। भाव तुम्हारा मन नहीं है। यही कारण है कि तुम भाव से डरते हो। तुम तर्क से नहीं डरते। लेकिन तुम भाव से सदा डरते हो। क्योंकि भाव तुम्हें अराजकता में ले जा सकता है। जिस पर तुम्हारा काबू नहीं है। तर्क तुम्हारे नियंत्रण में है। सिर के तुम मालिक हो। सिर के नीचे उतरते ही तुम्हारी मलकियत खत्म हो जाती है। तब तुम्हारा नियंत्रण नहीं रहता; तब तुम मन मानी नहीं कर सकते। भाव ठीक मन के नीचे है; भाव तुम्हारे और तुम्हारे मन के बीच की कड़ी है।

फिर शिव कहते है: ''तब उन्हें अलग छोड़कर मुक्त हो जाओ।''

तब भाव को भी छोड़ दो। स्मरण रहे, भाव के गहनत्म तल पर पहुंचकर ही तुम भाव को छोड़ सकते हो। अगर तुम उनके गहन तल पर नहीं हो तो उन्हें कैसे छोड़ सकते हो? पहले तुम्हें दर्शनशास्त्र को छोड़ना होगा; हिन्दू धर्म, ईसाइयत धर्म, इस्लाम धर्म, को छोड़ना होगा। पहले दर्शन छोड़ना होगा। और तब विचार छोड़ना होगा। फिर क्रमश: शब्द, अक्षर, ध्वनि और भाव को छोड़ना है।

तुम उसी जगह को छोड़ सकते हो जहां तुम हो। तुम उसी सीढ़ी को छोड़ सकते हो जिस पर तुम खड़े हो। उस सीढ़ी को कैसे छोड़ सकते हो, जिस पर तुम खड़े ही नहीं हो, तुम दर्शनशास्त्र की सीढी पर खड़े हो। यह सबसे दूर की सीढी है। यही कारण है कि मैं इस बात पर इतना जोर देता हूं कि जब तक तुम धर्मों को नहीं छोड़ते, तुम धार्मिक नहीं हो सकते।

यह सूत्र, यह विधि बहुत आसानी से प्रयोग की जा सकती है। कठिनाई भाव के साथ नहीं है; कठिनाई शब्दों के साथ है। किसी भाव को तुम वैसे ही छोड़ सकते हो जैसे तुम अपने कपड़े उतारते हो। जैसे तुम अपने शरीर के कपड़े उतरते कर फेंक देते हो। ठीक वैसे ही तुम अपने भावों को अपने से अलग कर सकेत हो। लेकिन अभी तुम यह नहीं कर सकते, अभी यह करना असंभव है। इसलिए कदम-कदम चलना ठीक है।

अ, ब, स, आदि अक्षरों को कल्पना की आंखों से देखो, और तब उनके लिखित रूप से हटकर उनके सुने हुए स्वर पर ध्यान दो। अब तुम गहराई में उतर रहे हो। सतह पीछे छूट रहा है। तुम गहराई में डूब रहे हो। और अब देखो कि किसी विशेष ध्वनि से क्या भाव पैदा होता है।

ऐसी विधियों के कारण ही भारत अनेक चीजों का अविष्कार कर सका। जो भाव-विशेष से संबंधित है। इन विज्ञान के कारण ही मंत्र का विकास हुआ। एक खास ध्वनि एक खास भाव के साथ जुड़ी है; इसके अन्यथा नहीं हो सकता। तो तुम अपने भीतर वह ध्वनि पैदा करो तो उससे उस विशेष भाव का जन्म होगा। तुम एक मंत्र के द्वारा उससे संबंधित भाव पैदा कर सकते हो। मंत्र से वह वातावरण पैदा होता है। जिसमे वह विशेष भाव जन्म लेता है।

इसलिए यूं ही किसी मंत्र का उपयोग मत करो। वह ठीक नहीं है; वह तुम्हारे लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है। अगर तुम नहीं जानते हो या वह व्यक्ति नहीं जानता है जिससे तुम मंत्र लेते हो किस ध्वनि से कौन-कौन भाव निर्मित होता है। या अगर तुम नहीं जानते हो कि तुम्हें उस भाव की जरूरत है या नहीं। तो मंत्र का उपयोग मत करो। मारण मंत्र जैसे भी मंत्र है। अगर तुम मारण मंत्र का जाप करोगे तो एक निश्चित अवधि के भीतर तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। वह मंत्र तुम्हारे भीतर मृत्यु की कामना पैदा कर देगा। और एक निश्चित समय के अंदर तुम समाप्त हो जाओगे।

फ्रायड कहता है कि आदमी में दो बुनियादी वृतियां है। उनमें एक है जीवेषणा, इरोस; यानि जीने की कामना। और दूसरी है मृत्यु एषणा थानाटोस; यानी मरने की कामना, मृत्यु की चाह।

ऐसी ध्वनियां है जिनके सतत उच्चारण से तुम्हारे भीतर मरण-कामना का जन्म होगा, तुम मृत्यु में समा जाना चाहोगे। वैसे ही ऐसी ध्वनियां है जो तुम्हें अधिक जीवेषणा प्रदान करेंगी। जिनसे जीने से जीवन में तुम्हारा रस बढ़ जाएगा; तुम ज्यादा जीवित रहना चाहोगे। तो अगर तुम अपने भीतर उन ध्वनियों को पैदा करोगे तो उनसे संबंधित भाव तुम्हें अभिभूत कर देंगे। ऐसी ध्वनियां को पैदा करोगे तो उनसे संबंधित भाव तुम्हें अभिभूत कर देंगे। ऐसी ध्वनियां है जिनसे मौन और शांति प्राप्त होती है और ऐसी ध्वनियां भी है जिनसे क्रोध का जन्म होता है। इसलिए जब तक किसी जानकर गुरु से मंत्र न मिले तब तक मंत्र का प्रयोग करना ठीक नहीं है।

जब तुम ध्वनि से नीचे उतरते हो तो तुम्हें पता चलता है कि प्रत्येक ध्वनि का अपना एक भाव है, जो उसके साथ चलता है। जो उसके पीछे रहता है। जब तुम भाव में गति कर जाओ, जब तुम ध्वनि को भूल जाओ और भाव में सरक जाओ। इसे समझना कठिन है; लेकिन यह तुम कर सकते हो।

और इसके लिए विशेष विधियां है। विशेषकर झेन साधना में इसके लिए अलग विधियां है। किसी साधक को एक खास मंत्र दिया जाता है। और अगर वह उसका ठीक प्रयोग करता है तो यह बात गुरु उसके चेहरे से जान लेता है। चेहरा देखकर ही गुरु जान जाता है कि साधक ठीक प्रयोग कर रहा है या नहीं। क्योंकि ठीक प्रयोग से एक भाव विशेष का उदय होता है। अगर ध्वनि ठीक से पैदा की जाए तो भाव का आविर्भाव निशचित है। और यह भाव चेहरे पर प्रकट होगा; तुम गुरु को धोखा नहीं दे सकते। वह तुम्हारे चेहरे से जान लेगा। कि तुम्हारे भीतर क्या घट रहा है।

डोजो एक बड़ा झेन गुरु हुआ। जब वह शिष्य ही था तो उसे बड़ी हैरानी होती है कि मेरे गुरु यह कैसे जानते है कि मेरे भीतर क्या अनुभव घट रहा है। और झेन गुरु अपना डंडा लिए घूमता था और शिष्य के सिर पर डंडे से चोट कर देता था। अगर तुम्हारे मंत्र के प्रयोग से कोई भूल हो रही है तो वह तुम्हारे सिर पर चोट कर देगा। तो डोजो ने पूछा कि आप कैसे जान लेते है कि ठीक वक्त पर ही चोट करते है। आप जानते कैसे है।

चेहरा भाव को प्रकट कर देता है। वह ध्वनि को नहीं प्रकट कर सकता, लेकिन भाव को प्रकट कर देता है। और तुम जितने गहरे जाओगे उठता ही तुम्हारा चेहरा अभिव्यक्ति के योग्य, नमनीय और तरल होता जाएगा। वह तुरंत बता देता है कि भीतर क्या हो रहा है। अभी जो तुम्हारा चेहरा वह नहीं रहेगा। वह तो मुखौटा है, चेहरा नहीं। जब तुम भीतर जाते हो तो मुखौटे गिर जाते है। क्योंकि उनकी जरूरत नहीं रहती। मुखौटे तो दूसरों के लिए होते है।

यही कारण है कि पुराने गुरु संसार छोड़ने के लिए जोर देते थे। यह इसलिए कि तुम आसानी से अपने मुखौटे से मुक्त हो जाओ। अन्यथा जब तक दूसरे रहेंगे तुम उनके लिए मुखौटे लगाते रहोगे। तुम अपने पति या पत्नी को प्रेम नहीं करते हो; लेकिन तुम्हें एक मुखौटा पहले रहना होता है। एक प्रीति पूर्ण चेहरा बनाए रखना पड़ता है। जिस क्षण तुम अपने घर में प्रवेश करते हो, तुम अपना चेहरा सजाने लगते हो, तुम भीतर जाते ही मुस्कुराने लगते हो। वह तुम्हारा असली चेहरा नहीं है।

झेन गुरु इस बात पर जोर देते थे कि पहले तुम जानो कि तुम्हारा मौलिक चेहरा क्या है। मौलिक चेहरे के साथ सब कुछ आसान हो जाता है। तब गुरु को सब पता चल जाता है। कि क्या हो रहा है। इसलिए ज्ञानोपलब्धि की घटना बतानी नहीं पड़ती थी। अगर कोई साधक ज्ञान को उपलब्ध हो ता था तो उसे यह बात गुरु को बताने की जरूरत नहीं पड़ती थी। गुरु अपने आप ही जान लेता था और वही शिष्य को कहता था। शिष्य को अपनी तरफ से जाकर गुरु को बताने की इजाजत नहीं थी। उसकी जरूरत नहीं थी। चेहरा बात देता था, आँख बता देती थी। चलने का ढंग बात देता था। उसका प्रत्येक कृत्य, उसकी हरेक भाव-भंगिमा बताती है कि वह पहुंच गया।

जब तुम ध्वनि से भाव पर जाते हो तो तुम बहुत ही आनंदित संसार में गति करते हो—एक अस्तित्वगत संसार में। तुम मन से दूर हट जाते हो। भाव अस्तित्वगत है; भाव शब्द का अर्थ ही वह है। तुम भावों को अनुभव करते हो। तुम उन्हें देख नहीं सकते, सुन नहीं सकते, सिर्फ अनुभव कर सकते हो।

और जब तुम इस बिंदू पर पहुंचते हो तो छलांग लगा सकते हो। यह आखिरी कदम है। अब तुम अनंत खड्ड के पास खड़े हो; अब कूद सकते हो। और अगर तुम भाव से छलांग लगाते हो तो तुम अपने में छलांग लगाते हो। वह अनंत, वह अतल तुम हो—मन की तरह नहीं अस्तित्व की तरह; संचित भविष्य की तरह नहीं, बल्कि वर्तमान की तरह, यहां और अभी की तरह। तुम मन से अस्तित्व पर गति कर जाते हो; और भाव उनके बीच सेतु का काम करता है।

लेकिन भाव पर पहुंचने के लिए तुम्हें सो चीजें छोड़नी होगी। शब्द, ध्वनि और मन की सब प्रवंचना छोड़नी होगी।

''तब उन्हें अलग छोड़कर मुक्त हो जाओ।''

तब तुम मुक्त हो। ''मुक्त हो जाओ'' का यह मतलब नहीं है कि तुम्हें मुक्त होने के लिए कुछ करना होगा। ''तब उन्हें अलग छोड़ कर मुक्त हो जाओ।'' का मतलब है कि तुम मुक्त हो।

होना है मुक्त; मन बंधन है। इससे ही कहा है कि मन संसार है। संसार को मत छोड़ो; तुम उसे छोड़ भी नहीं सकते। अगर मन है तो तुम दूसरा संसार निर्मित कर लोगे। बीज बचा है। तुम पहाड़ पर जा सकते हो। तुम भागकर किसी आश्रम में रह सकते हो। लेकिन मन तुम्हारे साथ जाएगा। मन को छोड़कर तो नहीं जा सकते। और मन के साथ संसार चलता है। तुम फिर दूसरा संसार गढ़ लोगे। आश्रम में भी तुम संसार बनाने लगोगे; क्योंकि बीज साथ में है। तुम फिर संबंध बना लोगे। चाहे वो संबंध पेड़ से हो पशु पक्षियों से ही क्यों न हो। फिर तुम्हारी अपेक्षाएं खड़ी हो जाएंगी। जाल बढ़ता ही जाएगा। क्योंकि बीज मौजूद है। तुम फिर संसार में होगे। मन ही संसार है; मन को तुम कहीं नहीं छोड़ सकते हो।

तुम मन को तभी छोड़ सकते हो जब तुम अपने भीतर यात्रा करो। वही एक हिमालय है; कोई दूसरा हिमालय नहीं है। अगर तुम शब्द से भाव पर और भाव से होने पर आ जाओ तो तुम संसार से मुक्त हो जाओगे। और जब तुम इस अस्तित्व के अनंत विराट को जान लोगे तब तुम कही भी रह सकते हो। नरक में भी रह सकते हो। तब कोई फर्क नहीं पड़ेगा। अगर मन नहीं है। तो नरम तुममें प्रवेश नहीं कर सकता। और मन के साथ सिर्फ नरक आता है। मन नरक का द्वार है।

''उन्हें अलग छोड़कर मुक्त हो जाओ।''

लेकिन भाव के साथ सीधा प्रयोग मत करो; तुम सफल न हो सकोगे। पहले शब्दों के साथ प्रयोग करो। लेकिन अगर तुमने दर्शनशास्त्र नहीं छोड़ा, विचारों को नहीं छोड़ा तो शब्दों के साथ भी सफल न हो पाओगे। शब्द सिर्फ इकाइयां है। और अगर तुम शब्दों को महत्व दोगे तो तुम उन्हें नहीं छोड़ सकते हो।

यह भलीभाँति जान लो कि भाषा मनुष्य की बनाई हुई है। उसका उपयोग है; वह जरूरी है। और ध्वनियों को जो अर्थ मिला है। वह भी हमारा दिया हुआ है। इस बात को भलीभाँति समझ लो तो यात्रा सरल हो जाएगी। अगर कोई कुरान या वेद के विरूद्ध बोलता है तो तुम्हें कैसा लगता है। क्या तुम उस पर हंस सकते हो? या कि तुम्हारे भीतर कुछ भिंच जाता है। कोई गीता का अपमान कर रहा है, या कोई कृष्ण, राम या क्राइस्ट के खिलाफ बोल रहा है। क्या तुम उस पर हंस सकते हो। क्या तुम देख सकते हो कि वे महज शब्द है।

नहीं तुम्हें चोट लगेगी। और तब शब्दों को छोड़ना कठिन होगा। समझना होगा कि शब्द सिर्फ शब्द है। वे घ्वनियां है। जिन्हें सर्वसम्मत अर्थ दिया गया है। वे और कुछ भी नहीं है। इस बात को ठीक से आत्मसात कर लो। हकीकत यही है कि शब्द मात्र शब्द है।

पहले शब्दों से विरक्त होओ। शब्दों से विरक्त होकर ही तम जानोंगे कि वे घ्वनियां भर है। यह वैसे ही है जैसे मिलिट्री में वि संख्याओं का प्रयोग करते है। कोई सिपाही एक सौ एक नंबर का सिपाही है। वह एक सौ एक के साथ तादात्म्य कर ले सकता है। और अगर कोई व्यक्ति एक सौ एक नंबर के विरूद्ध कुछ कहेगा तो उसे बुरा लगेगा। वह झगडा करेगा। और एक सौ एक महज संख्या है। लेकिन उससे उसका तादात्म्य हो गया है।

तुम्हारा नाम भी संख्या जैसा ही है—गिनती के लिए है। उसके बिना काम चलाना कठिन होगा वह बस एक लेबल है। कोई दूसर लेबल भी वही काम देगा। लेकिन तुम्हारे लिए वह लेबल ही नहीं रहा है। वह कुछ और हो गया है। तुम्हारा नाम तुममें गहरे उतर गया है। वह अब तुम्हारा अहंकार बन गया है। इसीलिए बड़े-बूढे कहते है कि नाम पैदा करो, अपने नाम की शान रखो। ऐसा कुछ करो कि मरने के बाद भी तुम्हारा नाम रहे।

यह नाम पहले भी नहीं था। और वह कोड़ नंबर से ज्यादा नहीं है। तुम मरोगे और नाम रहेगा। जब तुम ही नहीं रहोगे तो नाम कैसे रहेगा।

शब्दों को देखा: उनकी व्यर्थता को, अर्थहीनता को देखा। उनसे आसक्त मत होओ, लगाव मत बनाओ। केवल तभी इस विधि का प्रयोग तुम कर सकोगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—25

तंत्र-सूत्र—विधि—38 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी दूसरी विधिः

ध्वनि के केंद्र में स्नान करो, मानो किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो

" ध्वनि के केंद्र में स्नान करो, मानो किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो। या कानों में अंगुलि डालकर नादों के नाद, अनाहत को सुनो।"

इस विधि का प्रयोग कई ढंग से क्या जा सकता है। एक ढंग यह है कि कहीं भी बैठकर इसे शुरू कर दो। ध्वनियां तो सदा मौजूद है। चाहे बाजार हो या हिमालय की गुफा, ध्वनियां सब जगह है। चुप होकर बैठ जाओ।

और ध्वनियों के साथ एक बड़ी विशेषता है, एक बड़ी खूबी है। जहां भी, जब भी कोई ध्वनि होगी, तुम उसके केंद्र होगे। सभी ध्वनियां तुम्हारे पास आती है, चाहे वे कहीं से आएं, किसी दिशा से आएं। आँख के साथ, देखने के साथ यह बात नहीं है। दृष्टि रेखाबद्ध है। मैं तुम्हें देखता हूं तो मुझसे तुम तक एक रेखा खिंच जाती है। लेकिन ध्वनि वर्तुलाकार है; वह रेखाबद्ध नहीं है। सभी ध्वनियां वर्तुल में आती है। और तुम उसके केंद्र हो। समूचे ब्रह्मांड का केंद्र। हरेक ध्वनि वर्तुल में तुम्हारी तरफ यात्रा कर रही है।
यह विधि कहती है: ''ध्वनि के केंद्र में स्नान करो।''

अगर तुम इस विधि का प्रयोग कर रहे हो तो तुम जहां भी हो वहीं आंखें बंद कर लो और भाव करो कि सारा ब्रह्मांड ध्वनियों से भरा है। तुम भाव करो कि हरेक ध्वनि तुम्हारी और बही आ रही है। और तुम उसके केंद्र हो। यह भाव भी कि मैं केंद्र हूं तुम्हें गहरी शांति से भर देगा। सारा ब्रह्मांड परिधि बन जाता है। और तुम उसके केंद्र होते हो। और हर चीज, हर ध्वनि तुम्हारी तरफ बह रही है।

''मानों किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो।''

अगर तुम किसी जलप्रपात के किनारे खड़े हो तो वहीं आँख बंद करो और अपने चारो और से ध्वनि को अपने ऊपर बरसतें हुए अनुभव करो। और भाव करो कि तुम उसके केंद्र हो।

अपने को केंद्र समझने पर यह जोर क्या है? क्योंकि केंद्र में कोई ध्वनि नहीं है; केंद्र ध्वनि शून्य है। यही कारण है कि तुम्हें ध्वनि सुनाई पड़ती है; अन्यथा नहीं सुनाई पड़ती। ध्वनि ही ध्वनि को नहीं सुन सकती। अपने केंद्र पर ध्वनि शून्य होने के कारण तुम्हें ध्वनियां सुनाई पड़ती है। केंद्र तो बिलकुल ही मौन है, शांत है। इसलिए तुम ध्वनि को अपनी और आते, अपने भीतर प्रवेश करते, अपने को घेरते हुए सुनते हो।

अगर तुम खोज लो कि यह केंद्र कहां है, तुम्हारे भीतर वह जगह कहां है। जहां सब ध्वनियां बहकर आ रही है। तो अचानक सब ध्वनियां विलीन हो जाएंगी और तुम निर्ध्वनि में, ध्वनि शून्यता में प्रवेश कर जाओगे। अगर तुम उस केंद्र को महसूस कर सको जहां सब ध्वनियां सुनी जाती है तो अचानक चेतना भीतर मुड़ जाती है। एक क्षण तुम निर्ध्वनि से भरे संसार को सुनोंगे और दूसरे ही क्षण तुम्हारी चेतना की और मुड़ जाएगी और तुम बस ध्वनि को, मौन को सुनोंगे। जो जीवन का केंद्र है। और एक बार तुमने उस ध्वनि को सुन लिया तो कोई भी ध्वनि तुम्हें विचलित नहीं कर सकती। वह तुम्हारी और आती है; लेकिन वह तुम तक पहुँचती नहीं है। वह सदा तुम्हारी और बह रही है। लेकिन वह कभी तुम तक पहुंच नहीं पाती। एक बिंदु है जहां कोई ध्वनि नहीं प्रवेश करती है; वह बिंदु तुम हो।

बीच बाजार में इस विधि का प्रयोग करो। बाजार जैसा कोई दूसरा स्थान नहीं है। वह शोरगुल है, पागल शोरगुल से इस कदर भरा रहता है। लेकिन इस शोरगुल के संबंध में सोच-विचार मत करो; यह मत कहो कि यह ध्वनि अच्छी है, यह बुरी है। यह उपद्रव पैदा करती है, यह सुंदर और लयपूर्ण है। ध्वनियों के संबंध में तुम्हें सोच-विचार नहीं करना है। तुम्हारा यह काम नहीं है। कि जो भी ध्वनि तुम्हारी तरफ बहकर आए उस पर तुम विचार करो कि यह काम नहीं है। कि यह अच्छी है, बुरी है, सुंदर है, तो तुम इतना ही स्मरण रखना है कि मैं केंद्र हूं और सभी ध्वनियां बहकर मेरे पास आ रही है।

शूरू-शूरू में घबराहट होगी; क्योंकि तुम अपने चारों और उठने वाली सब ध्वनियों को नहीं सुनते हो। तुम सुनने में चुनाव करते हो। अब वैज्ञानिक शोध करती है कि हम सिर्फ दो प्रतिशत सुनते है। अट्ठानवे प्रतिशत अनसुना कर देते है। अगर तुम शत प्रतिशत सुनो तो तुम पागल हो जाओगे। अपने चारों और की आवाज़ों को शत-प्रतिशत सुनकर तुम पागल होने सक नहीं बच सकते।

पहले यह समझा जाता था कि इंद्रियाँ द्वार दरवाजे है। जिनसे बाहर की दुनियां भीतर प्रवेश करती है। लेकिन अब वे कहते है कि ऐसी बात नहीं है। वे दरवाजे नहीं है, वे उतनी खुली नहीं है जितना समझा जाता था। वे द्वार नहीं है, बल्कि वे नियंत्रण का, सेंसर का काम करती है; वे पहरेदार की तरह हर क्षण देखती रहती है कि किसे भीतर जाने दिया जाए और किसे नहीं। दो प्रतिशत सुनकर ही तो तुम पागल हो गए हो; शत-प्रतिशत सुनकर तुम्हारा क्या हाल होगा।

तो जब तुम इस विधि का प्रयोग शुरू करोगे तो तुम्हारा सिर चकराने लगेगा। उस से मत डरना। केंद्र पर रहो, और जो कुछ भी हो रहा है उसे होने दो। सब कुछ को आने दो। अपनी इंद्रियों को शिथिल करो, पहरेदारों को आराम करने दो। सब कुछ को विश्राम में जाने दो और तब सब कुछ को अपने भीतर प्रवेश करने दो। अब तुम ज्यादा तरल हो गए हो; तुम खुले हो। और सब ध्वनियां सब आवाजें तुम्हारी और आ रही है, तब ध्वनियों के साथ चल पड़ो और इस केंद्र पर पहुंचो जहां तुम उन्हें सुनते हो।

ध्वनियों काम में नहीं सुनी जाती है। कान उन्हें सुन भी नहीं सकते; कान सिर्फ संचारण करने का काम करते है। और इस संचारण के क्रम में वे उस सब को छांट देते है जो तुम्हारे लिए जरूरी नहीं है। वे चुनाव करते है, वे छाँटते है, और फिर वे चुनी हुई ध्वनियां तुम्हारे भीतर प्रवेश करती है। अब भीतर खोजों कि तुम्हारा केंद्र कहां है। कान केंद्र नहीं है। तुम कहीं किसी गहराई में सुनते हो। कान तो कुछ चुनी हुई ध्वनियों को ही भेजते है। तुम कहां है? तुम्हारा केंद्र कहां है?

अगर तुम ध्वनियों के साथ प्रयोग जारी रखते हो तो देर अबेर तुम जानकर चकित होगे कि यह केंद्र सिर में नहीं है। मालूम तो होता है कि सिर में है। क्योंकि तुम ध्वनि नहीं, शब्द सुनते हो, शब्दों के लिए तो सिर ही केंद्र है; लेकिन ध्वनि के लिए वह केंद्र

नहीं है। यही कारण है कि जापान में वह कहते है कि आदमी सिर से नहीं, पेट से सोचता है। जापान में उन्होंने बहुत लंबे समय से ध्वनि पर काम किया है।

तुमने मंदिरों में घंटे लगे देखे होंगे। वे वहां साधकों के लिए ही ध्वनि पैदा करने के लिए रखे गए है। कोई साधक ध्यान कर रहा है और घंटे बजाएं जा रहे है। तुम्हें लगेगा कि इस घंटे की आवाज से साधक के लिए बाधा खड़ी हो रही है। लगेगा कि ध्यान करने वाले को बाधा महसूस हो रही है। यह क्या उपद्रव है। मंदिर में आने वाला हरेक दर्शनार्थी घंटे को बजा देता है।

पर यह आवाज उपद्रव नहीं है। वह साधक तो इस ध्वनि की प्रतीक्षा कर रहा है। हर दर्शनार्थी इसमे सहयोग दे रहा है। बार-बार घंटा बजता है। ध्वनि होती है और ध्यानी फिर अपने में डूब जाता है। वह उस केंद्र को देखता है जहां वह ध्वनि गहरे में उतरती जाती है। पहली चोट दर्शनार्थी घंटे पर लगाता है। दूसरी चोट कही ध्यानी के भीतर होती है। यह दूसरी चोट कहां लगती है।

यह दूसरी चोट सदा पेट में लगती है; सिर में कभी नहीं। अगर चोट सिर में लगे तो समझना चाहिए कि वह ध्वनि नहीं है, शब्द है। तब तुमने ध्वनि के संबंध में सोचना शुरू कर दिया। तब शुद्धता नष्ट हो गई।

अभी गर्भस्थ शिशुओं पर बहुत अनुसंधान हो रहा है। उन्हें भी ध्वनि का आघात लगता है। और वे भी प्रतिक्रिया करते है। वे भाषा के प्रति प्रतिक्रिया नहीं कर सकते, अभी उनके सिर नहीं है। उन्हें अभी तर्क करना नहीं आता है। वे भाषा और समाज-सम्मत नियम नहीं जानते है। वे भाषा नहीं जानते है, लेकिन वे ध्वनि ठीक कसे सुनते है। और हर ध्वनि मां से ज्यादा बच्चे को प्रभावित करती है। क्योंकि मां ध्वनि नहीं सुनत वह शब्द सुनती है। और हम पागल और अराजक आवाजें पैदा करते रहते है और वे आवाजें गर्भस्थ बच्चों को पीडित कर रही है। वे बच्चे पागल पैदा होंगे। तुमने उन्हें बहुत उपद्रव में डाल दिया है।

ध्वनि से पौधे भी प्रभावित होते है। अगर पौधों के निकट संगीत पूर्ण ध्वनि पैदा की जाए तो उनका विकास अधिक होता है। और उनके निकट अराजक ध्वनि पैदा करने से विकास कम होता है। तुम उन्हें बढ़ने में मदद दे सकते हो। ध्वनियों के द्वारा तुम उन्हें बहुत मदद दे सकते हो।

अब तो वह कहते है कि ट्रैफिक के शोर से, आधुनिक शहरों में होने वाले यातायात के शोर से आदमी पागल हुआ जा रहा है। ट्रैफिक का शोर अराजक है, उसमे जरा भी लयबद्धता नहीं है। कहते है कि यह शोर अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है। और अगर वह इससे भी आगे गया तो आदमी के लिए कोई आशा नहीं रहेगी।

ये ध्वनियां निरंतर तुम पर आघात कर रही है। अगर तुम उनके संबंध में विचार करोगे तो वह तुम्हारे सिर पर चोट करेंगी। और सिर केंद्र नहीं है। केंद्र नाभि में है—नाभि केंद्र, इसलिए ध्वनियों के संबंध में विचार मत करो।

सभी मंत्र अर्थहीन ध्वनियां है। अगर कोई गुरु किसी मंत्र को अर्थ बताता है तो समझना चाहिए कि वह मंत्र ही नहीं है। यह जरूरी है कि मंत्र में कोई अर्थ न हो। उसकी उपयोगिता है; लेकिन उसमें कोई अर्थ नहीं है। वह तुम्हारे भीतर कुछ करेगा। लेकिन उसमे कोई अर्थ नहीं है। उसे तुम्हारे भीतर शुद्ध ध्वनि के रूप में ही काम करना है। यही कारण है कि मंत्र का विकास हुआ। उसमें कोई अर्थ नहीं है। वह अर्थहीन है। वह शुद्ध ध्वनि है। अगर तुम्हारे भीतर यह शुद्ध ध्वनि पैदा की जा सके, अगर तुम इसे पैदा कर सको तो भी यही विधि प्रयोग की जा सकती है।

''ध्वनि के केंद्र में स्नान करो, मानों किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो। या कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद, अनाहत नाद को सुनो।''

तुम अंगुलि के जरिए कानों को बंद करके भी ध्वनि पैदा कर सकते हो। कोई भी चीज जो बलपूर्वक कानों को बंद कर दे, काम दे देगी। उस हालत में भी एक ध्वनि सुनाई देती है। वह कौन सी ध्वनि है जो कान के बंद करने पर सुनाई देती है? और उसे तुम क्यों सुनते हो?

अमेरिका में ऐसी घटना घटी। किसी नगर के पास से रेलगाड़ी गुजरती थी। आधी रात उसके गुजरने का समय था; कोई दो बजे। फिर एक नई लाइन का उदघाटन हुआ; पुरानी लाइन से गाड़ी का चलना बंद हो गया। लेकिन एक बड़ी हैरानी की बात हुई कि जिस इलाके से पुरानी लाइन गुजरती थी और जिधर से गाड़ी का चलना बंद हो गया था। उन लोगों ने पुलिस से शिकायत की कि उन्हें रात के दो बजे के समय कुछ रहस्यपूर्ण आवाज सुनाई देती है। और इस तरह की इतनी शिकायतें आईं कि पुलिस को जांच-पड़ताल करनी पड़ी।

और पहली बार पता चला कि अगर कोई ध्वनि तुम निरंतर सुनते रहे हो तो और फिर वह बंद हो जाए तो तुम उसकी अनुपस्थिति को सुनने लगोगे। यह मत सोचो कि बस तुम्हें उसका सुनाई देना बंद हो जाएगा; उसका अभाव सुनाई देने लगेगा।

यह ऐसा ही है कि मैं यहां तुम्हें देख रहा हूं और फिर अगर मैं आंखें बंद कर लूं तो तुम्हारा निगेटिव, तुम्हारा उलटा रूप दिखाई देने लगेगा। अगर तुम खिड़की को देखो और फिर आंखें बंद कर लो तो तुम्हें खिड़की का निगेटिव दिखाई देने लगेगा। और यह निगेटिव चित्र इतना जोरदार हो सकता है कि अगर तुम अचानक दीवार को देखो, तो वह दीवार पर प्रक्षेपित हो जाएगा और तुम उसे देख सकोगे।

''या कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद, अनाहत को सुनो।''

वह निगेटिव ध्वनि ही अनाहत कहलाती हे। क्योंकि वह दरअसल ध्वनि नहीं है। ध्वनि की अनुपस्थिति है। या वह नैसर्गिक ध्वनि है; क्योंकि वह पैदा नहीं की जाती है। सभी ध्वनियां पैदा की जाती है। लेकिन तुम जो ध्वनि कान बंद करके सुनते हो वह अनाहत ध्वनि है। अगर सारा संसार पूरी तरह मौन हो जाए तो तुम उस मौन का भी सुनोंगे।

पास्कल ने कही कहा है कि जिस क्षण मैं अनंत ब्रहमांड की सोचता हूं, उसका मौन मुझे बहुत भयभीत कर देता है। उसे मौन भयभीत करता है, क्योंकि ध्वनियां तो पृथ्वी पर ही है। ध्वनि के लिए वायुमंडल चाहिए। जिस क्षण तुम पृथ्वी के वायुमंडल के बाहर निकल जाते हो वहां कोई ध्वनि नहीं मिलेगी। वहां परम मौन है। उस मौन को तुम पृथ्वी पर भी पैदा कर सकते हो, अगर तुम अपने दोनों कान पूरी तरह से बंद कर लो। तूम धरती पर होकर भी धरती पर नहीं हो, तुम ध्वनि से नीचे उतर गये।

अंतरिक्ष यात्रियों को अनेक चीजों के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा है। उनमें उन्हें मौन में रहना भी सिखाया जाता है। उन्हें ध्वनि शून्य कक्षों में रखकर निर्ध्वनि में रहने का अभ्यास कराया जाता है। अन्यथा वे अंतरिक्ष में जाकर पागल हो जाएंगे। उन्हें अनेक समस्यों का सामना करना पड़ता है। उन्हें सबसे गंभीर समस्या यह है कि मनुष्य के ध्वनि भरे जगत के बाहर कैसे रहा जाए। वहां तुम अलग थलग पड़ जाते हो। अकेले हो जाते हो।

अगर तुम किसी जंगल में खो जाओ और कोई आवाज तुम्हें सुनाई दे तो उसके स्त्रोत को न जानते हुए भी तुम कम भयभीत होते हो। तुम्हें लगता है कि कोई है। तुम अकेले नहीं हो; कोई है। सन्नाटे में तुम अकेले हो जाते हो। अगर तुम भीड़ में अपने दोनों कान पूरी तरह से बंद करके अपने में डूब जाओ। तो तुम अकेले हो जाओगे। भीड़ विलीन हो जाएगी। क्योंकि तुम शोरगुल से ही भीड़ को जानते हो।

''कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद, अनाहत नाद को सुनो।''

यह ध्वनियों की अनुपस्थिति बहुत ही सूक्ष्म अनुभव है। यह तुम्हें क्या दे सकता है? जिस क्षण ध्वनियों नहीं रहती है, तुम अपने पर आ जाते हो। ध्वनि के साथ तुम अपने से दूर चले जाते हो। ध्वनि के साथ तुम दूसरे की तरफ चल पड़ते हो। इसे समझने की कोशिश करो। ध्वनि से हम दूसरे से संबंधित होते है। दूसरे से संवाद करते है।

इसीलिए एक अंधा आदमी भी उतनी कठिनाई में नहीं होता जितनी कठिनाई में गूंगा होता है। किसी बहरे आदमी का निरीक्षण करो; वह अमानुषिक मालूम पड़ता है। अंधा आदमी अमानुषिक नहीं मालूम पड़ता, लेकिन गूंगा अमानुषिक मालूम पड़ता है। गुँगा आदमी अंधे से अधिक कठिनाई में होता है। अंधा आदमी देख नहीं सकता। लेकिन वह दूसरे से संवाद तो कर सकता है। वह समाज और परिवार वह बडी मनुष्यता का अंग हो सकता है। वह बातचीत कर सकता है। गुँगा आदमी अचानक समाज से बहार पड़ जाता है।

तुम कल्पना करो कि तुम एक वातानुकूलित और साउंड-प्रूफ कांच के कमरे में हो। वहां न कोई ध्वनि पहूंच सकती है। वहां तुम चीख नह सकते। अपने को अभिव्यक्त करने के लिए कुछ भी नहीं कर सकते हो। एक बहरा आदमी सतत ऐसे ही दुख स्वप्न में जीता है। संवाद के बिना वह मनुष्यता का अंग नहीं हो पाता है। अभिव्यक्ति के बिना उसके जीवन का फूल नहीं खिल सकता है। वह किसी के भी संपर्क में नहीं आ सकता है। वह तुम्हारे साथ होकर भी तुमसे बहुत दूर रहता है।

अगर ध्वनि दूसरे तक पहुंचने का वाहन है तो मौन स्वयं तक पहुंचने का वाहन है। ध्वनि के द्वारा तुम दूसरे के साथ संवाद करते हो; मौन के द्वारा तुम अपने में, अपने अतल में उतर जाते हो। यही कारण है कि अनेक विधियों में अंतर्यात्रा के लिए मौन को काम में लाया जाता है। बिलकुल गूंगे और बहरे हो जाओ—जरा देर के लिए ही सही। तब तुम अपने अतिरिक्त और कहीं नहीं जा सकते हो। अचानक तुम्हें लगेगा की तुम अपने अंतस में विराज गये हो।

गुरूजिएफ अपने शिष्यों को लंबे मौन में जाने को कहता था। वह इस बात पर जोर देता था कि मौन में न सिर्फ भाषा का व्यवहार बंद रहे। बल्कि आँख या हाथ के इशारे से भी बातचीत न की जाए। किसी तरह का भी संवाद निषिद्ध था। मौन का अर्थ ही है, संवाद शून्यता।

तुमने शायद ये देखा होगा कि जो लोग खूब बात करना जानते है वे समाज में प्रसिद्ध हो जाते है; जो अपने विचारों को ठीक से संप्रेषित कर सकते है वे नेता हो जाते है। धार्मिक, राजनीतिक या साहित्यक, किसी भी क्षेत्र में यही होता है कि जो कुशलता से अपने विचार व्यक्त कर सकते है, जो निपुणता से बातचीत कर सकते है, वे नेता बन जाते है? क्योंकि वे ज्यादा से ज्यादा लोगों तक सर्वसाधारण तक पहुंच सकते है।

क्या तुमने कभी सुना है कि कोई गूंगा आदमी नेता हुआ है? अंधा आदमी आसानी से नेता हो सकता है। कोई कठिनाई नहीं है। कभी-कभी तो वह बड़ा नेता हो जाता है, क्योंकि उसकी आंखों की उर्जा भी उसके कानों को मिल जाती है। कोई गूंगा आदमी जीवन के किसी क्षेत्र में नेता नहीं हो सकता है। उसमे संवाद की क्षमता ही नहीं है। वह समाजिक नहीं हो सकता।

समाज भाषा है। सामाजिक जीवन के लिए, संबंध के लिए भाषा आधारभूत है। भाषा को छोड़कर तुम अकेले पड़ जाते हो। पृथ्वी करोड़ो लोगों से भरी हो; लेकिन भाषा के खोते ह तुम अकेले हो जाओगे।

मेहर बाबा निरंतर चालीस वर्षों तक मौन में रहे। मौन में वे क्या करते थे? सच तो यह है कि मौन में तुम कुछ नहीं कर सकते। क्योंकि हर कृत्य किसी न किसी भांति दूसरों से संबंधित होता है। यदि कल्पना में भी तुम कुछ करोगे तो तुम्हें दूसरों को कल्पित करना होगा। तुम अकेले नहीं कर सकते हो। अगर तुम बिलकुल अकेले हो तो कृत्य असंभव हो जाएगा। करना दूसरों से संबंधित है। यदि तुम भीतर भाषा छोड़ दो तो सब करना समाप्त हो जाता है। तुम तो हो, लेकिन तुम कुछ कर नहीं रहे हो।

कभी-कभी मेहर बाबा अपने शिष्यों को लिखकर सूचित करते थे कि अमुक तारीक को मैं अपना मौन तोड़ने जा रहा हूं। लेकिन उस दिन के आने पर वे मौन नहीं तोड़ते थे। यह सिलसिला चालीस वर्षों तक चलता रहा। और तब वे मौन ही मर गए। बात क्या थी। वे क्यों कहते थे कि मैं अमुक वर्ष, माह और दिन को अपना मौन तोड़ूगा। लेकिन उसे तोड़ नहीं पाते थे? उन्हें अपना यह कार्यक्रम क्यों बार-बार स्थगित करना पड़ता था। उनके भीतर क्या हो रहा था? वे अपना वचन क्यों नहीं पूरा कर पाते थे?

अगर तुम लंबे अरसे के लिए मौन में रह जाओ, उसे जान लो तो तुम्हारे लिए ध्वनि के जगत में लौटना असंभव हो जाएगा। एक नियम है जिसका कि पालन मेहर बाबा ने नहीं किया और इसीलिए वे मौन से नहीं लौट सके। नियम यह है कि किसी को तीन साल से ज्यादा समय तक मौन में नहीं रहना चाहिए। अगर तुम उस सीमा को पार कर जाओ तो तुम ध्वनि के जगत में फिर वापस नहीं आ सकते। तुम प्रयेत्न कर सकते हो। लेकिन यह असंभव है। ध्वनि से मौन में जाना आसान है। लेकिन मौन से ध्वनि में लौटना बहुत कठिन है। तीन वर्षो के बाद बहुत बातें कठिन हो जाती है। तब मैकेनिज्म वही नहीं रह जाता है। पुराने ढंग से काम नहीं कर सकता है। उसको निरंतर उपयोग में लाना जरूरी है। कोई ज्यादा से ज्यादा तीन साल मौन रह सकता है। उससे आगे उसे खींचने से ध्वनि और शब्द पैदा करने वाला मैकेनिज्म बेकार हो जाता है। वह मर जाता है।

दूसरी बात यह है कि अपने साथ अकेले रहते-रहते आदमी इतना मौन और शांत हो जाता है कि अब उसके लिए बातचीत बहुत दुखदायी हो जाती है। तब किसी से बातचीत करने में उसे लगेगा कि मैं दीवार से बात कर रहा हूं। क्योंकि जो व्यक्ति इतने दिन मौन रह गया है वह जानता है कि तुम उसे समझ पाओगे। वह यह भी जानता है कि मैं वही नहीं कह रहा हूं जो कहना चाहता हूं। पूरी बात ही समाप्त हो गई। इतने गहरे मौन के बाद अब वह ध्वनियों के जगत में नहीं लौट सकता है।

यही कारण है कि मेहर बाबा कोशिश करने के बावजूद फिर बोल नहीं पाए। और वे कुछ कहना चाहते थे; उनके पास कुछ कहने योग्य भी था। लेकिन नीचे तल पर उतरने का यंत्र ही व्यर्थ हो चला था। ऐसे जो वे कहना चाहते थे उसे वे कहे बिना चले गए।

यह समझना उपयोगी होगा। जो भी करो, उसके विपरीत भी करते चलो। विपरीत में गति करना मत भूलों। कुछ घंटों के लिए मौन रहो और बातचीत करो। किसी एक ही ढांचे में बंद मत हो जाओ। तब तुम अधिक जीवित और गतिमान रहोगे। कुछ दिनों तक ध्यान करो, और फिर उसे अचानक बंद कर दो। और कुछ ऐसा करो की जिससे तनाव निर्मित हो सके। तब फिर ध्यान में उतर जाओ। विपरीत छोरों के बीच गति करते रहो; उससे तुम ज्यादा जीवित और गति मान रहोगे। बंध मत जाओ। अटक मत जाओ। अटक मत जाओ। एक बार अटक गए तो तुम दूसरे छोर पर गति नहीं कर पाओगे। और दूसरे छोर पर गति करना ही जीवन है। यह गति गई कि तुम भी गए। तब तुम गुर्दा हो। यह गति बहुत शुभ है।

गुरजिएफ अपने शिष्यों को आकस्मिक बदलाहट करना सिखाता था। पहले वह उपवास पर जोर देता था। और फिर कहता था कि जितना खा सको खाओ। और फिर उपवास करवाता था। कुछ शिष्यों से वह कहता था लगातार कुछ दिन-रात जागते रहो। और फिर कुछ दिन-रात सोते रहो।

ध्रुवीय विपरीतताओं के बीच गति करते रहने से जीवंतता और गति उपलब्ध होती है।

''या कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद, अनाहत को सुनो।''

एक ही विधि में दो विपरीत बातें कही गई है।

''ध्वनि के केंद्र में स्नान करो। मानो किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो।'' यक एक अति है। ''या कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद को सुनो।'' यह दूसरी अति है। एक हिस्सा कहता है कि अपने केंद्र पर पहुंचने वाली ध्वनियों को सुनो और दूसरा हिस्सा कहता है कि सब ध्वनियों को बंद कर ध्वनियों की ध्वनि को सुनो। एक ही विधि में दोनों को समाहित करने का एक विशेष करण है। ताकि तुम एक छोर से दूसरे छोर पर गति कर सको।

यहां ''या'' शब्द चुनाव करने को नहीं कहता है कि इनमें से किसी एक को प्रयोग करना है। नहीं, दोनों को प्रयोग करो। इसीलिए एक विधि में दोनों को समाविष्ट किया गया है। पहले कुछ महीने तक एक का प्रयोग करो और फिर कुछ महीने बाद दूसरे का प्रयोग करो। इस प्रयोग से तुम ज्यादा जीवंत होगे। और तुम दोनों छोरों को जान लोगे। और अगर तुम दोनों छोरों के बीच आसानी से डोलते रहो तो तुम सदा-सर्वदा युवा बने रहोगे। जो लोग सदा एक ही छोर से अटके रहते है वह बूढ़े हो जाते है। और मर जाते है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—25

तंत्र-सूत्र—विधि—39 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी तीसरी विधि:

''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चरण करो।

''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चरण करो। जैस-जैसे ध्वनि पूर्णध्वनि में प्रवेश करती है। वैसे-वैसे तुम भी।''

''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चारण करो।''
उदाहरण के लिए ओम को लो। यह एक आधारभूत ध्वनि है। उ, इ और म, ये तीन ध्वनियां ओम में सम्मिलित है। ये तीनों बुनियादी ध्वनियां है। अन्य सभी ध्वनियां उनसे ही बनी है। उनसे ही नकली है, या उनकी ही यौगिक ध्वनियां है। ये तीनों बुनियादी है। जैसे भौतिकी के लिए इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और प्रोटोन बुनियादी है। इस बात को गहराई से समझना होगा।

गुरजिएफ ने तीन के नियम की बात की है। वह कहता है कि आत्यंतिक अर्थ में अस्तित्व एक है। आत्यंतिक अर्थ में परम अर्थ में एक ही नियम है। लेकिन यह परम है। और जो कुछ हम देखते है वह सापेक्ष है। वह परम नहीं है। वह परम तो सदा प्रच्छन्न्न है। छिपा है। हम उसे देख नहीं सकते। क्योंकि जैसे ही हमें कुछ दिखाई पड़ता है, वह तीन में विभाजित हो जाता है। वह तीन में, द्रष्टा, दृश्य और दर्शन में बंट जाता है।

मैं तुम्हें देख रहा हूं, तो मैं हूं, तुम हो और हम दोनों के बीच दर्शन का, ज्ञान का संबंध है। प्रक्रिया तीन में बंट गई। परम तीन में विभाजित हो गया। जिस क्षण वह ज्ञान बनता है उसी क्षण वह तीन में बंट जाता है। अज्ञात वह एक है; ज्ञात होते ही वह तीन हो जाता है। ज्ञात सापेक्ष है; अज्ञात परम है। परम के संबंध में हमारी चर्चा भी, हमारी बातचीत भी परम नहीं है। क्योंकि ज्यों ही हम उसे परम कहकर पुकारते है, वह ज्ञात हो जात है। जो भी हम जानते है वह सापेक्ष है; यह परम शब्द भी सापेक्ष हो जाता है।

यही कारण है कि लाओत्से जोर देकर कहता है कि सत्या कहा नहीं जा सकता है। जैसे ही तुम उसे कहते हो वह असत्य हो जाता है। कारण यह है कि शब्द देते ही वह सापेक्ष हो जाता है। हम जो भी शब्द दें, चाहे सत्य, परम, परब्रह्म या ताओ कहें, बोलते ही वह सापेक्ष हो जाता है। बोलते ही वह असत्य हो जाता है। एक तीन में बंट जाता है।

तो गुरजिएफ कहता है कि जिस जगत को हम जानते है उसके लिए तीन कास नियम आधारभूत है। अगर हम गहरे में उतरें तो पाएंगे—पाएंगे ही—कि प्रत्येक चीज तीन में बंधी है। इसे ही तीन का नियम कहते है। ईसाई इसे ट्रिनिटी कहते है, जिसमे ईश्वर पिता, जीसस पुत्र और पवित्र आत्मा सम्मिलित है। भारतीय इसे त्रिमूर्ति कहते है, जिसमें ब्रहमा, विष्णु, महेश के मुख एक ही सिर में है। और अब भौतिक शास्त्र कहता है कि अगर हम पदार्थ का विश्लेषण करते हुए उसके भीतर प्रवेश करें तो पदार्थ भी तीन में टूट जाएगा—इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और प्रोटोन।

वैसे ही कवि कहते है कि यदि हम मनुष्य के सौंदर्य-बोध की, उसके भाव की गहराई में उतरे तो वहां भी तीन ही मिलेंगे। सत्य, शिव और सुंदर। मानवीय भावना भी तीन में बंटी है। और रहस्यवादी कहते है कि अगर हम समाधि का विश्लेषण करें तो वहां भी सच्चिदानंद की त्रयी है—सत, चित और आनंद ही त्रयी है। मनुष्य की पूरी चेतना, चाहे वह जिस किसी आयाम में गति करे, तीन के नियम पर पहुंच जाती है।

और तीन के नियम का प्रतीक है। अ, उ और म—ये तीन बुनियादी ध्वनियां है। तुम उन्हें आणविक ध्वनियां भी कह सकते हो। जिन्हें ओम में सम्मिलित कर दिया है। ओम परम के, परमात्मा के अत्यंत निकट है; उसके पीछे ही परम का अज्ञात का वास है। जहां तक ध्वनियों का संबंध है, ओम उनका अंतिम पड़ाव है। अगर तुम ओम अंतिम ध्वनि है। ये तीन अंतिम है। ये अस्तित्व की सीमा बनाती है; इन तीन के पार अज्ञात में परम में प्रवेश है।

भौतिकविद कहते है कि अब हम इलेक्ट्रॉन पर पहुंचकर अंतिम सीमा पर पहुंच गए है; क्योंकि इलेक्ट्रॉन को पदार्थ नहीं कहा जा सकता। ये इलेक्ट्रॉन, ये विद्युत-अणु दृश्य नहीं है; उनमें पदार्थ तत्व नहीं है। और उन्हें अपदार्थ भी नह कहा जा सकता; क्योंकि सब पदार्थ उनसे ही बनता है। और अगर वह न पदार्थ है और न अपदार्थ है तो फिर उसे क्या कहा जाए। किसी ने भी इलेक्ट्रॉन को नहीं देखा। उनका अनुमान भर होता है। गणित के आधार पर माना गया है कि वे है। उनका प्रभाव जाना गया है; लेकिन उन्हें देखा नहीं गया है। और हम उनके आगे नहीं जा सकते; तीन का नियम आखिरी है। और अगर तुम तीन के नियम के पार जाते हो तो तुम अज्ञात में प्रवेश कर जाते हो। तब कुछ कहना असंभव है। इलेक्ट्रॉन के बारे में बहुत कम कहा जा सकता है।

जहां तक ध्वनि का संबंध है, ओम आखिरी है; तुम ओम के आगे नहीं जा कसते। यही कारण है कि ओम का इतना अधिक उपयोग किया गया। भारत में ही नहीं, सारी दुनियां में ओम का व्यवहार होता आया है। ईसाइयों और मुसलमानों का आमीन ओम का ही दूसरा रूप है। आमीन की बुनियादी ध्वनियां भी वही है। अंग्रेजी के शब्द ओमनीप्रेजेंट, में भी वही है। ओमनीपोटैंट का अर्थ है कि जो परम शक्तिशाली हो।

ईसाई और मुसलमान तो अपनी प्रार्थना के अंत में आमीन कहते है; लेकिन हिंदुओं ने ओम का एक पूरा विज्ञान ही निर्मित किया है। वह ध्वनि का विज्ञान है; वह ध्वनि के अतिक्रमण का विज्ञान है। और अगर मन ध्वनि है तो अ-मन अवश्य निध्वनि होगा। या पूर्णध्वनि होगा। दोनों का एक ही अर्थ है।

इसे ठीक से समझ लेना चाहिए। परम को विधायक या नकारात्मक, किसी भी ढंग से कहा जा सकता है। सापेक्ष का दोनों ढंग से कहना होगा, विधायक और नकारात्मक दोनों ढंग से; क्योंकि वह द्वैत है। लेकिन जब तुम परम को अभिव्यक्त देते चलोगे। तो या तो तुम विधायक शब्द प्रयोग करोगे या नकारात्मक। मनुष्य की भाषा में दोनों तरह के शब्द है। विधायक और नकारात्मक दोनों है। जब तुम परम को, अनिर्वचनीय को बताने चलोगे तो तुम्हें कोई शब्द उपयोग करना होगा। जो प्रयोगात्मक हो। यह मन-मन पर निर्भर है।

सूत्र कहता है : ''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चारण करो। जैसे-जैसे ध्वनि पूर्णध्वनि में प्रवेश करती है, वैसे-वैसे तुम भी।''

''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चारण करो।''

ध्वनि का उच्चारण एक सूक्ष्म विज्ञान है। पहले तुम्हें उसका उच्चारण जोर से करना है, बाहर-बाहर करना है; ताकि दूसरे सुन सकें। जोर से उच्चारण शुरू करना अच्छा है। क्यों? क्योंकि जब तुम जोर से उच्चार करते हो तो तुम भी उसे साफ-साफ सुनते हो। जब तुम कुछ कहते हो तो दूसरे से कहते हो; वह तुम्हारी आदत बन गई है। जब तुम बात करते हो तो दूसरों से करते हो। इसलिए तुम अपने को भी तभी सुनते हो जब दूसरों से बात करते हो। तो एक स्वाभाविक आदत से आरंभ करना अच्छा है।

ओम ध्वनि का उच्चार करो, और फिर धीरे-धीरे उस ध्वनि के साथ लयबद्ध अनुभव करो। जब ओम का उच्चार करो तो उससे भर जाओ। और सब कुछ भूलकर ओम ही बन जाओ। ध्वनि ही बन जाओ। और ध्वनि बन जाना बहुत आसान है; क्योंकि ध्वनि तुम्हारे शरीर में तुम्हारे मन में, तुम्हारे समूचे स्नायु संस्थान में गूंजने लग सकती है। ओम की अनुगूँज को अनुभव करो। उसका उच्चार करो और अनुभव करो कि तुम्हारा सारा शरीर उससे भर गया है। शरीर का प्रत्येक कोश उससे गुंज उठा है।

उच्चार करना लयबद्ध होना भी है। ध्वनि के साथ लयबद्ध होओ। ध्वनि ही बन जाओ। और तब तुम अपने और ध्वनि के बीच गहरी लयबद्धता अनुभव करोगे। तब तुममें उसके लिए गहरा अनुराग पैदा होगा। यह ओम की ध्वनि इतनी सुंदर और संगीतमय है। जितना ही तुम उसका उच्चार करोगे उतने ही तुम उसकी सूक्ष्म मिठास से भर जाओगे। ऐसी ध्वनियां है जो बहुत तीखी है। और ऐसी ध्वनियां है जो बहुत मीठी है। ओम बहुत ही मीठी ध्वनि है। और शुद्धतम ध्वनि है। उसका उच्चार करो और उससे भर जाओ।

जब तुम ओम के साथ लयबद्ध अनुभव करने लगोगे तो तुम उसका जोर से उच्चार करना छोड़ सकते हो। फिर होठो को बंद कर लो और भीतर ही भीतर उच्चार करो। लेकिन यह भीतर उच्चर पहले जोर से करना है। शुरू में यह भीतर उच्चार भी जोर से करना है। ताकि ध्वनि तुम्हारे समूचे शरीर में फैल जाए। उसके हरेक हिस्से को, एक-एक कोशिका को छुए। उससे तुम नव जीवन प्राप्त करोगे। वह तुम्हें फिर से युवा और शक्तिशाली बना देगी।

तुम्हारा शरीर भी एक वाद्य-यंत्र है; उसे लयबद्धता की जरूरत है। जब शरीर की लयबद्धता टूटती है तो तुम अड़चन में पड़ते हो। और यही कारण है कि जब तुम संगीत सुनते हो तो तुम्हें अच्छा लगाता है। तुम्हें अच्छा क्यों लगता है? संगीत थोड़े से लय-ताल के अतिरिक्त क्या है? जब तुम्हारे चारों तरफ संगीत होता है तो तुम अच्छा क्यों महसूस करते हो। और शोरगुल

और अराजकता के बीच तुम्हें बेचैनी क्यों होती है? कारण यह है कि तुम स्वयं संगीतमय हो। तुम वाद्य-यंत्र हो; और वह यंत्र प्रतिध्वनि करता है।

अपने भीतर ओम का उच्चार करो और तुम्हें अनुभव होगा कि तुम्हारा समूचा शरीर उसके साथ नृत्य करने लगा है। तब तुम्हें महसूस होगा कि तुम्हारा सारा शरीर उसमें स्नान कर रहा है; उसका पोर-पोर इस स्नान से शुद्ध हो रहा है। लेकिन जैसे-जैसे इसकी प्रतीति गहरी हो, जैसे-जैसे यह ध्वनि ज्यादा से ज्यादा तुम्हारे भीतर प्रवेश करे, वैसे-वैसे उच्चार को धीमा करते जाओ। क्योंकि ध्वनि जितनी धीमी होगी, वह उतनी ही गहराई प्राप्त करेंगी। वह होम्योपैथी की खुराक जैसी है। जितनी छोटी खुराक उतनी ही गहरी उसकी पैठ। गहरे जाने के लिए तुम्हें सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता जाना होगा।

भोंडे और कर्कश स्वर तुम्हारे ह्रदय में नहीं उतर सकते। वे तुम्हारे कानों में तो प्रवेश करेंगे। ह्रदय में नहीं। ह्रदय का मार्ग इतना संकरा है और ह्रदय स्वयं इतना कोमल है कि सिर्फ बहुत धीमे, लयपूर्ण और सूक्ष्म स्वर ही उसमे प्रवेश पा सकते है। और जब तक कोई ध्वनि तुम्हारे ह्रदय तक न जाए तब तक मंत्र पूरा नहीं होता। मंत्र तभी पूरा होता है जब उसकी ध्वनि तुम्हारे ह्रदय में प्रवेश करे, तुम्हारे अस्तित्व के गहनत्म, केंद्रीय मर्म को स्पर्श करे। इसलिए उच्चार को धीमा ओ धीमा करते चलो।

और इन ध्वनियों को धीमा और सूक्ष्म बनाने के और भी कारण है। ध्वनि जितनी सूक्ष्म होगी उतने ही तीव्र बोध की जरूरत होगी उसे अनुभव करने के लिए। ध्वनि जितनी भोंडी होगी उतने ही कम बोध की जरूरत होगी। वह ध्वनि तुम पर चोट करने क लिए काफी है। तुम्हें उसका बोध होगा ही। लेकिन वह हिंसात्मक है। अगर ध्वनि संगीत पूर्ण लयपूर्ण और सूक्ष्म हो तो तुम्हें उसे अपने भीतर सुनना होगा। और उसे सुनने के लिए तुम्हें बहुत सजग, बहुत सावधान होना होगा। अगर तुम सावधान न रहे तो तुम सो जा सकते हो। और तब तुम पूरी बात ही चूक जाओगे।

किसी मंत्र या जप के साथ, ध्वनि के प्रयोग के साथ यही कठिनाई है कि वह नींद पैदा करता है। वह एक सूक्ष्म ट्रैंक्विलाइजर है, नींद की दवा है। अगर तुम किसी ध्वनि को निरंतर दोहराते रहे और उसके प्रति सजग न रहे तो तुम सो जाओगे। क्योंकि तब यांत्रिक पुनरूक्ति हो जाती है। तब ओम-ओम यांत्रिक हो जाता है। और पुनरूक्ति ऊब पैदा करती है। नींद के लिए ऊब बुनियादी तौर से जरूरी है; तुम ऊब के बिना नहीं सो सकते। अगर तुम उत्तेजित हो तो तुम्हें नींद नहीं आएगी।

यही कारण है कि आधुनिक मनुष्य धीरे-धीरे नींद खो बैठा है। कारण क्या है? इतनी उत्तेजना है जितनी पहले कभी नहीं थी। पुरानी दुनियां में जीवन ऊब से भरा होता था। पुनरूक्ति की ऊब से भरा होता था। आज भी अगर तुम कहीं पहाड़ियों में छिपे किसी गांव में चले जाओ तो वहां का जीवन ऊब से भरा मिलेगा। हो सकता है, वह ऊब तुम्हें न महसूस हो; क्योंकि तुम वहां का जीवन ऊब से भरा मिलेगा। हो सकता है, हो सकता है वह ऊब तुम्हें न महसूस हो। क्योंकि तुम वहां रहते तो नहीं वहां केवल छुट्टियों के लिए गये हो। ये उत्तेजना बंबई के कारण है। उन पहाड़ियों के कारण नहीं। वे पहाडियाँ बिलकुल उबाने वाली है। जो वहां रहते है वे ऊबे है और सोए है। एक ही चीज, एक ही चर्चा है, जिसमें कोई उत्तेजना नहीं, कोई बदलाहट नहीं। वहां मानो कुछ होता ही नहीं; वहां समाचार नहीं बनते। चीजें वैसे ही चलती रहती है। जैसे सदा से चलती रही है। वे वर्तुल में घूमती रहती है। जैसे ऋतुऐ घूमती है। प्रकृति घूमती है, दिन-रात वर्तुल में घूमते रहते है। वैसे ही गांव में, पुराने गांव में जीवन वर्तुल में घूमता है। यही वजह है कि गांव वालों को इतनी आसानी से नींद आ जाती है। वहां सब कुछ उबाने वाला है।

आधुनिक जीवन उत्तेजनाओ से भर गया है; वहां कुछ भी दोहराता नहीं है। वहां सब कुछ बदलता रहता है, नया होता रहता है। जीवन की भविष्यवाणी वहां नहीं की जा सकती। और तुम इतने उत्तेजना से भरे हो कि नींद नहीं आती। हर रोज तुम नयी फिल्म देख सकते हो, हर रोज तुम नया भाषण सुन सकते हो। हर रोज एक नयी किताब पढ़ सकते हो। हर रोज कुछ न कुछ नया उपलब्ध है। यह सतत उत्तेजना जारी है। जब तुम सोने को जाते हो तब भी उत्तेजना मौजूद रहती है। मन जागते रहना चाहता है। उसे सोना व्यर्थ मालूम होता है।

अगर तुम किसी विशेष ध्वनि को दोहराते रहो तो वह तुम्हारे भीतर वर्तुल निर्मित कर देती है। उससे ऊब पैदा होती है। उससे नींद आती है। यही कारण है कि पश्चिम में महेश योगी का टी. एम. भावतित ध्यान बिना दवा का ट्रैंक्विलाइजर माना जाने लगा है। वह इसलिए क्योंकि वह मात्र मंत्र-जाप है। लेकिन अगर मंत्र-जाप केवल जाप बन जाए, तुम्हारे भीतर कोई सावचेत न रहे तो जाप को सुनता हो, तो उससे नींद तो आ सकती है। लेकिन और कुछ नहीं हो सकता। ट्रैंक्विलाइजर के रूप में वह ठीक है; अगर तुम्हें अनिद्रा का रोग है तो टी. एम. ठीक है। उसे सहायता मिलेगी।

तो ओम के उच्चार को सजग आंतरिक कान से सुनो। और तब तुम्हें दो काम करने है। एक और मंत्र के स्वर को धीमे से धीमा करते जाओ, उसको मंद और सूक्ष्म करते जाओ और दूसरी और उसके साथ-साथ ज्यादा से ज्यादा सजग होते जाओ। जैसे-जैसे ध्वनि सूक्ष्म होगी। तुम्हें अधिकाधिक सजग होना होगा। अन्यथा तुम चूक जाओगे।

यह विधि है: ''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चारण करो। जैसे-जैसे ध्वनि पूर्णध्वनि में प्रवेश करती है, वैसे-वैसे तुम भी।''

और उस क्षण की प्रतीक्षा करो जब ध्वनि इतनी सूक्ष्म , इतनी आणविक हो जाए कि अब किसी भी क्षण नियमों के जगत से, तीन के जगत से एक के जगत में, परम के जगत में छलांग ले ले। तब तक प्रतीक्षा करो। ध्वनि का विलीन हो जाना—यह मनुष्य के लिए सर्वाधिक सुंदर अनुभव है। तब तुम्हें अचानक पता चलता है कि ध्वनि कही विलीन हो गई। जरा देर पहले तक तुम ओम-ओम की सूक्ष्म ध्वनि को सुन रहे थे और अब वह बिलकुल नहीं है। तुम एक के जगत में प्रवेश कर गए; तीन का जगत जाता रहा। तंत्र इसे पूर्णध्वनि कहता है। बुद्ध इसे ही निर्ध्वनि कहते है।

यह एक मार्ग है—सर्वाधिक सहयोगी, सर्वाधिक आजमाया हुआ। इस कारण ही मंत्र इतने महत्वपूर्ण हो गए। ध्वनि मौजूद ही है और तुम्हारा मन ध्वनि से भरा है; तुम उसे जंपिग बोर्ड बना सकते हो।

लेकिन इस मार्ग की अपनी कठिनाइयां है। पहली कठिनाई नींद है। जिसे भी मंत्र का उपयोग करना हो उसे इस कठिनाई के प्रति सजग होना चाहिए। नींद ही बाधा है। यह उच्चार इतना पुनरूक्ति भरा है। इतना लयपूर्ण है, इतना उबाने वाला है। कि नींद का आना लाजिमी है। तुम नींद के शिकार हो सकते हो। और यह मत सोचो कि तुम्हारी नींद ध्यान है। नींद ध्यान नहीं है। नींद अपने आप में अच्छी है। लेकिन सावधान रहो। नींद के लिए ही अगर मंत्र का उपयोग करना है तो बात अलग है। लेकिन अगर उसका उपयोग आध्यात्मिक जागरण के लिए करना है तो नींद से सावधान रहना जरूरी है। जो मंत्र का उपयोग साधना की तरह करते है उनके लिए नींद दुश्मन है। और यह नींद बहुत आसानी से घटती है और बहुत सुंदर है।

यह भी स्मरण रहे कि यह और ही तरह की नींद है। यह सामान्य नींद नहीं है। मंत्र से पैदा होने वाली नींद सामान्य नींद नहीं है। यह और ही तरह की नींद है। यूनानी उसे ही हिप्नोस कहते है; उससे ही ''हिप्नोसिस'' शब्द बना है। जिसका अर्थ सम्मोहन होता है। योग उसे योग-तंद्रा कहता है। एक विशेष नींद, जो सिर्फ योगी को घटित होती है। साधारणजन को नहीं। यह हिप्नोस है, सम्मोहन-निद्रा है; यह आयोजित है, सामान्य नहीं है। और भेद बुनियादी है, यह ठीक से समझ लेना चाहिए।

अनेक मंदिरों में, चर्चों में लोग सो जाते है। धर्म-चर्चा सुनते हुए लोग सो जाते है। उन्होंने उन शास्त्रों को इतनी बार सुना है कि उन्हें ऊब होने लगती है। उस चर्चा में अब कोई उत्तेजना न रही। पूरी कथा उन्हें मालूम है। तुमने रामायण इतनी बार सूनी है कि तुम मजे से सो सकते हो। और नींद में ही इसे सून सकते हो। और तुम्हें कभी ऐसा भी नहीं लगेगा कि तुम सो रहे थे। क्योंकि तुम कुछ चुकोगे भी नहीं। कथा से तुम इतने परिचित हो।

उपदेशकों की आवाज गहन रूप से उबाने वाली होती है। नींद पैदा करने वाली होती है। अगर एक ही सुर में तुम कुछ बोलते रहो तो उससे नींद पैदा होगी। अनेक मानस्विद अपने अनिद्रा के रोगियों को धार्मिक चर्चा सुनने की सलाह देते है। उससे नींद

में जाना सरल है। जब भी तुम ऊब से भरोंगे तो तुम सो जाओगे। लेकिन यह नींद सम्मोह है, यह नींद योग-तंद्रा है। इसमें भेद क्यों है?

साधारण नींद में प्रश्न करने वाला मन मौजूद रहता है। वह सौ नहीं जाता है। सम्मोहन में तुम्हारा प्रश्न करने वाला मन सो जाता है। लेकिन तुम नहीं सोए होते हो। यही कारण है कि सम्मोहन विद तुम्हें जो कुछ कहता है उसे तुम सुन पाते हो और तुम उसके आदेश का पालन करते हो। नींद में तुम सुन नहीं सकते; तुम तो सोए हो। लेकिन तुम्हारी बुद्धि नहीं सोती है। इसलिए अगर कुछ ऐसी चीज हो जो तुम्हारे लिए घातक हो सकती है। तो तुम्हारी बुद्धि तुम्हारी नींद को तोड़ देगी।

एक मां अपने बच्चे के साथ सोयी है। वह मां और कुछ नहीं सुनेगा, लेकिन अगर उसका बच्चा जरा सी भी आवाज करेगा, जरा भी हरकत करेगा तो वह तुरंत जाग जाएगी। अगर बच्चे को जरा सी बेचैनी होगी तो मां जाग जायेगी। उसकी बुद्धि सजग है; तर्क करने वाला मन जागा हुआ है।

साधारण नींद में तुम सोए होते हो; लेकिन तुम्हारी तर्क-बुद्धि जागी होती है। इसीलिए कभी-कभी नींद में भी पता चलता है कि वे सपने है। हां, जिस क्षण तुम समझते हो कि यह स्वप्न है, तुम्हारा स्वप्न टूट जाता है। तुम समझ सकते हो कि यह व्यर्थ है; लेकिन ऐसी प्रतीति के साथ ही स्वप्न टूट जाता है। तुम्हारा मन सजग है; उसका एक हिस्सा सतत देख रहा है। लेकिन सम्मोहन या योग तंद्रा से द्रष्टा सो जाता है।

यही उन सबकी समस्या है। जो निर्ध्वनि या पूर्णध्वनि में जाने के लिए, पार जाने के लिए ध्वनि की साधना करते है। उन्हें सावधान रहना है। कि मंत्र आत्मा सम्मोहन न पैदा करे। तो तुम क्या कर सकते हो।

तुम सिर्फ एक चीज कर सकते हो। जब भी तुम मंत्र का उपयोग करते हो, मंत्रोच्चार करते हो, तो सिर्फ उच्चार ही मत करो, उसके साथ-साथ सजग होकर उसको सुनो भी। दोनों काम करो: उच्चार भी करो और सुनो भी। उच्चार और श्रवण दोनों करना अन्यथा खतरा है। अगर सचेत होकर नहीं सुनते हो तो उच्चार तुम्हारे लिए लोरी बन जाएगा। और तुम गहन नींद में सो जाओगे। वह नींद बहुत अच्छी होगी। उस नींद से बाहर आने पर तुम ताजे और जीवंत हो जाओगे। तुम अच्छा अनुभव करोगे। लेकिन यह असली चीज नहीं है। तुम तब असली चीज ही चूक गए।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—25

तंत्र-सूत्र—विधि—40 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी चौथी विधि:

निर्ध्वनि में जागों।'' स्वामी डयूटर

''किसी भी अक्षर के उच्चारण के आरंभ में और उसके क्रमिक परिष्कार में, निर्ध्वनि में जागों।''

कभी-कभी गुरूओं ने इस विधि का खूब उपयोग किया है। और उनके अपने नए-नए ढंग है। उदाहरण के लिए, अगर तुम किसी झेन गुरु के झोंपड़े पर जाओ तो वह अचानक एक चीख मारेगा और उससे तुम चौंक उठोगे। लेकिन अगर तुम खोजोंगे तो तुम्हें पता चलेगा कि वह तुम्हें महज जगाने के लिए ऐसा कर रहा है। कोई भी आकस्मिक बात जगाती है। वह आकस्मिकता तुम्हारी नींद तोड़ देती है।

सामान्य: हम सोए रहते है। जब तक कुछ गड़बड़ी न हो, हम नींद से नहीं जागते। नींद में ही हम चलते है; नींद में ही हम काम करते है। यही कारण है कि हमे अपने सोए होने का पता नहीं चलता। तुम दफ्तर जाते हो, तुम गाड़ी चलाते हो। तुम लौटकर घर आते हो और अपने बच्चों को दुलार करते हो। तुम अपनी पत्नी से बातचीत करते हो। यह सब करने से तुम सोचते हो कि मैं बिलकुल जागा हुआ हूं। तुम सोचते हो कि मैं सोया-सोया ये काम कैसे कर सकता हूं।

लेकिन क्या तुम जानते हो कि ऐसे लोग है जो नींद में चलते है? क्या तुम्हें नींद में चलने वालों के बारे में कछ खबर है।

नींद में चलने वालों की आंखें खुली होती है। और वे सोए रहते है। और उसी हालत में वे अनेक काम कर गुजरते है। लेकिन दूसरी सुबह उन्हें याद भी नहीं रहता कि नींद में मैंने क्या-क्या किया। वे यहां तक कर सकते है कि दूसरे दिन थाने चले जाएं और रपट दर्ज कराए कि कोई व्यक्ति रात उनके घर आया था और उपद्रव कर रहा था। और बाद में पता चलता है कि यह सारा उपद्रव उन्होंने ही किया था। वे ही रात में सोए-सोए उठ आते है। चलते-फिरते है, काम कर गुजरते है; फिर जाकर बिस्तर में सो जाते है। अगली सुबह उन्हें बिलकुल याद नहीं रहता कि क्या-क्या हुआ। वे नींद में दरवाजे तक खोल लेते है, चाबी से ताले तक खोलते है; वे अनेक काम कर गुजरते है। उनकी आंखें खुली रहती है। और वे नींद में होते है।

किसी गहरे अर्थ में हम सब नींद में चलने वाले है। तुम अपने दफ्तर जा सकते हो। तुम लौट कर आ सकते हो, तुम अनेक काम कर सकते हो। तुम वही-वही बात दोहराते रह सकते हो। तुम अपनी पत्नी को कहोगे कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं; और इस कहने में कुछ मतलब नहीं होगा। शब्द मात्र यांत्रिक होंगे। तुम्हें इसका बोध भी नहीं रहेगा। कि तुम अपनी पत्नी से कहते हो कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। जाग्रत पुरूष के लिए ये सारा जगत नींद में चलने वालों का जगत है।

यह नींद टूट सकती है। उसके लिए कुछ विधियों का प्रयोग करना होगा।

यह विधि कहती है: ''किसी भी अक्षर के उच्चारण के आरंभ में और उसके क्रमिक परिष्कार में, निर्ध्वनि में जागों।''

किसी ध्वनि, किसी अक्षर के साथ प्रयोग करो। उदाहरण के लिए, ओम के साथ ही प्रयोग करो। उसके आरंभ में ही जागों, जब तुमने ध्वनि निर्मित नहीं की। या जब ध्वनि निर्ध्वनि में प्रवेश करे, तब जागों। ये कैसे करोगे?

किसी मंदिर में चले जाओ। वहां घंटा होगा या घंटी होगी। घंटे को हाथ में ले लो और रुको। पहले पूरी तरह से सजग हो जाओ। ध्वनि होने वाली है और तुम्हें उसका आरंभ नहीं चूकना है। पहले तो समग्ररूपेण सजग हो जाओ—मानो इस पर ही तुम्हारी जिंदगी निर्भर है। ऐसा समझो कि अभी कोई तुम्हारी हत्या करने जा रहा है। और तुम्हें सावधान रहना है। ऐसी सावधान रहो—मानों कि यह तुम्हारी मृत्यु बनने वाली है।

और यदि तुम्हारे मन में कोई विचार चल रहा हो तो अभी रुको; क्योंकि विचार नींद है। विचार के रहे तुम सजग नहीं हो सकते। और जब तुम सजग होते हो तो विचार नहीं रहता है। रुको। जब लगे कि अब मन निर्विचार हो गया, कि अब मन में कोई विचार नहीं है। सब बादल छंट गये है। तब ध्वनि के साथ गति करो।

पहले जब ध्वनि नहीं है। तब उस पर ध्यान दो। और फिर आंखें बंद कर लो। और जब ध्वनि हो, घंटा बजे, तब ध्वनि के साथ गति करो। ध्वनि धीमी से धीमी, सूक्ष्म से सूक्ष्म होती जायेगी और फिर खो जाएगी। इस ध्वनि के साथ यात्रा करो। सजग और सावधान रहो। ध्वनि के साथ उसके अंत तक यात्रा करो। उसके दोनों छोरों को, आरंभ और अंत को देखो।

पहले किसी बाहरी ध्वनि के साथ, घंटा या घंटी के साथ प्रयोग करो। फिर आँख बंद करके भीतर किसी अक्षर का, ओम या किसी अन्या अक्षर का उच्चार करो। उसके साथ वही प्रयोग करो। यह कठिन होगा। इसीलिए हम पहले बाहर की ध्वनि के साथ प्रयोग करते है। जब बाहर करने में सक्षम हो जाओगे तो भीतर करना भी आसान होगा। तब भीतर करो। उस क्षण को प्रतीक्षा करो जब मन खाली हो जाए। और फिर भीतर ध्वनि निर्मित करो। उसे अनुभव करो, उसके साथ गति करो, जब तक वह बिलकुल न खो जाए।

इस प्रयोग को करने में समय लगेगा। कुछ महीने लग जाएंगे कम से कम तीन महीने। तीन महीनों में तुम बहुत ज्यादा सजग हो जाओगे। अधिकाधिक जागरूक हो जाओगे। ध्वनि पूर्व अवस्थ और ध्वनि के बाद की अवस्था का निरीक्षण करना है। कुछ भी नहीं चूकना है। और जब तुम इतने सजग हो जाओ कि ध्वनि के आदि और अंत को देख सको तो इस प्रक्रिया के द्वारा तुम बिलकुल भिन्न व्यक्ति हो जाओगे।

कभी-कभी यह अविश्वसनीय सा लगता है कि ऐसी सरल विधियों से रूपांतरण कैसे हो सकता है। आदमी इतना अशांत है। दुःखी और संतप्त है। और ये विधियां इतनी सरल मालूम देती है। ये विधियां धोखाधड़ी जैसी लगती है। अगर तुम कृष्ण मूर्ति के पास जाओ और उनसे कहो कि यह एक विधि है तो कहेंगे कि यह एक मानसिक धोखाधड़ी है। इसके धोखे में मत पड़ो। इसे भूल जाओ। इसे छोड़ो। देखने पर तो वह ऐसी ही लगती है। धोखे जैसी लगती है। ऐसी सरल विधियों से तुम रूपांतरित कैसे हो सकते हो।

लेकिन तुम्हें पता नहीं है। वे सरल नहीं है। तुम जब उनका प्रयोग करोगे तब पता चलेगा कि वे कितनी कठिन है। मुझसे उनके बारे में सुनकर तुम्हें लगता है कि वे सरल है। अगर मैं तुमसे कहूं कि यह जहर है और उसकी एक बूंद से तुम मर जाओगे। और अगर तुम जहर के बारे में कुछ नहीं जानते हो कि तुम कहोगे; ''आप भी क्या बात करते है? बस, एक बूंद और मेरे सरीखा स्वस्थ और शक्तिशाली आदमी मर जाएगा। अगर तुम्हें जहर के संबंध में कुछ नहीं पता है तो ही तुम ऐसा कह सकते हो। यदि तुम्हें कुछ पता है तो नहीं कह सकते।

यह बहुत सरल मालूम पड़ता है: किसी ध्वनि का उच्चार करो और फिर उसके आरंभ और अंत के प्रति बोधपूर्ण हो जाओ। लेकिन यह बोधपूर्ण होना बहुत कठिन बात है। जब तुम प्रयोग करोगे तब पता चलेगा। कि यह बच्चों का खेल नहीं है। तुम बोधपूर्ण नहीं हो। जब तुम इस विधि को प्रयोग करोगे तो पहली बार तुम्हें पता चलेगा कि मैं आजीवन सोया-सोया रहा हूं अभी तो तुम समझते हो कि मैं जागा हुआ हूं, सजग हूं।

इसका प्रयोग करो, किसी भी छोटी चीज के साथ प्रयोग करो। अपने को कहो कि में लगातार दस श्वासों के प्रति सजग रहूंगा, बोधपूर्ण रहूंगा। और फिर श्वासों की गिनती करो। सिर्फ दस श्वासों की बात है। अपने को कहो कि मैं सजग रहूंगा और एक से दस तक गिनुंगा आती श्वासों को, जाती श्वासों को, दस श्वासों को सजग रहकर गिनुंगा।

तुम चूक-चूक जाओगे। दो या तीन श्वासों के बाद तुम्हारा अवधान और कहीं चला जाएगा। तब तुम्हें अचानक होश आएगा कि मैं चूक गया हूं, मैं श्वासों को गिनना भूल गया। या अगर गिन भी लोगे तो दस तक गिनने के बाद पता चलेगा कि मैंने बेहोशी में गिनी, मैं जागरूक नहीं रहा।

सजगता अत्यंत कठिन बात है। ऐसा मत सोचो कि ये उपाय सरल है विधि जो भी हो। सजगता साधनी है। उसे बोध पूर्वक करना है। बाकी चीजें सिर्फ सहयोगी है। और तुम अपनी विधियां स्वयं भी निर्मित कर सकते हो। लेकिन एक चीज सदा याद रखने जैसी है कि सजगता बनी रहे। नींद में तुम कुछ भी कर सकते हो; उसमे कोई समस्या नहीं है। समस्या तो तब खड़ी होती है जब यह शर्त लगायी जाती है कि इसे होश से करो, बोध पूर्वक करो।

(इस ध्यान को अति सुंदर और विकसित कर ओशो ने कुंडलिनी ध्यान बनाया है। उसमें दो चरण ओशो ने और जोड़ दिये, पहले तो उर्जा को जगाओं, और फिर नृत्य कर उर्जा का प्रफुलित कर के फैलने दो, केवल आनंदित उर्जा का एक पुंज आपको घेरे रहे। तब तुम अति ऊर्जा से लबरेज हो, फिर सुनो संगीत को....ओर वह भी छम-छम अविरल बहते संगीत को आदि से अंत से अनेक......वाद्य की ध्वनियों के साथ ''स्वामी दूतर'' द्वारा तैयार किया संगीत)

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—41 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी पाँचवीं विधि:

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रित ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।
वही चीज।

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।''

तुम किसी वाद्य को सुन रहे हो—सितार या किसी अनय वाद्य को। उसमें कई स्वर है। सजग होकर उसके केंद्रीय स्वर को सुनो। उस स्वर को जो उसका केंद्र हो और उसके चारों और सभी स्वर घूमते हों; उसकी आंतरिक धारा को सुनो, जो अन्य सभी स्वरों को सम्हाले हुए हो। जैसे तुम्हारे समूचे शरीर को उसका मेरुदंड, उसकी रीढ़ सम्हाले हुए है। वैसे ही संगीत की भी रीढ़ होती है। संगीत को सुनते हुए सजग होकर उसमे प्रवेश करो और उसके मेरुदंड को खोजों—उस केंद्रीय स्वर को खोजों जो पूरे संगीत को सम्हाले हुए है। स्वर तो आते जाते रहते है। लेकिन केंद्रीय तत्व प्रवाहमान रहता है। उसके प्रति जागरूक होओ।
बुनियादी रूप से मूलत: संगीत का उपयोग ध्यान के लिए किया जाता था। भारतीय संगीत का विकास तो विशेष रूप से ध्यान की विधि के रूप में ही हुआ था। वैसे ही भारतीय नृत्य का विकास भी ध्यान विधि के लिए के लिए तैयार किया गया था। संगीतज्ञ या नर्तक के लिए ही नहीं श्रोता या दर्शक के लिए भी वे गहरे ध्यान के उपाय थे।

नर्तक या संगीतज्ञ मात्र टेक्नीशियन भी हो सकता है। अगर उसके नृत्य या संगीत में ध्यान नहीं है तो वह टेक्नीशियन ही है। वह बड़ा टेक्नीशियन हो सकता है। लेकिन तब उसने संगीत में आत्मा नहीं है, शरीर भर है। आत्मा तो तब होती है जब संगीतज्ञ गहरा ध्यानी हो। संगीत तो बाहरी चीज है। सितार बजाते हुए वादक सितार ही नहीं बजाता है, वह भीतर अपने बोध को भी जगाता है। बाहर सितार बजता है और भीतर उसका गहन बोध गति करता है। बहार संगीत बहता रहता है; लेकिन संगीतज्ञ अपने अंतरस्थ केंद्र पर सदा सजग बोधपूर्ण बना रहता है। वही बोध समाधि बन जाता है। वही शिखर बन जाता है।

कहते है कि संगीतज्ञ जब सचमुच संगीतज्ञ हो जाता है तो वह अपना वाद्य तोड़ देता है। वह अब उसके काम का न रहा है। और अगर उसे अब भी वाद्य की जरूरत पड़ती है तो वह अभी संगीतज्ञ नहीं हुआ है। वह अभी सिक्खड़ ही है। सीख रहा है। अगर तुम ध्यान के साथ संगीत का अभ्यास करते हो, उसे ध्यान बनाते हो तो देर-अबेर आंतरिक संगीत ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाएगा। और बाहरी संगीत ने सिर्फ कम महत्वपूर्ण रहेगा, बल्कि अंतत: वह बाधा बन जाएगा। तुम सितार को उठाकर फेंक दोगे। तुम वाद्य को अलग रख दोगे। क्योंकि अब तुम्हें तुम्हारा आंतरिक वाद्य मिल गया है। लेकिन वह बहारी वाद्य के बिना नहीं मिल सकता। बहारी वाद्य के साथ आसानी से सजग हुआ जा सकता है। लेकिन जब सजगता सध जाए तो तुम बाहर को छोड़ो और भीतर गति कर जाओ। यही बात श्रोता के लिए भी सही है।

लेकिन जब तुम संगीत सुनते हो, तो क्या करते हो? तुम ध्यान नहीं करते हो; उलटे तुम संगीत का शराब की तरह उपयोग करते हो। तुम विश्राम के लिए उसका उपयोग करते हो। यही दुर्भाग्य है। यही पीड़ा है। जो विधियां जागरूकता के लिए विकसित की गई थी उनका उपयोग नींद के लिए किया जा रहा है। और ऐसे ही आदमी अपने को धोखा दिये जा रहा है। अगर तुम्हें कोई चीज जागने के लिए दि जा रही है।

यही कारण है कि सदियों-सदियों तक सदगुरूओं के उपदेशों को गुप्त रखा गया। क्योंकि सोचा गया कि सोए हुए व्यक्ति को विधियां बताना व्यर्थ है। वह उसे सोने के ही काम लगाएगा; अन्यथा वह नहीं कर सकता। इसलिए पात्रों को ही विधियां दी जाती थी। ऐसे विशेष शिष्यों को ही उनका प्रयोग बताया जाता था जो अपनी नींद को छोड़ने को राज़ी है। जो अपनी नींद से जागने के लिए तैयार है।

ओस्पेंस्की ने अपनी एक पुस्तक जार्ज गुरजिएफ को यह कहकर समर्पित की है कि ''इस व्यक्ति ने मेरी नींद तोड़ी है।''

ऐसे लोग उपद्रवी होते है। गुरजिएफ, बुद्ध या जीसस जैसे लोग उपद्रवी ही होंगे। यही कारण है कि हम उनसे बदला लेते है। जो हमारी नींद में बाधा डालता है। उसे हम सूली पर चढ़ा देते है। वह हमें नहीं भाता है। हम सुंदर सपने देख रहे थे और वह आकर हमारी नींद में बाधा डालता है। तुम उसकी हत्या कर देना चाहते हो। स्वप्न इतना मधुर था।

स्वप्न मधुर हो चाहे न हो, लेकिन एक बात निश्चित है कि वह स्वप्न है और व्यर्थ है, बेकार है। और स्वप्न अगर सुंदर है तो ज्यादा खतरनाक है; क्योंकि उसमें आकर्षण अधिक होगा। वह नशे का काम कर सकता है।

हम संगीत का, नृत्य का उपयोग नशे के रूप कर रहे है। और अगर तुम संगीत और नृत्य का उपयोग नशे की तरह कर रहे हो तो वे तुम्हारी नींद के लिए ही नहीं, तुम्हारी कामुकता के लिए भी नशे का काम देंगे। और यह स्मरण रहे कि कामुकता और नींद संगी-साथी है। जो जितना सोया-सोया होगा, वह उतना ही कामुक होगा। जो जितना जागा हुआ होगा, वह उतना ही कम कामुक होगा। कामुकता की जड़ नींद में है। जब तुम जागोगे तो ज्यादा प्रेमपूर्ण होओगे; कामवासना की पूरी ऊर्जा प्रेम में रूपांतरित हो जाती है।

यह सूत्र कहता है: ''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।''

और तब तुम उसे जान लोगे जो जानना है, जो जानने योग्य है। तब तुम सर्वव्यापक हो जाओगे। उस संगीत के साथ, उसके केंद्रीय तत्व को प्राप्त कर तुम जाग जाओगे। और उसे जागरूकता के साथ तुम सर्वव्यापी हो जाओगे।

अभी तो तुम कहीं एक जगह हो; उस बिंदु को हम अहंकार कहते है। अभी तुम उसी बिंदु पर हो। अगर तुम जाग जाओगे तो यह बिंदु विलीन हो जायेगा। तब तुम कहीं एक जगह नहीं होगे, सब जगह होगे। सर्वव्यापी हो जाओगे। तब तुम सर्व ही हो जाओगे। तुम सागर हो जाओगे, तुम अनंत हो जाओगे।

मन सीमा है; ध्यान से अनंत में प्रवेश है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—42 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी छठवीं विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि—42 (ओशो)
किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो कि वह सुनाई दे;

''किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो कि वह सुनाई दे; फिर उस उच्चार को मंद से मंदतर किए जाओ—जैसे-जैसे भाव मौन लयबद्धता में लीन होता जाए।''

कोई भी ध्वनि काम देगी; लेकिन अगर तुम्हारी कोई प्रिय ध्वनि हो तो वह बेहतर होगी। क्योंकि तुम्हारी प्रिय ध्वनि मात्र ध्वनि नहीं रहती; जब तुम उसका उच्चार करते हो तो उसके साथ एक अप्रकट भाव भी उठता है। और फिर धीरे-धीरे वह ध्वनि तो विलीन हो जाएगी और भाव भर रह जाएगा।

ध्वनि को भाव की तरह से जाने वाले मार्ग की तरह उपयोग करना चाहिए। ध्वनि मन है और भाव हृदय है। मन को हृदय से मिलने के लिए मार्ग चाहिए। हृदय में सीधा प्रवेश कठिन है। हम हृदय को इतना भुला दिए है। हम हृदय के बिना इतने जन्मों से रहते आए है कि हमें पता ही नहीं रहा कि कहां से उसमे प्रवेश करें। द्वार बंद मालूम पड़ता है। हम हृदय की बात बहुत करते है। लेकिन वह बातचीत भी मन की ही है। हम कहते है कि हम हृदय से प्रेम करते है। लेकिन हमारा प्रेम भी मानसिक है। मस्तिष्क गत है। हमारा प्रेम भी बौद्धिक प्रेम है। हृदय की बात भी मस्तिष्क में घटित होती है। हमें पता ही नहीं रहा है कि हृदय कहां है।

हृदय से मेरा अभिप्राय शारीरिक हृदय से नहीं है। उसे तो हम जानते है। लेकिन शरीर शास्त्री और वैद्य-डाक्टर कहेंगे कि उस हृदय में प्रेम की संभावना नहीं है; वह तो केवल पंप का काम करता है, फुफ्फुस का काम करता है। उसमे और कुछ नहीं है। और बातें बस कपोलकल्पना है, कविता है, स्वप्न है।

लेकिन तंत्र जानता है कि तुम्हारे शारीरिक हृदय के पीछे ही एक गहरा केंद्र छिपा है। उस गहरे केंद्र तक मन के द्वारा ही पहुंचा जा सकता है। क्योंकि हम मन में है। हम अपने मन में है और अंतस की और कोई भी यात्रा वहीं से आरंभ हो सकती है।

मन ध्वनि है। आवाज है। अगर सब ध्वनि बंद हो जाए तो तुम्हारा मन नहीं रहेगा। मौन में मन नहीं है। यही कारण है कि मौन पर इतना बल दिया जाता है। मौन अ-मन अवस्था है। आमतौर से हम कहते है कि मेरा मन शांत हो रहा है। यह बात ही बेतुकी है। अर्थहीन है। क्योंकि मन का अर्थ है मौन की अनुपस्थिति। तुम यह नहीं कह सकते कि मन शांत है। मन है तो शांत नहीं हो सकता और शांति है तो मन नहीं हो सकता। शांत मन नाम की कोई चीज नहीं होती। हो नहीं सकती। यह ऐसा ही है जैसे कि तुम कहो कि कोई व्यक्ति जीवित मृत है। उसका कोई अर्थ नहीं है। अगर वह मृत है तो वह जीवित नहीं हो सकता।

और अगर वह जीवित है तो मृत नहीं हो सकता। सच तो यह है कि मन जब विदा होता है तो शांति आती है। या कहो कि शांति आती है तो मन विदा हो जाता है। दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

मन ध्वनि है। अगर यह ध्वनि व्यवस्थित है तो तुम स्वस्थ चित हो। और अगर वह अराजक हो तो तुम विक्षिप्त कहलाओगे। लेकिन दोनों हालत में ध्वनि है। आवाज है। और हम मन के तल पर रहते है। उस तल से हृदय के आंतरिक तल पर कैसे उतरा जाए?
ध्वनि का उपयोग करो। ध्वनि का उच्चार करो। किसी एक ध्वनि का उच्चार उपयोगी होगा। अगर मन में अनेक ध्वनियां है तो उन्हें छोड़ना कठिन होगा। और अगर एक ही ध्वनि हो तो उसे सरलता से छोड़ा जा सकता है। इसलिए पहले एक ध्वनि के लिए अनेक का त्याग करना होगा। एकाग्रता का यही उपयोग है।

इसलिए अच्छा हो कि कोई ध्वनि, कोई नाम, कोई मंत्र लो, जो तुम्हें प्रीतिकर हो, जिससे तुम्हारा भाव जुड़ा हो। अगर कोई हिंदू राम शब्द का उपयोग करता है तो उसके साथ उसका भाव जुड़ा होगा। यह उसके लिए मात्र शब्द नहीं रहेगा। यह उसकी बुद्धि तक ही सीमित नहीं रहेगा; इसकी तरंगें उसके हृदय तक चली जाएंगी उसको भला इसका पता न हो; लेकिन यह ध्वनि उसके रक्त में समाई है। उसकी मांस मज्जा में सम्माहित है। उसके पीछे लंबी परंपरा है। गहरे संस्कार है; उसके पीछे जन्मों-जन्मों के संस्कार है। जिस ध्वनि के साथ तुम्हारा लंबा लगाव बन जाता है। वह तुममें गहरी जड़ें जमा लेती है। इसका उपयोग करो। उसका उपयोग किया जा सकता है।

यही कारण है कि दुनिया के दो सबसे पुराने धर्म—हिंदू और यहूदी—धर्म परिवर्तन में कभी विश्वास नहीं करते। वे सबसे प्राचीन धर्म है, आदि धर्म है; और सारे धर्म उनकी ही शाखा प्रशाखा है। ईसाइयत और इसलाम यहूदी परंपरा की शाखाएं है। और बौद्ध, जैन और सिक्ख धर्म हिंदू धर्म की शाखाएं है। और ये दोनों आदि धर्म धर्म-परिवर्तन को नहीं मानती।

अगर तुम्हें किसी ध्वनि से प्रेम नहीं है तो अपना नाम ही उपयोग करो। लेकिन यह भी बहुत कठिन है। कारण यह है कि तुम अपने प्रति इतनी निंदा से भरे हो कि तुम्हें अपने प्रति कोई भाव नहीं है। कोई आदर नहीं है। दूसरे भले तुम्हारा आदर करते हों; लेकिन तुम खुद अपना आदर नहीं करते हो।

तो पहले बात है कि कोई उपयोगी ध्वनि खोजों। उदाहरण के लिए, अपने प्रेमी या अपनी प्रेमिका का नाम भी चलेगा। अगर तुम्हें फूल से प्रेम है तो गुलाब शब्द काम दे देगा। कोई भी ध्वनि जो तुम्हें भाती है। जिसे सुनकर तुम स्वस्थ अनुभव करते हो। उसका उपयोग कर लो। और अगर तुम्हें ऐसा कोई शब्द न मिले तो परंपरागत स्रोतों से जो कुछ शब्द उपल्बध है उनका उपयोग कर सकते हो। ओम का उपयोग करो। आमीन का उपयोग करो। मरिया भी चलेगा। राम भी चलेगा। बुद्ध भी चलेगा। महावीर का नाम भी काम में लाया जा सकता है। कोई भी नाम जिसके लिए तुम्हें भाव हो, चलेगा। लेकिन भाव होना जरूरी है। इसीलिए गुरु का नाम सहयोगी हो सकता है। लेकिन भाव चाहिए। भाव अनिवार्य है।

‘’किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो, कि वह सुनाई दे; फिर उस उच्चार को मंद से मंदतर किए जाओ—जैसे-जैसे भाव मौन लयबद्धता में लीन होता जाए।‘’

ध्वनि को निरंतर घटाते जाओ। उच्चार को इतना धीमा करो कि तुम्हें भी उसे सुनने के लिए प्रयत्न कना पड़े। ध्वनि को कम करते जाओ, और तुम्हें फर्क मालूम होगा। ध्वनि जितनी धीमी होगी, तुम उतने ही भाव से भरोंगे। और जब ध्वनि विलीन होती है तो भाव ही शेष रहता है। इस भाव को नाम नहीं दिया जा सकता वह प्रेम है, प्रगाढ़ प्रेम है। लेकिन यह प्रेम किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं है। यही फर्क है।

जब तुम कोई ध्वनि या शब्द उपयोग करते हो तो उसके साथ प्रेम जुड़ा रहता है। तुम राम-राम करते हो तो इस शब्द के प्रति तुम्हारे भीतर बड़ा गहरा भाव है। लेकिन यह भाव राम के प्रति निवेदित है, राम पर सीमित है। लेकिन जब तुम राम ध्वनि को मंद से मंदतर करते जाते हो तो एक क्षण आयेगा। जब राम विदा हो जाएगा। ध्वनि विदा हो जाएगी और सिर्फ भाव शेष रहेगा। यह प्रेम का भाव है जो राम के प्रति नहीं है। यह किसी के भी प्रति नहीं है। केवल प्रेम का भाव है—मानो तुम प्रेम के सागर हो।

प्रेम जब किसी के प्रति निवेदित नहीं होता तो वह ह्रदय का प्रेम होता है। और जब वह निवेदित प्रेम होता है तो वह मस्तिष्क का होता है। जो प्रेम किसी के प्रति है, वह मस्तिष्क से घटित होता है। और केवल प्रेम मात्र प्रेम ह्रदय को होता है। और यह केवल प्रेम अनिवेदित प्रेम ही प्रार्थना बनता है। अगर वह किसी के प्रति निवेदित है तो वह प्रार्थना नहीं बन सकता; तब तुम अभी रहा पर ही हो।

इसीलिए मैं कहता हूं कि अगर तुम ईसाई हो तो तुम हिंदू की भांति नहीं आरंभ कर सकते; तुम्हें ईसाई की भांति आरंभ करना चाहिए। अगर तुम मुसलमान हो तो तुम ईसाई की तरह शुरू नहीं कर सकते। तुम्हें मुसलमान की तरह ही शुरू करना चाहिए। लेकिन तुम जितने गहरे जाओगे उतने ही कम मुसलमान या ईसाई या हिंदू रहोगे। सिर्फ आरंभ हिंदू मुसलमान या ईसाई की तरह से होगा।

तुम जितना ही ह्रदय की तरफ गति करोगे—ध्वनि जिनी कम होगी और भाव जितना बढ़ेगा—तुम उतने ही कम हिंदू या मुसलमान रह जाओगे। और जब ध्वनि विलीन हो जाएगी तो तुम केवल मनुष्य होगे...न हिंदू। न मुसलमान। न ईसाई।

संप्रदाय या धर्म का यही फर्क है। धर्म एक है; संप्रदाय अनेक है। संप्रदाय शुरू करने में सहयोगी है। लेकिन तुम अगर सोचते हो कि संप्रदाय अंत है, मंजिल है, तो तुम कही के नहीं रहोगे। वे आरंभ भर है। तुम्हें उनके पार जाना होगा; क्योंकि आरंभ अंत नहीं है। अंत में धर्म है; आरंभ में संप्रदाय है। संप्रदाय का उपयोग धर्म के लिए करो। सीमित का उपयोग असीम के लिए करो; क्षुद्र का उपयोग विराट के लिए करो।

यदि तुम किसी हिंदू मंदिर में गये हो तो वहां तुमने गर्भ-गृह का नाम सुना होगा। मंदिर के अंतरस्थ भाग को गर्भ कहते है। शायद तुमने ध्यान न दिया हो कि उसे गर्भ क्यों कहते है। अगर तुम मंदिर की ध्वनि का उच्चार करोगे—हरेक मंदिर की अपनी ध्वनि है, अपना मंत्र है। अपना इष्ट देवता है। और इस इष्ट देवता से संबंधित मंत्र है। अगर उस ध्वनि का उच्चार करोगे तो पाओगे कि उससे वहां वही उष्णता पैदा होती है जो मां के गर्भ में पाई जाती है। यही कारण है कि मंदिर के गर्भ जैसा गोल और बंद, करीब-करीब बंद बनाया जाता है। उसमे एक ही छोटा सा द्वारा रहता है।

जब ईसाई पहली बार भारत आये और उन्होंने हिंदू मंदिरों को देखा तो उन्हें लगा कि ये मंदिर तो बहुत अस्वास्थ्यकर कर है। उनमें खिड़की नहीं है। सिर्फ एक छोटा सा दरवाजा है। लेकिन मां के गर्भ में भी तो एक ही द्वार होता है। और उसमे भी हवा के आने-जाने की व्यवस्था नहीं रहती। यही वजह है कि मंदिर को ठीक मां के पेट जैसा बनाया जाता है। उसमे एक ही दरवाजा रखा जाता है। अगर तुम उसकी ध्वनि का उच्चार करते हो तो गर्भ सजीव हो उठता है। और इसे इसलिए भी गर्भ कहा जाता है। क्योंकि वहां तुम नया जन्म ग्रहण कर सकते हो। तुम नया मनुष्य बन सकते हो।

यही कारण है कि मंदिरों में अन्य धर्मो के लोगों को प्रवेश नहीं मिलता। अगर कोई मुसलमान नहीं है तो उसे मक्का में प्रवेश नहीं मिल सकता है। और यह ठीक है। इसमे कोई भूल नहीं है। इसका कारण यह है कि मक्का एक विशेष विज्ञान का स्थान है। जो व्यक्ति मुसलमान नहीं है वह वहां ऐसी तरंग लेकिर जाएगा जो पूरे वातावरण के लिए उपद्रव हो सकती है। अगर किसी मुसलमान को हिंदू मंदिर में प्रवेश नहीं मिलता है तो यह अपमानजनक नहीं है। जो सुधारक है, वह मंदिरों के विषय में कुछ नहीं जानते। धर्म एक गुह्म विज्ञान है। वे केवल उपद्रव पैदा करते है।

हिंदू मंदिर केवल हिंदुओं के लिए है। क्योंकि हिंदू मंदिर एक विशेष स्थान है, विशेष उदेश्य से निर्मित हुआ है। सदियों-सदियों से वे इस प्रयत्न में लगे है। कि कैसे जीवंत मंदिर बनाएँ जाएं। और कोई भी व्यक्ति उसमे उपद्रव पैदा कर सकता है। और यह उपद्रव खतरनाक है। सिद्ध हो सकता है। मंदिर कोई सार्वजनिक स्थान नहीं है। वहाँ एक विशेष उदेश्य से और विशेष लोगों के लिए बनाया गया है। वह आम दर्शकों के लिए नहीं है।

यही कारण है कि पुराने दिनों में आम दर्शकों को वहां प्रवेश नहीं मिलता था। अब सब को जाने दिया जाता है; क्योंकि हम नहीं जानते है कि हम क्या कर रहे है। दर्शकों को नहीं जाने दिया जाना चाहिए। यह कोई खेल तमाशे का स्थान नहीं है। यह स्थान विशेष तरंगों से तरंगायित है, विशेष उदेश्य के लिए निर्मित हुआ है।

इसलिए एक स्थान का उपयोग करो—स्थान के रूप में मंदिर अच्छा है। ये विधियां मंदिर के लिए है। मंदिर अच्छा है; मस्जिद अच्छी है। चर्च अच्छा है। तुम्हारा अपना धर इन विधियों के लिए उपयुक्त नहीं है। वहां इतना कोलाहल है कि वह अराजकता का स्थान बन गया है। और तुम इतने बलवान नहीं हो कि अपनी ध्वनि से उस वातावरण को बदल सको। तो अच्छा है कि किसी ऐसी जगह चले जाओ। जो किसी विशेष ध्वनि के लिए बना हो। ऐसे स्थान का उपयोग करो। और अच्छा है कि रोज-रोज एक ही स्थान को काम में लाओ।

धीरे-धीरे तुम शक्ति शाली हो जाओगे। और धीरे-धीरे मन से ह्रदय में उतर जाओगे। तब तुम कही भी यह प्रयोग कर सकते हो। तब सारा ब्रह्मांड तुम्हारा मंदिर बन जाएगा। तब समस्या नहीं रहेगी।

लेकिन आरंभ में स्थान का चुनाव जरूरी है। और अगर समय का, निश्चित समय का चुनाव कर सको तो यह और अच्छा। क्योंकि तब वह मंदिर उस निश्चित समय पर तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा। रोज ठीक उसी समय पर मंदिर तुम्हारा इंतजार करेगा। उस वक्त वह ज्यादा खुला होगा। उसे प्रसन्नता होगी कि तुम आ गए। वह सारा स्थान प्रसन्न होगा। और मैं ये बात प्रतीक के अर्थ में नहीं कह रहा हूं, यह एक सच्चाई है।

यह ऐसा है कि जैसे तुम किसी निश्चित समय पर भोजन लेते हो और रोज ठीक उसी समय पर तुम्हारा शरीर भूख अनुभव करने लगता है। शरीर की अपनी अलग आंतरिक घड़ी है। शरीर अपने ठीक समय पर भूख प्यास अनुभव करता है। अगर तुम प्रतिदिन एक विशेष समय पर सोते हो तो तुम्हारा पूरा शरीर उस समय सोने के लिए तैयार हो जाता है। और अगर तुम रोज-रोज अपने खाने और सोन का समय बदलते रहते हो तुम अपने शरीर को उपद्रव में डाल रहे हो।

अब तो वे कहते है कि ऐसे परिवर्तन से तुम्हारी आयु प्रभावित हो सकती है। अगर तुम रोज-रोज अपने शरीर की चर्या को, रूटीन को बदलते हो तो संभव है कि तुम्हारी उम्र कम हो जाए। यदि तुम अस्सी साल जीने वाले थे तो इस सतत परिवर्तन के कारण तुम सत्तर साल ही जीओगे। तुम दस साल गंवा दोगे। और अगर तुम शरीर की घड़ी के अनुसार अपनी चर्या चलाते हो तो तुम आसानी से अस्सी साल की बजाएं नब्बे साल वर्षो तक जीवित रह सकत हो। दस वर्ष जोड़े जा सकते है।

ठीक इसी तरह तुम्हारे चारों तरफ हर चीज की अपनी घड़ी है और सारा संसार जागतिक समय में गति करता है। अगर तुम प्रतिदिन निश्चित समय पर मंदिर में प्रवेश करते हो तो मंदिर तुम्हारे लिए तैयार होता है। और तुम मंदिर के लिए तैयार होते हो। ये दो तैयारियाँ आपस में मिलती है। और उसका फल हजार गुना हो जाता है।

यह तुम अपने घर में एक छोटा सा कोना इसके लिए सुरक्षित कर ले सकते हो। लेकिन तब उस स्थान को किसी और काम के लिए उपयोग मत करो। क्योंकि हर काम की अपनी तरंगें है। अगर तुम उस स्थान को व्यवसाय के काम में लाते हो, वहां ताश खेलते हो, तो वह स्थान कनफ्यूज्ड हो जाएगा। अब तो इन कनफ्यूज्ड को रेकार्ड करने के यंत्र है; जाना जा सकता है कि स्थान कनफ्यूज्ड है।

अगर तुम अपने घर में एक छोटा सा कोना इसके लिए अलग कर लो तो अच्छा । घर में एक छोटा सा मंदिर ही बना लो; बहुत अच्छा रहेगा। अगर तुम एक छोटा मंदिर बना सको तो सर्वोतम है। लेकिन फिर उसे किसी दूसरे काम में मत लाओ। उसे अपना निजी मंदिर रहने दो। और शीध्र ही परिणाम आने लगेंगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—43 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी सातवीं विधि:

स्वामी आनंद प्रसाद ”मनसा”

‘’मुंह को थोड़ा-सा खुला रखते हुए मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।‘’
मन को शरीर में कहीं भी स्थिर किया जा सकता है। सामान्यत: हमने उसे सिर में स्थिर कर रखा है; लेकिन उसे कहीं भी स्थिर किया जा सकता है। और स्थिर करने के स्थान के बदलने से तुम्हारी गुणवता बदल जाती है। उदाहरण के लिए, पूर्व के कई देशों में, जापान, चीन, कोरिया आदि में परंपरा से सिखाया जाता है कि मन पेट में है। सि में नहीं है। और इस करण उन लोगों के मन के गुण बदल जाते है। जो सोचते है कि मन पेट में है। जो लोग सोचते है कि मन सिर में है। उनके ये गुण नहीं हो सकते।

असल में मन कहीं भी नहीं है। सिर में है मस्तिष्क; मन का अर्थ है एकाग्रता; तुम मन को कही भी स्थिर कर सकते हो। और जहां उसे एक बार स्थिर कर दोगे वहां से उसे हटाना कठिन होगा। उदाहरण के लिए, अब मनोवैज्ञानिक और मनुष्य के गहरे में शोध करने वाले लोग कहते है कि जब तुम संभोग कर रहे हो तो तुम्हारा मन सिर से उतर कर कामेंद्रित पर चला जाता है। अन्यथा तुम्हारी काम-क्रिया बेकार जाएगी। अगर मन सिर में ही रहे तो तुम काम-भोग में गहरे नहीं उतर पाओगे। तब

काम-समाधि नहीं घटित होगी और तुम्हें आर्गाज्म का अनुभव नहीं होगा। तब तुम्हें उसका शिखर नहीं प्राप्त होगा। तुम बच्चे पैदा कर सकेत हो; लेकिन तुम्हें प्रेम के शिखर का कोई अनुभव नहीं होगा।
तुम्हें उसकी कोई समझ नहीं है। जिसकी तंत्र चर्चा करता है या जिसे खजुराहो चित्रित करता है। तुम नहीं समझ सकते। क्या तुमने खजुराहो देखा है, अगर तुम खजुराहो नहीं गए हो तो तुमने खजुराहो के मंदिरों के चित्र अवश्य देखे होंगे। उनके चेहरों को ध्यान से देखो; संभोग रत जोड़ों को देखो, उनके चेहरो को देखो। वे चेहरे दिव्य मालूम पड़ते है। वे काम-भोग में संलग्न है; लेकिन उनके चेहरों में बुद्ध की समाधि झलकती है। उन्हें क्या हो गया है?

उनका काम भोग मानसिक नहीं है। वे बुद्धि से संभोग नहीं करते है; वे उसके संबंध में विचार नहीं करते है। वे बुद्धि से नीचे उतर आए है; उनका फोकस बदल गया है; और सिर से हट जाने के कारण उनकी चेतना कर्मेंद्रिय पर उतर आई है। अब मन नहीं है। अब मन अ-मन हो गया है। इसीलिए उनके चेहरों पर बुद्ध की समाधि झलकती है। उनका काम-भोग ध्यान बन गया है।

क्यों फोकस बदल गया। अगर तुम अपने मन के फोकस को बदल देते हो, अगर तुम उसे सिर से हटा लेते हो। तो सिर विश्राम में होता है। चेहरा विश्राम में होता है। तब सभी तनाव विलीन हो जाते है। तब तुम नहीं हो, तब अहंकार नहीं है।

यही कारण है कि चित जितना बौद्धिक होता है, बुद्धिवादी होता है, उतना ही वह प्रेम करने में असमर्थ हो जाता है। प्रेम के लिए भिन्न फोकसिंग की जरूरत है। प्रेम में तुम्हारा फोकस ह्रदय के पास होने की जरूरत है; संभोग में तुम्हारा फोकस काम केंद्र के पास होने की जरूरत है। जब तुम गणित करते हो तो सिर उसके लिए उचित जगह है। लेकिन प्रेम गणित नहीं है; संभोग बिलकुल गणित नहीं है। और अगर सिर में गणित से भरे होकर तुम संभोग में उतरते हो तो तुम अपनी ऊर्जा नष्ट करते हो। तब सारा श्रम बेचैनी पैदा करेगा।

लेकिन मन को बदला जा सकता है। तंत्र कहता है कि शरीर में सात चक्र है और मन को उनमें से किसी भी चक्र पर स्थिर किया जा सकता है। प्रत्येक चक्र का अलग गुण है। और अगर तुम एक विशेष चक्र पर एकाग्र करोगे तो तुम भिन्न ही व्यक्ति हो जाओगे।

जापान में एक सैनिक समुदाय हुआ है, जो भारत के क्षत्रियों जैसा है। उन्हें समुराई कहते है, उन्हें सैनिक के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है। और उन्हें पहली सीख यह दी जाती है कि तुम अपने मन को सिर से उतार कर नाभि-केंद्र के ठीक दो इंच नीचे ले आओ। जापान में इस केंद्र को हारा कहते हे। समुराई को मन को हारा पर लाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जब तक समुराई हारा को अपने मन का केंद्र नहीं बना लेना है तब तक उसे युद्ध में भाग लेने की इजाजत नहीं है।

और यही उचित है। समुराई संसार के सर्वश्रेष्ठ योद्धाओं में गिने जाते है। दुनिया में समुराई का कोई मुकाबला नहीं है। वह भिन्न ही किस्म का मनुष्य है, भिन्न ही प्राणी है; क्योंकि उसका केंद्र भिन्न है।

वे कहते है कि जब तुम युद्ध करते हो तो समय नहीं रहता है। और मन को समय की जरूरत पड़ती है। वह हिसाब-किताब करता है। अगर तुम पर कोई आक्रमण करे और उसे समय तुम्हारा मन सोच-विचार करने लगे कि कैसे बचाव किया जाए, तो तुम गए; तुम अपना बचाव न कर सकोगे। समय नहीं है; तुम्हें तब समयातित में काम करना होगा। और मन समयातित में काम नहीं कर सकता है। मन को समय चाहिए। मन को समय चाहिए। चाहे कितना भी थोड़ा हो, मन को समय चाहिए।

नाभि के नीचे एक केंद्र है जिसे हारा कहते है; यह हारा समयातित में काम करता है। अगर चेतना को हारा पर स्थिर किया जाए और तब योद्धा लड़े तो वह युद्ध प्रज्ञा से लड़ा जाएगा। मस्तिष्क से नहीं। हारा पर स्थिर योद्धा आक्रमण होने के पूर्व जान जाता है के आक्रमण होने वाला है। यह हारा का एक सूक्ष्म भाव है। बुद्धि का नहीं। यह कोई अनुमान नहीं है; यह टेलीपैथी है।

इसके पहले कि तुम उस पर आक्रमण करो, उसके पहले कि तुम उस पर आक्रमण करने की सोचो। वह विचार उसे पहुंच जाता है। उसके हारा पर चोट लगती है और वह अपना बचाव करने को तत्पर हो जाता है। वह आक्रमण होने के पहले ही अपने बचाव में लग जाता है। उसने अपना बचाव कर लिया।

कभी-कभी जब दो समुराई आपस में लड़ते है तो हार-जीत मुश्किल हो जाती है। समस्या यह होती है कि कोई किसी को नहीं हरा सकता। किसी को विजेता नहीं घोषित कर सकता। एक तरह से निर्णय असंभव है; क्योंकि आक्रमण ही नहीं हो सकता। तुम्हारे आक्रमण करने के पहले ही वह जान जाता है।

एक भारतीय गणितज्ञ हुआ। सारा संसार चकित था; क्योंकि वह कोई हिसाब-किताब नहीं करता था। उसका नाम रामानुजम था। तुम उसे कोई भी समस्या दो और वह तुरंत उत्तर बता देता था। इंग्लैंड का सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ हार्डी तो रामानुजम के पीछे पागल था। हार्डी सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ था। लेकिन उसे भी किसी-किसी प्रश्न को हल करने में छह-छह घंटे लग जाते थे। लेकिन रामानुजम का हाल यह था कि तुम उसे प्रश्न दो और वह उसका उत्तर तुरंत बता देता था। इस ढंग से मन के काम करने का कोई उपाय नहीं है। मन को तो समय चाहिए। रामानुजम को बार-बार पूछा गया कि तुम यह कैसे करते हो? वह कहता था कि मैं नहीं जानता; तुम मुझे प्रश्न कहते हो और मुझे उसका उत्तर आ जाता है। वह कहीं नीचे से आता है। वह मेरे सिर से नहीं आता है।

यह उत्तर उसके हारा से आता था। उसे खुद यह बात नहीं मालूम थी। उसे कोई प्रशिक्षण भी नहीं मिला था। लेकिन मेरे देखे वह अपने पिछले जन्म में जापानी रहा होगा; क्योंकि भारत में हमने हारा पर काम नहीं किया है।

तंत्र कहता है कि अपने मन को भिन्न-भिन्न केंद्रों पर स्थिर करो और उसके भिन्न-भिन्न-भिन्न परिणाम होंगे। यह विधि मन को जीभ पर, जीभ के मध्य भाग पर स्थिर करने को कहती है।

''मुंह को थोड़ा सा खुला रखते हुए....।''

मानो तुम बोलने जा रहे हो। मुंह को बंद नहीं, थोड़ा सा खुला रखना है—मानो तुम बोलने वाले हो। ऐसा नहीं है कि तुम बोल रहे हो; ऐसा ही कि तुम बोलने जा रहे हो। मुंह को इतना ही खोलों जितना उस समय खोलते हो जब बोलने को होते हो। और तब मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। तब तुम्हें अनूठा अनुभव होगा। क्योंकि जीभ के ठीक बीच में एक केंद्र है जो तुम्हारे विचारों को नियंत्रित करता है। अगर तुम अचानक सजग हो जाओ और उस केंद्र पर मन को स्थिर करो तो तुम्हारे विचार बंद हो जाते है। जीभ के ठीक बीच में मन को स्थिर करो—मानो तुम्हारा समस्त मन जीभ में चला आया है। जीभी के ठीक बीच में।

मुंह को थोड़ा सा खुला रखो, जैसे कि तुम बोलने जा रहे हो। और तब मन को इस तरह स्थिर करो कि वह सिर में न होकर जीभ में आ जाए, जीभ के ठीक मध्य भाग में।

जीभ में वाणी का, बोलने का केंद्र है; और विचार वाणी है। जब तुम सोचते हो, विचार करते हो तो क्या करते हो? तुम अपने भीतर बातचीत करते हो। क्या तुम भीतर बातचीत किए बिना विचार कर सकते हो? तुम अकेले हो; तुम किसी दूसरे व्यक्ति के साथ बातचीत नहीं कर रहे हो। लेकिन तब भी तुम विचार कर रहे हो। तब तुम विचार कर रहे हो तो क्या कर रहे हो? तुम अपने बातचीत कर रहे हो, उसमें तुम्हारी जी संलग्न है।

अगली दफा जब तुम विचार में संलग्न होओ तो सजग होकर अपनी जीभ पर अवधान दो। उस वक्त तुम्हारी जीभ ऐसे कंपित होगी जैसे वह किसी के साथ बातचीत करते समय होती है। फिर अवधान दो और तुम्हें पता चलेगा कि तरंगें जीभ के मध्य में केंद्रित है; वे मध्य से उठकर पूरी जीभ पर फैल जाती है।

विचार करना अंतस की बातचीत है। और अगर तुम अपनी चेतना को, अपने मन को जीभ के मध्य में केंद्रित कर सको तो विचार ठहर जाते है। जो लोग मौन का अभ्यास करते है, वे यही तो करते है कि बातचीत के प्रति बहुत बोधपूर्ण हो जाते है। और अगर तुम महीने दो महीने, या वर्ष भर बिलकुल मौन रह सको। बिना बातचीत के रह सको , तो तुम देखोगें कि तुम्हारी जीभ कितनी जोर से कंपित होती है। तुम्हें इसका पता नहीं चलता है; क्योंकि तुम निरंतर बात करते रहते हो। और उससे तरंगों का निरसन हो जाता है।

लेकिन अगर अभी भी तुम रुककर अपने विचार के प्रति सजग होओ तो तुम्हें मालूम होगा कि जीभ थोड़ी-थोड़ी कंपित हो रही है। अब अपनी जीभ को पूरी तरह ठहरा दो, रोक दो और तब सोचने की चेष्टा करो; तुम नहीं सोच पाओगे। जीभ को ऐसे स्थिर कर दो जैसे वह जग गई हो। उसमें कोई गति मत होने दो; और तब तुम्हारा सोचना-विचारना असंभव हो जाएगा। केंद्र ठीक मध्य में है; मन को वहीं स्थिर करो।

''मुंह को थोड़ा-सा खुला रखते हुए मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।''

यह दूसरी विधि है और पहली जैसी ही है।

''अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।''

पहली विधि से तुम्हारा विचार बंद हो जाएगा। तुम अपने भीतर एक ठोसपन अनुभव करोगे—मानो तुम ठोस हो गए हो। जब विचार नहीं होते है तो तुम अचल हो जाते हो। थिर हो जाते हो। और जब विचार नहीं है और तुम अचल हो तो तुम शाश्वत के अंग हो जाते हो। यह शाश्वत बदलता हुआ लगाता है। लेकिन दरअसल वह अचल है, ठहरा हुआ है। निर्विचार में तुम शाश्वत के, अचल के अंग हो जाते हो।

विचार के रहते तुम चलायमान के, परिवर्तनशील के अंग हो; क्योंकि प्रकृति चलायमान है, संसार चलायमान है। यही कारण है कि हम इसे संसार कहते है। संसार का अर्थ है: चक्र, चाक। यह चल रहा है। चल रहा है; यह सतत घूम रहा है। संसार निरंतर गति है। और जो अदृश्य है, परम है, वह अचल है, ठहरा हुआ है।

यह ऐसा है जैसे की चाक तो घूमता है। लेकिन जिसके सहारे वह घूमता है वह धुरी अचल है। चाक तभी घूम सकता है जब उसके केंद्र पर कुछ है जो सदा अचल है—धुरी अचल है। संसार चल रहा है, और ब्रह्मा अचल है। जब विचार विसर्जित होता है तो तुम अचानक इस लोक से दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते हो। भीतरी गति के बंद होते ही तुम शाश्वत के अंग हो जाते हो—उस शाश्वत के, जो कभी बदलता नहीं है।

''अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, अकार ध्वनि को अनुभव करो।''

मुंह को थोड़ा-सा खुला रखे, मानों तुम बोलने जा रहे हो। और तब श्वास को भीतर ते जाओ। और उस ध्वनि के प्रति सजग रहो जो भीतर आती हुई श्वास से पैदा होती है। वह ही हकार है। चाहे श्वास भीतर जाती है, या बाहर। इस ध्वनि को तुम्हें पैदा नहीं करना है; तुम्हें तो अंदर आती श्वास को अपनी जीभ पर केवल महसूस करना है। यह बहुत धीमा स्वर है। लेकिन है। वह

हकार जैसा मालूम होता है। वह बहुत मौन है; मुश्किल से सुनाई देता है। उसे सुनने के लिए तुम्हें बहुत सजग होना पड़ेगा। लेकिन उसे पैदा करने की चेष्टा मत करना। अगर तुमने उसे पैदा करने की चेष्टा की तो तुम चुक जाओगे। पैदा की हुई ध्वनि किसी काम की नहीं होती। जब-जब श्वास भीतर जाती है या बाहर आती है, तब जो ध्वनि अपने आप पैदा होती है वह स्वाभाविक है।

लेकिन विधि कहती है कि भीतर आती श्वास के साथ प्रयोग करना है, बाहर जाती श्वास के साथ नहीं। क्योंकि बाहर जाती श्वास के साथ तुम भी बाहर चल जाओगे। ध्वनि के साथ-साथ तुम भी बाहर चले जाओगे। जब कि चेष्टा भीतर जाने की है। अंत: भीतर जाती श्वास के साथ हकार ध्वनि को अनुभव करो। देर-अबेर तुम्हें अनुभव होगा कि यह ध्वनि सिर्फ जीभ में ही नहीं, कंठ में भी हो रही है। लेकिन तब वह बहुत ही धीमी हो जाती है। उसे सुनने के लिए प्रगाढ़ जागरूकता की जरूरत है।

तो जीभ से शुरू करो; फिर धीरे-धीरे सजगता को बढ़ाओं, उसे महसूस करो। तब तुम उसे कंठ से सुनोंगे। और उसके बाद उसे अपने हृदय में सुनने लगोगे। और जब वह हृदय में पहुँचती है तो तुम मन के पार चले गए। ये सारी विधियां वह सेतु निर्मित करती है जहां से तुम विचार से निर्विचार में, मन से अ-मन में, सतह से केंद्र में प्रवेश करते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—44 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी आठवीं विधि:

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

ओम ध्वनि पर एकाग्र करो; लेकिन इस ओम में म न रहें। तब सिर्फ उ बचता है। यह कठिन विधि है; लेकिन कुछ लोगों के लिए यह योग्य पड़ सकती है। खासकर जो लोग ध्वनि के साथ काम करते है। संगीतज्ञ, कवि, जिनके काम बहुत संवेदनशील है, उनके लिए यह विधि सहयोगी हो सकती है। लेकिन दूसरों के लिए जिनके कान संवेदनशील नहीं है, यह विधि कठिन पड़ेगी। क्योंकि यह बहुत सूक्ष्म है।

तो तुम्हें ओम का उच्चारण करना है और इस उच्चारण में तीनों ध्वनियों को—अ, उ और म को महसूस करना है। ओम का उच्चारण करो और उसमें तीन ध्वनियों को—अ, उ और म को अनुभव करो। वे तीनों ओम में समाहित है। बहुत संवेदनशील काम ही इन तीनों ध्वनियों को अलग-अलग सुन सकते है। वे अलग-अलग है, यद्यपि बहुत करीब-करीब भी है। अगर तुम उन्हें अलग-अलग नहीं सुन सकते तो यह विधि तुम्हारे लिए नहीं है। तुम्हारे कानों को उनके लिए प्रशिक्षित करना होगा।

जापान में, विशेषकर झेन परंपरा में, वे पहले कानों को प्रशिक्षित करते है। कानों के प्रशिक्षण के उपाय है। बाहर हवा चल रही है; उसकी एक ध्वनि है। गुरु शिष्य से कहता है कि इस ध्वनि पर अपने कान को एकाग्र करो; उसके सूक्ष्म भेदों को, उसकी बदलाहटों को समझो; देखो कि कब ध्वनि कुपित है और कब उन्मत्त, कब ध्वनि करणावान है और कब प्रेमपूर्ण हे। कब वह शक्तिशाली है। और कब नाजुक है। ध्वनि की बारीकियों को अनुभव करो। वृक्षों से होकर हवा गुजर रही है। उस महसूस करो। नदी बह रही है; उसके सूक्ष्म भेदों को पहिचानों।

और महीनों साधक नदी के किनारे बैठकर उसके कलकल स्वर को सुनता रहता है। नदी का स्वर भी भिन्न-भिन्न होता है। वह सतत बदलता रहता है। बरसात में नदी पूर पर होती है; बहुत जीवंत होती है, उमड़ती होती है। उस समय उसके स्वर भिन्न होते है। और गर्मी में नदी ना कुछ होती है। उसका कलकल भी समाप्त हो जाता है। लेकिन अगर तुम सुनना चाहो तो वह सूक्ष्म स्वर भी सूना जा सकता है। साल भर नदी बदलती रहती है और साधक को सजग रहना पड़ता है।

हरमन हेस के उपन्यास सिद्धार्थ एक माझी के साथ रहता है। नदी है, माझी है और सिद्धार्थ है; उनके अतिरिक्त और कोई नहीं है। और माझी बहुत शांत व्यक्ति है। वह आजीवन नदी के साथ रहता है; वह इतना शांत हो गया है कि कभी-कभार ही बोलता है। और जब भी सिद्धार्थ अकेलापन महसूस करता है, माझी उससे कहता है कि तुम जाओ नदी के किनारे और उसकी कल-कल ध्वनि को सुनो। मनुष्य की बकवास कि बजाएं नदी को सुनना बेहतर है।

और सिद्धार्थ धीरे-धीरे नदी के साथ लयबद्ध हो जाता है। और तब उसे नदी की भाव दशा का बोध होने लगता है। नदी की भाव दशा बदलती रहती है। कभी वह मैत्रीपूर्ण है और कभी नहीं; कभी वह गाती है और कभी रोती-चीखती है; कभी वह हंसती है और कभी उसे उदासी घेर लेती है। और सिद्धार्थ उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म भेदों को पकड़ने लगता है। उसके कान नदी के साथ लयबद्ध हो जाते है।

तो हो सकता है, आरंभ में तुम्हें यह विधि कठिन मालूम पड़े। लेकिन प्रयोग करो; ओम का उच्चार करो और उच्चार करते हुए ओम की ध्वनि को अनुभव करो। इसके तीन, ध्वनियों सम्मिलित; ओम तीन स्वरों का समन्वय है। और जब तुम इन तीन स्वरों को अलग-अलग अनुभव कर लो तो उनमें से अ और म को छोड़ दो। तब तुम ओम नहीं कह सकोगे; क्योंकि अ निकल गया, म भी निकल गया। तब तुम ओम नहीं कह सकोगे; क्योंकि अ निकल गया , म भी निकल गया। तब सिर्फ उ बच रहेगा। क्या होगा?

मंत्र असली चीज नहीं है। असली चीज ओम नहीं है और न उसका छोडना है। असली चीज तुम्हारी संवेदनशीलता है। पहले तुम तीन ध्वनियों के प्रति संवेदनशील होते हो, जो कठिन काम है। और जब तुम इतने संवेदनशील हो जाते हो कि तुम उनमें से दो स्वरों को, अ और म को छोड़ सकते हो तो सिर्फ बीच का स्वर बचता है। और इस प्रयत्न में तुम्हारा मन विसर्जित हो जाता है। तुम उसमे इतने तल्लीन हो जाओगे, उसके प्रति इतने अवधान से भरे जाओगे, तुम इतने संवेदनशील हो जाओगे कि विचार विसर्जित हो जाएंगे। और अगर तुम सोच-विचार करते हो तो तुम स्वरों के प्रति संवेदनशील नहीं हो सकते।

यह तुम्हें तुम्हारे सिर से बारह निकालने का परोक्ष उपाय है। बहुत सारे उपाय प्रयोग में लाए गए है। और वे बहुत सरल प्रतीत होते है। तुम्हें आश्चर्य होता है कि इन सरल उपायों से क्या हो सकता है। लेकिन चमत्कार घटित होता है; क्योंकि वे उपाय परोक्ष है। तुम्हारे मन को बहुत सूक्ष्म चीज पर स्थिर किया जा सकता है। इस प्रयत्न में सोच-विचार नहीं चल सकता है।

तुम्हारा मन खो जाएगा। और तब किसी दिन अचानक तुम्हें इस बात का पता चलेगा। और तुम चकित रह जाओगे कि क्या हुआ।

झेन में कोआन का, पहेली का प्रयोग होता है। एक बहुत प्रचलित कोआन है जो नए साधकों को दिया जाता है। उन्हें कहा जाता है कि एक हाथ की ताली सुनो। अब ताली तो दो हाथों से बजती है। लेकिन उन्हें कहा जाता है कि एक हाथ से बजने वाली ताली को सुनो।

किसी झेन गुरु की सेवा में एक लड़का रहता था। वह देखता था कि अनेक लोग आते है, गुरु के पैर पर सिर रखते है और कहते है कि हमे बताएं कि हम किस पर ध्यान करें। गुरु उन्हें कोई कोआन दिया करता था। वह लड़का गुरु के छोटे-मोटे काम कर दिया करता था। वह उसकी सेवा में था। उसकी उम्र नौ साल की रही होगी। रोज-रोज साधकों को आते-जाते देखकर वह भी एक दिन बहुत गंभीरता के साथ गुरु के निकट गया और उसके चरणों में सिर रखकर निवेदन किया कि मुझे भी ध्यान करने के लिए कोई कोआन दें।

गुरु हंसा। लेकिन लड़का गंभीर बना रहा। तो गुरु ने उसे कहा कि ठीक है, एक हाथ की ताली सुनने की चेष्टा करो। और जब सुनाई पड़ जाए तो आकर मुझे बताना।

लड़के ने बहुत प्रयत्न किया। रात-रात भर उसे नींद नहीं आई। कुछ दिनों बात वह आकर कहता है मैंने सून ली। वह वृक्षों से गुजरती हवा है। लेकिन गुरु ने पूछा; इसमें हाथ कहा है? जाओ और फिर प्रयत्न करो। ऐसे लड़का रोज आत ही रहा। वह कोई ध्वनि खोज लेता और गुरु को बताता। लेकिन हर बार गुरु कहता कि यह भी नहीं है; और प्रयत्न करो।

फिर एक दिन लड़का गुरु के पास नहीं आया। गुरु ने उसकी बहुत प्रतीक्षा की; लेकिन वह नहीं आया। तब उसने अपने दूसरे शिष्यों से कहा कि जाकर पता करो कि क्या हुआ। गुरु ने कहा कि मालूम होता है कि उसने एक हाथ की ताली सुन ली है। शिष्य गए। लड़का एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थ बैठा था—मानों एक नवजात बुद्ध बैठा हो।

उन्होंने लौटकर गुरु को खबर दी। उन्होंने कहा कि हमें उसे हिलाने में डर लगा; वह तो नवजात बुद्ध मालूम होता है। मालूम पड़ता है कि उसने ताली सुन ली। तब गुरु स्वयं आया, उसने लड़के के चरणों में सिर रखा और पूछा: ''क्या तुमने सुना?'' मालूम होता है कि तुमने सुन लिया। लड़के ने स्वीकृति से सिर हिलाते हुए कहा: ''हां, लेकिन वह तो मौन है।

इस लड़के ने कैसे सुना? उसकी संवेदनशीलता विकसित हुई। उसने प्रत्येक ध्वनि को सुनने की चेष्टा की और उसने बहुत अवधान से सुना। उसका अवधान विकसित हुआ। उसकी नींद जाती रही। वह रात भर जाग कर सुनता कि एक हाथ की ताली क्या है। वह तुम्हारे जैसा बुद्धिमान नहीं था। उसने यह सोचा ही नहीं कि एक हाथ की ताली नहीं हो सकती।

वही पहेली तुम्हें दी जाए तो तुम प्रयोग करने वाले नहीं हो। तुम कहोगे कि यह मूढता है; एक हाथ की ताली नहीं हो सकती। लेकिन उस लड़के ने प्रयोग क्या। उसने सोचा कि जब गुरु ने कहा है तो उसमें जरूर कुछ होगा; उसमे श्रम किया। वह सरल था। जब भी उसे लगता है। कि कोई नई चीज है तो वह दौड़ाकर गुरु के पास जाता। इस ढंग से उसकी संवेदनशीलता विकसित होती गई। वह और-और सजग और बोध पूर्ण होता गया। वह एकाग्र हो गया। वह लड़का खोज में लगा था। इसलिए उसका मन विसर्जित हो गया। गुरु ने उससे कहा था कि अगर तुम सोच विचार करते रहोगे। तो तुम चूक जाओगे। कभी-कभी ऐसी ध्वनि होती है कि जो एक हाथ की होती है। इसलिए सजग रहना ताकि चूक न जाओ। और उसने प्रयत्न किया।

एक हाथ की ताली नहीं होती है। लेकिन यह तो संवेदनशीलता को, बोध को पैदा करने का एक परोक्ष उपाय था। और एक दिन अचानक सब कुछ विलीन हो गया। वह इतना अवधान पूर्ण हो गया कि अवधान ही रह गया। वह इतना संवेदनशील हो गया

कि संवेदनशीलता ही रह गई। वह इतना बोधपूर्ण हो गया कि बोध ही रह गया। वह सिर्फ बोधपूर्ण था; किसी चीज के प्रति बोधपूर्ण नहीं। और तब उसने कहा: ''मैंने सुन लिया। लेकिन यह तो मौन है, शुन्य है।''

लेकिन इसके लिए तुम्हें सतत और होश पूर्ण होने का अभ्यास करना होगा।

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

यह विधि है जो तुम्हें ध्वनि के सूक्ष्म भेदों के प्रति नाजुक भेदों के प्रति सजग बनाती है। इसका प्रयोग करते-करते तुम ओम को भूल जाओगे। न सिर्फ अ गिरेगा। न सिर्फ म गिरेगा। बल्कि किसी दिन तुम भी अचानक खो जाओगे। तब शून्य का, मौन का जन्म होगा। और तब तुम भी किसी वृक्ष के नीचे बैठे नवजात बुद्ध हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—45 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी नौवीं विधि:

अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।—तंत्र-सूत्र

''अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो। और तब हकार में अनायास सहजता को उपलब्ध होओ।''
''अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

कोई भी शब्द जिसका अंत अ: से होता है, उसका उच्चार चुपचाप करो। शब्द के अंत में अ: के होने पर जोर है। क्यो? क्योंकि जि क्षण तुम अ: का उच्चार करते हो, तुम्हारी श्वास बाहर जाती है। तुमने ख्याल नहीं किया होगा। अब ख्याल करना कि जब भी तुम्हारी श्वास बाहर जाती है, तुम ज्यादा शांत होते हो। और जब भी श्वास भीतर जाती है, तुम ज्यादा तनावग्रस्त होते हो। कारण यह है कि बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु है। और भीतर आने वाली श्वास जीवन है। तनाव जीवन का हिस्सा है।

मृत्यु का नहीं। विश्राम मृत्यु का अंग है, मृत्यु का अर्थ है पूर्ण विश्राम। जीवन पूर्ण विश्राम नहीं बन सकता। वह असंभव है। जीवन का अर्थ है तनाव, प्रयत्न; सिर्फ मृत्यु विश्रामपूर्ण है।
तो जब भी कोई व्यक्ति पूरी तरह विश्रामपूर्ण हो जाता है, वह दोनों हो जाता है—बाहर से वह जीवित होता है। और भीतर से मृत। तुम बुद्ध के चेहरे पर जीवन मृत्यु एक साथ देख सकते हो। इसलिए उनके चेहरे पर इतना मौन, इतनी शांति है—मौन और शांति मृत्यु के अंग है।

जीवन विश्रामपूर्ण नहीं है, राम में जब तुम सो जाते हो तो तुम विश्राम में होते हो। इसी लिए पुरानी परंपराएं कहती है कि मृत्यु और नींद समान है। नींद अस्थायी मृत्यु है। और यही कारण है कि रात्रि विश्राम दायी होती है। वह बाहर जाने वाली श्वास है। सुबह भीतर आने वाली श्वास है। दिन तुम्हें तनाव से भर देता है। रात तुम्हें विश्राम से भरती है। प्रकाश तनाव पैदा करता है, अंधकार विश्राम लाता है। यही वजह है कि तुम दिन में नहीं सो सकते। दिन में विश्राम करना कठिन है। प्रकाश जीवन जैसा है, वह मृत्यु विरोधी है। अंधकार मृत्यु जैसा है। वह मृत्यु के अनुकूल है।

तो अंधकार में गहरी विश्रांति है। और जो लोग अंधकार से डरते है, वे विश्राम में नहीं उतर सकते। यह असंभव है।

विश्राम अंधेरे में घटित होता है। और तुम्हारे जीवन के दोनों छोरों पर अंधरा है। जन्म के पहले तुम अंधेरे में होते हो। और मृत्यु के बाद तुम फिर अंधेरे में होते हो। अंधकार असीम है। और यह प्रकाश, यह जीवन उस अंधकार के भीतर एक क्षण जैसा है। अंधकार के समुद्र में प्रकाश लहर जैसा है जो उठता-गिरता रहता है। अगर तुम जीवन के दोनों छोरों को घेरने वाले अंधकार को स्मरण रख सको तो तुम यहीं और अभी विश्राम में हो सकते हो।

जीवन और मृत्यु अस्तित्व के दो छोर हे। भीतर आने वाली श्वास जीवन है, बहार जाने वाली श्वास मृत्यु है। ऐसा नहीं है कि तुम किसी दिन मरोगे, तुम प्रत्येक श्वास के साथ मर रहे हो।

यही कारण है कि हिंदू जीवन को श्वासों की गिनती कहते है, वे उसे वर्षों की गिनती नहीं कहते। तंत्र, योग आदि सभी भारतीय परंपराएं जीवन को श्वासों में गिनती है। वे कहती है कि तुम्हें इतनी श्वासों का जीवन मिला है। वे कहती है कि अगर तुम तेजी से श्वास लोगे, थोड़े समय में ज्यादा श्वासें लोगे तो तुम बहुत जल्दी मरोगे। और अगर तुम बहुत धीरे-धीरे श्वास लोगे, अगर एक निश्चित समय में कम श्वास लोगे तो तुम ज्यादा समय तक जीओगे।

और बात ऐसी ही है। अगर तुम पशुओं का निरीक्षण करोगे तो पाओगे कि बहुत धीमी श्वास लेने वाले पशु लंबी उम्र जीते है। उदाहरण के लिए हाथी है, हाथी की उम्र बड़ी है। क्योंकि उसकी श्वास धीमी चलती है। फिर कुत्ता है, उसकी श्वास तेज चलती है। और उसकी उम्र बहुत कम है। जो भी पशु बहुत तेज श्वास लेता होगा, उसकी उम्र लम्बी नहीं हो सकती। लंबी उम्र सदा धीमी श्वास के साथ जुड़ी है।

तंत्र, योग और अन्य भारतीय साधना पथ तुम्हारे जीवन का हिसाब तुम्हारी श्वासों से लगाते है। सच तो यह है कि तुम हरेक श्वास के साथ जन्मते हो और हरेक श्वास के साथ मरते हो। यह विधि बाहर जाने वाली श्वास को गहरे मौन में उतरने का माध्यम बनाती है। उपाय बनाती है। यह एक मृत्यु-विधि है।

''अ से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

श्वास बाहर गई है—इसलिए अ: से अंत होने वाले शब्द का उपयोग है यह अ: अर्थपूर्ण है; क्योंकि जब तुम अ: कहते हो वह तुम्हें पूरी तरह खाली कर देता है। उसके साथ पूरी श्वास बाहर निकल जाती है। कुछ भी भीतर बची नहीं रहती है। तुम

बिलकुल खाली हो जाते हो—खाली और मृत। एक क्षण के लिए, बहुत थोड़ी देर के लिए जीवन तुमसे बाहर निकल गया है और तुम मृत और खाली हो।

अगर इस रिक्ता इस खाली पन को तुम जान लो। उसके प्रति बोधपूर्ण हो जाओ तो तुम पूर्णत: रूपांतरित हो जाओगे। तुम और ही आदमी हो जाओगे। तब तुम भली भांति जान लोगे कि न यह जीवन तुम्हारा जीवन है और न यह मृत्यु ही तुम्हारी मृत्यु है। तब तुम उसे जान लोगे जो आती-जाती श्वासों के पास है, तब तुम साक्षी आत्मा को जान लोगे। और साक्षित्व उस समय आसानी से घट सकता है जब तुम श्वासों से खाली हो, क्योंकि तब जीवन उतार पर होता है। और सारे तनाव भी उतार पर होते है। तो इस विधि को प्रयोग में लाओ। यह बहुत ही सुंदर विधि है।

लेकिन आमतौर से, सामान्य आदत के मुताबिक, हम सदा भीतर आने वाली श्वास को ही महत्व देते है। हम बाहर जाने वाली श्वास को कभी महत्व नहीं देते। हम सदा भीतर लेते है। उसे बाहर नहीं छोड़ते। हम श्वास लेते है और शरीर उसे छोड़ता है। तुम अपनी श्वसन क्रिया का निरीक्षण करो और तुम्हें यह पता चल जाएगा।

हम सदा श्वास लेते है। हम उसे छोड़ते नहीं। छोड़ने का काम शरीर करता है। और इसका कारण यह है कि हम मृत्यु से भयभीत है। बस यही कारण है। अगर हमारा बस चलता तो हम कभी श्वास को बाहर जाने ही नहीं देते। हम श्वास को भीतर ही रोक रखते। कोई भी व्यक्ति श्वास छोड़ने पर जोर नहीं देता। सब लोग श्वास लेने की ही बात करते है। लेकिन श्वास को भीतर लेने के बाद उसे बाहर निकालना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए हम मजबूरी में उसे बाहर जाने देते है। उस हम किसी तरह बरदाश्त कर लेते है। क्योंकि श्वास छोड़े बगैर श्वास लेना असंभव है। इसलिए श्वास छोड़ना आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकृत है। लेकिन बुनियादी तौर से श्वास छोड़ने में हमारा कोई रस नहीं है।

और यह बात श्वास के संबंध में ही सही नहीं है। पूरे जीवन के प्रति हमारी दृष्टि यही है। जो भी हमें मिलता है, उसे हम मुट्ठी में बाँध लेते है। उसे छोड़ने का नाम ही नहीं लेते। यही मन का कृपणता है। और याद रहे, इसके बहुत परिणाम होते है। अगर तुम कब्जियत से पीडित हो तो उसका कारण यह है कि तुम श्वास तो लेते हो, लेकिन उसे छोड़ते नहीं। जो व्यक्ति श्वास लेना जानता है। लेकिन छोड़ना नहीं, वह कब्जियत से पीडित होगा। कब्जियत उसी चीज का दूसरा छोर है। वह किसी भी चीज को अपने से बाहर जाने देने के लिए राज़ी नहीं है। वह सिर्फ इकट्ठा करता जाता है। यह भयभीत है और भय के कारण यह इकट्ठा किए जाता है।

लेकिन जो चीज रोक ली जाती है वह विषाक्त हो जाती है। तुम श्वास तो लेते हो लेकिन अगर उसे छोड़ते नहीं तो वह श्वास जहर बन जाएगी और तुम उसके कारण मरोगे। अगर तुमने कंजूसी की तो तुम एक जीवनदायी तत्व को जहर में बदल दोगे। क्योंकि श्वास का बाहर जाना नितांत जरूरी है। बाहर जाती श्वास तुम्हारे भीतर से सब जहर को बाहर निकाल फेंकती है।

तो सच तो यह कि मृत्यु शुत्रि की प्रक्रिया है और जीवन अशुद्धि की, विषाक्त करने की प्रक्रिया है। यह बात विरोधाभासी मालूम पड़ेगी। जीवन विषाक्त करने की प्रक्रिया है, क्योंकि जीने के लिए बहुत सी चीजों को उपयोग में लाना पड़ता है। और जैसे ही तुम उनका उपयोग करते हो। वे विष में बदल जाती है। तब तुम श्वास लेते हो तो तुम आक्सीजन का उपयोग कर रहे हो, लेकिन उपयोग करने के बाद जो चीज बच रहती है वह विष है। आक्सीजन के कारण ही वह जीवन था। लेकिन जब तुमने उसका उपयोग कर लिया तो शेष विष हो जाता है। ऐसे ही जीवन हर चीज को जहर में बदलता रहता है।

मृत्यु शुद्ध की प्रकिया है। जब सारा शरीर विषाक्त हो जाता है। तब मृत्यु तुम्हें उस शरीर से मुक्त कर देती है। मृत्यु तुम्हें फिर से नया बना देती है। तुम्हें नया जन्म दे देगी। तुम्हें नया शरीर मिल जाएगा। मृत्यु के द्वारा शरीर का सब संग्रहीत विष प्रकृति में विलीन हो जाता है। और तुम्हें एक नया शरीर उपलब्ध होता है।

और यह बात प्रत्येक श्वास के साथ घटित होती है। बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु के समान है, वह विष को बाहर ले जाती है। और जब वह श्वास बाहर जाती है। तो तुम्हारे भीतर सब कुछ शांत होने लगता है। अगर तुम सारी की सारी श्वास बाहर फेंक दो, कुछ भी भीतर न रहने पाए तो तुम शांति के उस बिंदु को छू लोगे जो श्वास के भीतर रहते हुए कभी नहीं छुआ जा सकता था। यह ज्वार-भाटे जैसा है। आती हुई श्वास के साथ तुम्हारे पास जीवन-ज्वार आती है और जाती हुई श्वास के साथ सब कुछ शांत हो जाता है। ज्वार चला गया तब, तुम खाली, रिक्त सागरतट भर रह जाते हो। इस विधि का यही उपयोग करो।

''अ से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

बाहर जाने वाली श्वास पर जोर दो। और तुम इस विधि का उपयोग मन में अनेक परिवर्तन लाने के लिए कर सकते हो। अगर तुम कब्जियत से पीड़ित हो तो श्वास भूल जाओ। सिर्फ श्वास को बहार फेंको। श्वास भीतर ले जाने का काम शरीर को करने दो। तुम छोड़ने भर का काम करो। तुम श्वास को बाहर निकाल दो और भीतर ले जाने की फिक्र ही मत करो। शरीर वह काम अपने आप ही कर लेगा, तुम्हें उसकी चिंता नहीं लेनी है। उससे तुम मर नहीं जाओगे। शरीर ही श्वास को भीतर ले जाएगा। तुम छोड़ने भर का काम करो, शेष शरीर कर लेगा। और तुम्हारी कब्जियत जाती रहेगी।

अगर तुम हृदय रोग से पीड़ित हो तो श्वास को बाहर छोड़ो। लेने की फिक्र मत करो। फिर हृदय रोग तुम्हें कभी नहीं होगा। अगर सीढ़ियां चढ़ते हए या कहीं जाते हुए तुम्हें थकावट महसूस हो, तुम्हारा दम घूटने लगे तो तुम इतना ही करो: श्वास को बाहर छोड़ो, लो नहीं। और तब तुम कितनी ही सीढ़ियां चढ़ जाओगे। और नहीं थकोंगे। क्या होता है?

जब तुम श्वास छोड़ने पर जोर देते हो तो उसका मतलब है कि तुम अपने को छोड़ने का, अपने खोने को राज़ी हो। तब तुम मरने को राज़ी हो, तब तुम मत्यु से भयभीत नहीं हो। और यही चीज तुम्हें खोलती है। अन्यथा तुम बंद रहते हो। भय बंद करता है। जब बंद करता है। जब तुम श्वास छोड़ते हो तो पूरी व्यवस्था बदल जाती है। और वह मृत्यु को स्वीकार कर लेती है। भय जाता रहता है और तुम मृत्यु के लिए राज़ी हो जाते हो।

और वही व्यक्ति जीता है जो मरने के लिए तैयार है। सच तो यह हे कि वही जीता है जो मृत्यु से राज़ी है। केवल वही व्यक्ति जीवन के योग्य है। क्योंकि वह भयभीत नहीं है, जो व्यक्ति मृत्यु को स्वीकार करता है, मृत्यु का स्वागत करता है, मेहमान मानकर उसकी आवभगत करता है। उसके साथ रहता है। वही व्यक्ति जीवन में गहरे उतर सकता है।

जब एक कुत्ता मरता है तो दूसरे कुत्ते को कभी पता नहीं होता की मैं भी मर सकता हूं। जब भी मरता है, कोई दूसरा ही मरता है। तो कोई कुत्ता कैसे कल्पना करे के मैं भी मरने वाला हूं। उसने कभी अपने को मरते नहीं देखा। सदा किसी दूसरे ही मरते है। वह कैसे कल्पना करे, कैसे निष्पति निकाले कि मैं भी मरूंगा। पशु को मृत्यु का बोध नहीं होता। इसलिए कोई पशु संसार का त्याग नहीं करता। कोई पशु संन्यासी नहीं हो सकता है।

केवल एक बहुत ऊंच्ची कोटि की चेतना ही तुम्हें संन्यास की तरफ ले जा सकती है। मृत्यु के प्रति जागने से ही संन्यास घटित होता है। और अगर आदमी होकर भी तुम मृत्यु के प्रति जागरूक नहीं हो तो तुम अभी पशु ही हो। मनुष्य नहीं हुए हो। मनुष्य तो तुम तभी बनते हो जब मृत्यु का साक्षात्कार करते हो। अन्यथा तुममें और पशु में कोई फर्क नहीं है। पशु और मनुष्य में सब कुछ समान है, सिर्फ मृत्यु फर्क लाती है। मृत्यु का साक्षात्कार कर लेने के बाद तुम पशु नहीं रहते। तुम्हें कुछ घटित हुआ है जो कभी किसी पशु को घटित नहीं होता है। अब तुम एक भिन्न चेतना हो।

ऐसा ही इन विधियों के साथ है। वे सरल मालूम होती है। लेकिन वे बुनियादी सत्य को स्पर्श करती है। जब श्वास बाहर जा रही है, जब तुम जीवन से सर्वथा रिक्त हो, तब तुम मृत्यु को छूते हो, तब तुम उसके बहुत करीब पहुंच जाते हो। तब तुम्हारे भीतर सब कुछ मौन और शांत हो जाता है।

इसे मंत्र की तरह उपयोग करो। जब भी तुम्हें थकावट महसूस हो, तनाव महससू हो तो अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार करो। अल्लाह से भी काम चलेगा। कोई शब्द जो तुम्हारी श्वास को समग्रत: से बाहर ले आए। जो तुम्हें श्वास से बिलकुल खाली कर दे। जिस क्षण तुम श्वास से रिक्त होते हो उसी क्षण तुम जीवन से भी रिक्त हो जाते हो।

और तुम्हारी सारी समस्याएं जीवन की समस्याएं है, मृत्यु की कोई समस्या नहीं हे। तुम्हारी चिंताएं, तुम्हारे दुःख-संताप, तुम्हारा क्रोध, सब जीवन की समस्याएं है। मृत्यु तो समस्याहीन है। मृत्यु असमस्या है। मृत्यु कभी किसी को सतस्या नहीं देती है। तुम भला सोचते हो कि मैं मृत्यु से डरता हूं, कि मृत्यु समस्या पैदा करती है। लेकिन हकीकत यह है कि मृत्यु नहीं जीवन के प्रति तुम्हारा आग्रह, जीवन के प्रति तुम्हारा लगाव समस्या पैदा करता है। जीवन ही समस्या खड़ी करता है। मृत्यु तो सब समस्याओं का विसर्जन कर देती है।

तो जब श्वास बिलकुल बाहर निकल जाए—अ:ss—तुम जीवन से रिक्त हो गए। उस क्षण अपने भीतर देखो। जब श्वास बिलकुल बाहर निकल जाए। दूसरी श्वास लेने के पहले उस अंतराल में गहरे उतरो जो रिक्त है और उसके आंतरिक मौन और शांति के प्रति सजग होओ। उस क्षण तुम बुद्ध हो।

और अगर तुम उस क्षण को पकड़ लो। तो तुम्हें वह स्वाद मिल जाएगा जिसे बुद्ध ने जाना। और एक बार यह सवाद जान लिया गया तो फिर तुम उसे आने-जाने वाली श्वास से अलग कर ले सकते हो। फिर श्वास आती-जाती रह सकती है। और तुम चेतना की उस अवस्था में रह सकते हो। वह तो सदा है, फिर उसे उधाड़ना है। और उसे उस समय उघाड़ना आसान होता है जब तुम जीवन से, श्वास से रिक्त होते हो।

और जब श्वास बाहर निकल जाती है, तब सब कुछ निकल जाता है। इस क्षण किसी प्रयास की जरूरत नहीं है। इस क्षण अनायास बिना प्रयास के सजगता को, बोध को उपल्बध हुआ जा सकता हे। मृत्यु के इस क्षण को उपलब्ध होओ। यही वह क्षण है जब तुम द्वार के बिलकुल करीब होते हो, परमात्मा के द्वार के बिलकुल पास होते हो। जो प्रकट है, जा असार है, वह बाहर चला गया; इस क्षणमे तुम लहर नहीं रहे। सागर हो गए। अभी तुम बिलकुल सागर के निकट हो। अगर तुम बोधपूर्ण हो सके, सजग हो सके, तो तुम भूल जाओगे कि मैं लहर हूं। फिर लहर आएगी। लेकिन अब तुम लहर के साथ कभी तादात्म्य नहीं बनाओगे। तुम सागर बने रहोगे। एक बार तुमने जान लिया कि तुम सागर हो, फिर तुम लहर नहीं हो सकते।

जीवन लहर है, मृत्यु सागर है। इस कारण ही बुद्ध इस बात पर जोर देते है कि मेरा निर्वाण मृत्युवत है। वे कभी नहीं कहते कि तुम अमरत्व को प्राप्त हो जाओगे। वे इतना ही कहते है कि तुम मिटोगे, समग्रत: जीसस कहते है; मेरे पास आओ और मैं तुम्हें विराट जीवन दूंगा। बुद्ध कहते है: मेरे पास मिटने के लिए आओ, मैं तुम्हें समग्र मृत्यु दूंगा। और दोनों एक ही बात है। लेकिन बुद्ध की शब्दावली ज्याद बुनियादी है। मगर तुम उससे भयभीत हो।

यही कारण है कि बुद्ध का भारत में प्रभाव नहीं पड़ सका। उन्हें पूरी तरह उखाड़ फेंका गया। और हम कहे चले जाते है कि भूमि धार्मिक है। लेकिन यहां जो सर्वाधिक धार्मिक पूरूष हुआ उसे यहां हमने जमने नहीं दिया। किस तरह की धार्मिक भूमि है यह? हम दूसरा बुद्ध नहीं पैदा कर सकते। बुद्ध अप्रतिम है। जब भी संसार भारत को धर्म-भूमि के रूप में स्मरण करता है, वह बुद्ध को स्मरण करता है। और किसी को नहीं। बुद्ध के कारण ही भारत धार्मिक समझा जाता है। किसी प्रकार की धर्म-भूमि हे यह। बुद्ध को यहां जगह नहीं मिली उन्हें सर्वथा उखाड़ फेंका गया। कारण यह था कि बुद्ध को यहां जगह नहीं मिली, उनहें सर्वथा उखाड़ फेंका गया।

कारण यह था कि बुद्ध ने मृत्यु की भाषा उपयोग की। ब्राहमण जीवन की भाषा उपयोग करते है। वे कहते है ब्रहम; बुद्ध ने कहा निर्वाण। ब्रहम का अर्थ जीवन, अनंत जीवन है; और निर्वाण का अर्थ परिसमाप्ति, मृत्यु , समग्र मृत्यु। बुद्ध कहते है कि तुम्हारी सामान्य मृत्यु समग्र नहीं होती। तुम्हें फिर-फिर जन्म लेना होता है। साधारण मृत्यु समग्र नहीं है। तुम पून: संसार

में आना पड़ता है। बुद्ध कहते थे कि मैं तुम्हें ऐसी समग्र मृत्यु दूंगा। कि तुम्हें फिर कभी जन्म लेने की जरूरत नहीं पडेगी। समग्र मृत्यु का अर्थ है कि अब दूबारा जन्म संभव नहीं है।

इसलिए बुद्ध कहते है कि यह तथाकथित मृत्यु-मृत्यु नहीं है। यह विश्राम है, तुम फिर जीवित हो उठते हो। यह मृत्यु तो बाहर गई श्वास जैसी है। तुम फिर श्वास भीतर लोगे। और तुम्हारा पुन: जन्म हो जाएगा। बुद्ध कहते है कि मैं तुम्हें वह उपाय बताता हूं कि बाहर गई श्वास फिर वापस नहीं लौटेगी। वही समग्र मृत्यु है। निर्वाण है।

''तब हकार में अनायास सहजता को उपलब्ध होओ।''

इसका प्रयोग करो। किसी भी समय यह प्रयोग कर सकते हो। बस या रेलगाड़ी में यात्रा कराते हुए, या अपने आफिस जाते हुए। जब भी तुम्हें समय मिले अल्लाह शब्द बड़ा काम का है—इस कारण नहीं कि वहां आसमान में कोई अल्लाह है। वरन इस अ: के कारण। यह शब्द सुंदर है। और जितना कही कोई अल्लाह-अल्लाह कहता है उतना ही वह शब्द छोटा होता जाता है। अल्लाह से वह लाह हो जाता है। और फिर लाह से आह रह जाता है। यह अच्छा है। लेकिन तुम अ: से अंत होने वाले किसी भी शब्द को काम में ला सकते हो, केवल अ: से भी चलेगा।

तुमने देखा होगा कि जब भी तुम तनाव से भरते हो, तुम एक आह भरकर हलके हो जाते हो। या जब तुम खुशी से भरते हो, बहुत खुशी से, तब तुम अहा कहते हो और पूरी श्वास बाहर निकल जाती है। और तुम अपने भीतर एक अपूर्व शांति अनुभव करते हो। इसे प्रयोग करो। जब तुम खूब प्रसन्न हो तो श्वास अंदर लो और देखो कि क्या होता है। तुम स्वस्थ अनुभव नहीं करोगे। जितना अहा कहने से करते हो। वह फर्क श्वास के कारण है।

भाषाएं अलग-अलग है, लेकिन ये दो चीजें सभी भाषाओं में समान हे। सारी धरती पर जहां भी कोई थकावट अनुभव करता है वह आह करता है। दरअसल वह मृत्यु को बुलाकर कहता है कि मुझे विश्राम दो। और जब वह आह्लादित होता है। आनंदित होता है, तब वह अहा कहता है। वह आनंद से इतना पूरित है कि वह मृत्युसे नहीं डरता। वह अपने को पूरी तरह छोड़ने को खोने को राज़ी है।

और अगर तुम इस विधि का निरंतर प्रयोग करते रहो तो उसके गहरे परिणाम होंगे। तब तुम्हारे भी जो सहज है, तुम उसके बोध से भर जाओगे। तब तुम अपनी सहजता को उपलब्ध हो जाओगे। तुम सहज ही हो, लेकिन तुम जीवन से इतने बंधे हो, ग्रस्त हो कि उसके पीछे खड़ी सहज सत्ता से अपरिचित रह जाते हो। लेकिन तब तुम जीवन से, आने वाली श्वास से ग्रस्त नही हो, तब वह सहज सत्ता प्रकट होती है। तब उसकी झलक मिलती है। और धीरे-धीरे वह झलक उपलब्धि में बदल जाती है। तुम्हारी सिद्धि बन जाएगी।

और तुमने उसे एक बार जान लिया तो फिर तुम उसे भुला नहीं सकोगे। वह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे तुम निर्मित करते हो। वह सवाभाविक है, सहज है; उसे बनाना नहीं , उघाड़ना भर है। वह तो है ही, तुम भूल गए हो। बस स्मरण करना है, उधाड़ना है।

शरीर अपने विवेक से चलता है। वह उतना ही ग्रहण करता है जितना जरूरी है। जब उसे ज्यादा की जरूरत होती है तो वैसी स्थिति बना लेता है और कम की जरूरत होती है तो वैसी ही स्थिति बना लेता है। शरीर कभी अति पर नहीं जाता है। वह सदा संतुलित रहता है। जब तुम श्वास लेते हो तब वह संतुलित नहीं है। क्योंकि तुम्हें नहीं मालूम है कि शरीर की जरूरत क्या है। और यह जरूरत क्षण-क्षण बदलती रहती है।

इसलिए शरीर को मौका दो, तुम तो बस श्वास छोड़ने भर का काम करो, उसे बाहर फेंको। और तब शरीर खुद श्वास लेने का काम कर लेगा। और शरीर जब खुद श्वास अंदर लेता है तो वह धीरे-धीरे लेता है। और गहरे लेता है। और पेट तक ले जाता है। वह श्वास ठीक नाभि-केंद्र पर चोट करती है। जिससे तुम्हारा पेट ऊपर नीचे होता है। और अगर श्वास लेने का काम भी तुम करोगे तो फिर समग्रता से श्वास छोड़ ने सकोगे। तब श्वास भीतर बची रहेगी। और उपर से ली गई श्वास गहराई में न उतर सकेगी। इसीलिए श्वास क्रिया उथली हो जाती है। तुम श्वास भीतर लेते रहते हो और भीतर जहर इकट्ठा होता जाता है।

वे कहते है कि तुम्हारे फेंफड़े में कई हजार छिद्र है। और उनमें से सिर्फ दो हजार छिद्रों तक ही श्वास पहुंच पाती है। बाकी चार हजार छिद्र तो सदा जहरीली गैस से भरे रहते है। जिन्हें सदा खाली करने की जरूरत है। वह जो तुम्हारी छाती का दो तिहाई हिस्सा जहर से भरा रहता है। वह तुम्हारे शरीर में मन में दुःख और चिंता और संताप लाता है।

बच्चा सदा श्वास छोड़ता है लेता नहीं। लेने का काम सदा शरीर करता है। जब बच्चा जन्म लेता है तो वह जो पहला काम करता है वह रोना है। उसे रोने के साथ ही उसका कंठ खुलता है। रोने के साथ ही वह पहल अ: बोलता है, उस रोने के साथ ही मां के द्वारा भीतर ली गई हवा बाहर निकल जाती है। वह उसकी पहल श्वास क्रिया है। श्वास क्रिया का आरंभ।

बच्चा सदा श्वास छोड़ता है। और जब बच्चा श्वास लेने लगे, जब उसका जोर छोड़ने से हटकर लेने पर चला जाए तो सावधान हो जाना; तब बच्चा बूढ़ा होने लगा। उसका अर्थ है कि बच्चे ने वह तुमसे सीखा है, वह तनावग्रस्त हो गया है।

जब तुम तनाव ग्रस्त होते हो तो तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते हो। क्यों? तब तुम्हारा पेट सख्त होता है। जब तुम तनाव में होते हो तो तुम्हारा पेट सख्त हो जाता है। वह सख्ती श्वास को गहरे नहीं जाने देती। तब तुम उथली श्वास ही लेने लगते हो।

अ: का प्रयोग करो। वह तुम्हारे चारो और एक सुंदर भाव निर्मित करता है। जब भी तुम थकावट महसूस करो, अ: कहकर श्वास को बाहर फेंको। और श्वास छोड़ने पर बल दो। तुम भिन्न ही आदमी होगे और एक भिन्न ही मन विकसित होगा। श्वास लेने पर जोर देकर तुमने कंजूस मन और कंजुस शरीर विकसित किए है। श्वास छोड़ने पर बल देकर वह कंजूसी विदा हो जाएगी। और उसके साथ ही अन्य अनेक समस्याएं विदा हो जाएंगी। तब दूसरे पर मालकियत करने का भाव तिरोहित हो जायेगा।

तो तंत्र यह नहीं कहता है कि मालकियत का भाव छोड़ो, तंत्र कहता है कि अपने श्वास-प्रश्वास का ढंग बदल दो और मालकियत अपने आप छूट जायेगी। तुम अपनी श्वास को देखो, अपने भावों को देखो और तुम्हें बोध हो जाएगा। जो भी गलत है वह भीतर जाने वाली श्वास को महत्व देने के कारण है और जो भी शुभ है ओर सत्य है , शिव है, और सुंदर है। वह बाहर जाने वाली श्वास के साथ संबंधित है। जब तुम झूठ बोलते हो, तुम अपनी श्वास को रोक रखते हो, और जब सच बोलते हो तो श्वास को कभी नहीं रोकते। झूठ बोलते समय तुम्हें डर लगता है और उस डर के कारण तुम श्वास को रोक रखते हो। तुम्हें यह डर भी होता है कि बाहर जाने वाली श्वास के साथ कही छिपाया गया सत्य भी प्रकट न हो जाये।

इस अ: का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग करो और तुम शरीर और मन से ज्यादा स्वस्थ रहोगे। और तुम्हें एक विशेष ढंग की शांति और विश्राम का अनुभव होगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—41 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी पाँचवीं विधि:

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए ....–ओशो

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रित ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।
वही चीज।

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।''

तुम किसी वाद्य को सुन रहे हो—सितार या किसी अनय वाद्य को। उसमें कई स्वर है। सजग होकर उसके केंद्रीय स्वर को सुनो। उस स्वर को जो उसका केंद्र हो और उसके चारों और सभी स्वर घूमते हों; उसकी आंतरिक धारा को सुनो, जो अन्य सभी स्वरों को सम्हाले हुए हो। जैसे तुम्हारे समूचे शरीर को उसका मेरुदंड, उसकी रीढ़ सम्हाले हुए है। वैसे ही संगीत की भी रीढ़ होती है। संगीत को सुनते हुए सजग होकर उसमे प्रवेश करो और उसके मेरुदंड को खोजों—उस केंद्रीय स्वर को खोजों जो पूरे संगीत को सम्हाले हुए है। स्वर तो आते जाते रहते है। लेकिन केंद्रीय तत्व प्रवाहमान रहता है। उसके प्रति जागरूक होओ।
बुनियादी रूप से मूलत: संगीत का उपयोग ध्यान के लिए किया जाता था। भारतीय संगीत का विकास तो विशेष रूप से ध्यान की विधि के रूप में ही हुआ था। वैसे ही भारतीय नृत्य का विकास भी ध्यान विधि के लिए के लिए तैयार किया गया था। संगीतज्ञ या नर्तक के लिए ही नहीं श्रोता या दर्शक के लिए भी वे गहरे ध्यान के उपाय थे।

नर्तक या संगीतज्ञ मात्र टेक्नीशियन भी हो सकता है। अगर उसके नृत्य या संगीत में ध्यान नहीं है तो वह टेक्नीशियन ही है। वह बड़ा टेक्नीशियन हो सकता है। लेकिन तब उसने संगीत में आत्मा नहीं है, शरीर भर है। आत्मा तो तब होती है जब संगीतज्ञ गहरा ध्यानी हो। संगीत तो बाहरी चीज है। सितार बजाते हुए वादक सितार ही नहीं बजाता है, वह भीतर अपने बोध को भी जगाता है। बाहर सितार बजता है और भीतर उसका गहन बोध गति करता है। बहार संगीत बहता रहता है; लेकिन संगीतज्ञ अपने अंतरस्थ केंद्र पर सदा सजग बोधपूर्ण बना रहता है। वही बोध समाधि बन जाता है। वही शिखर बन जाता है।

कहते है कि संगीतज्ञ जब सचमुच संगीतज्ञ हो जाता है तो वह अपना वाद्य तोड़ देता है। वह अब उसके काम का न रहा है। और अगर उसे अब भी वाद्य की जरूरत पड़ती है तो वह अभी संगीतज्ञ नहीं हुआ है। वह अभी सिक्खड़ ही है। सीख रहा है। अगर तुम ध्यान के साथ संगीत का अभ्यास करते हो, उसे ध्यान बनाते हो तो देर-अबेर आंतरिक संगीत ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाएगा। और बाहरी संगीत ने सिर्फ कम महत्वपूर्ण रहेगा, बल्कि अंतत: वह बाधा बन जाएगा। तुम सितार को उठाकर फेंक

दोगे। तुम वाद्य को अलग रख दोगे। क्योंकि अब तुम्हें तुम्हारा आंतरिक वाद्य मिल गया है। लेकिन वह बहारी वाद्य के बिना नहीं मिल सकता। बहारी वाद्य के साथ आसानी से सजग हुआ जा सकता है। लेकिन जब सजगता सध जाए तो तुम बाहर को छोड़ो और भीतर गति कर जाओ। यही बात श्रोता के लिए भी सही है।

लेकिन जब तुम संगीत सुनते हो, तो क्या करते हो? तुम ध्यान नहीं करते हो; उलटे तुम संगीत का शराब की तरह उपयोग करते हो। तुम विश्राम के लिए उसका उपयोग करते हो। यही दुर्भाग्य है। यही पीड़ा है। जो विधियां जागरूकता के लिए विकसित की गई थी उनका उपयोग नींद के लिए किया जा रहा है। और ऐसे ही आदमी अपने को धोखा दिये जा रहा है। अगर तुम्हें कोई चीज जागने के लिए दि जा रही है।

यही कारण है कि सदियों-सदियों तक सदगुरूओं के उपदेशों को गुप्त रखा गया। क्योंकि सोचा गया कि सोए हुए व्यक्ति को विधियां बताना व्यर्थ है। वह उसे सोने के ही काम लगाएगा; अन्यथा वह नहीं कर सकता। इसलिए पात्रों को ही विधियां दी जाती थी। ऐसे विशेष शिष्यों को ही उनका प्रयोग बताया जाता था जो अपनी नींद को छोड़ने को राज़ी है। जो अपनी नींद से जागने के लिए तैयार है।

ओस्पेंस्की ने अपनी एक पुस्तक जार्ज गुरजिएफ को यह कहकर समर्पित की है कि ''इस व्यक्ति ने मेरी नींद तोड़ी है।''

ऐसे लोग उपद्रवी होते है। गुरजिएफ, बुद्ध या जीसस जैसे लोग उपद्रवी ही होंगे। यही कारण है कि हम उनसे बदला लेते है। जो हमारी नींद में बाधा डालता है। उसे हम सूली पर चढ़ा देते है। वह हमें नहीं भाता है। हम सुंदर सपने देख रहे थे और वह आकर हमारी नींद में बाधा डालता है। तुम उसकी हत्या कर देना चाहते हो। स्वप्न इतना मधुर था।

स्वप्न मधुर हो चाहे न हो, लेकिन एक बात निश्चित है कि वह स्वप्न है और व्यर्थ है, बेकार है। और स्वप्न अगर सुंदर है तो ज्यादा खतरनाक है; क्योंकि उसमें आकर्षण अधिक होगा। वह नशे का काम कर सकता है।

हम संगीत का, नृत्य का उपयोग नशे के रूप कर रहे है। और अगर तुम संगीत और नृत्य का उपयोग नशे की तरह कर रहे हो तो वे तुम्हारी नींद के लिए ही नहीं, तुम्हारी कामुकता के लिए भी नशे का काम देंगे। और यह स्मरण रहे कि कामुकता और नींद संगी-साथी है। जो जितना सोया-सोया होगा, वह उतना ही कामुक होगा। जो जितना जागा हुआ होगा, वह उतना ही कम कामुक होगा। कामुकता की जड़ नींद में है। जब तुम जागोगे तो ज्यादा प्रेमपूर्ण होओगे; कामवासना की पूरी ऊर्जा प्रेम में रूपांतरित हो जाती है।

यह सूत्र कहता है: ''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।''

और तब तुम उसे जान लोगे जो जानना है, जो जानने योग्य है। तब तुम सर्वव्यापक हो जाओगे। उस संगीत के साथ, उसके केंद्रीय तत्व को प्राप्त कर तुम जाग जाओगे। और उसे जागरूकता के साथ तुम सर्वव्यापी हो जाओगे।

अभी तो तुम कहीं एक जगह हो; उस बिंदु को हम अहंकार कहते है। अभी तुम उसी बिंदु पर हो। अगर तुम जाग जाओगे तो यह बिंदु विलीन हो जायेगा। तब तुम कहीं एक जगह नहीं होगे, सब जगह होगे। सर्वव्यापी हो जाओगे। तब तुम सर्व ही हो जाओगे। तुम सागर हो जाओगे, तुम अनंत हो जाओगे।

मन सीमा है; ध्यान से अनंत में प्रवेश है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—42 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी छठवीं विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि—42 (ओशो)
किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो कि वह सुनाई दे;

''किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो कि वह सुनाई दे; फिर उस उच्चार को मंद से मंदतर किए जाओ—जैसे-जैसे भाव मौन लयबद्धता में लीन होता जाए।''

कोई भी ध्वनि काम देगी; लेकिन अगर तुम्हारी कोई प्रिय ध्वनि हो तो वह बेहतर होगी। क्योंकि तुम्हारी प्रिय ध्वनि मात्र ध्वनि नहीं रहती; जब तुम उसका उच्चार करते हो तो उसके साथ एक अप्रकट भाव भी उठता है। और फिर धीरे-धीरे वह ध्वनि तो विलीन हो जाएगी और भाव भर रह जाएगा।

ध्वनि को भाव की तरह से जाने वाले मार्ग की तरह उपयोग करना चाहिए। ध्वनि मन है और भाव ह्रदय है। मन को ह्रदय से मिलने के लिए मार्ग चाहिए। ह्रदय में सीधा प्रवेश कठिन है। हम ह्रदय को इतना भुला दिए है। हम ह्रदय के बिना इतने जन्मों से रहते आए है कि हमें पता ही नहीं रहा कि कहां से उसमे प्रवेश करें। द्वार बंद मालूम पड़ता है। हम ह्रदय की बात बहुत करते है। लेकिन वह बातचीत भी मन की ही है। हम कहते है कि हम ह्रदय से प्रेम करते है। लेकिन हमारा प्रेम भी मानसिक है। मस्तिष्क गत है। हमारा प्रेम भी बौद्धिक प्रेम है। ह्रदय की बात भी मस्तिष्क में घटित होती है। हमें पता ही नहीं रहा है कि ह्रदय कहां है।

ह्रदय से मेरा अभिप्राय शारीरिक ह्रदय से नहीं है। उसे तो हम जानते है। लेकिन शरीर शास्त्री और वैद्य-डाक्टर कहेंगे कि उस ह्रदय में प्रेम की संभावना नहीं है; वह तो केवल पंप का काम करता है, फुफ्फुस का काम करता है। उसमे और कुछ नहीं है। और बातें बस कपोलकल्पना है, कविता है, स्वप्न है।

लेकिन तंत्र जानता है कि तुम्हारे शारीरिक ह्रदय के पीछे ही एक गहरा केंद्र छिपा है। उस गहरे केंद्र तक मन के द्वारा ही पहुंचा जा सकता है। क्योंकि हम मन में है। हम अपने मन में है और अंतस की और कोई भी यात्रा वहीं से आरंभ हो सकती है।

मन ध्वनि है। आवाज है। अगर सब ध्वनि बंद हो जाए तो तुम्हारा मन नहीं रहेगा। मौन में मन नहीं है। यही कारण है कि मौन पर इतना बल दिया जाता है। मौन अ-मन अवस्था है। आमतौर से हम कहते है कि मेरा मन शांत हो रहा है। यह बात ही बेतुकी है। अर्थहीन है। क्योंकि मन का अर्थ है मौन की अनुपस्थिति। तुम यह नहीं कह सकते कि मन शांत है। मन है तो शांत नहीं हो सकता और शांति है तो मन नहीं हो सकता। शांत मन नाम की कोई चीज नहीं होती। हो नहीं सकती। यह ऐसा ही है जैसे कि तुम कहो कि कोई व्यक्ति जीवित मृत है। उसका कोई अर्थ नहीं है। अगर वह मृत है तो वह जीवित नहीं हो सकता। और अगर वह जीवित है तो मृत नहीं हो सकता। सच तो यह है कि मन जब विदा होता है तो शांति आती है। या कहो कि शांति आती है तो मन विदा हो जाता है। दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

मन ध्वनि है। अगर यह ध्वनि व्यवस्थित है तो तुम स्वस्थ चित हो। और अगर वह अराजक हो तो तुम विक्षिप्त कहलाओगे। लेकिन दोनों हालत में ध्वनि है। आवाज है। और हम मन के तल पर रहते है। उस तल से ह्रदय के आंतरिक तल पर कैसे उतरा जाए?
ध्वनि का उपयोग करो। ध्वनि का उच्चार करो। किसी एक ध्वनि का उच्चार उपयोगी होगा। अगर मन में अनेक ध्वनियां है तो उन्हें छोड़ना कठिन होगा। और अगर एक ही ध्वनि हो तो उसे सरलता से छोड़ा जा सकता है। इसलिए पहले एक ध्वनि के लिए अनेक का त्याग करना होगा। एकाग्रता का यही उपयोग है।

इसलिए अच्छा हो कि कोई ध्वनि, कोई नाम, कोई मंत्र लो, जो तुम्हें प्रीतिकर हो, जिससे तुम्हारा भाव जुड़ा हो। अगर कोई हिंदू राम शब्द का उपयोग करता है तो उसके साथ उसका भाव जुड़ा होगा। यह उसके लिए मात्र शब्द नहीं रहेगा। यह उसकी बुद्धि तक ही सीमित नहीं रहेगा; इसकी तरंगें उसके ह्रदय तक चली जाएंगी उसको भला इसका पता न हो; लेकिन यह ध्वनि उसके रक्त में समाई है। उसकी मांस मज्जा में सम्माहित है। उसके पीछे लंबी परंपरा है। गहरे संस्कार है; उसके पीछे जन्मों-जन्मों के संस्कार है। जिस ध्वनि के साथ तुम्हारा लंबा लगाव बन जाता है। वह तुममें गहरी जड़ें जमा लेती है। इसका उपयोग करो। उसका उपयोग किया जा सकता है।

यही कारण है कि दुनिया के दो सबसे पुराने धर्म—हिंदू और यहूदी—धर्म परिवर्तन में कभी विश्वास नहीं करते। वे सबसे प्राचीन धर्म है, आदि धर्म है; और सारे धर्म उनकी ही शाखा प्रशाखा है। ईसाइयत और इसलाम यहूदी परंपरा की शाखाएं है। और बौद्ध, जैन और सिक्ख धर्म हिंदू धर्म की शाखाएं है। और ये दोनों आदि धर्म धर्म-परिवर्तन को नहीं मानती।

अगर तुम्हें किसी ध्वनि से प्रेम नहीं है तो अपना नाम ही उपयोग करो। लेकिन यह भी बहुत कठिन है। कारण यह है कि तुम अपने प्रति इतनी निंदा से भरे हो कि तुम्हें अपने प्रति कोई भाव नहीं है। कोई आदर नहीं है। दूसरे भले तुम्हारा आदर करते हों; लेकिन तुम खुद अपना आदर नहीं करते हो।

तो पहले बात है कि कोई उपयोगी ध्वनि खोजों। उदाहरण के लिए, अपने प्रेमी या अपनी प्रेमिका का नाम भी चलेगा। अगर तुम्हें फूल से प्रेम है तो गुलाब शब्द काम दे देगा। कोई भी ध्वनि जो तुम्हें भाती है। जिसे सुनकर तुम स्वस्थ अनुभव करते हो। उसका उपयोग कर लो। और अगर तुम्हें ऐसा कोई शब्द न मिले तो परंपरागत स्रोतों से जो कुछ शब्द उपलब्ध है उनका उपयोग कर सकते हो। ओम का उपयोग करो। आमीन का उपयोग करो। मरिया भी चलेगा। राम भी चलेगा। बुद्ध भी चलेगा। महावीर का नाम भी काम में लाया जा सकता है। कोई भी नाम जिसके लिए तुम्हें भाव हो, चलेगा। लेकिन भाव होना जरूरी है। इसीलिए गुरु का नाम सहयोगी हो सकता है। लेकिन भाव चाहिए। भाव अनिवार्य है।

''किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो, कि वह सुनाई दे; फिर उस उच्चार को मंद से मंदतर किए जाओ—जैसे-जैसे भाव मौन लयबद्धता में लीन होता जाए।''

ध्वनि को निरंतर घटाते जाओ। उच्चार को इतना धीमा करो कि तुम्हें भी उसे सुनने के लिए प्रयत्न कना पड़े। ध्वनि को कम करते जाओ, और तुम्हें फर्क मालूम होगा। ध्वनि जितनी धीमी होगी, तुम उतने ही भाव से भरोंगे। और जब ध्वनि विलीन होती है तो भाव ही शेष रहता है। इस भाव को नाम नहीं दिया जा सकता वह प्रेम है, प्रगाढ़ प्रेम है। लेकिन यह प्रेम किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं है। यही फर्क है।

जब तुम कोई ध्वनि या शब्द उपयोग करते हो तो उसके साथ प्रेम जुड़ा रहता है। तुम राम-राम करते हो तो इस शब्द के प्रति तुम्हारे भीतर बड़ा गहरा भाव है। लेकिन यह भाव राम के प्रति निवेदित है, राम पर सीमित है। लेकिन जब तुम राम ध्वनि को मंद से मंदतर करते जाते हो तो एक क्षण आयेगा। जब राम विदा हो जाएगा। ध्वनि विदा हो जाएगी और सिर्फ भाव शेष रहेगा। यह प्रेम का भाव है जो राम के प्रति नहीं है। यह किसी के भी प्रति नहीं है। केवल प्रेम का भाव है—मानो तुम प्रेम के सागर हो।

प्रेम जब किसी के प्रति निवेदित नहीं होता तो वह ह्रदय का प्रेम होता है। और जब वह निवेदित प्रेम होता है तो वह मस्तिष्क का होता है। जो प्रेम किसी के प्रति है, वह मस्तिष्क से घटित होता है। और केवल प्रेम मात्र प्रेम ह्रदय को होता है। और यह केवल प्रेम अनिवेदित प्रेम ही प्रार्थना बनता है। अगर वह किसी के प्रति निवेदित है तो वह प्रार्थना नहीं बन सकता; तब तुम अभी रहा पर ही हो।

इसीलिए मैं कहता हूं कि अगर तुम ईसाई हो तो तुम हिंदू की भांति नहीं आरंभ कर सकते; तुम्हें ईसाई की भांति आरंभ करना चाहिए। अगर तुम मुसलमान हो तो तुम ईसाई की तरह शुरू नहीं कर सकते। तुम्हें मुसलमान की तरह ही शुरू करना चाहिए। लेकिन तुम जितने गहरे जाओगे उतने ही कम मुसलमान या ईसाई या हिंदू रहोगे। सिर्फ आरंभ हिंदू मुसलमान या ईसाई की तरह से होगा।

तुम जितना ही ह्रदय की तरफ गति करोगे—ध्वनि जिनी कम होगी और भाव जितना बढ़ेगा—तुम उतने ही कम हिंदू या मुसलमान रह जाओगे। और जब ध्वनि विलीन हो जाएगी तो तुम केवल मनुष्य होगे...न हिंदू। न मुसलमान। न ईसाई।

संप्रदाय या धर्म का यही फर्क है। धर्म एक है; संप्रदाय अनेक है। संप्रदाय शुरू करने में सहयोगी है। लेकिन तुम अगर सोचते हो कि संप्रदाय अंत है, मंजिल है, तो तुम कही के नहीं रहोगे। वे आरंभ भर है। तुम्हें उनके पार जाना होगा; क्योंकि आरंभ अंत नहीं है। अंत में धर्म है; आरंभ में संप्रदाय है। संप्रदाय का उपयोग धर्म के लिए करो। सीमित का उपयोग असीम के लिए करो; क्षुद्र का उपयोग विराट के लिए करो।

यदि तुम किसी हिंदू मंदिर में गये हो तो वहां तुमने गर्भ-गृह का नाम सुना होगा। मंदिर के अंतरस्थ भाग को गर्भ कहते है। शायद तुमने ध्यान न दिया हो कि उसे गर्भ क्यों कहते है। अगर तुम मंदिर की ध्वनि का उच्चार करोगे—हरेक मंदिर की अपनी ध्वनि है, अपना मंत्र है। अपना इष्ट देवता है। और इस इष्ट देवता से संबंधित मंत्र है। अगर उस ध्वनि का उच्चार करोगे तो पाओगे कि उससे वहां वही उष्णता पैदा होती है जो मां के गर्भ में पाई जाती है। यही कारण है कि मंदिर के गर्भ जैसा गोल और बंद, करीब-करीब बंद बनाया जाता है। उसमे एक ही छोटा सा द्वारा रहता है।

जब ईसाई पहली बार भारत आये और उन्होंने हिंदू मंदिरों को देखा तो उन्हें लगा कि ये मंदिर तो बहुत अस्वास्थ्यकर कर है। उनमें खिड़की नहीं है। सिर्फ एक छोटा सा दरवाजा है। लेकिन मां के गर्भ में भी तो एक ही द्वार होता है। और उसमे भी हवा के आने-जाने की व्यवस्था नहीं रहती। यही वजह है कि मंदिर को ठीक मां के पेट जैसा बनाया जाता है। उसमे एक ही दरवाजा

रखा जाता है। अगर तुम उसकी ध्वनि का उच्चार करते हो तो गर्भ सजीव हो उठता है। और इसे इसलिए भी गर्भ कहा जाता है। क्योंकि वहां तुम नया जन्म ग्रहण कर सकते हो। तुम नया मनुष्य बन सकते हो।

यही कारण है कि मंदिरों में अन्य धर्मो के लोगों को प्रवेश नहीं मिलता। अगर कोई मुसलमान नहीं है तो उसे मक्का में प्रवेश नहीं मिल सकता है। और यह ठीक है। इसमे कोई भूल नहीं है। इसका कारण यह है कि मक्का एक विशेष विज्ञान का स्थान है। जो व्यक्ति मुसलमान नहीं है वह वहां ऐसी तरंग लेकिर जाएगा जो पूरे वातावरण के लिए उपद्रव हो सकती है। अगर किसी मुसलमान को हिंदू मंदिर में प्रवेश नहीं मिलता है तो यह अपमानजनक नहीं है। जो सुधारक है, वह मंदिरों के विषय में कुछ नहीं जानते। धर्म एक गुह्म विज्ञान है। वे केवल उपद्रव पैदा करते है।

हिंदू मंदिर केवल हिंदुओं के लिए है। क्योंकि हिंदू मंदिर एक विशेष स्थान है, विशेष उदेश्य से निर्मित हुआ है। सदियों-सदियों से वे इस प्रयत्न में लगे है। कि कैसे जीवंत मंदिर बनाएँ जाएं। और कोई भी व्यक्ति उसमे उपद्रव पैदा कर सकता है। और यह उपद्रव खतरनाक है। सिद्ध हो सकता है। मंदिर कोई सार्वजनिक स्थान नहीं है। वहाँ एक विशेष उदेश्य से और विशेष लोगों के लिए बनाया गया है। वह आम दर्शकों के लिए नहीं है।

यही कारण है कि पुराने दिनों में आम दर्शकों को वहां प्रवेश नहीं मिलता था। अब सब को जाने दिया जाता है; क्योंकि हम नहीं जानते है कि हम क्या कर रहे है। दर्शकों को नहीं जाने दिया जाना चाहिए। यह कोई खेल तमाशे का स्थान नहीं है। यह स्थान विशेष तरंगों से तरंगायित है, विशेष उदेश्य के लिए निर्मित हुआ है।

इसलिए एक स्थान का उपयोग करो—स्थान के रूप में मंदिर अच्छा है। ये विधियां मंदिर के लिए है। मंदिर अच्छा है; मस्जिद अच्छी है। चर्च अच्छा है। तुम्हारा अपना धर इन विधियों के लिए उपयुक्त नहीं है। वहां इतना कोलाहल है कि वह अराजकता का स्थान बन गया है। और तुम इतने बलवान नहीं हो कि अपनी ध्वनि से उस वातावरण को बदल सको। तो अच्छा है कि किसी ऐसी जगह चले जाओ। जो किसी विशेष ध्वनि के लिए बना हो। ऐसे स्थान का उपयोग करो। और अच्छा है कि रोज-रोज एक ही स्थान को काम में लाओ।

धीरे-धीरे तुम शक्ति शाली हो जाओगे। और धीरे-धीरे मन से ह्रदय में उतर जाओगे। तब तुम कही भी यह प्रयोग कर सकते हो। तब सारा ब्रह्मांड तुम्हारा मंदिर बन जाएगा। तब समस्या नहीं रहेगी।

लेकिन आरंभ में स्थान का चुनाव जरूरी है। और अगर समय का, निश्चित समय का चुनाव कर सको तो यह और अच्छा। क्योंकि तब वह मंदिर उस निश्चित समय पर तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा। रोज ठीक उसी समय पर मंदिर तुम्हारा इंतजार करेगा। उस वक्त वह ज्यादा खुला होगा। उसे प्रसन्नता होगी कि तुम आ गए। वह सारा स्थान प्रसन्न होगा। और मैं ये बात प्रतीक के अर्थ में नहीं कह रहा हूं, यह एक सच्चाई है।

यह ऐसा है कि जैसे तुम किसी निश्चित समय पर भोजन लेते हो और रोज ठीक उसी समय पर तुम्हारा शरीर भूख अनुभव करने लगता है। शरीर की अपनी अलग आंतरिक घड़ी है। शरीर अपने ठीक समय पर भूख प्यास अनुभव करता है। अगर तुम प्रतिदिन एक विशेष समय पर सोते हो तो तुम्हारा पूरा शरीर उस समय सोने के लिए तैयार हो जाता है। और अगर तुम रोज-रोज अपने खाने और सोन का समय बदलते रहते हो तुम अपने शरीर को उपद्रव में डाल रहे हो।

अब तो वे कहते है कि ऐसे परिवर्तन से तुम्हारी आयु प्रभावित हो सकती है। अगर तुम रोज-रोज अपने शरीर की चर्या को, रूटीन को बदलते हो तो संभव है कि तुम्हारी उम्र कम हो जाए। यदि तुम अस्सी साल जीने वाले थे तो इस सतत परिवर्तन के कारण तुम सत्तर साल ही जीओगे। तुम दस साल गंवा दोगे। और अगर तुम शरीर की घड़ी के अनुसार अपनी चर्या चलाते हो तो तुम आसानी से अस्सी साल की बजाएं नब्बे साल वर्षो तक जीवित रह सकत हो। दस वर्ष जोड़े जा सकते है।

ठीक इसी तरह तुम्हारे चारों तरफ हर चीज की अपनी घड़ी है और सारा संसार जागतिक समय में गति करता है। अगर तुम प्रतिदिन निश्चित समय पर मंदिर में प्रवेश करते हो तो मंदिर तुम्हारे लिए तैयार होता है। और तुम मंदिर के लिए तैयार होते हो। ये दो तैयारियाँ आपस में मिलती है। और उसका फल हजार गुना हो जाता है।

यह तुम अपने घर में एक छोटा सा कोना इसके लिए सुरक्षित कर ले सकते हो। लेकिन तब उस स्थान को किसी और काम के लिए उपयोग मत करो। क्योंकि हर काम की अपनी तरंगें है। अगर तुम उस स्थान को व्यवसाय के काम में लाते हो, वहां ताश खेलते हो, तो वह स्थान कनफ्यूज्ड हो जाएगा। अब तो इन कनफ्यूज्ड को रेकार्ड करने के यंत्र है; जाना जा सकता है कि स्थान कनफ्यूज्ड है।

अगर तुम अपने घर में एक छोटा सा कोना इसके लिए अलग कर लो तो अच्छा । घर में एक छोटा सा मंदिर ही बना लो; बहुत अच्छा रहेगा। अगर तुम एक छोटा मंदिर बना सको तो सर्वोतम है। लेकिन फिर उसे किसी दूसरे काम में मत लाओ। उसे अपना निजी मंदिर रहने दो। और शीध्र ही परिणाम आने लगेंगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—43 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी सातवीं विधि:

स्वामी आनंद प्रसाद "मनसा"

"मुंह को थोड़ा-सा खुला रखते हुए मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।"

मन को शरीर में कहीं भी स्थिर किया जा सकता है। सामान्यत: हमने उसे सिर में स्थिर कर रखा है; लेकिन उसे कहीं भी स्थिर किया जा सकता है। और स्थिर करने के स्थान के बदलने से तुम्हारी गुणवता बदल जाती है। उदाहरण के लिए, पूर्व के

कई देशों में, जापान, चीन, कोरिया आदि में परंपरा से सिखाया जाता है कि मन पेट में है। सि में नहीं है। और इस करण उन लोगों के मन के गुण बदल जाते है। जो सोचते है कि मन पेट में है। जो लोग सोचते है कि मन सिर में है। उनके ये गुण नहीं हो सकते।

असल में मन कहीं भी नहीं है। सिर में है मस्तिष्क; मन का अर्थ है एकाग्रता; तुम मन को कही भी स्थिर कर सकते हो। और जहां उसे एक बार स्थिर कर दोगे वहां से उसे हटाना कठिन होगा। उदाहरण के लिए, अब मनोवैज्ञानिक और मनुष्य के गहरे में शोध करने वाले लोग कहते है कि जब तुम संभोग कर रहे हो तो तुम्हारा मन सिर से उतर कर कामेंद्रित पर चला जाता है। अन्यथा तुम्हारी काम-क्रिया बेकार जाएगी। अगर मन सिर में ही रहे तो तुम काम-भोग में गहरे नहीं उतर पाओगे। तब काम-समाधि नहीं घटित होगी और तुम्हें आर्गाज्म का अनुभव नहीं होगा। तब तुम्हें उसका शिखर नहीं प्राप्त होगा। तुम बच्चे पैदा कर सकेत हो; लेकिन तुम्हें प्रेम के शिखर का कोई अनुभव नहीं होगा।
तुम्हें उसकी कोई समझ नहीं है। जिसकी तंत्र चर्चा करता है या जिसे खजुराहो चित्रित करता है। तुम नहीं समझ सकते। क्या तुमने खजुराहो देखा है, अगर तुम खजुराहो नहीं गए हो तो तुमने खजुराहो के मंदिरों के चित्र अवश्य देखे होंगे। उनके चेहरों को ध्यान से देखो; संभोग रत जोड़ों को देखो, उनके चेहरो को देखो। वे चेहरे दिव्य मालूम पड़ते है। वे काम-भोग में संलग्न है; लेकिन उनके चेहरों में बुद्ध की समाधि झलकती है। उन्हें क्या हो गया है?

उनका काम भोग मानसिक नहीं है। वे बुद्धि से संभोग नहीं करते है; वे उसके संबंध में विचार नहीं करते है। वे बुद्धि से नीचे उतर आए है; उनका फोकस बदल गया है; और सिर से हट जाने के कारण उनकी चेतना कमेंद्रिय पर उतर आई है। अब मन नहीं है। अब मन अ-मन हो गया है। इसीलिए उनके चेहरों पर बुद्ध की समाधि झलकती है। उनका काम-भोग ध्यान बन गया है।

क्यों फोकस बदल गया। अगर तुम अपने मन के फोकस को बदल देते हो, अगर तुम उसे सिर से हटा लेते हो। तो सिर विश्राम में होता है। चेहरा विश्राम में होता है। तब सभी तनाव विलीन हो जाते है। तब तुम नहीं हो, तब अहंकार नहीं है।

यही कारण है कि चित जितना बौद्धिक होता है, बुद्धिवादी होता है, उतना ही वह प्रेम करने में असमर्थ हो जाता है। प्रेम के लिए भिन्न फोकसिंग की जरूरत है। प्रेम में तुम्हारा फोकस ह्रदय के पास होने की जरूरत है; संभोग में तुम्हारा फोकस काम केंद्र के पास होने की जरूरत है। जब तुम गणित करते हो तो सिर उसके लिए उचित जगह है। लेकिन प्रेम गणित नहीं है; संभोग बिलकुल गणित नहीं है। और अगर सिर में गणित से भरे होकर तुम संभोग में उतरते हो तो तुम अपनी ऊर्जा नष्ट करते हो। तब सारा श्रम बेचैनी पैदा करेगा।

लेकिन मन को बदला जा सकता है। तंत्र कहता है कि शरीर में सात चक्र है और मन को उनमें से किसी भी चक्र पर स्थिर किया जा सकता है। प्रत्येक चक्र का अलग गुण है। और अगर तुम एक विशेष चक्र पर एकाग्र करोगे तो तुम भिन्न ही व्यक्ति हो जाओगे।

जापान में एक सैनिक समुदाय हुआ है, जो भारत के क्षत्रियों जैसा है। उन्हें समुराई कहते है, उन्हें सैनिक के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है। और उन्हें पहली सीख यह दी जाती है कि तुम अपने मन को सिर से उतार कर नाभि-केंद्र के ठीक दो इंच नीचे ले आओ। जापान में इस केंद्र को हारा कहते हे। समुराई को मन को हारा पर लाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जब तक समुराई हारा को अपने मन का केंद्र नहीं बना लेना है तब तक उसे युद्ध में भाग लेने की इजाजत नहीं है।

और यही उचित है। समुराई संसार के सर्वश्रेष्ठ योद्धाओं में गिने जाते है। दुनिया में समुराई का कोई मुकाबला नहीं है। वह भिन्न ही किस्म का मनुष्य है, भिन्न ही प्राणी है; क्योंकि उसका केंद्र भिन्न है।

वे कहते है कि जब तुम युद्ध करते हो तो समय नहीं रहता है। और मन को समय की जरूरत पड़ती है। वह हिसाब-किताब करता है। अगर तुम पर कोई आक्रमण करे और उसे समय तुम्हारा मन सोच-विचार करने लगे कि कैसे बचाव किया जाए, तो तुम गए; तुम अपना बचाव न कर सकोगे। समय नहीं है; तुम्हें तब समयातित में काम करना होगा। और मन समयातित में काम नहीं कर सकता है। मन को समय चाहिए। मन को समय चाहिए। चाहे कितना भी थोड़ा हो, मन को समय चाहिए।

नाभि के नीचे एक केंद्र है जिसे हारा कहते है; यह हारा समयातित में काम करता है। अगर चेतना को हारा पर स्थिर किया जाए और तब योद्धा लड़े तो वह युद्ध प्रज्ञा से लड़ा जाएगा। मस्तिष्क से नहीं। हारा पर स्थिर योद्धा आक्रमण होने के पूर्व जान जाता है के आक्रमण होने वाला है। यह हारा का एक सूक्ष्म भाव है। बुद्धि का नहीं। यह कोई अनुमान नहीं है; यह टेलीपैथी है। इसके पहले कि तुम उस पर आक्रमण करो, उसके पहले कि तुम उस पर आक्रमण करने की सोचो। वह विचार उसे पहुंच जाता है। उसके हारा पर चोट लगती है और वह अपना बचाव करने को तत्पर हो जाता है। वह आक्रमण होने के पहले ही अपने बचाव में लग जाता है। उसने अपना बचाव कर लिया।

कभी-कभी जब दो समुराई आपस में लड़ते है तो हार-जीत मुश्किल हो जाती है। समस्या यह होती है कि कोई किसी को नहीं हरा सकता। किसी को विजेता नहीं घोषित कर सकता। एक तरह से निर्णय असंभव है; क्योंकि आक्रमण ही नहीं हो सकता। तुम्हारे आक्रमण करने के पहले ही वह जान जाता है।

एक भारतीय गणितज्ञ हुआ। सारा संसार चकित था; क्योंकि वह कोई हिसाब-किताब नहीं करता था। उसका नाम रामानुजम था। तुम उसे कोई भी समस्या दो और वह तुरंत उत्तर बता देता था। इंग्लैंड का सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ हार्डी तो रामानुजम के पीछे पागल था। हार्डी सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ था। लेकिन उसे भी किसी-किसी प्रश्न को हल करने में छह-छह घंटे लग जाते थे। लेकिन रामानुजम का हाल यह था कि तुम उसे प्रश्न दो और वह उसका उत्तर तुरंत बता देता था। इस ढंग से मन के काम करने का कोई उपाय नहीं है। मन को तो समय चाहिए। रामानुजम को बार-बार पूछा गया कि तुम यह कैसे करते हो? वह कहता था कि मैं नहीं जानता; तुम मुझे प्रश्न कहते हो और मुझे उसका उत्तर आ जाता है। वह कहीं नीचे से आता है। वह मेरे सिर से नहीं आता है।

यह उत्तर उसके हारा से आता था। उसे खुद यह बात नहीं मालूम थी। उसे कोई प्रशिक्षण भी नहीं मिला था। लेकिन मेरे देखे वह अपने पिछले जन्म में जापानी रहा होगा; क्योंकि भारत में हमने हारा पर काम नहीं किया है।

तंत्र कहता है कि अपने मन को भिन्न-भिन्न केंद्रों पर स्थिर करो और उसके भिन्न-भिन्न-भिन्न परिणाम होंगे। यह विधि मन को जीभ पर, जीभ के मध्य भाग पर स्थिर करने को कहती है।

''मुंह को थोड़ा सा खुला रखते हुए....।''

मानो तुम बोलने जा रहे हो। मुंह को बंद नहीं, थोड़ा सा खुला रखना है—मानो तुम बोलने वाले हो। ऐसा नहीं है कि तुम बोल रहे हो; ऐसा ही कि तुम बोलने जा रहे हो। मुंह को इतना ही खोलों जितना उस समय खोलते हो जब बोलने को होते हो। और तब मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। तब तुम्हें अनूठा अनुभव होगा। क्योंकि जीभ के ठीक बीच में एक केंद्र है जो तुम्हारे विचारों को नियंत्रित करता है। अगर तुम अचानक सजग हो जाओ और उस केंद्र पर मन को स्थिर करो तो तुम्हारे विचार बंद हो जाते है। जीभ के ठीक बीच में मन को स्थिर करो—मानो तुम्हारा समस्त मन जीभ में चला आया है। जीभी के ठीक बीच में।

मुंह को थोड़ा सा खुला रखो, जैसे कि तुम बोलने जा रहे हो। और तब मन को इस तरह स्थिर करो कि वह सिर में न होकर जीभ में आ जाए, जीभ के ठीक मध्य भाग में।

जीभ में वाणी का, बोलने का केंद्र है; और विचार वाणी है। जब तुम सोचते हो, विचार करते हो तो क्या करते हो? तुम अपने भीतर बातचीत करते हो। क्या तुम भीतर बातचीत किए बिना विचार कर सकते हो? तुम अकेले हो; तुम किसी दूसरे व्यक्ति के साथ बातचीत नहीं कर रहे हो। लेकिन तब भी तुम विचार कर रहे हो। तब तुम विचार कर रहे हो तो क्या कर रहे हो? तुम अपने बातचीत कर रहे हो, उसमें तुम्हारी जी संलग्न है।

अगली दफा जब तुम विचार में संलग्न होओ तो सजग होकर अपनी जीभ पर अवधान दो। उस वक्त तुम्हारी जीभ ऐसे कंपित होगी जैसे वह किसी के साथ बातचीत करते समय होती है। फिर अवधान दो और तुम्हें पता चलेगा कि तरंगें जीभ के मध्य में केंद्रित है; वे मध्य से उठकर पूरी जीभ पर फैल जाती है।

विचार करना अंतस की बातचीत है। और अगर तुम अपनी चेतना को, अपने मन को जीभ के मध्य में केंद्रित कर सको तो विचार ठहर जाते है। जो लोग मौन का अभ्यास करते है, वे यही तो करते है कि बातचीत के प्रति बहुत बोधपूर्ण हो जाते है। और अगर तुम महीने दो महीने, या वर्ष भर बिलकुल मौन रह सको। बिना बातचीत के रह सको , तो तुम देखोगें कि तुम्हारी जीभ कितनी जोर से कंपित होती है। तुम्हें इसका पता नहीं चलता है; क्योंकि तुम निरंतर बात करते रहते हो। और उससे तरंगों का निरसन हो जाता है।

लेकिन अगर अभी भी तुम रुककर अपने विचार के प्रति सजग होओ तो तुम्हें मालूम होगा कि जीभ थोड़ी-थोड़ी कंपित हो रही है। अब अपनी जीभ को पूरी तरह ठहरा दो, रोक दो और तब सोचने की चेष्टा करो; तुम नहीं सोच पाओगे। जीभ को ऐसे स्थिर कर दो जैसे वह जग गई हो। उसमें कोई गति मत होने दो; और तब तुम्हारा सोचना-विचारना असंभव हो जाएगा। केंद्र ठीक मध्य में है; मन को वहीं स्थिर करो।

''मुंह को थोड़ा-सा खुला रखते हुए मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।''

यह दूसरी विधि है और पहली जैसी ही है।

''अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।''

पहली विधि से तुम्हारा विचार बंद हो जाएगा। तुम अपने भीतर एक ठोसपन अनुभव करोगे—मानो तुम ठोस हो गए हो। जब विचार नहीं होते है तो तुम अचल हो जाते हो। थिर हो जाते हो। और जब विचार नहीं है और तुम अचल हो तो तुम शाश्वत के अंग हो जाते हो। यह शाश्वत बदलता हुआ लगाता है। लेकिन दरअसल वह अचल है, ठहरा हुआ है। निर्विचार में तुम शाश्वत के, अचल के अंग हो जाते हो।

विचार के रहते तुम चलायमान के, परिवर्तनशील के अंग हो; क्योंकि प्रकृति चलायमान है, संसार चलायमान है। यही कारण है कि हम इसे संसार कहते है। संसार का अर्थ है: चक्र, चाक। यह चल रहा है। चल रहा है; यह सतत घूम रहा है। संसार निरंतर गति है। और जो अदृश्य है, परम है, वह अचल है, ठहरा हुआ है।

यह ऐसा है जैसे की चाक तो घूमता है। लेकिन जिसके सहारे वह घूमता है वह धुरी अचल है। चाक तभी घूम सकता है जब उसके केंद्र पर कुछ है जो सदा अचल है—धुरी अचल है। संसार चल रहा है, और ब्रह्मा अचल है। जब विचार विसर्जित होता है तो तुम अचानक इस लोक से दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते हो। भीतरी गति के बंद होते ही तुम शाश्वत के अंग हो जाते हो—उस शाश्वत के, जो कभी बदलता नहीं है।

''अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, अकार ध्वनि को अनुभव करो।''

मुंह को थोड़ा-सा खुला रखे, मानों तुम बोलने जा रहे हो। और तब श्वास को भीतर ते जाओ। और उस ध्वनि के प्रति सजग रहो जो भीतर आती हुई श्वास से पैदा होती है। वह ही हकार है। चाहे श्वास भीतर जाती है, या बाहर। इस ध्वनि को तुम्हें पैदा नहीं करना है; तुम्हें तो अंदर आती श्वास को अपनी जीभ पर केवल महसूस करना है। यह बहुत धीमा स्वर है। लेकिन है। वह हकार जैसा मालूम होता है। वह बहुत मौन है; मुश्किल से सुनाई देता है। उसे सुनने के लिए तुम्हें बहुत सजग होना पड़ेगा। लेकिन उसे पैदा करने की चेष्टा मत करना। अगर तुमने उसे पैदा करने की चेष्टा की तो तुम चुक जाओगे। पैदा की हुई ध्वनि किसी काम की नहीं होती। जब-जब श्वास भीतर जाती है या बाहर आती है, तब जो ध्वनि अपने आप पैदा होती है वह स्वाभाविक है।

लेकिन विधि कहती है कि भीतर आती श्वास के साथ प्रयोग करना है, बाहर जाती श्वास के साथ नहीं। क्योंकि बाहर जाती श्वास के साथ तुम भी बाहर चल जाओगे। ध्वनि के साथ-साथ तुम भी बाहर चले जाओगे। जब कि चेष्टा भीतर जाने की है। अंत: भीतर जाती श्वास के साथ हकार ध्वनि को अनुभव करो। देर-अबेर तुम्हें अनुभव होगा कि यह ध्वनि सिर्फ जीभ में ही नहीं, कंठ में भी हो रही है। लेकिन तब वह बहुत ही धीमी हो जाती है। उसे सुनने के लिए प्रगाढ़ जागरूकता की जरूरत है।

तो जीभ से शुरू करो; फिर धीरे-धीरे सजगता को बढ़ाओं, उसे महसूस करो। तब तुम उसे कंठ से सुनोंगे। और उसके बाद उसे अपने हृदय में सुनने लगोगे। और जब वह हृदय में पहुँचती है तो तुम मन के पार चले गए। ये सारी विधियां वह सेतु निर्मित करती है जहां से तुम विचार से निर्विचार में, मन से अ-मन में, सतह से केंद्र में प्रवेश करते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—44 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी आठवीं विधि:

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

ओम ध्वनि पर एकाग्र करो; लेकिन इस ओम में म न रहें। तब सिर्फ उ बचता है। यह कठिन विधि है; लेकिन कुछ लोगों के लिए यह योग्य पड़ सकती है। खासकर जो लोग ध्वनि के साथ काम करते है। संगीतज्ञ, कवि, जिनके काम बहुत संवेदनशील है, उनके लिए यह विधि सहयोगी हो सकती है। लेकिन दूसरों के लिए जिनके कान संवेदनशील नहीं है, यह विधि कठिन पड़ेगी। क्योंकि यह बहुत सूक्ष्म है।
तो तुम्हें ओम का उच्चारण करना है और इस उच्चारण में तीनों ध्वनियों को—अ, उ और म को महसूस करना है। ओम का उच्चारण करो और उसमें तीन ध्वनियों को—अ, उ और म को अनुभव करो। वे तीनों ओम में समाहित है। बहुत संवेदनशील काम ही इन तीनों ध्वनियों को अलग-अलग सुन सकते है। वे अलग-अलग है, यद्यपि बहुत करीब-करीब भी है। अगर तुम उन्हें अलग-अलग नहीं सुन सकते तो यह विधि तुम्हारे लिए नहीं है। तुम्हारे कानों को उनके लिए प्रशिक्षित करना होगा।

जापान में, विशेषकर झेन परंपरा में, वे पहले कानों को प्रशिक्षित करते है। कानों के प्रशिक्षण के उपाय है। बाहर हवा चल रही है; उसकी एक ध्वनि है। गुरु शिष्य से कहता है कि इस ध्वनि पर अपने कान को एकाग्र करो; उसके सूक्ष्म भेदों को, उसकी बदलाहटों को समझो; देखो कि कब ध्वनि कुपित है और कब उन्मत्त, कब ध्वनि करणावान है और कब प्रेमपूर्ण हे। कब वह शक्तिशाली है। और कब नाजुक है। ध्वनि की बारीकियों को अनुभव करो। वृक्षों से होकर हवा गुजर रही है। उस महसूस करो। नदी बह रही है; उसके सूक्ष्म भेदों को पहिचानों।

और महीनों साधक नदी के किनारे बैठकर उसके कलकल स्वर को सुनता रहता है। नदी का स्वर भी भिन्न-भिन्न होता है। वह सतत बदलता रहता है। बरसात में नदी पूर पर होती है; बहुत जीवंत होती है, उमड़ती होती है। उस समय उसके स्वर भिन्न होते है। और गर्मी में नदी ना कुछ होती है। उसका कलकल भी समाप्त हो जाता है। लेकिन अगर तुम सुनना चाहो तो वह सूक्ष्म स्वर भी सूना जा सकता है। साल भर नदी बदलती रहती है और साधक को सजग रहना पड़ता है।

हरमन हेस के उपन्यास सिद्धार्थ एक माझी के साथ रहता है। नदी है, माझी है और सिद्धार्थ है; उनके अतिरिक्त और कोई नहीं है। और माझी बहुत शांत व्यक्ति है। वह आजीवन नदी के साथ रहता है; वह इतना शांत हो गया है कि कभी-कभार ही बोलता है। और जब भी सिद्धार्थ अकेलापन महसूस करता है, माझी उससे कहता है कि तुम जाओ नदी के किनारे और उसकी कल-कल ध्वनि को सुनो। मनुष्य की बकवास कि बजाएं नदी को सुनना बेहतर है।

और सिद्धार्थ धीरे-धीरे नदी के साथ लयबद्ध हो जाता है। और तब उसे नदी की भाव दशा का बोध होने लगता है। नदी की भाव दशा बदलती रहती है। कभी वह मैत्रीपूर्ण है और कभी नहीं; कभी वह गाती है और कभी रोती-चीखती है; कभी वह हंसती है और कभी उसे उदासी घेर लेती है। और सिद्धार्थ उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म भेदों को पकड़ने लगता है। उसके कान नदी के साथ लयबद्ध हो जाते है।

तो हो सकता है, आरंभ में तुम्हें यह विधि कठिन मालूम पड़े। लेकिन प्रयोग करो; ओम का उच्चार करो और उच्चार करते हुए ओम की ध्वनि को अनुभव करो। इसके तीन, ध्वनियों सम्मिलित; ओम तीन स्वरों का समन्वय है। और जब तुम इन तीन स्वरों को अलग-अलग अनुभव कर लो तो उनमें से अ और म को छोड़ दो। तब तुम ओम नहीं कह सकोगे; क्योंकि अ निकल गया, म भी निकल गया। तब तुम ओम नहीं कह सकोगे; क्योंकि अ निकल गया , म भी निकल गया। तब सिर्फ उ बच रहेगा। क्या होगा?

मंत्र असली चीज नहीं है। असली चीज ओम नहीं है और न उसका छोडना है। असली चीज तुम्हारी संवेदनशीलता है। पहले तुम तीन ध्वनियों के प्रति संवेदनशील होते हो, जो कठिन काम है। और जब तुम इतने संवेदनशील हो जाते हो कि तुम उनमें से दो स्वरों को, अ और म को छोड़ सकते हो तो सिर्फ बीच का स्वर बचता है। और इस प्रयत्न में तुम्हारा मन विसर्जित हो जाता है। तुम उसमे इतने तल्लीन हो जाओगे, उसके प्रति इतने अवधान से भरे जाओगे, तुम इतने संवेदनशील हो जाओगे कि विचार विसर्जित हो जाएंगे। और अगर तुम सोच-विचार करते हो तो तुम स्वरों के प्रति संवेदनशील नहीं हो सकते।

यह तुम्हें तुम्हारे सिर से बारह निकालने का परोक्ष उपाय है। बहुत सारे उपाय प्रयोग में लाए गए है। और वे बहुत सरल प्रतीत होते है। तुम्हें आश्चर्य होता है कि इन सरल उपायों से क्या हो सकता है। लेकिन चमत्कार घटित होता है; क्योंकि वे उपाय परोक्ष है। तुम्हारे मन को बहुत सूक्ष्म चीज पर स्थिर किया जा सकता है। इस प्रयत्न में सोच-विचार नहीं चल सकता है। तुम्हारा मन खो जाएगा। और तब किसी दिन अचानक तुम्हें इस बात का पता चलेगा। और तुम चकित रह जाओगे कि क्या हुआ।

झेन में कोआन का, पहेली का प्रयोग होता है। एक बहुत प्रचलित कोआन है जो नए साधकों को दिया जाता है। उन्हें कहा जाता है कि एक हाथ की ताली सुनो। अब ताली तो दो हाथों से बजती है। लेकिन उन्हें कहा जाता है कि एक हाथ से बजने वाली ताली को सुनो।

किसी झेन गुरु की सेवा में एक लड़का रहता था। वह देखता था कि अनेक लोग आते है, गुरु के पैर पर सिर रखते है और कहते है कि हमे बताएं कि हम किस पर ध्यान करें। गुरु उन्हें कोई कोआन दिया करता था। वह लड़का गुरु के छोटे-मोटे काम कर दिया करता था। वह उसकी सेवा में था। उसकी उम्र नौ साल की रही होगी। रोज-रोज साधकों को आते-जाते देखकर वह भी एक दिन बहुत गंभीरता के साथ गुरु के निकट गया और उसके चरणों में सिर रखकर निवेदन किया कि मुझे भी ध्यान करने के लिए कोई कोआन दें।

गुरु हंसा। लेकिन लड़का गंभीर बना रहा। तो गुरु ने उसे कहा कि ठीक है, एक हाथ की ताली सुनने की चेष्टा करो। और जब सुनाई पड़ जाए तो आकर मुझे बताना।

लड़के ने बहुत प्रयत्न किया। रात-रात भर उसे नींद नहीं आई। कुछ दिनों बात वह आकर कहता है मैंने सून ली। वह वृक्षों से गुजरती हवा है। लेकिन गुरु ने पूछा; इसमें हाथ कहा है? जाओ और फिर प्रयत्न करो। ऐसे लड़का रोज आत ही रहा। वह कोई ध्वनि खोज लेता और गुरु को बताता। लेकिन हर बार गुरु कहता कि यह भी नहीं है; और प्रयत्न करो।

फिर एक दिन लड़का गुरु के पास नहीं आया। गुरु ने उसकी बहुत प्रतीक्षा की; लेकिन वह नहीं आया। तब उसने अपने दूसरे शिष्यों से कहा कि जाकर पता करो कि क्या हुआ। गुरु ने कहा कि मालूम होता है कि उसने एक हाथ की ताली सुन ली है। शिष्य गए। लड़का एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थ बैठा था—मानों एक नवजात बुद्ध बैठा हो।

उन्होंने लौटकर गुरु को खबर दी। उन्होंने कहा कि हमें उसे हिलाने में डर लगा; वह तो नवजात बुद्ध मालूम होता है। मालूम पड़ता है कि उसने ताली सुन ली। तब गुरु स्वयं आया, उसने लड़के के चरणों में सिर रखा और पूछा: ''क्या तुमने सुना?'' मालूम होता है कि तुमने सुन लिया। लड़के ने स्वीकृति से सिर हिलाते हुए कहा: ''हां, लेकिन वह तो मौन है।

इस लड़के ने कैसे सुना? उसकी संवेदनशीलता विकसित हुई। उसने प्रत्येक ध्वनि को सुनने की चेष्टा की और उसने बहुत अवधान से सुना। उसका अवधान विकसित हुआ। उसकी नींद जाती रही। वह रात भर जाग कर सुनता कि एक हाथ की ताली क्या है। वह तुम्हारे जैसा बुद्धिमान नहीं था। उसने यह सोचा ही नहीं कि एक हाथ की ताली नहीं हो सकती।

वही पहेली तुम्हें दी जाए तो तुम प्रयोग करने वाले नहीं हो। तुम कहोगे कि यह मूढता है; एक हाथ की ताली नहीं हो सकती। लेकिन उस लड़के ने प्रयोग क्या। उसने सोचा कि जब गुरु ने कहा है तो उसमें जरूर कुछ होगा; उसमे श्रम किया। वह सरल था। जब भी उसे लगता है। कि कोई नई चीज है तो वह दौड़ाकर गुरु के पास जाता। इस ढंग से उसकी संवेदनशीलता विकसित होती गई। वह और-और सजग और बोध पूर्ण होता गया। वह एकाग्र हो गया। वह लड़का खोज में लगा था। इसलिए उसका मन विसर्जित हो गया। गुरु ने उससे कहा था कि अगर तुम सोच विचार करते रहोगे। तो तुम चूक जाओगे। कभी-कभी ऐसी ध्वनि होती है कि जो एक हाथ की होती है। इसलिए सजग रहना ताकि चूक न जाओ। और उसने प्रयत्न किया।

एक हाथ की ताली नहीं होती है। लेकिन यह तो संवेदनशीलता को, बोध को पैदा करने का एक परोक्ष उपाय था। और एक दिन अचानक सब कुछ विलीन हो गया। वह इतना अवधान पूर्ण हो गया कि अवधान ही रह गया। वह इतना संवेदनशील हो गया कि संवेदनशीलता ही रह गई। वह इतना बोधपूर्ण हो गया कि बोध ही रह गया। वह सिर्फ बोधपूर्ण था; किसी चीज के प्रति बोधपूर्ण नहीं। और तब उसने कहा: ''मैंने सुन लिया। लेकिन यह तो मौन है, शुन्य है।''

लेकिन इसके लिए तुम्हें सतत और होश पूर्ण होने का अभ्यास करना होगा।

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

यह विधि है जो तुम्हें ध्वनि के सूक्ष्म भेदों के प्रति नाजुक भेदों के प्रति सजग बनाती है। इसका प्रयोग करते-करते तुम ओम को भूल जाओगे। न सिर्फ अ गिरेगा। न सिर्फ म गिरेगा। बल्कि किसी दिन तुम भी अचानक खो जाओगे। तब शून्य का, मौन का जन्म होगा। और तब तुम भी किसी वृक्ष के नीचे बैठे नवजात बुद्ध हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—45 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी नौवीं विधि:

अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।–तंत्र-सूत्र

''अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

कोई भी शब्द जिसका अंत अ: से होता है, उसका उच्चार चुपचाप करो। शब्द के अंत में अ: के होने पर जोर है। क्यो? क्योंकि जि क्षण तुम अ: का उच्चार करते हो, तुम्हारी श्वास बाहर जाती है। तुमने ख्याल नहीं किया होगा। अब ख्याल करना कि जब भी तुम्हारी श्वास बाहर जाती है, तुम ज्यादा शांत होते हो। और जब भी श्वास भीतर जाती है, तुम ज्यादा

तनावग्रस्त होते हो। कारण यह है कि बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु है। और भीतर आने वाली श्वास जीवन है। तनाव जीवन का हिस्सा है। मृत्यु का नहीं। विश्राम मृत्यु का अंग है, मृत्यु का अर्थ है पूर्ण विश्राम। जीवन पूर्ण विश्राम नहीं बन सकता। वह असंभव है। जीवन का अर्थ है तनाव, प्रयत्न; सिर्फ मृत्यु विश्राम पूर्ण है।
तो जब भी कोई व्यक्ति पूरी तरह विश्राम पूर्ण हो जाता है, वह दोनों हो जाता है—बाहर से वह जीवित होता है। और भीतर से मृत। तुम बुद्ध के चेहरे पर जीवन मृत्यु एक साथ देख सकते हो। इसलिए उनके चेहरे पर इतना मौन, इतनी शांति है—मौन और शांति मृत्यु के अंग है।

जीवन विश्राम पूर्ण नहीं है, राम में जब तुम सो जाते हो तो तुम विश्राम में होते हो। इसी लिए पुरानी परंपराएं कहती है कि मृत्यु और नींद समान है। नींद अस्थायी मृत्यु है। और यही कारण है कि रात्रि विश्राम दायी होती है। वह बाहर जाने वाली श्वास है। सुबह भीतर आने वाली श्वास है। दिन तुम्हें तनाव से भर देता है। रात तुम्हें विश्राम से भरती है। प्रकाश तनाव पैदा करता है, अंधकार विश्राम लाता है। यही वजह है कि तुम दिन में नहीं सो सकते। दिन में विश्राम करना कठिन है। प्रकाश जीवन जैसा है, वह मृत्यु विरोधी है। अंधकार मृत्यु जैसा है। वह मृत्यु के अनुकूल है।

तो अंधकार में गहरी विश्रांति है। और जो लोग अंधकार से डरते है, वे विश्राम में नहीं उतर सकते। यह असंभव है।

विश्राम अंधेरे में घटित होता है। और तुम्हारे जीवन के दोनों छोरों पर अंधरा है। जन्म के पहले तुम अंधेरे में होते हो। और मृत्यु के बाद तुम फिर अंधेरे में होते हो। अंधकार असीम है। और यह प्रकाश, यह जीवन उस अंधकार के भीतर एक क्षण जैसा है। अंधकार के समुद्र में प्रकाश लहर जैसा है जो उठता-गिरता रहता है। अगर तुम जीवन के दोनों छोरों को घेरने वाले अंधकार को स्मरण रख सको तो तुम यहीं और अभी विश्राम में हो सकते हो।

जीवन और मृत्यु अस्तित्व के दो छोर हे। भीतर आने वाली श्वास जीवन है, बहार जाने वाली श्वास मृत्यु है। ऐसा नहीं है कि तुम किसी दिन मरोगे, तुम प्रत्येक श्वास के साथ मर रहे हो।

यही कारण है कि हिंदू जीवन को श्वासों की गिनती कहते है, वे उसे वर्षों की गिनती नहीं कहते। तंत्र, योग आदि सभी भारतीय परंपराएं जीवन को श्वासों में गिनती है। वे कहती है कि तुम्हें इतनी श्वासों का जीवन मिला है। वे कहती है कि अगर तुम तेजी से श्वास लोगे, थोड़े समय में ज्यादा श्वासें लोगे तो तुम बहुत जल्दी मरोगे। और अगर तुम बहुत धीरे-धीरे श्वास लोगे, अगर एक निश्चित समय में कम श्वास लोगे तो तुम ज्यादा समय तक जीओगे।

और बात ऐसी ही है। अगर तुम पशुओं का निरीक्षण करोगे तो पाओगे कि बहुत धीमी श्वास लेने वाले पशु लंबी उम्र जीते है। उदाहरण के लिए हाथी है, हाथी की उम्र बड़ी है। क्योंकि उसकी श्वास धीमी चलती है। फिर कुत्ता है, उसकी श्वास तेज चलती है। और उसकी उम्र बहुत कम है। जो भी पशु बहुत तेज श्वास लेता होगा, उसकी उम्र लम्बी नहीं हो सकती। लंबी उम्र सदा धीमी श्वास के साथ जुड़ी है।

तंत्र, योग और अन्य भारतीय साधना पथ तुम्हारे जीवन का हिसाब तुम्हारी श्वासों से लगाते है। सच तो यह है कि तुम हरेक श्वास के साथ जन्मते हो और हरेक श्वास के साथ मरते हो। यह विधि बाहर जाने वाली श्वास को गहरे मौन में उतरने का माध्यम बनाती है। उपाय बनाती है। यह एक मृत्यु-विधि है।

''अ से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

श्वास बाहर गई है—इसलिए अः से अंत होने वाले शब्द का उपयोग है यह अः अर्थपूर्ण है; क्योंकि जब तुम अः कहते हो वह तुम्हें पूरी तरह खाली कर देता है। उसके साथ पूरी श्वास बाहर निकल जाती है। कुछ भी भीतर बची नहीं रहती है। तुम

बिलकुल खाली हो जाते हो—खाली और मृत। एक क्षण के लिए, बहुत थोड़ी देर के लिए जीवन तुमसे बाहर निकल गया है और तुम मृत और खाली हो।

अगर इस रिक्ता इस खाली पन को तुम जान लो। उसके प्रति बोधपूर्ण हो जाओ तो तुम पूर्णतः रूपांतरित हो जाओगे। तुम और ही आदमी हो जाओगे। तब तुम भली भांति जान लोगे कि न यह जीवन तुम्हारा जीवन है और न यह मृत्यु ही तुम्हारी मृत्यु है। तब तुम उसे जान लोगे जो आती-जाती श्वासों के पास है, तब तुम साक्षी आत्मा को जान लोगे। और साक्षित्व उस समय आसानी से घट सकता है जब तुम श्वासों से खाली हो, क्योंकि तब जीवन उतार पर होता है। और सारे तनाव भी उतार पर होते है। तो इस विधि को प्रयोग में लाओ। यह बहुत ही सुंदर विधि है।

लेकिन आमतौर से, सामान्य आदत के मुताबिक, हम सदा भीतर आने वाली श्वास को ही महत्व देते है। हम बाहर जाने वाली श्वास को कभी महत्व नहीं देते। हम सदा भीतर लेते है। उसे बाहर नहीं छोड़ते। हम श्वास लेते है और शरीर उसे छोड़ता है। तुम अपनी श्वसन क्रिया का निरीक्षण करो और तुम्हें यह पता चल जाएगा।

हम सदा श्वास लेते है। हम उसे छोड़ते नहीं। छोड़ने का काम शरीर करता है। और इसका कारण यह है कि हम मृत्यु से भयभीत है। बस यही कारण है। अगर हमारा बस चलता तो हम कभी श्वास को बाहर जाने ही नहीं देते। हम श्वास को भीतर ही रोक रखते। कोई भी व्यक्ति श्वास छोड़ने पर जोर नहीं देता। सब लोग श्वास लेने की ही बात करते है। लेकिन श्वास को भीतर लेने के बाद उसे बाहर निकालना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए हम मजबूरी में उसे बाहर जाने देते है। उस हम किसी तरह बरदाश्त कर लेते है। क्योंकि श्वास छोड़े बगैर श्वास लेना असंभव है। इसलिए श्वास छोड़ना आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकृत है। लेकिन बुनियादी तौर से श्वास छोड़ने में हमारा कोई रस नहीं है।

और यह बात श्वास के संबंध में ही सही नहीं है। पूरे जीवन के प्रति हमारी दृष्टि यही है। जो भी हमें मिलता है, उसे हम मुट्ठी में बाँध लेते है। उसे छोड़ने का नाम ही नहीं लेते। यही मन का कृपणता है। और याद रहे, इसके बहुत परिणाम होते है। अगर तुम कब्जियत से पीडित हो तो उसका कारण यह है कि तुम श्वास तो लेते हो, लेकिन उसे छोड़ते नहीं। जो व्यक्ति श्वास लेना जानता है। लेकिन छोड़ना नहीं, वह कब्जियत से पीडित होगा। कब्जियत उसी चीज का दूसरा छोर है। वह किसी भी चीज को अपने से बाहर जाने देने के लिए राज़ी नहीं है। वह सिर्फ इकट्ठा करता जाता है। यह भयभीत है और भय के कारण यह इकट्ठा किए जाता है।

लेकिन जो चीज रोक ली जाती है वह विषाक्त हो जाती है। तुम श्वास तो लेते हो लेकिन अगर उसे छोड़ते नहीं तो वह श्वास जहर बन जाएगी और तुम उसके कारण मरोगे। अगर तुमने कंजूसी की तो तुम एक जीवनदायी तत्व को जहर में बदल दोगे। क्योंकि श्वास का बाहर जाना नितांत जरूरी है। बाहर जाती श्वास तुम्हारे भीतर से सब जहर को बाहर निकाल फेंकती है।

तो सच तो यह कि मृत्यु शुद्धि की प्रक्रिया है और जीवन अशुद्धि की, विषाक्त करने की प्रक्रिया है। यह बात विरोधाभासी मालूम पड़ेगी। जीवन विषाक्त करने की प्रक्रिया है, क्योंकि जीने के लिए बहुत सी चीजों को उपयोग में लाना पड़ता है। और जैसे ही तुम उनका उपयोग करते हो। वे विष में बदल जाती है। तब तुम श्वास लेते हो तो तुम आक्सीजन का उपयोग कर रहे हो, लेकिन उपयोग करने के बाद जो चीज बच रहती है वह विष है। आक्सीजन के कारण ही वह जीवन था। लेकिन जब तुमने उसका उपयोग कर लिया तो शेष विष हो जाता है। ऐसे ही जीवन हर चीज को जहर में बदलता रहता है।

मृत्यु शुद्ध की प्रकिया है। जब सारा शरीर विषाक्त हो जाता है। तब मृत्यु तुम्हें उस शरीर से मुक्त कर देती है। मृत्यु तुम्हें फिर से नया बना देती है। तुम्हें नया जन्म दे देगी। तुम्हें नया शरीर मिल जाएगा। मृत्यु के द्वारा शरीर का सब संग्रहीत विष प्रकृति में विलीन हो जाता है। और तुम्हें एक नया शरीर उपलब्ध होता है।

और यह बात प्रत्येक श्वास के साथ घटित होती है। बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु के समान है, वह विष को बाहर ले जाती है। और जब वह श्वास बाहर जाती है। तो तुम्हारे भीतर सब कुछ शांत होने लगता है। अगर तुम सारी की सारी श्वास बाहर फेंक दो, कुछ भी भीतर न रहने पाए तो तुम शांति के उस बिंदु को छू लोगे जो श्वास के भीतर रहते हुए कभी नहीं छुआ जा सकता था। यह ज्वार-भाटे जैसा है। आती हुई श्वास के साथ तुम्हारे पास जीवन-ज्वार आती है और जाती हुई श्वास के साथ सब कुछ शांत हो जाता है। ज्वार चला गया तब, तुम खाली, रिक्त सागर तट भर रह जाते हो। इस विधि का यही उपयोग करो।

''अ से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

बाहर जाने वाली श्वास पर जोर दो। और तुम इस विधि का उपयोग मन में अनेक परिवर्तन लाने के लिए कर सकते हो। अगर तुम कब्जियत से पीड़ित हो तो श्वास भूल जाओ। सिर्फ श्वास को बहार फेंको। श्वास भीतर ले जाने का काम शरीर को करने दो। तुम छोड़ने भर का काम करो। तुम श्वास को बाहर निकाल दो और भीतर ले जाने की फिक्र ही मत करो। शरीर वह काम अपने आप ही कर लेगा, तुम्हें उसकी चिंता नहीं लेनी है। उससे तुम मर नहीं जाओगे। शरीर ही श्वास को भीतर ले जाएगा। तुम छोड़ने भर का काम करो, शेष शरीर कर लेगा। और तुम्हारी कब्जियत जाती रहेगी।

अगर तुम ह्रदय रोग से पीड़ित हो तो श्वास को बाहर छोड़ो। लेने की फिक्र मत करो। फिर ह्रदय रोग तुम्हें कभी नहीं होगा। अगर सीढ़ियां चढ़ते हुए या कहीं जाते हुए तुम्हें थकावट महसूस हो, तुम्हारा दम घुटने लगे तो तुम इतना ही करो: श्वास को बाहर छोड़ो, लो नहीं। और तब तुम कितनी ही सीढ़ियां चढ़ जाओगे। और नहीं थकोंगे। क्या होता है?

जब तुम श्वास छोड़ने पर जोर देते हो तो उसका मतलब है कि तुम अपने को छोड़ने का, अपने खोने को राज़ी हो। तब तुम मरने को राज़ी हो, तब तुम मृत्यु से भयभीत नहीं हो। और यही चीज तुम्हें खोलती है। अन्यथा तुम बंद रहते हो। भय बंद करता है। जब बंद करता है। जब तुम श्वास छोड़ते हो तो पूरी व्यवस्था बदल जाती है। और वह मृत्यु को स्वीकार कर लेती है। भय जाता रहता है और तुम मृत्यु के लिए राज़ी हो जाते हो।

और वही व्यक्ति जीता है जो मरने के लिए तैयार है। सच तो यह हे कि वही जीता है जो मृत्यु से राज़ी है। केवल वही व्यक्ति जीवन के योग्य है। क्योंकि वह भयभीत नहीं है, जो व्यक्ति मृत्यु को स्वीकार करता है, मृत्यु का स्वागत करता है, मेहमान मानकर उसकी आवभगत करता है। उसके साथ रहता है। वही व्यक्ति जीवन में गहरे उतर सकता है।

जब एक कुत्ता मरता है तो दूसरे कुत्ते को कभी पता नहीं होता की मैं भी मर सकता हूं। जब भी मरता है, कोई दूसरा ही मरता है। तो कोई कुत्ता कैसे कल्पना करे के मैं भी मरने वाला हूं। उसने कभी अपने को मरते नहीं देखा। सदा किसी दूसरे ही मरते है। वह कैसे कल्पना करे, कैसे निष्पति निकाले कि मैं भी मरूंगा। पशु को मृत्यु का बोध नहीं होता। इसलिए कोई पशु संसार का त्याग नहीं करता। कोई पशु संन्यासी नहीं हो सकता है।

केवल एक बहुत ऊंच्ची कोटि की चेतना ही तुम्हें संन्यास की तरफ ले जा सकती है। मृत्यु के प्रति जागने से ही संन्यास घटित होता है। और अगर आदमी होकर भी तुम मृत्यु के प्रति जागरूक नहीं हो तो तुम अभी पशु ही हो। मनुष्य नहीं हुए हो। मनुष्य तो तुम तभी बनते हो जब मृत्यु का साक्षात्कार करते हो। अन्यथा तुममें और पशु में कोई फर्क नहीं है। पशु और मनुष्य में सब कुछ समान है, सिर्फ मृत्यु फर्क लाती है। मृत्यु का साक्षात्कार कर लेने के बाद तुम पशु नहीं रहते। तुम्हें कुछ घटित हुआ है जो कभी किसी पशु को घटित नहीं होता है। अब तुम एक भिन्न चेतना हो।

ऐसा ही इन विधियों के साथ है। वे सरल मालूम होती है। लेकिन वे बुनियादी सत्य को स्पर्श करती है। जब श्वास बाहर जा रही है, जब तुम जीवन से सर्वथा रिक्त हो, तब तुम मृत्यु को छूते हो, तब तुम उसके बहुत करीब पहुंच जाते हो। तब तुम्हारे भीतर सब कुछ मौन और शांत हो जाता है।

इसे मंत्र की तरह उपयोग करो। जब भी तुम्हें थकावट महसूस हो, तनाव महसूस हो तो अः से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार करो। अल्लाह से भी काम चलेगा। कोई शब्द जो तुम्हारी श्वास को समग्ररतः: से बाहर ले आए। जो तुम्हें श्वास से बिलकुल खाली कर दे। जिस क्षण तुम श्वास से रिक्त होते हो उसी क्षण तुम जीवन से भी रिक्त हो जाते हो।

और तुम्हारी सारी समस्याएं जीवन की समस्याएं है, मृत्यु की कोई समस्या नहीं हे। तुम्हारी चिंताएं, तुम्हारे दुःख-संताप, तुम्हारा क्रोध, सब जीवन की समस्याएं है। मृत्यु तो समस्याहीन है। मृत्यु असमस्या है। मृत्यु कभी किसी को समस्या नहीं देती है। तुम भला सोचते हो कि मैं मृत्यु से डरता हूं, कि मृत्यु समस्या पैदा करती है। लेकिन हकीकत यह है कि मृत्यु नहीं जीवन के प्रति तुम्हारा आग्रह, जीवन के प्रति तुम्हारा लगाव समस्या पैदा करता है। जीवन ही समस्या खड़ी करता है। मृत्यु तो सब समस्याओं का विसर्जन कर देती है।

तो जब श्वास बिलकुल बाहर निकल जाए—अ:sis—तुम जीवन से रिक्त हो गए। उस क्षण अपने भीतर देखो। जब श्वास बिलकुल बाहर निकल जाए। दूसरी श्वास लेने के पहले उस अंतराल में गहरे उतरो जो रिक्त है और उसके आंतरिक मौन और शांति के प्रति सजग होओ। उस क्षण तुम बुद्ध हो।

और अगर तुम उस क्षण को पकड़ लो। तो तुम्हें वह स्वाद मिल जाएगा जिसे बुद्ध ने जाना। और एक बार यह स्वाद जान लिया गया तो फिर तुम उसे आने-जाने वाली श्वास से अलग कर ले सकते हो। फिर श्वास आती-जाती रह सकती है। और तुम चेतना की उस अवस्था में रह सकते हो। वह तो सदा है, फिर उसे उघाड़ना है। और उसे उस समय उघाड़ना आसान होता है जब तुम जीवन से, श्वास से रिक्त होते हो।

और जब श्वास बाहर निकल जाती है, तब सब कुछ निकल जाता है। इस क्षण किसी प्रयास की जरूरत नहीं है। इस क्षण अनायास बिना प्रयास के सजगता को, बोध को उपल्बध हुआ जा सकता हे। मृत्यु के इस क्षण को उपलब्ध होओ। यही वह क्षण है जब तुम द्वार के बिलकुल करीब होते हो, परमात्मा के द्वार के बिलकुल पास होते हो। जो प्रकट है, जा असार है, वह बाहर चला गया; इस क्षण मे तुम लहर नहीं रहे। सागर हो गए। अभी तुम बिलकुल सागर के निकट हो। अगर तुम बोधपूर्ण हो सके, सजग हो सके, तो तुम भूल जाओगे कि मैं लहर हूं। फिर लहर आएगी। लेकिन अब तुम लहर के साथ कभी तादात्म्य नहीं बनाओगे। तुम सागर बने रहोगे। एक बार तुमने जान लिया कि तुम सागर हो, फिर तुम लहर नहीं हो सकते।

जीवन लहर है, मृत्यु सागर है। इस कारण ही बुद्ध इस बात पर जोर देते है कि मेरा निर्वाण मृत्यु वत है। वे कभी नहीं कहते कि तुम अमरत्व को प्राप्त हो जाओगे। वे इतना ही कहते है कि तुम मिटोगे, समग्ररतः: जीसस कहते है; मेरे पास आओ और मैं तुम्हें विराट जीवन दूँगा। बुद्ध कहते है: मेरे पास मिटने के लिए आओ, मैं तुम्हें समग्र मृत्यु दूँगा। और दोनों एक ही बात है। लेकिन बुद्ध की शब्दावली ज्यादा बुनियादी है। मगर तुम उससे भयभीत हो।

यही कारण है कि बुद्ध का भारत में प्रभाव नहीं पड़ सका। उन्हें पूरी तरह उखाड़ फेंका गया। और हम कहे चले जाते है कि भूमि धार्मिक है। लेकिन यहां जो सर्वाधिक धार्मिक पुरूष हुआ उसे यहां हमने जमने नहीं दिया। किस तरह की धार्मिक भूमि है यह? हम दूसरा बुद्ध नहीं पैदा कर सकते। बुद्ध अप्रतिम है। जब भी संसार भारत को धर्म-भूमि के रूप में स्मरण करता है, वह बुद्ध को स्मरण करता है। और किसी को नहीं। बुद्ध के कारण ही भारत धार्मिक समझा जाता है। किसी प्रकार की धर्म-भूमि हे यह। बुद्ध को यहां जगह नहीं मिली उन्हें सर्वथा उखाड़ फेंका गया। कारण यह था कि बुद्ध को यहां जगह नहीं मिली, उन्हें सर्वथा उखाड़ फेंका गया।

कारण यह था कि बुद्ध ने मृत्यु की भाषा उपयोग की। ब्राह्मण जीवन की भाषा उपयोग करते है। वे कहते है ब्रह्म; बुद्ध ने कहा निर्वाण। ब्रह्म का अर्थ जीवन, अनंत जीवन है; और निर्वाण का अर्थ परिसमाप्ति, मृत्यु , समग्र मृत्यु। बुद्ध कहते है कि तुम्हारी सामान्य मृत्यु समग्र नहीं होती। तुम्हें फिर-फिर जन्म लेना होता है। साधारण मृत्यु समग्र नहीं है। तुम पूनः संसार

में आना पड़ता है। बुद्ध कहते थे कि मैं तुम्हें ऐसी समग्र मृत्यु दूँगा। कि तुम्हें फिर कभी जन्म लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी। समग्र मृत्यु का अर्थ है कि अब दुबारा जन्म संभव नहीं है।

इसलिए बुद्ध कहते है कि यह तथाकथित मृत्यु-मृत्यु नहीं है। यह विश्राम है, तुम फिर जीवित हो उठते हो। यह मृत्यु तो बाहर गई श्वास जैसी है। तुम फिर श्वास भीतर लोगे। और तुम्हारा पुन: जन्म हो जाएगा। बुद्ध कहते है कि मैं तुम्हें वह उपाय बताता हूं कि बाहर गई श्वास फिर वापस नहीं लौटेंगी। वही समग्र मृत्यु है। निर्वाण है।

''तब हकार में अनायास सहजता को उपलब्ध होओ।''

इसका प्रयोग करो। किसी भी समय यह प्रयोग कर सकते हो। बस या रेलगाड़ी में यात्रा कराते हुए, या अपने आफिस जाते हुए। जब भी तुम्हें समय मिले अल्लाह शब्द बड़ा काम का है—इस कारण नहीं कि वहां आसमान में कोई अल्लाह है। वरन इस अ: के कारण। यह शब्द सुंदर है। और जितना कही कोई अल्लाह-अल्लाह कहता है उतना ही वह शब्द छोटा होता जाता है। अल्लाह से वह लाह हो जाता है। और फिर लाह से आह रह जाता है। यह अच्छा है। लेकिन तुम अ: से अंत होने वाले किसी भी शब्द को काम में ला सकते हो, केवल अ: से भी चलेगा।

तुमने देखा होगा कि जब भी तुम तनाव से भरते हो, तुम एक आह भरकर हलके हो जाते हो। या जब तुम खुशी से भरते हो, बहुत खुशी से, तब तुम अहा कहते हो और पूरी श्वास बाहर निकल जाती है। और तुम अपने भीतर एक अपूर्व शांति अनुभव करते हो। इसे प्रयोग करो। जब तुम खूब प्रसन्न हो तो श्वास अंदर लो और देखो कि क्या होता है। तुम स्वस्थ अनुभव नहीं करोगे। जितना अहा कहने से करते हो। वह फर्क श्वास के कारण है।

भाषाएं अलग-अलग है, लेकिन ये दो चीजें सभी भाषाओं में समान हे। सारी धरती पर जहां भी कोई थकावट अनुभव करता है वह आह करता है। दरअसल वह मृत्यु को बुलाकर कहता है कि मुझे विश्राम दो। और जब वह आहलादित होता है। आनंदित होता है, तब वह अहा कहता है। वह आनंद से इतना पूरित है कि वह मृत्यु से नहीं डरता। वह अपने को पूरी तरह छोड़ने को खोने को राज़ी है।

और अगर तुम इस विधि का निरंतर प्रयोग करते रहो तो उसके गहरे परिणाम होंगे। तब तुम्हारे भी जो सहज है, तुम उसके बोध से भर जाओगे। तब तुम अपनी सहजता को उपलब्ध हो जाओगे। तुम सहज ही हो, लेकिन तुम जीवन से इतने बंधे हो, ग्रस्त हो कि उसके पीछे खड़ी सहज सत्ता से अपरिचित रह जाते हो। लेकिन तब तुम जीवन से, आने वाली श्वास से ग्रस्त नही हो, तब वह सहज सत्ता प्रकट होती है। तब उसकी झलक मिलती है। और धीरे-धीरे वह झलक उपलब्धि में बदल जाती है। तुम्हारी सिद्धि बन जाएगी।

और तुमने उसे एक बार जान लिया तो फिर तुम उसे भुला नहीं सकोगे। वह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे तुम निर्मित करते हो। वह स्वाभाविक है, सहज है; उसे बनाना नहीं , उघाड़ना भर है। वह तो है ही, तुम भूल गए हो। बस स्मरण करना है, उघाड़ना है।

शरीर अपने विवेक से चलता है। वह उतना ही ग्रहण करता है जितना जरूरी है। जब उसे ज्यादा की जरूरत होती है तो वैसी स्थिति बना लेता है और कम की जरूरत होती है तो वैसी ही स्थिति बना लेता है। शरीर कभी अति पर नहीं जाता है। वह सदा संतुलित रहता है। जब तुम श्वास लेते हो तब वह संतुलित नहीं है। क्योंकि तुम्हें नहीं मालूम है कि शरीर की जरूरत क्या है। और यह जरूरत क्षण-क्षण बदलती रहती है।

इसलिए शरीर को मौका दो, तुम तो बस श्वास छोड़ने भर का काम करो, उसे बाहर फेंको। और तब शरीर खुद श्वास लेने का काम कर लेगा। और शरीर जब खुद श्वास अंदर लेता है तो वह धीरे-धीरे लेता है। और गहरे लेता है। और पेट तक ले जाता है। वह श्वास ठीक नाभि-केंद्र पर चोट करती है। जिससे तुम्हारा पेट ऊपर नीचे होता है। और अगर श्वास लेने का काम भी तुम करोगे तो फिर समग्रता से श्वास छोड़ ने सकोगे। तब श्वास भीतर बची रहेगी। और उपर से ली गई श्वास गहराई में न उतर सकेगी। इसीलिए श्वास क्रिया उथली हो जाती है। तुम श्वास भीतर लेते रहते हो और भीतर जहर इकट्ठा होता जाता है।

वे कहते है कि तुम्हारे फेफड़े में कई हजार छिद्र है। और उनमें से सिर्फ दो हजार छिद्रों तक ही श्वास पहुंच पाती है। बाकी चार हजार छिद्र तो सदा ज़हरीली गैस से भरे रहते है। जिन्हें सदा खाली करने की जरूरत है। वह जो तुम्हारी छाती का दो तिहाई हिस्सा जहर से भरा रहता है। वह तुम्हारे शरीर में मन में दुःख और चिंता और संताप लाता है।

बच्चा सदा श्वास छोड़ता है लेता नहीं। लेने का काम सदा शरीर करता है। जब बच्चा जन्म लेता है तो वह जो पहला काम करता है वह रोना है। उसे रोने के साथ ही उसका कंठ खुलता है। रोने के साथ ही वह पहल अः बोलता है, उस रोने के साथ ही मां के द्वारा भीतर ली गई हवा बाहर निकल जाती है। वह उसकी पहल श्वास क्रिया है। श्वास क्रिया का आरंभ।

बच्चा सदा श्वास छोड़ता है। और जब बच्चा श्वास लेने लगे, जब उसका जोर छोड़ने से हटकर लेने पर चला जाए तो सावधान हो जाना; तब बच्चा बूढ़ा होने लगा। उसका अर्थ है कि बच्चे ने वह तुमसे सीखा है, वह तनावग्रस्त हो गया है।

जब तुम तनाव ग्रस्त होते हो तो तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते हो। क्यों? तब तुम्हारा पेट सख्त होता है। जब तुम तनाव में होते हो तो तुम्हारा पेट सख्त हो जाता है। वह सख्ती श्वास को गहरे नहीं जाने देती। तब तुम उथली श्वास ही लेने लगते हो।

अः का प्रयोग करो। वह तुम्हारे चारो और एक सुंदर भाव निर्मित करता है। जब भी तुम थकावट महसूस करो, अः कहकर श्वास को बाहर फेंको। और श्वास छोड़ने पर बल दो। तुम भिन्न ही आदमी होगे और एक भिन्न ही मन विकसित होगा। श्वास लेने पर जोर देकर तुमने कंजूस मन और कंजूस शरीर विकसित किए है। श्वास छोड़ने पर बल देकर वह कंजूसी विदा हो जाएगी। और उसके साथ ही अन्य अनेक समस्याएं विदा हो जाएंगी। तब दूसरे पर मलकियत करने का भाव तिरोहित हो जायेगा।

तो तंत्र यह नहीं कहता है कि मलकियत का भाव छोड़ो, तंत्र कहता है कि अपने श्वास-प्रश्वास का ढंग बदल दो और मलकियत अपने आप छूट जायेगी। तुम अपनी श्वास को देखो, अपने भावों को देखो और तुम्हें बोध हो जाएगा। जो भी गलत है वह भीतर जाने वाली श्वास को महत्व देने के कारण है और जो भी शुभ है ओर सत्य है , शिव है, और सुंदर है। वह बाहर जाने वाली श्वास के साथ संबंधित है। जब तुम झूठ बोलते हो, तुम अपनी श्वास को रोक रखते हो, और जब सच बोलते हो तो श्वास को कभी नहीं रोकते। झूठ बोलते समय तुम्हें डर लगता है और उस डर के कारण तुम श्वास को रोक रखते हो। तुम्हें यह डर भी होता है कि बाहर जाने वाली श्वास के साथ कही छिपाया गया सत्य भी प्रकट न हो जाये।

इस अः का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग करो और तुम शरीर और मन से ज्यादा स्वस्थ रहोगे। और तुम्हें एक विशेष ढंग की शांति और विश्राम का अनुभव होगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—31

तंत्र-सूत्र—विधि—46 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी दसवीं विधि:

'कानों को दबाकर और गुदा को सिकोड़कर बंद करो,

''कानों को दबाकर और गुदा को सिकोड़कर बंद करो, और ध्वनि में प्रवेश करो।''

हम अपने शरीर से भी परिचित नहीं है। हम नहीं जानते कि शरीर कैसे काम करता है और उकसा ताओ क्या है। ढंग क्या है। मार्ग क्या है। लेकिन अगर तुम निरीक्षण करो तो आसानी से उसे जान सकते हो।

अगर तुम अपने कानों को बंद कर लो और गुदा को ऊपर की और सिकोड़ो तो तुम्हारे लिए सब कुछ ठहर जायेगा। ऐसा लगेगा कि सारा संसार रूक गया। ठहर गया है। गतिविधियां ही नहीं, तुम्हें लगेगा कि समय भी ठहर गया है। जब तुम गुदार को ऊपर खींचकर सिकोड़ लेते हो। क्या होता है ऐसा? अगर दोनों कान बंद कर लिए जाएं तो बंद कानों से तुम अपने भीतर एक ध्वनि सुनोंगे। लेकिन अगर गदा को ऊपर खींचकर नहीं सिकुड़ा जाए तो वह ध्वनि गुदा-मार्ग से बहार निकल जाती है। वह ध्वनि बहुत सूक्ष्म है। अगर गुदा को ऊपर खींचकर सिकोड़ लिया जाए और कानों को बंद किया जाए तो तुम्हारे भीतर एक ध्वनि का स्तंभ निर्मित होगा। और वह ध्वनि मौन की ध्वनि होगी। वह नकारात्मक ध्वनि है। जब सब ध्वनियां समाप्त हो जाती है। तब तुम्हें मौन की ध्वनि या निध्वनि का एहसास होता है। लेकिन वह निर्ध्वनि गुदा से बहार निकल जाती है। इसलिए कानों को बंद करो और गुदा को सिकोड़ लो। तब तुम दोनों और से बंद हो जाते हो। तुम्हारा शरीर भी बंद हो जाता है। और ध्वनि से भर जाता है। ध्वनि से भरने का यह भाव गहन संतोष को जन्म देता है। इस संबंध में बहुत सी चीजें समझने जैसी है। और तभी तुम उसे समझ सकोगे जो घटित होता है।

हम अपने शरीर से परिचित नहीं है। साधक के लिए यह एक बुनियादी समस्या है। और समाज शरी से परिचय के विरोध में है। क्योंकि समाज शरीर से भयभीत है। हम हरेक बच्चे को शरीर से अपरिचित रहने की शिक्षा देते है। हम उसे संवेदन शून्य बना देते है। हम बच्चे के मन और शरीर के बीच एक दूरी पैदा कर देते है। ताकि वह अपने शरीर से ठीक से परिचित न हो जाए। क्योंकि शरीर बोध समाज के लिए समस्या पैदा करेगा।

इमें बहुत सी चीजें निहित है। अगर बच्चा शरीर से परिचित है तो वह देर-अबेर काम या सेक्स से भी परिचित हो जाएगा। अगर वह शरीर से बहुत ज्यादा परिचित हो जाएगा तो वह अपना कामुक और इंद्रियोन्मुख अनुभव करेगा। इसलिए हमें उसकी जड़ को ही काट देना है। हम बच्चे को उसके शरीर के प्रति जड़ और संवेदन शुन्य बना देते है। ताकि उसे उसका एहसास न हो। तुम्हें तुम्हारे शरीर का एहसास ही नहीं होता। हां, जब किसी उपद्रव में पड़ता है तो ही उसका एहसास होता है।

तुम्हारे सिर में दर्द होता है तो तुम्हें सिर का पता चलता है। जब पाँव में कांटा गड़ता है तो पाव का पता चलता है। और जब शरीर में दर्द होता है तो तुम जानते हो कि मेरा शरीर भी है। जब शरीर रूग्ण होता है तो ही उसका पता चलता है। लेकिन वह भी शीध्र नहीं। तुम्हें अपने रोगों का पता भी तुरंत नहीं चलता है। कुछ समय बीतने पर ही पता चलता है। जब रोग तुम्हारी चेतना के द्वार पर बार-बार दस्तक देता है। जब पता चलता है। यही कारण है कि कोई भी व्यक्ति समय रहते डाक्टर के पास नहीं पहुंचता है। वह देर कर के पहुंचता है। जब रोग गहन हो चूका होता है। और वह अपनी बहुत हानि कर चूका होता है।

इस लिए समस्याएं पैदा होती है—विशेषकर तंत्र के लिए। तंत्र गहन संवेदनशीलता और शरीर के बोध में भरोसा करता है।

तुम अपने काम में लगे हो और तुम्हारा शरीर बहुत कुछ कर रहा है, जिसका तुम्हें कोई बोध नहीं है। अब तो शरीर की भाषा पर बहुत काम हो रहा है। शरीर की अपनी भाषा है। और मनोचिकित्सकों और मानस्विद को शरीर की भाषा का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। क्योंकि वे कहते है कि आधुनिक मनुष्य का भरोसा नहीं किया जा सकता। आधुनिक मनुष्य जो कहता है उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। उससे अच्छा है उसके शरीर का निरीक्षण करना क्योंकि शरीर उसके बारे में ज्यादा खबर रखता है।

विलहेम रेख ने शरीर की संरचना पर बहुत काम किया है। और उसे शरीर और मन के बीच बहुत गहरा संबंध दिखाई दिया है। यदि कोई आदमी भयभीत है तो उसका पेट कोमल नहीं होगा। तुम उसका पेट छुओ और वह पत्थर जैसा होगा। और अगर वह निडर हो जाए तो उसका पेट छुओ तो वह तुरंत शिथिल हो जाएगा। या अगर पेट को शिथिल कर लो तो भय चला जाएगा। पेट पर थोड़ी मालिश करो और तुम देखोगें कि डर कम हो गया। निर्भयता आई। जो व्यक्ति प्रेमपूर्ण है। उसके शरीर का गुण धर्म और होगा। उसके शरीर में उष्णता होगी, जीवन होगा। और जो व्यक्ति प्रेम पूर्ण नहीं होगा उसका शरीर ठंडा होगा।

यही ठंडापन और अन्य चीजें तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट हो गई है। और वे ही बाधाएं बन गई है। वे तुम्हें तुम्हारे शरीर को नही जानने देती है। लेकिन शरीर अपने ढंग से अपना काम करता रहता है। और तुम अपने ढंग से अपना काम करते रहते हो। दोनों के बीच एक खाई पैदा हो जाती है। उस खाई को पाटना है।

मैंने देखा है अगर कोई व्यक्ति दमन करता है, अगर तुम क्रोध को दबाते हो तो तुम्हारे हाथों में, तुम्हारी अंगुलियों में दमित क्रोध की उतैजना होगी। और जो जानता है वह तुम्हारे हाथों को छूकर बता देगा कि तुमने क्रोध को दबाया है।

अगर तुमने कामवासना को दबाया है तो वह कामवासना तुम्हारे काम-अंगों में दबी पड़ी रहेगी। ऐसी किसी अंग को छूकर बताया जा सकता है। यहां काम दमित पडा है। वह अंग भयभीत हो जाएगा। और तुम्हारे स्पर्श से बचना चाहेगा। वह खुला या ग्रहणशील नहीं रहेगा। चूंकि तुम बचना चाहते हो इसलिए वह अंग भी संकुचित हो जाएगा। वह तुम्हें द्वार नहीं देगा।

अब वे कहते है कि पचास प्रतिशत स्त्रियां ठंडी है, उनकी कामवासना को उतेजित नहीं किया जा सकता। और कारण यह है कह हम लड़कों से बढ़ कर लड़कियों को काम दमन सिखाते है। लड़कियां बहुत दमन करती है। और जब वे बीस वर्ष की उम्र तक करती है तो उसकी लंबी आदत बन जाती है। बीस वर्षो का दमन। फिर जब वह प्रेम करेगी तो वह प्रेम की बात ही करेगी, प्रेम के प्रति उसका शरीर उन्मुख नहीं होगा। नहीं खुलेगा। उनका शरीर एक तरह से सेक्स के प्रति बंद जो जाता है। जड़ हो जाता है। और तब एक सर्वथा विरोधपूर्ण घटना घटती है। उसके भीतर परस्पर विरोधी दो धाराएं एक साथ बहती है। वह प्रेम

करना चाहती है, लेकिन उसका शरीर दमित है। शरीर असहयोग करता है। शरीर पीछे हटने लगता है। वह पास आने को तैयार नहीं होता।

अगर तुम किसी स्त्री को किसी पुरूष के पास बैठे देखो और अगर वह स्त्री पुरूष को प्रेम करती है तो तुम पाओगे कि वह स्त्री उस पुरूष की तरफ झुककर बैठी है। अगर स्त्री पुरूष से डरती है तो उसका शरीर उसके विपरीत दिशा में झुका होगा। अगर स्त्री पुरूष के प्रेम में है तो वह अपनी टांगों को एक दूसरे पर रख नहीं बैठेगी। वह ऐसा तभी करेगी जब वह पुरूष से भयभीत होगी। उसे इस बात की खबर नहीं है, वह अनजाने कर रही है। शरीर अपना बचाव आप करता है, वह अपने ढंग से अपना काम करता है।

तंत्र को पहले से इस बात का बोध था, सब से पहले तंत्र को ही शरीर के तल पर ऐसी गहरी संवेदनशीलता का पता चला था। और तंत्र कहता है कि अगर तुम सचेतन रूप से अपने शरीर का उपयोग कर सको तो शरीर ही आत्मा में प्रवेश का साधन बन जाता है। तंत्र कहता है कि शरीर का विरोध करना मूढ़ता है, बिलकुल मूढता है। शरीर का उपयोग करो, शरीर माध्यम है। और इसकी उर्जा का उपयोग इस भांति करो कि तुम इसका अतिक्रमण कर सको।

''अब कानों का दबाकर और गुदा को सिकोड़कर बंद करों। और ध्वनि में प्रवेश करो।''

तुम अपने गुदा को अनेक बार सिकोड़ते रहे हो, और कभी-कभी तो गुदा-मार्ग अनायास भी खुल जाता है। अगर तुम्हें अचानक कोई भय पकड़ जाये, तो तुम्हारा गुदा मार्ग खुल जाता है। भय के कारण अचानक मलमूत्र निकल जायेगा। क्या होता है? भय में क्या होता है? भय तो मानसिक चीज है, फिर भय में पेशाब क्यों निकल जाता है। नियंत्रण क्या जाता रहता है? जरूर ही कोई गहरा संबंध होना चाहिए?

भय सिर में, मन में घटित होता है। जब तुम निर्भय होते हो तो ऐसा कभी नहीं होता असल में बच्चे का अपने शरीर पर कोई मानसिक नियंत्रण नहीं होता। कोई पशु अपने मल मूत्र का नियंत्रण नहीं कर सकता है। जब भी मलमूत्र भर जाता है, वह अपने आप ही खाली हो जाता है। पशु उस पर नियंत्रण नहीं करता है। लेकिन मनुष्य को आवश्यकतावश उस पर नियंत्रण करना पड़ता है। हम बच्चे को सिखाते है कि कब उसे मल-मूत्र त्याग करना चाहिए। हम उसके लिए समय बाँध देते है। इस तरह मन एक ऐसे काम को अपने हाथ में ले लेता है। जो स्वैच्छिक नहीं है। और यही कारण है कि बच्चे को मलमूत्र विसर्जन का प्रशिक्षण देना इतना कठिन होता है।

अब मानस्विद कहते है कि अगर मलमूत्र विसर्जन का प्रशिक्षण बंद कर दिया जाए तो मनुष्य की हालत बहुत सुधर जाएगी। बच्चे का, उसकी स्वाभाविकता का, सहजता कास पहल दमन मलमूत्र-विसर्जन के प्रशिक्षण में होता है। लेकिन इन मनस्विदों की बात मानना कठिन मालूम पड़ता है। कठिन इसलिए मालूम पड़ता है। क्योंकि तब बच्चे बहुत सी समस्याएं खड़ी कर देंगे। केवल समृद्ध समाज, अत्यंत समृद्ध समाज ही इस प्रशिक्षण के बिना काम चला सकता है। गरीब समाज को इसकी चिंता लेनी ही पड़ेगी। बच्चे जहां चाहे पेशाब करें, यह हम कैसे बरदाश्त कर सकते है। तब तो यह सोफा पर ही पेशाब करेगा। और यह हमारे लिए बहुत खर्चीला पड़ेगा। तो प्रशिक्षण जरूरी हे। और यह प्रशिक्षण मानसिक है, शरीर में इसकी कोई अंतर्निहित व्यवस्था नहीं है। ऐसी कोई शरीर गत व्यवस्था नहीं है। जहां तक शरीर का संबंध है। मनुष्य पशु ही है। और शरीर को संस्कृति से, समाज से कुछ लेना देना नहीं है।

यही कारण है कि जब तुम्हें गहन भय पकड़ता है तो यह नियंत्रण जाता रहता है। जो शरीर पर लादी गई है, ढीली पड़ जाती है। तुम्हारे हाथ से नियंत्रण जाता रहता है। सिर्फ सामान्य हालातों में यह नियंत्रण संभव है। असामान्य हालातों में तुम नियंत्रण नहीं रख सकते हो। आपात स्थितियों के लिए तुम्हें प्रशिक्षित नहीं किया गया है। सामान्य दिन-चर्या के कामों के लिए ही

प्रशिक्षित किया गया है। आपात स्थिति में यह नियंत्रण विदा हो जाता है, तब तुम्हारा शरीर अपने पाशविक ढंग से काम करने लगता है।

लेकिन इसमें एक बात समझी जा सकती है कि निर्भीक व्यक्ति के साथ ऐसा कभी नहीं होता। यह तो कायरों का लक्षण है। अगर डर के कारण तुम्हारा मल-मूत्र निकल जाता है। तो उसका मतलब है कि तुम कायर हो। निडर आदमी के साथ ऐसा कभी नहीं हो सकता, कयोंकि निडर आदमी गहरी श्वास लेता है। उसके शरी और श्वास प्रश्वास के बीच एक तालमेल है, उनमें कोई अंतराल नहीं है। कायर व्यक्ति के शरीर और श्वास प्रश्वास के बीच एक अंतराल होता है। और इस अंतराल के कारण वह सदा मल-मूत्र से भरा होता है। इसलिए जब आपात स्थिति पैदा होती है तो उसका मल-मूत्र बाहर निकल जाता है।

और इसका एक प्राकृतिक करण यह भी है कि मल-मूत्र निकलने से कायर हल्का हो जाता है। और वह आसानी से भाग सकता है। बच सकता है। बोझिल पेट बाधा बन सकता है। इसलिए कायर के लिए मल-मूत्र का निकलना सहयोगी होता है।

मैं यह बात क्या कह रहा हूं, मैं यह इसलिए कह रहा हूं क्योंकि तुम्हें अपने मन और पेट की प्रक्रियाओं से परिचित होना चाहिए। मन और पेट में गहरा अंतर् संबंध है। मानस्विद कहते है कि तुम्हारे पचास से नब्बे प्रतिशत सपने पेट की प्रक्रियाओं के कारण घटते है। अगर तुमने ठूस-ठूस कर खाया है, तो तुम दुख स्वप्न देखे बिना नहीं रह सकते। ये दुःख स्वप्न मन से नहीं, पेट से आते है।

बहुत से सपने बाहरी आयोजन के द्वारा पैदा किए जा सकते है। अगर तुम नींद में हो और तुम्हारे हाथों को मोड़कर सीने पर रख दिया जाए तो तुम तुरंत दुःख स्वप्न देखने लगोगे। अगर तुम्हारी छाती पर सिर्फ एक तकिया रख दिया जाए तो तुम सपना देखोगें कि कोई राक्षस तुम्हारी छाती पर बैठा है और तुम्हें मार डालने पर उतारू है।

यह विचारणीय है कि एक छोटे से तकिये का भार इतना ज्यादा क्यों हो जाता है। यदि तुम जागे हुए हो तो तकिया कोई भार नहीं है। तुम्हें एक भार नहीं महसूस होता है। लेकिन क्या बात है कि नींद में छाती पर रखा गया एक छोटा सा तकिया भी चट्टान की तरह भारी मालूम पड़ता है। इतना भार क्यों मालूम पड़ता है?

कारण यह है कि जब तुम जागे हुए हो तो तुम्हारे शरीर और मन के बीच तालमेल नहीं रहता है, उनमें एक अंतराल रहता है। तब तुम शरीर और उसकी संवेदनशीलता को महसूस नहीं कर सकते। नींद में नियंत्रण संस्कृति, संस्कार, सब विसर्जित हो जाते है और तुम फिर से बच्चे जैसे हो जाते हो और तुम्हारा शरीर संवेदनशील हो जाता है। उसी संवेदनशीलता के कारण एक छोटा सा तकिया भी चट्टान जैसा भारी मालूम पड़ता है। संवेदन शीलता के कारण भार अतिशय हो जाता है। अनंत गुना हो जाता है।

तो मन और शरीर की प्रक्रियाएं आपस में बहुत जुड़ी हुई है। और यदि तुम्हें इसकी जानकारी हो तो तुम इसका उपयोग कर सकते हो।

गुदा को बंद करने से, ऊपर खींचने से, सिकोड़ने से शरीर में ऐसी स्थिति बनती है। जिसमें ध्वनि सुनी जा सकती है। तुम्हें अपने शरी के बंद धेरे में, मौन में, ध्वनि का स्तंभ सा अनुभव होगा। कानों को बंद कर लो और गुदा को ऊपर की और सिकोड़ लो और फिर अपने भी जो हो रहा हो उसके साथ रहो। कान और गुदा को बंद करने से जो रिक्त स्थिति बनी है उसके साथ बस रहो। ध्वनि तुम्हारे कानों के मार्ग से या गुदा के मार्ग से बाहर जाती है। उसके बाहर जाने के ये ही दो मार्ग है। इसलिए अगर उनका बहार जाना न हो तो तुम उसे आसानी से महसूस कर सकते हो।

और इस आंतरिक ध्वनि को अनुभव करने से क्या होता है। इस आंतरिक ध्वनि को सुनने के साथ ही तुम्हारे विचार विलीन हो जाते है। दिन में किसी भी समय यह प्रयोग करो: गुदा को ऊपर खींचो और कानों को अंगुलि के बंद कर लो। कानों को बंद करो और गुदा को सिकोड़ लो, तब तुम्हें एहसास होगा कि मेरा मन ठहर गया है। उसने काम करना बंद कर दिया है और विचार भी ठहर गए है। मन में विचारों का जो सतत प्रवाह चलता है, वह विदा हो गया है। यह शुभ है।

और जब भी समय मिले इसका प्रयोग करते रहो। अगर दिन में पाँच-छह दफे इसका दिन भर सुन सकते हो। तब बाजार के शोरगुल में भी, सड़क के शोरगुल में भी—यदि तुमने उस ध्वनि को सुना है—वह तुम्हारे साथ रहेगी। और फिर तुम्हें कोई भी उपद्रव अशांत नहीं करेगा। अगर तुमने यह अंतर् ध्वनि सुन ली तो बाहर की कोई चीज तुम्हें विचलित नहीं कर सकती है। तब तुम शांत रहोगे। जो भी आस-पास घटेगा उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—31

तंत्र-सूत्र—विधि—47 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी अंतिम विधि:

'अपने नाम की ध्वनि में प्रवेश करो, ओशो

''अपने नाम की ध्वनि में प्रवेश करो, और उस ध्वनि के द्वारा सभी ध्वनियों में।''

मंत्र की तरह नाम का उपयोग बहुत आसानी से किया जा सकता है। यह बहुत सहयोगी होगा, क्योंकि तुम्हारा नाम तुम्हारे अचेतन में बहुत गहरे उतर चुका है। दूसरी कोई भी चीज अचेतन की उस गहराई को नहीं छूती है। यहां हम इतने लोग बैठे है। यदि हम सभी सो जाएं और कोई बाहर से आकर राम को आवाज दे तो उस व्यक्ति के सिवाय जिसका नाम राम है, कोई भी उसे नहीं सुनेगा। राम उसे सुन लेगा। सिर्फ राम की नींद में उससे बाधा पहुँचेगी। दूसरे किसी को भी राम की आवाज सुनाई नहीं देगी।

लेकिन एक आदमी क्यों सुनता है? कारण यह है कि यह नाम उसके गहरे अचेतन में उतर गया है। अब यह चेतन नहीं है, अचेतन बन गया है। तुम्हारा नाम तुम्हारे बहुत भीतर तक प्रवेश कर गया है। तुम्हारे नाम के साथ एक बहुत सुंदर घटना घटती है। तुम कभी अपने को अपने नाम से नहीं पुकारते हो। सदा दूसरे तुम्हारा नाम पुकारते है। तुम अपना नाम कभी नहीं लेते, सदा दूसरे लेते है।

मैंने सूना है कि पहले महायुद्ध में अमेरिका में पहली बार राशन लागू किया गया। थॉमस एडीसन महान वैज्ञानिक था, लेकिन क्योंकि गरीब था इसलिए उसे भी अपने राशन कार्ड के लिए कतार में खड़ा होना पडा। और वह इतना बड़ा आदमी था कि कोई उसके सामने उसका नाम नहीं लेता था। और उसे खूद कभी अपना नाम लेने की जरूरत नहीं पड़ती थी। और दूसरे लोग उसे इतना आदर करते थे कि उसे सदा प्रोफेसर कहकर पुकारते थे। तो एडीसन को अपना नाम भूल गया।

वह क्यू में खड़ा था। और जब उसका नाम पुकारा गया तो वह ज्यों का त्यों चुप खड़ा रहा। क्यू में खड़े दूसरे व्यक्ति ने, जो एडीसन का पड़ोसी था, उसने कहा कि आप चुप क्यों खड़े है। आपका नाम पुकारा जा रहा है। तब एडीसन को होश आया। और उसने कहा कि मुझे तो कोई भी एडीसन कहकर नहीं पुकारता है, सब मुझे प्रोफेसर कहते है। फिर मैं कैसे सुनता। अपना नाम सुने हुए मुझे बहुत समय हो गया है।

तुम कभी आना नाम नहीं लेते हो। दूसरे तुम्हारा नाम लेते है। तुम उसे दूसरों के मुंह से सुनते हो। लेकिन अपना नाम अचेतन में गहरा उतर जाता है—बहुत गहरा। वह तीर की तरह अचेतन में छिद जाता है। इसलिए अगर तुम अपने ही नाम का उपयोग करो तो वह मंत्र बन जाएगा। और दो कारणों से अपना नाम सहयोगी होता है।

एक कि जब तुम अपना नाम लेते हो—मान लो कि तुम्हारा नाम राम है और तुम राम-राम कहे जाते हो—तो कभी तुम्हें अचानक महसूस होगा कि मैं किसी दूसरे का नाम ले रहा हूं। कि यह मेरा नाम नहीं है। और अगर तुम यह भी समझो कि यह मेरा नाम है तो भी तुम्हें ऐसा लगेगा कि मेरे भीतर कोई दूसरा व्यक्ति है जो इस नाम का उपयोग कर रहा है। यह नाम शरीर का हो सकता है। मन का हो सकता है। लेकिन जो राम-राम कह रहा है वह साक्षी है।

तुमने दूसरों के नाम पुकारें है। इसलिए जब तुम अपना नाम लेते हो तो तुम्हें ऐसा लगता है कि यह नाम किसी और का है। मेरा नहीं। और यह घटना बहुत कुछ बताती है। तुम अपने ही नाम के साक्षा हो सकते हो। और इस नाम के साथ तुम्हारा समस्त जीवन जुड़ा है। नाम से प्रथक होते ही तुम अपने पूरे जीवन में पृथक हो जाते हो। और यह नाम तुम्हारे गहरे अचेतन में चला जाता है। क्योंकि तुम्हारे जन्म से ही लोग तुम्हें इस नाम से पुकारते है। तुम सदा-सदा इसे सुनते रहे हो। तो इस नाम का उपयोग करो। इस नाम के साथ तुम उन गहराइयों को छू लोगे जहां तक यह नाम प्रवेश कर गया है।

पुराने दिनों में हम सबको परमात्मा के नाम दिया करते थे। कोई राम कहलाता था, कोई नारायण कहलाता था। कोई कृष्ण कहलाता था। कोई विष्णु कहलाता था। कहते है कि मुसलमानों के सभी नाम परमात्मा के नाम है। और पूरी धरती पर यही रिवाज था कि परमात्मा के नाम के आधार पर हम लोगों के नाम रखते थे। और इसके पीछे कारण थे।

एक कारण तो यही विधि था। अगर तुम अपने नाम को मंत्र की तरह उपयोग करते हो तो इसके दोहरे लाभ हो सकते है। एक तो यह तुम्हारा अपना नाम होगा, जिसको तुमने इतनी बार सुना है। जीवन भर सुना है और जो तुम्हारे अचेतन में प्रवेश कर गया है। फिर यही परमात्मा का नाम भी है। और जब तुम उसको दोहराओगे तो कभी अचानक तुम्हें बोध होगा, कि यह नाम मुझसे पृथक है। और फिर धीरे-धीर उस नाम की अलग पवित्रता निर्मित होगी। महिमा निर्मित होगी। किसी दिन तुम्हें स्मरण होगा कि यह तो परमात्मा का नाम है। तब तुम्हारा नाम मंत्र बन गया है। तो इसका उपयोग करो। यह बहुत ही अच्छा है।

तुम अपने नाम के साथ कई प्रयोग कर सकते हो। अगर तुम सुबह पाँच बजे जागना चाहते हो तो तुम्हारे नाम से बढ़कर कोई अलार्म नहीं है। वह ठीक तुम्हें पाँच बजे जगा देगा। बस अपने भीतर तीन बार कहो: राम, तुम्हें ठीक पाँच बजे जाग जाना है। तीन बार कहकर तुरंत सो जाओ। तुम पाँच बजे जाग जाओगे। क्योंकि तुम्हारा नाम राम तुम्हारे गहन अचेतन में बसा है। अपना ही नाम लेकर अपने को कहो कि पाँच बजे मुझे जगा देना। और कोई तुम्हें जगा देगा। अगर तुम इस अध्याय को जारी रख सकते हो तो तुम पाओगे की ठीक पाँच बजे तुम्हें कोई पूकार रहा है। राम, जागों। यह तुम्हारा अचेतन पूकार रहा है।

यह विधि कहती है: ''अपने नाम की ध्वनि में प्रवेश करो, और उस ध्वनि के द्वारा सभी ध्वनियों में।''

तुम्हारा नाम सभी नामों के लिए द्वार बन सकता है। लेकिन ध्वनि में प्रवेश करो। पहले तुम जब राम-राम जपते हो तो वह शब्द भर है। लेकिन अगर जब सतत जारी रहता है तो उसका अर्थ कुछ और हो जाता है।

तुमने बाल्मीकी की कथा सुनी होगी। उन्हें यही राम मंत्र दिया गया था। लेकिन बाल्मीकी अनपढ़ था। सीधे-साधे बच्चे जैसा निर्दोष था। उन्होंने राम-राम जपना शुरू किया। लेकिन इतना अधिक जप किया कि वे भूल गये और राम की जगह मरा-मरा कहने लगे। वे राम-राम को इतनी तेजी से जपते थे कि वह मरा-मरा बन गया। और मरा-मरा कहकर ही वे पहूंच गये।

तुम भी अगर अपने भीतर अपने नाम का जाप तेजी से करो तो वह शब्द न रहकर ध्वनि में बदल जाता है। जब वह एक अर्थहीन ध्वनि हो जाती है। और तब राम और मरा में कोई भेद नहीं रहता। अब शब्द नहीं रहे, वे बस ध्वनि है। और ध्वनि असली चीज है।

तो अपने नाम की ध्वनि में प्रवेश करो, उसके अर्थ को भूल जाओ। सिर्फ ध्वनि में प्रवेश करो। अर्थ मन की चीज है, ध्वनि शरीर की चीज है। अर्थ सिर में रहता है। ध्वनि सारे शरीर में फैल जाती है। अर्थ को भूल ही जाओ। उसे एक अर्थहीन ध्वनि की तरह जपो। और इस ध्वनि के जरिए तुम सभी ध्वनियों में प्रवेश पा जाओगे। यह ध्वनि सब ध्वनियों के लिए द्वार बन जाएगी। सब ध्वनियों का अर्थ है जो सब है—सारा अस्तित्व।

भारतीय अंतस—अनुसंधान का यह एक बुनियादी सूत्र है कि अस्तित्व की मूलभूत इकाई ध्वनि है। विद्युत नहीं है। आधुनिक विज्ञान कहता है कि अस्तित्व की मूलभूत इकाई विद्युत है, ध्वनि नहीं है। लेकिन वे यह भी मानते है कि ध्वनि भी एक तरह की विद्युत है। भारतीय सदा कहते आए है कि विद्युत ध्वनि का ही एक रूप है। तुमने सुना होगा कि किसी विशेष राम के द्वारा आग पैदा की जा सकती है। यह संभव है। क्योंकि भारतीय धारणा यह है कि समस्त विद्युत का आधार ध्वनि है। इसलिए अगर ध्वनि को एक विशेष ढंग से छेड़ा जाये, किसी खास राग में गया जाए तो विद्युत या आग पैदा हो सकती है।

लंबे पुलों पर फौज की टुकड़ियों को लयवद्ध शैली में चलने की मनाही है, क्योंकि कई बार ऐसा हुआ है कि उनकी लयवद्ध कदम पड़ने के कारण पुल टूट गए है। ऐसा उनके भार के कारण नहीं , ध्वनि के कारण होता है। अगर सिपाही लयवद्ध शैली में चलेंगे तो उनके लयवद्ध कदमों की विशेष ध्वनि के कारण पुल टूट जाएगा। वे सिपाही यदि सामान्य ढंग सक निकले तो पुल को कुछ नहीं होगा।

पुराने यहूदी इतिहास में उल्लेख है कि जेरीको शहर ऐसी विशाल दीवारों से सुरक्षित था कि उन्हें बंदूकों से तोड़ना संभव नही था। लेकिन वे ही दीवारें एक विशेष ध्वनि के द्वारा तोड़ डाली गई। उन दीवारों के टूटने का राज ध्वनि में छिपा है। दीवारों के सामने अगर उस ध्वनि को पैदा किया जाए तो दीवारें टूट जाएंगी। तुमने अली बाबा की कहानी सुनी होगी, उसमे भी एक खास ध्वनि बोल कर चट्टान हटाई जाती थी।

वे प्रतीक है। वह सच हो या नहीं , एक बात निश्चित है कि अगर तुम किसी ध्वनि का इस भांति सतत अभ्यास करते रहो कि उसका अर्थ मिट जाये, तुम्हारा मन विलीन हो जाए, तो तुम्हारे हृदय पर पड़ी चट्टान हट जायेगी।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र,

भाग—2, प्रवचन-31

तंत्र सूत्र–विधि -48

काम संबंधि पहला सूत्र–

‘’काम-आलिंगन में आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो
विज्ञान भैरव तंत्र, विधि-48–ओशो

‘’काम-आलिंगन में आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो, और ऐसा करते हुए अंत में उसके अंगारे से बचो।‘’
कई कारणों से काम कृत्य गहन परितृप्ति बन सकता है और वह तुम्हें तुम्हारी अखंडता पर, स्वभाविक और प्रामाणिक जीवन पर वापस पहुंचा सकता है। उन कारणों को समझना होगा।

एक कारण यह है कि काम कृत्य समग्र कृत्य है। इसमें तुम अपने मन से बिलकुल अलग हो जाते हो। छूट जाते हो। यही कारण है कि कामवासना से इतना डर लगता है। तुम्हारा तादात्म्य मन के साथ है और काम अ-मन का कृत्य है। उस कृत्य में उतरते ही तुम बुद्धि-विहीन हो जाते हो। उसमे बुद्धि काम नहीं करती। उसमे तर्क की जगह नहीं है। कोई मानसिक प्रक्रिया नहीं है। और अगर मानसिक प्रक्रिया चलती है तो काम कृत्य सच्चा और प्रामाणिक नहीं हो सकता। तब आर्गाज्म संभव नहीं है। गहन परितृप्ति संभव नहीं है। तब काम-कृत्य उथला हो जाता है। मानसिक कृत्य हो जाता है। ऐसा ही हो गया है। सारी दुनिया में कामवासना की इतनी दौड़ है, काम की इतनी खोज है, उसका कारण यह नहीं है कि दुनिया ज्यादा कामुक हो गई है। उसका कारण इतना ही हे कि तुम काम-कृत्य को उसकी समग्रता में नहीं भोग पाते हो। इसीलिए कामवासना की इतनी दौड़ है। यह दौड़ बताती है कि सच्चा काम खो गया है। और उसकी जगह नकली काम हावी हो गया है। सारा आधुनिक चित कामुक हो गया है। क्योंकि काम कृत्य ही खो गया है। काम कृत्य भी मानसिक कृत्य बन गया है। काम मन में चलता रहता है और तुम उसके संबंध में सोचते रहते हो।

मेरे पास अनेक लोग आते है और कहते है कि हम काम के संबंध में सोच-विचार करते है, पढ़ते है, चित्र देखते है। अश्लील चित्र देखते है। वही उनका कामानंद है, सेक्स का शिखर अनुभव है। लेकिन जब काम का असली क्षण आता है तो उन्हें अचानक पता चलता है कि उसमे उनकी रूचि नहीं है। यहां तक कि वे उसमे अपने को नापुंसग अनुभव करते है। सोच-विचार के क्षण में ही उन्हें काम उर्जा का एहसास होता है। लेकिन जब वे कृत्य में उतरना चाहते है तो उन्हें पता चलता है कि उसके

लिए उनके पास ऊर्जा नहीं है। तब उन्हें कामवासना का भी पता नहीं चलता है। उन्हें लगता है कि उनका शरीर मुर्दा हो गया है।

उन्हें क्या हो गया है?यही हो रहा है कि उनका काम-कृत्य भी मानसिक हो गया है। वे इसके बारे में सिर्फ सोच विचार कर सकते है। वे कुछ कर नहीं सकते। क्योंकि कृत्य में तो पूरे का पूरा जाना पड़ता है। और जब भी पूरे होकर कृत्य में संलग्न होने की बात उठती है। मन बेचैन हो जाता है। क्योंकि तब मन मालिक नहीं रह सकता, तब मन नियंत्रण नहीं कर सकता।

तंत्र काम-कृत्य को, संभोग को तुम्हें अखंड बनाने के लिए उपयोग में लाता है। लेकिन तब तुम्हें इसमे बहुत ध्यानपूर्वक उतरना होगा। तब तुम्हें काम के संबंध में वह सब भूल जाना होगा जो तुमने सुना है, पढ़ा है, जो समाज ने, संगठित धर्मों ने, धर्म गुरूओं ने तुम्हें सिखाया है। सब कुछ भूल जाओ। दिया है। और समग्रता से इसमे उतरो। भूल जाओ कि नियंत्रण करना है। नियंत्रण ही बाधा है। उचित है कि तुम उस पर नियंत्रण करने की बजाय अपने को उसके हाथों में छोड़ दो। तुम ही उसके बस में हो जाओ। संभोग में पागल की तरह जाओ। अ-मन की अवस्था पागलपन जैसी मालूम पड़ती है। शरीर ही बन जाओ। पशु ही बन जाओ। क्योंकि पशु पूर्ण है।

जैसा आधुनिक मनुष्य है। उसे पूर्ण बनाने की सबसे सरल संभावना केवल काम में है। सेक्स में है, क्योंकि काम तुम्हारे भीतर गहन जैविक केंद्र है। तुम उससे ही उत्पन्न हुए हो। तुम्हारी प्रत्येक कोशिका काम-कोशिका है। तुम्हारा समस्त शरीर काम-उर्जा की घटना है।

यह पहला सूत्र कहता है: ''काम-आलिंगन के आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो, और ऐसा करते हुए अंत में उसके अंगारे से बचो।''

इसी में सारा फर्क है, सारा भेद है। तुम्हारे काम-कृत्य, संभोग महज राहत का, अपने को तनाव-मुक्त करने का उपाय है। इसलिए जब तुम संभोग में उतरते हो तो तुम्हें बहुत जल्दी रहती है। तुम किसी तरह छुटकारा चाहते हो। छुटकारा यह कि जो ऊर्जा का अतिरेक तुम्हें पीडित किए है वि निकल जाए और तुम चैन अनुभव करो। लेकिन यह चैन एक तरह की दुर्बलता है। ऊर्जा की अधिकता तनाव पैदा करती है। उतैजना पैदा करती है। और तुम्हें लगता है कि उसे फेंकना जरूरी है। जब वह ऊर्जा बह जाती है तो तुम कमजोरी अनुभव करते हो। और तुम उसी कमजोरी को विश्राम मान लेते हो। क्योंकि ऊर्जा की बाढ़ समाप्त हो गई उतैजना जाती रही, इसलिए तुम्हें विश्राम मालूम पड़ता है।

लेकिन यह विश्राम नकारात्मक विश्राम है। अगर सिर्फ ऊर्जा को बाहर फेंककर तुम विश्राम प्राप्त करते हो तो यह विश्राम बहुत महंगा है। और तो भी यह सिर्फ शारीरिक विश्राम होगा। वह गहरा नहीं होगा। वह आध्यात्मिक नहीं होगा।

यह पहला सूत्र कहता है कि जल्द बाजी मत करो और अंत के लिए उतावले मत बनो, आरंभ में बने रहो। काम-कृत्य के दो भाग है: आरंभ और अंत। तुम आरंभ के साथ रहो। आरंभ का भाग ज्यादा विश्राम पूर्ण है। ज्यादा उष्ण है। लेकिन अंत पर पहुंचने की जल्दी मत करो। अंत को बिलकुल भूल जाओ।

तीन संभावनाएं है। दो प्रेमी प्रेम में तीन आकार, ज्यामितिक आकार निर्मित कर सकते है। शायद तुमने इसके बारे में पढ़ा भी होगा। या कोई पुरानी कीमिया, की तस्वीर भी देखो। जिसमें एक स्त्री और एक पुरूष तीन ज्यामितिक आकारों में नग्न खड़े है। एक आकार चतुर्भुज है, दूसरा त्रिभुज है, और तीसरा वर्तुल है। यक अल्केमी और तंत्र की भाषा में काम क्रोध का बहुत पुराना विश्लेषण है।

आमतौर से जब तुम संभोग में होते हो तो वहां दो नहीं, चार व्यक्ति होते है। वही है चतुर्भुज। उसमे चार कोने है, क्योंकि तुम दो हिस्सों में बंटे हो। तुम्हारा एक हिस्सा विचार करने वाला है और दूसरा हिस्सा भावुक हिस्सा है। वैसे ही तुम्हारा साथी भी दो हिस्सों में बंटा है। तुम चार व्यक्ति हो दो नहीं। चार व्यक्ति प्रेम कर रहे है। यह एक भीड़ है, और इसमें वस्तुत: प्रगाढ़ मिलन की संभावना नहीं है। इस मिलन के चार कोने है और मिलन झूठा है। वह मिलन जैसा मालूम होता है। लेकिन मिलन है नहीं। इसमें प्रगाढ़ मिलन की कोई संभावना नहीं है। क्‍योंकि तुम्हारा गहन भाग दबा पडा है। केवल दो सिर, दो विचार की प्रक्रियाएं मिल रही है। भाव की प्रक्रियाएं अनुपस्थित है। वे दबी छीपी है।

दूसरी कोटी काम मिलन त्रिभुज जैसा होगा। तुम दो हो, आधार के कोने और किसी क्षण अचानक तुम दोनों एक हो जाते हो—त्रिभुज के तीसरे कोने की तरह। किसी आकस्मिक क्षण में तुम्हारी दुई मिट जाती है। और तुम एक हो जाते है। यह मिलन चतुर्भुजी मिलन से बेहतर है। क्योंकि कम से कम एक क्षण के लिए ही सही , एकता सध जाती है। वह एकता तुम्हें स्वास्थ्य देती है। शक्ति देती है। तुम फिर युवा और जीवंत अनुभव करते हो।

लेकिन तीसरा मिलन सर्वश्रेष्ठ है। और यह तांत्रिक मिलन है। इसमें तुम एक वर्तुल हो जाते हो, इसमें कोने नहीं रहते। और यह मिलन क्षण भर के लिए नहीं है, वस्तुत: यह मिलन समयातित है। उसमें समय नहीं रहता। और यह मिलन तभी संभव है जब तुम स्खलन नहीं खोजते हो। अगर स्खलन खोजते हो तो फिर यह त्रिभुजीय मिलन हो जाएगा। क्योंकि स्खलन होते ही संपर्क का बिंदु मिलन का बिंदू खो जाता है।

आरंभ के साथ रहो, अंत की फिक्र मत करो। इस आरंभ में कैसे रहा जाए? इस संबंध में बहुत सी बातें ख्याल में लेने जैसी है। पहली बात कि काम कृत्य को कहीं जाने का, पहुंचने का माध्यम मत बनाओ। संभोग को साधन की तरह मत लो, वह आपने आप में साध्य है। उसका कहीं लक्ष्य नहीं है, वह साधन नहीं है। और दूसरी बात कि भविष्य की चिंता मत लो, वर्तमान में रहो। अगर तुम संभोग के आरंभिक भाग में वर्तमान में नहीं रह सकते, तब तुम कभी वर्तमान में नहीं रह सकते। क्योंकि काम कृत्य की प्रकृति ही ऐसी है। कि तुम वर्तमान में फेंक दिए जाते हो।

तो वर्तमान में रहो। दो शरीरों के मिलन का सुखा लो, दो आत्माओं के मिलने का आनंद लो। और एक दूसरे में खो जाओ। एक हो जाओ। भूल जाओ कि तुम्हें कहीं जाना है। वर्तमान क्षण में जीओं, जहां से कहीं जाना नहीं है। और एक दूसरे से मिलकर एक हो जाओ। उष्णता और प्रेम वह स्थिति बनाते है जिसमें दो व्यक्ति एक दूसरे में पिघलकर खो जाते है। यही कारण है कि यदि प्रेम न हो तो संभोग जल्दबाजी का काम हो जाता है। तब तुम दूसरे का उपयोग कर रहे हो। दूसरे में डूब नहीं रहे हो। प्रेम के साथ तुम दूसरे में डूब सकते हो।

आरंभ का यह एक दूसरे में डूब जाना अनेक अंतदृष्टियां प्रदान करता है। अगर तुम संभोग को समाप्त करने की जल्दी नहीं करते हो तो काम-कृत्य धीरे-धीरे कामुक कम और आध्यात्मिक ज्यादा हो जाता है। जननेंद्रियों भी एक दूसरे में विलीन हो जाती है। तब दो शरीर ऊर्जाओं के बीच एक गहन मौन मिलन घटित होता है। और तब तुम घंटों साथ रह सकते हो। यह सहवास समय के साथ-साथ गहराता जाता है। लेकिन सोच-विचार मत करो, वर्तमान क्षण में प्रगाढ़ रूप से विलीन होकर रहो। वही समाधि बन जाती है। और अगर तुम इसे जान सके इसे अनुभव कर सके, इसे उपलब्ध कर सके तो तुम्हारा कामुक चित अकामुक हो जाएगा। एक गहन ब्रह्मचर्य उपलब्ध हो सकता है। काम से ब्रह्मचर्य उपलब्ध हो सकता है।

यह वक्तव्य विरोधाभासी मालूम होता है। काम से ब्रह्मचर्य उपलब्ध हो सकता है। क्योंकि हम सदा से सोचते आए है कि अगर किसी को ब्रह्मचारी रहना है। तो उसे विपरीत यौन के सदस्य को नहीं देखना चाहिए। उससे नहीं मिलना चाहिए। उससे सर्वथा बचना चाहिए, दूर रहना चाहिए। लेकिन उस हालत में एक गलत किस्म का ब्रह्मचर्य घटित होता है। जब चित विपरीत यौन के संबंध में सोचने में संबंध में सोचने में संलग्न हो जाता है। जितना ही तुम दूसरे से बचोगे उतना ही ज्यादा उसके संबंध में सोचने को विवश हो जाओगे। क्योंकि काम मनुष्य की बुनियादी आवश्यकता है, गहरी आवश्यकता है।

तंत्र कहता है कि बचने की, भागने की चेष्टा मत करो, बचना संभव नहीं है। अच्छा है कि प्रकृति को ही उसके अतिक्रमण का साधन बना लो। लड़ों मत प्रकृति के अतिक्रमण के लिए प्रकृति को स्वीकार करो।

अगर तुम्हारी प्रेमिका या तुम्हारी प्रेमी के साथ इस मिलन को अंत की फिक्र किए बिना लंबाया जा सके तो तुम आरंभ में ही बने रहे सकते हो। उतैजना ऊर्जा है और शिखर पर जाकर तुम उसे खो सकते हो। ऊर्जा के खोन से गिरावट आती है। कमजोरी पैदा होती है। तुम उसे विश्राम समझ सकते हो। लेकिन वह उर्जा का अभाव है।

तंत्र तुम्हें उच्चतर विश्राम का आयाम प्रदान करता है। प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे में विलीन होकर एक दूसरे को शक्ति प्रदान करते है। तब वे एक वर्तुल बन जाते है। और उनकी ऊर्जा वर्तुल में घूमने लगती है। वह दोनों एक दूसरे को जीवन ऊर्जा दे रहे है। नव जीवन दे रहे है। इसमे ऊर्जा का ह्रास नहीं होता है। वरन उसकी वृद्धि होती है। क्योंकि विपरीत यौन के साथ संपर्क के द्वारा तुम्हारा प्रत्येक कोश ऊर्जा से भर जाता है। उसे चुनौती मिलती हे।

यदि स्खलन न हो, यदि ऊर्जा को फेंका न जाए तो संभोग ध्यान बन जाता है। और तुम पूर्ण हो जाते हो। इसके द्वारा तुम्हारा विभाजित व्यक्तित्व अविभाजित हो जाता है। अखंड हो जाता है। चित की सब रूग्णता इस विभाजन से पैदा होती है। और जब तुम जुड़ते हो, अखंड होते हो तो तुम फिर बच्चे हो जाते हो। निर्दोष हो जाते हो।

और एक बार अगर तुम इस निर्दोषता का उपलब्ध हो गए तो फिर तुम अपने समाज में उसकी जरूरत के अनुसार जैसा चाहो वैसा व्यवहार कर सकते हो। लेकिन तब तुम्हारा यह व्यवहार महज अभिनय होगा, तुम उससे ग्रस्त नहीं होगे। तब यह एक जरूरत है जिसे तुम पूरा कर रहे हो। तब तुम उसमे नहीं हो। तुम मात्र एक अभिनय कर रहे हो। तुम्हें झूठा चेहरा लगाना होगा। क्योंकि तुम एक झूठे संसार में रहते हो। अन्यथा संसार तुम्हें कुचल देगा, मार डालेगा।

हमने अनेक सच्चे चेहरों को मारा है। हमने जीसस को सूली पर चढ़ा दिया, क्योंकि वे सच्चे मनुष्य की तरह व्यवहार करने लगे थे। झूठा समाज इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता है। हमने सुकरात को जहर दे दिया। क्योंकि वह भी सच्चे मनुष्य की तरह पेश आने लगे थे। समाज जैसा चाहे वैसा करो, अपने लिए और दूसरों के लिए व्यर्थ की झंझट मत पैदा करो। लेकिन जब तुमने अपने सच्चे स्वरूप को जान लिया, उसकी अखंडता को पहचान लिया तो यह झूठा समाज तुम्हें फिर रूग्ण नहीं कर सकता, विक्षिप्त नहीं कर सकता।

‘’काम-आलिंगन के आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो, और ऐसा करते हुए अंत में उसके अंगारे से बचो।‘’

अगर स्खलन होता है तो ऊर्जा नष्ट होती है। और तब अग्नि नहीं बचती। तुम कुछ प्राप्त किए बिना ऊर्जा खो देते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—3

प्रवचन-33

तंत्र सूत्र—विधि -49 (ओशो)

काम संबंधि दूसरा सूत्र—

‘’ऐसे काम-आलिंगन में जब तुम्हारी इंद्रियाँ पत्तों की भांति कांपने लगें

‘’ऐसे काम-आलिंगन में जब तुम्हारी इंद्रियाँ पत्तों की भांति कांपने लगें उस कंपन में प्रवेश करो।‘’
जब प्रेमिका या प्रेमी के साथ ऐसे आलिंगन में, ऐसे प्रगाढ़ मिलन में तुम्हारी इंद्रियाँ पत्तों की तरह कांपने लगें, उस कंपन में प्रवेश कर जाओ।

तुम भयभीत हो गए हो, संभोग में भी तुम अपने शरीर को अधिक हलचल नहीं करने देते हो। क्योंकि अगर शरीर को भरपूर गति करने दिया जाए तो पूरा शरीर इसमें संलग्न हो जाता है तुम उसे तभी नियंत्रण में रख सकते हो जब वह काम-केंद्र तक ही सीमित रहता है। तब उस पर मन नियंत्रण कर सकता है। लेकिन जब वह पूरे शरीर में फैल जाता है तब तुम उसे नियंत्रण में नहीं रख सकते हो। तुम कांपने लगोगे। चीखने चिल्लाने लगोगे। और जब शरीर मालिक हो जाता है तो फिर तुम्हारा नियंत्रण नहीं रहता।
हम शारीरिक गति का दमन करते है। विशेषकर हम स्त्रियों को दुनियाभर में शारीरिक हलन-चलन करने से रोकते है। वे संभोग में लाश की तरह पड़ी रहती है। तुम उनके साथ जरूर कुछ कर रहे हो, लेकिन वे तुम्हारे साथ कुछ भी नहीं करती, वे निष्क्रिय सहभागी बनी रहती है। ऐसा क्यों होता है। क्यों सारी दुनिया में पुरूष स्त्रियों को इस तरह दबाते है।

कारण भय है। क्योंकि एक बार अगर स्त्री का शरीर पूरी तरह कामाविष्ट हो जाए तो पुरूष के लिए उसे संतुष्ट करना बहुत कठिन है। क्योंकि स्त्री एक शृंखला में, एक के बाद एक अनेक बार आर्गाज्म के शिखर को उपलब्ध हो सकती है। पुरूष वैसा नहीं कर सकता। पुरूष एक बार ही आर्गाज्म के शिखर अनुभव को छू सकता है। स्त्री अनेक बार छू सकती है। स्त्रियों के ऐसे अनुभव के अनेक विवरण मिले है। कोई भी स्त्री एक शृंखला में तीन-तीन बार शिखर-अनुभव को प्राप्त हो सकती है। लेकिन पुरूष एक बार ही हो सकता है। सच तो यह है कि पुरूष के शिखर अनुभव से स्त्री और-और शिखर अनुभव को उत्तेजित होती है। तैयार होती है। तब बात कठिन हो जाती है। फिर क्या किया जाए?

स्त्री को तुरंत दूसरे पुरूष की जरूरत पड़ जाती है। और सामूहिक कामाचार निषिद्ध है। सारी दुनियां में हमने एक विवाह वाले समाज बना रखे है। हमें लगता है कि स्त्री का दमन करना बेहतर है। फलत: अस्सी से नब्बे प्रतिशत स्त्रियां शिखर अनुभव से वंचित रह जाती है। वे बच्चों को जन्म दे सकती है। यह और बात है। वे पुरूष को तृप्त कर सकती है। यह भी और बात है।

लेकिन वे स्वयं कभी तृप्त नहीं हो पाती। अगर सारी दुनिया की स्त्रियां इतनी कड़वाहट से भरी है, दुःखी है, चिड़चिड़ी है, हताश अनुभव करती है। तो यह स्वाभाविक है। उनकी बुनियादी जरूरत पूरी नहीं होती।

कांपना अद्भुत है। क्योंकि जब संभोग करते हुए तुम कांपते हो तो तुम्हारी ऊर्जा पूरे शरीर में प्रवाहित होने लगती है। सारे शरीर में तरंगायित होने लगती है। तब तुम्हारे शरीर का अणु-अणु संभोग में संलग्न हो जाता है। प्रत्येक अणु जीवंत हो उठता है। क्योंकि तुम्हारा प्रत्येक अणु काम अणु है।

तुम्हारे जन्म में दो कास-अणु आपस में मिले और तुम्हारा जीवन निर्मित हुआ, तुम्हारा शरीर बना। वे दो काम अणु तुम्हारे शरीर में सर्वत्र छाए है। यद्यपि उनकी संख्या अनंत गुनी हो गई है। लेकिन तुम्हारी बुनियादी इकाई काम-अणु ही है। जब तुम्हारा समूचा शरीर कांपता है तो प्रेमी प्रेमिका के मिलन के साथ-साथ तुम्हारे शरीर के भीतर प्रत्येक पुरूष-अणु स्त्री अणु से मिलता है। वह कंपन यही बताता है। यह पशुवत मालूम पड़ेगा। लेकिन मनुष्य पशु है और पशु होने में कुछ गलती नहीं है।

यह दूसरा सूत्र कहता है: **''ऐसे काम-आलिंगन में जब तुम्हारी इंद्रियाँ पत्तों की भांति कांपने लगे।''**
मानो तूफान चल रहा है और वृक्ष कांप रहा है। उनकी जड़ें तक हिलने लगती है। पत्ता-पत्ता कांपने लगता है। यही हालत संभोग में होती है। कामवासना भारी तूफान है। तुम्हारे आर-पार एक भारी ऊर्जा प्रवाहित हो रही है। कंपो। तरंगायित होओ। अपने शरीर के अणु-अणु को नाचने दो। और इस नृत्य में दोनों के शरीरों को भाग लेना चाहिए। प्रेमिका को भी नृत्य में सम्मिलित करो। अणु-अणु को नाचने दो। तभी तुम दोनों का सच्चा मिलन होगा। और वह मिलन मानसिक नहीं होगा। वह जैविक ऊर्जा का मिलन होगा।

''उस कंपन में प्रवेश करो।''
और कांपते हुए उससे अलग-थलग मत रहो, मन का स्वभाव दर्शक बने रहने का है। इसलिए अलग मत रहो। कंपन ही बन जाओ। सब कुछ भूल जाओ और कंपन ही कंपन हो रहो। ऐसा नहीं कि तुम्हारा शरीर ही कांपता है। तुम पूरे के पूरे कांपते हो, तुम्हारा पूरा अस्तित्व कांपता है। तुम खुद कंपन ही बन जाते हो। तब दो शरीर और दो मन नहीं रह जाएंगे। आरंभ में दो कंपित ऊर्जाऐं है, और अंत में मात्र एक वर्तुल है। दो नहीं रहे।

इस वर्तुल में क्या घटित होगा। पहली बात तो उस समय तुम अस्तित्वगत सत्ता के अंश हो जाओगे। तुम एक सामाजिक चित नहीं रहोगे। अस्तित्वगत ऊर्जा बन जाओगे। तुम पूरी सृष्टि के अंग हो जाओगे। उस कंपन में तुम पूरे ब्रह्मांड के भाग बन जाओगे। वह क्षण महान सृजन का क्षण है। ठोस शरीरों की तरह तुम विलीन हो गए हो, तुम तरल होकर एक दूसरे में प्रवाहित हो गए हो। मन खो गया, विभाजन मिट गया, तुम एकता को प्राप्त हो गए।

यही अद्वैत है। और अगर तुम इस अद्वैत को अनुभव नहीं करते हो अद्वैत का सारा दर्शन शास्त्र व्यर्थ है। वह बस शब्द ही शब्द है। जब तुम इस अद्वैत अस्तित्वगत क्षण को जानोंगे तो ही तुम्हें उपनिषद समझ में आएँगे। और तभी तूम संतों को समझ पाओगे। कि जब वे जागतिक एकता की अखंडता की बात करते है तो उनका क्या मतलब है। तब तुम जगत से भिन्न नहीं होगे। उससे अजनबी नहीं होगे। तब पूरा अस्तित्व तुम्हारा घर बन जाता है। और इस भाव के साथ कि पूरा अस्तित्व मेरा घर है। सारी चिंताएं समाप्त हो जाती है। फिर कोई द्वंद्व न रहा, संघर्ष न रहा, संताप न रहा।

उसका ही लाओत्से ताओ कहते है, शंकर अद्वैत कहते है। तब तुम उसके लिए कोई अपना शब्द भी दे सकते हो। लेकिन प्रगाढ़ प्रेम आलिंगन में ही उसे सरलता से अनुभव किया जाता है। लेकिन जीवंत बनो, कांपो, कंपन ही बन जाओ।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—3

प्रवचन-33

तंत्र सूत्र–विधि -50 (ओशो)

काम संबंधि तीसरा सूत्र–

''काम-आलिंगन के बिना ऐसे मिलन का स्मरण करके भी रूपांतरण होगा।''

''काम-आलिंगन के बिना ऐसे मिलन का स्मरण करके भी रूपांतरण होगा।''

एक बार तुम इसे जान गए तो प्रेम पात्र की, साथी की जरूरत नहीं है। तब तुम कृत्य का स्मरण उसमे प्रवेश कर सकते हो। लेकिन पहले भाव का होना जरूरी है। अगर भाव से परिचित हो तो साथ के बिना भी तुम कृत्य में प्रवेश कर सकते हो।

यह थोड़ा कठिन है, लेकिन यह होता है। और जब तक यह नहीं होता, तुम पराधीन रहते हो। एक पराधीनता निर्मित हो जाती है। और यह प्रवेश अनेक कारणों से घटित होता है। अगर तुमने उसका अनुभव किया हो, अगर तुमने उस क्षण को जाना हो जब तुम नहीं थे, सिर्फ तरंगायित ऊर्जा एक होकर साथी के साथ वर्तुल बना रही थी। तो उस क्षण साथी भी नहीं रहता है, केवल तुम होते हो। वैसे ही उस क्षण तुम्हारे साथी के लिए तुम नहीं होते, वही होता है। वह एकता तुममें होती है। साथी नहीं रह जाता है। और यह भाव स्त्रियों के लिए सरल है। क्योंकि स्त्रियों आँख बंद करके ही संभोग में उतरती है।

इस विधि का प्रयोग करते समय आँख बंद रखना अच्छा है। तो ही वर्तुल का आंतरिक भाव एकता का आंतरिक भाव निर्मित हो सकता है। और फिर उसका स्मरण करो। आँख बंद कर लो और ऐसे लेट जाओ मानो तुम अपने साथी के साथ लेटे हो, स्मरण करो और भाव करो लो और ऐसे तुम्हारा शरीर कांपने लगेगा। तरंगायित होने लगेगा। उसे होने दो। यह बिलकुल भूल जाओ कि दूसरा नहीं है। ऐसे गति करो जैसे कि दूसरा उपस्थित है। शुरू में कल्पना से ही काम लेना होना। एक बार जाना गए कि यह कल्पना नहीं, यथार्थ है; तब दूसरा मौजूद है।

ऐसे गति करो जैसे कि तुम वस्तुत: संभोग में उतर रहे हो। वह सब कुछ करो जो तुम अपने प्रेम-पात्र के साथ करते; चीखो, डोलो, कांपो। शीध्र वर्तुल निर्मित हो जाएगा। और यह वर्तुल अद्भुत है। शीध्र ही तुम्हें अनुभव हो जायेगा। लेकिन यह वर्तुल पुरूष स्त्री से नहीं बना है। अगर तुम पुरूष हो तो सारा ब्रहमांड स्त्री बन गया है। और अगर तुम स्त्री होता सारा ब्रहमांड पुरूष

बन गया है। अब तुम खुद अस्तित्व के साथ प्रगाढ़ मिलन में हो और उसके लिए दूसरा द्वार की तरह अब नहीं है।
दूसरा मात्र द्वार है। किसी स्त्री के साथ संभोग करते हुए तुम दरअसल अस्तित्व के साथ संभोग में होते हो। सत्री मात्र द्वार है। पुरूष मात्र द्वार है। दूसरा संपूर्ण के लिए द्वार भर है। लेकिन तुम इतनी जल्दी में हो कि तुम्हें इसका एहसास नहीं होता। अगर तुम प्रगाढ़ मिलन में, सघन आलिंगन में घंटो रह सको तो दूसरा विस्मृत हो जाएगा। दूसरा समष्टि का विस्तार भर रह जाएगा।
अगर एक बार इस विधि को तुमने जान लिया तो अकेले भी तुम इसका प्रयोग कर सकते हो। और जब अकेले रहकर प्रयोग करोगे। तो वह तुम्हें एक नयी स्वतंत्रता प्रदान करेगा। वह तुम्हें दूसरे से स्वतंत्र कर देगा। वह वस्तुत: समूचा अस्तित्व दूसरा हो जाता है। तुम्हारी प्रेमिका या तुम्हारा प्रेमी हो जाता है। और फिर तो इस विधि का प्रयोग निरंतर किया जा सकता है। और तुम सतत अस्तित्व के साथ आलिंगन में संवाद में रह सकते हो।
और तब तुम इस विधि का प्रयोग दूसरे आयामों में भी कर सकते हो सुबह टहलते हुए इसका प्रयोग कर सकते हो। तब तुम हवा के साथ, उगते सूरज के साथ, चाँद-तारों के साथ, पेड़-पौधों के साथ। तुम लयबद्ध होने का अनुभव कर सकते हो। रात में तारों को देखते हुए इस विधि का प्रयोग कर सकते हो। चाँद को देखते हुए कर सकते हो। तुम पूरी सृष्टि के साथ काम-भोग में उतर सकते हो। अगर तुम्हें इसके घटित होने का राज पता चल जाए। निर्मित हो जाये, लेकिन मनुष्य के साथ प्रयोग आरंभ करना अच्छा है। कारण यह है कि मनुष्य तुम्हारे सबसे निकट है। वे तुम्हारे लिए जगत के निकटतम अंश है। लेकिन फिर उन्हें छोड़ा जा सकता है। उनके बिना भी चलेगा। तुम छलांग ले सकते हो और द्वार को बिलकुल भूल सकते हो।
''ऐसे मिलन का स्मरण करके भी रूपांतरण होगा।''
और तुम रूपांतरित हो जाओगे। तुम नए हो जाओगे।
तंत्र काम का उपयोग वाहन के रूप में करता है। वह ऊर्जा है, उसे वाहन या माध्यम बनाया जा सकता है। काम तुम्हें रूपांतरित कर सकता है। वह तुम्हें अतिक्रमण की अवस्था को , समाधि को उपलब्ध करा सकता है। लेकिन हम गलत ढंग से काम का उपयोग करते है। और गलत ढंग स्वाभाविक ढंग नहीं है। इस मामले में पशु भी हमसे बेहतर है। वे स्वभाविक ढंग से काम का उपयोग करते है। हमारे ढंग बड़े विकृत है। काम पाप है। यह बात निरंतर प्रचार से मनुष्य के मन में इतनी गहरी बैठ गई है कि अवरोध बन गई है। उसके चलते तुम कभी अपने को काम म उतरने की पूरी छूटी नहीं देते, तुम कभी उससे उन्मुक्त भाव से नहीं प्रवेश करते। तुम्हारा एक अंश सदा अलग खड़े होकर उसकी निंदा करता है।
और यह बात नयी पीढ़ी के लिए भी सच है। वे भला कहते हो कि हमारे लिए काम कोई समस्या नहीं है। और हम उसके दमित से ग्रस्त नहीं है। कि वह हमारे लिए टैबू नहीं रहा। लेकिन बात इतनी आसान नहीं है। तुम अपने अचेतन को इतनी आसानी से नहीं पोंछ सकते, वह सदियों में निर्मित हुआ है। मनुष्य का पूरा अतीत तुम्हारे साथ है। हो सकता है। कि तुम चेतना में काम की निंदा न करते होओ। तुम उसे पाप न भी कहते हो। लेकिन तुम्हारा अचेतन सतत उसकी निंदा में लगा है। तुम कभी समग्रता से काम कृत्य में नहीं होते। सदा ही कुछ अंश बाहर रह जाता है। और वही बाहर रह गया अंश विभाजन पैदा करता है, टूट पैदा करता है।
तंत्र कहता है, काम में समग्रता से प्रवेश करो। अपनी सभ्यता को, अपने धर्म को, संस्कृति और आदर्श को भूल जाओ। काम कृत्य में उतरो, पूर्णता से, समग्रता से उतरो। अपने किसी भी अंश को बाहर मत छोड़ो। सर्वथा निर्विचार हो जाओ। तभी यह बोध होता है। कि तुम किसी को साथ एक हो गए हो। और तब एक होने के इस भाव को साथी से पृथक किया जा सकता है। और उसे पूरे ब्रह्मांड के साथ जोड़ा जा सकता है। तब तुम वृक्ष के साथ, चाँद तारों के साथ, किसी भी चीज के साथ काम-क्रीड़ा में उतर सकते हो। एक बार तुम्हें वर्तुल बनाना आ जाए तो किसी भी चीज के साथ यह वर्तुल निर्मित किया जा सकता है। तुम अपने भीतर भी एक वर्तुल का निर्माण कर सकते हो। क्योंकि मनुष्य दोनों है, पुरूष और स्त्री दोनों है। पुरूष के भीतर स्त्री है और स्त्री के भीतर पुरूष है। तुम दोनों हो, क्योंकि दोनों ने मिलकर तुम्हें निर्मित किया है। तुम्हारा निर्माण स्त्री और पुरूष दोनों के द्वारा हुआ है। इसलिए तुम्हारा आधा अंश सदा दूसरा है। तुम बाहरी सब कुछ को पूरी तरह भूल जाओ। और वह वर्तुल तुम्हारे भीतर निर्मित हो जाएगा।
इस वर्तुल के बनते ही तुम्हारा पुरूष तुम्हारी स्त्री के आलिंगन में होता है। और तुम्हारे भीतर की स्त्री भीतर के पुरूष के आलिंगन में होती है। और तब तुम अपने साथ ही आंतरिक काम-आलिंगन में होते हो। और इस वर्तुल के बनने पर ही सच्चा

ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है। अन्यथा सब ब्रह्मचर्य विकृति है और उससे समस्याएं ही समस्याएं जनम लेती है। और जब यह वर्तुल तुम्हारे भीतर निर्मित होता है तो तुम मुक्त हो जाते हो।

तंत्र यही कहता है: कामवासना गहनत्म बंधन है, लेकिन उसका उपयोग परम मुक्ति के लिए किया जा सकता है। उसे एक वाहन बनाया जा सकता है। जहर को औषधि बनाया जा सकता है। लेकिन उसके लिए विवेक जरूरी है।

तो किसी चीज की निंदा मत करो। वरन उसका उपयोग करो। किसी चीज के विरोध में मत होओ। उपाय निकालों कि उसका उपयोग किया जाए। उसको रूपांतरित किया जाए। तंत्र जीवन का गहन स्वीकार है, समग्र स्वीकार है। तंत्र अपने ढंग की सर्वथा अनूठी साधना है। अकेली साधना है। सभी देश और काल में तंत्र का यह अनूठापन अक्षुण्ण रहा है। और तंत्र कहता है, किसी चीज को भी मत फेंको, किसी चीज के भी विरोध में मत जाओ। किसी चीज के साथ संघर्ष मत करो, क्योंकि द्वंद्व में, संघर्ष में मनुष्य अपने प्रति ही विध्वंसात्मक हो जाता है।

सभी धर्म कामवासना के विरोध में है। वे उससे डरते है। क्योंकि कामवासना महान ऊर्जा है। उससे उतरते ही तुम नहीं बचते हो। उसका प्रवाह तुम्हें कहीं से कहीं बहा ले जाता है। यही भय का कारण है। इससे ही लोग अपने और इस प्रवाह के बीच एक दीवार, एक अवरोध खड़ा कर लेते है। ताकि दोनों बंट जाएं, ताकि यह प्रबल शक्ति तुम्हें अभिभूत न करे। ताकि तुम उसके मालिक बन रहो।

लेकिन तंत्र का कहना है—और केवल तंत्र का कहना है—कि यह मालिकीयत झूठी है। रूग्ण है। क्योंकि तुम सच में इस प्रवाह से पृथक नहीं हो सकते हो। वह प्रवाह तुम हो। सभी विभाजन झूठे होंगे। सभी विभाजन थोपे हुए होंगे। बुनियादी बात यह है कि विभाजन संभव ही नहीं है। क्योंकि तुम्हीं वह प्रवाह हो, तुम उसके अंग हो, उसकी एक लहर हो। संभव है कि तुम बर्फ की तरह जम गए हो। और इस तरह तुमने अपने को प्रवाह से अलग कर लिया है। लेकिन वह जमना, वह अलग होना मृतवत हो गई है। कोई भी आदमी वास्तव में जीवन नहीं है। तुम नदी में बहते हुए मुर्दों जैसे हो। पिघलो।

तंत्र कहता है: पिघलने चेष्टा करो। हिमखंड की तरह मत जीओं। पिघलो और नदी के साथ एक हो जाओ। नदी के साथ एक होकर, नदी में विलीन होकर बोधपूर्ण होओ और तब रूपांतरण घटित होता है। तब रूपांतरण है। संघर्ष से नहीं, बोध से रूपांतरण घटित होता है।

ये तीन विधियां बहुत वैज्ञानिक विधियां है। लेकिन तब काम या सेक्स वही नहीं रहता है जो तुम उसे समझते हो, तब वह कुछ और ही चीज है। तब सेक्स कोई क्षणिक राहत नहीं है, तब वह ऊर्जा को बाहर फेंकना नहीं है। तब इसका अंत नहीं आता, तब वह ध्यानपूर्ण वर्तुल बन जाता है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—3

प्रवचन-33

तंत्र सूत्र—विधि -51 (ओशो)

काम संबंधि चौथा सूत्र—

''बहुत समय बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है.....

''बहुत समय बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है, उस हर्ष में लीन होओ।''
उस हर्ष में प्रवेश करो और उसके साथ एक हो जाओ। किसी भी हर्ष से काम चलेगा। यह एक उदाहरण है।

''बहुत समय बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है।''

तुम्हें अचानक कोई मित्र मिल जाता है जिसे देखे हुए बहुत दिन, बहुत वर्ष हो गए है। और तुम अचानक हर्ष से, आह्लाद से भर जाते हो। लेकिन अगर तुम्हारा ध्यान मित्र पर है, हर्ष पर नहीं तो तुम चूक रहे हो। और यह हर्ष क्षणिक होगा। तुम्हारा सारा ध्यान मित्र पर केंद्रित होगा, तुम उससे बातचीत करने में मशगूल रहोगे। तुम पुरानी स्मृतियों को ताजा करने में लगे रहोगे। तब तुम इस हर्ष को चूक जाओगे। और हर्ष भी विदा हो जाएगा। इसलिए जब किसी मित्र से मिलना हो और अचानक तुम्हारे हृदय में हर्ष उठे तो उस हर्ष पर अपने को एकाग्र करो। उस हर्ष को महसूस करो। उसके साथ एक हो जाओ। और तब हर्ष से भरे हुए और बोधपूर्ण रहते हुए अपने मित्र को मिलो। मित्र को बस परिधि पर रहने दो और तुम अपने सुख के भाव के में केंद्रित हो जाओ।
अन्य अनेक स्थितियों में भी यह किया जा सकता है। सूरज उग रहा है और तुम अचानक अपने भीतर भी कुछ उगता हुआ अनुभव करते हो। तब सूरज को भूल जाओ, उसे परिधि पर ही रहने दो और तुम उठती हुई उर्जा के अपने भाव में केंद्रित हो जाओ। जब तुम उस पर ध्यान दोगे, वह भाव फैलने लगेगा। और वह भाव तुम्हारे सारे शरीर पर, तुम्हारे पूरे अस्तित्व पर फैल जाएगा। और बस दर्शन ही मत बने रहो। उसमे विलीन हो जाओ।

ऐसे क्षण बहुत थोड़े होते है, जब तुम हर्ष या आह्लाद अनुभव करते हो, सुख और आनंद से भरते हो। और तुम उन्हें भी चूक जाते हो। क्योंकि तुम विषय केंद्रित होते हो। जब भी प्रसन्नता आती है। सुख आता है, तुम समझते हो कि यह बाहर से आ रहा है।

किसी मित्र से मिलने हो, स्वभावत: लगता है कि सुख मित्र से आ रहा है। मित्र के मिलने से आ रहा है। लेकिन यह हकीकत नहीं है। सुख सदा तुम्हारे भीतर है। मित्र तो सिर्फ परिस्थिति निर्मित करता है। मित्र ने सुख को बाहर आने का अवसर दिया। और उसने तुम्हें उस सुख को देखने में हाथ बंटाया।

यह नियम सुख के लिए ही नहीं। सब चीजों के लिए है; क्रोध, शोक, संताप, सुख, सब पर लागू होता है। ऐसा ही है। दूसरे केवल परिस्थिति बनाते है जिसमे जो तुम्हारे भीतर छिपा है वह प्रकट हो जाता है। वे कारण नहीं है। वे तुम्हारे भीतर कुछ पैदा नहीं करते है। जो भी घटित हो रहा है वह तुम्हें घटित हो रहा है। वह सदा है। मित्र का मिलन सिर्फ अवसर बना, जिसमे अव्यक्त व्यक्त हो रहा है। अप्रकट हो गया।

जब भी यह सुख घटित हो, उसके आंतरिक भाव में स्थित रहो और तब जीवन में सभी चीजों के प्रति तुम्हारी दृष्टि भिन्न हो जाएगी। नकारात्मक भावों के साथ भी यह प्रयोग किया जा सकता है। जब क्रोध आए तो उस व्यक्ति की फिक्र मत करो जिसने क्रोध करवाया, उसे परिधि पर छोड़ दो और तुम क्रोध ही हो जाओ। क्रोध को उसकी समग्रता में अनुभव करो, उसे अपने भीतर पूरी तरह घटित होने दो।

उसे तर्क-संगत बनाने की चेष्टा मत करो। यह मत कहो कि इस व्यक्ति ने क्रोध करवाया। उस व्यक्ति की निंदा मत करो। वह तो निर्मित मात्र है। उसका उपकार मानों कि उसने तुम्हारे भीतर दमित भावों को प्रकट होने का मौका दिया। उसने तुम पर कहीं चोट की। और वहां से घाव छिपा पडा था। अब तुम्हें उस घाव का पता चल गया है। अब तुम वह घाव ही बन जाओ।

विधायक या नकारात्मक, किसी भी भाव के साथ प्रयोग करो और तुम में भारी परिवर्तन घटित होगा। अगर भाव नकारात्मक है तो उसके प्रति सजग होकर तुम उससे मुक्त हो जाओगे। और अगर भाव विधायक है तो तुम भाव ही बन

जाओगे। अगर यह सुख है तो तुम सुख बन जाओगे। लेकिन यह क्रोध विसर्जित हो जाएगा। और नकारात्मक और विधायक भावों का भेद भी यही है। अगर तुम किसी भाव के प्रति सजग होते हो और उससे वह भाव विसर्जित हो जाता है तो समझना कि वह नकारात्मक भाव है। और यदि किसी भाव के प्रति सजग होने से तुम वह भाव ही बन जाते हो और वह भाव फैलकर तुम्हारे तन-प्राण पर छा जाता है तो समझना कि वह विधायक भाव है। दोनों मामलों में बोध अलग-अलग ढंग से काम करता है। अगर कोई जहरीला भाव है तो बोध के द्वारा तुम उससे मुक्त हो सकते हो। और अगर भाव शुभ है, आनंदपूर्ण है, सुंदर है तो तुम उससे एक हो जाते हो। बोध उसे प्रगाढ़ कर देता है।

मेरे लिए यही कसौटी है। अगर कोई वृति बोध से सघन होती है तो वह शुभ है और अगर बोध से विसर्जित हो जाती है तो उसे अशुभ मानना चाहिए। जो चीज होश के साथ न जी सके वह पाप है और जो होश के साथ वृद्धि को प्राप्त हो वह पुण्य है। पुण्य और पाप सामाजिक धारणाएं नहीं है। वे आंतरिक उपलब्धियां है।

अपने बोध को जगाओं, उसका उपयोग करो। यह ऐसा ही है जैसे कि अंधकार है और तुम दीया जलाये हो। दीए के जलते ही अंधकार विदा हो जाएगा। प्रकाश के आने से अँधेरा नहीं हो जाता है। क्योंकि वस्तुत: अँधेरा नहीं था। अंधकार प्रकाश का आभाव है। वह प्रकाश की अनुपस्थिति था। लेकिन प्रकाश के आने से वहां मौजूद अनेक चीजें प्रकाशित भी हो जाएंगी। प्रकट हो जायेगी। प्रकाश के आने से ये अलमारियां, किताबें, दीवारें विलीन नहीं हो जाएंगी। अंधकार में वे छिपी थी, तुम उन्हें नहीं देख सकते थे। प्रकाश के आने से अंधकार विदा हो गया लेकिन उसके साथ ही जो यथार्थ था वह प्रकट हो गया। बोध के द्वारा जो भी अंधकार की तरह नकारात्मक है—धृणा, क्रोध, दुःख, हिंसा—वह विसर्जित हो जाएगा और उसके साथ ही प्रेम, हर्ष, आनंद जैसी विधायक चीजें पहली बार तुम पर प्रकट हो जाएंगी।

इसलिए ''बहुत समय के बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है, उस हर्ष में लीन होओ।''

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—3

प्रवचन-33

तंत्र सूत्र–विधि -52

पांचवी तंत्र विधि–

''भोजन करते हुए या पानी पीते हुए भोजन या पानी का स्वाद ही बन जाओ, और उससे भर जाओ।''
हम खाते रहते है, हम खाए बगैर नहीं रह सकते। लेकिन हम बहुत बेहोशी में भोजन करते है—यंत्रवत। और अगर स्वाद न लिया जाए तो तुम सिर्फ पेट को भर रहे हो।

तो धीरे-धीरे भोजन करो, स्वाद लेकिर करो और स्वाद के प्रति सजग रहो। और स्वाद के प्रति सजग होने के लिए धीरे-धीरे भोजन करना बहुत जरूरी है। तुम भोजन को बस निगलने मत जाओ। आहिस्ता-आहिस्ता उसका स्वाद लो और स्वाद ही बन जाओ। जब तुम मिठास अनुभव करो तो मिठास ही बन जाओ। और तब वह मिठास सिर्फ मुंह में नहीं, सिर्फ जीभ में नहीं, पूरे शरीर में अनुभव की जा सकती है। वह सचमुच पूरे शरीर में फैल जायेगी। तुम्हें लगेगा कि मिठास—या कोई भी चीज—लहर की तरह फैलती जा रही है। इसलिए तुम जो कुछ खाओ, उसे स्वाद लेकर खाओ और स्वाद ही बन जाओ। यहीं तंत्र दूसरी परंपराओं से सर्वथा भिन्न है। विपरीत मालूम पड़ता है। जैन अस्वाद की बात करते है। महात्मा गांधी ने तो अपने आश्रम में अस्वाद को एक नियम बना लिया था। नियम था कि खाओ स्वाद के लिए मत खाओ। स्वाद मत लो, स्वाद को भूल जाओ। वे कहते थे कि भोजन आवश्यक है, लेकिन यंत्रवत भोजन करो। स्वाद वासना है, स्वाद मत लो।

तत्र कहता है कि जितना स्वाद ले सको उतना स्वाद लो। ज्यादा से ज्यादा संवेदनशील बनो, जीवंत बनो। इतना ही नहीं कि संवेदनशील बनो, स्वाद ही बन जाओ। अस्वाद से तुम्हारी इंद्रियाँ मर जाएंगी। उनकी संवेदनशीलता जाती रहेगी। और संवेदनशीलता के मिटने से तुम अपने शरीर को, अपने भावों को अनुभव करने में असमर्थ हो जाओगे। और तब फिर तुम अपने सिर के कैंद्रित होकर रह जाओगे। और सिर में केंद्रित होना विभाजित होना है।

तंत्र कहता है: अपने भीतर विभाजन मत पैदा करो। स्वाद लेना सुंदर है, संवेदनशील होना सुंदर है। और तुम जितने संवेदनशील होगे, उतने ही जीवंत होगे। और जितने तुम जीवंत होगे, उतना ही अधिक जीवन तुम्हारे अंतस में प्रविष्ट होगा। तुम अधिक खुलोगें। उन्मुक्त अनुभव करोगे।

तुम स्वाद लिए बिना कोई चीज खा सकते हो। यह कठिन नहीं है। तुम किसी को छुए बिना छू सकते हो। यह भी कठिन नहीं है। हम वही तो करते है, तुम किसी के साथ हाथ मिलाते हो और उसे स्पर्श नहीं करते। स्पर्श करने के लिए तुम्हें हाथ तक आना पड़ेगा। हाथ में उतरना पड़ेगा। स्पर्श करने के लिए तुम्हें तुम्हारी हथेली, तुम्हारी अगुलियां बन जाता पड़ेगा—मानो तुम, तुम्हारी आत्मा तुम्हारे हाथ में उतर आयी है। तभी तुम स्पर्श कर सकते हो, वैसे तुम किसी का हाथ में हाथ लेकिर भी उससे अलग रह सकते हो। तब तुम्हारा मुर्दा हाथ किसी के हाथ में होगा। वह छूता हुआ मालूम पड़ेगा। लेकिन वह छूता नहीं है।

हम स्पर्श करना भूल गए है। हम किसी को स्पर्श करने से डरते है। क्योंकि स्पर्श करना कामुकता का प्रतीक बन गया है। तुम किसी भीड़ में, बस या रेल में अनेक लोगों को छूते हुए खड़े हो सकते हो, लेकिन वास्तव में न तुम उन्हें छूते हो और न वे तुम्हें छूते है। सिर्फ शरीर एक दूसरे को स्पर्श कर रहा है। लेकिन तुम दूर-दूर हो। और तुम इस फर्क को समझ सकते हो। अगर तुम भीड़ में किसी को वास्तव में स्पर्श करो तो वह बुरा मान जाएगा। तुम्हारा शरीर बेशक छू सकता है। लेकिन तुम्हें उस शरीर में नहीं होना चाहिए। तुम्हें शरीर से अलग रहना चाहिए, मानो तुम शरीर में नहीं हो, मानो कोई मुर्दा शरीर स्पर्श कर रहा है।

यह संवेदनहीनता बुरी है। यह बुरी है, क्योंकि तुम अपने को जीवन से बचा रहे हो। तुम मृत्यु से इतने भयभीत हो और तुम मरे हुए हो। सच तो यह है कि तुम्हें भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि कोई भी मरने वाला नहीं है। तुम तो पहले से

ही मरे हुए हो। और तुम्हारे भयभीत होने का कारण भी यही है कि तुम कभी जीए ही नहीं। तुम जीवन से चूकते रहे और मृत्यु करीब आ रही है।

जो व्यक्ति जीवित है वह मृत्यु से नहीं डरेगा। क्योंकि वह जीवित है। जब तुम वास्तव में जीते हो तो मृत्यु का भय नहीं रहता। तब तुम मृत्यु को भी जी सकते हो। जब मृत्यु आएगी तो तुम इतने संवेदनशील होगे कि मृत्यु का भी आनंद लोगे मृत्यु एक महान अनुभव बनने वाली है। अगर तुम सचमुच जिंदा हो तो तुम मृत्यु को भी जी सकते हो। और तब मृत्यु-मृत्यु नहीं रहेगी। अगर तुम मृत्यु को भी जी सको। जब तुम अपने केंद्र को लौट रहे हो, जब तुम विलीन हो रहे हो, उस क्षण यदि तुम अपने मरते हुए शरीर के प्रति भी सजग रह सको, अगर तुम इसको भी जी सको—तो तुम अमृत हो गए।

''भोजन करते हुए या पानी पीते हुए भोजन या पाना का स्वाद ही बन जाओ। और उससे भर जाओ।''

पानी पीते हुए पानी का ठंडापन अनुभव करो। आंखे बंद कर लो, धीरे-धीरे पीनी पीओ और उसका स्वाद लो। पानी की शीतलता को महसूस करो और महसूस करे कि तुम शीतलता ही बन गए हो। जब तुम पानी पीते हो तो पानी की शीतलता तुममें प्रवेश करती है। तुम्हारे अंग बन जाती है। तुम्हारा मुंह शीतलता को छूता है। तुम्हारी जीभ उसे छूती है। और ऐसे वह तुम में प्रवेश हो जाती है। उसे तुम्हारे पूरे शरीर में प्रविष्‍ट होने दो। उसकी लहरों को फैलने दो और तुम अपने पूरे शरीर में वह शीतलता महसूस करोगे। इस भांति तुम्हारी संवेदनशीलता बढ़ेगी। विकसित होगी। और तुम ज्यादा जीवंत, ज्यादा भरे पूरे हो जाओगे।

हम हताश, रिक्‍त और खाली अनुभव करते है। और हम कहते है कि जीवन रिक्‍त है। लेकिन जीवन के रिक्‍त होने का कारण हम स्वयं है। हम जीवन को भरते ही नहीं है। हम उसे भरने नहीं देते है। हमने अपने चारों और एक कवच लगा रखा है—सुरक्षा कवच। हम वलनरेबल होने से, खुले रहने से डरते है। हम अपने को हर चीज से बचाकर रखते है। और तब हम कब्र बन जाते है। मृत लाशों।

तंत्र कहता है: जीवंत बनो, क्योंकि जीवन ही परमात्मा है। जीवन के अतिरिक्‍त कोई परमात्मा नहीं है। तुम जितने जीवंत होगे उतने ही परमात्मा होगे। और जब समग्रता जीवंत होगे तो तुम्हारे लिए कोई मृत्यु नहीं है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—33

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—53 (ओशो)

आत्म-स्मरण की पहली विधि—

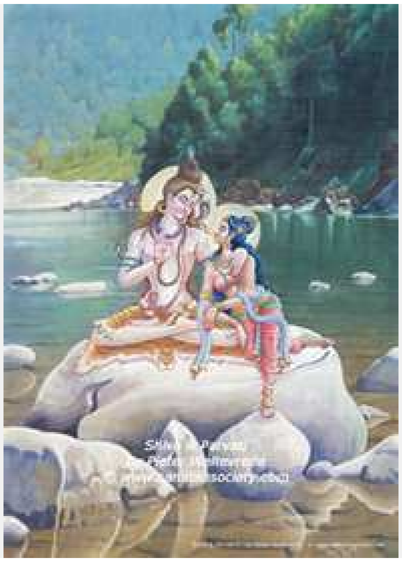

''हे कमलाक्षी, हे, सुभगे, गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए.....शिव

''हे कमलाक्षी, हे, सुभगे, गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए यह बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत आविर्भूत होता है।''
हम है, लेकिन हमें बोध नहीं है कि हम है। हमें आत्म-स्मरण नहीं है। तुम खा रहे हो, या तुम स्नान कर रहे हो, या टहल रहे हो। लेकिन टहलते हुए तुम्हें इका बोध नहीं है कि मैं हूं। सजग नहीं हो कि मैं हूं सब कुछ है, केवल तुम नहीं हो। झाड़ है, मकान है, चलते रास्ते है, सब कुछ है; तुम अपने चारों और की चीजों के प्रति सजग हो, लेकिन सिर्फ अपने होने के प्रति कि मैं हूं, सजग नहीं हो। लेकिन अगर तुम सारे संसार के प्रति भी सजग हो और अपने प्रति सजग नहीं हो तो सब सजगता झूठी है। क्यों? क्योंकि तुम्हारा मन सबको प्रतिबिंबित कर सकता है। लेकिन वह तुम्हें प्रतिबिंबित नहीं कर सकता। और अगर तुम्हें अपना बोध है तो तुम मन के पार चले गए।
तुम्हारा आत्म-स्मरण तुम्हारे मन के प्रतिबिंबित नहीं हो सकता, क्योंकि तुम मन के पीछे हो। मन उन्हीं चीजों को प्रतिबिंबित करता है जो उसके सामने होती है। तुम केवल दूसरों को देख सकते हो। तुम अपने को नहीं देख सकेत। तुम्हारी आंखें सबको देख सकती है। लेकिन अपने को नहीं देख सकती। अगर तुम अपने को देखना चाहो तो तुम्हें दर्पण की जरूरत होगी। दर्पण में ही तुम अपने आप को देख सकते हो। लेकिन उसके लिए तुम्हें दर्पण के सामने खड़ा होना होगा। तुम्हारा मन दर्पण है तो वह सारे संसार को प्रतिबिंबित कर सकता है। लेकिन तुम्हें प्रतिबिंबित नहीं कर सकता। क्योंकि तुम अपने सामने नहीं खड़े हो सकते। तुम सदा पीछे हो, दर्पण के पीछे हो।

यह विधि कहती है कि कुछ भी करते हुए—गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए—यह बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत को आविर्भूत कर लो। आपने भीतर उसे आविष्कृत कर लो जो सतत प्रवाह है, उर्जा है, जीवन है, शाश्वत है।

लेकिन हमें अपना बोध नहीं है। पश्चिम में गुरजिएफ ने आत्म-स्मरण का प्रयोग एक बुनियादी विधि के रूप में किया। वह आत्म-स्मरण इसी सूत्र से लिया गया है। और गुरजिएफ की सारी साधना इसी एक सूत्र पर आधारित है। सूत्र है कि तुम कुछ भी करते हुए अपने को स्मरण रखो।

यह बहुत कठिन होगा। यह सरल मालूम होता है। लेकिन तुम भूल-भूल जाओगे। तीन या चार सेकेंड के लिए भी तुम अपना स्मरण नहीं रख सकते। तुम्हें लगेगा कि मैं अपना स्मरण कर रहा हूं और अचानक तुम किसी दूसरे विचार में चले गए। अगर यह विचार भी उठा कि ठीक, मैं तो अपना स्मरण कर रहा हूं तो तुम चूक गये। क्योंकि यह विचार आत्म-स्मरण नहीं है। आत्म-स्मरण में कोई विचार नहीं होगा। तुम बिलकुल रिक्त और खाली होगे। और आत्म-स्मरण कोई मानसिक प्रक्रिया नहीं है। ऐसा नहीं है कि तुम कहते रहो कि हां, मैं हूं। यह कहते ही कि हां, मैं हूं, तुम चूक गये। मैं हूं, यह सोचना एक

मानसिक कृत्य है। यह अनुभव करो कि में हूं। इन शब्दों को नहीं अनुभव करना है। उसे शब्द मत दो, बस अनुभव करो कि मैं हूं, इन शब्दों को नहीं अनुभव करना है। और शब्द मत दो, बस अनुभव करो कि मैं हूं। सोचो मत, अनुभव करो।

प्रयोग करो। कठिन है, लेकिन अगर तुम प्रयोग में लगन से लगे रहे तो यह घटित होता है। टहलते हुए स्मरण रखो कि मैं हूं। अपने होने को महसूस करो। ऐसा किसी विचार या धारणा को नह लाना है। बस महसूस करना है। मैं तुम्हारा हाथ छूता हूं, या तुम्हारे सिर पर अपना हाथ रखता हूं, तो उसे शब्द मत दो। सिर्फ स्पर्श को अनुभव करो। और इस अनुभव में स्पर्श को ही नहीं, स्पर्शित को भी अनुभव करो। तब तुम्हारी चेतना के तीर में दो फलक होंगे।

तुम वृक्षों की छाया में टहल रहे हो; वृक्ष है, हवा है, उगता सूरज है, यह है तुम्हारे चारो और का संसार और तुम उसके प्रति सजग हो। घूमते हुए क्षण भर के लिए ठिठक जाओ और अचानक स्मरण करो कि मैं हूं, यह शब्द हिन अनुभूति, क्षण मात्र के लिए ही सही। तुम्हें सत्य की एक झलक दे जायेगी। क्षण भर के लिए तुम अपने आस्तितत्व के केंद्र पर फेंक दिये जाते हो। तुम दर्पण के पीछे हो, तुम प्रतिबिंबों के जगत के पार चले गए हो। जब तुम अस्तितत्वगत हो।

और यह प्रयोग तुम किसी भी समय कर सकते हो। इसके लिए न किसी खास जगह की जरूरत है और न किसी समय की। तुम यह नहीं कह सकते कि मेरे पास समय नहीं है। तुम भोजन करते हुए इसका प्रयोग कर सकते हो। तुम स्नान करते हुए इसका प्रयोग कर सकते हो। चलते हुए या बैठे हुए। किसी समय भी यह प्रयोग कर सकते हो। कोई भी काम करते हुए अचानक अपना स्मरण करो और फिर अपने होने की उस झलक को जारी रखने की चेष्टा करो।

यह कठिन होगा। एक क्षण लगेगा कि यह रहा और दूसरे क्षण यह विदा हो जाएगा। कोई विचार प्रवेश कर जायेगा। कोई प्रतिबिंब, कोई चित्र मन में तैर जायेगा। और तुम उसमें उलझ जाओगे। उससे दुःखी मत होना, निराश मत होना। ऐसा होता है, क्योंकि हम जन्मों-जन्मों से प्रतिबिंबों में उलझे रहे है। यह यंत्रवत प्रक्रिया बन गई है। अविलंब आप ही आप हम प्रतिबिंबों में उलझ जाते हो।

लेकिन अगर एक क्षण के लिए भी तुम्हें झलक मिल गई तो वह प्रारंभ के लिए काफी है। और वह क्यों काफी है?

क्योंकि तुम्हें कभी दो क्षण एक साथ नहीं मिलेंगे। सदा एक क्षण ही तुम्हारे हाथ में होता है। और अगर तुम्हें एक क्षण के लिए भी झलक मिल जाए तो तुम उसमें ज्यादा बने रह सकते हो। सिर्फ चेष्टा की जरूरत है। सतत चेष्टा की। तुम्हें एक क्षण ही तो दिया जाता है। दो क्षण तो कभी एक साथ नहीं आते। दो क्षणों की फिक्र मत करो। तुम्हें सदा एक क्षण ही मिलेगा। और अगर तुम्हें एक क्षण के लिए बोध हो सके तो जीवन भर के लिए बोध बना रह सकता है। अब सिर्फ प्रयत्न चाहिए। और यह प्रयोग सारा दिन चल सकता है। जब भी स्मरण आए, अपने को स्मरण करो।

''हे कमलाक्षी, हे सुभगे, गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए, यह बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत अविभूत होता है।

जब सूत्र कहता है कि ''बोध बना रहे कि मैं हूं'', तो तुम क्या करोगे? क्या तुम याद करोगे कि मेरा नाम रमा है, या जीसस है, या और कुछ है? क्या तुम स्मरण करोगे कि मैं फलां परिवार का हूं, फलां धर्म का हूं, फलां परंपरा का हूं। क्या तुम याद करोगे कि मैं अमुक देश का हूं? अमुक जाती का हूं, अमुक मत का हूं, क्या तुम स्मरण करोगे कि मैं कम्युनिस्ट हूं, या हिंदू हूं, ईसाई हूं? तुम क्या स्मरण करोगे?

यह सूत्र कहता है कि ''बोध बना रहे कि मैं हूं'' इतना ही कहता है कि मैं हूं। किसी नाम की जरूरत नहीं है। किसी देश कि जरूरत नहीं है। सिर्फ होने की जरूरत है। कि तुम हो। तो अपने से मत कहो कि तुम कौन हो। यह मत कहो कि मैं यह हूं, वह हूं। तुम हो, इस अस्तितत्व को स्मरण करो।

लेकिन यह कठिन हो जाता है। क्योंकि हम कभी मात्र अस्तित्व को स्मरण नहीं करते हम सदा उसे स्मरण करते है जो एक लेबल है, पदवी है, नाम है, वह अस्तित्व नहीं है। जब भी तुम अपने बारे में सोचते हो, तुम अपने नाम, धर्म देश, इत्यादि की सोचते हो, तुम कभी इस मात्र आस्तित्व की नहीं सोचते हो कि मैं हूं।

तुम इसकी साधना कर सकते हो। अपनी कुर्सी में या किसी पेड़ के नीचे विश्राम पूर्वक बैठ जाओ, सब कुछ भूल जाओ और इस अपने होने पन को अनुभव करो। न ईसाई हो, न हिंदू हो, ने बौद्ध हो, न जैन हो, न अंग्रेज न, न जर्मन, बस तुम हो। इसकी प्रतीति भर हो, भव भर हो। और तब तुम्हें यह याद रखना आसान होगा कि मैं हूं, जो यह सूत्र कहता है।

''बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत आविर्भूत होता है।''

जिस क्षण तुम्हें बोध होता है कि मैं कौन हूं, उसी क्षण तुम्हें शाश्वत की धारा में फेंक दिया जाता है। जो असत्य है, उसकी मृत्यु निश्चित है। केवल सत्य शेष रह जाता है।

यही कारण है कि हम मृत्यु से इतना डरते है। क्योंकि झूठ को मिटना ही है। असत्य सदा नहीं रह सकता। और हम असत्य से बंधे है। असत्य से तादात्म्य किए बैठे है। तुममें जो हिंदू है। वह तो मरेगा—जो-जो नाम रूप है वह मरेगा।

लेकिन तुम्हारे भीतर जो सत्य है। जो अस्तित्वगत है। जो आधारभूत है, वह अमृत है। जब नाम रूप भूल जाते है और तुम्हारी दृष्टि भीतर क अनाम और अरूप पर पड़ती है, तब तुम शाश्वत में प्रवेश कर गए।

''बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत आर्विर्भूत होता है।''
यह विधि अत्यंत कारगर विधियों में से एक है। और हजारों साल से सदगुरूओं ने इका प्रयोग किया है। बुद्ध इसे उपयोग में लाए, महावीर लाए, जीसस लाए। और आधुनिक जमाने में गुरूजिएफ ने इसका उपयोग किया। सभी विधियों में इस विधि की क्षमता सर्वाधिक है। इसका प्रयोग करो। यह समय लेगा, महीनों लग सकते है।

जब ओस्पेंस्की गुरूजिएफ के पास साधना कर रहा था तो उसे तीन म4हीने तक इस बात के लिए बहुत श्रम करना पडा कि आत्मा-स्मरण की एक झलक मिले। निरंतर तीन महीने तक ओस्पेंस्की एक एकांत घर में रहकर एक ही प्रयोग करता रहा—आत्म स्मरण का प्रयोग। तीस व्यक्तियों ने उस प्रयोग में हिस्सा लिया। और पहले ही सप्ताह के खत्म होते-होते सत्ताईस व्यक्ति भाग खड़े हुए। सिर्फ तीन बचे। सारा दिन वे और कोई काम नहीं करते थे। सिर्फ स्मरण करते थे कि मैं हूं। सत्ताईस लोगों को ऐसा लगा कि इस प्रयोग से हम पागल हो जाएंगे। हमारे विक्षिप्त होने के सिवाय कोई चारा नहीं है। और वे गायब हो गये। वे फिर कभी नहीं वापस आये। वे गुरूजिएफ से फिर कभी नहीं मिले।

हम जैसे है, असल में हम विक्षिप्त है। पागल ही है। जो नहीं जानते है कि हम क्या है, हम कौन है, वे पागल ही है। लेकिन हम इस विक्षिप्तता को ही स्वास्थ्य माने बैठे है। जब तुम पीछे लौटने की कोशिश करोगे। जब तुम सत्य से संपर्क साधोगे तो वह विक्षिप्तता जैसा पागलपन जैसा ही मालूम पड़ेगा। हम जैसे है, जो है उसकी पृष्टभूमि से सत्य ठीक विपरीत है। और अगर तुम जैसे हो उसको ही स्वास्थ्य मानते हो तो सत्य जरूर पागलपन मालूम पड़ेगा।

लेकिन तीन व्यक्ति प्रयोग में लगे रहे। उन तीन में पी. डी. ओस्पेंस्की भी एक था। वे तीन महीने तक प्रयोग में जुटे रहे। पहले महीने के बाद उन्हें मात्र होने की—कि मैं हूं, झलक मिलने लगी। दूसरे महीने के बाद मैं भी गिर गया और उन्हें मान होने पन की हूं—पन की झलक मिलने लगी। इस झलक में मात्र होना था। मैं भी नहीं था, क्योंकि मैं भी एक संज्ञा है। शुद्ध अस्तित्व न मैं है न तू, वह बस है। और तीसरे महीने के बाद हूं, पन का भाव भी विसर्जित हो गया। क्योंकि हूं-पन का भाव भी एक शब्द है। यह शब्द भी विलीन हो जाता है। तब तुम बस हो और तब तुम जानते हो कि तुम कौन हो।

इस घड़ी के आने के पूर्व तुम नहीं पूछ सकते कि मैं कौन हूं। या तुम सतत पूछते रह सकते हो कि मैं कौन हूं। और मन जो भी उत्तर देगा वह गलत होगा। अप्रासंगिक होगा। तुम पूछते जाओ कि मैं कौन हूं, मैं कौन हूं, एक क्षण आएगा जब तुम यह प्रश्न नहीं पूछ सकते। पहले सब उत्तर गिर जाते है और फिर खुद प्रश्न भी गिर जाता है। और खो जाता है। सब कुछ कि मैं कौन हूं। गिर जाता है, तुम जानते हो कि तुम कौन हो।

गुरजिएफ ने एक सिरे से इस विधि का प्रयोग किया: सिर्फ यह स्मरण रखना है कि मैं हूं। रमण महर्षि ने इसका प्रयोग दूसरे सिरे से किया। उन्होंने इस खोज को कि ''मैं कौन हूं।'' पूरा ध्यान बन दिया। उन्होंने इस खोज को कि ''मैं कौन हूं।'' और इसके उत्तर में मन जो भी कहे उस पर विश्वास मत करो। मन कहेगा कि क्या व्यर्थ का सवाल उठ रहे हो। मन कहेगा कि तुम यह हो, तुम वह हो, कि तुम मर्द हो। तुम औरत हो। तुम शिक्षित हो, अशिक्षित हो, कि गरीब हो, अमीर हो, मन उत्तर दिए जाता है। लेकिन तुम प्रश्न पूछते चले जाना। कोई भी उत्तर मत स्वीकार करना। क्योंकि मन के लिए दिए गये सभी उत्तर गलत होगे। वे उत्तर तुम्हारे झूठे हिस्से से आते है। वे शब्दों से आते है। वे शास्त्रों से आते है। वे तुम्हारे संस्कारों से आते है, वे समाज से आते है। सच तो यह है कि वे सब के सब दूसरों से आते है। तुम्हारे नहीं है। तुम पूछे ही चले जाओ। इस मैं कौन हूं, के तीन को गहरे से गहरे में उतरने दो।

एक क्षण आएगा जब कोई उत्तर नहीं आएगा। वह सम्यक क्षण होगा। अब तुम उत्तर के करीब हो। जब कोई उत्तर नहीं आता है, तुम उत्तर के करीब होते हो। क्योंकि अब मन मौन हो रहा है। अब तुम मन से बहुत दूर निकल गए हो। जब कोई उत्तर नहीं होगा और जब तुम्हारे चारो और एक शून्य निर्मित हो जाएगा तो तुम्हारा प्रश्न पूछना व्यर्थ मालूम होगा।

अचानक तुम्हारा प्रश्न भी गिर जायेगा। और प्रश्न के गिरते ही मन का आखिरी हिस्सा भी गिर गया। खो गया क्योंकि यह प्रश्न भी मन का ही था। वे उत्तर भी मन के थे और यह प्रश्न भी मन का था। दोनों विलीन हो गए। अब तुम बस हो।

इसे प्रयोग करो। अगर तुम लगन से लगे रहे तो पूरी संभावना है कि यह विधि तुम्हें सत्य की झलक दे जाए। और सत्य शाश्वत है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—35

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—54 (ओशो)

आत्म-स्मरण की दूसरी विधि–

''जहां-जहां, जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो, उसे वास्तविक करो।''– शिव

''जहां-जहां, जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो, उसे वास्तविक करो।''
तुम्हें प्यास लगी है, तुम पानी पीते हो, उससे एक सूक्ष्म संतोष प्राप्त होता है। पानी को भूल जाओ। प्यास को भी भूल जाओ और जो सूक्ष्म संतोष अनुभव हो रहा है उसके साथ रहो। उस संतोष से भर जाओ, बस संतुष्ट अनुभव करो।

लेकिन मनुष्य का मन बहुत उपद्रवी है। वह केवल असंतोष और अतृप्ति अनुभव करता है। वह कभी संतोष को अनुभव नहीं करता। अगर तुम असंतुष्ट हो तो तुम उसे अनुभव करोगे और अंसतोष से भर जाओगे। जब तुम प्यासे हो तो तुम्हें प्यास अनुभव होती है। तुम्हारा गला सूखता है। और अगर प्यास और बढ़ती है तो वह पूरे शरीर में महसूस होने लगती है। और एक क्षण ऐसा भी आता है जब तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि मैं प्यासा हूं, तुम्हें लगता है कि मैं प्यास ही हो गया। अगर तुम किसी मरुस्थल में हो और पानी मिलने की कोई भी आशा नहीं हो तो तुम्हें ऐसा नहीं लगेगा कि मैं प्यासा हूं, तुम्हें लगेगा की मैं प्यास ही हो गया हूं।
असंतोष अनुभव में आता है, दुःख और संताप अनुभव में आते है। जब तुम दुःख में होते हो तो तुम दुःख ही बन जाते हो। यही कारण है कि पूरा जीवन नरक हो जाता है। तुमने कभी विधायक को नहीं अनुभव किया। तुमने सदा नकारात्मक को अनुभव किया है। जीवन वैसा दुःख नहीं है जैसा हमने उसे बना रखा है। दुःख हमारी महज व्याख्या है।

बुद्ध यहीं और अभी सुख में है। इसी जीवन में सुखी है। कृष्ण नाच रहे है और बांसुरी बजा रहे है। इसी जीवन में यही और अभी , जहां हम दुःख में है, वही कृष्ण नाच सकते है। जीवन न दुःख है और न जीवन आनंद है, दुःख और आनंद हमारी व्याख्याएं है। हमारी दृष्टियां है, हमारे रुझान है, हमारे देखने के ढंग है। यह तुम्हारे मन पर निर्भर है कि वह जीवन को किस तरह लेता है।

अपने ही जीवन को स्मरण करो। और विश्लेषण करो। क्या तुमने कभी संतोष के, परितृप्ति के, सुख के, आनंद के क्षणों का हिसाब रखा है? तुमने उसका कोई हिसाब नहीं रखा है। लेकिन तुमने अपने दुःख, पीड़ा और संताप का खूब हिसाब रख है। और तुम्हारे पास इसका बड़ा संग्रह है। तुम एक संग्रहीत नरक हो और यह तुम्हारा चुनाव है। कोई दूसरा तुम्हें इस नरक में नहीं ढकेल रहा है। यह तुम्हारा ही चुनाव है। मन नरक को पकड़ता है, उसका संग्रह करता है और फिर खुद नकार बन जाता है। और फिर वह दुस्चक्र हो जाता है। तुम्हारे चित में जितना नकार इकट्टा होता है। तुम उतने ही नकारात्मक हो जाते हो।

और फिर नकार का संग्रह बढ़ता जाता है। समान-समान को आकर्षित करता है। और यह सिलसिला जन्मों-जन्मों से चल रहा है। तुम अपनी नकारात्मक दृष्टि के कारण सब कुछ चूक रहे हो।

यह विधि तुम्हें विधायक दृष्टि देती है। सामान्य मन और उसकी प्रक्रिया के बिलकुल विपरीत है यह विधि। जब भी संतोष मिलता हो, जिस किसी कृत्य में भी संतोष मिलता हो। उसे वास्तविक करो। उसे अनुभव करो, उसके साथ हो जाओ। यह संतोष किसी बड़े विधायक अस्तित्व की झलक बन सकता है।

यहां हर चीज महज एक खिड़की है। अगर तुम किसी दुःख के साथ तादात्म्य करते हो तो तुम दुःख की खिड़की से झांक रहे हो। और दुःख और संताप की खिड़की नरक की तरह ही खुलती है। और अगर तुम किसी संतोष के क्षण के साथ आनंद और समाधि के क्षण के साथ एकात्म होते हो तो तुम दूसरी खिड़की खोल रहे हो। अस्तित्व तो वही है, लेकिन तुम्हारी खिड़कियाँ अलग-अलग है।

''जहां-जहां, जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो, उसे वास्तविक करो।''

बेशर्त, जहां कही भी संतोष मिले, उसे जीओं। तुम किसी मित्र से मिलते हो और तुम्हें प्रसन्नता अनुभव होती है। तुम्हें अपनी प्रेमिका या अपने प्रेमी से मिलकर सुख अनुभव होता है। इस अनुभव को वास्तविक बनाओ, उस क्षण सुख ही हो जाओ और उस सुख को द्वार बना लो। तब तुम्हारा मन बदलने लगेगा। और तब तुम सुख इकट्ठा करने लगोगे। तब तुम्हारा मन विधायक होने लगेगा। और वही जगह भिन्न दिखने लगेगी।

झेन संत बोकोजू ने कहा है कि जगत वही है, लेकिन कुछ भी वही नहीं है, क्योंकि मन वही नहीं है। सब कुछ वही रहता है, लेकिन कुछ भी वहीं नहीं रहता है, क्योंकि मैं बदल जाता हूं।

तुम संसार को बदलने की कोशिश करते हो, लेकिन तुम कछ भी करो। जगत वही का वही रहता है। क्योंकि तुम वही के वही रहते हो। तुम एक बड़ा घर बना लेते हो, तुम्हें एक बड़ी कार मिल जाती है। तुम्हें सुंदर पत्नी मिल जाती है। लेकिन उससे कुछ भी नहीं बदलेगा। बड़ा घर बड़ा नहीं होगा। सुंदर पत्नी सुंदर नहीं होगी। बड़ी कार भी छोटी ही रहेगी। क्योंकि तुम वहीं के वहीं हो। तुम्हारा मन, तुम्हारा रुझान, सब कुछ वहीं के वही है। तुम चीजें तो बदल लेते हो लेकिन अपने को नहीं बदलते। एक दुःखी आदमी झोपड़ी को छोड़कर महल में रहने लगता है, लेकिन अपने को नहीं बदलता, तो पहले वह झोंपड़े में दुःखी था, अब वह महल में दुःखी है। उसका दुःख महल का दुःख होगा, लेकिन वह दुःखी होगा।

तुम अपने साथ अपने दुःख लिए चल रहे हो और तुम जहां भी जाओगे अपने साथ रहोगे। इसलिए बुनियादी तौर पर बाहरी बदलाहट नहीं है। वह बदलाहट का आभास है। तुम्हें लगता है कि बदलाहट हुई, लेकिन दरअसल बदलाहट नहीं होती है। केवल एक बदलाहट, केवल एक क्रांति, केवल एक आमूल रूपांतरण संभव है और वह यह कि तुम्हारा चित नकारात्मक से विधायक हो जाए। अगर तुम्हारी दृष्टि दुःख से बंधी है तो तुम नरक में हो और अगर तुम्हारी दृष्टि सुख से जुड़ी है तो वही नरक स्वर्ग हो जाता है। इसे प्रयोग करो, यह तुम्हारे जीवन की गुणवता को रूपांतरित कर देगा।

लेकिन तुम तो गुणवता में नहीं, परिमाण में उत्सुक हो कि कैसे ज्यादा धन हो जाए। तुम धन का की गुणवता में नहीं, उसके परिणाम में, मात्रा में उत्सुक हो और एक अमीर आदमी दरिद्र हो सकता है। सच्चाई यही है, क्योंकि जो व्यक्ति जीजों और जीजों के परिमाण में उत्सुक है वह इस बात में सर्वथा अपरिचित है कि उसके भीतर एक और आयाम है, यह गुणवत्ता का आयाम है। और यह आयाम बदलता है जब तुम्हारा मन विधायक होता है।

तो कल सुबह से दिन भर यह स्मरण रहे: जब भी कुछ सुंदर और संतोषजनक हो, जब भी कुछ आनंददायक अनुभव आए, उसके प्रति बोधपूर्ण होओ। चौबीस घंटों में ऐसे अनेक क्षण आते है—सौंदर्य, संतोष और आनंद के क्षण—ऐसे अनेक क्षण आते है जब स्वर्ग तुम्हारे बिलकुल करीब होता है। लेकिन तुम नरक से इतने आसक्त हो, इतने बंधे हो कि उन क्षणों को चूकते चले जाते हो। सूरज उगता है, फूल खिलते है, पक्षी चहचहाते है, पेड़ों से होकर हवा गुजरती है। वैसे क्षण घटित हो रहे है। एक बच्चा निर्दोष आंखों से तुम्हें निहारता है। और तुम्हारे भी एक सूक्ष्म सुख का भाव उदित हो जाता है। या किसी की मुस्कुराहट तुम्हें आह्लाद से भर देती है।

अपने चारों ओ देखो ओ उसे खोजों जो आनंददायक है और उससे पूरित हो जाओ, भर जाओ। उसका स्वाद लो, उससे भर जाओ और उसे अपने पूरे प्राणों पर छा जाने दो, उसके साथ एक हो जाओ। उसकी सुगंध तुम्हारे साथ रहेगी। वह अनुभूति पूरे दिन तुम्हारे भीतर गूँजती रहेगी। और वह अनुगूँज तुम्हें ज्यादा विधायक होने में सहयोगी होगी।

यह प्रक्रिया भी और-और बढ़ती जाती है। यदि सुबह शुरू करो तो शाम तक तुम सितारों के प्रति, चाँद के प्रति, रात के प्रति, अंधेर के प्रति, ज्यादा खुले होगे। इसे एक चौबीस घंटे प्रयोग की तरह करो और देखो कि कैसा लगता है। और एक बार तुमने जान लिया कि विधायकता तुम्हें दूसरे ही जगत में ले जाती है। तो तुम उससे कभी अलग नहीं होगे। तब तुम्हारा पूरा दृष्टिकोण नकार से विधायक में बदल जाएगा। तब तुम संसार को एक भिन्न दृष्टि से, एक नयी दृष्टि से देखोगें।

मुझे एक कहानी याद आती है। बुद्ध का एक शिष्य अपने गुरु से विदा ले रहा है। शिष्य का नाम था पूर्ण काश्यप। उसने बुद्ध से पूछा कि मैं आपका संदेश लेकिर कहां जाऊं? बुद्ध ने कहा कि तुम खुद ही चुन लो। पूर्ण काश्यप ने कहा कि मैं बिहार के एक सुदूर हिस्से की तरफ जाऊँगा—उसका नाम सूखा था—उसका नाम सूख था—मैं सूखा प्रांत की तरफ जाऊँगा।

बुद्ध ने कहा कि अच्छा हो कि तुम अपना निर्णय बदल लो, तुम किसी और जगह जाओ क्योंकि सूखा प्रांत के लोग बड़े क्रूर, हिंसक, और दुष्ट है। और अब तक कोई व्यक्ति वहां उन्हें अहिंसा, प्रेम और करूणा का उपदेश सुनाने नहीं गया है। इसलिए अपना चुनाव बदल डालों। पर पूर्ण काश्यप ने कहा: मुझे जाने की आज्ञा दें, क्योंकि वहां कोई नहीं गया है और किसी को तो जाना ही चाहिए।

बुद्ध ने कहा की इससे पहले मैं तुम्हें वहां जाने की आज्ञा दूँ। मैं तुमसे तीन प्रश्न पूछना चाहता हूं। अगर उस प्रांत के लोग तुम्हारा अपमान करें तो तुम्हें कैसा लगेगा? पूर्ण काश्यप ने कहा: मैं समझूंगा कि वे बड़े अच्छे लोग है। जो केवल मेरा अपमान कर रहे है, वे मुझे मार भी सकते थे। बुद्ध ने कहा अब दूसरा प्रश्न, अगर वे लोग तुम्हें मारें-पीटें भी तो तुम्हें कैसा लगेगा? पूर्ण काश्यप ने कहा: मैं समझूंगा कि वे बड़े अच्छे लोग है। वे मेरी हत्या भी कर सकते थे। लेकिन वे सिर्फ मुझे पीट रहे है। बुद्ध ने कहा: अब तीसरा प्रश्न, अगर वे लोग तुम्हारी हत्या कर दें तो मरने के क्षण में तुम कैसा अनुभव करोगे। पूर्ण काश्यप ने कहा: '' मैं आपको और उन लोगों को धन्यवाद दूँगा। अगर वे मेरी हत्या कर देंगे तो वे मुझे उस जीवन से मुक्त कर देंगे जिसमें न जाने कितनी गलतियां हो सकती थी। वे मुझे मुक्त कर देंगे इसलिए मैं अनुगृहीत अनुभव करूंगा।

तो बुद्ध ने कहा: '' अब तुम कहीं भी जा सकते हो, सारा संसार तुम्हारे लिए स्वर्ग है। अब कोई समस्या नहीं है। सारा जगत तुम्हारे लिए स्वर्ग है। तुम कहीं भी जा सकते हो।

ऐसे चित के साथ जगत में कहीं भी कुछ भी गलत नहीं हो सकता। और तुम्हें चित के साथ कुछ भी सम्यक नहीं हो सकता। ठीक नहीं हो सकता। सकारात्मक चित के साथ सब कुछ गलत हो जाता है। इसलिए नहीं क्योंकि कुछ गलत है, बल्कि इसलिए क्योंकि नकारात्मक चित को गलत ही दिखाई देता है।

''जहां-जहां जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो, उसे वास्तविक करो।''

यह एक बहुत ही नाजुक प्रक्रिया है, लेकिन बहुत मीठी भी है। और तुम इसमें जितनी गति करोगे, उतनी मीठी होती जाएगी। तुम एक नयी मिठास और सुगंध से भर जाओगे। बस सुंदर को खोजों, कुरूप भी सुंदर हो जाता है। खुशी क्षण की खोज करो, और तब एक क्षण आता है जब कोई दुःख नहीं रह जाता। आनंद की फ्रिक करो, और देर-अबेर दुःख तिरोहित हो जाता है। विधायक चित के लिए सब कुछ सुंदर है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—35

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—55 (ओशो)

आत्म-स्मरण की तीसरी विधि—

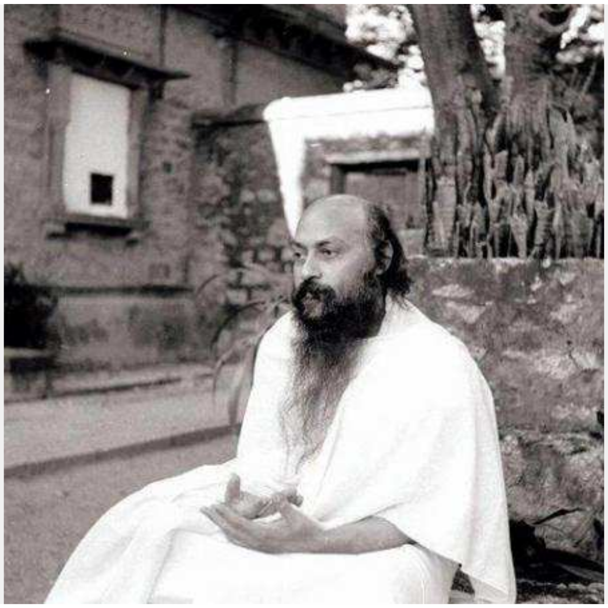

'जब नींद अभी नहीं आयी हो और बाह्य जागरण विदा हो गया हो............शिव

''जब नींद अभी नहीं आयी हो और बाह्य जागरण विदा हो गया हो, उस मध्य बिंदू पर बोधपूर्ण रहने से आत्मा प्रकाशित होती है।''

तुम्हारी चेतना में कई मोड़ आते है, मोड़ के बिंदु आते है। इन बिंदुओं पर तुम अन्य समयों की तुलना में अपने केंद्र के ज्यादा करीब होते हो। तुम कार चलाते समय गियर बदलते हो और गियर बदलते हुए तुम न्यूट्रल से गुजरते हो। यह न्यूट्रल गियर निकटतम है।

सुबह जब नींद विदा हो रही होती है और तुम जागने लगते हो। लेकिन अभी जागे नहीं हो, ठीक उस मध्य बिंदु पर तुम न्यूट्रल गियर में होते हो। यह एक बिंदु है जहां तुम न सोए हो और न जागे हो, ठीक मध्य में हो; तब तुम न्यूट्रल गियर में हो। नींद से जागरण में आते समय तुम्हारी चेतना की पूरी व्यवस्था बदल जाती है। वह एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था में छलांग लेती है। और इन दोनों के बीच में कोई व्यवस्था नहीं होती, एक अंतराल होता है। इस अंतराल में तुम्हें अपनी आत्मा की एक झलक मिल सकती है।

वही बात फिर रात में घटित होती है जब तुम अपनी जाग्रत व्यवस्था से नींद की व्यवस्था में, चेतन से अचेतन में छलांग लेते हो। तब फिर एक क्षण के लिए कोई व्यवस्था नहीं होती है। तुम पर किसी व्यवस्था की पकड़ नहीं होती है। क्योंकि तब तुम एक से दूसरी व्यवस्था में छलांग लेते हो। इन दोनों के मध्य में अगर तुम सजग रह सकें, बोधपूर्ण रह सके, इन दोनों के मध्य में अगर तुम अपना स्मरण रख सके, तो तुम्हें अपने सच्चे स्वरूप की झलक मिल जाएगी।

तो इसके लिए क्या करें? नींद में उतरने के पहले विश्राम पूर्ण होओ और आंखे बंद कर लो। कमरे में अँधेरा कर लो। आंखे बंद कर लो। और बस प्रतीक्षा करो। नींद आ रही है। बस प्रतीक्ष करो। कुछ मत करो, बस प्रतीक्षा करो। तुम्हारा शरीर शिथिल हो रहा है। तुम्हारा शरीर भारी हो रहा है। बस शिथिलता को, भारीपन को महसूस करो। नींद की अपनी ही व्यवस्था है, वह काम करने लगती है। तुम्हारी जाग्रत चेतना विलीन हो रही है। इसे स्मरण रखो, क्योंकि वह क्षण बहुत सूक्ष्म है। वह क्षण परमाणु सा छोटा होता है। इस चूक गये तो चूक गये। वह कोई बड़ा अंतराल नहीं है। बहुत छोटा है। यह क्षण भर का अंतराल है, जिसमें तुम जागरण से नींद में प्रवेश कर जाते हो। तो बस पूरी सजगता से प्रतीक्षा करो। प्रतीक्षा किए जाओ।

इसमे थोड़ा समय लगेगा। कम से कम तीन महीने लगते है। तब एक दिन तुम्हें उस क्षण की झलक मिलेगी। जो ठीक बीच में है। तो जल्दी मत करो। यह अभी ही नहीं होगा, यह आज रात ही नहीं होगा। लेकिन तुम्हें शुरू करना है और महीनों प्रतीक्षा करनी है। साधारण: तीन महीने में किसी दिन यह घटित होगा। यह रोज ही घटित हो रहा है। लेकिन तुम्हारी सजगता और अंतराल का मिलन आयोजित नहीं किसा जा सकता। वह घटित हो ही रहा है। तुम प्रतीक्षा किए जाओ और किसी दिन वह घटित होगा। किसी दिन तुम्हें अचानक यह बोध होगा कि मैं न जागा हूं और न सोया हूं।

यह एक बहुत विचित्र अनुभव है, तुम उससे भयभीत भी हो सकते हो। अब तक तुमने दो ही अवस्थाएं जानी है। तुम्हें जागने का पता है, तुम्हें अपनी नींद का पता है। लेकिन तुम्हें यह नी पता है कि तुम्हारे भीतर एक तीसरा बिंदू भी है। जब तुम न जागे हो और सोये हो। इस बिंदू के प्रथम दर्शन पर तुम भयभीत भी हो सकते हो। आंतरिक भी हो सकते हो। भयभीत मत होओ। आतंरिक मत होओ। जो भी चीज इतनी नयी होगी। अनजानी होगी। वह जरूर भयभीत करेगी। क्योंकि यह क्षण जब तुम्हें इसका बार-बार अनुभव होगा। तुम्हें एक और एहसास देगा कि तुम न जीवित हो और नक मृत, कि तुम न यह हो और न वह। यह अतल खाई जैसा है।

नींद और जागरण की व्यवस्थाएं दो पहाड़ियों की भांति है, तुम एक से दूसरे पर छलांग लगाते हो। लेकिन यदि तुम उसके मध्य में ठहर जाओ तो तुम अतल खाई में गिर जाओगे। और इस खाई का कहीं अंत नहीं है। तुम गिरते जाओगे। गिरते ही जाओगे।

सूफियों ने इस विधि का उपयोग किया है। लेकिन जब वे किसी साधक को यक विधि देते है तो सुरक्षा के लिए वे साथ ही एक और विधि भी देते है। सूफी साधना में इस विधि के दिये जाने से पहले दूसरी विधि यह दि जाती है। कि तुम बंद आंखों से कल्पना करो, कि तुम अतल कुएं में गिर रहे हो। और गिरते ही जाओ। गिरते ही जाओ। सतत गिरते ही जाओ। यह कुआं अतल है, तुम कहीं रूक नहीं सकते। यह गिरना कही रूकने वाला नहीं है। तुम रूक सकते हो, आंखें खोलकर कह सकते हो। कि अब और नहीं। लेकिन यह गिरना अपने आप में कही रूकने वाला नहीं है। अगर तुम गिरते रहे तो कुआं अतल है। और वह और-और अंधकारपूर्ण होता जाएगा।

सूफी साधना में यह अभ्यास, अतल कुएं में गिरने का अभ्यास पहले कराया जाता है। और यह अच्छा है। उपयोगी है। अगर तुमने इसका अभया किया और अगर तुमने इसके सौंदर्य को समझा, इसकी शांति को जाना, अनुभव किया, तो तुम जितना चाहे गहरे कुएं में उतर सकते हो। ज्यादा शांत हो सकते हो। संसार बहुत पीछे छूट जायेगा। और तुम्हें लगेगा कि मैं बहुत दूर, बहुत दूर, निकल आया हूं। अंधकार के साथ शांति बढ़ती है। और क्योंकि नीचे गहरे में कहीं कोई तल नहीं है। इसलिए भय पकड़ सकता है। लेकिन तुम्हें मालूम है कि यह सिर्फ कल्पना है, इसलिए तुम इसे जारी रख सकते हो।

इस अभ्यास के द्वारा तुम इस विधि के लिए तैयार होते हो। और फिर जब तुम जागरण और नींद के अंतराल के कुएं में गिरते हो तो यह कल्पना नहीं है, यह यथार्थ है। और यह कुआं भी अतल है। अनंत है। इसीलिए बुद्ध ने इसे शून्य कहां है, उसका अंत नहीं है। और तुम एक बार इसे जान गए तो तुम भी अनंत हो गये।

''जब नींद अभी नहीं आयी हो और बाहय जागरण विदा हो गया हो, उस मध्य बिंदु पर बोधपूर्ण रहने से आत्मा प्रकाशित होती है।''

तब तुम जानते हो कि मैं कौन हूं, मेरा सच्चा स्वभाव क्या है, मेरा प्रमाणिक अस्तित्व क्या है। जागते हुए झूठे हो। और यह तुम भली भांति जानते हो। जब तुम जागे हुए हो, तुम झूठे बने रहते हो। तुम उस समय मुस्कराते हो, जब कि आंसू बहाना ज्यादा सच होता है। तुम्हारे आंसू भी भरोसे योग्य नहीं है। वे भी दिखाऊ हो सकते है। नकली हो सकते है। होने चाहिए इसलिए हो सकते है। तुम्हारी मुस्कुराहट झूठी है। जो लोग चेहरे पढ़ना जानते है वे कह सकते है कि यह मुस्कुराहट रंग-रोगन से ज्यादा नहीं है। भीतर उसकी कोई जड़ें नहीं है। यह मुस्कुराहट बस तुम्हारे चेहरे पर है, होठो पर है। ऊपरी है। यह तुम्हारे प्राणों से नहीं उठी है। उपर से ओढ़ी गई है। यह थोपी गई है।

तुम जो कहते हो, जो भी करते हो, सब नकली है। यह जरूरी नहीं है कि तुम यह नकली व्यापार जान बूझकर करते हो। यह जरूरी नहीं है उसके प्रति तुम सर्वथा अंजान भी हो सकते हो। तुम अंजान हो। अन्यथा इस नकली मूढ़ता को सतत जारी रखना बहुत कठिन है। यह व्यापार स्वचालित है। यह झूठ चलता रहता है जब तुम जागे हुए हो और यह झूठ तब भी चलता रहा है जब तुम सोए हुए हो—लेकिन तब और ढंग से चलता है। तुम्हारे सपने प्रतीकात्मक है, सच नहीं। हैरानी की बात है कि तुम अपने सपनों मे भी सच्चे नहीं हो, तुम अपने सपनों में भी भयभीत हो। और तुम प्रतीक निर्मित करते हो।

अब मनोविश्लेषक तुम्हारे सपनों का विश्लेषण करता रहता है। यही उसका धंधा है। और यह एक भारी धंधा बन गया है। क्योंकि तुम खुद अपने सपनों का विश्लेषण नहीं कर सकते हो। सपने प्रतीकात्मक वे सच नहीं है। वे सिर्फ प्रतीकों के द्वारा कुछ कहते है। अगर तुम अपनी मां की हत्या करना चाहते हो, उसके छुटकारा चाहते हो। तो तुम सपने में उसकी हत्या नहीं करोगे। तुम उसकी जगह किसी ऐसे व्यक्ति की हत्या कर दोगे, जो देखने में तुम्हारी मां जैसा होगा। तुम अपनी चाचा या किसी और की हत्या कर दोगे। तुम अपने सपने में भी प्रमाणिक नहीं हो सकते। यह कारण है कि मनोविश्लेषण की जरूरत पड़ती हे। एक पेशेवर व्यक्ति की जरूरत पड़ती है। जो तुम्हारे सपनों की व्याख्या कर सके। लेकिन तुम सपने को भी एक ढंग से रख सकते हो कि मनोविश्लेषण भी धोखा खा जाए।

तुम्हारे सपने भी सर्वथा झूठे है। लेकिन अगर तुम जागते हुए सच्चे रह सको तो तुम्हारे सपने सच हो सकते है, तब वे प्रतीकात्मक नहीं होंगे। तब अगर तुम अपनी मां की हत्या करना चाहोगे तो सपने में तुम अपनी मां की ही हत्या करोगे। किसी और स्त्री की नहीं। और फिर व्याख्या करने वालों की जरूरत नहीं होगी। तुम्हें खुद पता होगा की तुम्हारे सपनों का अर्थ क्या है। लेकिन हम इतने झूठे है, धोखेबाज है, कि सपने के एकांत में भी संसार से, समाज से डरते है।

लेकिन यह सिखावन क्यों? गहरे में यह संभावना है कि प्रत्येक व्यक्ति अनिवार्यतः: अपनी मां का विरोध में चला जाए, क्योंकि मां ने तुम्हें सिर्फ जन्म ही नहीं दिया, उसने तुम्हें झूठ और नकली बनने के लिए मजबूर किया है। तुम जो भी हो, अपनी मां के बनाए हुए हो। अगर तुम एक नरक हो तो इसमें तुम्हारी मां का बड़ा हाथ है। सबसे बड़ा हाथ है। अगर तुम दुःख में हो तो उस दुःख में कहीं न कहीं तुम्हारी मां मौजूद है, क्योंकि मां ने तुम्हें जन्म दिया, उसने तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया। या कहें कि उसने तुम्हें पाल-पोसकर नकली बनाया। उसने तुम्हें तुम्हारी प्रामाणिकता से हटा दिया। तुम्हारा पहला झूठ तुम्हारे और तुम्हारी मां के बीच घटित हुआ है।

जब बच्चे ने बोलना भी नहीं सीखा है, उसके पास भाषा भी नहीं है। तब भी वह झूठ बोल सकता है। देर अबेर वह जान जाता है कि उसके अनेक भाव मां को पसंद नहीं है। मां का चेहरा, उसकी आंखें, उसका व्यवहार, उसकी मुद्रा, सब बात देते है कि उसकी कुछ चीजें पसंद नहीं है। स्वीकृत नहीं है। और तब बच्चा दमन करने लगता है; उसे लगता है कि कुछ गलत है। अभी उसके पास भाषा नहीं है, उसका मन सक्रिय नहीं है। लेकिन उकसा सारा शरीर दमन करने लग जाता है। और फिर उसे पता चलता है कि कभी-कभी कोई बात उसकी मां के द्वारा सराही जाती है। और यह बच्चा मां पर निर्भर है, उसका जीवन ही मां पर निर्भर है। अगर मां उसे छोड़ दे तो वह नहीं जी सकता। उसका पूरा जीवन मां पर केंद्रित है।

इसलिए मां का सब कुछ—उसका व्यवहार, उसकी बात, उसका इशारा—बच्चे के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। अगर बच्चा मुस्कराता है और तब मां उसे प्रेम देती हे। लाड़-दुलार करती है। दूध पिलाती है। छाती से लगती है। तो समझो की बच्चा राजनीति सीखने लगा। वह तब भी मुस्कुराएगा जब उसके भी मुस्कुराहट नहीं होगी। क्योंकि अब वह जानता है कि ऐसा करके वह मां को खुश कर सकता है। अब वह झूठी मुस्कुराहट मुस्कुराएगा। अब एक झूठा व्यक्ति पैदा हो गया। अब एक राजनीतिज्ञ अस्तित्व में आया। अब वह जानता है कि कैसे झूठ हुआ जाए।

और यह सब वह अपनी मां के सत्संग से सीखता है। संसार में वह उसका पहला संबंध है। इसलिए जब उसे अपने दुखों का पता चलता है। अपने नरक का बोध होता है, उलझनें घेरेंगी, तब उसे यह भी पता चलेगा कि इस सब में कही न कहीं उसकी मां छिपी है। और पूरी संभावना यह है कि तुम अपनी मां के प्रति शत्रुता अनुभव करते हो। यही कारण है कि सभी संस्कृतियों में जोर दिया जाता है कि मां ही हत्या जघन्य पाप है। विचार में भी, सपने में भी, तुम मां की हत्या न कर सको।

ये दो तुम्हारे झूठे चेहरे है। एक चेहरा तुम्हारे जागरण में प्रकट होता है। और दूसरा तुम्हारी नींद में। इन दो झूठे चेहरों के बीच एक छोटा सा द्वार है, एक छोटा सा अंतराल है। इस अंतराल में तुम्हें अपने मौलिक चेहरे की झलक मिल सकती है—उस मौलिक चेहरे की जो तब था जब तुम मां से नहीं संबंधित हुए थे। और मां के जरिए समाज से नहीं जुड़े थे। जब तुम अपने साथ अकेले थे जब तुम थे—तुम यह वह नहीं थे। जब कोई विभाजन नहीं था। केवल सत्य था; कुछ असत्य नहीं था। इन दो व्यवस्थाओं के बीच तुम्हें अपनी उस सच्चे चेहरे की झलक मिल सकती है।

साधारणत: हम अपने सपनों की चिंता नहीं लेते है, हम सिर्फ जागते समय की चिंता लेते है। लेकिन मनोविश्लेषण तुम्हारे सपनों की ज्यादा चिंता लेते है। वह तुम्हारे जागरण की चिंता नहीं लेता है। क्योंकि वह समझता है कि जागे हुए तुम ज्यादा झूठे होते हो। तुम्हारे सपनों सक कुछ पकड़ा जा सकता है। जब तुम सोए होते हो तो कम सजग होते हो। तब तुम कुछ आरोपित नहीं करते, तब तुम तोड़ते-मरोड़ते नहीं। उस अवस्था में कुछ सत्य पकड़ा जा सकता है।

तुम जागते हुए ब्रह्मचारी हो सकते हो, साधु हो सकते हो। लेकिन तुमने अपनी कामवासना को दबा रखा है। वह दबी हुई कामवासना तुम्हारे स्वप्नों में अभिव्यक्त होगी; तुम्हारे सपने कामुक होंगे। ऐसा साधु खोजना कठिन है जो कामुक सपने ने देखता हो। यह असंभव है। तुम्हें कामुक सपनों के बिना अपराधी तो मिल जायेंगे। लेकिन ऐसा धार्मिक आदमी खोजना मुशिकल होगा। जो कामुक सपने न देखता हो। एक व्यभिचारी कामुक सपनों के बिना हो सकता है। क्योंकि तुम जागते हुए जिसे दबाओगें वह तुम्हारे सपनों में उभरकर आएगा। वह तुम्हारे सपनों को प्रभावित करेगा।

मनोचिकित्सक तुम्हारे जागरण की फिक्र नहीं करते है, क्योंकि वे जानते है कि वह बिलकुल झूठ है। अगर कुछ सच्चा, कुछ यथार्थ देखना हो तो वह केवल सपनों में देखा जा सकता है।

लेकिन तंत्र कहता है कि सपने भी उतने सच नहीं है। हालांकि जागरण की तुलना में वे ज्यादा सच है—यह पहेली सी मालूम पड़ती है। क्योंकि हम सपनों को असत्य मानते है—वे जागरण की घड़ियों की बजाय ज्यादा सच है। क्योंकि सपनों में तुम

अपने पहरे पर कम होते हो। नींद में सेंसर सोया रहता है। और दमित चीजें ऊपर आ सकती है। अपने को अभिव्यक्त कर सकती है। हां यह अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक होगी; पर प्रतीकों को समझा जा सकता है।

सारी दुनियां में मनुष्य के प्रतीक समान है। जागते हुए तुम भिन्न भाषा बोल सकते हो। लेकिन सपने में तुम वही भाषा बोलते हो जो सारे लोग बोलते है। सारी दुनिया की स्वप्न भाषा एक है। अगर कामवासना दबाई गई है तो दुनियाभर में एक ही तरह का प्रतीक उसे अभिव्यक्त करेंगे। अगर भोजन की इच्छा को दबाया गया है, भूख को दमित किया गया है तो उसे भी सपने में सर्वत्र एक ही तरह के प्रतीक अभिव्यक्त करेंगे। स्वप्न—भाषा है।

लेकिन प्रतीकों के कारण ही स्वप्नों के साथ एक दूसरी कठिनाई है। फ्रायड उसका अर्थ एक ढंग से कर सकता है। जुंग उनका अर्थ दूसरे ढंग से कर सकता है। और एडलर उनका अर्थ और भी भिन्न ढंग से कर सकता है। अगर सौ मनोविश्लेषक तुम्हारा विश्लेषण करें तो वे सौ व्याख्याएं करेंगे। और तुम पहले से ज्यादा उलझन में पड़ जाओगे। एक ही चीज की सौ व्याख्याएं तुम्हें और भी भ्रांत कर देंगी।

तंत्र कहता है, तुम न जागते हुए सच हो और न सोते हुए सच हो, तुम इन दो अवस्थाओं के बीच में कहीं सच हो। इसलिए न जागरण की फिक्र तरो और नींद की और न स्वप्न की। सिर्फ अंतराल की फिक्र करो। उस अंतराल के प्रति जागों। एक से दूसरी अवस्था में गुजरते हुए इस अंतराल का दर्शन करो। और एक बार तुम जान जाते हो कि यह अंतराल कब आता है। तुम उसके मालिक हो जाते हो। तब तुम्हें कुंजी मिल गई, तुम किसी भी वक्त उस अंतराल को खोलकर उसमे प्रवेश कर सकते हो। तब होने का एक भिन्न आयाम, एक नया आयाम खुलता है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—35

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—56 (ओशो)

आत्म-स्मरण की चौथी विधि—

''भ्रांतियां छलती है, रंग सीमित करते है, विभाज्य भी अविभाज्य है।''–तंत्र सुत्र

''भ्रांतियां छलती है, रंग सीमित करते है, विभाज्य भी अविभाज्य है।''

यह एक दुर्लभ विधि है। जिसका प्रयोग बहुत कम हुआ है। लेकिन भारत के एक महानतम शिक्षक शंकराचार्य ने इस विधि का प्रयोग किया है। शंकर ने तो अपना पूरा दर्शन ही इस विधि के आधार पर खड़ा किया है। तुम उनके माया के दर्शन को जानते हो। शंकर कहते है कि सब कुछ माया है। तुम जो भी देखते, सुनते या अनुभव करते हो, सब माया है। वह सत्य नहीं है। क्योंकि सत्य को इंद्रियों से नहीं जाना जा सकता।

तुम मुझे सुन रहे हो और मैं देखता हूं कि तुम मुझे सुन रहे हो, हो सकता है कि यह सब स्वप्न हो। यह स्वप्न है या नहीं, यह तय करने का कोई उपाय नहीं है। हो सकता है कि मैं स्वप्न देख रहा हूं। कि तुम मुझे सुन रहे हो। यह मैं कैसे जान सकता हूं कि यह स्वप्न नहीं, सत्य है। कोई उपाय नहीं है।

च्वांगत्सु के बारे में कहा जाता है कि एक रात उसने स्वप्न देखा कि वह तितली हो गया है। सुबह जागने पर वह बहुत दुःखी था—और वह दुःखी होने वाला व्यक्ति नहीं था। लोगों ने कभी उसे दुःखी नहीं देखा था। उसके शिष्य इकट्ठे हुए और उन्होंने पूछा: गुरूदेव आप इतने दुःखी क्यों है?

च्वांगत्सु ने बताया कि रात के सपने के कारण वह दुःखी है। उसके शिष्यों ने कहा कि हैरानी की बात है कि आप सपने के कारण दुःखी है। आपने तो हमें यही सिखाया कि यदि सारा संसार भी दुःख देने आए तो दुःखी मत होना। और एक सपने के कारण आप दुःखी है? आप क्या कहते है? च्वांगत्सु ने कहा कि यह सपना ही ऐसा है कि इसमे मैं बहुत उलझन में पड़ गया हूं और इसलिए दुःखी हूं। मैंने सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूं।

शिष्यों ने पूछा कि इसमें हैरानी की बात क्या है?

च्वांगत्सु ने कहा कि दिक्कत यह है कह अगर च्वांत्सु सपना देख सकता है कि मैं तितली हो गया हूं। तो इससे उलटा भी हो सकता है। तितली सपना देख सकती है कि मैं च्वांगत्सु हो गयी हूं। यही कारण है कि मैं परेशान हूं कि क्या ठीक है और क्या गलत है? क्या च्वांगत्सु ने सपना देखा था कि वह तितली हो गया है या कि तितली सोने चली गई और उसने सपना देखा कि वह च्वांगत्सु हो गई है। अगर एक बात हो सकती है तो दूसरी भी हो सकती है।

और कहा जाता है कि च्वांगत्सु को जीवनभर एक पहेली का हल न मिला, यह सदा उसके साथ रही।

यह कैसे तय हो कि में जो अभी तुमसे बात कर रहा हूं, वह सपने में नहीं कर रहा हूं? यह कैसे तय हो कि तुम सपना नहीं देख रहे हो कि मैं बोल रहा हूं? इंद्रियों से कोई निर्णय संभव नहीं है, क्योंकि सपना देखते हुए सपना यथार्थ मालूम पड़ता है—उतना ही यथार्थ जितना कुछ भी दूसरा यथार्थ मालूम पड़ता है। जब तुम सपना देखते हो तो तुम्हें वह सदा सच्चा मालूम पड़ता है। और जब सपने को सच की तरह देखा जा सकता है तो क्यों सच को सपने की तरह नहीं देखा जा सकता है।

शंकर कहते है कि इंद्रियों से यह जानना संभव नहीं है कि जो चीज तुम्हारे सामने है वह सच है या स्वप्न। और जब जानने का उपाय ही नहीं है कि वह सच है या झूठ तो शंकर उसे माया कहते है।

माया का अर्थ झूठ नहीं है, माया का अर्थ है कि यह निर्णय करना असंभव है कि वह सच है या झूठ। इस बात को स्मरण रखो। पश्चिम की भाषाओं में माया का गलत अनुवाद हुआ है। पश्चिम की भाषाओं में माया शब्द अयथार्थ या झूठ का अर्थ रखता है। यह अर्थ सही नहीं है। माया का इतना ही अर्थ है कि यह निश्चित नहीं हो सकता है कि कोई चीज यथार्थ है कि अयथार्थ। यह उलझन माया है।

यह सारा जगत माया है। तुम उसके संबंध में निशचित नहीं हो सकते। कुछ भी निर्णय पूर्वक नहीं कह सकते। यह जगत निरंतर तुमसे छूट-छूट जाता है, निरंतर बदल जाता है। कुछ से कुछ हो जाता है। यह इंद्रजाल सा लगता है। स्वप्नवत लगता है। और यह विधि इसी दृष्टि से संबधित है।

''भ्रांतियां छलती है।''

या जो चीज छले वह भ्रांति है।

''रंग सीमित करते है, विभाज्य भी अविभाज्य है।''

इस माया के जगत में कुछ भी निश्चित नहीं है। सारा जगत इंद्रधनुष के समान है, वह भासता है, लेकिन है नहीं। जब तुम उससे बहुत दूर होते हो तो वह है, जब करीब जाते हो तो वह खोता जाता है। जितना करीब जाओगे उतना ही वह खोता जाएगा। और अगर तुम उस बिंदू पर पहुंच जाओ जहां इंद्रधनुष दिखाई पड़ता था तो वह बिलकुल खो जायेगा।

सारा जगत इंद्रधनुष के रंगों जैसा है। और सच्चाई यही है। जब तुम दूर होते हो, सब कुछ आशा पूर्ण दिखाई देता है; जब तुम करीब आते हो, आशा खो जाती है। और जब तुम मंजिल पर पहुंच जाते हो, तब तो राख ही राख बचती है। मृत इंद्रधनुष बचता है जिसके सब रंग उड़ जाते है। कुछ भी वैसा नहीं है जैसा दिखता था। जैसा तुमने चाहा था वैसा कुछ भी नहीं है।

''विभाज्य भी अविभाज्य है।''

तुम्हारा सब गणित, तुम्हारा सब हिसाब-किताब, तुम्हारी सब धारणाएं, तुम्हारे सब सिद्धांत—सब कुछ व्यर्थ हो जाते है। अगर तुम इस माया को समझने की चेष्टा करोगे तो तुम्हारी चेष्टा ही तुम्हें और भ्रांत कर देगी। वहां कुछ भी निश्चित नहीं है। सब कुछ अनिश्चित है। जगत एक प्रवाह है, परिवर्तनों का प्रवाह है, और तुम्हारे लिए यह तय करने का कोई उपाय नहीं है कि क्या सच है और क्या नहीं है।

इस हालत में क्या होगा? अगर तुम्हारी ऐसी दृष्टि हो तो क्या होगा? अगर यह दृष्टि तुममें गहरी उतर जाए कि जिस चीज के संबंध में निश्चित नहीं हो सके वह माया है तो तुम अपने ही आप, सहजता से अपनी तरफ मुड़ जाओगे। तब तुम्हें अपना केंद्र सिर्फ अपने भीतर खोजना होगा। वही एकमात्र सुनिश्चितता है।

इसे इस तरह समझने की कोशिश करो। रात में मैं स्वप्न देख सकता हूं कि मैं तितली बन गया हूं। और मैं स्वप्न मैं स्वप्न में तय नहीं कर सकता कि यह सच है या झूठ है। और अगली सुबह मैं च्वांगत्सु की तरह उलझन में पड़ सकता हूं कि अब कहीं तितली ही यह सपना तो नहीं देख रही कि वह च्वांगत्सु हो गई है।

अब ये दो सपने है और तुलना का कोई उपाय नहीं है। कि इनमें कौन सच है और कौन झूठ। लेकिन च्वांगत्सु एक चीज चूक रहा है—वह है स्वप्न देखने वाला। वह केवल सपनों की सोच रहा है, उसकी तुलना कर रहा , और स्वप्न देखने वाले को चूक रहा है। वह उसे चूक रहा है जो स्वप्न देख रहा है। कि च्वांगत्सु तितली बन गया है। और वह उसे चूक रहा है जो विचार करता है कि बात बिलकुल उलटी भी हो सकती है—कि तितली सपना देख रही हो कि सह च्वांगत्सु हो गई है। यह देखने वाला कौन है? द्रष्टा कौन है। कौन है वह जो साया हुआ था और अब जागा हुआ है?

तुम मेरे लिए असत्य हो सकते हो। तुम मेरे लिए स्वप्न हो सकते हो। लेकिन मैं अपने लिए स्वप्न नहीं हो सकता। क्योंकि स्वप्न के होने के लिए भी एक सच्चे स्वप्न देखने वाले की जरूरत है। झूठे स्वप्न के लिए भी सच्चे स्वप्नदर्शी की जरूरत है। स्वप्न भी सच्चे स्वप्नदर्शी के बिना नहीं हो सकता। तो स्वप्न को छोड़ो।

यह विधि कहती है: स्वप्न को भूल जाओ। सारा जगत माया है, तुम माया नहीं हो। तुम जगत के पीछे मत भागों। क्योंकि वहां सुनिश्चित होने की कोई संभावना नहीं है। कि क्या सत्य है और असत्य। और अब तो वैज्ञानिक शोध से भी यह बात सिद्ध हो चुकी है।

पिछले तीन सौ वर्षों तक विज्ञान सुनिश्चित था और शंकर एक दार्शनिक, एक कवि मालूम पड़ता था। तीन सदियों तक विज्ञान असंदिग्ध था, सुनिश्चित था, लेकिन पिछले दो दशकों से विज्ञान का निश्चय अनिश्चय में बदल गया है। अब बड़े से बड़ा वैज्ञानिक कहते है कि कुछ भी निश्चित नहीं है। और पदार्थ के साथ हम कभी निश्चित नहीं हो सकते। सब कुछ पुन: संदिग्ध हो गया है। सब कुछ प्रवाहमान, बदलता हुआ मालूम पड़ता है। बाहरी रूप-रंग ही निश्चित मालूम पड़ता है। लेकिन जैसे-जैसे तुम उसमे गहरे जाते हो सब अनिश्चित होता जाता है। सब धुंधला-धुंधला होता जाता है।

शंकर कहते है—और तंत्र ने सदा कहा है—कि जगत माया है। शंकर के जन्म के पहले भी तंत्र इस विधि का उपयोग करता था जगत माया है। उसे स्वप्नवत समझो। और अगर तुमने इसे माया समझा—और यदि तुमने जरा ध्यान दिया तो तुम जानोंगे ही कि यह माया है। तो तुम्हारी चेतना का पूरा तीन भीतर की और मुड़ जाएगा। क्योंकि सत्य को जानने की अभीप्सा प्रगाढ़ है।

अगर सारा जगत अयथार्थ है, असत्य है, तो उससे कोई आश्रय नहीं मिल सकता है। तब तुम छायाओं के पीछे भाग रहे हो। अपने समय, शक्ति और जीवन का अपव्यय कर रह हो। अब भी तर की तरफ चलो। क्योंकि एक बात तो निश्चित है कि मैं हूं। यदि सारा जगत भी माया है तो भी एक चीज निश्चित है कि कोई है जो जानता है कि यह माया है। ज्ञान भ्रांत हो सकता है, ज्ञेय भ्रांत हो सकता है, लेकिन ज्ञाता भ्रांत नहीं हो सकता। वही एक मात्र निश्चय है, एकमात्र चट्टान है, जिस पर तुम खड़े हो सकते हो।

यह विधि कहती है: ''संसार को देखो; यह स्वप्नवत है, माया है, वैसा बिलकुल नहीं है जैसा भासता है। यह बस इंद्रधनुष जैसा है। इस भाव की गहराई में उतरो और तुम अपने पर फेंक दिए जाओगे। और अपने अंतस पर आने के साथ-साथ तुम निश्चय को, सत्य को, असंदिग्ध को, परम को उपलब्ध हो जाते हो।

विज्ञान कभी परम तक नहीं पहुंच सकता, वह सदा सापेक्ष रहेगा। सिर्फ धर्म परम को उपलब्ध हो सकता है। क्योंकि धर्म स्वप्न को नहीं, स्वप्नदर्शी को खोजता है। धर्म दृश्य को नहीं, द्रष्टा को खोजता है। धर्म उसे खोजता है जो चिन्मय है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—35

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—57 (ओशो)

साक्षित्व की पहली विधि–

''तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।''

''तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।''
जब तुम्हें कामना घेरती है, चाहे पकड़ती है, तो तुम उत्तेजित हो जाते हो, उद्विग्न हो जाते हो। यह स्वाभाविक है। जब चाह पकड़ती है तो मन डोलने लगता है। उसकी सतह पर लहरें उठने लगती है। कामना तुम्हें खींचकर कहीं भविष्य में ले जाती है; अतीत तुम्हें कहीं भविष्य में धकाता है। तुम उद्विग्न हो जाते हो, बेचैन हो जाते हो। अब तुम चैन में न रहे। चाह बेचैनी है, रूग्णता है।

यह सूत्र कहता है: ''तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।''

लेकिन अनुद्विग्न कैसे रहा जाए? कामना का अर्थ ही उद्वेग है। अशांति है; फिर अनुद्विग्न कैसे रहा जाए? शांत कैसे रहा जाए? और वह भी कामना के तीव्रतम क्षणों में।

तुम्हें कुछ प्रयोगों से गुजरना होगा। तो ही तुम इस विधि का अभिप्राय समझ सकते हो। तुम क्रोध में हो; क्रोध ने तुम्हें पकड़ लिया है। तुम अस्थायी रूप से पागल हो, आविष्ट हो, अवश हो। तुम होश में नहीं हो। इस अवस्था में अचानक स्मरण करो कि अनुद्विग्न रहना है—मानों तुम कपड़े उतार रहे हो। नग्न हो रहे हो। भीतर नग्न हो जाओ, क्रोध से निर्वस्त्र हो जाओ। क्रोध तो रहेगा, लेकिन अब तुम्हारे भीतर एक बिंदु है जो अनुद्विग्न है, शांत है। तुम्हें पता होगा कि क्रोध परिधि पर है; बुखार की तरह वह वहां है। परिधि कांप रही है। परिधि अशांत है। लेकिन तुम उसके दृष्टा हो। और यदि तुम उसके द्रष्टा हो सके तो तुम अनुद्विग्न रहोगे। तुम उसके साक्षी हो जाओ, और तुम शांत हो जाओगे। वहाँ शांत बिंदु ही तुम्हारा मूलभूत मन है मूलभूत मन अशांत नहीं हो सकता। वह कभी अशांत नहीं होता है। लेकिन तुमने उसे कभी देखा नहीं है। जब क्रोध होता है तो तुम्हारा उससे तादात्म्य हो जाता है। तुम भूल जाते हो कि क्रोध तुमसे भिन्न है, पृथक है। तुम उससे एक हो जाते हो; और तुम उसके द्वारा सक्रिय हो जाते हो, कुछ करने लगते हो। और तब दो चीजें संभव है।

तुम क्रोध में किसी के प्रति, क्रोध के विषय के प्रति हिंसात्मक हो सकते हो; लेकिन तब तुम दूसरे की और गति कर गए। क्रोध ने तुम्हारे और दूसरे के बीच जगह ले ली। यहां मैं हूं जिसे क्रोध हुआ है, फिर क्रोध है ओ वहां तुम हो, मेरे क्रोध का विषय। क्रोध से मैं दो आयामों में यात्रा कर सकता हूं। या तो मैं तुम्हारी तरफ जा सकता हूं, अपने क्रोध के विषय की तरफ। तब तुम जिसने मेरा अपमान किया, मेरी चेतना के केंद्र बन गए; तब मेरा मन तुम पर केंद्रित हो गया। यह ढंग है क्रोध से यात्रा करने का।

दूसरा ढंग है कि तुम अपनी और स्वयं की और यात्रा करो। तुम उस व्यक्ति की और नहीं गति करते जिसने तुम्हें क्रोध करवाया। बल्कि उस व्यक्ति की तरफ जाते हो जो क्रोध अनुभव करता है। तुम विषय की और न जाकर विषयी की और गति करते हो।

साधारणत: हम विषय की और ही बढ़ते है। और विषय की और बढ़ने से मन का धूल-भरा हिस्सा उत्तेजित और अशांत हो जाता है। और तुम्हें अनुभव होता है की मैं अशांत हूं। अगर तुम भीतर की और मुड़ो अपने केंद्र की और मुड़ो, तो तुम धूल वाले हिस्से के साक्षी हो जाओगे। तब तुम देख सकोगे। कि धूल वाला हिस्सा तो अशांत है, लेकिन मैं अशांत नहीं हूं। और तुम किसी भी इच्छा के साथ किसी भी अशांति के साथ यह लेकर प्रयोग कर सकते हो।

तुम्हारे मन में कामवासना उठती है; तुम्हारा सारा शरीर उससे अभिभूत हो जाता है। अब तुम काम विषय की और अपनी वासना के विषय की और जा सकते हो। चाहे वह वास्तव में वहां हो या न हो। तुम कल्पना में भी उसकी तरफ यात्रा कर सकते हो। लेकिन तब तुम और ज्यादा अशांत होते जाओगे। तुम अपने केंद्र से जितनी दूर निकल जाओगे उतने ही अधिक अशांत होते जाओगे। सच तो यह है कि दूरी और अशांति होगे और केंद्र के जितनी करीब होगे उतने कम अशांत होगे। ओर अगर तुम ठीक केंद्र पर हो तो कोई अशांति नहीं है।

हर तूफान के बीचो बीच एक केंद्र होता है। जो बिलकुल शांत रहता है; वैसे की क्रोध के तूफान के केंद्र पर, काम के तूफान के केंद्र पर, किसी भी वासना के तूफान के केंद्र—ठीक केंद्र पर कोई तूफान नहीं होता। और कोई भी तूफान शांत केंद्र के बिना नहीं हो सकता; वैसे ही क्रोध भी तुम्हारे उस अंतरस्थ के बिना नहीं हो सकता जो क्रोध के पार है।

यह स्मरण रहे, कोई भी चीज अपने विपरीत तत्व के बिना नहीं हो सकती। विपरीत जरूरी है; उसके बिना किसी भी चीज होने की संभावना नहीं है। यदि तुम्हारे भीतर कोई स्थिर केंद्र न हो तो गति असंभव है। यदि तुम्हारे भीतर शांत केंद्र न हो तो अशांति असंभव है।

इस बात का विश्लेषण करो, इसका निरीक्षण करो। अगर तुम्हारे भीतर परम शांति का कोई केंद्र न होता तो तुम कैसे जानते कि मैं अशांत हूं? तुम्हें तुलना करनी चाहिए, तुलना के लिए दो बिंदू चाहिए।

मान लो कि कोई व्यक्ति बीमार है। वह व्यक्ति बीमारी अनुभव करता है; क्योंकि उसके भीतर कहीं कोई बिंदू है, जहां परम स्वास्थ विराजमान है। इससे ही वह तुलना कर सकता है। तुम कहते हो कि मुझे सिरदर्द है; लेकिन तुम कैसे जानते हो कि यह दर्द है, सिरदर्द है? अगर तुम ही सिरदर्द होते तो तुम इसे कैसे जान सकते थे। अवश्य ही तुम कुछ और हो। कोई और हो। तुम द्रष्टा हो। साक्षी हो। जो कहता है कि मुझे सिरदर्द है। इस दर्द को वही अनुभव कर सकता है जो खुद दर्द नहीं है। अगर तुम बीमार हो, ज्वर ग्रस्त हो तो तुम उसे अनुभव कर सकते हो। क्योंकि तुम ज्वर नहीं हो। खुद ज्वर को नहीं अनुभव कर सकता है; कोई चाहिए जो उसके पार हो। विपरीत जरूरी है।

जब तुम क्रोध में हो और अगर तुम महसूस करते हो कि मैं क्रोध में हूं तो उसका अर्थ है कि तुम्हारे भीतर कोई बिंदू है जो अब भी शांत है और जो साक्षी हो सकता है। यह बात दूसरी है कि तुम इस बिंदू को नहीं देखते हो। तुम इस बिंदू पर अपने को कभी नहीं देखते हो। यह एक अलग बात है। लेकिन वह सदा अपनी मौलिक शुद्धता में वहां मौजूद है।

यह सूत्र कहता है: ''तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।''

तुम क्या करते हो? यह विधि दमन के पक्ष में नहीं है। यह विधि यह नहीं कहती है कि जब क्रोध आए तो उसे दबा दो और शांत हो जाओ। नहीं, अगर दमन करोगे तो तुम ज्यादा अशांति निर्मित करोगे। अगर क्रोध हो और उसे दबाने का प्रयत्न भी साथ-साथ हो तो उससे अशांति दुगुनी हो जाएगी। नहीं; जब क्रोध आए तो द्वार दरवाजे बंद कर लो और क्रोध पर ध्यान करो। क्रोध को होने दो; तुम अनुद्विग्न रहो और क्रोध का दमन मत करो।

दमन करना आसान है; प्रकट करना भी आसान है। और हम दोनों करते है। अगर स्थिति अनुकूल हो तो हम क्रोध को प्रकट कर देते है। अगर उसकी सुविधा हो, अगर तुम्हें खुद कोई खतरा नहीं हो तो तुम क्रोध को अभिव्यक्त कर दोगे। अगर तुम दूसरे को चोट पहुंचा सकते हो और दूसरा बदले में तुम पर चोट कर सकता है। तो तुम अपने क्रोध को खुली छूट दे दोगे। और अगर क्रोध को प्रकट करना खतरनाक हो, अगर दूसरा तुम्हें ज्यादा चोट कर सकने में समर्थ हो, अगर वह तुम्हारा मालिक हो या तुमसे ज्यादा बलवान हो, तो तुम क्रोध को दबा दोगे।

अभिव्यक्ति और दमन सरल है; साक्षी कठिन है। साक्षी न अभिव्यक्ति है और न दमन; वह दोनों में कोई नहीं है। वह अभिव्यक्ति नहीं है। क्योंकि तुम उसे दूसरे पर नहीं प्रकट कर रहे हो। तुम उसका दमन भी नहीं करते। तुम उसे शून्य में विसर्जित कर रहे हो। तुम उस पर ध्यान कर रहे हो।

किसी आईने के सामने खड़े हो जाओ और अपने क्रोध को प्रकट करो—और उसके साक्षी बने रहो। तुम अकेले हो, इसलिए तुम उस पर ध्यान कर सकते हो। तुम जो भी करना चाहो करो, लेकिन शून्य में करो। अगर तुम किसी को मारना पीटना चाहते हो तो खाली आकाश के साथ मार-पीट करो। अगर क्रोध करना चाहते हो तो क्रोध करो; अगर चीखना चाहते हो तो चीखो। लेकिन सब अकेले में करो। और अपने को उस केंद्र बिंदू की भांति स्मरण रखे जो यह सब नाटक देख रहा है। तब यह एक साइको ड्रामा बन जाएगा। और तुम उस पर हंस सकते हो। वह तुम्हारे लिए गहरा रेचन बन जाएगा। और न केवल तुम्हारा क्रोध विसर्जित हो जाएगा, बल्कि तुम उससे कुछ फायदा उठा लोगे। तुम्हें एक प्रौढ़ता प्राप्त होगी; तुम एक विकास को उपलब्ध होओगे। और अब तुम्हें पता होगा कि जब तुम क्रोध में भी थे तो कोई था जो शांत था। अब इस केंद्र को अधिकाधिक उघाड़ते जाओ। और वासना की अवस्थ में इस केंद्र को उघाड़ना आसान है।

इसीलिए तंत्र वासना के विरोध में नहीं है। वह कहता है: वासना में उतरो, लेकिन उस केंद्र को स्मरण रखो जो शांत है। तंत्र कहता है कि इस प्रयोग के लिए कामवासना का भी उपयोग किया जा सकता है। काम-कृत्य में उतरो लेकिन अनुद्विग्न रहो, शांत रहो। और साक्षी रहो। गहरे में द्दष्टा बने रहो। जो भी हो रहा है वह परिधि पर हो रहा है और तुम केवल देखने वाले हो, दर्शक हो।

वह विधि बहुत उपयोगी हो सकती है, और इससे तुम्हें बहुत लाभ हो सकता है। लेकिन यह कठिन होगा। क्योंकि जब तुम अशांत होते हो तो तुम सब कुछ भूल जाते हो। तुम यह भूल जाते हो कि मुझे ध्यान करना है। तो फिर इसे इस भांति प्रयोग करो। उस क्षण के लिए मत रुको जब तुम्हें क्रोध होता है। उस क्षण के लिए मत रुको। अपना कमरा बंद करो और क्रोध के किसी अतीत अनुभव को स्मरण करो जिसमें तुम पागल ही हो गए थे। उसे स्मरण करो और फिर से उसका अभिनय करो।

यह तुम्हारे लिए सरल होगा। उस अनुभव को फिर से अभिनीत करो, उसे फिर से जाओ। शायद तुम्हें पता न हो कि मन टेप-रिकार्डिंग यंत्र जैसा है। अब तो वैज्ञानिक कहते है, अब तो यह वैज्ञानिक तथ्य है कि अगर तुम्हारे स्मृति केंद्रों को इलेक्ट्रोड्स से छुआ जाए तो वे केंद्र फिर से संग्रहीत अनुभवों को दोहराने लगते है। उदाहरण के लिए तुमने कभी क्रोध किया और वह घटना तुम्हारे मन में टेप-रिकार्डर पर रिकार्ड है; ठीक उसी अनुक्रम में वह रिकार्ड है जिस अनुक्रम में वह घटित हुई थी। अगर उसे इलेक्ट्रोड्स से छूओगे तो वह घटना पुन: जीवंत होकर दोहराने लगेगी। तुम्हें वही-वहीं भाव फिर से होंगे जो क्रोध करते समय हुए थे। तुम्हारी आंखे लाल हाँ जाएगी। तुम्हारा शरीर कांपने लगेगा। ज्वरग्रस्त हो जाएगा। पूरी कहानी फिर दोहरेगी। और ज्यों ही इलेक्ट्रोड को वहां से हटाओगे, नाटक बंद हो जायेगा। पूरी कहानी फिर दोहरेगी। यदि तुम उसे फिर ऊर्जा देते हो, वह फिर बिलकुल शुरू से चालू हो जाता है।

अब वे कहते है कि मन एक रिकार्डिंग मशीन है और तुम किसी भी अनुभव को दोहरा सकते हो।

लेकिन स्मरण ही मत करो, उसे फिर से जीओं। अनुभव को फिर जीना शुरू करो और मन उसे पकड़ लेगा। वह घटना वापस लौट आयेगी। और तुम उसे फिर जीओगे। और इसे पुन: जीते हुए अनुद्विग्न रहो, शांत रहो। अतीत से शुरू करो। और यह सरल है। क्योंकि अब यह नाटक है। यह यथार्थ स्थिति नहीं है। और अगर तुम यह करने में समर्थ हो गए तो जब सच ही क्रोध की स्थित पैदा होगी। तुम उसे भी कर सकोगे। और यह प्रत्येक कामना के साथ किया जा सकता है। प्रत्येक कामना के साथ किया जाना चाहिए।

अतीत के अनुभवों को फिर से जीना बड़े काम का है। हम सब के मन में घाव है; ऐसे घाव है जो अभी भी हरे है। अगर तुम उन्हें फिर से जी लोगे तो तुम निर्भार हो जाओगे। अगर तुम अपने अतीत में लोट सके और अधूरे अनुभवों को जी सके तो तुम अपने अतीत के बोझ से मुक्त हो जाओगे। तुम्हारा मन ताजा हो जाएगा। धूल झड़ जायेगी।

अपने अतीत में से कोई अनुभव स्मरण करो जो तुम्हारे देखे अधूरा पडा है। तुम किसी की हत्या करना चाहते थे। तुम किसी को प्रेम करना चाहते थे। तुम यह या वह करना चाहते थे। लेकिन वे सारे काम अपूर्ण रह गए अधूरे रह गये। ओ वह अधूरी चीज तुम्हारे मन के आकाश में बादल की भांति मँडराती रहती है। वह तुम्हें और तुम्हारे कृत्यों को सदा प्रभावित करती रहती है। उस बादल को विसर्जित करना होगा। तो उसके काल पथ को पकड़कर मन में पीछे लोटों और उन कामनाओं को फिर से जीओं जो अधूरी रह गई है। उन घावों को फिर से जीओं जो अभी भी हरे है। वे घाव भर जाएंगे। तुम स्वस्थ हो जाओगे। और इस प्रयोग के द्वारा तुम्हें एक झलक मिलेगी। कि कैसे किसी अशांत स्थिति में शांत रहा जाए।

''तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न करो।''

गुरजिएफ ने इस विधि का खूब प्रयोग किया है। वह इसके लिए परिस्थितियां निर्मित करता था। लेकिन परिस्थितियां निर्मित करने के लिए समूह जरूरी है। आश्रम जरूरी है। तुम अकेले यह नहीं कर सकते। फाउंटेन ब्लू में गुरजिएफ ने एक आश्रम बनाया था और वह बड़ा कुशल गुरु था जो जानता था कि स्थिति कैसे निर्मित की जाती है।

तुम किसी कमरे में प्रवेश करते हो जहां एक समूह पहले से बैठा है। तुम कमरे में प्रवेश करते हो और तभी कुछ किया जाता है। जिससे तुम क्रोधित हो जाते हो। और वह चीज इस स्वाभाविक ढंग से की जाती है कि तुम्हें कभी कल्पना भी नहीं होती कि

यह परिस्थिति तुम्हारे लिए निर्मित की जा रही है। यह एक उपाय था। कोई व्यक्ति कुछ कहकर तुम्हें अपमानित कर देता है। और तुम अशांत हो जाते हो। और फिर हर कोई उस अशांति को बढ़ावा देता है। और तुम पागल हो जाते हो। और जब तुम ठीक विस्फोट के बिंदू पर पहुंचते हो तो गुरूजिएफ चिल्लाकर कहता है: स्मरण करो और अनुद्विग्न रहो।

ऐसी परिस्थिति निर्मित की जा सकती है। लेकिन केवल वहीं जहां अनेक लोग अपने ऊपर काम कर रहे हो। और जब गुरूजिएफ चिल्लाकर कहता कि स्मरण करो और अनुद्विग्न रहो; तो तुम जान जाते हो कि यह परिस्थिति पहले से तैयार कि गई थी। लेकि अब तुम्हारा उद्विग्न, तुम्हारी अशांति इतनी शीध्रता से, इतनी जल्दी मिटने नहीं वाली है। इस अशांति की जड़ें तुम्हारे शरीर में है। तुम्हारी ग्रंथियों ने तुम्हारे रक्त में जहर छोड़ दिया है। तुम्हारा शरीर उससे प्रभावित है। क्रोध इतनी शीध्रता से नहीं जाने वाला है। अब जबकि तुम्हें पता हो गया है कि मुझे धोखा दिया गया है। कि किसी ने सच ही मुझे अपमानित नहीं किया है। तो भी तुम कुछ नहीं कर सकते। क्रोध जहां का तहां है; तुम्हारे शरीर क्रोध की स्थिति में है।

लेकिन एक बात होती है। कि अचानक तुम्हारा ज्वर भीतर शांत होने लगता है। क्रोध अब सिर्फ शरीर पर परिधि पर है। केंद्र पर तुम अचानक शीतल होने लगते हो। और अब तुम जानते हो कि मेरे भीतर एक बिंदू है जो अनुद्विग्न है, शांत है। और तुम हंसने लगते हो। अभी भी तुम्हारी आंखें क्रोध से लाल है, तुम्हारा चेहरा पशुवत हिंसक बना हुआ है। लेकिन तुम हंसने लगते हो। अब तुम्हें दो चीजें पता है; एक अनुद्विग्न केंद्र और दूसरी उद्विग्न परिधि।

तुम एक दूसरे के लिए सहयोगी हो सकते हो। तुम्हारा परिवार ही आश्रम बन सकता है; तुम एक दूसरे की मदद कर सकते हो। मित्र अपने परिवार से बात करके तय कर सकते हो कि पिता के लिए या मां के लिए एक परिस्थिति पैदा की जाए; और पूरा परिवार उस परिस्थिति के पैदा करने में हाथ बँटाता है। जब मां या पिता पूरी तरह विक्षिप्त हो जाते है तब सब हंसने लगते है। और कहते है: बिलकुल अनुद्विग्न रहो।

तुम परस्पर एक दूसरे की मदद कर सकते हो।

और यह अनुभव बहुत अद्भुत है। जब तुम्हें किसी उतेजित परिस्थिति के भीतर एक शीतल केंद्र का पता चल जाए तो तुम उसे भूल नहीं सकते। और तब तुम किसी भी तरह की अशांत परिस्थिति में उसे स्मरण कर सकते हो, उसे पुन: उपलब्ध कर सकते हो।

पशिचम में अब एक विधि का, चिकित्सा विधि का प्रयोग हो रहा है। जिसे वे साइकोड्रामा कहते है। वह सहयोगी है और इसी तरह की विधियों पर आधारित है। इस साइकोड्रामा में तुम एक अभिनय करते हो, एक खेल खेलते हो। शुरू में तो वह खेल ही है; लेकिन देर अबेर तुम उसके वशीभूत हो जाते हो। और जब तुम वशीभूत होते हो, आविष्ट होते हो तो तुम्हारा मन सक्रिय हो जाता है। क्योंकि तुम्हारे शरीर और मन स्वचलित ढंग से काम करते है। वे स्वचलित व्यवहार करते है।

तो साइकोड्रामा में व्यक्ति क्रोध की स्थिति में सचमुच क्रोधित हो जाता है। तुम सोच सकते हो कि वह अभिनय कर रहा है। लेकिन ऐसी बात नहीं है। संभव है कि वह सच में ही क्रोधित हो गया हो; केवल अभिनय ही न कर रहा हो। वह कामना के वश में है, उद्वेग के वश में है, भाव के वश में है। और जब वह सच में उनके आविष्ट होता है तभी उसका अभिनय यर्थाथ मालूम पड़ता है।

तुम्हारे शरीर को नहीं पता हो सकता कि तुम अभिनय कर रहे हो या सच में कर रहे हो। तुमने अपने जीवन में कभी देखा होगा कि तुम क्रोध का केवल अभिनय कर रहे थे और तुम्हारे अनजाने ही क्रोध सच बन गया। या कि तुम उतेजित नहीं थे, सिर्फ पत्नी या प्रेमिका के साथ खेल कर रहे थे। कि अचानक और अनजाने सारा खेल सच हो गया। शरीर उसे पकड़ लेता है।

और शरीर को धोखा दिया जा सकता है। शरीर नहीं जान सकता, विशेषकर कामवासना के प्रसंग में कि वह सच है या अभिनय। तुम कल्पना भी करते हो तो शरीर सोचता है कि वह सच है।

काम केंद्र शरीर का सबसे अधिक कल्पनात्मक केंद्र है। सिर्फ कल्पना से तुम काम के शिखर अनुभव को आर्गाज्म को उपलब्ध हो सकते हो। शरीर नहीं जान सकता कि क्या सच है और क्या झूठ। जब तुम कुछ करने लगते हो तो शरीर सोचता है कि यह सच ओर वह वैसा व्यवहार करने लगता है। साइकोड्रामा ऐसी विधियों पर आधारित है। तुम क्रोधित नहीं हो, सिर्फ क्रोध का अभिनय कर रहे हो। और फिर उससे आविष्ट हो जाते हो।

लेकिन साइकोड्रामा सुंदर है। क्योंकि तुम जानते हो कि मैं महज अभिनय कर रहा हूं। और तब परिधि पर क्रोध यथार्थ हो जाता है और ठीक उसके पीछे तुम छिपकर उसका निरीक्षण कर रहे होते हो। तुम जानते हो कि मैं उद्‌विग्न नहीं हूं। लेकिन क्रोध है, उद्‌वेग है, अशांति है। यह दो ऊर्जाओं का युगपत काम करने का अनुभव तुम्हें उनके अतिक्रमण में ले जाता है। और फिर असली क्रोध में भी तुम उसे अनुभव कर सकते हो। जब तुमने जान लिया कि उसे कैसे अनुभव किया जाए तुम वास्तविक स्थितियों में भी अनुभव कर सकते हो।

इस विधि का प्रयोग करो; यह तुम्हारे समग्र जीवन को बदल देगी। और जब तुमने अनुद्‌विग्न रहना सीख लिया तो संसार तुम्हारे लिए दुःख न रहा। तब कुछ भी तुम्हें भ्रांत नहीं कर सकता है। तब कुछ भी तुम्हें सच में पीड़ित नहीं कर सकता। अब तुम्हारे लिए कोई दुःख न रहा।

और तब तुम एक और काम कर सकत हो। गुरजिएफ यह करता था। वह किसी भी क्षण अपना चेहरा, अपनी मुख मुद्रा बदल सकता था। वह हंस रहा है, मुस्कुरा रहा है। तुम्हारे साथ बैठकर प्रसन्न है। और अचानक वह बिना किसी कारण के ही क्रोधित हो जाएगा। और कहते है कि हव इस कला में इतना निष्णात हो गया था कि वह एक साथ अपने आधे चेहरे से क्रोध और दूसरे आधे चेहरे से मुस्कुराहट प्रकट कर सकता था। अगर उनके दोनों चेहरे के आस पास व्यक्ति बैठे हो तो वह उसे अलग-अलग ही रूप में देखेंगे। एक व्यक्ति कहेगा कि गुरजिएफ कितना सुंदर आदमी है। और दूसरा व्यक्ति कहेगा कि वह बहुत खराब है। वह एक साथ एक को हंसकर देखता था और दूसरे को गुस्से से।

एक बार तुम अपने केंद्र को परिधि से पूरी तरह पृथक करने की विधि का अनुभव कर लो। दोनों अतियां वहां है—विपरीत अतियां। एक बार तुम्हें इन अतियों को बोध हो जाए तो पहली दफा तुम अपने मालिक हुए। अन्यथा दूसरे मालिक है। तुम खुद गुलाम हो। तुम्हारी पत्नी जानती है तुम्हारा बाप जानता है। तुम्हारे बेटे जानते है। तुम्हारे दोस्त जानते है। कि तुम्हें कब हिलाया जा सकता है। तुम्हें कैसे अंशत किया जा सकता है, तुम्हें कैसे खुश किया जा सकता है।

और जब दूसरा तुम्हें सुखी और दुःखी कर सकता है तो तुम मालिक नहीं हो सकते। तुम गुलाम ही हो। कुंजी दूसरे के हाथ में है; बस उसकी एक भाव भंगिमा तुम्हें दुःखी बना सकती है; उसकी एक मुस्कुराहट तुम्हें सुख से भर सकती है। तो तुम दूसरे की मर्जी पर हो; दूसरा तुम्हारे साथ कुछ भी कर सकता है।

और अगर यही स्थिति है तो तुम्हारी सब प्रतिक्रियाएँ बसा प्रतिक्रियाएँ है। उन्हें क्रियाएं नहीं कहा जा सकता है। तुम सिर्फ प्रतिक्रियाँ करते हो, क्रिया नहीं। कोई तुम्हारा अपमान करता है और तुम क्रोधित हो जाते हो। कोई तुम्हारी प्रशंसा करता है और तुम मुस्कुराने लगते हो। फूकर कुप्पा हो जाते हो। तो यह प्रतिक्रिया है, क्रिया नहीं।

बुद्ध एक गांव से गुजर रहे थे। कुछ लोग उनके पास इकट्ठे हो गए; वे सब उनके विरोध में थे। उन्होंने बुद्ध का अपमान किया, उन्हें गालियां दीं। बुद्ध ने सब सुना। और फिर कहा; मुझे समय पर दूसरे गांव पहुंचना है। तो क्या मैं अब आगे जा सकता हूं।

अगर तुमने वह सब कह लिया जा कहने वाले थे। अगर बात खत्म हो गई तो में जाऊं। और यदि कुछ कहने को शेष रह गया हो तो मैं लोटते हुए यहां रूकुंगा, तब तुम आ जाना और कह देना।

वे लोग तो चकित रह गए। उन्हें कुछ समझ में नहीं आया1 वे तो उनका अपमान कर रहे थे। उन्हें गालियां दे रहे थे। तो उन्होंने कहा कि हमें कुछ कहना नहीं है। हम तो बस आपका अपमान कर रहे है। आपको गालियां दे रहे है।

बुद्ध ने कहा: तुम वह कर सकते हो। लेकिन यदि तुम्हें मेरी प्रतिक्रिया की अपेक्षा है तो तुम देरी करके आए। दस वर्ष पूर्व तुम अगर ये शब्द लेकर आए होते तो मैं प्रतिक्रिया करता। लेकिन अब में क्रिया करना सीख गया हूं। मैं अब अपना मालिक हो गया हूं। अब तुम मुझे कुछ करने को मजबूर नहीं कर सकते हो। तुम लौट जाओ। तुम अब मुझे विचलित नहीं कर सकते हो। मुझे अब कुछ भी अशांत नहीं कर सकता है। मैनें अपने केंद्र को जान लिया है।

केंद्र का यह ज्ञान या केंद्र में प्रतिष्ठित होना तुम्हें अपना मालिक बना देता है। अन्यथा तुम गुलाम हो। एक ही मालिक के नहीं, अनेक मालिकों के गुलाम। तब हर कोई तुम्हारा मालिक है, और तुम सारे जगत के गुलाम हो। निश्चित ही तुम पीड़ा में, दुःख में रहोगे। इतने मालिक और वे इतनी दिशाओं में तुम्हें खिंचेंगी। कि तुम अखंड न रह सकोगे। एक न रह सकोगे। और इतने आयामों में खींचे जाने के कारण तुम संताप में रहोगे। वही व्यक्ति संताप का अतिक्रमण कर सकता है जो अपना स्वामी है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-37

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—58 (ओशो)

साक्षित्व की दूसरी विधि–

''यह तथा कथित जगत जादूगरी जैसा या चित्र-कृति जैसा भासता है।..........शिव

''यह तथा कथित जगत जादूगरी जैसा या चित्र-कृति जैसा भासता है। सुखी होने के लिए उसे वैसा ही देखो।''
यह सारा संसार ठीक एक नाटक के समान है, इसलिए इसे गंभीरता से मत लो। गंभीरता तुम्हें उपद्रव में डाल देगी। तुम मुसीबत में पड़ोगे। इसे गंभीरता से मत लो। कुछ गंभीर नहीं है। सारा संसार एक नाटक मात्र है।

अगर तुम सारे जगत को नाटक की तरह देख सको तो तुम अपनी मौलिक चेतना को पा लोगे। उस पर धूल जमा हो जाती है। क्योंकि तुम अति गंभीर हो। यह गंभीरता ही समस्या पैदा करती है। और हम इतने गंभीर है कि नाटक देखते हुए भी हम धूल जमा करते रहते है। किसी सिनेमाघर में जाओ और दर्शकों को देखो। फिल्म को मत देखो, फिल्म को भूल जाओ पर्दे की तरफ मत देखो, हाल में जो दर्शक है उन्हें देखो। कोई रो रहा होगा। कोई हंस रहा होगा। किसी की कामवासना उत्तेजित हो रही होगी। सिर्फ लोगो को देखो। वे क्या कर रहे है। उन्हें क्या हो रहा है। पर्दे पर छाया-चित्रों के सिवाय कुछ भी नहीं है—धूप छांव का खेल है। पर्दा खाली है। लेकिन वे उत्तेजित क्यों हो रहे है?
वे हंस रहे है, वे रो रहे है। चित्र मात्र चित्र नहीं है; फिल्म मात्र फिल्म नहीं है। वे भूल गये है कि यह एक कहानी है। उन्होंने इसको गंभीरता से ले लिया है। चित्र जीवित हो उठा है, यर्थाथ हो गया है।

और यही चीज सर्वत्र घट रही है। यह सिनेमाघरों तक ही सीमित नहीं है। अपने चारों और के जीवन को तो देखो; क्या है? इस धरती पर असंख्य लोग रह चूके है। जहां तुम बैठे हो वहां कम सक कम दस लाशों की कब्र है। और वे लोग भी तुम्हारे जैसे ही गंभीर थे। वे अब कहां है? उनका जीवन कहां चला गया? उनकी समस्याएं कहा गई? वे लड़ते थे, एक-एक इंच जमीन के लिए, वह जमीन पड़ी रह गई और वे लोग कही नहीं है।

और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि उनकी समस्याएं-समस्याएं नहीं थी। वे थीं; जैसे तुम्हारी समस्याएं-समस्याएं है। लेकिन कहां गई वह समस्याएं? और अगर किसी दिन पूरी मनुष्यता खो जाए तो भी धरती रहेगी। वृक्ष रहेगें । नदिया रहेगी। और सूरज इसी तरह से उगेगा। और पृथ्वी को मनुष्य की गैर-मौजूदगी पर न कोई खेद होगा। न आश्चर्य।

जरा इस विस्तार पर अपनी निगाह को दौडाओं। पीछे देखो, आगे देखो; सभी आयामों को देखा और देखो कि तुम क्या हो। तुम्हारा जीवन क्या है? सब कुछ एक बड़ा स्वप्न जैसा मालूम पड़ेगा। और हर चीज जिसे तुम इस क्षण इतनी गंभीरता से ले रहे हो, अगले क्षण ही व्यर्थ हो जाती है। तुम्हें उसकी याद भी नहीं रहती।

अपने प्रथम प्रेम को स्मरण करो। कितनी गंभीर बात थी वह, जैसे कि जीवन ही उस पर निर्भर करता है। और अब वह तुम्हें स्मरण भी नहीं है। बिलकुल भूल गया है। वैसे ही वे चीजें भी भूल जाएंगी जिन पर तुम आज अपने जीवन को निर्भर समझते हो।

जीवन एक प्रवाह है, वहां कुछ भी नहीं टिकता है। जीवन भागती फिल्म की भांति है। जिसमें हर चीज दूसरी चीज में बदल रहा है। लेकिन इस क्षण वह तुम्हें बहुत गंभीर बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है। और तुम उद्विग्न हो जाते हो।

वह विधि कहती है: ''यह तथा कथित जगत जादूगरी जैसा या चित्र-कृति जैसा भासता है। सुखी होने के लिए उसे वैसा ही देखो।''

भारत में हम इस जगत को परमात्मा की सृष्टि नहीं कहते, हम उसे लीला कहते है। यह लीला की धारणा बहुत सुंदर है। सृष्टि की धारणा गंभीर मालूम पड़ती है। ईसाई और यहूदी ईश्वर बहुत गंभीर है। एक अवज्ञा के लिए आदम को अदन के बग़ीचे से निकाल दिया गया। वह हमारा पिता था; और हम सब उसके कारण दुःख में पड़े है। ईश्वर बहुत गंभीर मालूम पड़ता है। उसकी अवज्ञा नहीं होनी चाहिए। और अगर अवज्ञा होगी तो वह बदला लेगा। और उसका प्रतिशोध अभी तक चला आ रहा है। प्रतिशोध के मुकाबले में पाप इतना बड़ा नहीं लगता है।

सच तो यह है कि आदम ने परमात्मा की बेवकूफी के चलते यह पाप किया। परम पिता परमात्मा ने आदम से कहा कि ज्ञान के वृक्ष के पास मत जाना और उसका फल मत खाना। यह निषध ही निमंत्रण बन गया। वह मनोवैज्ञानिक है। उसे बड़े बग़ीचे में केवल ज्ञान का वृक्ष आकर्षण हो गया। क्योंकि वह निषिद्ध था। कोई भी मनोवैज्ञानिक कहेगा कि भूल परमात्मा की थी। अगर उस वृक्ष के फल को नहीं खाने देना था तो उसकी चर्चा ही नहीं करना थी। तब आदम उस वृक्ष तक कभी नहीं जाता और मनुष्यता अभी भी उसी बग़ीचे में रहती होती। लेकिन इस वचन ने, इस आज्ञा ने कि 'मत खाना' सारा उपद्रव खड़ा कर दिया। इस निषेध ने उपद्रव पैदा किया। क्योंकि आदम ने अवज्ञा की, वह स्वर्ग से निकाल बहार किया गया। और प्रतिशोध कितना बड़ा है।

ईसाई कहते है कि जीसस हमें हमारे पाप से उद्धार दिलाने के लिए, हमें आदम के किए पाप से मुक्त करने लिए सूली पर चढ़ गये। तो ईसाइयों की इतिहास की पूरी धारणा दो व्यक्तियों पर निर्भर है। आदम और जीसस पर। आदम को क्षमा दिलाने के लिए सब यंत्रणा झेली। लेकिन ऐसा नहीं लगता कि ईश्वर ने अब भी क्षमादान दिया हो। जीसस को तो सूली लग गई। लेकिन मनुष्यता अब भी उसी भांति दुःख में है।

पिता के रूप में ईश्वर की धारणा ही गंभीर है, कुरूप है। ईश्वर की भारतीय धारण स्त्रष्टा की नहीं, लीलाधर की है। वह गंभीर नहीं है। वह खेल-खेल रहा है। नियम नहीं है। लेकिन वह खेल के नियम है। उनके संबंध में गंभीर होने की जरूरत नहीं है। कुछ पाप नहीं है। भूल भर है। और तुम भूल के कारण कष्ट में पड़ते हो। परमात्मा तुम्हें दंडित नहीं कर रहा है। लीला की पूरी धारणा जीवन को एक नाटकीय रंग दे देती है। जीवन एक लंबा नाटक हो जाता है। और यह विधि इसी लीला की धारणा पर आधारित है।

''यह तथाकथित जगत जादूगरी जैसा या चित्र-कृति जैसा भासता है। सुखी होने के लिए उसे वैसा ही देखो।''

अगर तुम दुःखी हो तो इसलिए कि तुमने जगत को बहुत गंभीरता से लिया है। और सुखी होने का कोई उपाय मत खोजों, सिर्फ अपनी दृष्टि को बदलों। गंभीर चित से तुम सुखी नहीं हो सकते। उत्सव मनाने वाला चित ही सुखी हो सकता है। इस पूरे जीवन को एक नाटक, एक कहानी की तरह लो ऐसा ही है। और अगर तुम उसे इस भांति ले सके तो तुम दुःखी नहीं होगे। दुःख अति गंभीरता का परिणाम है।

सात दिन के लिए यह प्रयोग करो। सात दिन तक एक ही चीज स्मरण रखो। कि सारा जगत नाटक है। और तुम वही नहीं रहोगे। जो अभी हो। सिर्फ सात दिन के लिए प्रयोग करो। तुम्हारा कुछ खो नहीं जाएगा। क्योंकि तुम्हारे पास खोने के लिए भी तो कुछ चाहिए। तुम प्रयोग कर सकते हो। सात दिन के लिए सब कुछ नाटक समझो। तमाशा समझो।

इन सात दिनों में तुम्हें तुम्हारे बुद्ध स्वभाव की, तुम्हारी आंतरिक पवित्रता की अनेक झलकें मिलेंगी। और इस झलक के मिलने के बाद तुम फिर वही नहीं रहोगे। जो हो। तब तुम सुखी रहोगे। और तुम सोच भी नहीं सकते कि यह सुख किस तरह का होगा। क्योंकि तुमने कोई सुख नहीं जाना। तुमने सिर्फ दुःख की कम-अधिक मात्राएं जानी है। कभी तुम ज्यादा दुःखी थे, और कभी कम। तुम नहीं जानते हो कि सुख क्या है। तुम उसे नहीं जान सकते हो। जब तुम्हारी जगत की धारणा ऐसी है कि तुम उसे बहुत गंभीरता से लेते हो तो तुम नहीं जान सकते कि सुख क्या हे। सुख भी तभी घटित होता है। जब तुम्हारी यह धारणा दृढ़ होती है। कि यह जगत केवल एक लीला है।

इस विधि को प्रयोग में लाओ। और हर चीज को उत्सव की तरह लो, हर चीज को उत्सव मनाने के भाव से करो। ऐसा समझो कि यह नाटक है। कोई असली चीज नहीं है। अगर अपने संबंधों को खेल बना लो बेशक खेल के नियम है; खेल के लिए नियम जरूरी है। विवाह नियम है। तलाक नियम है। उनके बारे में गंभीर मत होओ। वे नियम है और एक नियम को जन्म देता है। लेकिन उन्हें गंभीरता से मत लो फिर देखो कि कैसे तत्काल तुम्हारे जीवन का गुणधर्म बदल जाता है।

आज रात अपने घर जाओ और अपनी पत्नी या पति या बच्चों के साथ ऐसे व्यवहार करो जैसे कि तुम किसी नाटक में भूमिका निभा रहे हो। और फिर उसका सौंदर्य देखो अगर। तुम भूमिका निभा रहे हो तो तुम उसमे कुशल होने की कोशिश करोगे। लेकिन उद्विग्न नहीं होगे। उसी कोई जरूरत नहीं है। तुम अपनी भूमिका निभा कर सोने चले जाओगे। लेकिन स्मरण रहे कि यह अभिनय है। और सात दिन तक इसका सतत ख्याल रखे। तब तुम्हें सुख उपलब्ध होगा। और जब तुम जान लोगे कि क्या सुख है तो फिर दुःख में गिरने की जरूरत नहीं रही। क्योंकि यह तुम्हारा ही चुनाव है।

तुम दुःखी हो, क्योंकि तुमने जीवन के प्रति गलत दृष्टि चूनी है। तुम सुखी हो सकते हो। अगर दृष्टि सम्यक हो जाए। बुद्ध सम्यक दृष्टि को बहुत महत्व देते है। वे सम्यक दृष्टि को ही आधार बनाते है। बुनियाद बनाते है। सम्यक दृष्टि क्या है? उसकी कसौटी क्या है ?

मेरे देखे कसौटी यह है: ''जो दृष्टि सुखी करे वह सम्यक दृष्टि है। और जो दृष्टि तुम्हें दुखी पीडित बनाए वह असम्यक दृष्टि है। और कसौटी बाह्य नहीं है। आंतरिक है। और कसौटी तुम्हारा सुख है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-37

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—59 (ओशो)

साक्षित्व की तीसरी विधि–

’प्रिय, न सुख में और न दुःख में, बल्कि दोनों के मध्य में अवधान को स्थित करो।‘’

”प्रिय, न सुख में और न दुःख में, बल्कि दोनों के मध्य में अवधान को स्थित करो।‘’
प्रत्येक चीज ध्रुवीय है। अपने विपरीत के साथ है। और मन एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव पर डोलता रहता है। कभी मध्य में नहीं ठहरता।

क्या तुमने कोई ऐसा क्षण जाना है जब तुम न सुखी हो और न दुखी? क्या तुमने कोई ऐसा क्षण जाना है जब तुम न स्वास्थ थे न बीमार? क्या तुमने कोई ऐसा क्षण जाना है जब तुम न यह थे न वह। जब तुम ठीक माध्य में थे, ठीक बीच में थे?

मन अविलंब एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। अगर तुम सुखी हो तो देर-अबेर तुम दुःख की तरफ गति कर जाओगे। और शीध्र गति कर जाओगे। सुख विदा हो जाएगा। और तुम दुःख में हो जाओगे। अगर तुम्हें अभी अच्छा लग रहा है तो देर अबेर तुम्हें बुरा लगने लगेगा। और तुम बीच में कहीं नहीं रुकते, इस छोर से सीधे उस छोर पर चले जाते हो। घड़ी के पैंडुलम की तरह तुम बांए से दाएं और बाएं डोलते रहते हो। और पैंडुलम डोलता ही रहता है।

एक गुह्म नियम है। जब पैंडुलम बायी और जाता है तो लगता तो है कि बायी और जा रहा है। लेकिन सच में तब वह दायी और जाने के लिए शक्ति जुटा रहा है। और वैसे ही जब वह दायी और जा रहा है तो बायी और जाने के लिए शक्ति जुटा रहा है। तो जैसा दिखाई पड़ता है वैसा ही नहीं है। जब तुम सुखी हो रहे हो तो तुम दुःखी होने के लिए शक्ति जुटा रहे हो। और जब तुम्हें हंसते देखता हूं तो जानता हूं कि रोने का क्षण दूर नहीं है।

भारत के गांवों में माताएं यह जानती है। जब कोई बच्चा बहुत हंसने लगता है तो वे कहती है कि उसका हंसना बंद करो, अन्यथा वह रोएगा। वह होने ही वाला है। अगर कोई बच्चा बेहद खुश हो तो उसका अगला कदम दुःख में पड़ने ही वाला है। इसलिए माताएं उसे रोकती है, अन्यथा वह दुःखी होगा।

लेकिन यही नियम विपरीत ढंग से भी लागू होता है। और लोग यह नहीं जानते है। कोई बच्चा रोता हे तो तुम उसे रोने से रोकते हो तो तुम उसका रोना ही नहीं रोकते हो, तुम उसका लगता कदम भी रोक रहे हो। अब वह सुखी भी नहीं हो पाएगा। बच्चा जब रोता है तो उसे रोने दो। बच्चा जब रोता है तो उसे मदद दो कि और रोंए। जब तक उसका रोना समाप्त होगा। वह शक्ति जुटा लेगा। वह सुखी हो सकेगा।

अब मनोवैज्ञानिक कहते है कि जब बच्चा रोता-चीखता हो तो उसे रोको मत, उसे मनाओ मत, उसे बहलाओ मत। उसके ध्यान को रोने से हटाकर कहीं अन्यत्र ले जाने की कोशिश मत करो, उसे रोना बंद करने के लिए रिश्वत मत दो। कुछ मत करो; बस उसके पास मौन बैठे रहो और उसे रोने दो। चिल्लाने दो। तब वह आसानी से सुख की और गति कर पाएगा। अन्यथा न वह रो सकेगा। और न सुखी हो सकेगा।

हमारी यह स्थिति है। हम कुछ नहीं कर पाते है। हम हंसते है तो आधे दिल से और रोते है तो आधे दिल से। लेकिन यही मन का प्राकृतिक नियम है; वह एक छोर से दूसरे छोर पर गति करता रहता है। यह विधि इस प्राकृतिक नियम को बदलने के लिए है।

''प्रिये, न सुख में और न दुःख में, बल्कि दोनों के मध्य में अवधान को स्थिर करो।''

किन्हीं भी ध्रुवों को, विपरीतताओं को चुनो और उनके मध्य में स्थित होने की चेष्टा करो। इस मध्य में होने के लिए तुम क्या करोगे। मध्य में कैसे होओगे?

एक बात कि जब दुख में होते हो तो क्या करते हो? जब दुःख आता है तो तुम उससे बचना चाहते हो। भागना चाहते हो। तुम दुःख नहीं चाहते। तुम उससे भागना चाहते हो। तुम्हारी चेष्टा रहती हे कि तुम उससे विपरीत को पा लो। सुख को पा लो। आनंद को पा लो। और जब सुख आता है तो तुम क्या करते हो? तुम चेष्टा करते हो कि सुख बना रहे। ताकि दुःख न आ जाए; तुम उससे चिपके रहना चाहते हो। तुम सुख को पकड़कर रखना चाहते हो और दुःख से बचना चाहते हो। यही स्वाभाविक दृष्टिकोण है, ढंग है।

अगर तुम इस प्राकृतिक नियम को बदलना चाहते हो, उसके पास जाना चाहते हो, तो जब दुःख आए तो उससे भागने की चेष्टा मत करो; उसके साथ रहो। उसको भोगो। ऐसा करके तुम उसकी पूरी प्राकृतिक व्यवस्था को अस्तव्यस्त कर दोगे।

तुम्हें सिरदर्द है; उसके साथ रहो। आंखें बंद कर लो और सरदर्द पर ध्यान करो, उसके साथ रहो। कुछ भी मत करो; बस साक्षी रहो। उससे भागने की चेष्टा मत करो। और जब सुख आए और तुम किसी क्षण विशेष रूप से आनंदित अनुभव करो तो उसे पकड़कर उससे चिपक मत जाओ। आंखें बंद कर लो और उसके साथ साक्षी हो जाओ।

सुख को पकड़ना और दुःख से भागना भूल भरे चित के स्वाभाविक गुण है। और अगर तुम साक्षी रह सको तो देर अबेर तुम मध्य को उपलब्ध हो जाओगे। प्राकृतिक नियम तो यही है कि एक से दूसरी अति पर आते-जाते रहो। अगर तुम साक्षी रह सके तो तुम मध्य में रह सकोगे।

बुद्ध ने इसी विधि के कारण अपने पूरे दर्शन को मज्झम निकाय—मध्य मार्ग कहा है। वे कहते है कि सदा मध्य में रहो; चाहे जो भी विपरीतताएं हों, तुम सदा मध्य में रहो। और साक्षी होने से मध्य में हुआ जा सकता है। जि क्षण तुम्हारा साक्षी खो जाता है तुम या तो आसक्त हो जाते हो या विरक्त। अगर तुम विरक्त हुए तो दूसरी अति पर चले जाओगे और आसक्त हुए तो इस अति पर बने रहने की चेष्टा करोगे। लेकिन तब तुम कभी मध्य में नहीं होगे। सिर्फ साक्षी बनो; न आकर्षित होओ और न विकर्षित ही।

सिरदर्द है तो उसे स्वीकार करो। वह तथ्य है। जैसे वृक्ष है, मकान है, रात है, वैसे ही सिरदर्द है। आँख बंद करो और उसे स्वीकार करो। उससे बचने की चेष्टा मत करो। वैसे ही तुम सुखी हो तो सुख के तथ्य को स्वीकार करो। उससे चिपके रहने की चेष्टा मत करो। और दुःखी होने का प्रयत्न भी मत करो; कोई भी प्रयेत्न मत करो। सुख आता है तो आने दो; दुःख आता है तो आने दो। तुम शिखर पर खड़े दृष्टा बने रहो। जो सिर्फ चीजों को देखता है। सुबह आती है। शाम आती है। फिर सूरज उगता है। और डूबता है। तारे है और अँधेरा है, फिर सूर्योदय—और तुम शिखर पर खड़े दृष्टा हो।

तुम कुछ कर नहीं सकते; तुम सिर्फ देखते रहते हो। सुबह आती है, इस तथ्य को तुम भलीभाँति देख लेते हो और तुम जानते हो कि अब सांझ जाएगी। क्योंकि सांझ सुबह के पीछे-पीछे आती है। वैसे ही जब सांझ आती है। तो तुम उसे भी भलीभाँति देख लेते हो और तुम जानते हो कि अगर सुबह आएगी, क्योंकि सुबह सांझ के पीछे-पीछे आती है। जब दुःख है तो तुम उसके भी साक्षी हो। तुम जानते हो कि दुःख आया है, देर अबेर वह चला जाएगा। और उसका विपरीत ध्रुव आ जाएगा और जब सुख आता है। तो तुम जानते हो कि वह सदा नहीं रहेगा। दुःख कहीं पास ही छिपा होगा। आता ही होगा। तुम खुद द्रष्टा ही बने रहते हो।

अगर तुम आकर्षण और विकर्षण के बिना, लगाव और दुराव के बिना देखते रहे तो तुम मध्य में आ जाओगे। और जब पैंडुलम बीच में ठहर जाएगा। तो तुम पहली दफा देख सकोगे कि संसार क्या है। जब तक तुम दौड़ रहे हो, तुम नहीं जान सकते कि संसार क्या है। तुम्हारी दौड़ सब कुछ को भ्रांत कर देती है। धूमिल कर देती है। और जब दौड़ बंद होगी तो तुम संसार को देख सकोगे। तब तुम्हें पहली बार सत्य के दर्शन होंगे। अकंप मन ही जानता है कि सत्य क्या है। कंपित मन सत्य को नहीं जान सकता।

तुम्हारा मन ठीक कैमरे की भांति है। अगर तुम चलते हुए फोटो लेते हो तो जो भी चित्र बनेगा वह धुंधला-धुंधला ही होगा। असपष्ट होगा। विकृत होगा। कैमरे को हिलना नहीं चाहिए। कैमरा हिलेगा तो चित्र बिगड़ेगा ही।

तुम्हारी चेतना एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव पर गति करती रहती है। और इस भांति तुम जो सत्य जानते हो वह भ्रांति है, दुख स्वप्न है। तुम नहीं जानते हो कि क्या-क्या है। सब भ्रम है, सब धुआं-धुंआ है। सत्य से तुम वंचित रह जाते हो। सत्य को तुम तब जानते हो जब तुम मध्य में ठहर जाता है। और तुम्हारी चेतना वर्तमान के क्षण में होती है। केंद्रित होती है। अचल और अकंप चित ही सत्य को जानता है।

''प्रिये, न सुख में और न दुःख में, बल्कि दोनों के मध्य में अवधान को स्थिर करो।''

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-37

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—60 (ओशो)

साक्षित्व की चौथी विधि–

''विषय और वासना जैसे दूसरों में है वैसे ही मुझमें है

''विषय और वासना जैसे दूसरों में है वैसे ही मुझमें है। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।''

यह विधि बहुत सहयोगी हो सकती है। जब तुम क्रोधित होते हो तो तुम सदा अपने क्रोध को उचित मानते हो। लेकिन जब कोई दूसरा क्रोधित होता है तो तुम उसकी सदा आलोचना करते हो। तुम्हारा पागलपन स्वाभाविक है; दूसरे का पागलपन विकृति है। तुम जो भी कहते हो वह शुभ है—शुभ नहीं तो कम से कम उसे करना जरूरी था। तुम अपने कृत्य के लिए सदा कुछ औचित्य खोज लेते हो, उसे तर्कसम्मत बना लेते हो। और जब वहीं काम दूसरा करता है तो वही औचित्य, वहीं तर्क लागू नहीं होता है।

तुम क्रोध करते हो तो कहते हो कि दूसरे के हित के लिए यह जरूरी था; अगर मैं क्रोध न करता तो दूसरा बर्बाद ही हो जाता। वह किसी बुरी आदत का शिकार हो जाता है, इसलिए उसे दंड देना जरूरी था; यह उसके भले के लिए था। लेकिन जब दूसरा तुम पर क्रोध करता है तो वही तर्क सारणी उस पर नहीं लागू की जाती है। दूसरा पागल है, दूसरा दुष्ट है।

हमारे मापदंड सदा दोहरे है; अपने लिए एक मापदंड है और शेष सबके लिए दूसरे मापदंड है। यह दोहरे मापदंड वाला मन सदा दुःख में रहेगा। यह मन ईमानदार नहीं है। सम्यक नहीं है। और जब तक तुम्हारा मन, ईमानदार नहीं होता, तुम्हें सत्य की झलक नहीं मिल सकती है। और एक ईमानदार मन ही दोहरे मापदंड से मुक्त हो सकता है।

जीसस कहते है: दूसरों के साथ वह व्यवहार मर करो। जो व्यवहार तुम न चाहोगे कि तुम्हारे साथ किया जाए।

यह विधि एक मापदंड की धारणा पर आधारित है।

तुम अपवाद नहीं हो; यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि मैं अपवाद हूं। अगर तुम सोचते हो कि मैं अपवाद हूं तो भलीभाँति जान लो कि ऐसे ही हर सामान्य मन सोचता है। यह जानना कि मैं सामान्य हूं जगत में सबसे असामान्य घटना है।

किसी न सुजुकी से पूछा कि तुम्हारे गुरु में असामान्य क्या था? सुजुकी स्वयं झेन गुरु था। सुजुकी ने कहा कि उनके संबंध में मैं एक चीज कभी न भूलूंगा कि मैंने कभी ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जो अपने को इतना सामान्य समझता हो। वे बिलकुल सामान्य थे और वही उनकी सबसे बड़ी असामान्यता थी। अन्यथा साधारण व्यक्ति भी सोचता है कि मैं असामान्य हूं, अपवाद हूं।

लेकिन कोई व्यक्ति असामान्य नहीं है। और तुम अगर यह जान लो तो तुम असामान्य हो जाते हो। हर आदमी दूसरे आदमी जैसा है। जो वासनाएं तुम्हारे भीतर चक्कर लगा रही है वे ही दूसरों के भीतर घूम रही है। लेकिन तुम अपनी कामवासना को प्रेम कहते हो और दूसरों के प्रेम को कामवासना कहते हो। तुम खुद जो भी करते हो, उसका बचाव करते हो तुम कहते हो कि वह शुभ काम है। इसलिए कहता हूं। और वही काम जब दूसरे करते है तो वह वही नहीं रहते, वह शुभ नहीं रहते।

और यह बसत व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है। जाति और राष्ट्र भी यही करते है। अगर भारत अपनी सेना बढ़ाता है तो वह सुरक्षा का प्रयत्न है और जब चीन अपनी सेना को मजबूत करता है तो वह आक्रमण की तैयारी हे। दुनिया की हर सरकार अपने सैन्य संस्थान को सुरक्षा संस्थान कहती है। तो फिर आक्रमण कौन करता है? जब सभी सुरक्षा में लगे है तो आक्रामक कौन है? अगर तुम इतिहास देखोगें तो तुम्हें कोई आक्रामक नहीं मिलेगा। हां, जो हार जाते है वह आक्रामक करार दे दिए जाते है। पराजित लोग सदा आक्रामक माने गए है। क्योंकि वे इतिहास नहीं लिख सकते है। इतिहास तो विजेता लिखते है।

अगर हिटलर विजयी हुआ होता तो इतिहास दूसरा होता। तब वह आक्रामक नहीं, संसार का रक्षक माना जाता। तब चर्चिल, रूजवेल्ट और उनके मित्र गण आक्रामक माने जाते। और कहा जाता कि उन्हें मिटा डालना अच्छा हुआ। लेकिन क्योंकि हिटलर हार गया। वह आक्रामक हो गया। तो न सिर्फ व्यक्ति, बल्कि जाति और राष्ट्र भी वही तर्क पेश करते है; अपने को औरों से भिन्न बताते है।

कोई भी भिन्न नहीं है। धार्मिक चित वह है जो जानता है कि प्रत्येक व्यक्ति समान है। इसलिए तुम जो तर्क अपने लिए खोज लेते हो वही दूसरों के लिए भी उपयोग करो। और अगर तुम दूसरों की आलोचना करते हो तो उसी आलोचना को अपने पर भी लागू करो। दोहरे मापदंड मत गढ़ो। एक मापदंड रखने से तुम पूरी तरह रूपांतरित हो जाओगे। एक मापदंड तुम्हें ईमानदार बनाएगा। और पहली दफा तुम सत्य को सीधा देखोगें जैसा वह है।

''विषय और वासना जैसे दूसरों में है वैसे ही मुझमें है। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।''

तुम उन्हें स्वीकार कर लो और वे रूपांतरित हो जाएंगी। लेकिन हम क्या कर रहे है? हम स्वीकार करते है कि विषय-वासना दूसरों में है। जो-जो गलत है वह दूसरों में है और जो-जो सही है वह तुम में है। तब तुम रूपांतरित कैसे होगे? तुम तो रूपांतरित हो ही। तुम सोचते हो कि मैं तो अच्छा ही हूं। दूसरे सब लोग बुरे है। रूपांतरण की जरूरत संसार को है। तुम्हें नहीं।

इसी दृष्टिकोण के कारण नेता, क्रांतियां और पैगंबर पैदा होते है। वे घर के मुँडेरों पर चढ़कर चिल्लाते है। कि दुनियां को बदलना है। कि इंकलाब लाना है। हम क्रांति पर क्रांति किए जाते है। और कुछ भी नहीं बदलता है। मनुष्य वही का वहीं है। दुनियां पुराने दुखों से ही ग्रस्त रहती है। चेहरे और नाम बदल जाते है; पर दूःख बना रहता है।

दुनिया को बदलने की बात नहीं है। तुम गलत हो। प्रश्न है कि तुम कैसे बदलों धार्मिक प्रश्न यह है कि मैं कैसे बदलूं? दूसरों को बदलने की बात राजनीति है। राजनीतिज्ञ सोचता है कि मैं तो बिलकुल ठीक हूं, कि मैं तो आदर्श हूं, जैसा कि सारी दुनियां को होना चाहिए। वह अपने को आदर्श मानता है। वह आदर्श पुरूष है। और उसका काम दुनिया को बदलना है।

धार्मिक व्यक्ति जो कु छ भी दूसरों से देखता है उसे अपने भीतर भी देखता है। अगर हिंसा है तो वह सोचता है कि यह हिंसा मुझमें है या नहीं। अगर लोभ है, अगर उसे कहीं लोभ दिखाई पड़ता है तो उसका पहला ख्याल यह होता है कि यह लोभ मुझमें है या नहीं। और जितना ही खोजता है वह पाता है कि मैं ही सब बुराई का स्त्रोत हूं। तब फिर प्रश्न उठता ही नहीं। कि संसार कैसे बदले। तब फिर प्रश्न यह है कि अपने को कैसे बदला जाए। और बदलाहट उसी क्षण लगती है। जब तुम एक मापदंड अपनाते हो। उसे अपनाते ही तुम बदलने लगते हो।

दूसरों की निंदा मत करो। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अपनी निंदा करो। नहीं, बस दूसरों की निंदा मत करो। और अगर तुम दूसरों की निंदा करते हो तो तुम्हें उनके प्रति गहन करूणा का भा होगा। क्योंकि सब की समस्याएं समान है। अगर कोई पाप करता है—समाज की नजर में जो पाप है—तो तुम उसकी निंदा करने लगते हो। तुम यह नहीं सोचते हो कि तुम्हारे भीतर भी उस पाप के बीज पड़े है। अगर कोई हत्या करता है तो तुम उसकी निंदा करते हो।

लेकिन क्या तुमने कभी किसी की हत्या करने का विचार नहीं किया है? क्या उसका बीज, उसकी संभावना तुम्हारे भीतर भी नहीं छिपी है। जि आदमी ने हत्या की है वह एक क्षण पूर्व हत्यारा नहीं था। लेकिन उसका बीज उसमें था। वह बीज तुममें भी है। एक क्षण बाद कौन जानता है कि तुम भी हत्यारे हो सकते हो। उसकी निंदा मत करो। बल्कि स्वीकार करो। तब तुम्हें उसके प्रति गहन करूणा होगी। क्योंकि उसने जो कुछ किया है वह कोई भी कर सकता है। तुम भी कर सकते हो।

निंदा से मुक्त चित में करूणा होती है। निंदा रहित चित में गहन स्वीकार होता है। वह जानता है कि मनुष्यता ऐसी है, कि मैं भी ऐसा ही हूं, तब सारा जगत तुम्हारा प्रतिबिंब बन जाएगा; वह तुम्हारे लिए दर्पण का काम देगा। तब प्रत्येक चेहरा तुम्हारे लिए आईना होगा; तुम प्रत्येक चेहरे में अपने को ही देखोगें।

‘’विषय और वासना जैसे दूसरों में है वैसे ही मुझमें है। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।‘’

स्वीकार ही रूपांतरण बन जाता है। यह समझना कठिन है। क्योंकि हम सदा इनकार करते है और उसके बावजूद हम बिलकुल नहीं बदल पाते है। तुममें लोभ है, लेकिन तुम उसे अस्वीकार करते हो। कोई भी अपने को लोभी मानने को राज़ी नहीं है। तुम कामुक हो, लेकिन तुम उसे अस्वीकार करते हो। कोई भी अपने को कामुक मानने को राज़ी नहीं है। तुम क्रोधी हो, लेकिन तुम उसे इनकार कर देते हो। तुम एक मुखौटा ओढ़ लेते हो। और उसे उचित बताने की चेष्टा करते हो। तुम कभी नहीं सोचते कि मैं क्रोधी हूं।

लेकिन अस्वीकार से कभी कोई रूपांतरण नहीं होता। उससे चीजें दमित हो जाती है। लेकिन जो चीज दमित होती है वह और भी शक्तिशाली हो जाती है। वह तुम्हारी जड़ों तक पहुंच जाती है। तुम्हारे अचेतन में गहराई तक उतर जाती है। वहां से काम करने लगती है। और अचेतन के उस अंधेरे में वह वृति और भी शक्ति शाली हो जाती है। और अब तुम उसे और भी नहीं स्वीकार कर सकते, क्योंकि तुम्हें उसका बोध भी नहीं है।

स्वीकृति सबको ऊपर ले आती है। दमन करने की जरूरत नहीं है। तुम जानते हो कि मैं लोभी हूं। तुम जानते हो कि मैं क्रोधी हूं, तुम जानते हो कि मैं कामुक हूं। तुम उन वृतियां को बिना किसी निंदा के स्वाभाविक तथ्य की तरह स्वीकार कर लेते हो। उन्हें दमित करने की जरूरत नहीं है। वे वृतियां मन की सतह पर आ जाती है। और वहां से उन्हें बहुत आसानी से विसर्जित किया जा सकता है। गहरे अचेतन में उनका विसर्जन संभव नहीं है। और जब वे सतह पर होती है तो तुम उनके प्रति होश पूर्ण

होते हो; जब वे अचेतन में होती है तो तुम उनके प्रति बेहोश बने रहते हो। और उस रोग से ही मुक्ति संभव है जिसके प्रति तुम होश पूर्ण हो; जिसके प्रति तुम बेहोश हो उस रोग से मुक्त नहीं हो सकती।

प्रत्येक चीज को सतह पर ले आओ। अपनी मनुष्यता को स्वीकार करो; अपनी पशुता को स्वीकार करो। जो भी है उसे बिना किसी निंदा के स्वीकार करो। लोभ है; उसे अलोभ में बदलने की चेष्टा मत करो। तुम उसे नहीं बदल सकते हो। और अगर तुम उसे अलोभ बनाने की चेष्टा करोगे तो तुम उसका दमन करोगे। तुम्हारा अलोभ और कुछ नहीं, केवल दूसरे ढंग का लोभ है। अगर तुम लोभ को बदलने की कोशिश करोगे तो क्या करोगे? लोभी मन अलोभ के आदर्श के प्रति तभी आकर्षित होता है जब उसका कोई और लोभ उससे साधने वाला हो।

अगर कोई तुम्हें कहता है कि यदि तुम अपने सारे धन का त्याग कर दो तो तुम्हें परमात्मा के राज्य में प्रवेश मिल जाएगा। तो तुम सदा त्याग करने को भी तैयार हो जाओगे। अब एक नया लोभ संभव हो गया। यह सौदा है। तो लोभ को अलोभ नहीं बनाना है। लोभ का अतिक्रमण करना है। तुम उसे बदल नहीं सकते। तो लोभ को अलोभ मत बनाओ। तुम एक चीज को दूसरी चीज में बदल नहीं सकते हो। केवल सिर्फ सजग हो सकते हो। तुम सिर्फ स्वीकार कर सकते हो। लोभ को लोभ की तरह स्वीकार करो।

स्वीकार का यह अर्थ नहीं है कि उसे रूपांतरित करने की जरूरत नहीं है। स्वीकार का इतना ही अर्थ है कि तुम तथ्य को, स्वाभाविक तथ्य को स्वीकार करते हो; जैसा वह है वैसा ही स्वीकार करते हो। तब जीवन में यक जानकर गति करो कि लोभ है। तुम जो भी करो यह स्मरण रखकर करो कि लोभ है। यह बोध तुम्हें रूपांतरित कर देगा। यह रूपांतरित करता है। क्योंकि बोधपूर्वक तुम लोभी नहीं हो सकते हो। बोधपूर्वक तुम क्रोधी नहीं हो सकते। क्रोध के लिए, लोभ के लिए, हिंसा के लिए, मूर्च्छा बुनियादी शर्त है।

यह वैसा ही है जैसे तुम जान-बूझकर जहर नहीं खा सकते। जान बूझकर तुम अपना हाथ आग में नहीं डाल सकते हो। अनजाने ही ऐसा कर सकते हो। अगर तुम्हें नहीं पता है कि आग क्या है। तो ही तुम उसके हाथ डाल सकते हो। यदि जानते हो। अगर तुम्हें नहीं पता है कि आग क्या है तो ही तुम उसके हाथ डाल सकते हो। यदि जानते हो कि आग जलाती है। तो तुम उसमें हाथ नहीं डाल सकते।

जैसे-जैसे तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारा बोध, वैसे-वैसे लोभ तुम्हारे लिए आग बन जाएगा। क्रोध जहर बन जायेगा। तब वे बस असंभव हो जाते है। और दमन न हो तो वे सदा के लिए विसर्जित हो जाते है। और जब लोभ अलोभ के आदर्श के बिना विसर्जित होता है। तो उसका अपना ही सौंदर्य है। जब हिंसा अहिंसा के आदर्श के बिना विसर्जित होती है तो उसका अपना ही सौंदर्य है।

अन्यथा जो व्यक्ति आदर्श के अनुसार अहिंसक बनता है वह गहरे में हिंसक, अति हिंसक बना रहता है। वह हिंसा उसमें छिपी रहती है। और तुम्हें उसकी झलक उसकी अहिंसा में भी मिल सकती है। वह अपनी अहिंसा को अपने पर और दूसरों पर बहुत हिंसक ढंग से थोपेगा। उसकी हिंसा सूक्ष्म ढंग ले लेगी।

यह सूत्र कहता है कि स्वीकार रूपांतरण है, क्योंकि स्वीकार से बोध संभव होता है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-37

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—61 (ओशो)

‘’जैसे जल से लहरें उठती है और अग्‍नि से लपटें, वैसे ही सर्वव्‍यापक हम से लहराता है।‘’

जैसे जल से लहरें उठती है और अग्‍नि से लपटें,……..शिव

पहले तो यह समझने की कोशिश करो लहर क्‍या है, और तब तुम समझ सकते हो कि कैसे यह चेतना की लहर तुम्‍हें ध्‍यान में ले जाने में सहयोगी हो सकती है।

तुम सागर में उठती लहरों को देखते हो। वे प्रकट होती है; एक अर्थ में वे है, और फिर भी किसी गहरे अर्थ में वे नहीं है। लहर के संबंध में समझने की यह पहली बात है। गहरे अर्थ में प्रकट होती है; एक अर्थ में लहर है। लेकिन किसी गहरे अर्थ में लहर नहीं है। गहरे अर्थ में सिर्फ सागर है। सागर के बिना लहर नहीं हो सकती। और जब लहर है भी तो भी यह सागर ही है। लहर रूप भर है। सत्‍य नहीं है। सागर सत्‍य है। लहर केवल रूप है।
भाषा के कारण अनेक समस्‍याएं उठ खड़ी होती है। क्‍योंकि हम कहते है लहर, इससे लगता है कि लहर कुछ है। बेहतर हो कि हम लहर न कहकर लहराना कहें। लहर नहीं, लहराना ही है। वह कोई वस्‍तु नहीं है, एक क्रिया है। वह एक गति है, प्रक्रिया है; वह कोई पदार्थ नहीं है। वह कोई तत्‍व सत्‍य नहीं है। पदार्थ या तत्‍व तो सागर है; लहर एक रूप भर है।

सागर शांत हो सकता है। तब लहरें विलीन हो जाएंगी। लेकिन सागर तो रहेगा। सागर शांत हो सकता है। या बहुत सक्रिय और क्षुब्‍ध हो सकता है; या सागर निष्‍क्रिय हो सकता है। लेकिन तुम्‍हें कोई शांत लहर देखने को नहीं मिलेगी। लहर सक्रियता है, सत्‍य नहीं। जब सक्रियता है तो लहर है; यह लहराना है, गति है, हलन चलन है—एक साधारण सी हलचल। लेकिन जब शांति आती है। जब निष्‍क्रियता आती है तो लहर नहीं रहती। लेकिन सागर रहता है। दोनों अवस्‍थाओं में सागर सत्‍य है। लहर उसका एक खेल है। लहर उठती है। खो जाती है। लेकिन सागर रहता है।

दूसरी बात लहरें अलग-अलग दिखती है। प्रत्‍येक लहर का अपना व्‍यक्‍तित्‍व है। अनूठा औरों से भिन्‍न। कोई दो लहरें समान नहीं होती। कोई लहर बड़ी होती है। कोई छोटी उनके अपने-अपने विशिष्‍ट लक्षण होते है। प्रत्‍येक लहर का निजी ढंग होता है। और निश्‍चित ही प्रत्‍येक लहर दूसरे से भिन्‍न होती है। एक लहर उठ रही होती है, दूसरी मिट रही होती है। जब एक उठती है

तो दूसरी गिरती है। दोनों एक नहीं हो सकती। क्योंकि एक जन्म ले रही होती है और दूसरी मिट रही होती है। फिर भी दोनों लहरों के पीछे जो सत्य है वह एक ही है।

लेकिन संभव है कि उठती हुई लहर मिटने वाली लहर से ऊर्ज ग्रहण कर रही हो। मिटने वाली लहर अपनी मृत्यु के द्वारा उसे उठने में मदद कर रही हो। बिखरने वाली लहर उस लहर के लिए कारण बन सकती है जो उठ रही है। बहुत गहरे में वि एक ही सागर से जुड़ी है। वे भिन्न नहीं है। वे पृथक नहीं है। उनका व्यक्तित्व झूठ है, भ्रामक है। वे जुड़ी है। उनका द्वैत भासता है। लेकिन है नहीं। उनका अद्वैत सत्य है।

अब सूत्र को फिर से पढ़ता हूं: ''जैसे जल से लहरें उठती है, और अग्नि से लपटें, वैसे ही सर्वव्यापक हम से लहराता है।''

हम जागतिक सागर में लहर मात्र है। इस पर ध्यान करो; इस भाव को अपने भीतर खूब गहरे उतरने दो। अपनी श्वास को उठती हुई लहर की तरह महसूस करना शुरू करो। तुम श्वास लेते हो; तुम श्वास छोड़ते हो। जो श्वास अभी तुम्हारे अंदर जा रही है वह एक क्षण पहले किसी दूसरे की श्वास थी। और जो श्वास अभी तुम्हारे से बहार जा रही है। वही श्वास अगले क्षण किसी दूसरी की श्वास हो जायेगी। श्वास लेना जीवन के सागर में लहरों के उठनें-गिरने जैसा ही है। तुम पृथक नहीं हो, बस लहर हो। गहराई में तुम एक हो। हम सब इकट्ठे है, संयुक्त है। वैयक्तिकता झूठी है। भ्रामक है। इसलिए अहंकार एकमात्र बाधा है। वैयक्तिकता झूठी है। वह भासती है। लेकिन सत्य नहीं है। सत्य तो अखंड है, सागर है, अद्वैत है।

यही कारण है कि प्रत्येक धर्म अहंकार के विरोध में है। जो व्यक्ति कहता है कि ईश्वर नहीं है वह अधार्मिक न भी हो, लेकिन जो कहता है कि मैं हूं वह अवश्य अधार्मिक है।

गौतम बुद्ध नास्तिक थे; वे किसी ईश्वर में विश्वास नहीं करते थे। महावीर वर्धमान नास्तिक थे। उन्हें भी किसी ईश्वर में विश्वास नहीं था। लेकिन वे पहुंच गए, उन्होंने पाया; वे समग्रता को, पूर्ण को उपलब्ध हुए। अगर तुम्हें किसी परमात्मा में विश्वास नहीं है तो तुम अधार्मिक नहीं हो। क्योंकि धर्म के लिए ईश्वर बुनियादी नहीं है। धर्म के लिए निरहंकार बुनियादी है। और अगर तुम ईश्वर में विश्वास भी करते हो, लेकिन अहंकार भरे मन सक विश्वास करते हो तो तुम अधार्मिक हो। अहंकार रहित मन के लिए ईश्वर में विश्वास की भी जरूरत नहीं है। निरहंकारी व्यक्ति अपने आप ही, सहज ही परमात्मा में लीन हो जाता है। निरहंकारी होकर तुम लहर से नहीं चिपके रह सकते हो; तुम्हें सागर में गिरना ही होगा। अहंकार लहर से चिपका रहता है। जीवन को सागर की भांति देखो और अपने को लहर मात्र समझो; और इस भाव को अपने भीतर उतरने दो।

इस विधि को तुम कई ढंग से उपयोग में ला सकते हो। श्वास लेते हो तो भाव करो कि सागर ही तुम्हारे भीतर श्वास ले रहा है; सागर ही तुम्हारे भीतर आता है। और बाहर जाता है। प्रत्येक श्वास के साथ महसूस करो। जब लहर मिट रही है, उन दोनों के बीच तुम कौन हो। बस एक शुन्य एक खाली पन।

उस शून्यता के भाव के साथ तुम रूपांतरित हो जाओगे। उस खालीपन के भाव के साथ तुम्हारे सब दुःख विलीन हो जायेगे। क्योंकि दुःख को होने के लिए किसी केंद्र की जरूरत होती है। वह भी झूठे केंद्र की। शुन्य ही तुम्हारा असली केंद्र है। उस शून्य में दुःख नहीं है। उस शून्य में तुम गहन विश्राम में होते हो। जब तुम ही नहीं हो तो तनावग्रस्त कौन होगा। तुम तब आनंद से भर जाते हो। ऐसा नहीं है कि तुम आनंदपूर्ण होते हो; सिर्फ आनंद होता है। तुम्हारे बिना क्या तुम दुःख निर्मित कर सकते हो।

यही कारण है कि बुद्ध कभी नहीं कहते है कि उस अवस्था में, परम अवस्था में आनंद होगा। वे ऐसा नहीं कहते; वे यही कहते है कि दुःख नहीं होगा। बस। आनंद की बात करने से तुम भटक सकते हो, इसलिए बुद्ध आनंद की बात नहीं करते। वे कहते है कि आनंद की बात ही मत करो। सिर्फ जानो कि दुःख से कैसे मुक्त हुआ जाए; उसका मतलब है कि अपने बिना खुद के बिना कैसे हुआ जाए।

हमारी समस्या क्या है? समस्या यह है कि लहर अपने को सागर से पृथक मानती है। तब समस्याएं उठ खड़ी होती है। अगर लहर को सागर से पृथक मानती है तो उसे तुरंत मृत्यु का भय पकड़ता है। लहर तो मिटेगी। लहर अपने चारों और अन्य लहरों को मिटते हुए देख सकती है। लहर जानती है कि उसके उठने में ही कहीं मृत्यु छिपी है। क्योंकि दूसरी लहरें भी तो क्षण भर पहले उठ रही थी और अब वे गिर रही है। बिखर रही है। मिट रही है। तुम्हें भी मिटना होगा।

अगर लहर अपने को सागर से पृथक मानती है तो देर-अबेर मृत्यु का भय उसे अवश्य घेरेगा। लेकिन अगर लहर जान ले कि मैं नहीं हूं, सागर है। तो मृत्यु का कोई भय नहीं है। लहर ही मरती है; सागर नहीं मरता। मैं मर सकता हूं; लेकिन जीवन नहीं मरता। तुम मर सकते हो, तुम मरोगे। लेकिन जीवन नहीं मरेगा। अस्तित्व नहीं मरेगा। अस्तित्व तो लहराता ही जाता है। वह तुममें लहराया है; वह दूसरों में लहराएगा। और जब तुम्हारी लहर बिखर रही होगी; तो संभव है कि तुम्हारे बिखराव में से ही दूसरी लहरें उठे। सागर जारी रहता है।

जब तुम अपने को लहर के रूप में पृथक देख लेते हो तो सागर के साथ, अरूप के साथ एक जान लेते हो। एकात्म अनुभव करते हो। प्रत्येक संताप में, प्रत्येक चिंता में मृत्यु का भय मूलभूत है। तुम भयभीत हो, कांप रहे हो। चाहे तुम्हें इसका बोध न हो, लेकिन अगर तुम अपने अंतस में प्रवेश करोगे। तो पाओगे। कि प्रत्येक क्षण तुम कांप रहे हो, क्योंकि तुम मरने वाले हो। तुम अनेक सुरक्षा के उपाय कर सकते हो, तुम अपने चारों और क़िलाबंदी कर सकते हो; लेकिन कुछ भी काम न देगा। कुछ भी काम नहीं देगा। धूल-धूल में जा मिलती है। तुम धूल में मिलने ही वाले हो।

क्या तुमने कभी इस बात पर गौर किया है, इस तथ्य पर ध्यान किया है। कि अभी तुम रास्ते पर चल रहे हो तो जो धूल तुम्हारे जूते पर जमा हो रही है, हो सकता है वह धूल किसी नेपोलियन, किसी सिकंदर के शरीर की धूल हो। सिकंदर इस समय कही न कही धूल बना पडा है। और हो सकता है। कि तुम्हारे जूते से चिपकी धूल सिकंदर के शरीर की ही धूल हो। यही तुम्हारी भी हाल होने वाला है। इस क्षण तुम हो और अगले क्षण तुम नहीं होगे। यही तुम्हारा भी हाल होने वाला है। देर-अबेर धूल-धूल में मिल जाएगी। लहर विदा हो जायेगी।

भय पकड़ता है। जरा कल्पना करो कि तुम किसी के जूते से चिपकी हुई धूल हो या कोई तुम्हारे शरीर से, तुम्हारी प्रेमिका के शरीर से चाक पर बर्तन गढ़ रहा हो। या कल्पना करो कि तुम किसी कीड़े के शरीर में या वृक्ष के शरीर में प्रवेश कर रहे हो। लेकिन यही हो रहा है। प्रत्येक चीज रूप है और रूप को मिटना है। केवल अरूप शाश्वत है। अगर तुम रूप से बंधे हो, अगर रूप ही तुम्हारा तादात्म्य है। अगर तुम अपने को लहर मानते हो, तो तुम अपने ही हाथों उपद्रव में पड़ने वाले हो।

तुम सागर हो, लहर नहीं। यह ध्यान सहयोगी हो सकता है। यह तुम्हारा रूपांतरण बन सकता है। लेकिन इसे अपने पूरे जीवन पर फैलने दो। श्वास लेते हुए सोचो, भोजन करते हुए सोचो, चलते हुए सोचो। दो चीजें सोचो कि रूप सदा लहर है। और अरूप सागर है। कि रूप मृण्मय है। और अरूप अमृत है।

और ऐसा नहीं है कि तुम किसी दिन मरोगे; तुम प्रतिदिन मर रहे हो। बचपन मरता है। और यौवन जन्म लेता है। फिर यौवन मरता है और बुढ़ापा जन्म लेता है। और फिर बुढ़ापा मरता है और रूप विदा हो जाता है। प्रत्येक क्षण तुम मर रहे हो; प्रत्येक क्षण तुम जन्म रहे हो। तुम्हारे जनम का पहला दिन तुम्हारे जीवन का पहला दिन नहीं है। वह तो आने वाले अनेक-अनेक जन्मों में से एक है। वैसे ही तुम्हारे इस जीवन की मृत्यु पहली मृत्यु नहीं है। वह तो सिर्फ इस जीवन की मृत्यु है। वैसे ही तुम पहले भी मरते रहे हो। प्रतिक्षण कुछ मर रहा हे। और कुछ जन्म ले रहा है। तुम्हारा एक अंश मरता है, दूसरा अंश जन्मता है।

शरीर शास्त्री कहते है कि सात वर्षों में तुम्हारे शरीर का कुछ भी पुराना नहीं बचता है। एक-एक चीज, एक-एक कोष्ठ बदल जाता है। अगर तुम सत्तर वर्ष जीने वाले हो तो इस बीच तुम्हारा शरीर दस बार बदलेगा। पूरे का पूरा बदलेगा। हर सात वर्षों में तुम्हें नया शरीर मिलता है। लेकिन यह परिवर्तन अचानक नहीं होता। प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ बदल रहा होता है।

तुम एक लहर हो और वह भी बहुत ठोस नहीं। प्रत्येक क्षण बदल रही हो। और लहर थिर नहीं हो सकती। गतिहीन नहीं हो सकती। लहर को सतत बदलते रहना है, सतत गतिमान रहना है। थिर रहना है। थिर लहर जैसी कोई चीज नहीं होती। कैसे हो सकती है? थिर लहर का कोई अर्थ नहीं है। वह गति है, प्रक्रिया है। तुम गति हो, प्रक्रिया हो। अगर तुम इस गति से तादात्म्य कर बैठे हो और अपने को जन्म और मृत्यु के बीच सीमित मानने लगते हो। तुम पीड़ा में, दुःख में पड़ोगे। तब तुम आभास को सत्य मान रहे हो। इसको ही शंकर माया कहते थे।

सागर ब्रह्म है; सागर सत्य है। अपने को लहर मानो, या उठती गिरती लहरों का एक सातत्य मानो। और उसके साक्षी होओ। तुम कुछ कर नहीं सकते हो। ये लहरें विलीन होंगी। जो प्रकट हुआ है, वह विलीन होगा, उसके संबंध में कुछ नहीं किया जा सकता है। सब प्रयत्न बिलकुल व्यर्थ है। सिर्फ एक चीज की जा सकती है। वह है इस लहर रूप का साक्षी होना। और एक बार तुम साक्षी हो गए तो तुम्हें अचानक उसका बोध हो जाएगा जा लहर के पार है। जो लहर के पीछे है, जो लहर में भी है। और लहर के बहार भी है। जिससे लहर बनती है। और जो फिर भी लहर के पार है; जो सागर है।

''जैसे-जल से लहरें उठती है। अग्नि से लपटें, वैसे ही सर्वव्यापक हम से लहराता है।''

सर्वव्यापक हमसे लहराता है। तुम नहीं हो; सर्वव्यापक है। वह तुम्हारे द्वारा लहरा रहा है। इसे महसूस करो, इसका मनन करो, इस पर ध्यान करो। और बहुत-बहुत ढंगों से इसे अपने पर घटित होने दो।

मैंने तुम्हें श्वास के संबंध में कहा। तुममें कामवासना उठती हे। उसे महसूस करो, ऐसे नहीं जैसे वह तुम्हारी कामवासना है, बल्कि ऐसे कि सागर तुममें लहरा रहा है, जीवन तुममें धड़क रहा है। जीवन तुममें लहर ले रहा है। तुम संभोग में मिलते हो ; ऐसा मत सोचो कि दो लहरें मिल रही है। ऐसा मत सोचो कि दो व्यक्ति मिल रहे है। बल्कि ऐसा सोचो कि दो व्यक्ति एक दूसरे में विलीन हो रहे है। दो व्यक्ति अब नहीं बचे; लहरें विलीन हो गई है, केवल सागर बचा है। तब संभोग ध्यान बन जाता है।

जो भी तुम्हें घटित हो रहा है। ऐसा भाव करो कि वह ब्रह्मांड को घटित हो रहा है। कि मैं उसका अंश हूं, कि मैं सतह पर एक लहर मात्र हूं, सब कुछ अस्तित्व पर छोड़ दो।

झेन सदगुरू डोजेन कहा करता था—जब उसे भूख लगती है, तो वह कहता था—कि ऐसा लगता है कि अस्तित्व को मेरे द्वारा भूख लगी है। जब उसे प्यास लगती है तो वह कहता था कि मेरे भीतर अस्तित्व प्यासा है।

यह ध्यान तुम्हें उसी स्थिति में पहुंचा देगा। तब तुम्हारा अहंकार बिखर जाता है। मिट जाता है और सब कुछ ब्रह्मांड का हिस्सा हो जाता है। तब जो भी होता है। अस्तित्व को होता है। तुम अब यहां नहीं हो। और तब कोई पाप नहीं है; तब कोई जिम्मेदारी नहीं है।

अब तो केवल तुम हो; इसलिए किसके प्रति जिम्मेदार होगे?

अब अगर तुम किसी को मरते देखोगें तो तुम्हें लगेगा कि उसके साथ, उसके भीतर मैं ही मर रहा हूं। तब तुम्हें लगेगा कि पूरा जगत मर रहा है और मैं उस जगत का अंश हूं। और अगर किसी फूल को खिलते देखोगें तो तुम उसके साथ-साथ खोलोगे। अब सारा ब्रह्मांड तुममय है। और ऐसी घनिष्ठता में, ऐसा लयबद्धता में होना समाधि में होना है। ध्यान मार्ग है। और यह एकता का भाव, सब के साथ जुड़े होने का भाव मंजिल हे।

इसे प्रयोग करो। सागर को स्मरण रखो। और लहर को भूल जाओ। और ध्यान रहे, जब भी तुम लहर को स्मरण करोगे। और लहर की भांति व्यवहार करोगे। तो तुम भूल करोगे और उसके कारण दुःख में पड़ोगे। कहीं कोई ईश्वर नहीं है। जो तुम्हें दंड दे रहा है। जब भी तुम किसी भ्रांति के शिकार होते हो, तुम अपने को दंड देते हो। जगत में एक नियम है। धर्म है, ताओ है। अगर तुम इसके साथ लयबद्ध चलते हो तो तुम आनंद में हो। यदि तुम उसके विपरीत चलोगे, तुम अपने को दुःख में पाओगे। वहां आकाश में कोई नहीं बैठा है तुम्हें दंडित करने को। वहां तुम्हारे पापों को कोई बही-खाता नहीं है। न उसकी कोई जरूरत है।

यह ठीक गुरूत्वाकर्षण जैसा है। अगर तुम सही ढंग से चलते हो तो गुरूत्वाकर्षण सहयोगी होता है, गुरूत्वाकर्षण के बिना तुम चल नहीं सकते। लेकिन अगर तुम गलत ढंग से चलोगे तो गिरोगे; अपनी हड्डी भी तोड़ सकते हो। लेकिन कोई तुम्हें दंड नहीं दे रहा है। सिर्फ नियम है। गुरुत्वाकर्षण का। निरपेक्ष नियम है। अगर तुम गलत चलोगे और गिरोगे तो तुम्हारी हड्डी टूट जायेगी। और ठीक से चलोगे तो उसका मतलब है कि तुम गुरूत्वाकर्षण का सही उपयोग कर रहे हो। ऊर्जा का सही और गलत दोनों तरह से उपयोग हो सकता है।

जब तुम अपने को लहर मानते हो तो तुम जागतिक नियम के विरोध में हो, तुम सत्य के विरोध में हो। तब तुम अपने लिए दुःख निर्मित करोगे। कर्म के सिद्धांत का यही मतलब है। कोई कानून बनाने वाला नहीं है। परमात्मा कोई जज नहीं है। जज होना कुरूप बात है। और अगर ईश्वर कोई जज होता तो बिलकुल ऊब जाता। या पागल हो जाता। जगत में अपने नियम है। और बुनियादी नियम यह है कि सच्चा होना आनंद में होना है। और झूठा होना दुःख में होना है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-39

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—62 (ओशो)

''जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है, भीतर या बाहर, उसी स्थान पर, यह।''

''जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है,

मन एक द्वार है—यही मन जहां कही भी भटकता है, जो कुछ भी सोचता है। मनन करता है। सपने देखता है। यही मन और यही क्षण द्वार है।

यही एक अति क्रांतिकारी विधि है, क्योंकि हम कभी नहीं सोचते कि साधारण मन द्वार है। हम सोचते है कि कोई महान मन, कोई बुद्ध या जीसस का मन प्रवेश कर सकता है। हम सोचते है कि बुद्ध या जीसस के पास कोई असाधारण मन है। और यह सूत्र कहता है कि तुम्हारा साधारण मन ही द्वार है। यही मन जो सपने देखता है। कल्पनाएं करता है। ऊलजलूल सोच-विचार करता है। यही मन द्वार है जो कुरूप कामनाओं और वासनाओं से क्रोध और लोभ से खचाखच भरा है। जिसमें यह सब है जो निंदित है। जो तुम्हारे बस के बाहर है। जो तुम्हें यहां सक वहां भटकाता रहता है। जो सतत एक पागलखाना है। यही मन द्वार है।

''जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है.....।''
इस जहां कहीं को स्मरण रखो। भटकने का विषय महत्वपूर्ण नहीं है।

जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है। भीतर या बाहर, उसी स्थान पर, यह।''

बहुत सी बातें समझने जैसी है। एक कि साधारण मन उतना साधारण नहीं है जितना हम समझते है। साधारण मन जागतिक मन से असंबद्ध नहीं है। वह उसका ही अंश है। उसकी जड़ें अस्तित्व के केंद्र तक चली गई है। अन्यथा तुम अस्तित्व में नहीं हो सकते हो। एक पापी भी परमात्मा में आधारित है; अन्यथा यह अस्तित्व में नहीं हो सकता था। वह जो शैतान है ह भी परमात्मा के सहारे के बिना नहीं हो सकता है। अस्तित्व ही इसलिए संभव है। क्योंकि वह परमात्मा में प्रतिष्ठित है।

तुम्हारा मन स्वप्न देखता है। कल्पना करता है, भटकता है; वह तनावग्रस्त है, दुःखी है। संताप में है। वह जैसे भी गति करता है, जहां भी जाता है, वह समग्र से जुड़ा रहता है। अन्यथा संभव नहीं है। तुम अस्तित्व से भाग नहीं सकते। वह असंभव है। इसी क्षण तुम्हारे जड़ें अस्तित्व में गड़ी है। तब क्या किया जाएं?

अगर इसी क्षण हमारी जड़ें अस्तित्व में गड़ी है तो अहंकारी मन को लगेगा कि फिर तो कुछ कना नहीं है। हम तो परमात्मा में ही है। फिर इतनी आपा धापी की क्या जरूरत है। तुम्हारी जड़ें तो परमात्मा में है। लेकिन तुम इस तथ्य के प्रति मूर्छित हो। जब मन भटकता है तो दो चीजें होती है: मन और भटकाव;मन के विषय और मन; आकाश में तैरते बादल और आकाश। वहां दो चीजें है: बादल और आकाश। कभी ऐसा भी हो सकता है। कि बादल इतने हो जाते है कि आकाश छिप जाता है। तुम उसे देख नहीं सकते हो।

लेकिन जब तुम नहीं देख पाते हो तब भी आकाश विलीन नहीं होता है। वह विलीन नहीं हो सकता है। आकाश के विलीन होने का कोई उपाय नहीं है। वह है; आच्छादित या प्रकट, दृश्य आ अदृश्य है। अगर तुम बादलों पर ही ध्यान देते हो तो आकाश भूल जाता है। और अगर तुम आकाश पर ध्यान देते हो तो बादल गौण हो जाते है। वे आते और जाते है, तुम्हें बादलों की बहुत चिंता लेने की जरूरत नहीं लेनी चाहिए। वे आते जाते रहते है। तुम्हें पता होना चाहिए की इन बादलों ने रति भर भी आकाश को नष्ट नहीं किया है। उन्होंने आकाश को गंदा भी नहीं किया है। उन्होंने उसका स्पर्श भी नहीं किया है। आकाश तो सदा कुंआरा है।

जब तुम्हारा मन भटकता है तो दो चीजें होती है। एक तो बादल है, विचार है, विषय है, बिंब है। और दूसरी चेतना है, खुद मन है। जब तुम बादलों पर विचारों पर, बिंबों पर बहुत ध्यान देते हो तो तुम आकाश को भूल जाते हो। तब तुम मेजबान को भूल गए और मेहमान में ही बुरी तरह से उलझ गये। वे विचार, वे बिंब, जो भटक रहे है। केवल मेहमान है। अगर तुम मेहमानों पर सब ध्यान लगा देते हो तो तुम अपनी आत्मा ही भूल बैठे।

अपने ध्यान को मेहमानों से हटाकर मेजबान पर लगाओ; बादलों से हटाकर आकाश पर केंद्रित करो। और इसे व्यावहारिक ढंग से करो। कामवासना उठती है। वह बादल है। या बड़ा घर पाने को लोभ पैदा होता है। यह भी बादल है। तुम इससे इतने

ग्रस्त हो जा सकते हो कि तुम भूल ही जाओ कि यह किस में उठ रहा है। यह किसी को घटित हो रहा है। कौन इसके पीछे है। किस आकाश में यह बादल उठ रहे है। उस आकाश को स्मरण करो; और अचानक बादल विदा हो जाएगा। सिर्फ बदलने की जरूरत है। परिप्रेक्ष्य बदलने की जरूरत है। दृष्टि को विषय से विषयी पर, बाहर से भीतर पर, बादल से आकाश पर, अतिथि से आतिथेय पर ले जाने की जरूरत है। सिर्फ दृष्टि को बदलना है। फोकस को बदलना है।

एक झेन सदगुरू लिंची प्रवचन कर रहा था। भीड़ में से किसी ने कहा: मेरे एक प्रश्न का उत्तर दें, मैं कौन हूं? लिंची ने बोलना बंद कर दिया। सब लोग चौकन्ने हो गए। लिंची क्या उत्तर देने जा रहा है। सब यही सोच रहे थे। लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया। वह कुर्सी से नीचे उतरा, आगे बढ़ा और उस आदमी के पास पहुंचा। पूरी भीड़ चकित और सजग हो उठी। लोगों की श्वासें तक रूक गई। लिंची क्या करने जा रहा है। उसे कुर्सी पर बैठे-बैठे ही जवाब देना था; कुर्सी से उठने की क्या जरूरत थी? और प्रश्नकर्ता तो बहुत भयभीत हो गया। लिंची अपनी बेधक दृष्टि उस व्यक्ति पर जमाए पास आया। उसने उस आदमी का गला पकड़ लिया, उसे झकझोरा और कहा; आंखे बंद करो और उसका स्मरण करो जो यह प्रश्न पूछ रहा है।

उस आदमी ने आंखें बंद की—हांलाकि डरते-डरते। वह अपने भीतर खोजने गया कि किसने यह प्रश्न पूछा था। और वह वापस नहीं आया। भीड़ प्रतीक्षा करती रही। प्रतीक्षा करती रही,उस आदमी का चेहरा मौन और शांत हो गया। तब लिंची ने उसे फिर झकझोरा: ''अब बहार आओ, और सब को बताओ कि तुम कौन हो। वह आदमी हंसने लगा और कहा: जवाब देने का आपका खूब अद्भुत ढंग है। लेकिन यदि कोई व्यक्ति अभी मुझसे यही पूछे तो मैं भी वह भी वहीं करूंगा। ''मैं उत्तर नहीं दे सकता।''

यह दृष्टि की, परिप्रेक्ष्य की बदलाहट थी। तुम पूछते हो कि मैं कौन हूं। और तुम्हारा मन प्रश्न पर केंद्रित है, जब कि उत्तर प्रश्न के ठीक पीछे प्रश्न कर्ता में छिपा है। दृष्टि को बदलों; अपने पर लौट आओ।

यह सूत्र कहता है: ''जहां-जहां तुम्हारा मन भटकता है, भीतर या बाहर, उसी स्थान पर यह।''

तुम सोचते हो कि बादल मेरी संपदा है। तुम सोचते हो कि जितनी ज्यादा बादल होंगे, मैं उतना ही बेहतर, उतना ही ज्यादा समृद्ध हो जाऊँगा। और तुम्हारा सारा आकाश सारा आंतरिक आकाश उनसे आच्छादित है, ढंका है। एक अर्थ में, बादलों में आकाश खो गया है। और बादल ही तुम्हारा जीवन है। और बादलों का जीवन ही संसार है।

यह बात एक क्षण में घट सकती है। यह दृष्टि सदा अचानक ही घटती है। में यह नहीं कह रहा हूं कि तुम कुछ भी मत करो और अचानक घटेगी। तुम्हें बहुत कुछ करना होगा। लेकिन यह क्रमिक ढंग से नहीं घटता। तुम्हें बहुत कुछ करना होगा। तब करते-करते एक दिन वह क्षण आता है जब तुम भाप बनने के सही तापमान पर पहुंच जाते हो। अचानक पानी-पानी नहीं रहता है; वह भाप बन गया। अचानक तुम विषय से बाहर हो गए। तुम्हारी आंखें अब बादलों पर नहीं अटकती है। अब अचानक तुम आंतरिक आकाश की तरफ भीतर मुड़ जाते हो।

ऐस कभी क्रमिक रूप से नहीं होता। तुम्हारी आँख का एक अंश भी तर की और मुड़ जाता है और उसका दूसरा अंश बाहर बादलों पर लगा रहता है। नहीं, यह अंशों में नहीं घटित होता। कि तुम अस दस प्रतिशत भीतर हो और नब्बे प्रतिशत बाहर, कि बीस प्रतिशत भीतर हो और अस्सी प्रतिशत बाहर। नहीं जब यह घटित होता है तो शत प्रतिशत होता है। क्योंकि तुम अपनी दृष्टि को खंड-खंड नहीं कर सकते हो। या तो तुम विषयों को देखते हो या अपने को; या तो संसार को या ब्रह्म को।

फिर तुम संसार में वापस आ सकते हो। तुम फिर अपनी दृष्टि बदल सकते हो। अब तुम मालिक हो। सच तो यह है कि तुम तभी मालिक होते हो जब स्वेच्छा से अपनी दृष्टि बदल सकते हो।

मुझे एक तिब्बती संत मारपा का स्मरण आता है। जब वह ज्ञान को उपलब्ध हुआ—(जब वह बुद्ध हुआ, जब वह अंतस की और मुड़ गया, जब उसने अंतराकाश का, अनंत का साक्षात्कार किया—तो किसी ने उससे पूछा: मारपा अब कैसे हो? तो मारपा ने अत्तर दिया वह अपूर्व है, अप्रत्याशित है। अब तक किसी बुद्ध ने वैसा उत्तर नहीं दिया था। मारपा ने कहा: पहले जैसा ही दुःखी।

वह आदमी तो भौचक्का रह गया; उसने पूछा: पहले जैसा ही दुखी? लेकिन मारपा हंसा, उसने कहा: हां, लेकिन एक फर्क के साथ। और फर्क यह है कि अब मेरा दुःख स्वैच्छिक है। अब मैं कभी-कभी बस संसार का स्वाद लेने के लिए अपने से बहार लौट सकता हूं। लेकिन मैं मालिक हूं। मैं किसी भी क्षण भीतर लौट सकता हूं। और दोनों ध्रुवों के बीच गति कर सकता हूं। तभी कोई जीवित रह सकता है। कभी में दुखों में लौट सकता हूं, लेकिन अब दुख मुझे नहीं घटित होते है, मैं ही उन्हें घटित होता हूं। और मैं उनसे अछूता रह सकता हूं।

निश्चित ही, जब तुम स्वेच्छा से गति करते हो एक बार तुमने जान लिया कि दृष्टि को अंतर्मुखी कैसे किया जाए,तुम संसार में वापस आ सकते हो। सभी बुद्ध पुरूष संसार में वापस आए है। वे दृष्टि को फिर संसार में ले जाते है। लेकिन अब आंतरिक मनुष्य की गुणवता भिन्न है। वह जानता है कि यह उसकी स्वतंत्र दृष्टि है; वह बादलों को भी गति करने की इजाजत दे सकता है। अब बादल मालिक न रहे। वे तुम पर हावी नहीं हो सकते है। वे अब तुम्हारी मर्जी से घूमते है।

और यह सुंदर है। कभी-कभी बादलों से भरा आकाश सुंदर होता है। बादलों की हलचल सुंदर होती है। अगर आकाश-आकाश बना रहे तो बादलों को तैरने दिया जा सकता है। समस्या तो तब खड़ी होती है। जब आकाश अपने को भूल जाता है। और वहां बादल ही बादल रह जाते है। तब सब कुछ कुरूप हो जाता है। क्योंकि स्वतंत्रता खो गई।

यह सूत्र सुंदर है: ''जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है, भीतर या बाहर, उसी स्थान पर, यह।''

झेन परंपरा में इस सूत्र का गहरा उपयोग हुआ है। झेन कहते है कि साधारण मन ही बुद्ध-मन है। भोजन करते हुए तुम बुद्ध हो; सोते हुए तुम बुद्ध हो। कुएं से पानी ले जाते हुए तुम बुद्ध हो। तुम हो, कुएं से पानी ले जाते हुए। भोजन करते हुए। विस्तर पर लेटे हुए तुम बुद्ध हो। यह पहेली जैसा लगता है। लेकिन यह सच है। अगर पानी ढोते हुए तुम सिर्फ पानी ढोते हो। तुम उसे समस्या नहीं बनाते और सिर्फ पानी ढोते हो। अगर तुम्हारा मन बादलों से मुक्त है। और आकाश खाली है। अगर तुम केवल पानी ढोते हो, तो तुम बुद्ध हो। तब भोजन करते हुए तुम सिर्फ भोजन करते हो और कुछ नहीं करते।

लेकिन हम जब भोजन करते है तो उसके साथ हजारों चीजें करते-रहते है। हो सकता है तुम्हारा मन भोजन में बिलकुल न हो; तुम्हारा शरीर यंत्र की भाती भोजन कर रहा हो। तुम्हारा मन कहीं और हो सकता है।

किसी विश्वविद्यालय का एक छात्र कुछ दिन पहले आया था। उसकी परीक्षा करीब थी। इसलिए वह कुछ पूछने आया था। उसने कहा: में बहुत उलझन में हूं। समस्या यह है कि मैं एक लड़की के प्रेम में पड़ गया हूं। तो परीक्षा की सोचता रहता हूं और जब पढ़ता रहता हूं तो लड़की के विषय में सोचता रहता हूं। पढ़ते समय मैं वहां नहीं होता। मैं कल्पना में अपनी प्रेमिका के साथ होता हूं। और जब प्रेमिका के साथ होता हूं तो कभी उसके साथ नहीं होता हूं। मैं अपनी समस्याओं के बारे में, नजदीक आती परीक्षा के बारे में चिंता करता रहता हूं। नतीजा यह है किसब कुछ गुड-मुड़ हो गया है।

यह लड़का ही नहीं ऐसे ही हर कोई गुड़-मुड़ है। जब तुम दफ्तर जाते हो तो तुम्हारा मन घर में होता है। तुम जब घर में होते हो तो तुम्हारा मन दफ्तर में होता है। और तुम ऐसा जादुई करिश्मा कर नहीं सकते;घर में होकर तुम घर में ही हो सकते हो, दफ्तर में नहीं हो सकते। और अगर तुम दफ्तर में हो तो तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं है, तुम पागल हो। तब हर चीज दूसरी चीज में उलझ जाती है। गुत्थमगुत्था हो जाती है। तब कुछ भी स्पष्ट नहीं है। और यही मन समस्या है।

कुएं से पानी खींचते हुए, कुएं से पानी ढोते हुए तुम अगर मात्र यही काम कर रहे हो तो तुम बुद्ध हो। अगर तुम झेन सदगुरूओं के पास जाओ और उसने पूछो कि आप क्या करते है? आपकी साधना क्या है? ध्यान क्या है? तो वे कहेंगे: जब नींद आती है तो हम सो जाते है। जब भूख लगती है तो हम भोजन करते है। बस यही हमारी साधना है और कोई साधना नहीं है।

लेकिन यह बहुत कठिन है। हालांकि आसान मालूम होती है। अगर भोजन करते हुए तुम सिर्फ भोजन करो,अगर बैठे हुए तुम सिर्फ बैठो और कुछ न करो। कोई विचार न हो, अगर तुम वर्तमान क्षण के साथ रह सको,उससे हटो नहीं,अगर तुम वर्तमान क्षण में डूब सको,न कोई अतीत हो, न कोई भविष्य हो, अगर वर्तमान क्षण ही एकमात्र अस्तित्व हो, तो तुम बुद्ध हो। तब यही मन बुद्ध मन बन जाता है।

तो जब तुम्हारा मन भटकता है तो उसे रोकने की चेष्टा मत करो, बल्कि आकाश को स्मरण करो। जब मन भटकता है तो उसे रोको मत। उसे किसी बिंदु पर लाने की, एकाग्र करने की चेष्टा मत करो। नहीं, उसे भटकने दो। लेकिन भटकाव पर बहुत अवधान मत दो—न पक्ष में,ने विपक्ष में, क्योंकि तुम चाहे उसके पक्ष में रहो या विपक्ष में, तुम उससे बंधे रहते हो। आकाश को स्मरण करो। भटकन को चलने दो। और इतना ही कहो; ठीक है, पर चलती हुई राह है; अनेक लोग इधर-उधर चले जा रहे है। मन एक चलती हुई राह है। मैं आकाश हूं बादल नहीं ।

इसी स्मरण को याद रखो। इस भाव में उतरो ; इसमें ही स्थिर रहो। देर अबेर तुम देखोगें कि बादलों की गति बंद पड़ गई है। बादलों के बीच में अंतराल आने लगा है। वे अब उतने घने नहीं रहे है। उनकी गति मंद पड़ गई है। उनके पीछे का आकाश दिखाई पड़ने लगा है। अपने को आकाश की भांति अनुभव करते रहो; बादलों की भांति नहीं। देर-अबेर किसी दिन, किसी सम्यक क्षण में,जब तुम्हारी दृष्टि सचमुच भीतर लौट गई है। बादल विलीन हो जाएंगे। और तब तुम शुद्ध आकाश हो, सदा से शुद्ध,सदा से अस्पर्शित आकाश हो।

और एक बार तुमने इस कुंआरी पन को जान लिया तो फिर बादलों में, बादलों के संसार में वापस आ सकते हो। तब संसार का अपना ही सौदर्य है, तब तुम इसमे रह सकते हो। लेकिन अब तुम मालिक हो।

संसार बुरा नहीं है। मालिक की तरह संसार समस्या नहीं है। जब तुम ही मालिक हो तो तुम उसमें रह सकते हो। तब संसार का अपना ही सौदर्य है; वह सुंदर है। प्यारा है। लेकिन तुम उसे सौंदर्य को, उस माधुर्य को अपने भीतर मलिक होकर ही जान सकते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-39

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—63 (ओशो)

''जब किसी इंद्रिय-विषय के द्वारा स्पष्ट बोध हो, उसी बोध में स्थित होओ।''

जब किसी इंद्रिय-विषय के द्वारा स्पष्ट बोध हो,……

तुम अपनी आँख के द्वारा देखते हो। ध्यान रहे, तुम अपनी आँख के द्वारा देखते हो। आंखे नहीं देख सकती। उनके द्वारा तुम देखते हो। द्रष्टा पीछे छिपा है। भीतर छिपा है; आंखें बस द्वार है। झरोखे है। लेकिन हम सदा सोचते है कि हम आँख से देखते है। हम सोचते है कि हम कान से सुनते है। कभी किसी ने कान से नहीं सुना है। तुम कान के द्वारा सुनते हो। कान से नहीं। सुननेवाला पीछे है। कान तो रिसीवर है।
मैं तुम्हें छूता हूं, मैं बहुत प्रेमपूर्वक तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेता हूं। यह हाथ नहीं है। जो तुम्हें छूता है। यह मैं हूं, जो हाथ के द्वारा तुम्हें छू रहा है। हाथ यंत्र है। और स्पर्श से बचना भी दो भांति का है। एक, जब मैं सच ही तुम्हें स्पर्श करता हूं। और दूसरा, जब मैं स्पर्श से बचना चाहता हूं। मैं तुम्हें छूकर भी स्पर्श से बच सकता हूं। मैं अपने हाथ में न रहूँ। मैं हाथ से अपने को अलग कर सकता हूं।

इसे प्रयोग करके देखो, तुम्हें एक भिन्न अनुभव होगा। एक दूरी का अनुभव होगा1 किसी पर अपना हाथ रखो और अपने को अलग रखो; यहां सिर्फ मुर्दा हाथ होगा। तुम नहीं। और अगर दूसरा व्यक्ति संवेदनशील है तो उसे मुर्दा हाथ का एहसास हो जायेगा। वह अपने का अपमानित महसूस करेगा, आपके इस व्यवहार से। क्योंकि तुम उसे धोखा दे रहे हो। तुम छूने का दिखाव कर रहे हो।

स्त्रियां इस मामले में बहुत संवेदनशील है; तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते हो। स्पर्श के प्रति, शारीरिक स्पर्श के प्रति वे ज्यादा सजग है; वे जान जाती है। हो सकता है पति मीठी-मीठी बातें कर रहा हो। वह फूल ले आया हो। और कह रहा हो कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। लेकिन उसका स्पर्श कह देगा कि वह वहां नहीं है। और स्त्रियों को सहज बोध हो जाता है। कि कब तुम उनके साथ हो और कब नहीं। अगर तुम अपने मालिक नहीं हो तो तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते हो। अगर तुम्हें अपने ऊपर मलकियत नहीं है तो तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते। और जो अपना मालिक है वह पति होना नहीं चाहेगा। वह कठिनाई है। तुम जो भी कहोगे तुम्हारा स्पर्श उसे झुठला देगा।

यह सूत्र कहता है कि इंद्रियाँ द्वार भर है—एक माध्यम, एक यंत्र, एक रिसीविंग स्टेशन और तुम उनके पीछे हो।

''जब किसी इंद्रिय-विशेष के द्वारा स्पष्ट बोध हो, उसी बोध में स्थित होओ।''

संगीत सुनते हुए अपने को कान में मत खो दो। मत भूला दो; उस चैतन्य को स्मरण करो। जो पीछे छिपा है। होश रखो। किसी को देखते हुए इस विधि को प्रयोग करो। तुम यह प्रयोग मुझे देखते हुए अभी और यही कर सकते हो। क्या हो रहा है?

तुम मुझे आँख से देख सकते हो। और जब मैं कहता हूं आँख से तो उसका मतलब है कि तुम्हें इसका बोध नहीं है कि तुम आँख के पीछे छिपे हो। तुम मुझे आँख के द्वारा देख सकते हो। आँख एक यंत्र है। तुम आँख के पीछे खड़े हो। आँख के द्वारा देख रहे हो। जैसे किसी खिड़की या ऐनक के द्वारा देखता है।

तुमने बैंक में किसी क्लर्क को अपने ऐनक के ऊपर से देखते हुए देखा होगा। ऐनक उसकी नाक पर उतर आयी है। और वह देख रहा है। उसी ढंग से मुझे देखो, मेरी तरफ देखो, ऐसे देखो जैसे आँख से ऊपर से देखते हो। मानो तुम्हारी आंखें सरककर नीचे नाक पर आ गई हों और तुम उनके पीछे से मुझे देख रहे हो। अचानक तुम्हें गुणवत्ता में फर्क मालूम पड़ेगा तुम्हारा परिप्रेक्ष्य बदलता है। आंखे महज द्वार बन जाती है। और यह ध्यान बन जाता है।

सुनते समय कानों के द्वारा मात्र सुनो और अपने आंतरिक केंद्र के प्रति जागे रहो। स्पर्श करते हुए हाथ के द्वारा मात्र छुओ और आंतरिक केंद्र को स्मरण रखो जो पीछे छिपा है। किसी भी इंद्रिय से तुम्हें आंतरिक केंद्र की अनुभूति हो सकती है। और प्रत्येक इंद्रिय आंतरिक केंद्र तक जाती है। उसे सूचना देती है।

यहीं कारण है कि जब तुम मुझे देख और सुन रहे हो—जब तुम आँख के द्वारा देख रहे हो और कान के द्वारा सुन रहे हो—तो तुम जानते हो कि तुम उसी व्यक्ति को देख रहे हो। जिसे सुन भी रहे हो। अगर मेरे शरीर में कोई गंध है। तो तुम्हारी नाक उसे भी ग्रहण करेगी। उस हालत में तीन-तीन इंद्रियाँ एक ही केंद्र को सूचना दे रही है। इसी से तुम संयोजक कर पाते हो। अन्यथा संयोजन कठिन होता।

अगर तुम्हारी आंखे ही देखती है और कान ही सुनते है तो यह जानना कठिन होता है कि तुम उसी व्यक्ति को सुन रहे हो जिसे देख रहे हो। या दो भिन्न व्यक्तियों को देख और सुन रहे हो; क्योंकि दोनों इंद्रियाँ भिन्न है। और वे आपस में नहीं मिलती है। तुम्हारी आंखों को तुम्हारे कान का पता नहीं है। और तुम्हारे कान को तुम्हारी आंखों का कुछ पता नहीं है। वे एक दूसरे को नहीं जानते है। वे आपस में कभी मिले नहीं है। उनका एक दूसरे से परिचय भी नहीं है। तो फिर सारा समन्वय, सारा संयोजन कैसे घटित होता है?

कान सुनते है, आंखें देखती है, हाथ छूते है, नाक सूँघती है। और अचानक तुम्हारे भीतर कहीं कोई जान जाता है कि यह वही आदमी है जिसे में सुन रहा हूं। देख रहा हूं। सभी इंद्रियाँ इस ज्ञाता को ही सूचना देती है। और इस ज्ञाता में, इस केंद्र में सब कुछ सम्मिलित होकर, संयोजित होकर एक हो जाता है। यह चमत्कार है।

मैं एक हूं; तुम्हारे बहार से मैं एक हूं। मेरी शरीर, मेरे शरीर की उपस्थिति, उसकी गंध मेरा बोलना,सब एक है। लेकिन तुम्हारी इंद्रियाँ मुझे विभाजित कर देंगी। तुम्हारे कान मेरे बोलने की खबर देंगे। तुम्हारी नाक मेरी गंध की खबर देगी। और तुम्हारी आंखें मेरी उपस्थिति की खबर देंगी। वे इंद्रियाँ मुझे टुकड़ों में बांट देंगी। लेकिन फिर तुम्हारे भीतर कहीं पर मैं एक हो जाऊँगा। जहां तुम्हारे भीतर में एक होता है, वह तुम्हारे होने का केंद्र है। वह तुम्हारा बोध है। चैतन्य है। तुम उसे बिलकुल भूल गए हो। यह विस्मरण ही अज्ञान है। और बोध का चैतन्य आत्मा ज्ञान को द्वार खोलता है। तुम और किसी उपाय से अपने को नहीं जान सकते हो।

‘’जब किसी इंद्रिय-विशेष के द्वारा स्पष्ट बोध हो। उसी होश में स्थित होओ।‘’

उसी बोध में रहो; उसी बोध में स्थित रहो। होश पूर्ण होओ।

आरंभ में यह कठिन है। हम बार-बार सो जाते है। और आँख के द्वारा देखना कठिन मालूम पड़ता है। आँख से देखना आसान है। आरंभ में थोड़ा तनाव अनुभव होगा और तुम आँख के द्वारा देखने की चेष्टा करोगे। और न केवल तुम तनाव अनुभव करोगे। वह व्यक्ति भी तनाव अनुभव करेगा जिसे तुम देखोगें।

अगर तुम किसी आँख के द्वारा देखोगें तो उसे लगेगा कि तुम अनुचित रूप से दखल दे रहे हो। कि तुम उसके साथ अभद्र व्यवहार कर रहे हो। तुम अगर आँख के द्वारा देखोगें तो दूसरे को अचानक अनुभव होगा कि तुम उसके साथ उचित व्यवहार नहीं कर रहे हो। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि बेधक बन जाएगी। तुम्हारी दृष्टि गहराई में उतर जाएगी। अगर यह दृष्टि तुम्हारी गहराई से आती है। वह उसकी गहराई में प्रवेश कर जाएगी।

यही कारण है कि समाज ने एक बिल्ट-इन सुरक्षा की व्यवस्था कर रखी है। समाज कहता है कि जब तक तुम किसी के प्रेम में नहीं हो, उसे बहुत घूरकर मत देखो। अगर तुम प्रेम में हो तो देख सकते हो। तब तुम उसके अंतर्तम तक प्रवेश कर सकते हो। क्योंकि वह तुमसे भयभीत नहीं है। तब दूसरा तुम्हारे प्रति नग्न हो सकता है। समग्रता: नग्न हो सकता है। वह तुम्हारे प्रति खुला हो सकता है। लेकिन साधारणत: अगर तुम प्रेम में नहीं हो। तो किसी को घूरने की, बेधक दृष्टि देखने की मनाही है।

भारत में हम ऐसे आदमी को, जो दूसरे को घूरता है, लुच्चा कहते है। लुच्चा का अर्थ है, देखने वाला। लुच्चा शब्द लोचन से आता है। लुच्चा का अर्थ हुआ कि जो आँख ही बन गया है। इसलिए इस विधि का प्रयोग किसी अपरिचित पर मत करना। वह तुम्हें लुच्चा समझेगा। पहले इस विधि का प्रयोग ऐसे विषयों के साथ करो। जैसे फूल है, पेड़ है, रात के तारे है। वे इसे अनुचित दखल नहीं मानेंगे। वे एतराज नहीं उठाएंगे। बल्कि वे इसे पंसद करेंगे। उन्हें बहुत अच्छा लगेगा। वे इसका स्वागत करेंगे।

तो पहले उनके साथ प्रयोग करो और फिर अपनी पत्नी, अपने बच्चे, अपने प्रियजनों के साथ। कभी अपने बच्चे को गोद में उठा लो और उसको आँख के द्वारा देखो। बच्चा इसे समझेगा, सराहेंगे। वह अन्य किसी से भी ज्यादा समझेगा। क्योंकि अभी समाज ने उसे पंगु नहीं बनाया है। विकृत नहीं किया है। वह अभी सहज है। तुम अगर उसे आँख के द्वारा देखोगें तो उसे प्रगाढ़ प्रेम की अनुभूति होगी। उसे तुम्हारी उपस्थिति का एहसास होगा।

अपने प्रेमी या प्रेमिका को ऐसे देखो। और फिर जैसे-जैसे तुम्हें इस बात की पकड़ आएगी। जैसे-जैसे तुम इसमें कुशल होगे वैसे-वैसे तुम धीरे-धीरे दूसरों को भी देखने में समर्थ हो जाओगे। क्योंकि तब किसी को पता नहीं चलेगा कि तुमने इस गहराई से उसे देखा । और जब अपनी इंद्रियों के पीछे सतत सजग होकर खड़े होगे की कला तुम्हारे हाथ आ जायेगी। तो इंद्रियाँ तुम्हें धोखा न दे पाएंगी। अन्यथा इंद्रियाँ धोखा देती है। ऐसे संसार में, जो सिर्फ भासता है। इंद्रियों ने तुम्हें उसे सच मानने का धोखा दिया है।

अगर तुम इंद्रियों के द्वारा देख सके। और सजग रह सके तो धीरे-धीरे संसार माया मालूम पड़ने लगेगा। स्वप्नवत मालूम पड़ने लगेगा। और तब तुम उसके तत्व में उसके मूल तत्व में प्रवेश कर सकोगे। यह मूल तत्व ही ब्रहम है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-39

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—64 (ओशो)

''छींक के आरंभ में, भय में, खाई-खड्ड के कगार पर, युद्ध से भागने पर, अत्यंत कुतूहल में, भूख के आरंभ में और भूख के अंत में, सतत बोध रखो।''

''छींक के आरंभ में, भय में, ……….

यह विधि देखने में बहुत सरल मालूम पड़ती है। छींक के आरंभ में, भय में, चिंता में, भूख के पहले या भूख के अंत में सतत बोध रखो।

बहुत सी बातें समझने जैसी है। छींकने जैसे बहुत सरल कृत्य भी उपाय की तरह काम में लाए जा सकते है। क्योंकि वे कितने ही सरल दिखे, दरअसल वे बहुत कठिन और जटिल होते है। और जो आंतरिक व्यवस्था है, वह बहुत नाजुक चीज है।

जब भी तुम्हें लगे कि छींक आ रही है, सजग हो जाओ। संभव है कि सजग होने पर छींक न आए, चली जाए। कारण यह है कि छींक गैर-स्वैच्छिक चीज है। अचेतन,गैर-स्वैच्छिक। तुम स्वेच्छा से, चाह कर नहीं छींक सकते हो। तुम जबरदस्ती नहीं छींक सकते हो। चाह कर कैसे छींक सकते हो?
मनुष्य कितना असहाय है। तुम चाह कर एक छींक भी नहीं ला सकते हो। तुम कितनी ही चेष्टा करो। तुम छींक नहीं ला सकते हो। एक मामूली सी छींक भी तुम चाह कर नहीं पैदा कर सकते हो। यह गैर-स्वेच्छा से, चाह कर नहीं आती। यह तुम्हारे मन के कारण नहीं घटित होती। यह तुम्हारे समग्र संस्थान से, समग्र शरीर से घटित होती है।

और दूसरी बात कि जब तुम छींक के आने के पूर्व सजग हो जाते हो—तुम उसे ला नहीं रहे हो। लेकिन जब वह अपने आप ही आ रही हो। तो केवल तुम सजग हो जाते हो। तो संभव है कि वह न आए। क्योंकि तुम उसकी प्रक्रिया में कुछ नयी चीज जोड़ रहे हो। सजगता जोड़ रहे हो। वह खो जा सकती है। लेकिन जब छींक खो जाती है। और तुम सावचेत रहते हो, तो एक तीसरी बात घटित होती है।

पहली तो बात कि छींक गैर-स्वैच्छिक है। तुम उसमें एक नयी चीज जोड़ते हो, सजगता जोड़ते हो। और जब सजगता आती है तो संभव है कि छींक न आए। अगर तुम सचमुच सजग होगे। तो वह नहीं आएगी। शायद छींक एकदम खो जाए। तब तीसरी बात घटित होती है। जो ऊर्जा छींक की राह से निकलने वाली थी वह अब कहां जाएगी।

वह ऊर्जा तुम्हारी सजगता से जुड़ जाती है। अचानक बिजली सी कौंधती है, और तुम ज्यादा सावचेत हो जाते हो। जो ऊर्जा छींक बनकर बाहर निकलने जा रही थे वही ऊर्जा तुम्हारी सजगता में जुड़ जाती है। और तुम अचानक अधिक सावचेत हो जाते हो। बिजली की उस कौंध में बुद्धत्व भी संभव है।

यही कारण है कि मैं कहता हूं कि ये चीजें इतनी सरल है कि व्यर्थ मालूम पड़ती है। उनके द्वारा होने वाली उपलब्धियों की चर्चा असंभव सी लगती है। सिर्फ छींक के जरिए कोई बुद्ध कैसे हो सकता है? लेकिन छींक सिर्फ छींक ही नहीं है; तुम भी उसमें पूरी तरह सम्मिलित हो। तुम जो भी करते हो या तुम्हें जो भी होता है, उसमें तुम भी पूरी तरह मौजूद होते हो। इसे फिर से देखा,इसका निरीक्षण करो। जब भी छींक आती है तो उसमें तुम समग्रता: होते हो—पूरे शरीर से होते हो, पूरे मन से होते हो। छींक सिर्फ तुम्हारी नाक में ही घटित नहीं होती। तुम्हारे शरीर का रोआं-रोआं उसमे सम्मिलित रहता है। एक सूक्ष्म कंपन, एक सूक्ष्म सिहरन पूरे शरीर पर फैल जाती है। और उसके साथ पूरा शरीर एकाग्र हो जाता है। और जब छींक तो सारा शरीर एक राहत महसूस करता है। विश्राम अनुभव करता है।

लेकिन छींक के साथ सजगता रखनी कठिन है। और यदि तुम उसमें सजगता जोड़ दोगे तो छींक नहीं आएगी। और यदि छींक आए तो जानना कि तुम सजग नहीं हो।

तो तुम्हें सजग रहना पड़ेगा।

''छींक के आरंभ में....।''

क्योंकि छींक यदि आ ही गयी तो कुछ नहीं किया जा सकता है। तीन यदि चल चुका तो तुम अब उसे बदल नहीं सकते हो। यंत्र चालू हो गया। ऊर्जा अब बाहर जाने के रास्ते पर है; उसे अब रोका नहीं जा सकता है। क्या तुम छींक को बीच में रोक सकते हो। तुम उसे बीच में नहीं रोक सकते हो।

आरंभ में ही सजग हो जाओ। जि क्षण तुम्हें उतैजना अनुभव हो, लगे की छींक आने वाली है। तभी सावचेत हो जाओ। अपनी आंखे बंद कर लो और ध्यानस्थ हो जाओ। अपनी समग्र चेतना को उस बिंदू पर ले जाओ जहां छींक की उत्तेजना अनुभव होती हो। ठीक आरंभ में ही सजग हो जाओ। छींक गायब हो जायेगी। और चूंकि छींक में तुम्हारा सारा शरीर सम्मिलित है, पूरा संयंत्र सम्मिलित है—और तुम उसी क्षण से सजग हो—वहां मन नहीं होगा। विचार नही होगा। ध्यान नहीं होगा। छींक में विचार ठहर जाते है।

यही कारण है कि अनेक लोग सुँघनी पसंद करते है। यह उन्हें निर्भार कर देता है। उनका मन ज्यादा विश्राम पूर्ण हो जाता है। क्यों? क्योंकि क्षण भर के लिए विचार ठहर जाते है। सुँघनी उन्हें निर्विचार की एक झलक देती है। सुँघनी संूघने से जो छींक आती है। उसमे वह मन नी रह जाते है। शरीर ही हो जाते है। एक क्षण के लिए सिर विदा हो जाता है। और उन्हें बहुत अच्छा लगता है।

अगर तुम सुँघनी के आदी हो जाओ तो उसे छोड़ना बहुत मुश्किल होता है। यह धूम्रपान से भी ज्यादा गहरा व्यसन है; धूम्रपान उसके सामने कुछ भी नहीं है। सुँघनी ज्यादा गहरे जाती है। क्योंकि धूम्रपान सचेतन है और छींक अचेतन हे। इसलिए धूम्रपान छोड़ने से भी ज्यादा कठिन सुँघनी छोड़ना है। और धूम्रपान को बदलकर कोई दूसरा व्यसन ग्रहण किया जा सकता है। धूम्रपान के पर्याय है, लेकिन सुँघनी के पर्याय नहीं है। कारण यह है कि छींक सच में शरीर है, धूम्रपान के पर्याय है। लेकिन सुँघनी के पर्याय नहीं है। कारण यह है कि छींक सच में शरीर की एक अनूठी घटना है। इसके जैसी दूसरी चीज केवल काम कृत्य है, संभोग है।

शरीर शास्त्र की भाषा में जो लो सोचते है वे कहते है, कि संभोग कमेंद्रिय द्वारा छींकने जैसा ही है। और दोनों में समानता है। यद्यपि यह शत-प्रतिशत सही नहीं है। क्योंकि संभोग में और भी बहुत सी बातें सम्मिलित है। लेकिर आरंभ में,सिर्फ आरंभ में समानता है। तुम कुछ चीज नाक से बाहर निकलते हो और राहत महसूस करते हो। वैसे ही कुछ चीज कमेंद्रिय से बाहर निकालते हो और राहत अनुभव करते हो। दोनों ही कृत्य गैर-स्वैच्छिक है।

तुम संभोग में संकल्प के द्वारा नहीं उतर सकते हो। अगर कोशिश करोगे तो निष्फलता हाथ आयेगी। विशेषकर पुरूष तो जरूर निष्फल होगे। क्योंकि उनकी कर्मेंद्रिय को कुछ करना पड़ता है। पुरूष की कर्मेंद्रिय सक्रिय है। लेकिन तुम चाह कर उसे सक्रिय नहीं कर सकते हो। तुम जितनी चेष्टा करोगे, उतना ही असंभव होता जायेगा। यह अपने आप होता है। इसे तुम सचेत होकर नहीं कर सकते हो।

यही कारण है कि पश्चिम में संभोग एक समस्या बन गया है। पिछली आधी सदी के दौरान पश्चिम में काम संबंधी ज्ञान बहुत विकसित हुआ है। और हर एक आदमी इसके संबंध में इतना सचेत है कि संभोग अधिकाधिक असंभव हो रहा है।

अगर तुम सचेत हो तो संभोग असंभव हो जाएगा। अगर कोई व्यक्ति संभोग के समय सचेत रहे, तो वह जितना सचेत होगा उतना ही उसके लिए संभोग कठिन होगा। उसकी जननेंद्रिय में उत्तेजना ही नहीं होगी। उसे प्रयास से नहीं किया जा सकता है। और तुम जितना अधिक प्रयास करोगे उतनी ही मुश्किल हो जाएगी।

इस विधि का उपयोग काम-संभोग में भी किया जा सकता है। आरंभ में हीं, जब तुम्हें उतैजना आती मालूम हो, लेकिन वह अभी आयी नहीं हो, सिर्फ उसकी तरंगें मालूम पड़ती हो। तभी तुम सावचेत हो जाओ। तरंगें खो जायेगी। और वही ऊर्जा सजगता में गति कर जाएगी।

तंत्र ने इसका उपयोग किया है। तंत्र ने इसका कई ढंग से उपयोग किया है। एक सुंदर नग्न स्त्री ध्यान के विषय में रूप में बैठी होगी। और साधक उन नग्न स्त्री के सामने बैठकर उसके शरीर उसके रूप और अंग-सौष्ठव पर ध्यान करेगा। और अपने काम-केंद्र पर उतैजना उठने की प्रतीक्षा करेगा। और ज्यों ही जरा सी उत्तेजना महसूस होगी। वह अपनी आंखें बद कर लेगा। और उस स्त्री को भूल जायेगा। वह साध आंखें बंद कर लेगा और उत्तेजना के प्रति सजग हो जायेगा। और तब काम उर्जा सजगता में रूपांतरित हो जाती है। उसे नग्न स्त्री पर तभी तक ध्यान करना है जहां उत्तेजना महसूस हो। उसके बाद उसे आँख बद कर अपनी उत्तेजना पर आ जाना है। और वहीं सजग रहना है। ठीक वैसे ही जैसे छींक के प्रति किया जा सकता है।

और यह कौंध सी क्यों घटित होती है? कारण यह है कि वहां मन नहीं है। बुनियादी बात यह है कि अगर मन नहीं है। और तुम सजग हो, तो सतोरी घटित होगी;तुम्हें समाधि की पहली झलक मिलेगी।

विचार ही बाधा है। किसी भी ढंग से यदि विचार विलीन हो जाए तो बात बन जाती है। लेकिन सजगता के लिए विचार का विदा होना जरूरी है। विचार नींद में भी विलीन हो जाते है। तुम्हारे मूर्छित हो जाने पर भी विचार ठहर जाते है। इन हालातों में भी विचार विदा हो जाता है। लेकिन तब विचार के पीछे जो तत्व छिपा है उसके प्रति सजगता नहीं रहती है। इसलिए मैं ध्यान को निर्विचार चेतना कहता हूं। तुम निर्विचार और मूर्च्छित एक साथ हो सकते हो। लेकिन उसका कोई मूल्य नहीं है। और तुम विचार के साथ सचेतन भी हो सकते हो; वह तुम हो ही। इन दो चीजों को, चेतना और निर्विचार को इकट्ठा करो; जब वे मिलते है तो ध्यान घटित होता है,ध्यान का जन्म होता है।

और तुम इसका प्रयोग छोटी-छोटी चीजों के साथ भी कर सकते हो। सच तो यह है कि कोई भी चीज छोटी नहीं है। एक छींक भी अस्तित्वगत घटना है। अस्तित्व में कुछ भी बड़ा नहीं है, कुछ भी छोटा नहीं है। एक नन्हा सा परमाणु भी पूरे जगत को मिटा सकता है। और वैसे ही छींक है। जो कि अत्यंत छोटी चीज है। तुम्हें रूपांतरित कर सकती है।

तो चीजों को छोटी बड़ी की तरह मत देखो। न कुछ बड़ा है और न कुछ छोटा। अगर तुम्हारे पास गहरे देखने की दृष्टि है तो बहुत छोटी चीजें भी महत्वपूर्ण हो सकती है। परमाणुओं के बीच में ब्रह्मांड छिपे है। और तुम नहीं कह सकते हो कि परमाणु और बह्मांड़ में कौन बड़ा है। और कौन छोटा है। एक अकेला परमाणु अपने आप में ब्रह्मांड है, और बड़े से बड़ा बह्मांड़ भी परमाणुओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

''छींक के आरंभ में, भय में......।''

जब तुम भयभीत अनुभव करते हो और भय प्रवेश करता है, जब तुम भय को प्रवेश करते देखो, ठीक उसी क्षण सजग हो जाओ। और भय विलीन हो जाएगा। बोध के साथ भय नहीं रह सकता है। जब तुम सावचेत हो तो भय भीत कैसे हो सकते? तुम तभी भयभीत होते हो जब होश खो देते हो। सच में कायर वह नह है जो डरा हुआ है; कायर वह है जो सोया हुआ है। और बहादुर वह है जो भय के क्षणों में बोध को जगा लेता है। और तब भय विदा हो जाता है।

जापान में वे योद्धा ओर को सजगता का प्रशिक्षण देते है। उनका बुनियादी प्रशिक्षण सजगता है। शेष सब चीजें गौण है। तलवार चलाना, तीर चलाना, सब गौण है।

झेन सदगुरू रिंझाई के संबंध में कहा जाता है कि वह कभी भी तीर चलाने में, तीन को ठीक निशाने पर मारने में सफल नहीं हुआ। उनका तीर सदा ही चूकता रहा। और वह महान धनुर्विद माने जाते थे।

तो पूछा जाता है कि रिंझाई सबसे महान धनुर्विद कैसे कहलाए। जब कि वे कभी लक्ष्य पर नहीं पहुंचे और सदा निशाना चूकते रहे। रिंझाई को मानने वाले कहते है: ''अंत नहीं आरंभ महत्वपूर्ण है। हम इसमे उत्सुक नहीं है कि तीर लक्ष्य पर पहुंच जाए। हम उसमें उत्सुक है जहां से तीन अपनी यात्रा शुरू करता है। हम रिंझाई में उत्सुक है। जब तीन धनुष से निकलता है तो वे सजग है; बस पर्याप्त है। परिणाम से कोई लेना-देना नहीं है।''

यह सूत्र कहता है: ''भय में चिंता में.....।''

जब तुम चिंता अनुभव करो, बहुत चिंताग्रस्त होओ। तब इस विधि का प्रयोग करो। इसके लिए क्या करना होगा? जब साधारणत: तुम्हें चिंता घेरती है। तब तुम क्या करते हो? सामान्यत: क्या करते हो? तुम उसका हल ढूंढते हो; तुम उसके उपाय ढूंढते हो। लेकिन ऐसा करके तुम और भी चिंताग्रस्त हो जाते हो, तुम उपद्रव को बढ़ा लेते हो। क्योंकि विचार से चिंता का समाधान नहीं हो सकता। विचार के द्वारा उसका विसर्जन नहीं हो सकता। कारण यह है कि विचार खुद एक तरह कि चिंता है। विचार करके दलदल और भी धँसते जाओगे। यह विधि कहती है। कि चिंता के साथ कुछ मत करो;सिर्फ सजग होओ। बस सावचेत रहो। मैं तुम्हें एक दूसरे झेन सदगुरू बोकोजू के संबंध मे एक पुरानी कहानी सुनाता हूं। वह एक गुफा में अकेला रहता था। बिलकुल अकेला लेकिन दिन में या कभी-कभी रात में भी, वह जोरों से कहता था, ''बोकोजू।'' यह उसका अपना नाम था और फिर वह खुद कहता, ''हां महोदय, मैं मौजूद हूं।'' और वहां कोई दूसरा नहीं होता था। उसके शिष्य उससे पूछते थे, ''क्यों आप अपना ही नाम पुकारते हो। और फिर खुद कहते हो, हां मौजूद हूं?

बोकोजू ने कहा, जब भी मैं विचार में डूबने लगता है। तो मुझे सजग होना पड़ता है। और इसीलिए मैं अपना नाम पुकारता है। बोकोजू। जिस क्षण मैं बोकोजू कहता हूं,और कहता हूं कि हां महाशय, मैं मौजूद हूं, उसी क्षण विचारण, चिंता विलीन हो जाती है।

फिर अपने अंतिम दिनों में, आखरी दो-तीन वर्षों में उसके कभी अपना नाम नहीं पुकारा, और न ही यह कहा कि हां, मैं मौजूद हूं। तो शिष्यों ने पूछा, गुरूदेव, अब आप ऐसा क्यों करते है। बोकोजू ने कहा: '' अब बोकोजू सदा मौजूद रहता है। वह सदा ही मौजूद है। इसलिए पुकारने की जरूरत रही। पहले मैं खो जाया करता था। और चिंता मुझे दबा लेती थी। आच्छादित कर लेती थी। बोकोजू वहां नहीं होता था। तो मुझे उसे स्मरण करना पड़ता था। और स्मरण करते ही चिंता विदा हो जाती है।

इसे प्रयोग करो। बहुत सुंदर विधि है। अपने नाम का ही प्रयोग करो। जब भी तुम्हें गहन चिंता पकड़े तो अपना ही नाम पुकारों—बोकोजू या और कुछ, लेकिन अपना ही नाम हो—और फिर खुद ही कहो कि हां महोदय, मैं मौजूद हूं। और तब देखो

कि क्या फर्क है। चिंता नही रहेगी। कम से कम एक क्षण के लिए तुम्हें बादलों के पार की एक झलक मिलेगी। और फिर वह झलक गहराई जा सकती है1 तुम एक बार जान गए कि सजग होने पर चिंता नहीं रहती। विलीन हो जाती है। तो तुम स्वयं के संबंध में, अपनी आंतरिक व्यवस्था के संबंध में गहन बोध को उपलब्ध हो गए।

‘’खाई-खड्ड के कगार पर, युद्ध से भागने पर, अत्यंत कुतूहल में, भूख के आरंभ में और भूख के अंत में। सतत बोध रखो।‘’

किसी भी चीज का उपयोग कर सकते हो। भूख लगी है, सजग हो जाओ। जब तुम्हें भूख महसूस होती है। तो तुम क्या करते हो। तुम्हें क्या होता है? जब तुम्हें भूख लगती है तो तुम उसे कभी ऐसे नहीं देखते कि तुम्हें कुछ हो रहा है; तुम भूख ही हो जाते हो। तब तुम समझते हो कि मैं भूख हूं। ऐसा ही लगता है कि मैं भूख हूं। लेकिन तुम भूख नहीं हो। तुम्हें सिर्फ भूख का बोध होता है। भूख कहीं परिधि पर घटित होती है। और तुम केंद्र हो; तुम्हें भूख घटित हो रही है। तुम तब भी थे जब भूख नहीं थी। और तुम जब भी रहोगे जब भूख नहीं होगी। भूख एक घटना है; वह तुम्हें घटित हो रही है।

उसके प्रति सजग होओ। तब तुम भूख से तादात्म्य नहीं करोगे। अगर तुम्हें भूख लगी है तो उसके प्रति सजग होओ। भूख उतनी ही तुम्हें दूर मालूम पड़ेगी। और जितनी सजगता कम होगी भूख उतनी ही पास मालूम पड़ेगी। और अगर तुम बिलकुल सजग नहीं हो तो तुम ठीक केंद्र पर अनुभव करोगे कि मैं भूख हूं। सजग होते ही भूख तुम से दूर हट जाती है। भूख वहां है और तुम वहां हो। भूख विषय है; तुम साक्षी हो।

इसी विधि के लिए उपवास का प्रयोग किया जा सकता है। और जैन सिर्फ उपवास कर रहे है, इस विधि के बिना ही उपवास कर रहे है। तब यह मूढ़ता है। तब तुम सिर्फ भूखे मर रहे हो। और इससे कोई लाभ नहीं मिल सकता है। तुम महीनों भूखे रह सकते हो। और भूख से जुड़े रह सकते हो। कि मैं भूख हूं। तब वह व्यर्थ है, हानिकर है।

उपवास करने की कोई जरूरत नहीं है। तुम रोज ही भूख को अनुभव कर सकते हो। लेकिन कठिनाइयां है। और इसीलिए उपवास उपयोगी हो सकता है। सामान्यत: हम भूख लगने के पहले ही अपने को भोजन से भर लेते है। आधुनिक संसार मे भूख लगने की जरूरत ही नहीं पड़ती है। तुम्हारे भोजन के समय निश्चित है। और तुम भोजन कर लेते हो। तुम कभी नहीं पूछते कि शरीर को भूख लगी है। या नहीं; निश्चित समय पर तुम भोजन कर लेते हो। नहीं तुम कहोगे की जब एक बजता है तो मुझे भूख लग जाती है। वह झूठी भख हो सकती है। वह इसलिए लगती है क्योंकि यह तुम्हारे खाने का समय है, एक बजा है। किसी दिन एक खेल करो; अपनी पत्नी या अपने पति को कहो कि घड़ी का समय बदल दे। अभी बाहर बजा है और घड़ी एक का समय बता रही है। तुम्हें तुरंत भूख लग जाती है। तुम्हें घड़ी देख कर भूख लगती है। यह कृत्रिम भूख है। झूठी भूख है; यह भूख सच्ची नहीं है।

इसीलिए उपवास सहयोगी हो सकता है। अगर तुम उपवास करोगे तो दो तीन दिन तक झूठी भूख मालूम होगी। तीसरे या चौथे दिन के बाद ही सच्ची भूख का पता चलेगा। तब वह मांग तुम्हारे शरीर की होगी। मन की नहीं। जग मन मांग करता है। तो वह झूठी मांग है, शरीर की मांग ही सच्ची होती है। और जब तुम सच्ची भूख के प्रति सजग होते हो तो अपने शरीर से सर्वथा भिन्न हो जाते हो। भूख एक शारीरिक घटना है। और जब एक बार तुम जान लेते हो कि भूख मुझसे भिन्न है, मैं उसका साक्षी हूं, तो तुम शरीर के पार चले गए।

लेकिन तुम किसी भी चीज का उपयोग कर सकते हो। ये तो उदाहरण मात्र है। यह विधि अनेक ढंगों से प्रयोग में लाई जा सकती है। तुम अपना अलग ढंग भी निर्मित कर सकते हो। लेकिन किसी एक ही चीज पर सतत प्रयोग करते रहो। अगर तुम भूख के साथ प्रयोग कर रह हो तो कम से कम तीन महीने तक भूख के साथ प्रयोग करो। तो ही तुम किसी दिन शरीर से तादात्म्य तोड़ सकेत हो। रोज-रोज विधि मत बदलों, क्योंकि विधि का गहरे जाना जरूरी है। तीन महीने के लिए किसी विधि को चुन लो और उससे लगन से लगे रहो। विधि का प्रयोग करो; और प्रयोग जारी रखो।

और सदा स्मरण रखो कि आरंभ में बोधपूर्ण होना है। बीच में बोधपूर्ण होना बहुत कठिन होगा। क्योंकि इस तादात्म्य के स्थापित होते ही कि मैं भूखा हूं। तुम उसे फिरा बदल नहीं सकोगे। मन के तल पर तुम बदलाहट कर सकत हो, तुम कह सकते हो कि नहीं , मैं भूख नहीं हूं, साक्षी हूं। लेकिन वह झूठ होगा। वह मन ही बोल रहा है। वह तुम्हारे प्राण नहीं बोल रहे हे। और यह भी स्मरण रहे कि तुम्हें यह कहना नहीं है कि मैं भूख नहीं हूं। यह भी मन का धोखा देने का ढंग है। तुम कह सकते हो: ''भूख है, लेकिन मैं भूखा नहीं हूं। मैं शरीर नहीं हूं। मैं ब्रह्म हूं।''

तुम्हें कुछ भी कहना नहीं है। तुम जो भी कहोगे गलत होगा। क्योंकि तुम गलत हो। यह दोहराना कि मैं शरीर हूं। किसी काम का नह है। तुम कहते रहो कि मैं शरीर हूं, क्योंकि तुम जानते हो कि मैं शरीर हूं। किसी काम का नहीं है। अगर तुम सच ही जानते हो कि मैं शरीर नहीं हूं, तो यह कहने की क्या जरूरत है। कोई जरूरत नहीं है, यह मूढ़ता मालूम होगी। बोधपूर्ण होओ,और तब उस बोध में यह भाव प्रगाढ़ होगा कि मैं शरीर नहीं हूं। यह विचार नहीं होगा, भाव होगा। यह तुम्हारे सिर की नहीं, तुम्हारे पूरे प्राणों की अनुभूति होगी। तुम दूरी महसूस करोगे। कि शरीर बहुत दूर है। और मैं उससे बिलकुल भिन्न हूं। और दोनों के मिश्रण की संभावना भी नहीं है। तुम दोनों को मिला नह सकते हो। शरीर-शरीर है, पदार्थ है; और तुम चैतन्य हो। वे दोनों साथ रह सकते है1 लेकिन एक दूसरे में घुल मिल नहीं सकते है। उनका मिश्रण नहीं हो सकता है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-41

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—65 (ओशो)

''अन्य देशनाओं के लिए जो शुद्धता है वह हमारे लिए अशुद्धता ही है। वस्तुतः किसी को भी शुद्ध या अशुद्ध की तरह मत जानों।''

शुद्ध या अशुद्ध की तरह मत जानों।''

यह तंत्र का एक बुनियादी संदेश है। तुम्हारे लिए यह बड़ी कठिन धारणा होगी; क्योंकि यह बिलकुल ही गैर-नैतिक धारणा है। मैं इसे अनैतिक नहीं कहूंगा। क्योंकि तंत्र को नीति-अनीति से कुछ लेना देना नहीं है। तंत्र कहता है कि शुद्धि-अशुद्धि से कोई

मतलब नहीं है। इसकी देशना तुम्हें शुद्ध-अशुद्धि के उपर उठने में, दरअसल विभाजन के, द्वंद्व और द्वैत के पार जाने में सहयोग देने के लिए है।

तंत्र कहता है कि अस्तित्व अखंड है, अस्तित्व एक है। और जो द्वंद्व है वह सब-स्मरण रहे, सब के सब—मनुष्य के बनाए हुए है। द्वंद्व नैतिक-अनैतिक, पाप-पूण्य ये सारी धारणाएं मनुष्य ने निर्मित की है। ये मनुष्य की मान्यताएं है, ये यथार्थ नहीं है। क्या शुद्ध है और क्या अशुद्ध है। यह तुम्हारी व्याख्या पर निर्भर करता है।
नीत्से ने कहीं कहा है कि सब नैतिकता व्याख्या है।

तो कोई चीज इस देश में नैतिक हो सकती है और वही चीज पड़ोसी देश में अनैतिक कहो सकती है। एक ही चीज मुसलमान के लिए नैतिक हो सकती है और हिंदू के लिए अनैतिक हो सकती है। एक ही चीज ईसाई के लिए नैतिक और जैन के लिए अनैतिक हो सकती है। या जो चीज पुरानी पीढ़ी के लिए नैतिक था, नई पीढ़ी के लिए अनैतिक हो सकती है। यह दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। यह रुझान की बात है। बुनियादी रूप से ये एक मान्यता है। झूठ है। तथ्य बस तथ्य है। वह न नैतिक होता है, न अनैतिक होता है। न शुद्ध और न ही अशुद्ध।

अगर विभाजन संसार को ही नहीं बाँटता है, विभाजन करने वाले को भी बांट देता है। अगर तुम बांटते हो तो उसमें तुम खुद भी बंट जाते हो। और जब तक तुम बह्म विभाजनों को नहीं भूलते,तब तक तुम अपने आंतरिक विभाजनों को अतिक्रमण नहीं कर सकते हो। जो कुछ तुम संसार के साथ करते हो, तुम उसे अपने साथ पहले ही कर लेते हो।

सिद्ध योग के महान सदगुरू नरोपा ने कहा है: ''इंच भर विभाजन भी किया, तो स्वर्ग और नरक अलग-अलग हो जाते है। इंच भर का विभाजन। लेकिन हम बांटते है, नाम देते है, निंदा करते है। औचित्य सिद्ध करते है। आस्तित्व के शुद्ध तथ्य को देखो। और कोई नाम मत दो, कोई लेबल मत दो। केवल तभी तंत्र की देशना को समझ सकते हो। तथ्य को भला या बुरा मत कहो। तथ्य पर अपने चित को मत उतारों। ज्यों ही तुम तथ्य पर अपनी धारणा आरोपित करते हो, तुम झूठ का निर्माण कर लेते हो। अब यह तथ्य न रहा, सत्य न रहा; यह तुम्हारा प्रक्षेपण हो गया।

यह सूत्र कहता है: ''अन्य देशनाओं के लिए जो शुद्धता है वह हमारे लिए अशुद्धता ही है। वस्तुत: किसी को भी शुद्ध या अशुद्ध की तरह मत जानो।

तंत्र कहता है कि जो चीज अन्य देशनाओं के लिए बहुत शुद्ध मानी जाती है, पुण्य मानी जाती है। वह हमारे लिए पाप है। क्योंकि उनकी शुद्धता की धारणा बाँटती है; उनके लिए कुछ शुद्ध है कुछ अशुद्ध।

अगर तुम किसी को संत कहते हो तो तुमने किसी को पापी बना दिया। अब तुम्हें कहीं ने कहीं किसी न किसी को निंदित करना होगा। क्योंकि संत पापी के बिना हो नहीं सकता। अब हमारे प्रयत्नों की व्यर्थता देखो। हम पापियों को मिटाने में लगे है। और हम एक ऐसी दुनियां की आशा करते है जहां पापी नहीं होगें। सिर्फ संत होगे। यह अर्थ हीन है। क्योंकि संत पापी के बिना नहीं हो सकता। वे एक ही सिक्के के दो पहलू है। तुम सिक्के के एक पहलू को नहीं मिटा सकते; दोनों साथ ही रहेगें। पापी और पुण्यात्मा भी संसार में विदा हो जायेंगे। लेकिन घबराओ मत; उन्हें विदा होने दो। वे किसी मूल्य के नहीं सिद्ध हुए है।

पापी और संत एक ही व्याख्या के, जगत के प्रति एक ही दृष्टिकोण के अंग है। यह दृष्टि कहता है कि यह शुभ है और वह अशुभ है। और तुम यह नहीं कह सकते कि यह अच्छा है। अगर तुम यह न कहो कि यह बुरा है। शुभ की परिभाषा के लिए अशुभ जरूरी है। शुभ अशुभ पर निर्भर करता है। पुण्य पाप पर निर्भर करता है। तुम्हारे महात्मा असंभव है, वे पापियों के बिना नहीं हो सकते। उन्हें तो पापियों का अहसान मानना चाहिए; वे उनके बिना जी नहीं सकते। वे चाहे पापियों की जितनी

भी निंदा क्यों न करे। वे और पापी एक ही घटना के अंग है। पापी संसार से तभी विदा होंगे जब महात्मा विदा होंगे। उनके पहल नहीं और पूण्य की धारण के बिना पाप नहीं टिक सकता है।

तंत्र कहता है कि तथ्य असली बात है; और व्याख्या झूठ है। व्याख्या मत करो।

वस्तुत: किसी को भी शुद्ध या अशुद्ध सत्य पर थोपी गई हमारी व्याख्याएं है। हमारे दृष्टिकोण है। इसे प्रयोग करो। यह विधि कठिन है, सरल नहीं है। कारण यह है कि हम द्वैत मूलक विचारण से इतने ग्रस्त है। उसमे इतने डूबे है कि हमें इसका भी पता नहीं रहता कि हम किसकी निंदा कर रहे है। और किसको उचित कह रहे है। अगर कोई व्यक्ति यहां धूम्रपान करने लगे तो तुम सचेतन रूप से कुछ जाने बिना ही उसे निंदित कर दोगे; तुम अपने अंतस में उसकी निंदा कर डालोगे। तुम्हारी दृष्टि में निंदा हो चाहे न हो। तुमने व्यक्ति पर नजर भी नहीं डाली हो, लेकिन तुमने निंदा कर दी।

यह विधि कठिन होगी। क्योंकि हमारी इतनी गहन आदत है। प्रगाढ़ है। तुम महज अपनी भाव-भंगिमा से, अपने बैठने-उठने से किसी को निंदित कर देते हो। किसी को सही बताते हो, और इसका होश भी नहीं रहता कि तुम क्‍या कर रहे हो। तुम जब किसी आदमी को देखकर मुस्कराते हो या नहीं मुस्कराते हो। जब तुम किसी को देखते हो या नहीं देखते हो, तुम उसकी उपेक्षा करते हो, तो तुम क्या कर रहे हो। तुम अपनी पंसद-नापसंद आरोपित कर रहे हो। जब तुम कहते हो कि कोई चीज सुंदर है तो तुम्हें किसी चीज को कुरूप कहना ही होगा। और यह बांटने वाली दृष्टि साथ ही साथ तुम्हें भी बांट रही है। तुम्हारे भीतर दो व्यक्ति हो जाएंगे।

अगर तुम कहते हो कि कोई व्यक्ति क्रोध मे है और क्रोध बुरा है तो तुम तब क्या करोगे। तुम कहोगे कि क्रोध बुरा है। तब समस्याएं खड़ी होंगी। क्योंकि तुम कहते हो कि यह बुरा है, मुझमें जो क्रोध है यह बुरा है। तब तुम अपने को दो व्यक्तियों में बांटने लगे। एक बुरा व्यक्ति होगा। पापी होगा। और दूसरा भला व्यक्ति होगा। महात्मा होगा। निश्चित ही, तुम अपने को भीतर का महात्मा मानोगे। और भीतर के पापी की निंदा करोगे। तुम दो में विभाजित हो गए। अब निरंतर लड़ाई चलेगी। संघर्ष होगा। अब तुम व्यक्ति न रहे, अब तुम भीड़ हो गये। तुम्हारे भीतर एक गृह युद्ध चलेगा। अब मौन गया, शांति गई। तुम तनाव और संताप से भर जाओगे। यही तुम्हारी हालत है। लेकिन तुम्हें पता नहीं है कि ऐसा क्यों है? विभाजित व्यक्ति शांत नहीं हो सकता। कैसे हो सकता है? तुम अपने शैतान को कहां रखोगे? तुम्हें उसे मिटाना होगा। लेकिन यह तुम ही हो; तुम उसे मिटा नहीं सकते। तुम दो नहीं हो; सच्चाई एक है, यथार्थ एक है। लेकिन अपनी बांटने वाल दृष्टि के कारण तुमने बाह्म यथार्थ को बांट दिया, और उसके अनुसार भीतरी यथार्थ भी बंट गया। इसलिए हर एक आदमी स्वयं से ही लड़ रहा है।

यह ऐसा ही है जैसे कि हम अपने ही दोनों को लड़ाएं। बायां हाथ दाएं हाथ से लड़े। दायां हाथ बाएं हाथ से लड़े। और ऊर्जा एक ही है। और बाएं दाएं हाथों मे एक ही ऊर्जा बह रही है। मैं ही दोनों हाथों में बह रहा हूं। और एक ही संघर्ष,एक झूठा संघर्ष खड़ा कर रहा हूं। कभी में अपने बाएं हाथ को धोखा दे सकता हूं, और मेरा दायां हाथ जीत सकता है। और कभी में दाएं हाथ को हरा सकता हूं। परंतु सच में दोनों मैं ही हूं।

तो तुम कितना ही सोचो कि मेरे भीतर का संत जीत गया और शैतान हार गया,स्मरण रहे कि तुम किसी भी क्षण जगहें बदल सकते हो, और तब संत नीचे होगा और शैतान ऊपर होगा। इससे ही भय पैदा होता है, असुरक्षा का भाव पैदा होता है; क्योंकि तुम जानते हो कि कुछ भी निश्चित नहीं है। तुम जाने हो कि इस समय मैं प्रेमपूर्ण हूं और अपनी घृणा को दबा दिया है। लेकिन तुम जानते हो कि घृणा क्षण भर में उपर आ जायेगी। और प्रेम नीचे दब जायेगा। क्योंकि भीतर तुम दो हो।

तंत्र कहता है कि खंड मत करो। और केवल तभी तुम जीत सकते हो।

अखंड कैसे हुआ जाए? निंदा मत करो; मत कहो कि यह अच्छा है और वह बुरा है। शुद्धता और अशुद्धता की सभी धारणाओं को विदा कर दो। संसार को देखो। लेकिन मत कहो कि यह क्या है। अज्ञानी रहो। बहुत बुद्धिमानी मत दिखाओं। कुछ धारणा मत बनाओ। चुप रहो; न निंदा करो और न प्रशंसा। अगर तुम संसार के संबंध में मौन रह सकते हो धीरे-धीरे यह मौन तुम्हारे भीतर भी प्रवेश कर जाएगा। और अगर बाहर का विभाजन समाप्त हो जाए तो भीतर का विभाजन भी समाप्ति हो जाएगा। क्योंकि दोनों साथ ही हो सकते है। लेकिन यह बात समाज के लिए खतरनाक है। यही कारण है कि तंत्र का दमन हुआ, उसे दबाया गया। समाज के लिए यह दृष्टि खतरनाक है। कुछ भी अनैतिक नहीं है। कुछ भी नैतिक नहीं है। कुछ शुद्ध नहीं है, कुछ भी अशुद्ध नहीं है। चीजें जैसी है वैसी है। एक सच्चा तांत्रिक यह नहीं कहेगा कि चोर बुरा है; वह इतना ही कहेगा कि वह चोर है; बस। और उसे चोर कहने में उसके मन में निंदा नहीं होगी। अगर कोई कहता है कि यह आदमी महान संत है तो तांत्रिक कहेगा; हां यह संत है। लेकिन उसे संत कहने में कोई मूल्यांकन नहीं है; वह यह नहीं कहेगा कि यह अच्छा है। यह कहेगा; ठीक है, यह संत है और वह चोर है। यह कहना ऐसा ही है जैसे यह कहना कि यह गुलाब है और वह गुलाब नहीं है। यह वृक्ष बड़ा है,वह छोटा है। कि रात काली है और दिन उजला है। इसमें कोई तुलना नहीं है।

लेकिन यह खतरनाक है। समाज एक की निंदा और दूसरे की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता है। समाज नहीं रह सकता। क्योंकि समाज द्वैत पर खड़ा है। इसलिए तंत्र का दमन किया गया। उसे समाज विरोधी समझा गया। तंत्र समाज-विरोधी नहीं है। बिलकुल नहीं है। लेकिन अद्वैत कि दृष्टि सामाजिक धारणाओं का अतिक्रमण कर जाती है। वह समाज विरोधी नहीं है। वह समाज का अतिक्रमण है। समाज के पार उठ जाना है।

इसे प्रयोग करो। किसी मूल्यांकन के बिना, केवल स्वाभाविक तथ्यों के साथ, कि अमुक यह है और अमुक वह है। संसार में चलो। और धीरे-धीरे तुम्हें अपने भीतर एक अखंडता अनुभव होगी, तुम्हारे विपरीत शब्द, तुम्हारे विरोध, तुम्हारी अच्छाई-बुराई सब इकट्ठे हो जाएंगे। वे एक में मिल जाएंगे। और तुम एक इकाई बन जाओगे। तब न कुछ शुद्ध होगा और न कुछ अशुद्ध होगा। तुम यथार्थ को सीधे जानते हो।

‘’अन्य देशनाओं के लिए जो शुद्धता है वह हमारे लिए अशुद्धता ही है।‘’

तंत्र कहता है कि जो दूसरों के लिए बुनियादी बात है वह हमारे लिए जहर है। उदाहरण के लिए। अहिंसा पर आधारित देशनाएं है। जो कहती है कि हिंसा अशुभ है। और अहिंसा शुभ है। तंत्र कहता है कि हिंसा-हिंसा है। और अहिंसा-अहिंसा है। न कुछ बुरा है और न कुछ भला। कुछ देशनाएं ब्रह्मचर्य पर आधारित है। वे कहती है ब्रह्मचर्य शुभ है। लेकिन यह तथ्य मात्र है। इनका मूल्यों से कुछ लेना देना नहीं है। तंत्र यह कभी नहीं कहेगा कि ब्रह्मचारी अच्छा है। और जो कामवासना में डूबा है वह बुरा है। तंत्र यह कभी नहीं कहेगा। चीजें जैसी है तंत्र उन्हें वैसे ही स्वीकार करता है। और क्यों? सिर्फ तुम्हारे भीतर अखंडता निर्मित करने के लिए।

यह विधि तुम्हारे भीतर एक अखंडता निर्मित करने के लिए है। तुम्हारे भीतर एक समग्र,अखंड, द्वंद्व रहित ओर विरोध रहित सत्ता पैदा करने के लिए है। केवल तब ही मौन संभव है। जो व्यक्ति किसी वृति से भागता है वह कभी शांत नहीं हो सकता। कैसे हो सकता है? और जो अपने भीतर खंडित है, स्वयं से ही लड़ रहा है। वह जीत कैसे सकता है। यह असंभव है। तुम ही दोनों हो, फिर जीत किसकी होगी? किसी कि भी जीत नहीं होगी। तुम्हारी ही हार होगी। क्योंकि लड़ने में तुम्हारी ऊर्जा नष्ट होगी।

यह विधि तुम में एक अखंडता निर्मित करेगी। मूल्यों को जाने दो; निर्णय मत लो। जीसस ने कहीं कहा है: ‘’दूसरे के संबंध में कोई निर्णय मत लो, ताकि तुम्हारे संबंध में भी निर्णय न लिया जाए।‘’ लेकिन यहूदियों के लिए इसे समझना असंभव हो गया। क्योंकि यहूदियों का सारा चिंतन नैतिकता पर निर्भर है। यह शुभ है और वह अशुभ है। जीसस इस उपदेश में—कोई

निर्णय मत लो। तंत्र की भाषा बोल रहे है। यदि उनकी हत्या कर दी गई, उन्हें सूली पर लटकाया गया, तो उसका कारण यह उपदेश था। उनकी दृष्टि तंत्र की दृष्टि थी: ''कोई निर्णय मत लो।''

तो मत कहो कि वेश्या बुरी है। कौन जानता है? और मत कहो कि महात्मा अच्छा है कौन जानता है? और अंतत: तो दोनों एक ही खेल के अंग है। वे एक दूसरे पर निर्भर है, परस्पर जुड़े है। इसलिए जीसस कहते है: कोई निर्णय मत लो। और यही शिक्षा इस सूत्र में है: 'दूसरे के संबंध में कोई निर्णय मत लो, ताकि तुम्हारे संबंध में निर्णय न लिया जा सके।'

अगर तुम कोई निर्णय नहीं लेते हो, कोई नैतिक दृष्टिकोण नहीं अपनाते हो तो, तथ्यों को वैसे ही देखते हो जैसे वे है। अपने हिसाब से उनकी व्याख्या नहीं करते हो, तो तुम्हारे संबंध में भी निर्णय नहीं लिया जाएगा।

तुम पूरी तरह रूपांतरित हो गए हो। अब कोई सत्ता तुम्हारे संबंध में निर्णय नहीं लेगी; उसकी जरूरत न रही। तुम स्वयं दिव्य हो गए; तुम स्वयं परमात्मा हो गए।

तो साक्षी बनो, न्यायाधीश नहीं।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-41

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—66 (ओशो)

'मित्र और अजनबी के प्रति, मान और अपमान में, असमता और समभाव रखो।'

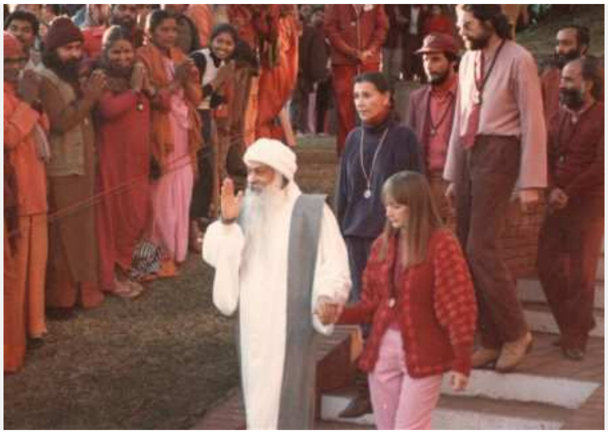

'मित्र और अजनबी के प्रति, मान और अपमान में, असमता और समभाव रखो।'—-osho

'असमता के बीच समभाव रखो।' यह आधार है। तुम्हारे भीतर क्या घटित हो रहा है। दो चीजें घटित हो रही है। तुम्हारे भीतर कोई चीज निरंतर वैसी ही रहती है; वह कभी नहीं बदलती। शायद तुमने इसका निरीक्षण न किया हो। शायद तुमने अभी इसका साक्षात्कार न किया हो। लेकिन अगर निरीक्षण करोगे तो जानोंगे कि तुम्हारे भीतर कुछ है जो निरंतर वही का वही रहता है। उसी के कारण तुम्हारा एक व्यक्तित्व होता है। उसी के कारण तुम अपने को केंद्रित अनुभव करते हो; अन्यथा तुम एक अराजकता हो जाओगे।

तुम कहते हो; 'मेरा बचपन।' अब इस बचपन का क्या बच रहा है? यह कौन है जो कहता है: 'मेरा बचपन' यह मेरा, मुझे, मैं कौन है। तुम्हारे बचपन का तो कुछ भी शेष नहीं बचा है। यदि तुम्हारे बचपन के चित्र तुम्हें पहली दफा दिखाए जाये तो तुम उन्हें पहचान भी नहीं सकोगे। सब कुछ इतना बदल गया है। तुम्हारा शरीर अब वही नहीं है। उसकी एक कोशिश भी वही नहीं है।
शरीर शास्त्री कहते है कि शरीर एक प्रवाह है—सरित-प्रवाह। प्रत्येक क्षण अनेक पुरानी कोशिकाएं मर रही है। और अनेक नई कोशिकाएं बन रही है। सात वर्षों के भीतर तुम्हारा शरीर बिलकुल बदल जाता है। अगर तुम सत्तर साल जीने वाल हो तो इस बीच तुम्हारा शरीर दस बार बदल जायेगा। पूरा का पूरा बदल जाता है। प्रत्येक क्षण तुम्हारा शरीर बदल रहा है।

और तुम्हारा मन बदल रहा है। जैसे तुम अपने बचपन के शरीर का चित्र नहीं पहचान सकते हो वैसे ही यदि तुम्हारे बचपन के मन का चित्र बनाना संभव हो तो तुम उसे भी नहीं पहचान पाओगे। तुम्हारा मन तो तुम्हारे शरीर से भी ज्यादा प्रवाहमान है। हर एक क्षण में बदल जाता है। एक क्षण के लिए भी कुछ स्थाई नहीं है। ठहरा हुआ नहीं है। मन के तल पर सुबह तुम कुछ थे; शाम तुम बिलकुल ही भिन्न व्यक्ति हो जाते हो।

जब भी कोई व्यक्ति बुद्ध से मिलने आता था तो उसे विदा होते समय बुद्ध उससे कहते थे: ''स्मरण रहे, जो व्यक्ति मुझ से मिलने आया था वही आदमी वापस नहीं जा रहा है। तुम अब बिलकुल भिन्न आदमी हो। तुम्हारा मन बदल गया है।

बुद्ध जैसे व्यक्ति से मिलकर तुम्हारा मन वही नहीं रह सकता, उसकी बदलाहट अनिवार्य है—वह बदलाहट चाहे भले के लिए हो या बुरे के लिए। तुम एक मन लेकिर वही गये थे; तुम भिन्न ही मन लेकिर वहां सक वापस आओगे। कुछ बदल गया है। कुछ नया उससे जुड़ गया है। कुछ पुराना उससे अलग हो गया है।

और अगर तुम किसी से नहीं भी मिलते हो, बस अपने साथ अकेले रहते हो, तो भी तुम वही नहीं रह सकते। पल-पल नदी वह रही है। हेराक्लाइटस ने कहा है कि तुम एक ही नदी में दो बार नहीं प्रवेश कर सकते। यही बात मनुष्य के संबंध में सही है। तुम एक ही मनुष्य से दो बार नहीं मिल सकते । असंभव है यह। और इसी तथ्य के कारण—और इसके प्रति हमारे अज्ञान के कारण—हमारा जीवन संताप बन जाता है। क्योंकि तुम्हारी अपेक्षा रहती है। कि दूसरा सदा वही रहेगा।

तुम अपने शरीर को देखो, वह बदल रहा है। तुम अपने मन को समझो, वह भी बदल रहा है। कुछ भी वही का वही नहीं रहता है। वहां तक की लगातार दो क्षणों के लिए भी कुछ तुमने अपने मित्र को अजनबी की भांति नहीं देखा है तो तुमने देखा ही नहीं है। अपनी पत्नी को देखा; क्या तुम सच ही उसको जानते हो? हो सकता है तुम उसके साथ बीस वर्षों से, या उसे भी ज्यादा समय से रह रहे हो। लेकिन वह अजनबी ही रहती है। तुम जितना ज्यादा उसके साथ रहते हो उतनी ही संभावना है अपरिचित ही रहो। तुम उससे कितना ही प्रेम करते हो उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

सच तो यह है कि तुम उसे जितना ज्यादा प्रेम करोगे वह उतनी ही रहस्यमय मालूम पड़ेगी। कारण यह है कि तुम उसे जितना ज्यादा प्रेम करोगे। तुम उतने ही अधिक गहरे उसमे प्रवेश करोगे। और तुम्हें मालूम पड़ेगा कि वह कितनी नदी जैसी प्रवाहमान है, परिवर्तनशील है, जीवंत है और प्रति पल नई और भिन्न है।

अगर तुम गहरे नहीं देखते हो, अगर तुम इसी तल से बंधे हो कि वह तुम्हारी पत्नी है, कि उसका यह नाम है, तो तुमने एक हिस्से को पकड़ लिया है, और उस हिस्से को तुम अपनी पत्नी की भांति देखते रहते हो। और तब

जब भी तुम्हारी पत्नी में कुछ बदलाहट होगी, वह उस बदलाहट को तुमसे छिपायेगी। जब वह प्रेमपूर्ण नहीं होगी तब भी तुमसे प्रेम का अभिनय करेगी, क्योंकि तुम्हें उससे प्रेम की अपेक्षा है। और तब उसके कुछ नकली और झूठ रूप तुम्हारे सामने होंगे। क्योंकि उसे बदलने कि इजाजत नहीं है। उसे स्वयं होने की इजाजत नहीं है। कुछ ऊपर से लादा जा रहा है और तब सारा संबंध मुर्दा हो जाता है।

तुम जितना ही प्रेम करोगे, उतना ही परिवर्तन का पहलू दिखाई देगा। तब तुम प्रत्येक क्षण अजनबी हो; जब तुम भविष्यवाणी नहीं कर सकते कि तुम्हारा पति कल सुबह कैसे भविष्यवाणी कर सकती है। भविष्यवाणी तो तभी हो सकती है। यदि तुम्हारा पति मुर्दा हो; तब तुम भविष्यवाणी कर सकती है। केवल वस्तुओं के संबंध में भविष्यवाणी हो सकती है। व्यक्तियों के संबंध में भविष्यवाणी नहीं हो सकती। अगर किसी व्यक्ति के संबंध में भविष्यवाणी की जा सके तो जान लो कि वह मुर्दा है, वह मर चुका है। उसका जीवित होना झूठ है। इसीलिए उसके बारे में भविष्यवाणी हो सकती है। व्यक्तियों के संबंध में कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती है। क्योंकि बदलाहट संभव है।

अपने मित्र को अजनबी की भांति देखो; वह अजनबी ही है। और डरों मत। हम अजनबी से डरते है; इसलिए हम भूल जाते है। कि मित्र भी अजनबी है। अगर तुम अपने मित्र में भी अजनबी को देख सको तो तुम्हें कभी निराशा नहीं होगी। क्योंकि अजनबी से तुम अपेक्षा नहीं होती है। मित्र के संबंध में तुम सदा निश्चित होते है। तुम उससे जो कुछ चाहोगे। वह नहीं होता है। इससे ही अपेक्षा पैदा होती है। और निराशा हाथ लगती है। क्योंकि कोई व्यक्ति तुम्हारी अपेक्षाओं को नहीं पूरा कर सकता है। कोई यहां तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करने के लिए नहीं है। सब यहां अपने अपेक्षाएं पूरी करने के लिए है। कोई तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करने के लिए नहीं है। लेकिन तुम्हें अपेक्षा है कि दूसरे तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करें। और दूसरों को अपेक्षा है कि तुम उनकी अपेक्षाएं पूरी करो। और तब कलह है, संघर्ष है, हिंसा है

और दुःख है।

अपने मित्र को अजनबी की भांति देखो; वह अजनबी ही है। और डरों मत। हम अजनबी से डरते है; इसलिए हम भूल जाते है कि मित्र भी अजनबी है। अगर तुम अपने मित्र में भी अजनबी को देख सको तो तुम्हें कभी निराशा नहीं होगी। क्योंकि अजनबी से तुम्हें अपेक्षा नहीं होती है। मित्र के संबंध में तुम सदा निश्चित होते हो कि तुम उससे जो कुछ चाहोगे वह पूरा करेगा; इससे ही अपेक्षा पैदा होती है। और निराशा हाथ लगती है। क्योंकि कोई व्यक्ति तुम्हारी अपेक्षाओं को नहीं पूरा कर सकता है। कोई यहां तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करने के लिए नहीं है। सब यहां अपनी अपेक्षा है। कि दूसरे तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करें,और दूसरों को अपेक्षा है कि तुम उनकी अपेक्षाएं पूरी करो। और कब कलह है, संघर्ष हिंसा है और दूःख है।

अजनबी को सदा स्मरण रखो। मत भूलों कि तुम्हारा घनिष्ठ मित्र भी अजनबी है। दूर से भी दूर है। अगर यह भाव, यह ज्ञान घटित हो जाए, तो फिर तुम अजनबी में भी मित्र को देख सकते हो। यदि मित्र अजनबी हो सकता है तो अजनबी भी मित्र हो सकता है।

किसी अजनबी को देखो; उसे तुम्हारी भाषा नहीं आती है। वह तुम्हारे देश का नहीं है। तुम्हारे धर्म का नहीं है। तुम्हारे रंग का नहीं है। तुम गोरे हो और वह काला है। या तुम काले हो और वह गोरा है। भाषा के जरिए तुम्हारे और उसके बीच कोई संवाद संभव नहीं है। तुम्हारे और उसके पूजा स्थल भी एक नहीं है। राष्ट्र, धर्म, जाति, वर्ण, रंग—कहीं भी कोई समान भूमि नहीं है। वह बिलकुल अजनबी है। लेकिन उसकी आंखों में झांको, वहां एक ही मनुष्यता मिलेगी। वह समान भूमि है। उसके भीतर वहीं जीवन है जो तुममें है; वह समान भूमि है। और

अस्तित्व भी वहीं है; वह तुम दोनों के मित्र होने का आधार है। तुम उसकी भाषा भले हीन समझो, लेकिन उसको तो समझ सकते हो। मौन से भी संवाद घटित होता है। उसकी आँखो में गहरे, झांकने भर से प्रकट हो सकता है।

और अगर तुम गहरे देखना जान लो तो शत्रु भी तुम्हें धोखा नहीं दे सकता; तुम उसके भीतर मित्र को देख लोगे। वह यह नहीं सिद्ध कर सता कि वह तुम्हारा मित्र नहीं है। वह तुमसे कितना ही दूर हो, तुम्हारे पास ही है; क्योंकि तुम उसी अस्तित्व की धारा में हो, उसी नदी में हो, जिसमे वह है। तुम दोनों अस्तित्व के तल पर एक ही जमीन पर खड़े हो।

और अगर वह भाव प्रगाढ़ हो तो एक वृक्ष भी तुमसे बहुत दूर नहीं है। तब एक पत्थर भी बहुत अगल नहीं है। एक पत्थर कितना अजनबी है। उसके साथ तुम्हारा कोई तालमेल नहीं है; उसके साथ संवाद की कोई संभावना नहीं है। लेकिन वहां भी वही अस्तित्व है; पत्थर का भी अस्तित्व है, वह भी अस्तित्व का अंश है। वह भी होने के जगत में भागीदार है। वह है। उसमें भी जीवन है। वह भी स्थान घेरता है; वह भी समय में जीता है। सूरज उसके लिए भी उगता है। जैसे तुम्हारे लिए उगता है। एक दिन वह नहीं था। जैसे तुम नहीं थे। और एक दिन जैसे तुम मर जाओगे। वह भी मर जाएगा। पत्थर भी एक दिन विदा

हो जाएगा।

अस्तित्व में हम मिलते है; यह मिलन ही मित्रता है। व्यक्तित्व में हम भिन्न है, अभिव्यक्ति में हम भिन्न है; लेकिन तत्वत: हम एक ही है। अभिव्यक्ति में रूप में हम अजनबी है; उस तल पर हम एक दूसरे के कितने ही करीब आएं, लेकिन दूर ही रहेंगे। तुम पास-पास बैठ सकते हो, एक दूसरे को आलिंगन में ले सकत हो; लेकिन इससे ज्यादा निकट आने की संभावना नहीं है। जहां तक तुम्हारे बदलते व्यक्तित्व का संबंध है, तुम एक नहीं हो सकते हो। तुम कभी समान नहीं हो। तुम सदा भिन्न हो, अजनबी हो। उस तल पर तुम नहीं मिल सकते क्योंकि मिलने के पले ही तुम बदल जाते हो। मिलन की कोई संभावना नहीं है। जहां तक शरीर का संबंध है, मन का संबंध है, मिलन संभव नहीं है। क्योंकि इसके पहले कि तुम मिलो तुम वही नहीं रहते।

क्या तुमने कभी ख्याल किया है। तुम्हें किसी के प्रति प्रेम उमगता है। गहन प्रेम तुम उस प्रेम से भर जाते हो; लेकिन जैसे ही तुम जाते हो और कहते हो कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, वह प्रेम विलीन हो जाता है। क्या तुमने निरीक्षण किया है कि वह प्रेम अब नहीं रहा, उसकी स्मृति भर शेष है। अभी वह था और अभी वह नहीं है। तुमने उसे अभिव्यक्त किया, उसे प्रकट किया; यही तथ्य उसे परिवर्तन के जगत में ले आया। जब उसकी प्रतीति हुई थी, हो सकता है वह प्रेम तुम्हारे प्राणों का हिस्सा रहा हो; लेकिन जब तुम उसे अभिव्यक्त करते हो तो तुम उसे समय और परिवर्तन के जगत में ले आते है; अब वह सरित प्रवाह में प्रविष्ट हो रहा है। जब तुम कहते हो कि मैं तुम्हें करता हूं, तब तक शायद वह बिलकुल ही गायब हो चुका हो। यह बहुत कठिन है; लेकिन अगर तुम निरीक्षण करोगे तो यह तथ्य बन जाएगा।

तब तुम देख सकते हो कि मित्र में अजनबी है और अजनबी ने मित्र है। और तब तुम 'असमानता के बीच समभाव' रख सकते हो। परिधि पर तुम बदलते रहते हो, लेकिन केंद्र पर, प्राणों में वही बन रहते हो।

'मान और अपमान में......।'

कौन सम्मानित होता है। और कौन अपमानित होता है? तुम? कभी नहीं। जो सतत बदल रहा है और जो तुम नहीं हो, सिर्फ वहीं मान अपमान अनुभव करता है। कोई तुम्हारा सम्मान करता है। और अगर तुमने समझा कि

यह व्यक्ति मेरा सम्मान कर रहा है। तो तुम कठिनाई में पड़ोगे। वह तुम्हें नहीं, तुम्हारी किसी खास अभिव्यक्ति को, किसी रूप विशेष को सम्मानित कर रहा है। वह तुम्हें कैसे जान सकता है? तुम स्वयं अपने को नहीं जानते हो। वह तुम्हारे सतत बदलते व्यक्तित्व के किसी रूप विशेष का सम्मान कर रहा हूं; वह तुम्हारी किसी अभिव्यक्ति का सम्मान कर रहा है। तुम दयावान हो, प्रेमपूर्ण हो; वह उसका सम्मान कर रहा है। लेकिन वह दया, वह प्रेम परिधि पर है। अगले क्षण तुम घृणा से भर सकते हो। हो सकता है फूल न रहें; कांटे ही कांटे हों। तुम इतने प्रसन्नन रहो; उदास और दुःखी होओ। तुम कठोर हो सकते हो, क्रोध में हो सकते हो। तब वह तुम्हारा अपमान करेगा। और हो सकता है। और दूसरे दिन साधु कर सकते है। आज वे तुम्हें महात्मा कह सकते है। और कल वे तुम्हारे खिलाफ हो सकते हो। तुम्हें पत्थर मार सकते है।

यह क्या है? वे तुम्हारी परिधि से परिचित होते है। वे कभी तुमसे परिचित नहीं होते। यह स्मरण रहे कि जो कुछ भी कह रहे है। वह तुम्हारे संबंध में नहीं है। तुम बाहर छूट जाते हो; तुम परे रह जाते हो। उसकी निंदा, उसकी प्रशंसा,वह जो भी करते है, उसका तुम्हारे साथ कोई भी संबंध नहीं है।

गांव में एक लड़की गर्भवती हो गई। उसने अपने मां बाप से कहा कि उसके गर्भ के लिए यह साधु ही जिम्मेदार है। और सारा गांव उसके खिलाफ उठ खड़ा हुआ। लोग आए और उन्होंने उसके झोंपड़े में आग लगा दी। सुबह का समय था। और बड़ी सर्द सुबह थी—जाड़े की सुबह। उन्होंने नवजात शिशु को उस भिक्षु के ऊपर फेंक दिया। और लड़की के पिता ने भिक्षु से कहा: 'यह तुम्हारा बच्चा है; इसे सम्हालो।' भिक्षु ने इतना ही कहा: 'ऐसा है क्या?' और तभी बच्चा रोने लगा। तो भिक्षु भीड़ को भूल कर,बच्चे को सम्हालने लगा।

भीड़ भिक्षु के झोंपड़े को जलाकर वापस लौट गई। इधर बच्चे को भूख लगी, लेकिन भिक्षु के पास दूध खरीदने के पैसे नही थे। तो वह नगर में बच्चे के लिए भीख मांगने गया। लेकिन अब उसे कौन भीख देता? वह जहां भी गया, लोगों ने अपने घरों के दरवाजे बंद कर लिए। सब जगह उसे निंदा और गालियां ही मिली।

आखिर में भिक्षु उसी घर के सामने पहुंचा जो उस बच्चे की मां का घर था। वह लड़की बहुत संताप में थी। तभी उसे बच्चे के रोने की आवाज सुनाई दी। वह द्वार पर खड़ा भिक्षु कह रहा था। 'मुझे मत दो, मैं पापी हूं, लेकिन यह बच्चा तो पापी नहीं है। इसके लिए थोड़ा दूध दे दरो।' तब उस लड़की से नहीं रहा गया। उसने कबूल कर लिया कि बच्चे के असली पिता को छिपाने के लिए उसने इस भिक्षु का नाम लिया था। वह बिलकुल बेकसूर है।

अब पूरा नगर फिर साधु के पास जमा हो गया। लोग उसके पैरों में गिरकर क्षमा मांगने लगे। और लड़की के पिता ने आकर भिक्षु से बच्चे को वापस ले लिया और आंसुओं से भरी आंखों से कहा: 'ऐसा है क्या? आपने सुबह ही इनकार क्यों नही किया? कि यह बच्चा आपका नहीं है। भिक्षु ने केवल इतना ही कहा कि ऐसा है क्या?'

अगर तुम अनासक्त रहने का प्रयत्न करते हो तो तुम परिधि पर ही हो; तुम्हें अभी केंद्र का कुछ पता नहीं है। केंद्र अनासक्त है। वह सदा अनासक्त है। वह पार है; वह सदा अस्पर्शित है। नीचे कुछ भी घटे, यह केंद्र सदा अनछुआ ही रहता है। सदा कुंवारा ही रहता है।

तो परस्पर विरोधी स्थितियों में इस विधि का प्रयोग करो; और अपने भीतर उसे अनुभव करते चलो जो सदा समान है। जब कोई तुम्हारा अपमान करे तो अपने ध्यान को उस बिंदू पर ले जाओ जहां तुम सिर्फ उस आदमी को सुन रहे हो, बिना किसी प्रतिक्रिया के बस सुन रहे हो। यह अपमान की स्थिति है। फिर कोई तुम्हारा सम्मान कर रहा है। उसे भी सुनो, सिर्फ सुनो। निंदा-प्रशंसा, मान-अपमान, सब में सिर्फ सुनो। तुम्हारी परिधि बेचैन होगी,

उसे भी देखो। केवल देख बदलने की कोशिश मत करो। उसे देखो, और स्वयं केंद्र से जुड़े रहो। तब तुम्हें वह अनासक्ति उपलब्ध होगी जो आरोपित नहीं है। जो सहज है, स्वाभाविक है।

और एक बार तुमने इस सहज अनासक्ति की प्रतीति हो जाए तो फिर कुछ भी तुम्हें बेचैन नहीं कर सकेगा। तुम शांत बने रहोगे। संसार में कुछ भी होगा तुम अकंप बने रहोगे। तब कोई तुम्हारी हत्या भी करेगा तो सिर्फ शरीर ही स्पर्श करेगा। तुम अस्पर्शित रहोगे। तुम सबके पार रहोगे। और यह पार रहना ही तुम्हें अस्तित्व में प्रवेश देगा। वह पार रहना ही तुम्हें आनंद से, शाश्वत से, सत्य में प्रतिष्ठित करेगा।

शंकर कहते है कि मैं उस व्यक्ति को संन्यासी कहता हूं, जो जानता है कि क्या अनित्य है और क्या नित्य है। क्या चलायमान है और क्या अचल है। भारतीय दर्शन इसे ही विवेक कहता है। परिवर्तन और सनातन की पहचान ही विवेक है, बोध है।

तुम जो कुछ भी कर रहे हो, उसमे इस सूत्र का प्रयोग बड़ी गहराई के साथ और बड़ी सरलता के साथ किया जा सकता है। तुम्हें भूख लगी है; इसमे दोनों स्थितियों को स्मरण रखो। भूख की प्रतीति परिधि को होती है। क्योंकि परिधि को ही भोजन की जरूरत है। ईंधन की जरूरत है। तुम्हें भोजन की कोई जरूरत नहीं है; तुम्हें ईंधन की कोई जरूरत नहीं है। यह शरीर की जरूरत है।

स्मरण रहे, जब भी भूख लगती है। शरीर को लगती है। तुम बस उसके जानने वाल हो। अगर तुम नहीं होते तो भूख नहीं जानी जा सकती है। और अगर शरीर नहीं होता तो भूख नहीं होती। शरीर को भूख तो लग सकती है, लेकिन उसे उसका ज्ञान नहीं हो सकता है। और तुम जानते तो हो, लेकिन तुम्हें भूख नहीं लगती।

तो कभी मत कहो कि मुझे भूख लगी है। सदा यही कहो,और महसूस करने का प्रयास करो की किसे भूख लगी है। उपवास की विधि ध्यानी के यही स्थिति उत्पन्न करता है। की मेरा शरीर भूखा है। अपने जानने पर जोर दो। यह विवेक है। तुम बूढ़े हो, कभी मत कहो कि मैं बूढ़ा हूं, इतना ही कहो कि यह शरीर बूढा हो गया है। और तब मृत्यु के क्षण में तुम जान सकोगे की मैं नहीं मर रहा। यह शरीर मर रहा है। मैं केवल शरीर बदल रहा हूं। घर बदल रहा हूं। और अगर यह विवेक प्रगाढ़ हो तो किसी दिन अचानक बुद्धत्व घटित हो जाएगा।
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-41

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—67 (ओशो)

'यह जगत परिवर्तन का है, परिवर्तन ही परिवर्तन का। परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन को विसर्जित करो।'

परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन को विसर्जित करो–शिव

पहली बात तो यह समझने की है कि तुम जो भी जानते हो वह परिवर्तन है, तुम्हारे अतिरिक्त जानने वाले के अतिरिक्त सब कुछ परिवर्तन है। क्या तुमने कोई ऐसी चीज देखी है। जो परिवर्तन न हो। जो परिवर्तन के अधीन न हो। यह सारा संसार परिवर्तन की घटना है।

हिमालय भी बदल रहा है। हिमालय का अध्यन करने वाले वैज्ञानिक कहते है कि हिमालय बढ़ रहा है। बड़ा हो रहा है। हिमालय संसार का सबसे कम उम्र का पर्वत है। वह अभी बच्चा है और बढ़ रहा है। वह अभी प्रौढ़ नहीं हुआ है। वह अभी उस अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ है। जहां पहूंच कर ह्रास या गिरावट शुरू होती है। हिमालय बच्चे जैसा है। विंध्याचल संसार के सबसे पुराने पर्वतों में हैं। कुछ तो उसे दुनियां का सबसे पुराना पर्वत मानते है। सदियों से वह अपने बुढ़ापे के कारण क्षीण हो रहा है। मर रहा है।
तो इतना स्थिर और अडिग और दृढ़ मालूम पड़ने वाला हिमालय भी बदल रहा है। वह बस पत्थरों कीं नदी जैसा नहीं है। पत्थर होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। पत्थर भी प्रवाहमान है, बह रहा है। तुलनात्मक दृष्टि से सब कुछ बदल रहा है। लेकिन ऐसा सापेक्षत: है।

कोई भी चीज, जिसे तुम जान सकते हो बदलाहट के बिना नहीं है। मेरी बात खयाल में रहे। जिसे तुम जानते हो वह वस्तु नित्य बदल रही है। जाननेवाले के अतिरिक्त कुछ भी नित्य नहीं है। शाश्वत नही है। लेकिन जानने वाला सदा पीछे है। वह सदा जानता है; वह कभी जाना नहीं जाता। वह कभी आब्जेक्ट्स नहीं बन सकता; वह सदा सब्जैक्ट ही रहता है। तुम जो कुछ भी करते हो या जानते हो, जाननेवाला सदा उससे पीछे है। तुम उसे नहीं जान सकते हो।

और जब मैं कहता हूं कि तुम जाननेवाले को नहीं जान सकते, तो इससे परेशान मत होओ। जब मैं कहता हूं कि तुम उसे नहीं जान सकते हो तो उसका मतलब है कि तुम उसे विषय की तरह नहीं जान सकते हो। मैं तुम्हें देखता हूं , लेकिन मैं उसी तरह अपने को कैसे देख सकता हूं। यह असंभव है। क्योंकि ज्ञान के लिए दो चीजें जरूरी है। ज्ञाता और ज्ञेय। तो जब मैं तुम्हें देखता हूं तो तुम ज्ञेय हो और मैं ज्ञाता हूं। और दोनों के बीच ज्ञान सेतु की तरह है। लेकिन ज्ञान का यह सेतु कहां बनेगा। जब मैं अपने को ही देखता हूं। जब मैं अपने को ही जानने की कोशिश करता हूं। वहां तो केवल मैं ही हूं, पूरी तरह अकेला मैं हूं। दूसरा किनारा बिलकुल अनुपस्थित है। फिर सेतु कहां निर्मित किया जाए? स्वयं को जाना कैसे जाएं?

तो आत्मज्ञान एक नेति-नेति प्रक्रिया है। तुम अपने को सीधे-सीधे नहीं जान सकते; तुम सिर्फ ज्ञान के विषयों को हटाते जा सकते हो। ज्ञान के विषयों को एक-एक करके छोड़ते चले जाओ। और जब ज्ञान का कोई विषय न रह

जाए, जब जानने को कुछ भी न रह जाए। सिर्फ एक शून्य, एक खाली पन रह जाए—और यही ध्यान है। ज्ञान के विषयों को छोड़ते जाना—तब एक क्षण आता है जब चेतना तो है लेकिन जानने के लिए कुछ नहीं है। जानना तो है, लेकिन जानने को कुछ नहीं बचता है। तब जानने की सहज-शुद्ध ऊर्जा रहती है। लेकिन जानने को कुछ नहीं बचता है। कोई विषय नहीं रहता है। उस अवस्था में जब जानने को कुछ नहीं रहता, तुम एक अर्थों में स्वयं को जानते हो। अपने को जानते हो।

लेकिन यह ज्ञान अन्य सब ज्ञान से सर्वथा भिन्न है। दोनो के लिए एक ही शब्द का उपयोग करना भ्रामक है। इसीलिए अनेक रहस्यवादियों ने कहा है कि आत्मज्ञान शब्द विरोधाभासी है। ज्ञान सदा दूसरे को होता है। अंत: आत्म ज्ञान संभव नहीं है। जब दूसरा नहीं होता है तो कुछ होता है, तुम उसे आत्म ज्ञान कह सकते हो। लेकिन यह शब्द भ्रामक है।

तो तुम जो भी जानते हो वह परिवर्तन है। ये जो दीवारें है, ये भी निरंतर बदल रही है। और भौतिक शास्त्र भी इसका समर्थन करता है। जो दीवार है, ये स्थाई मालूम पड़ती है। ठहरी हुई लगती है। वह भी प्रति पल बदल रही है। एक-एक परमाणु बह रहा है। प्रत्येक चीज बह रही है। लेकिन उसकी गति इतनी तीव्र है कि उसका पता नहीं चलता है। दोपहर भी वह ऐसे लगती थी श्याम भी ऐसे लगती है।

यह सूत्र कहता है कि सभी चीजें बदल रही है। 'यह जगत परिवर्तन का है.....।'

इस सूत्र पर ही बुद्ध का समस्त दर्शन खड़ा है। बुद्ध कहते है कि प्रत्येक चीज बहाव है, बदल रही है। क्षणभंगुर है। और यह बात प्रत्येक व्यक्ति को जान लेना चाहिए। बुद्ध का सारा जोर इसी एक बात पर है; उनकी पूरी दृष्टि इसी बात पर आधारित है।

तुम्हें एक चेहरा दिखाई देता है, बहुत सुंदर है। और जब तुम सुंदर रूप को देखते हो तो भाव होता है कि यह रूप सदा ही ऐसा रहेगा। इस बात को ठीक से समझ लो ऐसी अपेक्षा कभी मत करो। और अगर तुम जानते हो कि यह रूप तेजी से बदल रहा है, कि यह इस क्षण सुंदर है और अगले क्षण कुरूप हो जायेगा। तो फिर आसक्ति कैसे पैदा होगी? असंभव है। एक शरीर को देखो,वह जीवित है; अगले क्षण वह मृत हो सकता है। अगर तुम परिवर्तन को समझो तो सब व्यर्थ है।

बुद्ध ने अपना महल छोड़ दिया, परिवार छोड़ दिया। सुंदर पत्नी छोड़ दी, प्यारा पुत्र छोड़ दिया। और जब किसी ने पूछा कि क्यों छोड़ रहे हो, तो उन्होंने कहां: 'जहां कुछ भी स्थाई नहीं है,वहां रहने का क्या प्रयोजन? बच्चा एक न एक दिन मर जायेगा।' और बच्चे का जन्म उसी रात हुआ था। उसके जन्म के कुछ घंटे बाद ही उन्होंने उसे अंतिम बार देखा। अपनी पत्नी के कमरे में गये। पत्नी की पीठ दरवाजे की और थी और वह बच्चे को अपनी बांहों में लिए सो रही थी। बुद्ध ने अलविदा कहना चाहा। लेकिन वे झिझके। उन्होंने कहा: 'एक क्षण उनके मन में यह विचार कौंधा कि बच्चे के जन्म के कुछ घंटे ही हुए है। मैं उसे अंतिम बार देख हूं। तब उनके मन ने कहां, क्या प्रयोजन है, सब तो बदल रहा है। आज बच्चा पैदा हुआ है। कल मर जायेगा। एक दिन पहले यह नहीं था, अभी वह है। और एक दिन फिर नहीं रहेगा। तो क्या प्रयोजन है सब बदल रहा है।' वे मुड़े और विदा हो गये।

जब किसी ने पूछा कि आपने क्यों सब कुछ छोड़ दिया? मैं अपनी खोज में हूं। जो कभी नहीं बदलता,जो शाश्वत है। यदि मैं परिवर्तनशील के साथ अटका रहूंगा। तो निराशा ही हाथ आयेगी। क्षण भंगुर से आसक्त होना मूढ़ता

है। वह कभी ठहरने वाला नहीं है। मैं मूढ़ नहीं हूं। मैं तो उसकी खोज कर रहा हूं जो कभी नहीं बदलता, जो नित्य है। अगर कुछ शाश्वत है तो ही जीवन में अर्थ है, जीवन में मूल्य है। अन्यथा सब व्यर्थ है।

यह सूत्र सुंदर है। यह सूत्र कहता है। 'परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन को विसर्जित करो।''

बुद्ध कभी दूसरा हिस्सा नहीं कहते। यह दूसरा हिस्सा बुनियादी रूप से तंत्र से आया है। बुद्ध इतना ही कहेंगे। कि सब कुछ परिवर्तनशील है। इसे अनुभव करो। और तुम्हें आसक्ति नहीं होगी। और जब आसक्ति नहीं होगी तो धीरे-धीरे अनित्य को छोड़ते-छोड़ते तुम अपने केंद्र पर पहुंच जाओगे। जो नित्य है। शाश्वत है। परिवर्तन को छोड़ते जाओ और तुम अपरिवर्तन पर केंद्र पर, चक्र के केंद्र पर पहुंच जाओगे।

इस लिए बुद्ध ने चक्र को अपने धर्म का प्रतीक बनाया है। क्योंकि चक्र चलता रहता है। लेकिन उसकी धुरी, जिसके सहारे चक्र चलता है, ठहरी रहती है। स्थाई है। तो संसार चक्र की भांति चलता रहता है। तुम्हारा व्यक्तित्व चक्र की भांति बदलता रहता है। धुरी अचल रहती है।

तंत्र कहता है कि जो परिवर्तनशील है उसे छोड़ो मत, उसमे उतरो, उसमें जाओ। उससे आसक्त मत होओ। लेकिन उसमें जीओं। उससे डरना क्या है? उसे घटित होने दो। और तुम उसमें गति कर जाओ। उसे उसके द्वारा ही विसर्जित करो। डरों मत; भागों मत। भागकर कहां जाओगे। इससे बचोगे कैसे? सब जगह तो परिवर्तन है। तंत्र कहता है,बदलाहट ही मिलेगी। सब भागना व्यर्थ है। भागने की कोशिश ही मत करो। तब करना क्या है?

आसक्ति मत निर्मित करो। तुम परिवर्तन हो जाओ। उसके साथ कोई संघर्ष मत खड़ा करो। उसके साथ बहो। नदी बह रही हे। उसके साथ बहो। तेरो भी मत। नदी को ही तुम्हें ले जाने दो। उसके साथ लड़ों मत; उससे लड़ने से तुम्हारी शक्ति बरबाद होगी। और जो होता है, उसे होने दो। नदी के साथ बहो।

इससे क्या होगा? अगर तुम नदी के साथ बिना संघर्ष किए बह सके; बिना किसी शर्त के बह सके, अगर नदी की दिशा ही तुम्हारी दिशा हो जाए, तो तुम्हें अचानक यह बोध होगा कि मैं नदी नहीं हूं, तुम्हें यह बोध होगा कि मैं नदी नहीं हूं, इसे अनुभव करो; किसी दिन नदी में उतर कर इसका प्रयोग करो। नदी में उतरो, विश्राम पूर्ण रहो और अपने को नदी के हाथों में छोड़ दो। उसे तुम्हें बहा ले जाने दो। लड़ों मत, नदी के साथ एक हो जाओ। तब अचानक तुम्हें अनुभव होगा कि चारों तरफ नदी है, लेकिन मै नदी नहीं हूं।

यदि नदी में लड़ोगे तो तुम यह बात भूल जा सकते हो। इसीलिए तंत्र कहता है: 'परिवर्तन से परिवर्तन को विसर्जित करो।' लड़ो मत, लड़ने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि परिवर्तन तुममें नहीं प्रवेश कर सकता है। डरो नहीं; संसार में रहो। डरो मत;क्योंकि संसार तुममें प्रवेश नहीं कर सकता है। उसे जीओं। कोई चुनाव मत करो।

दो तरह के लोग है। एक वे जो परिवर्तन के जगत से चिपके रहते है। और एक वे है जो उससे भाग जाते है। लेकिन तंत्र कहता है कि जगत परिवर्तन है, इसलिए उससे चिपकना नहीं है। दोनों व्यर्थ है। इससे भागने को। वह बदल ही रहा है। तुम नहीं थे तब यह बदल रहा था। तुम नहीं रहोगे तब भी यह बदलता रहेगा। फिर इसके लिए इतना शोर गूल क्यो?

'परिवर्तन को परिवर्तन से विसर्जित करो।'

यह एक बहुत गहन संदेश है। क्रोध को क्रोध से विसर्जित करो; काम को काम से विसर्जित करो; लोभ को लोभ से विसर्जित करो, संसार को संसार से विसर्जित करो। उससे संघर्ष मत करो, विश्रामपूर्ण रहो। क्योंकि संघर्ष से तनाव पैदा होता है; तनाव से चिंता और संताप पैदा होता है। विश्रामपूर्ण रहो। तुम नाहक उपद्रव में पड़ोगे। संसार जैसा है उसे वैसा ही रहने दो।

दो तरह के लोग है जो संसार को वैसा ही नहीं रहने देना चाहते जैसा वह है। वे क्रांतिकारी कहलाते है। वे उसे बदलेंगे ही; वे उसे बदलने के लिए जद्दोजहद करेंगे। वे उसे बदलने में अपना सारा जीवन लगा देंगे। और यह जगत अपने आप बदल रहा है। उनकी कोई जरूरत नहीं है। वे अपने को नष्ट करेंगे। दुनिया को बदलने में वे खुद खत्म होंगे। और संसार बदल ही रहा है; इसके लिए किसी क्रांति की जरूरत नहीं है। संसार स्वयं एक क्रांति है; वह बदल ही रहा है।

तुम्हें आश्चर्य होगा। की भारत में महान क्रांतिकारी क्यों नहीं पैदा हुए। यह इसी अंतदृष्टि का परिणाम है कि सब अपने आप ही बदल रहा है। उसके लिए क्रांति की कोई जरूरत नहीं है। तुम उसे बदलने के लिए क्यों परेशान होते हो। तुम न उसे बदल सकते हो और न बदलाहट को रोक सकते हो।

एक तरह का व्यक्तित्व सदा संसार को बदलने की चेष्टा करता है। धर्म की दृष्टि में वह मानसिक तल पर रूग्ण है। सच तो यह है अपने साथ रहने में उसे भय लगता है। इसलिए वह भागता फिरता है। और संसार में उलझा रहता है। राज्य को बदलना है, सरकार को बदलना है; समाज , व्यवस्था, अर्थनीति, सब कुछ को बदलना है। और इसी सब में वि मर जाएगा। और उसे आनंद का, उस समाधि का एक कण भी नहीं उपलब्ध होगा। जिसमें वह जान सकता था कि मैं कौन हूं। और संसार चलता रहेगा। संसार चक्र घूमता रहेगा। संसार चक्र ने अनेक क्रांतिकारी देखे है। और वह घूमता ही जाता है। तुम न तो इसे रोक सकते हो, और न तुम उसकी बदलाहट को तेज ही कर सकते हो।

रहस्यवादियों की, बुद्धों की यह दृष्टि है। वे कहते है कि संसार को बदलने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन बुद्धों की भी दो कोटियां है। कोई कह सता है कि संसार को बदलने की जरूरत नहीं है, लेकिन अपने को बदलने की जरूरत तो है। वह भी परिवर्तन में विश्वास करता है। वह जगत को बदलने में नहीं, लेकिन अपने में बदलने में विश्वास करता है।

लेकिन तंत्र कहता है। कि किसी को भी बदलने की जरूरत नहीं है—न संसार को और न अपने को। रहस्य का, अध्यात्म का यह गहनत्म तल है। यह उसका अंतरतम केंद्र है। तुम्हें किसी को भी बदलने की जरूरत नहीं है—न संसार को और न अपने को। तुम्हें इतना ही जानना है कि सब कुछ बदल रहा है, और तुम्हें उस बदलाहट के साथ बहाना है, उसे स्वीकार करना है।

और जब बदलने को कोई परिवर्तन नहीं है, तो तुम समग्ररतः: विश्रामपूर्ण हो सकते हो। जब तक प्रयत्न है। तुम विश्रामपूर्ण नहीं हो सकते। तब तक तनाव बना रहेगा। क्योंकि तुम्हें अपेक्षा है कि भविष्य में कुछ होने वाला है, जगत बदलने वाला है। संसार में साम्यवाद आने वाला है। या पृथ्वी पर स्वर्ग उतरने वाला है। या भविष्य में कोई ऊटोपिया आने वाला है। या तुम प्रभु के राज्य में प्रवेश करने वाले हो। स्वर्ग में देवदूत तुम्हारा स्वागत करने के लिए तैयार खड़े है—जो भी हो; तुम भविष्य में कही अटके हो। इस अपेक्षा के साथ तुम तनावपूर्ण रहोगे।

तंत्र कहता है, इन बातों को भूल जाओ। संसार बदल ही रहा है। और तुम भी निरंतर बदल रहे हो। बदलाहट ही अस्तित्व है। इसलिए बदलाहट की चिंता मत करो। तुम्हारे बिना ही बदलाहट हो रही है। तुम्हारी जरूरत नहीं है। तुम भविष्य की कोई चिंता किए बिना उसमे बहो; और तब अचानक तुम्हें अपने भीतर के उस केंद्र का बोध हो गा जो कभी नहीं बदलता है, जो सदा वही का वही रहता है।

ऐसा क्यों होता है? क्योंकि जब तुम विश्रामपूर्ण होते हो तो बदलाहट की पृष्ठभूमि में विपरीत दिखाई पड़ता है। परिवर्तन की पृष्ठभूमि में तुम्हें सनातन का, शाश्वत का बोध होता है। अगर तुम संसार को या अपने को बदलने का प्रयत्न में लगे हो तो तुम अपने भीतर छोटे से अकंप, स्थिर ठहरे हुए केंद्र को नहीं देख पाओगे। तुम बदलाहट में इतने घिरे हो कि तुम उसे नहीं देख पाते हो जो है।

सब तरफ परिवर्तन है। यह परिवर्तन पृष्ठभूमि बन जाता है। कंट्रास्ट बन जाता है। और तुम शिथिल होते हो। विश्राम में होते हो, इसलिए तुम्हारे मन में भविष्य नहीं होता। भविष्य के विचार नहीं होते। तुम यहां और अभी होते हो। यह क्षण ही सब कुछ होता है। सब कुछ बदल रहा है—और अचानक तुम्हें अपने भीतर उस बिंदू का बोध है जो कभी नहीं बदला है।

‘परिवर्तन से परिवर्तन को विसर्जित करो।’

इसका अर्थ यही है। लड़ो मत। मृत्यु के द्वारा अमृत को जान लो; मृत्यु के द्वारा मृत्यु को मर जाने दो। उससे लड़ाई मत करो।

तंत्र की दृष्टि को समझना कठिन है। कारण है कि हमारा मन कुछ करना चाहता है। और तंत्र है कुछ न करना। तंत्र कर्म नहीं, पूर्ण विश्राम है। लेकिन यह एक सर्वाधिक गुह्म रहस्य है। और अगर तुम इसे समझ सको। अगर तुम्हें अगर तुम्हें इसकी प्रतीति हो जाए,तो तुम्हें किसी अन्य चीज की चिंता लेने की जरूरत नहीं है। ये अकेली विधि तुम्हें सब कुछ दे सकती है।

तब तुम्हें कुछ करने की जरूरत नही है। क्योंकि तुमने इस रहस्य को जान लिया है जो परिवर्तन से परिवर्तन का अतिक्रमण कर रहा हे। मृत्यु से मृत्यु का अतिक्रमण हो सकता है। काम से काम का अतिक्रमण हो सकता है। क्रोध से क्रोध का अतिक्रमण हो सकता है। अब तुम्हें यह कुंजी मिल गई है कि जहर से जहर का अतिक्रमण हो सकता है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-43

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—68 (ओशो)

जैसे मुर्गी अपने बच्चों का पालन-पोषण करती है, वैसे ही यथार्थ में विशेष ज्ञान और विशेष कृत्य का पालन-पोषण करो।

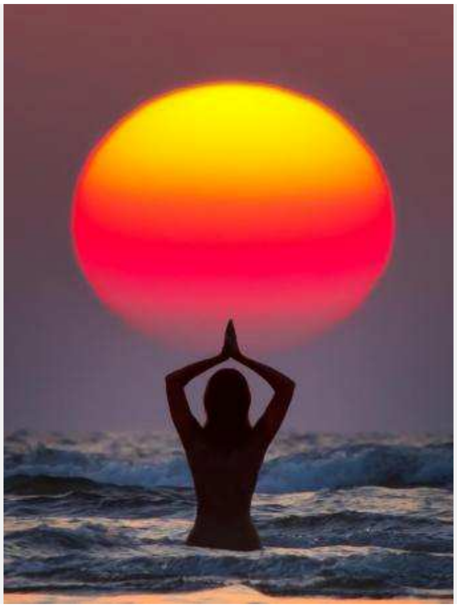

विशेष ज्ञान और विशेष कृत्य का पालन-पोषण करो।—शिव

इस विधि में मूलभूत बात है: 'यथार्थ में।' तुम भी बहुत चीजों का पालन पोषण करते हो; लेकिन सपने में, सत्य में नहीं। तुम भी बहुत कुछ करते हो; लेकिन सपने में सत्य में नहीं। सपनों को पोषण देना छोड़ दो। सपनों को बढ़ने में सहयोग मत दो। सपनों को अपनी ऊर्जा मत दो। सभी सपनों से अपने को पृथक कर लो।

यह कठिन होगा, क्योंकि सपनों में तुम्हारे न्यस्त स्वार्थ है। अगर तुम अपने को अचानक सपनों से बिलकुल अलग कर लोगे तो तुम्हें लगेगा कि मैं डूब रहा हूं, मैं मर रहा हूं। क्योंकि तुम हमेशा स्थगित सपनों में रहते आए हो। तुम कभी यहां और अभी नहीं रहे; तुम सदा कहीं और रहते आए हो। तुम आशा करते रहे हो।
क्या तुमने पंडोरा का डब्बा यूनानी कहानी सुनी है। किसी आदमी ने बदला लेने के लिए पंडोरा के पास एक डब्बा भेजा। इस डब्बे में से सब रोग बंद थे जो अभी मनुष्य जाति के बीच फैले है। वे रोग उसके पहले नहीं थे; जब वह डब्बा खुला तो सभी रोग बाहर निकल आए। पंडोरा रोगों को देखकर डर गई और उसने डब्बा बंद कर दिया। केवल एक रोग रह गया। ओर वह थी आशा। अन्यथा आदमी समाप्त हो गया होता; ये सारे रोग उसे मार डालते, लेकिन आशा के कारण वह जीवित रहा।

तुम क्यों जी रहे हो? क्या तुमने कभी यह प्रश्न पूछा है? यहां और अभी जीने के लिए कुछ भी नहीं है। सिर्फ आशा है। तुम भी पंडोरा का डब्बा ढो रहे हो। ठीक अभी तुम क्यों जीवित हो? हरेक सुबह तुम क्यों बिस्तर से उठ रहे हो। क्यों तुम रोज-रोज फिर वही करते हो जो कल किया था? यह पुनरूक्ति क्यों? कारण क्या है?

मनुष्य आशा में जीता है। लेकिन यह जीवन नहीं है। अपने को ढोए चला जाता है। जब तक तुम यहां और अभी नहीं जीते हो, तुम जीवन नहीं हो। तुम एक मृत बोझ हो। और वह कल तो कभी आने वाला नहीं है। जब तुम्हारी सब आशाएं पूरी हो जाएंगी। और जब मृत्यु आएगी तो तुम्हें पता चलेगा कि अब कोई कल नहीं है, और अब स्थगित करने का भी उपाय नहीं है। तब तुम्हारा भ्रम टूटेगा; तब तुम्हें लगेगा कि यह धोखा था। लेकिन किसी दूसरे ने तुम्हें धोखा नहीं दिया। अपनी दुर्गति के लिए तुम स्वयं जिम्मेदार हो।

इस क्षण में, वर्तमान में जीने की चेष्टा करो और आशाएं मत पालो—चाहे वे किसी भी ढंग की हों। वे लौकिक हो सकती है, पारलौकिक हो सकती है। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता है। वे धार्मिक हो सकती है। किसी भविष्य

में,किसी दूसरे लोक में, स्वर्ग में, मृत्यु के बाद, निर्वाण में; लेकिन इससे कोई फर्क नही पड़ता। तुम कोई आशा मत करो। यदि तुम्हें थोड़ी निराशा भी अनुभव हो, तो भी यही रहो। यहां और इसी क्षण से मत हटो। हटो ही मत। दुःख सह लो, लेकिन आशा को मत प्रवेश करने दो। आशा के द्वारा स्वप्न प्रवेश करते है। निराशा रहो। अगर जीवन में निराशा है तो निराशा रहो। निराशा को स्वीकार करो। लेकिन भविष्य में होनेवाली किसी घटना का सहारा मत लो।

और तब अचानक बदलाहट होगी। जब तुम वर्तमान में ठहर जाते हो तो सपने भी ठहर जाते है। तब वे नहीं उठ सकते, क्योंकि उनका स्त्रोत ही बद हो जाता है। सपने उठते है। क्योंकि तुम उन्हें सहयोग देते हो। तुम उन्हें पोषण देते हो। सहयोग मत दो; पोषण मत दो।

यह सूत्र कहता है: 'विशेष ज्ञान का पालन-पोषण करो।'

विशेष ज्ञान क्या है? तुम भी पोषण देते हो; लेकिन तुम विशेष सिद्धांतों को पोषण देते हो। ज्ञान को नहीं। तुम विशेष शास्त्रों को पोषण देते हो, ज्ञान को नहीं। तुम विशेष मतवादों को, दर्शन शास्त्रों को, विचार-पद्धतियों को पोषण देते हो। लेकिन विशेष ज्ञान को कभी पोषण नहीं देते। यह सूत्र कहता है कि उन्हें हटाओं, दूर करो, शास्त्र और सिद्धांत किसी काम के नहीं है। अपना अनुभवप्राप्त करो जो प्रामाणिक हो; अपना ही ज्ञान हासिल करो, और उसे पोषण दो। कितना भी छोटा हो, प्रामाणिक अनुभव असली बात है। तुम उस पर अपने जीवन को आधार रख सकते हो। वे जैसे भी हो, जो भी हो। सदा प्रामाणिक अनुभवों की चिंता लो जो तुमने स्वयं जाने है। क्या तुमने स्वयं कुछ जाना है?

तुम बहुत कुछ जानते हो; लेकिन तुम्हारा सब जानना उधार है। किसी से तुमने सुना है; किसी ने तुम्हें दिया है। शिक्षकों ने, मां-बाप ने, समाज ने, तुम्हें संस्कारित किया है। तुम ईश्वर के बारे में जानते हो, तुम प्रेम के बारे में जानते हो, तुम प्रेम के संबंध में जानते है, तुम ध्यान को जानते हो। लेकिन तुम यथार्थत: कुछ भी नहीं जानते। तुमने इनमें से किसी का स्वाद नहीं लिया है। यह सब उधार है। किसी दूसरे ने स्वाद लिया है; स्वाद तुम्हारा निजी नहीं है। किसी दूसरे ने देखा है; तुम्हारी भी आंखें है। लेकिन तुमने उनका उपयोग नहीं किया है। किसी ने अनुभव किसा—किसी बुद्ध ने, किसी जीसस ने—और तुम उनका ज्ञान उधार लिए बैठे हो।

उधार ज्ञान झूठा है। और वह तुम्हारे काम का नहीं है। उधार ज्ञान अज्ञान से भी खतरनाक है। क्योंकि अज्ञान तुम्हारा है, और ज्ञान उधार है। इससे तो अज्ञानी रहना बेहतर है। कम से कम तुम्हारा तो है। प्रामाणिक तो है, सच्चा है, ईमानदार है। उधार ज्ञान मत ढ़ोओ; अन्यथा तुम भूल जाओगे कि तुम अज्ञानी हो; और तुम अज्ञानी के अज्ञानी बने रहोगे। यह सूत्र कहता है: 'विशेष ज्ञान का पालन-पोषण करो।'

सदा ही जानने की कोशिश इस ढंग से करो कि वह सीधा हो, सच हो, प्रत्यक्ष हो। कोई विश्वास मत पकड़ो;विश्वास तुम्हें भटका देगा। अपने पर भरोसा करो। श्रद्धा करो। और अगर तुम अपने पर ही श्रद्धा नहीं कर सकते तो किसी दूसरे पर कैसे श्रद्धा कर सकते हो?

सारिपुत्र बुद्ध के पास आया और उसने कहा: 'मैं आपमें विश्वास करने के लिए आया हूं;मैं आ गया हूं। मुझे आप में श्रद्धा हो, इसमें मेरी सहायता करें।' बुद्ध ने कहा: 'अगर तुम्हें स्वयं में श्रद्धा नहीं है तो मुझमें श्रद्धा कैसे करोगे? मुझे भूल जाओ। पहले स्वयं में श्रद्धा करो; तो ही तुम्हें किसी दूसरे में श्रद्धा होगी।'

यह स्मरण रहे, अगर तुम्हें स्वयं में ही श्रद्धा नहीं है। तो किसी में भी श्रद्धा नहीं हो सकती। पहली श्रद्धा सदा अपने में होती है। तो ही वह प्रवाहित हो सकती है। बह सकती है। तो ही वह दूसरों तक पहुंच सकती है। लेकिन अगर तुम कुछ जानते ही नहीं हो तो अपने में श्रद्धा कैसे करोगे? अगर तुम्हें कोई अनुभव ही नहीं है तो स्वयं में श्रद्धा कैसे होगी? अपने में श्रद्धा करो। और मत सोचो कि हम परमात्मा को ही दूसरों की आंखों से देखते है; साधारण अनुभवों में भी यही होता है। कोशिश करो कि साधारण अनुभव भी तुम्हारे अपने अनुभव हों। वे तुम्हारे विकास में सहयोगी होंगे। वे तुम्हें प्रौढ़ बनाएँगे। वे तुम्हें परिपक्वता देंगे।

बडी अजीब बात है कि तुम दूसरों की आँख से देखते हो तुम दूसरों की जिंदगी से जीते हो। तुम गुलाब को सुंदर कहते हो। क्या यह सच में ही तुम्हारा भाव है। या तुमने दूसरों से सुन रखा है। कि गुलाब सुंदर होता है। क्या यह तुम्हारा जानना है? क्या तुमने जाना है? तुम कहते हो कि चाँदनी अच्छी है, सुंदर है। क्या यह तुम्हारा जानना है? यह कवि इसके गीत गाते रहे है और तुम बस उन्हें दुहरा रहे हो?

अगर तुम तोते जैसे दुहरा रहे हो तो तुम अपना जीवन प्रामाणिक रूप से नहीं जी सकते हो। जब भी तुम कुछ कहो, जब भी तुम कुछ करो, तो पहल अपने भीतर जांच कर लो कि क्या यह मेरा अपना जानना है? मेरा अपना अनुभव है। उस सबको बाहर फेंक दो जो तुम्हारा नहीं है; वह कचरा है। और सिर्फ उसको ही मूल्य दो, पोषण दो, जो तुम्हारा है। उसके द्वारा ही तुम्हारा विकास होगा।

'यथार्थ में विशेष ज्ञान और विशेष कृत्य का पालन-पोषण करो।'

यहां यर्थाथ में, को सदा स्मरण रखो। कुछ करो। क्या कभी तुमने स्वयं कुछ किया है। या तुम केवल दूसरों के हुक्म बजाते रहे हो? केवल दूसरों का अनुसरण करते रहे हो, कहते है: 'अपनी पत्नी को प्रेम करो।' क्या तुमने यथार्थत: अपनी पत्नी को प्रेम किया है? या तुम सिर्फ कर्तव्य निभा रहे हो; क्योंकि तुम्हें कहा गया है, सिखाया गया है कि पत्नी को प्रेम करो, या मां को प्रेम करो। या पिता को प्रेम करो। तुम्हारा प्रेम भी अनुकरण मात्र है। क्या तुमने कभी ऐसा महसूस किया है तुम और प्रेम साथ थे। बिना किसी विचार के या संस्कार के। क्या तुम्हारे प्रेम में ऐसा कभी हुआ है कि तुम्हारे प्रेम मे किसी की सिखावन न काम कर रही हो? क्या कभी ऐसा हुआ है कि तुम किसी का अनुकरण नहीं कर रहे हो। क्या तुमने कभी प्रामाणिक रूप से प्रेम किया है।

तुम अपने को धोखा दे रहे हो। तुम कह सकते हो कि हां किया है। लेकिन कुछ कहने के पहले ठीक से निरीक्षण कर लो। अगर तुमने सचमुच प्रेम किया होता तो तुम रूपांतरित हो जाते; प्रेम का यह विशेष कृत्य ही तुम्हें बदल डालता। लेकिन उसने तुम्हें नहीं बदला। क्योंकि तुम्हारा प्रेम झूठा है। और तुम्हारा पूरा जीवन ही झूठ हो गया है। तुम ऐसे काम किए जाते हो जो तुम्हारे अपने नहीं है। कुछ करो जो तुम्हारा अपना हो; और उसका पोषण करो।

बुद्ध बहुत अच्छे है; लेकिन तुम उनका अनुसरण नहीं कर सकते। जीसस बहुत, महावीर बहुत अच्छे है, लेकिन तुम उनका अनुसरण नहीं कर सकते हो। और अगर तुम अनुसरण करोगे तो तुम कुरूप हो जाओगे। तुम कार्बन कापी हो जाओगे। तब तुम झूठे हो जाओगे। और अस्तित्व तुम्हें स्वीकार नहीं करेगा। वहां कुछ भी झूठ स्वीकार नहीं है।

बुद्ध को प्रेम करो, जीसस को प्रेम करो; लेकिन उनकी कार्बन कापी मत बनो। नकल मत करो। सदा अपनी निजता को अपने ढंग से खिलनें दो। तुम किसी दिन बुद्ध जैसे हो जाओगे; लेकिन मार्ग बुनियादी तौर पर तुम्हारा अपना होगा। किसी दिन तुम जीसस जैसे हो सकते हो। लेकिन तुम्हारा यात्रा-पथ भिन्न होगा। तुम्हारे अनुभव

भिन्न होगे। एक बात पक्की है। जो भी मार्ग हो, जो भी अनुभव हो, वह प्रामाणिक होना चाहिए। असली होना चाहिए। तुम्हारा होना चाहिए। तब तुम किसी ने किसी दिन पहुंच जाओगे।

असत्य से तुम सत्य तक नहीं पहूंच सकते। असत्य तुम्हें और असत्य में ले जाएगा। जब कुछ करो तो भली भांति स्मरण करो कि यह तुम्हारा अपना कृत्य हो, तुम खुद कर रहे हो। किसी का अनुकरण नहीं कर रहे हो। तो एक छोटा सा कृत्य भी, एक मुस्कुराहट भी सतोरी का, समाधि का स्त्रोत बन सकती है।

तुम अपने घर लौटते हो और बच्चों को देखकर मुस्कराते हो। यह मुस्कुराहट झूठी है। तुम अभिनय कर रहे हो। तुम इसलिए मुस्कराते हो क्योंकि मुस्कराना चाहिए। यह ऊपर से चिपकायी गई मुस्कुराहट है। यह मुस्कुराहट कृत्रिम है, यांत्रिक है। और तुम इसके इतने अभ्यस्त हो चुके हो कि तुम बिलकुल भूल ही गये हो सच्ची मुस्कुराहट क्या है। तुम हंस सकते हो। लेकिन संभव है वह हंसी तुम्हारे केंद्र से न आ रही हो।

सदा ध्यान रखो कि तुम जो कर रहे हो उसमें तुम्हारा केंद्र सम्मिलित है या नहीं। अगर तुम्हारा केंद्र उस कृत्य मे सम्मिलित नहीं है तो बेहतर है कि उस कृत्य को न करो। उसे बिलकुल भूल जाओ। कोई तुम्हें कुछ करने के लिए मजबूर नहीं कर रहा है। बिलकुल मत करो। अपनी उर्जा को उस घड़ी के लिए बचा कर रखो जब कोई सच्चा भाव तुम्हारे भीतर उठे। और तब तुम उस में डूब कर उसे करो। यो ही मत मुस्कुराओ; उर्जा को बचाकर रखो। मुस्कुराहट आएगी, जो तुम्हें पूरा का पूरा बदल देगी। वह समग्र मुस्कुराहट होगी। तब तुम्हारे शरीर की एक-एक कोशिका मुस्कुराएगी। तब वह विस्फोट होगा, अभिनय नहीं होगा।

और बच्चे जानते है, तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते हो। और जब तुम उन्हें धोखा दे सको, समझ लेना वे बच्चे नहीं रहे। वे जानते है कि कब तुम्हारी मुस्कुराहट झूठी होती है। वे झट ताड़ लेते है। वे जानते है कि कब तुम्हारे आंसू झूठे है। तुम्हारी हंसी झूठी है। ये छोटे-छोटे कृत्य है, लेकिन तुम छोटे-छोटे कृत्यों से ही बने हो। किसी बड़े कृत्य की मत सोचो; मत सोचो कि किसी बड़े कृत्य में सच्चाई बरतूंगा। अगर तुम छोटी-छोटी चीजों में झूठे हो तो तुम सदा झूठे ही रहोगे। बड़ी चीजों में झूठ होना तो और भी सरल है।

पर यह सब झूठा है। थोड़ी कल्पना करो। कि अगर समाज की दृष्टि बदल जाए तो क्या होगा। ऐसी ही बदलाहट जब सोवियत रूस में या चीन में हुई तो तुरंत साधु-महात्मा वहां से विदा हो गये। अस वहां उनके लिए कोई आदर नहीं है।

मुझे याद आता है कि मेरे एक मित्र, जो बौद्ध भिक्षु है, स्टैलिन के दिनों में सोवियत रूप गये थे। उन्होंने लौटकर मुझे बताया कि वहां जब भी कोई व्यक्ति उससे हाथ मिलाता था तो तुरंत झिझक कर पीछे हट जाता था। और कहता था कि तुम्हारे हाथ बुर्जआ है। शोषण के हाथ है।

उनके हाथ सचमुच सुंदर थे; भिक्षु होकर उन्हें काम नहीं करना पड़ता था। वे फकीर थे, शाही फकीर,उनका श्रम से वास्ता नहीं पडा था। उनके हाथ बहुत कोमल थे। सुंदर कोमल और स्त्रैण थे। भारत में जब कोई उनके हाथ छूता तो कहता कि कितने सुंदर हाथ है। लेकिन सोवियत रूस में जब कोई उनके हाथ अपने हाथ में लेता तो तुरंत सिकुड़कर पीछे हट जाता। उसकी आंखों में निंदा भर जाती। और वह उन्हें कहता कि तुम्हारे हाथ बुर्जआ है। शोषक के हाथ है। वे वापस आकर मुझसे बोले कि मैंने इतना निंदित महसूस किया कि मेरा मत होता है कि मजदूर हो जाउं।

रूस में साधु-महात्मा विदा हो गए; क्योंकि आदर न रहा। सब साधुता दिखावटी थी। प्रदर्शन की चीज थी। आज रूस में केवल सच्चा संत ही संत हो सकता हे। झूठे नकली संतों के लिए वहां कोई गुंजाइश नही है। आज तो वहां संत होने के लिए भारी संघर्ष करना पड़ेगा। क्योंकि सारा समाज विरोध में होगा। भारत में तो जीने का सबसे सुगम ढंग साधु-महात्मा होना है। सब लोग आदर देते है। यहां तुम झूठे हो सकते हो। क्योंकि उसमे लाभ ही लाभ है।

तो इसे स्मरण रखो। सुबह से ही, जैसे ही तुम आँख खोलते हो,सिर्फ सच्चे और प्रामाणिक होने की चेष्टा करो। ऐसा कुछ मत करो जो झूठ और नकली हो। सिर्फ सात दिन के लिए यह स्मरण बना रहे कि कुछ भी झूठ और नकली हो। कुछ भी अप्रमाणिक नहीं करना है। जो भी गंवाना पड़े जो भी खोना पड़े खो जाएं। जो भी होना हो, हो जाए;लेकिन सच्चे बने रहो। और सात दिन के भीतर नए जीवन का उन्मेष अनुभव होने लगेगा। तुम्हारी मृत पर्तें टूटने लगेंगी। और नयी जीवंत धारा प्रवाहित होने लगेगी। तुम पहली बार पुनर्जीवन अनुभव करोगे। फिर से जीवित हो उठोगे।

कृत्य का पोषण करो, ज्ञान का पोषण करो—यथार्थ में, स्वप्न में नहीं। जो भी करना चाहो करो। लेकिन ध्यान रखो कि यह काम सच में मैं कर रहा हूं। या मेरे द्वारा मेरे मां बाप कर रहे है? क्योंकि कब के जा चुके मरे हुए लोग, मृत माता-पिता, समाज, पुरानी पीढ़ियाँ, सब तुम्हारे भीतर अभी सक्रिय है। उन्होंने तुम्हारे भीतर ऐसे संस्कार भर दिए है कि तुम अब भी उनको ही पूरा करने में लगे हो। तुम्हारे मां-बाप अपने मृत मां-बाप को पूरा करते रहे और तुम अपने मृत मां बाप को पूरा करने मे लगे हो। और आश्चर्य कि कोई भी पूरा नहीं हो रहा है। तुम उसे कैसे पूरा कर सकते हो जो मर चूका है। लेकिन मुर्दे ये सब मुर्दे तुम्हारे बीच जी रहे है।

जब भी तुम कुछ करो तो सदा निरीक्षण करो कि यह मेरे माध्यम से मेरे पिता कर

रहे है। या मैं कर रहा हूं। जब तुम्हें क्रोध आए तो ध्यान दो कि यह मेरा क्रोध है या इसी ढंग से मेरे पिता क्रोध किया करते थे जिसे-जिसे में दोहरा भर रहा हूं।

मैंने देखा है कि पीढ़ी दर पीढ़ी वही सिलसिला चलता रहता है। पुराने ढंग ढांचे दोहराते रहते है। अगर तुम विवाह करते हो तो वह विवाह करीब-करीब वैसा ही होगा जैसा तुम्हारे मां-बाप ने किया था। तुम अपने पिता की भांति व्यवहार करोगे। तुम्हारी पत्नी अपनी मां की भांति व्यवहार करेगी। और दोनों मिलकर वही सब उपद्रव करोगे जो उन्होने किया था।

जब क्रोध आए तो गौर से देखो कि मैं क्रोध कर रहा हूं या कि कोई दूसरा व्यक्ति क्रोध कर रहा है रहे है। या मैं कर रहा हूं। जब तुम प्रेम करो तो याद रखो; तुम ही प्रेम कर रहे हो या कोई और, जब तुम कुछ बोलों तो देखो कि मैं बोल रहा हूं या मेरा शिक्षक बोल रहा है। जब तुम कोई भाव-भंगिमा बनाओ तो देखो कि यह तुम्हारी भंगिमा है या कोई दूसरा ही वहां है।

यह कठिन होगा; लेकिन यही साधना है, यही आध्यात्मिक साधना है। और सारे झूठों को विदा करो। थोड़े समय के लिए तुम्हें सुस्ती पकड़ेगी, उदासी घेरेंगी; क्योंकि तुम्हारे झूठ गिर जाएंगे। और सत्य को आने में और प्रतिष्ठित होने में थोड़ा समय लगेगा। अंतराल का एक समय होगा; उस समय को भी आने दो। भयभीत मत होओ। आतंकित मत होओ। देर-अबेर तुम्हारे मुखौटे गिर जाएंगे। तुम्हारा झूठा व्यक्तितत्व विलीन हो जाएगा। और उसकी जगह तुम्हारा असली चेहरा तुम्हारा प्रामाणिक व्यक्तितत्व अस्तित्व में आएगा। प्रकट होगा। और उसी प्रामाणिक व्यक्तितत्व से तुम ईश्वर को साक्षात्कार कर सकते हो।

इसलिए यह सूत्र कहता है: जैसे मुर्गी अपने बच्चों का पालन पोषण करती है। वैसे ही यथार्थ में विशेष ज्ञान और विशेष कृत्य का पालन-पोषण करो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-45

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—69 (ओशो)

'यथार्थत: बंधन और मोक्ष सापेक्ष है; ये केवल विश्व से भयभीत लोगों के लिए है। यह विश्व मन का प्रतिबिंब है। जैसे तुम पानी में एक सूर्य के अनेक सूर्य देखते हो, वैसे ही बंधन और मोक्ष को देखो।'

'यथार्थत: बंधन और मोक्ष सापेक्ष है;–शिव

यह बहुत गहरी विधि है; यह गहरी से गहरी विधियों में से एक है। और विरले लोगों ने ही इसका प्रयोग किया है। झेन इसी विधि पर आधारित है। यह विधि बहुत कठिन बात कह रही है—समझने में कठिन, अनुभव करने में कठिन नहीं है। परंतु पहले समझना जरूरी है।

यह सूत्र कहता है, कि हम संसार और निर्वाण दो नहीं है। वे एक ही है। स्वर्ग और नरक दो नहीं है। वे एक ही है। वैसे ही बंधन और मोक्ष दो नहीं है, वे भी एक ही है। यह समझना कठिन है, क्योंकि हम किसी चीज को आसानी से तभी सोच पात है जब वह ध्रुवीय विपरीतता में बंटी हो।
हम कहते है कि यह संसार बंधन है; इससे छूटा जाए और मुक्त हुआ जाए? तब मुक्ति कुछ है जो बंधन के विपरीत है, जो बंधन नहीं है। लेकिन यह सूत्र कहता है कि दोनों एक है, मोक्ष और बंधन एक है। और जब तक तुम दोनों से नहीं मुक्त होते, तुम मुक्त नहीं हो। बंधन तो बाँधता ही है,मोक्ष भी बाँधता है। बंधन तो गुलामी है ही मोक्ष भी गुलामी है।

इसे समझने की कोशिश करो। उस आदमी को देखो जो बंधन के पार जाने की चेष्टा में लगा है। वह क्या कर रहा है। वह अपना घर छोड़ देता है, परिवार छोड़ देता है, धन दौलत छोड़ देता है, संसार की चीजें छोड़ देता है। समाज छोड़ देता है। ताकि बंधन के बाहर हो सके, संसार की ज़ंजीरों से मुक्त हो सके। लेकिन तब वह अपने लिए नयी ज़ंजीरें गढ़ने लगता है। और वे ज़ंजीरें नकारात्मक है। परोक्ष है।

मैं एक संत को मिला जो धन नहीं छूते है। वे बहुत सम्मानित संत है। उनका सम्मान वे लोग जरूर करेंगे जो धन के पीछे पागल है। यह व्यक्ति उनके विपरीत ध्रुव पर चला गया है। अगर तुम उनके हाथ में धन रख दो तो वे उसे ऐसे फेंक देंगे जैसे कि वह जहर हो या कि तुमने उनके हाथ पर सांप रख दिया हो। वे उसे फेंक ही नहीं देंगे, वे आतंकित हो उठेंगे। उनका शरीर कांपने लगेगा।

क्या हुआ है? वे धन से लड़ रहे है। वे पहले जरूर ही लोभी, अति लोभी व्यक्ति रहे होंगे। तभी वे दूसरी अति पर पहूंच गए है। उनकी धन की पकड़ आत्यंतिक रही होगी;वे धन के लिए पागल रहे होंगे। वे धन से ग्रस्त रहे होंगे। वे अब भी धन से ग्रस्त है, लेकिन अब उनकी दिशा बदल गई है। वे पहले धन की तरफ भाग रहे थे; अब वे धन के विपरीत भाग रहे है।

मैं एक संन्यासी को जानता हूं जो किसी स्त्री को नहीं देखता। वे बहुत घबरा जाते है। अगर कोई स्त्री मौजूद हो तो आंखें झुका रखते है। वे सीधे नहीं देखते। क्या समस्या है? निश्चित ही, वे अति कामुक रहे होंगे। कामवासना से बहुत ग्रस्त रहे होंगे। वह ग्रस्तता अभी भी जारी है। लेकिन पहले वे स्त्रियों के पीछे भागते थे अब वे स्त्रियों से दूर भाग रहे है। पर स्त्रियों से ग्रस्तता बनी हुई है; चाहे वे स्त्रियों की और भाग रहे हों या स्त्रियों से दूर भाग रहे हो। उनका मोह बना ही हुआ है।

वे सोचते है कि अब स्त्रियों से मुक्त है, लेकिन यह एक नया बंधन है। तुम प्रतिक्रिया करके मुक्त नहीं हो सकते। जिस चीज से तुम भागोगे वह पीछे के रास्ते से तुम्हें बाँध लेगी; उससे तुम बच नहीं सकते हो। यदि कोई व्यक्ति संसार के विरोध में मुक्त होना चाहता है तो वह कभी मुक्त नहीं हो सकता; वह संसार में ही रहेगा। किसी चीज के विरोध में होना भी एक बंधन है।

यह सूत्र कहता है: 'यथार्थत: बंधन और मोक्ष सापेक्ष है......।'
वे विपरीत नहीं, सापेख है। मोक्ष क्या है? तुम कहते हो, जो बंधन नहीं है। वह मोक्ष है। और बंधन क्या है? तब तुम कहते हो, जो मोक्ष नहीं है वह बंधन है। तुम एक दूसरे से उनकी परिभाषा कर सकते हो। वे गर्मी और ठंडक की भांति है। विपरीत नही है। गर्मी क्या है और ठंडक क्या है? वे एक ही चीज की कम और ज्यादा मात्राएं है—ताप की मात्राएं है। लेकिन चीज एक ही है; गर्मी और ठंडक सापेक्ष है।

तंत्र कहता है, बंधन और मोक्ष संसार और निर्वाण दो चीजें नहीं है; वे सापेक्ष है, वे एक ही चीज की दो अवस्थाएं है। इसलिए तंत्र अनूठा है। तंत्र कहता है कि तुम्हें बंधन से ही मुक्त नहीं होना है, तुम्हें मोक्ष से भी मुक्त होना है। जब तक तुम दोनों से मुक्त नहीं होते, तुम मुक्त नहीं हो।

तो पहली बात कि किसी भी चीज के विरोध में जीने की कोशिश मत करो, क्योंकि ऐसा करके तुम उसी चीज की कोई भिन्न अवस्था में प्रवेश कर जाओगे। वह विपरीत दिखाई पड़ता है। लेकिन विपरीत है नहीं। कामवासना से ब्रह्मचर्य में जाने की चेष्टा करोगे तो तुम्हारा ब्रह्मचर्य कामुकता के सिवाय और कुछ नहीं होगा। लाभ से अलोभ में जाने की चेष्टा मत करो, क्योंकि वह अलोभ भी सूक्ष्म लोभ ही होगा। इसीलिए अगर कोई परंपरा अलोभ सिखाती है तो उसमें भी तुम्हें कुछ लालच देती है।

जो लोग लोभी है, पर लोभ के लोभी है। वे इस उपदेश से बहुत प्रभावित होंगे। वे इसके लालच में बहुत कुछ छोड़ने को तैयार हो जायेंगे। कि 'अगर तुम लोभ को छोड़ दोगे तो तुम्हें परलोक में बहुत मिलेगा'। लेकिन पानी की प्रवृति,पाने की चाह बनी रहती है। अन्यथा लोभी आदमी अलोभ की तरफ क्यों जाएगा? उनके लोभ की सूक्ष्म तृप्ति के लिए कुछ अभिप्राय कुछ हेतु तो चाहिए ही।

तो विपरीत ध्रुवों का निर्माण मत करो। सभी विपरीतताएं परस्पर जुड़ी है। वे एक ही चीज की भिन्न-भिन्न मात्राएं है। ओर अगर तुम्हें इसका बोध हो जाए तो तुम कहोगे कि दोनों ध्रुव एक है। अगर तुम यह अनुभव कर सके, और अगर यह अनुभव तुम्हारे भीतर गहरा हो सके तो तुम दोनों से मुक्त हो जाओगे। तब तुम न संसार चाहते हो न मोक्ष। वस्तुतः तब तुम कुछ भी नहीं चाहते हो; तुमने चाहना ही छोड़ दिया। और उस छोड़ने में ही तुम मुक्त हो गए। इस भाव में ही कि सब कुछ समान है, भविष्य गिर गया। अब तुम कहां जाओगे?

यदि कामवासना और ब्रह्मचर्य एक है, तो कहां जाना है। यदि लोभ और अलोभ एक ही है। हिंसा और अहिंसा एक ही है, तो फिर जाना कहा है? कहीं जाने को न बचा। सारी गति समाप्त हुई; भविष्य ही न रहा। तब तुम किसी चीज की भी कामना, कोई भी कामना नहीं कर सकते, क्योंकि सब कामनाए एक ही है। फर्क केवल परिमाण को होगा। तुम क्या कामना करोगे। तुम क्या चाहोगे?

कभी-कभी मैं लोगों से पूछता हूं, जब मेरे पास आते है। मैं पूछता हूं: 'सच में तुम क्या चाहते हो?' उनकी चाहत उनसे ही पैदा होती है। वे जैसे है उसमें ही उनकी जड़ होती है। अगर कोई लोभी है। तो वह अलोभ की चाह करता है। अगर कोई कामी है तो वह ब्रह्मचर्य की कामना करता है। कामी कामवासना से छूटना चाहता है। क्योंकि वह उससे पीड़ित है। दुःखी है। लेकिन ब्रह्मचर्य की एक कामना की जड़ उसकी कामुकता में की है।

लोग पूछते है: 'इस संसार से कैसे छूटा जाए?'

संसार उन पर बहुत भरी पड़ रहा है। वे संसार के बोझ के नीचे दबे जा रहे है। और वे संसार से बुरी तरह चिपके भी है। क्योंकि जब तक तुम संसार से चिपकते नहीं हो तब तक संसार तुम्हें बोझिल नहीं कर सकता। यह बोझ तुम्हारे सिर में है; और उसका कारण तुम हो बोझ नहीं। तुम इसे ढो रहे हो। लोग सारा संसार उठाए है; और फिर वे दुःखी होते है। और दुःख के इसी अनुभव से विपरीत कामना का उदय होता है। और वे विपरीत के लिए लालायित हो उठते है।

पहले वह धन के पीछे भाग रहे थे; अब वे ध्यान के पीछे भाग रहे है। पहले वह इस लोक में कुछ पाने के लिए भाग दौड़ कर रहे थे; अब वे परलोक में कुछ पाने के लिए भाग दौड़ कर रहे है। लेकिन भाग दौड़ जारी है। और भाग दौड़ ही समस्या है; विषय अप्रासंगिक है। कामना समस्या है; चाह समस्या है। तुम क्या चाहते हो, यह अर्थपूर्ण नहीं है। तुम चाहते हो, यह समस्या है।

और तुम चाह के विषय बदलते रहते हो। आज तुम 'क' चाहते हो, कल 'ख' चाहते हो, और तुम समझते हो कि मैं बदल रहा हूं। और फिर परसों तुम 'ग' चाह करते हो। और तुम सोचते हो कि मैं रूपांतरित हो गया। लेकिन तुम वही हो। तुमने 'क' की चाह की, तुमने 'ख' की चाह की। और तुमने ही 'ग'की चाह की; लेकिन क-ख-ग ये सब तुम नही हो। तुम तो वह हो जो चाहता है। जो कामना करता है। और वह वही का वही रहता है।

तुम बंधन चाहते हो। और फिर उससे निराशा हो जाते हो। ऊब जाते हो। और तब तुम मोक्ष की कामना करने लगते हो। लेकिन तुम कामना करना जारी रखते हो। और कामना बंधन है; इसलिए तुम मोक्ष की कामना नहीं करते। चाह ही बंधन है। इसलिए तुम मोक्ष नहीं चाह सकते। जब कामना विसर्जित होती है तो मोक्ष है; चाह का छूट जाना मोक्ष है।

इसी लिए यह सूत्र कहता है: 'यथार्थतः बंधन और मोक्ष सापेक्ष है।'
तो विपरीत से ग्रस्त मत होओ।

'ये केवल विश्व से भयभीत लोगों के लिए है।'
बंधन और मोक्ष, ये शब्द उनके लिए है जो विश्व से भयभीत है।

'यह विश्व मन का प्रतिबिंब है।'

तुम संसार में जो कुछ देखते हो वह प्रतिबिंब है। अगर वह बंधन जैसा दिखता है तो उसका मतलब है कि वह तुम्हारा प्रतिबिंब है। और अगर यह विश्व मुक्ति जैसा दिखता है तो भी वह तुम्हारा प्रतिबिंब है।

'जैसे तुम पानी में एक सूर्य के अनेक सूर्य देखते हो, वैसे ही बंधन और मोक्ष को देखा।'
सुबह सूरज ऊगता है। और सरोवर उनके—बड़े और छोटे, सुंदर और कुरूप,अनेक टुकड़े कर देता है। एक ही सूरज इन अनेक छवियों में प्रतिबिंबित होता है। अनेक रूप और आकारों में कहीं गंदा और कही शुद्ध। लेकिन जो प्रतिबिंब को देख कर यथार्थ को देखेगा उसे एक ही सूर्य दिखाई देगा।

जिस संसार को तुम देखते हो वह तुम्हारा प्रतिबिंब है। अगर तुम कामुक हो तो सारा संसार तुम्हें कामुक मालूम पड़ेगा। और अगर तुम चोर हो तो सारा संसार तुम्हें उसी धंधे में संलग्न मालूम पड़ेगा।

एक बार मुल्ला नसरूद्दीन और उसकी पत्नी, दोनों मछली पकड़ रहे थे। और वह जगह प्रतिबंधित थी। केवल लाइसेंस लेकर ही लोग वहां मछली पकड़ सकत थे। अचानक एक पुलिस का सिपाही वहां आ गया। मुल्ला की पत्नी ने कहा: 'मुल्ला, तुम्हारे पास लाइसेंस है, तुम भागों; इस बीच मैं यहां सक खिसक जाऊगी।' मुल्ला भागने लगा, वह भागता गया। भागता गया। और सिपाही उसका पीछा करता रहा। मुल्ला ने अपनी पत्नी को वही छोड़ दिया और भागने लगा।

दौड़ते-दौड़ते मुल्ला को ऐसा लगा की उसकी छाती फट जाएगी। तभी उस सिपाही ने उसे पकड़ लिया। सिपाही भी पसीने से तरबतर था। उसने मुल्ला से पूछा: 'तुम्हारा लाइसेंस कहां है?' मुल्ला ने लाइसेंस निकाल कर दिखाया। सिपाही ने गौर से लाइसेंस को देखा और उसे सही पाया। और तब उसने पूछा: नसरूद्दीन,फिर तुम भाग क्यों रहे थे? तुम्हारे पास तो लाइसेंस था।

मुल्ला ने कहा: 'मैं एक डाक्टर के पास जाता हूं, और वह कहता है कि भोजन के बाद आधा मील दौड़ करो।' सिपाही ने कहा: 'लेकिन वह तो ठीक है, लेकिन तुम देख रहे थे कि मैं तुम्हारे पीछे भाग रहा हूं, चिल्ला रहा हूं। तब तुम क्यों नहीं रुके'? मुल्ला ने कहा: 'मैं समझा कि शायद तुम भी उसी डाक्टर के पास जाते हो।'

बिलकुल तर्कसंगत है; यही हो रहा है। तुम अपने चारों और जो कुछ देखते हो वह तुम्हारा प्रतिबिंब ज्यादा है। यथार्थ कम है। तुम अपने को ही सब जगह प्रतिबिंबित देख रहे हो। और जिस क्षण तुम बदलते हो, तुम्हारा प्रतिबिंब भी बदल जाता है। और जिस क्षण तुम समग्ररतः: मौन हो जाते हो, शांत हो जाते हो, सारा संसार भी शांत हो जाता है। संसार बंधन नहीं है, बंधन केवल एक प्रतिबिंब है। संसार मोक्ष भी नहीं है। मोक्ष भी प्रतिबिंब है। बुद्ध को सारा संसार निर्वाण में दिखाई पड़ता है। कृष्ण को सारा जगत नाचता-गाता, आनंद में, उत्सव मनाता हुआ दिखाई पड़ता है। उन्हें कही कोई दुःख नहीं दिखाई पड़ता है।

लेकिन तंत्र कहता है कि तुम जो भी देखते हो वह प्रतिबिंब ही है। जब तक सारे दृश्य नहीं विदा हो जाते और शुद्ध दर्पण नही बचता—प्रतिबिंबरहित दर्पण। वही सत्य है। अगर कुछ भी दिखाई देता है तो वह प्रतिबिंब ही है।

सत्य एक है। अनेक तो प्रतिबिंब ही हो सकते है। और एक बार यह समझ में आ जाए—सिद्धांत के रूप में नहीं, अस्तित्वगत, अनुभव के द्वारा—तो तुम मुक्त हो, बंधन और मोक्ष दोनों से मुक्त हो।

इसे इस ढंग से देखो। जब तुम बीमार होते हो तो स्वास्थ्य की कामना करते हो। यह स्वास्थ्य की कामना तुम्हारी बीमारी का ही अंग है। अगर तुम स्वस्थ ही हो तो तुम स्वास्थ्य की कामना नहीं करोगे। कैसे करोगे? अगर तुम सच में स्वस्थ हो तो फिर स्वास्थ्य की चाह कहां है? उसकी जरूरत नहीं है।

अगर तुम यथार्थत: स्वस्थ तो तुम्हें महसूस नहीं होता कि मैं स्वस्थ हूं। सिर्फ बीमार, रोगग्रस्त लोग ही महसूस कर सकते है कि हम स्वस्थ है। उसकी जरूरत क्या है। तुम कैसे महसूस कर सकते हो की तुम स्वस्थ हो। अगर तुम स्वास्थ ही पैदा हुए और कभी नहीं बीमार हुए, तो क्या तुम कभी अपने स्वास्थ को महसूस कर सकोगे?

स्वास्थ तो है, लेकिन उसका अहसास नहीं हो सकता। उसका अहसास तो विपरीत के द्वारा, विरोधी के द्वारा ही हो सकता है। विपरीत के द्वारा ही, उसकी पृष्ठभूमि में ही किसी चीज का अनुभव होता है। अगर तुम बीमार हो तो स्वास्थ का अनुभव कर सकते हो; और अगर तुम्हें स्वास्थ्य का अनुभव हो रहा है तो निश्चित जानो कि तुम अब भी बीमार हो।

तो नरोपा ने कहा: 'हां और नहीं दोनों। हां इसलिए कि अब कोई बंधन नहीं रहा। और नहीं इसलिए कि बंधन के जाने के साथ मुक्ति भी विलीन हो गई। मुक्ति बंधन का ही हिस्सा थी। अब मैं दोनों के पार हूं; न बंधन में हूं, और न मोक्ष में।'

धर्म को चाह मत बनाओ। धर्म को कामना मत बनाओ। मोक्ष को, निर्वाण को कामना का विषय मत बनाओ। वह तभी घटित होता है जब सारी कामनाए खो जाती है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-45

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—70 (ओशो)

'अपनी प्राण शक्ति को मेरुदंड के ऊपर उठती, एक केंद्र की और गति करती हुई प्रकाश किरण समझो, और इस भांति तुममें जीवंतता का उदय होता है।'

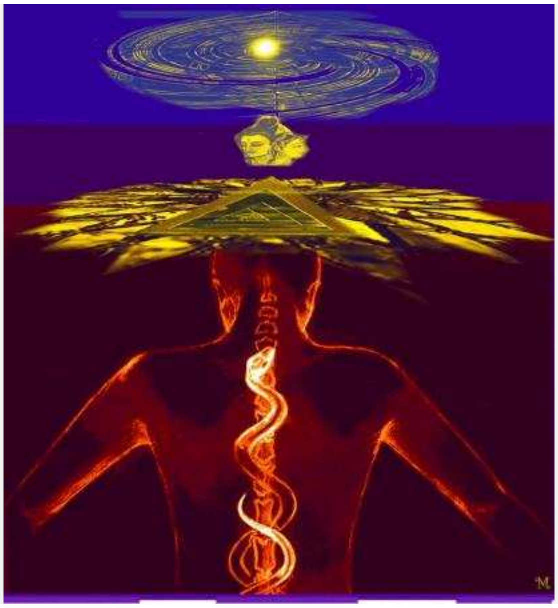

'अपनी प्राण शक्ति को मेरुदंड के ऊपर उठती,....शिव

योग के अनेक साधन अनेक उपाय इस विधि पर आधारित है। पहले समझो कि यह क्या है, और फिर इसके प्रयोग को लेंगे।

मेरुदंड, रीढ़ तुम्हारे शरीर और मस्तिष्क दोनों का आधार है। तुम्हारा मस्तिष्क, तुम्हारा सिर तुम्हारे मेरुदंड का ही अंतिम छोर है। मेरुदंड पूरे शरीर की आधारशिला है। और अगर मेरुदंड युवा है तो तुम युवा हो। और अगर मेरुदंड बूढा है तो तुम बढ़े हो। अगर तुम अपने मेरुदंड को युवा रख सको तो बूढा होना कठिन है। सब कुछ इस मेरूदंड पर निर्भर है। अगर तुम्हारा मेरूदंड जीवंत है तो तुम्हारे मन मस्तिष्क में मेधा होगी। चमक होगी। और अगर तुम्हारा मेरूदंड जड़ और मृत है तो तुम्हारा मन भी बहुत जड़ होगा। समस्त योग अनेक ढंग से तुम्हारे मेरूदंड को जीवंत, युवा,ताजा और प्रकाशपूर्ण की चेष्टा करता है।
मेरूदंड के दो छोर है। उसके आरंभ का काम-केंद्र है और उसके शिखर पर सहस्त्रार है—सिर के ऊपर जो सातवां चक्र है। मेरूदंड का जा आरंभ है वह पृथ्वी से जुड़ा है। कामवासना तुम्हारे भीतर सर्वाधिक पार्थिव चीज है। तुम्हारे मेरूदंड के आरंभिक चक्र के द्वारा तुम निसर्ग के संपर्क में आते हो। जिसे सांख्य प्रकृति कहता है—पृथ्वी,पदार्थ। और अंतिम चक्र से सहस्त्रार से तुम परमात्मा के संपर्क में होते हो।

तुम्हारे अस्तित्व के ये दो ध्रुव है। पहला काम केंद्र है, और उसके शिखर पर सहस्त्रार है। अंग्रेजी में सहस्त्रार के लिए कोई शब्द नहीं है। ये ही दो ध्रुव है। तुम्हारा जीवन या तो कामोन्मुख होगा या सहस्त्रोन्मुख होगा। या तो तुम्हारी ऊर्जा काम केंद्र से बहकर पृथ्वी में वापस जाएगी,या तुम्हारी ऊर्जा सहस्त्रार से निकलकर अनंत आकाश में समा जाएगी। तुम सहस्त्रार से ब्रहम में, परम सत्ता में प्रवाहित हो जाते हो। तुम काम केंद्र से पदार्थ जगत में प्रवाहित होते हो। ये दो प्रवाह है; ये दो संभावनाएं है।

जब तक तुम ऊपर की और विकसित नहीं होते, तुम्हारे दुःख कभी समाप्त नहीं होगे। तुम्हें सुख की झलकें मिल सकती है; लेकिन वे झलकें ही होगी और बहुत भ्रामक होंगी। जब ऊर्जा ऊर्ध्वगामी होगी। तुम्हें सुख की अधिकाधिक सच्ची झलकें मिलने लगेंगी। और जब ऊर्जा सहस्त्रार पर पहुँचेगी तुम परम आनंद को उपलब्ध हो जाओगे। वही निर्वाण है। तब झलक नहीं मिलती, तुम आनंद ही हो जाते हो।

योग और तंत्र की पूरी चेष्टा यह है कि कैसे ऊर्जा को मेरूदंड के द्वारा ऊध्र्वगामी बनाया जाए,कैसे उसे गुरूत्वाकर्षण के विपरीत गतिमान किया जाये। काम या सेक्स आसान है, क्योंकि वह गुरूत्वाकर्षण के विपरीत नहीं है। पृथ्वी सब चीजों को अपनी ओर खींच रही है। तुम्हारी काम ऊर्जा को भी पृथ्वी नीचे खींच रही है। तुमने शायद यह नहीं सुना हो, लेकिन अंतरिक्ष यात्रियों ने यह अनुभव किया है कि जैसे ही वे पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण के बाहर निकल जाते है,उनकी कामुकता बहुत क्षण हो जाती है। जैसे-जैसे शरीर का वजन कम होता है। कामुकता विलीन हो जाती है।

पृथ्वी तुम्हारी जीवन-ऊर्जा को नीचे की तरफ खींचती है। और यह स्वाभाविक है। क्योंकि जीवन-ऊर्जा पृथ्वी से आती है। तुम भोजन लेते हो, और उससे तुम अपने भीतर जीवन ऊर्जा निर्मित कर रहे हो। यह ऊर्जा पृथ्वी से आती है। और पृथ्वी उसे वापस खींचती है। प्रत्येक चीज अपने मूल स्त्रोत को लौट जाती है। और अगर यह ऐसे ही चलता रहा, जीवन ऊर्जा फिर-फिर पीछे लौटती रहे, तुम वर्तुल में घुमते रहे। तो तुम जन्मों-जन्मों तक ऐसे ही घूमते रहोगे। तुम इस ढंग से अनंतकाल तक चलते रह सकते हो। यदि तुम अंतरिक्ष यात्रियों की तरह छलांग नहीं लेते। अंतरिक्ष यात्रियों की तरह तुम्हें छलांग लेना है और वर्तुल के पार निकल जाना है। तब पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण का पैटर्न टूट जाता है। यह तोड़ा जा सकता है।

यह कैसे तोड़ा जा सकता है। ये उसकी ही विधियां है। ये विधियां इस बात की फ्रिक करती है कि कैसे ऊर्जा ऊर्ध्व गति करे, नये केंद्रों तक पहुचे; कैसे तुम्हारे भीतर नई ऊर्जा का आविर्भाव हो और कैसे प्रत्येक गति के साथ वह तुम्हें नया आदमी बना दे। और जिस क्षण तुम्हारे सहस्त्रार से, कामवासना के विपरीत ध्रुव से तुम्हारी ऊर्जा मुक्त होती है। तुम आदमी नहीं रह गए; तब तुम इस धरती के न रहे,तब तुम भगवान हो गए।

जब हम कहते है कि कृष्ण या बुद्ध भगवान है तो उसका यही अर्थ है। उनके शरीर तो तुम्हारे जैसे है। उनके शरीर भी रूग्ण होंगे और मरेंगे। उनके शरीरों में सब कुछ वैसा ही होता है जैसे तुम्हारे शरीरों में होता है। सिर्फ एक चीज उनके शरीरों में नहीं होती जो तुम्हारे शरीर में होती है। उनकी ऊर्जा ने गुरूत्वाकर्षण के पैटर्न को तोड़ दिया है। लेकिन वह तुम नहीं देख सकते; वह तुम्हारी आंखों के लिए दृश्य नहीं है।

लेकिन कभी-कभी जब तुम किसी बुद्ध की सन्निधि में बैठते हो तो तुम यह अनुभव कर सकते हो। अचानक तुम्हारे भीतर ऊर्जा का ज्वार उठने लगता है और तुम्हारी ऊर्जा ऊपर की तरफ यात्रा करने लगती है। तभी तुम जानते हो कि कुछ घटित हुआ है। केवल बुद्ध के सत्संग में ही तुम्हारी ऊर्जा सहस्त्रार की तरफ गति करने लगती है। बुद्ध इतने शक्तिशाली है कि पृथ्वी की शक्ति भी उनसे कम पड़ जाती है। उस समय पृथ्वी की ऊर्जा तुम्हारी ऊर्जा को नीचे की तरफ नहीं खींच सकती है। जिन लोगों ने जीसस,बद्ध या कृष्ण की सन्निधि में इसका अनुभव लिया है, उन्होंने ही उन्हें भगवान कहा है। उनके पास ऊर्जा का एक भिन्न स्त्रोत है जो पृथ्वी से भी शक्तिशाली है।

इस पैटर्न को कैसे तोड़ा जा सकता है। यह विधि पैटर्न तोड़ने में बहुत सहयोगी है। लेकिन पहले कुछ बुनियादी बातें ख्याल में ले लो।

पहल बात कि अगर तुमने निरीक्षण किया होगा तो तुमने देखा होगा कि तुम्हारी काम ऊर्जा कल्पना के साथ गति करती है। सिर्फ कल्पना के द्वारा भी तुम्हारी काम-ऊर्जा सक्रिय हो जाती है। सच तो यह है कि कल्पना के बिना वह सक्रिय नहीं हो सकती हे। यही कारण है कि जब तुम किसी के प्रेम में होते हो तो काम-ऊर्जा बेहतर काम करती है। क्योंकि प्रेम के साथ कल्पना प्रवेश कर जाती है। अगर तुम प्रेम में नहीं हो तो बहुत कठिन है; वह काम नहीं करेगी।

इसीलिए पुराने दिनों में पुरूष-वेश्याएं नहीं होती थी। सिर्फ स्त्री वेश्याएं होती थी। पुरूष वेश्या के लिए काम के तल पर सक्रिय होना कठिन है। अगर वह प्रेम में नहीं है। और सिर्फ पैसे के लिए वह प्रेम कैसे कर सकता है। तुम किसी पुरूष को तुम्हारे साथ संभोग में उतरने के लिए पैसे दे सकती हो; लेकिन अगर उसे तुम्हारे प्रति भाव नहीं है। कल्पना नहीं है तो वह सक्रिय नहीं हो सकता। स्त्रियां यह कर सकती है। क्योंकि उनकी कामवासना निष्क्रिय है,सच तो यह है कि उन्हें कोई भी भाव न हो। उनके शरीर लाश की भांति पड़े रहे सकते है। वेश्या के साथ तुम एक जीवित शरीर के साथ नहीं, एक मृत शरीर या लाश के साथ संभोग करते हो। स्त्रियां आसानी से वेश्या हो सकती है। क्योंकि उनकी काम ऊर्जा निष्क्रिय है।

तो काम केंद्र कल्पना से काम करता है। इसीलिए स्वप्नों में तुम्हें इरेक्शन हो सकता हे। और वीर्यपात भी हो सकता है। वहां कुछ भी वास्तविक नहीं है। सब कुछ कल्पना का खेल है। फिर भी देखा गया है कि प्रत्येक पुरूष को, अगर वह स्वस्थ है, रात में कम से कम दस दफा इरेक्श्न होता है। मन की जरा सी गति के साथ, काम का जरा सा विचार उठने से ही इरेक्शन हो जाएगा।

तुम्हारे मन की अनेक शक्तियां है, अनेक क्षमताएं है; और उनमें से एक है संकल्प। लेकिन तुम संकल्प से काम कृत्य में नहीं उतर सकते; काम के लिए संकल्प नपुंसक है। अगर तुम संकल्प से किसी के साथ संभोग में उतरते की चेष्टा करोगे तो तुम्हें लगेगा कि तुम नापुंसग हो गए। कभी चेष्टा मत करो। कामवासना में संकल्प नहीं, कल्पना काम करती है। कल्पना करो, ओर तुम्हारा काम केंद्र सक्रिय हो जाएगा।

तुम्हारे मन की अनेक शक्तियां है, अनेक क्षमताएं है। और उनमें से एक है संकल्प। लेकिन मैं क्यों इस तथ्य पर इतना जौर दे रहा हूं, क्योंकि यदि कल्पना ऊर्जा को गतिमान करने में सहयोगी है तो तुम सिर्फ कल्पना के द्वारा उसे चाहो तो ऊपर ले जा सकते हो। और चाहों तो नीचे ला सकते हो। तुम अपने खून को कल्पना से गतिमान नहीं कर सकते; तुम शरीर में और कुछ कल्पना से नहीं कर सकते। लेकिन काम ऊर्जा कल्पना से गतिमान की जा सकती है। तुम उसकी दिशा बदल सकते हो।

यह सूत्र कहता है: 'अपनी प्राण-शक्ति को प्रकाश किरण समझो।' स्वयं को अपने होने को प्रकाश किरण समझो। योग ने तुम्हारे मेरूदंड को सात चक्रों में बांटा है। पहला काम केंद्र है। और अंतिम सहस्त्रार है। और इन दोनों के बीच पाँच चक्रा है। कोई-कोई साधना पद्धति मेरूदंड को नौ केंद्रों में बाँटती है। कोई तीन में ही और कोई चार में। यह विभाजन बहुत अर्थ नही रखता है। प्रयोग के लिए पाँच केंद्र प्रर्याप्त है। पहला काम-केंद्र है; दूसरा ठीक नाभि के पीछे है; तीसरा ह्रदय के पीछे है। चौथा केंद्र तुम्हारी दोनों भौंहों के बीच में है—ठीक ललाट के बीच में; और अंतिम केंद्र सहस्त्रार तुम्हारे सिर के शिखर पर है। ये पाँच पर्याप्त है।

यह सूत्र कहता है: 'अपने को समझो,' उसका अर्थ है कि भाव करो, कल्पना करो। आंखे बंद कर लो और भाव करो कि मैं बस प्रकाश हूं। यह भाव या कल्पना नहीं है। शुरू-शुरू में कल्पना ही है। लेकिन यथार्थ में भी ऐसा ही है। क्योंकि हरेक चीज प्रकाश से बनी है। अब विज्ञान कहता है कि सब कुछ विद्युत है। तंत्र ने तो सदा से कहा कि सबकुछ प्रकाश कणों से बना है और तुम भी प्रकाश कणों से ही बने हो। इसीलिए कुरान कहता है कि परमात्मा प्रकाश है। तुम प्रकाश हो।

तो पहले भाव करो मैं बस प्रकाश-किरण हूं। और फिर अपनी कल्पना को काम केंद्र के पास ले जाओ। अपने अवधान को वहां एकाग्र करो और भाव करो कि प्रकाश किरणें काम केंद्र से ऊपर उठ रही है। मानों काम केंद्र से ऊपर उठ रही है। मानो काम केंद्र प्रकाश का स्त्रोत बन गया है। और प्रकाश किरणें वहां से नाभि केंद्र की और ऊपर उठ रही है।

विभाजन इस लिए जरूरी है, क्योंकि तुम्हारे लिए काम केंद्र को सीधे सहस्त्रार से जोड़ना कठिन है। छोटे-छोटे विभाजन इसलिए उपयोगी है। यदि तुम सीधे सहस्त्रार से जुड़ सको तो किसी विभाजन की जरूरत नहीं हे। तुम काम केंद्र के ऊपर के सभी विभाजन गिरा दे सकते हो। और उर्जा जीवन शक्ति प्रकाश की भांति सीधे सहस्त्रार की और उठने लगेगी।

जब तुम अनुभव करो कि अब नाभि पर स्थित दूसरा केंद्र प्रकाश का स्त्रोत बन गया है। कि प्रकाश किरणें वहां आकर इकट्ठी होने लगी है। तब ह्रदय केंद्र कीओर गति करो। और ऊपर बढ़ो। और जैसे-जैसे प्रकाश ह्रदय केंद्र पर पहुंचता है, वैसे ही तुम्हारे ह्रदय केंद्र की धड़कने बदल जायेगी। तुम्हारी श्वास गहरी होने लगेगी, और तुम्हारे ह्रदय में गरमाहट पहुंचने लगेगी। तब उससे भी और आगे और ऊपर बढ़ो।

और जैसे-जैसे तुम्हें गरमाहट अनुभव होगी,वैसे-वैसे ही, तुम्हारे भीतर एक जीवंतता का उन्मेष होगा। एक आंतरिक प्रकाश का उदय होगा।

काम-ऊर्जा के दो हिस्से है। एक हिस्सा शारीरिक है और दूसरा मानसिक है। तुम्हारे शरीर में हरेक चीज के दो हिस्से है। तुम्हारे शरीर मन की भांति ही तुम्हारे भीतर प्रत्येक चीज के दो हिस्से है: एक भौतिक है और दूसरा अभौतिक। काम-ऊर्जा के भी दो हिस्से है। वीर्य उसका भौतिक हिस्सा है। वीर्य उपर नहीं उठ सकता। उसके लिए मार्ग नहीं है। इसीलिए पश्चिम के अनेक शरीर शास्त्री कहते है कि तंत्र और योग की साधना बकवास है; वे उन्हें इनकार ही करते है। काम-ऊर्जा ऊपर की और कैसे उठ सकती है। इसके लिए कोई मार्ग नहीं हे। और वह ऊपर नहीं उठ सकती।

वे शरीर शस्त्री सही है। और फिर भी गलत है। काम ऊर्जा का जो भौतिक हिस्सा है, वह जो वीर्य है,वह तो ऊपर नहीं उठ सकता;लेकिन वही सब कुछ नहीं है। सच तो यह है कि वीर्य काम-ऊर्जा का शरीर भर है। वह स्वयं काम ऊर्जा नहीं हे। काम-ऊर्जा तो उकसा अभौतिक हिस्सा है। और यह अभौतिक तत्व ऊपर उठ सकता है। और उसी अभौतिक ऊर्जा के लिए मेरूदंड मार्ग का काम करता है। मेरूदंड और उसके चक्र मार्ग का काम करते है। लेकिन उसका तो अनुभव से जानना होगा। और तुम्हारी संवेदनशीलता मर गई है।

जब कोई हाथ तुम्हें स्पर्श करता है तो हाथ नहीं , दबाव और गरमाहट अनुभव होती है। हाथ तो अनुभव भर है। वह बुद्धि है, भाव नहीं। गरमाहट और दबाव अनुभूतियां है। हमने अनुभूतियां बिलकुल खो दी है। तुम्हें फिर से उसे विकसित करना होगा। केवल तभी इन विधियों को प्रयोग में ला सकते हो। अन्यथा ये विधियां काम नहीं करेंगी। तुम केवल बुद्धि से सोचोगे कि मैं अनुभव करता हूं। और कुछ भी घटित नहीं होगा। यही कारण है कि लोग मेरे पास आते है और कहते है कि यह विधि बहुत महत्व पूर्ण है, लेकिन कुछ घटित नहीं होता।

उन्होंने प्रयोग तो किया है परंतु वह एक आयाम चुक गये। वे अनुभव का आयाम चुक गये। तो तुम्हें पहले इस आयाम को विकसित करना होगा। और उसके कुछ उपाय है जिन्हें तुम प्रयोग में ला सकते हो।

तुम एक काम करो, अगर तुम्हारे घर में कोई छोटा बच्चा है तो प्रतिदिन एक घंटा उसे बच्चे के पीछे-पीछे चलो। बुद्ध के पीछे चलने से उनके पीछे चलना बेहतर है। और कही ज्यादा तृप्ति दायी हो सकता है। बच्चे को अपने चारों हाथ-पाँव पर चलने को कहो, घुटनों के बल चलने को कहो, बच्चे के पीछे तुम भी चलो।

और पहली बार तुम्हें अपने में एक नव जीवन का उन्मेष होगा। तुम फिर बच्चे हो जाओगे। बच्चे को देखो। और उसके पीछे-पीछे चलो। बच्चा घर के कोने-कोने में जाएगा। वह घर की हरेक चीज को स्पर्श करेगा। न

केवल स्पर्श करेगा। वह एक-एक चीज का स्वाद लेगा। वह एक-एक चीज को सूंघेगा। तुम बस उसका अनुकरण करो;वह जो भी करे तुम भी वही करो।

मनुष्य बच्चों से बहुत कुछ सीख सकता है। और देर-अबेर तुम्हारी सच्ची निर्दोषता प्रकट हो जाएगी। तुम भी कभी बच्चे थे। और तुम जानते हो कि बच्चा होना क्या है। सिर्फ उसका विस्मरण हो गया है।

तो अनुभूति के केंद्रों को फिर से विकसित करो। तो ही ये विधियां कारगर हो सकती है। अन्यथा तुम सोचते रहोगे कि ऊर्जा ऊपर उठ रही है। लेकिन उसकी कोई अनुभूति नहीं होगी। और अनुभूति के अभाव में कल्पना व्यर्थ है, बांझ है। अनुभूति भरा भाव ही परिणाम ला सकता है।

तुम और भी कई चीजें कर सकते हो। और उन्हें करने में कोई विशेष प्रयत्न भी नहीं है। जब तुम सोने जाओ तो विस्तर को, तकिए को महसूस, उसकी ठंडक को महसूस करो। तकिए को छुओ उसके साथ खेलो। अपनी आंखें बंद कर लो और सिर्फ एयरकंडीशनर की आवाज को सुनो। घड़ी की आवाज कोया चलती सड़क के शोरगुल को सुनो। कुछ भी सुनो उसे नाम मत दो कुछ कहो ही मत मन का उपयोग की मत करो। बस अनुभूति में जीओं।

सुबह जागने के पहले क्षण में, जब तुम्हें लगे कि नींद जा चुकी है तो तुरंत सोच-विचार मत करने लगो। कुछ क्षणों के लिए तुम फिर से बच्चे हो सकते हो। निर्दोष और ताजे हो सकते हो। तुरंत सोच-विचार में मत लग जाओ। यह मत सोचो कि क्या-क्या करना है। कब दफ्तर के लिए रवाना होना है, कौन सी गाड़ी पकड़नी है। सोच-विचार मत शुरू करो। उन मूढ़ताओं के लिए तुम्हें काफी समय मिलेगा। अभी रुको और अभी कुछ क्षणों के लिए सिर्फ ध्वनियों पर ध्यान दो। एक पक्षी गाता है। वृक्षों से हवाएँ गुजर रही है। कोई बच्चा रोता है या दूध देने वाला आया है। और पुकार रहा है। या वह पतीले में दूध डाल रहा है। जो भी हो रहा है उसे महसूस करो, उसके प्रति संवेदनशील बनो। खुले रहो। उसकी अनुभूति में डुबो। और तुम्हारी संवेदनशीलता बढ़ जायेगी।

जब स्नान करो तो उसे अपने पूरे शरीर पर अनुभव करो; पानी की प्रत्येक बूंद को अपने ऊपर गिरते हुए महसूस करो। उसके स्पर्श को, उसकी शीतलता और उष्णता को महसूस करो। पूरे दिन इसका प्रयोग करो; जब भी अवसर मिले प्रयोग करो। और सब जगह अवसर ही अवसर है। श्वास लेते हुए सिर्फ श्वास को अनुभव करो। भीतर जाती और बाहर आती श्वास को महसूस करो। केवल अनुभव करो1 अपने शरीर को ही महसूस करो। तुमने उसे भी नहीं अनुभव किया है।

हम अपने शरीर से भी इतने ही भयभीत है। कभी अपने शरीर को प्रेमपूर्वक स्पर्श नहीं करता है। क्या तुमने कभी अपने शरीर को ही प्रेम किया है। समूची सभ्यता इस बात से भयभीत है। कोई अपने को स्पर्श करे। क्योंकि बचपन में स्पर्श वर्जित रहा है। अपने को प्रेमपूर्वक स्पर्श करना हस्तमैथुन जैसा महसूस होता है। लेकिन अगर तुम अपने को ही प्रेम से स्पर्श नहीं कर सकते हो। तो तुम्हारा शरीर जड़ हो जाता है। मृत हो जाता है। वह दरअसल जड़ और मृत हो गया है।

अपनी आंखों को स्पर्श करो। तुम्हारी आंखों तुरंत ताजी और जीविंत हो उठेगी। अपने पूरी शरीर को महसूस करो; अपने प्रेमी के शरीर को महसूस करो; अपने मित्र के शरीर को महसूस करो। एक दूसरे को सहलाओ; एक दूसरे की मालिश करो। अपने मित्र के शरीर छुओ, उसकी छूआन को महसूस करो। तुम अधिक संवेदन शील हो जाओगे।

संवेदनशीलता और अनुभूति पैदा करो। तभी तुम इन विधियों का प्रयोग सरलता से कर सकते हो। और तब तुम्हें अपने भीतर जीवन ऊर्जा के ऊपर उठने का अनुभव होगा। इस ऊर्जा को बीच में मत छोड़ो। उसे सहस्त्रार तक जाने दो। स्मरण रहे कि जब भी तूम यह प्रयोग करो तो उसे बीच में मत छोड़ो; उसे पूरा करो। यह भी ध्यान रहे कि इस प्रयोग में कोई तुम्हें बाधा न पहुँचाए। अगर तुम इस ऊर्जा को कहीं बीच में छोड़ दोगे तो उससे तुम्हें हानि हो सकती है। इस ऊर्जा को मुक्त करना होगा। तो उसे सिर तक ले जाओ। और भाव करो कि तुम्हारा सिर एक द्वार बन गया है।

इस देश में हमने सहस्त्रार को हजार पंखुड़ियों वाले कमल के रूप में चित्रित किया है। सहस्त्रार का यही अर्थ है। तो धारणा करो कि हजार पंखुड़ियों वाला कमल खिल रहा है। और उसकी प्रत्येक पंखुडी से यह प्रकाश ऊर्जा ब्रह्मांड में फैल रही है। यह फिर एक अर्थों में संभोग है; लेकिन यह प्रकृति के साथ नहीं , परम के साथ संभोग है। और फिर एक आर्गाज्म घटित होता है।

आर्गाज्म दो प्रकार का होता है। एक सेक्सुअल और दूसरा स्प्रिचुअल सेक्सुअल आर्गाज्म निम्नतम केंद्र से आता है। और स्प्रिचुअल उच्चतम केंद्र से। उच्चतम केंद्र से तुम उच्चतम से मिलते हो और निम्नतम केंद्र से निम्नतम से।

साधारण संभोग में भी तुम यह प्रयोग कर सकते हो। दोनों लोग यह प्रयोग कर सकते हो। ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाओ। और तब संभोग तंत्र साधना बन जाता है। तब वह ध्यान बन जाता है।

लेकिन ऊर्जा को कही शरीर में, किसी बीच के केंद्र मत छोड़ो। कोई व्यक्ति बीच में आ सकता है जिसके साथ तुम्हें व्यावसायिक सरोकार हो, या कोई फोन आ जाए और तुम्हें प्रयोग को बीच में ही छोड़ना पड़े। इसलिए ऐसे समय में प्रयोग करो कि कोई तुम्हें बाधा न दे। और ऊर्जा को किसी केंद्र पर न छोड़ना पड़े। अन्यथा वह केंद्र जहां तुम ऊर्जा को छोड़ोगे धाव बन जाएगा और तुम्हें अनेक मानसिक रूग्णताओं का शिकार होना पड़ेगा।

तो सावधान रहो;अन्यथा यह प्रयोग मत करो। इस विधि के लिए नितांत एकांत आवश्यक है। बाधा रहितता आवश्यक है। और आवश्यक है कि तुम उसे पूरा करो। उर्जा को सिर तक जाना चाहिए। और वहीं से उसे मुक्त होना चाहिए।

तुम्हें अनेक अनुभव होंगे। जब तुम्हें लगेगा कि प्रकाश किरणें काम केंद्र से ऊपर उठने लगी है तो काम केंद्र पर इरेक्शन का ओर उत्तेजना का अनुभव होगा। अनेक लोग बहुत भयभीत और आतंकित स्थिति में मेरे पास आते है। और कहते है कि जब हम ध्यान करते है, जब हम ध्यान में गहरे जाते है। हमें इरेक्शन होता है। और वे चकित होकर पूछते है कि यह क्या है।

वे भयभीत हो जोत है क्योंकि वे सोचते है कि ध्यान मे कामुकता के लिए जगह नहीं होनी चाहिए। लेकिन तुम्हें जीवन के रहस्यों कापता नहीं है। यह अच्छा लक्षण है। यह बताता है। कि ऊर्जा उठ रही है। उसे गति की जरूरत है। तो आतंकित मत होओ। और यह मत सोचो कि कुछ गलत हो रहा है। यह शुभ लक्षण है। जब तुम ध्यान शुरू करते हो तो काम-केंद्र ज्यादा संवेदनशील, ज्यादा जीवंत, ज्यादा उत्तेजित हो जाएगा। वह बिलकुल शीतल हो जाएगा। अब उष्णता सिर में आ जाएगी।

और यह शारीरिक बात है। जब काम केंद्र-उत्तेजित होता है तो वह गरम हो जाता है। तुम उस गरमाहट को महसूस कर सकत हो। वह शारीरिक है। लेकिन जब ऊर्जा ऊपर उठती है तो काम केंद्र ठंडा होने लगता है। बहुत

ठंडा होने लगता है। और उष्णता सिर पर पहुंच जाती है। तब तुम्हें सिर में चक्कर आने लगेगा। जब ऊर्जा सिर में पहुँचेगी तो तुम्हारा सिर घूमने लगेगा। कभी-कभी तुम्हें घबराहट भी होगी;क्योंकि पहली बार ऊर्जा सिर में पहुंची है। और तुम्हारा सिर उससे परिचित नहीं है। उसे ऊर्जा के साथ सामंजस्य बिठाना पड़ेगा।

सिर में पहुंच जाए तो तुम बेहोश भी हो सकते हो। लेकिन यह बेहोशी एक घंटे से ज्यादा देर तक नहीं रह सकती। घंटे भर के भीतर ऊर्जा अपने आप ही वापस लौट जाएगी। या मुक्त हो जायेगी। तुम उस अवस्था में कभी एक घंटे से ज्यादा देर नहीं रह सकते। मैं कहता तो हूं एक घंटा, लेकिन असल में यह समय अड़तालीस मिनट है। यह उससे ज्यादा नहीं हो सकता,लाखों वर्षों के प्रयोग के दौरान कभी ऐसा नहीं हुआ है।

तो डरो मत; तुम बेहोश भी हो जाओ तो ठीक है। उस बेहोशी के बाद तुम इतने ताजा अनुभव करोगे कि तुम्हें लगेगा। कि मैं पहली बार नींद से, गहनत्म नींद से गुजरा हुं। योग में इसका एक विशेष नाम है; उसे योग-तंद्रा कहा जाता हे। यह बहुत गहरी नींद है। इसमे तुम अपने गहनत्म केंद्र पर सरक जाते हो। लेकिन डरो मत।

और अगर तुम्हारा सिर गरम हो जाए तो यह भी शुभ लक्षण है। ऊर्जा को मुक्त होने दो। भाव करो कि तुम्हारा सिर कमल के फूल की भांति खिल रहा है। भाव करो कि ऊर्जा ब्रह्मांड में मुक्त हो रही है। फैलती जा रही है। और जैसे-जैसे ऊर्जा मुक्त होगी, तुम्हें शीतलता का अनुभव होगा। इस उष्णता के बाद जो शीतलता आती है। उसका तुम्हें कोई अनुभव नहीं है। लेकिन विधि को पूरा प्रयोग करो; उसे कभी आधा अधूरा मत छोड़ा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-47

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—71 (ओशो)

प्रकाश-संबंधी दूसरी विधि:

बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।

'या बीच के रिक्त स्थानों में यह बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।
थोड़े से फर्क के साथ यह विधि भी पहली विधि जैसी ही है।

या बीच के रिक्त स्थानों में यह बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।'

एक केंद्र से दूसरे केंद्र तक ताकी हुई प्रकाश-किरणों में बिजली के कौंधने का अनुभव करो—प्रकाश की छलांग का भाव करो। कुछ लोगों के लिए यह दूसरी विधि ज्यादा अनुकूल होगी, और कुछ लोगों के लिए पहली विधि ज्यादा अनुकूल होगी। यही कारण है कि इतना सा संशोधन किया गया है।

ऐसे लोग है जो क्रमश: घटित होने वाली चीजों की धारणा नहीं बना रहते; और कुछ लोग है जो छलाँगों की धारणा नहीं बना सकते। अगर तुम क्रम की सोच सकते हो, चीजों के क्रम से होने की कल्पना कर सकते हो, तो तुम्हारे लिए पहली विधि ठीक है। लेकिन अगर तुम्हें पहली विधि के प्रयोग से पता चले कि प्रकाश-किरणें एक केंद्र से दूसरे केंद्र पर सीधे छलांग लेती है। तो तुम पहली विधि का प्रयोग मत करो। तब तुम्हारे लिए यह दूसरी विधि बेहतर है।
'यह बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।'
भाव करो कि प्रकाश की एक चिनगारी एक केंद्र से दूसरे केंद्र पर छलांग लगा रही है। और दूसरी विधि ज्यादा सच है, क्योंकि प्रकाश सचमुच छलांग लेता है। उसमें कोई क्रमिक, कदम-ब-कदम विकास नहीं होता। प्रकाश छलांग है।

विद्युत के प्रकाश को देखो। तुम सोचते हो कि यह स्थिर है; लेकिन वह भ्रम है। उसमें भी अंतराल है; लेकिन वे अंतराल इतने छोटे है कि तुम्हें उनका पता नहीं चलता है। विद्युत छलाँगों में आती है। एक छलांग, और उसके बाद अंधकार का अंतराल होता है। फिर दूसरी छलांग, और उसके बाद फिर अंधकार का अंतराल होती हे। लेकिन तुम्हें कभी अंतराल का पता नहीं चलता है। क्योंकि छलांग इतनी तीव्र है। अन्यथा प्रत्येक क्षण अंधकार आता है; पहले प्रकाश की छलांग और फिर अंधकार। प्रकाश कभी चलता नहीं, छलांग ही लेता है। और जो लोग छलांग की धारणा कर सकते है। यह दूसरी संशोधित विधि उनके लिए है।

'या बीच के रिक्त स्थानों में यह बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।'

प्रयोग करके देखो। अगर तुम्हें किरणों का क्रमिक ढंग से आना अच्छा लगता है। तो वही ठीक है। और अगर वह अच्छा न लगे। और लगे कि किरणें छलांग ले रही है। तो किरणों की बात भूल जाओ और आकाश में कौंधने वाली विद्युत की, बादलों के बीच छलांग लेती विद्युत की धारणा करो।

स्त्रियों के लिए पहली विधि आसान होगी और पुरूषों के लिए दूसरी । स्त्री–चित क्रमिकता की धारणा ज्यादा आसानी से बना सकता है और पुरूष-चित ज्यादा आसानी से छलांग लेगा सकता है। पुरूष चित उछलकूद पसंद करता है; वह एक से दूसरी चीज पर छलांग लता है। पुरूष-चित में एक सूक्ष्म बेचैनी रहती है। स्त्री-चित में क्रमिकता की एक प्रक्रिया है। स्त्री-चित उछलकूद नहीं पसंद करता है। यही वजह है कि स्त्री और पुरूष के तर्क इतने अलग होते है। पुरूष एक चीज से दूसरी चीज पर छलांग लगाता रहता है। स्त्री को यह बात बड़ी बेबूझ लगती है। उसके लिए विकास क्रमिक विकास जरूरी है।

लेकिन चुनाव तुम्हारा है। प्रयोग करो, और जो विधि तुम्हें रास आए उसे चुन लो।

इस विधि के संबंध में और दो-तीन बातें। बिजली कौंधने के भाव के साथ तुम्हें इतनी उष्णता अनुभव हो सकती है। जो असहनीय मालूम पड़े। अगर ऐसा लगे तो इस विधि को असहनीय है तो इसका प्रयोग मत करो। तब तुम्हारे लिए पहली विधि है। अगर वह तुम्हें रास आए। अगर बेचैनी महसूस हो तो दूसरी विधि का प्रयोग मत करो। कभी-कभी विस्फोट इतना बड़ा हो सकता है। तुम भयभीत हो जा सकते हो। और यदि तुम एक दफा डर गए तो फिर तुम दुबारा प्रयोग न कर सकोगे। तब भय पकड़ लेता है।

तो सदा ध्यान रहे कि किसी चीज से भी भयभीत नहीं होना है। अगर तुम्हें लगे कि भय होगा ओर तुम बरदाश्त न कर पाओगे तो प्रयोग मत करो। तब प्रकाश किरणों वाली पहली विधि सर्वश्रेष्ठ है।

लेकिन यदि पहली विधि के प्रयोग में भी तुम्हें लगे कि अतिशय गर्मी पैदा हो रही है—और ऐसा हो सकता है। क्योंकि लोग भिन्न-भिन्न है—तो भाव करो कि प्रकाश किरणें शीतल है, ठंडी है। तब तुम्हें सब चीजों में उष्णता की जगह ठंडक महसूस होगी। वह भी प्रभावी हो सकता है। तो निर्णय तुम पर निर्भर है; प्रयोग करके निर्णय करो।

स्मरण रहे, चाहे इस विधि के प्रयोग में चाहे अन्य विधियों के प्रयोग में, यदि तुम्हें बहुत बेचैनी अनुभव हो या कुछ असहनीय लगे। तो मत करो। दूसरे उपाय भी है; दूसरी विधियां भी है। हो सकता है, यह विधि तुम्हारे लिए न हो। अनावश्यक उपद्रवों में पड़कर तुम समाधान की बजाय समस्याएं ही ज्यादा पैदा करोगे।

इसीलिए भारत में हमने एक विशेष योग का विकास किया जिसे सहज योग कहते है। सहज का अर्थ है सरल, स्वाभाविक, स्वत: स्फूर्त। सहज को सदा याद रखो। अगर तुम्हें महसूस हो कि कोई विधि सहजता से तुम्हारे अनुकूल पड़ रही है। अगर वह तुम्हें रास आए अगर उसके प्रयोग से तुम ज्यादा स्वस्थ,ज्यादा जीवंत,ज्यादा सुखी अनुभव करो, तो समझो कि वह विधि तुम्हारे लिए है। तब उसके साथ यात्रा करो; तुम उस पर भरोसा कर सकते हो। अनावश्यक समस्याएं मत पैदा करो। आदमी की आंतरिक व्यवस्था बहुत जटिल है। अगर तुम कुछ भी जबरदस्ती करोगे तो तुम बहुत जटिल है। अगर तुम कुछ भी जबरदस्ती करोगे तो तुम बहुत सी चीजें नष्ट कर दे सकते हो। इसलिए अच्छा है कि किसी ऐसी विधि के साथ प्रयोग करो जिसके साथ तुम्हारा अच्छा तालमेल हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-47

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—72 (ओशो)

प्रकाश-संबंधी तीसरी विधि—
''भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।''

''भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।''

अगर तुमने एल. एस. डी. या उसी तरह के मादक द्रव्य का सेवल किया हो, तो तुम्हें पता होगा कि कैसे तुम्हारे चारों और का जगत प्रकाश ओर रंगों के जगत में बदल जाता है। जो कि बहुत पारदर्शी और जीवंत मालूम पड़ता है।

यह एल. एस. डी. के कारण नहीं है। जगत ऐसा ही है। लेकिन तुम्हारी दृष्टि धूमिल और मंद पड़ गई है। एल. एस. डी. तुम्हारे चारों रंगीन जगत नहीं निर्मित करता है, जगत पहले से ही रंगीन है, उसमें कोई भूल नहीं है। यह रंगों के इंद्रधनुष जैसा है; इसीलिए तुम्हें कभी नहीं प्रतीत होता है। कि जगत इतना रंग-भरा है। एल. एस. डी. सिर्फ तुम्हारी आंखों से धुंध को हटा देता है। वह जगत को रंगीन नहीं बनाता। एल. एस. डी. सिर्फ तुम्हारी आंखों धुंध को हटा देता है। वह जगत को रंगीन नहीं बनाता।
एक बिलकुल नया जगत तुम्हारे सामने होता है। एक मामूली कुर्सी भी चमत्कार बन जाती है। फर्श पर पडा जूता नए रंगों से, नई आभा से भर जाता है। सज जाता है; तब यातायात का मामूली शोर गूल भी संगीत पूर्ण हो उठता है। जिन वृक्षों को तुमने बहुत बार देखा होगा और फिर भी नहीं देखा होगा, वे मानों नया जन्म ग्रहण कर लेते है। यद्यपि तुम बहुत बार उनके पास गूजरें हो और तुम्हें ख्याल है कि तुमने उन्हें देखा है। वृक्ष का पत्ता-पत्ता एक चमत्कार बन जाता है।

और यथार्थ ऐसा ही है; एल. एस. डी. एक यथार्थ का निर्माण नहीं करता है। एल. एस डी तुम्हारी जड़ता को, तुम्हारी संवेदनहीनता को मिटा देता है। और तब तुम जगत को ऐसे देखते हो जैसे तुम्हें सच में उसे देखना चाहिए।

लेकिन एल एस डी तुम्हें सिर्फ एक झलक दे सकता है। और अगर तुम एल एस डी पर निर्भर रहने लगे, देर-अबेर वह भी तुम्हारी आंखों से धुंध का हटाने में असमर्थ हो जाएगा। फिर तुम्हें उसका अधिक मात्रा की जरूरत पड़ेगी, और मात्रा बढ़ती जायेगी और उसका असर करम होता जायेगा। फिर तुम्हें यदि एल एस डी या उस तरह की चीजें लेना छोड़ दोगे तो जगत तुम्हारे लिए पहले से भी ज्यादा उदास आरे फीका मालूम पड़ेगा। तब तुम और भी संवेदनहीन हो जाओगे।

अभी कुछ दिन पहले एक लड़की मुझसे मिलने आई । उसने कह कि मुझे संभोग में आर्गाज्म का कोई अनुभव नहीं होता है। उसने अनेक पुरूषों के साथ प्रयोग किया; लेकिन आर्गाज्म का कभी अनुभव नहीं हुआ। वह शिखर कभी आता ही नहीं। और वह लड़की बहुत हताश हो गई।

तो मैंने उस लड़की से कहा कि मुझे अपने प्रेम और काम जीवन के संबंध में विस्तार से बताओ, पूरी कहानी कहो। और तब मुझे पता चला कि वह संभोग के लिए बिजली के एक यंत्र का ,इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर का उपयोग कर रही थी। आजकल पशिचम में इसका बहुत उपयोग हो रहा है। लेकिन तुम अगर एक बार पुरूष जननेंद्रिय के लिए इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर का उपयोग कर लोगे, तो कोई भी पुरूष तुम्हें तृप्त नहीं कर पाएगा। क्योंकि इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर आखिर इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर ही है। तुम्हारी जननेंद्रियां जड़ हो जाएंगी। गुर्दा हो जाएगी। उस हालत मे आर्गाज्म, काम का शिखर अनुभव असंभव हो जाएगा। तुम्हें काम संभोग का शिखर कभी प्राप्त न हो सकेगा। और तब तुम्हें पहलेसे ज्यादा शक्तिशाली इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर की जरूरत पड़ेगी। और यह प्रक्रिया उस अति तक जा सकती है कि तुम्हारा पूरा काम यंत्र पत्थर जैसा हो जाये।

और यही दुर्घटना हमारी प्रत्येक इंद्रिय के साथ घट रही है। अगर तुम कोई बाहरी उपाय; कृत्रिम काम में लाओगे, तो तुम जड़ हो जाओगे। एल एस डी तुम्हें अंततः जड़ बना देगा; क्योंकि उससे तुम्हारे विकास नहीं होता है, तुम ज्यादा संवेदनशील नहीं होते हो।

अगर तुम विकसित होते हो तो यह एक भिन्न प्रक्रिया है। तब तुम ज्यादा संवेदनशील होगे। और जैसे-जैसे तुम ज्यादा संवेदनशील होते हो, वैसे-वैसे जगत दूसरा होता जाता है। अब तुम्हारी इंद्रियाँ ऐसी अनेक चीजें अनुभव कर सकती है जिन्हें उन्होंने अतीत में कभी नहीं अनुभव किया था। क्योंकि तुम उनके प्रति खुले नहीं थे। संवेदनशील नहीं थे।

यह विधि आंतरिक संवेदनशीलता पर आधारित है। पहले संवेदनशीलता को बढ़ाओं। अपने द्वार-दरवाजे बंद कर लो। कमरे में अँधेरा कर लो, और फिर एक छोटी सी मोमबत्ती जलाओ। और उस मोमबत्ती के पास प्रेमपूर्ण मुद्रा में बल्कि प्रार्थना पूर्ण भाव दशा में बैठो और ज्योति से प्रार्थना करो: ''अपने रहस्य को मुझ पर प्रकट करो।'' स्नान कर लो, अपनी आंखों पर ठंडा पानी छिड़क लो और फिर ज्योति के सामने अत्यंत प्रार्थना पूर्ण भाव दशा में होकर बैठो। ज्योति को देखो ओर शेष सब चीजें भूल जाओ। सिर्फ ज्योति को देखो। ज्योति को देखते रहो।

पाँच मिनट बाद तुम्हें अनुभव होगा कि ज्योति में बहुत चीजें बदल रही है। लेकिन स्मरण रहे, यह बदलाहट ज्योति में नहीं हो रही है; दरअसल तुम्हारी दृष्टि बदल रही है।

प्रेमपूर्ण भाव दशा में सारे जगत को भूलकर, समग्र एकाग्रता के साथ, भावपूर्ण ह्रदय के साथ ज्योति को देखते रहो, तुम्हें ज्योति के चारों और नए रंग, नई छटाएं दिखाई देंगी। जो पहले कभी नही दिखाई दी थी। वे रंग, वे छटाएं सब वहां मौजूद है; पूरा इंद्रधनुष वहां उपस्थिति है। जहां-जहां भी प्रकाश है, वहां-वहां इंद्रधनुष है। क्योंकि प्रकाश बहुरंगी है उसमें सब रंग है। लेकिन उन्हें देखने के लिए सूक्ष्म संवेदना की जरूरत है। उसे अनुभव करो और देखते रहो। यदि आंसू भी बहने लगें तो भी देखते रहो। वे आंसू तुम्हारी आंखों को निखार देंगे, ज्यादा ताजा बना जायेंगे।

कभी-कभी तुम्हें प्रतीत होगा कि मोमबत्ती या ज्योति बहुत रहस्यपूर्ण हो गई है। तुम्हें लगेगा कि यह वही साधारण मोमबत्ती नहीं है जो मैं आपने साथ लाया था। उसने एक नई आभा एक सूक्ष्म दिव्यता, एक भगवत्ता प्राप्त कर ली है। इस प्रयोग को जारी रखो। कई अन्य चीजों के साथ भी तुम इसे कर सकते हो।

मेरे एक मित्र मुझे कह रहे थे कि वे पाँच-छह मित्र पत्थरों के साथ एक प्रयोग कर रहे थे। मैंने उन्हें कहा था कि कैसे प्रयोग करना, और लोट कर मुझे पूरी बात कह रह थे। वे एकांत में एक नदी के किनारे पत्थरों के साथ प्रयोग कर रहे थे। वे उन्हें फील करने की कोशिश कर रह थे—हाथों से छूकर, चेहरे से लगा कर। जीभ से चक्कर, नाक से सूंघकर—वे उन पत्थरों का हर तरह सक फील करने कि कोशिश कर रहे थे। साधारण से पत्थर, जो उन्हें नदी किनारे मिल गये थे।

उन्होंने एक घंटे तक यह प्रयोग किया—हर व्यक्ति ने एक पत्थर के साथ। और मेरे मित्र मुझे कह रहे थे एक बहुत अद्भुत घटना घटी। हर किसी ने कहा: ''क्या यह पत्थर मैं अपने पास रख सकता हूं।'' मैं इसके प्रेम में पड़ गया हूं।

एक साधारण सा पत्थर, अगर तुम सहानुभूतिपूर्ण ढंग से उससे संबंध बनाते हो तो तुम प्रेम में पड़ जाओगे। और अगर तुम्हारे पास इतनी संवेदनशीलता नहीं है। तो सुंदर से सुंदर व्यक्ति के पास होकर भी तुम पत्थर के पास ही हो; तुम प्रेम में नहीं पड़ सकते हो।

तो संवेदनशीलता को बढ़ाना है। तुम्हारी प्रत्येक इंद्रिय को ज्यादा जीवंत होना है। तो ही तुम इस विधि का प्रयोग कर सकते हो।

''भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।''

सर्वत्र प्रकाश है; अनेक-अनेक रूपों और रंगों में प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है। उसे देखो। सर्वत्र प्रकाश है। क्योंकि सारी सृष्टि प्रकाश की आधारशिला पर खड़ी है। एक पत्ते को देखा एक फूल को देखो या एक पत्थर को देखा। आरे देर-अबेर तुम्हें अनुभव होगा कि उससे प्रकाश की किरणें निकल रही है। बस धैर्य से प्रतीक्षा करो। ज्यादा जल्द मत करो। क्योंकि जल्दी बाजी में कुछ भी प्रकट नहीं होता। तुम जब जल्दी में होते हो तो तुम जड़ हो जाते हो। किसी भी चीज के साथ धीरज से प्रतीक्षा करो। और तुम्हें एक अद्भुत तथ्य से साक्षात्कार होगा। जो सदा से मौजूद था, लेकिन जिसके प्रति तुम सजग नहीं थे। सावचेत नहीं थे।

''भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।''

और जैसे ही तुम्हें इस शाश्वत अस्तित्व की उपस्थिति अनुभव होगी वैसे ही तुम्हारा चित बिलकुल मौन और शांत हो जाएगा। तुम तब उसके एक अंश भर होगे। किसी अद्भुत संगीत में एक स्वर भर। फिर कोई चिंता नहीं है। फिर कोई तनाव नहीं है। बूंद समुद्र में गिर गई, खो गई।

लेकिन आरंभ में एक बड़ी कल्पना की जरूरत होगी। और अगर तुम संवेदनशीलता बढ़ाने के अनय प्रयोग करते हो, तो वह सहयोगी होगा। तुम कई तरह के प्रयोग कर सकते हो। किसी का हाथ अपने हाथ में ले लो। आंखें बंद कर लो। और दूसरे के भीतर के जीवन को महसूस करो; उसे महसूस करो उसे अपनी और बहने दो; गति करने दो। फिर अपने जीवन को महसूस करो, और उसे दूसरे की और प्रवाहित होने दो। किसी वृक्ष के निकट बैठ जाओ और उसकी छाल को छुओ,स्पर्श करो। अपनी आंखें बंद कर लो। और वृक्ष में उठते-जीवन तत्व को अनुभव करो। और स्पर्श करो। तुम्हें तुरंत बदलाहट अनुभव करोगे।

मैंने एक प्रयोग के बारे में सुना है। एक डाक्टर कुछ लोगों पर प्रयोग कर रहा था कि क्या भाव दशा से शरीर में रासायनिक परिवर्तन होते है। अब उसके निष्कर्ष निकाला है कि भाव दशा से शरीर में तत्काल रासायनिक परिवर्तन होते है।

उसने बारह लोगों के समूह पर यह प्रयोग किया। उसने प्रयोग के आरंभ में उन सबकी पेशाब की जांच की। और सबकी पेशाब साधारण,सामान्य पाई गई। फिर हर व्यक्ति को एक भाव दशा के प्रयोग में रखा गया। एक को क्रोध, हिंसा, हत्या, मार-पीट से भरी फिल्म दिखाई गई। तीस मिनट तक उसे भयावह फिल्म दिखाई गई। वह मात्र फिल्म थी। लेकिन वह व्यक्ति उस भाव दिशा में रहा। दूसरे को एक हंसी खुशी की, प्रसन्नता की फिल्म दिखाई गई। वह आनंदित रहा। और उसी तरह से बाहर लोगों पर प्रयोग किया।

फिर प्रयोग के बाद उनकी पेशाब की जांच की गई; और अब सबकी पेशाब अलग थी। शरीर में रसायनिक परिवर्तन हुए थे। जो हिंसा और भय की भाव दशा में रहा वह अब बुझा-बुझा, बीमार था। और हंसी-खुशी की प्रसन्नता की फिल्म दिखाई गई। वह प्रफुल्ल था। उसकी पेशाब अलग थी। उसके शरीर की रासायनिक व्यवस्था अलग थी।

तुम्हें बोध नहीं है। तुम अपने साथ कर रहे हो। जब तुम कोई खून ख़राबे की फिल्म देखने जाते हो तो तुम नहीं जानते हो कि तुम क्या कर रहे हो। तुम अपने शरीर की रसायनिक व्यवस्था बदल रहे हो। जब तुम कोई जासूसी उपन्यास पढ़ते हो। तुम अपनी हत्या स्वयं कर रहे हो। तुम उत्तेजित हो जाओगे; तुम भयभीत हो जाओगे। तुम तनाव से भर जाओगे। जासूसी उपन्यास का यही तो मजा है। तुम जितने उत्तेजित होते हो, तुम उसका उतना ही सूख लेते हो। आगे क्या घटित होने वाला है, इस बात को लेकर जितना सस्पेंस होगा; तुम उतने ही अधिक उत्तेजित होगे। और इस भांति तुम्हारे शरीर का रसायन बदल रहा है।

ये सारी विधियां भी तुम्हारे शरीर का रसायन बदलती है। अगर तुम सारे जगत को जीवन और प्रकाश से भरा अनुभव करते हो, तो तुम्हारे शरीर का रसायन बदलता है। और यह एक चेन रिएक्शन है, इस बदलाहट की एक शृंखला बन जाती है। जब तुम्हारे शरीर का रसायन बदलता है और तुम जगत को देखते हो। तो वही जगत ज्यादा जीवंत दिखाई पड़ता है। और जब वह ज्यादा जीवंत दिखाई पड़ता है तो तुम्हारे शरीर का रासायनिक व्यवस्था और भी बदलती है। ऐसे एक शृंखला निर्मित हो जाती है।

यदि यह विधि तीन महीने तक प्रयोग की जाए, तो तुम भिन्न ही जगत में रहने लगोगे। क्योंकि अब तुम ही भिन्न व्यक्ति हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-47

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 73

ग्रीष्म ऋतु में जब तुम समस्त आकाश को अंतहीन निर्मलता में देखो, उस निर्मलता में प्रवेश करो।"

मन विभ्रम है; मन उलझन है। उसमें स्पष्टता नहीं है। निर्मलता नहीं है। और मन सदा बादलों से घिरा रहता है। वह कभी निरभ्र, शुन्य आकाश नहीं होता। मन निर्मल हो ही नहीं सकता। तुम अपने मन को शांत-निर्मल नहीं बना सकते हो। ऐसा होना मन के स्वभाव में ही नहीं है। मन अस्पष्ट रहेगा, धुंधला-धुंधला ही रहेगा। अगर तुम मन को पीछे छोड़ सके, अगर तुम मन का अतिक्रमण कर सके, उसके पार जा सके, तो एक स्पष्टता तुम्हें उपलब्ध होगी। तुम द्वंद्व रहित हो सकते हो। मन नहीं। द्वंद्व रहित मन जैसी कोई चीज होती ही नहीं। न कभी अतीत में थे और न कभी भविष्य में होगी। मन का अर्थ ही द्वंद्व है उलझाव है।

मन की संरचना को समझने की कोशिश करो और तब यह विधि तुम्हें स्पष्ट हो जाएगी। मन क्या है? मन विचारों की एक प्रक्रिया है, विचारों का एक सतत प्रवाह है—चाहे वे विचार संगत हों या असंगत हो। चाहे वे प्रासंगिक हो या अप्रासंगिक हो। मन सब जगहों से संग्रहित किए गए बहुआयामी प्रभावों का एक लंबा जलूस है। तुम्हारा सारा जीवन एक संग्रह है—धूल का संग्रह। और यह सिलसिला अनवरत चलता रहता है।

एक बच्चा जन्म लेता है। बच्चे की दृष्टि निर्मल है; क्योंकि उसके पास मन नहीं है। लेकिन जैसे ही मन प्रवेश करता है, उसके साथ ही द्वंद्व और उलझन भी प्रवेश कर जाती है। बच्चा निर्मल है। निर्मलता ही है। लेकिन उसे ज्ञान, सूचना, संस्कृति, धर्म और संस्कारों का संग्रह करना ही पड़ेगा। वे जरूरी है। उपयोगी है, उसे अनेक जगहों से, अनेक स्रोतों से इकट्ठा करेगा। और तब उसका मन एक बाजार बन जाएगा—एक मेला, एक भिड़। और क्योंकि उसके स्त्रोत अनेक है, उलझन और भ्रांति और विभ्रम का होना है। और तुम कितना भी इकट्ठा करो, कुछ भी निश्चित नहीं हो पाता है। क्योंकि ज्ञान सदा बदलता रहता है। और बढ़ता रहता है।

मुझे स्मरण आता है कि किसी ने मुझे एक चुटकला सुनाया था। वह एक बड़ा शोधकर्ता था और यह चुटकला उसके एक प्रोफेसर के बाबत था जिन्होंने उसे मेडिकल कालेज में पाँच वर्षों तक पढ़ाया था। वह प्रोफेसर अपने विषय का भारी विद्वान था। और उसने जो अंतिम काम किया वह यह था कि उसने अपने सारे विद्यार्थियों को जमा किया और कहा: 'मुझे तुम्हें एक और चीज सिखानी है। मैंने तुम्हें जो कुछ पढ़ाया है उकसा पचास प्रतिशत ही सही है। और शेष पचास प्रतिशत बिलकुल गलत है। लेकिन कठिनाई यह कि मैं नहीं जानता कि कौन सा पचास प्रतिशत सही है और कौन सा पचास प्रतिशत गलत है।'

ज्ञान की सारी इमारत ऐसे ही खड़ी है। कुछ भी निश्चित नही है। कोई नहीं जानता है; हर कोई अंधेरे में टटोल रहा है। ऐसे ही टटोल-टटोल कर हम शास्त्र निर्मित करते है; विचार पद्धतियां बनाते है। और ऐसे ही हजारों-हजारों शास्त्र बन गए है। हिंदू कुछ कहते है; ईसाई कुछ और कहते है। मुसलमान कुछ और कहते है। और सब एक दूसरे का खंडन करते है। उनमें कोई सहमति नहीं है। और कोई भी निश्चित नहीं है। असंदिग्ध नहीं है। और ये सारे स्त्रोत ही तुम्हारे मन के स्त्रोत है। तुम इनसे ही अपना संग्रह निर्मित करते हो। तुम्हारा मन एक कबाड़ खाना बन जाता है। विभ्रम अनिवार्य है; उलझन अनिवार्य है।

केवल वही आदमी निश्चित हो सकता है। जो बहुत जानता है। तुम जितना अधिक जानोंगे, उतने ही भ्रमित होगे। उलझन ग्रस्त होगे। आदिवासी लोग ज्यादा निश्चिंत थे और उनकी आंखें ज्यादा निर्मल मालूम पड़ती है। यह दृष्टि की निर्मलता नहीं थे। यह सिर्फ परस्पर विरोधी तथ्यों के प्रति उनका अज्ञान था। अगर आधुनिक चित ज्यादा भ्रमित है तो उसका कारण है कि आधुनिक चित बहुत ज्यादा जानता है। अगर तुम ज्यादा जानोंगे तो तुम ज्यादा भ्रमित होगे। क्योंकि अब तुम बहुत कुछ जानते हो। और तुम जितना ज्यादा जानोंगे उतने ही ज्यादा अनिश्चित होगे। केवल मूढ़ ही असंदिग्ध होंगे। केवल मूढ़ ही मतांध होंगे; केवल मूढ़ ही कभी झिझक में नहीं पड़ते। तुम जितना ही जानोंगे उतनी ही तुम्हारे पांव के नीचे से जमीन खिसक जाएगी। तुम उतनी ही अधिक उधेड़बुन में पड़ोगे।

मैं यह कहना चाहता हूं कि मन जितना ही बड़ा होगा तुम उतना ही जानोंगे कि भ्रांति मन का स्वभाव है। और जब मैं कहता हूं कि केवल मूढ़ ही निश्चित हो सकते है। तो उसका अर्थ यह नहीं है कि बुद्ध मूढ़ है। क्योंकि वे संदिग्ध नहीं है। इस भेद को स्मरण रखो; बुद्ध ने निश्चित है न अनिश्चित; बुद्ध की दृष्टि स्पष्ट है। मनके साथ अनिश्चय है; मूढ़ मन के साथ निश्चित है; और अ-मन के साथ निश्चय-अनिश्चिय दोनों विदा हो जाते है। बुद्ध परम होश है, शुद्ध बोध है—खुले आकाश जैसे है। वे निश्चित नहीं है; निश्चित होने को क्या है? वे अनिश्चित भी नहीं है; अनिश्चित होने का क्या है? केवल वही अनिश्चित हो सकता है जो निश्चित की खोज में है। मन सदा अनिश्चित रहता है। और निश्चय की खोज करता है। मन सदा कन्फ्यूज रहता है और क्लैरिटी की तलाश करता है। बुद्ध ने मन को ही गिरा दिया है। और मन के साथ सारे विभ्रम को, सारे निश्चय-अनिश्चय को,सब कुछ को गिरा दिया है।

इसे इस तरह देखा। तुम्हारी चेतना आकाश जैसी है और तुम्हारा मन बदलों जैसा है। आकाश बादलों से अछूता रहता है। बादल आते है जाते है, लेकिन आकाश पर उनका कोई चिन्ह नहीं छूटता है। बादलों की कोई स्मृति कुछ भी नहीं पीछे रहता है। बादला आते-जाते है, आकाश अनुद्विग्न शांत रहता है।

तुम्हारे साथ भी यहीं बात है, तुम्हारी चेतना अनुद्विग्न, अक्षुब्ध शांत रहती है। विचार आते है और जाते है, मन उठते है और खो जाते है। ऐसा मत सोचो कि तुम्हारे पास एक ही मन है, तुम्हारे पास अनेक मन है। मनों की एक भीड़ है। और तुम्हारे मन बदलते रहते है।

तुम कम्युनिस्ट हो; तो तुम्हारे पास एक तरह का मन होगा। फिर तुम कम्यूनिज् छोड़कर कम्यूनिज़म विरोधी बन सकते हो। तब तुम्हारे पास भिन्न मन होगा। भिन्न ही नहीं होगा, सर्वथा विपरीत मन होगा। तुम वस्त्रों की भांति अपने मन बदलते रह सकते हो। और तुम बदलते रहते हो; तुम्हें इसका पता हो या न हो। ये बादल आते है जाते है।

निर्मलता तो तब प्राप्त होती है जब तुम अपनी दृष्टि को बादलों से हटाते हो। जब तुम आकाश के प्रति बोधपूर्ण होते हो। अगर तुम्हारी दृष्टि आकाश पर नहीं है तो उसका अर्थ है कि वह बादलों पर लगी है। उसे बादलों से हटाकर आकाश पर केंद्रित करो।

यह विधि कहती है: 'ग्रीष्म ऋतु में जब तुम समस्त आकाश को अंतहीन निर्मलता में देखो, उस निर्मलता में प्रवेश करो।'

आकाश पर ध्यान करो। ग्रीष्म ऋतु का निरभ्र आकाश, दूर-दूर तक रिक्त और निर्मल, निपट खाली अस्पर्शित और

कुंवारा। उस पन मनन करो। ध्यान करो। उस निर्मलता में प्रवेश करो। वह निर्मलता ही हो जाओ–आकाश जैसी निर्मलता।

अगर तुम निर्मल, निरभ्र आकाश पर ध्यान करोगे तो तुम अचानक महसूस करोगे कि तुम्हारा मन विलीन हो रहा है। विदा हो रहा है। ऐसे अंतराल होंगे। जिनमें अचानक तुम्हें बोध होगा कि निर्मल आकाश तुम्हारे भीतर प्रवेश कर गया है। ऐसे अंतराल होंगे। जिनमें कुछ देर के लिए विचार खो जायेंगे। मानों चलती सड़क अचानक सूनी हो गई है। और वहां कोई नहीं चल रहा है।

आरंभ में यह अनुभव कुछ क्षणों के लिए होगा; लेकिन वे क्षण भी बहुत रूपांतरण कारी होगे। फिर धीरे-धीरे मन की गति धीमी होने लगेगी और अंतराल बड़े होने लगेंगे। अनेक क्षणों तक कोई विचार, कोई बादल नहीं होगा। और जब कोई विचार, कोई बादल नहीं होगा तो बाहरी आकाश और भीतरी आकाश एक हो जाएंगे। क्योंकि विचार ही बाधा है, विचार ही दीवार निर्मित करते है; विचारों के कारण ही बाहर भीतर का भेद खड़ा होता है जब विचार नहीं होते तो बाहरी और भीतरी दोनों अपनी सीमाएं खो देते है। और एक हो जाते है। वास्तव में सीमाएं वहां कभी नहीं थी। सिर्फ विचार के कारण, विचार के अवरोध के कारण सीमाएं मालूम पड़ती थी।

आकाश पर ध्यान करना बहुत सुंदर है। बस लेट जाओ, ताकि पृथ्वी को भूल सको। किसी एकांत सागर तट पर, या कहीं भी जमीन पर पीठ के बल लेट जाओ और आकाश को देखो। लेकिन इसके लिए निर्मल आकाश सहयोगी होगा–निर्मल और निरभ्र आकाश। और आकाश को देखते हुए,उसे अपलक देखते हुए उसकी निर्मलता को, उसके निरभ्र फैलाव को अनुभव करो। और फिर उस निर्मलता में प्रवेश करो, उसके साथ एक हो जाओ। अनुभव करो कि जैसे तुम आकाश ही हो गए हो।

आरंभ में अगर तुम सिर्फ कुछ और नहीं करो खुले आकाश पर ही ध्यान करो। तो अंतराल आने शुरू हो जाएंगे। क्योंकि तुम जो कुछ देखते हो वह तुम्हारे भीतर प्रवेश कर जाता है। तुम जो कुछ देखते हो वह तुम्हें भीतर से उद्वेलित कर देता है। तुम जो कुछ देखते हो वह तुममें बिंबित-प्रतिबिंबित हो जाता है।

तुम एक मकान देखते हो। तुम उसे मात्र देखते ही तुम्हारे भीतर कुछ होने भी लगता है। तुम एक पुरूष को या एक स्त्री को देखते हो, एक कार को देखते हो, या कुछ भी देखते हो। वह अब बहार हीन ही; तुम्हारे भीतर भी कुछ होने लगता है। कोई प्रतिबिंब बनने लगता है। और तुम प्रतिक्रिया करने लगते हो तुम जो कुछ देखते हो वह तुम्हें ढालता है, गढ़ता है; वह तुम्हें बदलता है। निर्मित करता है। बाह्म सतत भीतर से जूड़ा है।

तो खुले आकाश को देखना बढ़िया है। उसका असीम विस्तार बहुत सुंदर है। उस असीम के संपर्क में तुम्हारी सीमाएं भी विलीन होने लगती है; क्योंकि वह असीम आकाश तुम्हारे भी प्रतिबिंबित होने लगता है।

और तुम अगर आंखों को झपके बिना अपलक ताक सको तो बहुत अच्छा है। अपलक ताकना बहुत अच्छा है। क्योंकि अगर तुम पलक झपकते हो विचार प्रक्रिया चालू रहेगी। तो बिना पलक झपकाए अपलक देखो। शून्य में देखो; उस शून्य में डूब जाओ। भाव करो कि तुम उससे एक हो गए हो। और फिर आकाश तुममें उतर आएगा। पहले तुम आकाश में प्रवेश करते हो फिर आकाश तुम में प्रवेश करता है। तब मिलन घटित होता है। आंतरिक आकाश बाह्म आकाश से मिलता है। और उस मिलन में उपलब्धि है। उस मिलन में मन नहीं होता। क्योंकि वह मिलन ही तब होता है जब मन नहीं होता। उस मिलन में तुम पहली दफा मन नहीं होते हो। और इसके साथ सारी

भ्रांति विदा हो जाती है। मन के बिना भ्रांति नहीं हो सकती है। सारा दू:ख समाप्ति हो जाता है। क्योंकि दू:ख भी मन के बिना नहीं हो सकता है।

तुमने क्या कभी इस बात पर ध्यान दिया है। दुःख मन के बिना नहीं हो सकता हे। तुम मन के बिना दुःखी नहीं हो सकते हो। उसका स्त्रोत ही नहीं रहा। कौन तुम्हें दुःख देगा। कौन तुम्हें दुःखी बनाएगा? और उलटी बात भी सही है। तुम मन के बिना दुःखी नहीं हो सकते हो। तुम मन के रहते आनंदित नहीं रह सकते हो। मन कभी आनंद का स्त्रोत नहीं हो सकता है।

यदि भीतर और बाहरी आकाश क्षण भर के लिए भी मिलते है और मन विलीन हो जाता है। तो तुम एक नए जीवन से भर जाओगे। उस जीवन की गुणवता ही और है। यहीं शाश्वत जीवन है—मृत्यु से अस्पर्शित शाश्वत जीवन।

उस मिलन में तुम यहां और अभी होगे। वर्तमान में होगे। क्योंकि अतीत विचार का हिस्सा है और भविष्य भी विचार का हिस्सा हे। अतीत और भविष्य मन के हिस्से है; वर्तमान अस्तित्व है; वह तुम्हारे मन का हिस्सा नहीं है। जो क्षण बीत गया वह मन का है, जो क्षण आने वाला है वह मन का है। लेकिन वर्तमान क्षण कभी तुम्हारे मन का हिस्सा नहीं हो सकते है। बल्कि तुम ही इस क्षण के हिस्से हो। तुम यहीं हो, ठीक अभी और यहीं हो। लेकिन तुम्हारा मन कहीं और होता है। सदा कहीं और होता है।

तो अपने को भार-मुक्त करो। मैं एक सूफी संत की कहानी पढ़ रहा था। वह एक सुनसान रास्ते से यात्रा कर रहा था। रास्ता निर्जन हो चला था, तभी उसे एक किसान अपनी बैलगाड़ी के पास दिखाई पडा। बैलगाड़ी कीचड़ में फंस गई थी। रास्ता उबड़-खाबड़ था। किसान अपनी गाड़ी में सेब भर कर ला रहा था; लेकिन रास्ते में कहीं गाड़ी का पिछला तख्ता खुल गया था और सेब गिरते गए थे। लेकिन उसे इसकी खबर नहीं थी। किसान को इसका पता नहीं था। जब गाड़ी कीचड़ मे फंसी तो पहले तो उसने उसे निकालने की भरसक चेष्टा कि, लेकिन उसके सब प्रयत्न व्यर्थ गए। तब उसने सोचा कि मैं गाड़ी को खाली कर लूं तो निकालना आसान हो जाएगा।

उसने जब लौटकर देखा तो मुश्किल से दर्जन भर सेब बचे थे। सब बोझ पहले ही उतर चूका था। तुम उसकी पीड़ा समझ सकते हो। उस सूफी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि थके-हारे किसान ने एक आह भरी: 'नरक में गाड़ी फंसी और उतारने को कुछ भी नहीं है।'यही एक आशा बची थी कि गाड़ी खाली हो तो कीचड़ से निकल आएगी। पर अब खाली करने को भी कुछ नहीं है।

सौभाग्य से तुम इस तरह नहीं फंसे हो। तुम खाली कर सकते हो। तुम्हारी गाड़ी बहुत बोझिल है। तुम मन को खाली कर सकते हो। और जैसे ही मन गया कि तुम उड़ सकते हो। तुम्हें पंख लग जाते है।

यह विधि—आकाश की निर्मलता में झांकने और उसके साथ एक होने की विधि—उन विधियों में सक एक है जिनका बहुत उपयोग किया गया है। अनेक परंपराओं ने इसका उपयोग किया है। और खास कर आधुनिक चित के लिए यह विधि बहुत उपयोगी है। क्योंकि पृथ्वी पर कुछ भी नहीं बचा है जिस पर ध्यान किया जा सके। सिर्फ आकाश बचा है। तुम यदि अपने चारों ओर देखोगें तो पाओगे कि प्रत्येक चीज मनुष्य निर्मित है। प्रत्येक चीज सीमित हो गई है; प्रत्येक चीज सीमा में सिकुड गई है। सौभाग्य से आकाश अब भी बचा है। जो ध्यान करने के लिए उपलब्ध है। तो इस विधि करो; यह उपयोगी होगी। लेकिन तीन बातें याद रखने जैसी है। पहली बात की पलकें मत झपकना, अपलक देखो। अगर तुम्हारी आंखें दुखन लगे और आंसू बहने लगें तो भी चिंता मत करना। वे आंसू भी तुम्हारे

निर्भार करने में सहयोगी होंगे। वे आंसू तुम्हारी आंखों को ज्यादा निर्दोष और ताजा बना जाएंगे। वे उन्हें नहला देंगे। तुम अपलक देखते जाओ।

दूसरी बात आकाश के बारे में सोच-विचार मत करो। इस बात को ख्याल में रख लो। तुम आकाश के संबंध में सोच विचार करने लग सकते हो। तुम्हें आकाश के संबंध में अनेक कविताएं, सुंदर-सुंदर कविताएं याद आ सकती है। लेकिन तब तुम चूक जाओगे। तुम्हें आकाश के बारे में सोच-विचार नहीं करना है। तुम्हें तो उसमें डूबना है। तुम्हें उसके साथ एक होना है। अगर तुम उसके संबंध में सोच-विचार करने लगे तो फिर अवरोध निर्मित हो जाएगा। तब तुम आकाश को चूक जाओगे। और अपने ही मन में बंद हो जाओगे।

आकाश के संबंध में सोच-विचार मर करो; आकाश की हो जाओ। बस उसमें झांको और उसमें प्रवेश करो और उसे भी अपने में प्रवेश करने दो। अगर तुम आकाश में डूबोगे तो आकाश भी तुममें डूबने लगेगा।

यह आकाश में प्रवेश कैसे होगा? यह कैसे संभव होगा कि तुम आकाश में गति करो? आकाश में गहरे और गहरे अपलक देखते जाओ। मानो तुम उसकी सीमा खोजने की कोशिश कर रहे हो। उसकी गहराई में झाँकते जाओ। जहां तक संभव हो। यह गहराई ही अवरोध को तोड़ देगी। और इस विधि का अभ्यास कम से कम चालीस मिनट तक करना चाहिए। उससे कम में काम नहीं चलेगा। उससे कम समय करना बहुत उपयोगी नहीं होगा।

जब तुम्हें वास्तव में लगे कि तुम आकाश के साथ एक हो गए हो तो तुम आंखें बंद कर सकते हो। जब आकाश तुममें प्रवेश कर जाए तो तुम आंखें बद कर सकते हो। तब तुम उसे अपने भीतर देखने में भी सामर्थ्य हो सकते हो। तब बहार देखना जरूरी नहीं है। तो चालीस मिनट के बाद जब तुम्हें लगे कि एकता सध गई। संवाद सध गया, तुम उसके हिस्से हो गये। और अब मन नहीं है, तो तुम आंखें बंद कर सकते हो और भीतर आकाश को अनुभव कर सकते हो।

आकाश निर्मल है, शुद्ध है, अस्तित्व की शुद्धतम चीज है। कुछ भी उसे अशुद्ध नहीं करता। संसार आते है, और चले जाते है। पृथ्वीयां बनती है,और खो जाती है। लेकिन आकाश निर्मल का निर्मल बना रहता है। तो शुद्धता है; तुम्हें उसे प्रक्षेपित नहीं करना है। तुम्हें सिर्फ उसे अनुभव करना है,उसके प्रति संवेदनशील होना है। ताकि उसका अनुभव हो सके। निर्मलता तो मौजूद ही है। तुम आकाश को राह दो। तुम उसे जबरदस्ती नहीं ला सकते हो। तुम्हें उसे सिर्फ प्रेमपूर्वक राह देनी हे।

सभी ध्यान सिर्फ प्रेम पूर्वक राह देने की बात है। कभी आक्रमण की भाषा में मत सोचो; कभी जबरदस्ती मत करो। तुम जबरदस्ती कुछ भी नहीं कर सकते हो। सच तो यह है कि तुम्हारी जबरदस्ती करने की चेष्टा से ही तुम्हारे सभी दुःख निर्मित हुए है। जबरदस्ती कुछ भी नहीं हो सकता है। लेकिन तुम चीजों को घटित होने दे सकते हो। स्त्रैण बनो; चीजों को घटित होने दो। निष्क्रिय बनो। आकाश पूर्णत: निष्क्रिय है, कुछ भी तो नहीं करता है। बस है। तुम भी निष्क्रिय होकर आकाश को देखते रहो। खुल ग्रहण शील, स्त्रैण अपनी और से किसी तरह की भी जल्दबाजी किए बिना। और तब आकाश तुममें उतरेगा।

'ग्रीष्म ऋतु में जब तुम समस्त आकाश को अंतहीन निर्मलता में देखो, उस निर्मलता में प्रवेश करो।'
लेकिन अगर ग्रीष्म ऋतु न हो तो तुम क्या करोगे? अगर आकाश में बादल हों,आकाश साफ न हो। तो अपनी आंखे बंद कर लो और आंतरिक आकाश को देखो। आंखे बंद कर लो अगर कुछ विचार दिखाई पड़े तो उन्हें वैसे ही देखा

जैसे कि आकाश में तैरते बादल हो। पृष्ठभूमि के प्रति, आकाश के प्रति सजग हो जाओ। और बादलों के प्रति उदासीन रहो।

हम विचारों से इतने जुड़ रहते है कि बीच के अंतरालों के प्रति कभी ध्यान नहीं दे पाते है। एक विचार गुजरता है और इसके पहले कि दूसरा विचार प्रवेश करे, वहां एक अंतराल होता है। उस अंतराल में ही आकाश की झलक है। जब विचार नहीं होता है तो क्या होता है? एक शून्यता होती है। एक खालीपन होता है। अगर आकाश बादलों से आच्छादित है–ग्रीष्मऋतु नहीं है और आकाश साफ नहीं है–तो अपनी आंखें बंद कर लो और पृष्ठभूमि पर मन को एकाग्र करो; उस आंतरिक आकाश पर ध्यान करो जिस पर विचार आते-जाते है। विचारों पर बहुत ध्यान मत दो; उस आकाश पर ध्यान दो जि पर विचार की भाग-दौड़ होती है।

उदाहरण के लिए हम लोग एक कमरे में बैठे है। मैं इस कमरे को दो ढंगों से देख कसता हूं। एक कि मैं तुम्हें देखू और उस स्थान के प्रति उदासीन रहूँ जिसमें तुम बैठे हो। उस कमरे के प्रति तटस्थ रहूँ जिसमें तुम बैठे हो। मैं तुम्हें देखता हूं, मेरा ध्यान तुम पर है। उस खाली स्थान पर नहीं जिसमें तुम बैठे हो। अथवा मैं अपने दृष्टि कोण बदल लेता हूं और कमरे को, उसके खाली स्थान को देखता हूं और तुम्हारे प्रति उदासीन हो जाता हूं। तुम यही हो, लेकिन मेरा ध्यान, मेरा फोकस कमरे पर चला गया है। तब सारा परिप्रेक्ष्य बदल जाता है।

यही आंतरिक जगत में करो; आकाश पर ध्यान दो। विचार वहां चल रहे है, उसके प्रति उदासीन हो जाओ। उन पर कोई ध्यान मत दो वह है, चल रहे है, देख लो कि ठीक है, विचार चल रहे है। सड़क पर लोग चल रहे है; देख लो और उदासीन रहो। यह मत देखो कि कौन जा रहा है। इतना भर जानों कि कुछ गुजर रहा है। और उस स्थान के प्रति सजग होओ जिसमें गति हो रही है। तब ग्रीष्म ऋतु का आकाश भीतर घटित होगा।

ग्रीष्म ऋतु की प्रतीक्षा की जरूरत नहीं है। अन्यथा हमारा मन ऐसा है कि वह कोई भी बहाना पकड़ ले सकता है। वह कहेगा कि अभी ग्रीष्म ऋतु नहीं है। और यदि ग्रीष्म ऋतु भी हो तो वह कहेगा की आकाश निर्मल नहीं है।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 74

'हे शक्ति, समस्त तेजोमय अंतरिक्ष मेरे सिर में ही समाहित है, ऐसा भाव करो।'

अपनी आंखे बंद कर लो। जब इस प्रयोग को करो तो आंखें बंद कर लो और भाव करो कि सारा अंतरिक्ष मेरे सिर में ही समाहित है।

आरंभ में यह कठिन होगा। यह विधि उच्चतर विधियों में से एक है। इसलिए इसे एक-एक कदम समझना अच्छा होगा। तो एक काम करो। यदि इस विधि को प्रयोग में लाना चाहते हो तो एक-एक कदम चलो,क्रम से चलो।

पहला चरण: सोते समय, जब तुम सोने जाओ तो विस्तर पर लेट जाओ। और आंखे बंद कर लो और महसूस करो कि तुम्हारे पाँव कहां है, अगर तुम छह फिट लंबे हो या पाँच फीट हो, बस यह महसूस करो कि तुम्हारे पाँव कहां है, उनकी सीमा क्या है। और फिर भाव करो कि मेरी लंबाई छह इंच बढ़ गई है। मैं छह इंच और लंबा हो गया हूं। आंखें बंद किए बस यह भाव करो। कल्पना में महसूस करो कि मेरी लंबाई छह इंच बढ़ गई है।

फिर दूसरा चरण: अपने सिर को अनुभव करो कि वह कहां है। भीतर-भीतर अनुभव करो कि वह कहां है। और फिर भाव करो कि सिर भी छह इंच बड़ा हो गया है। अगर तुम इतना कर सके तो बात बहुत आसान हो जाएगी। फिर उसे और भी बड़ा किया जा सकता है। भाव करो कि तुम बारह फीट हो गए हो। और तुम पूरे कमरे में फैल गए हो। अब तुम अपनी कल्पना में दीवारों को छू रहे हो; तुमने पूरे कमरे को भर दिया है। और तब क्रमश: भाव करो कि तुम इतने फैल गये हो कि पूरा मकान तुम्हारे अंदर आ गया है। और एक बार तुमने भाव करना जान लिया तो ये बहुत आसान है। अगर तुम छह इंच बढ़ सकते हो तो कितना भी बढ़ सकते हो। अगर तुम भाव करा सके कि मैं पाँच फीट लंबा हूं तो फिर कुछ भी कठिन नहीं है। तब यह विधि बहुत ही आसान है।

पहले तीन दिन लंबे होने का भाव करो और फिर तीन दिन भाव करो कि मैं इतना बड़ा हो गया हूं कि कमरे में भर गया हूं। यह केवल कल्पना का प्रशिक्षण है। फिर और तीन दिन यह भाव करो कि मैंने फैलकर पूरे घर को घेर लिया है। फिर तीन दिन भाव करो कि मैं आकाश हो गया हुं। तब यह विधि बहुत ही आसान हो जाएगी।

‘हे शक्ति, समस्त तेजोमय अंतरिक्ष मेरे सिर में ही समाहित है, ऐसा भाव करो।’

तब तुम आंखें बंद करके अनुभव कर सकते हो कि सारा आकाश, सारा अंतरिक्ष तुम्हारे सिर में समाहित है। और जिस क्षण तुम्हें यह अनुभव होगा, मन विलीन होने लगेगा। क्योंकि मन बहुत क्षुद्रता में जीता है। आकाश जैसे विस्तार में मन नहीं टिक सकता; वह खो जाता है। इस महाविस्तार में मन असंभव है। मन क्षुद्र और सीमित में ही हो सकता है। इतने विराट आकाश में मन को जीने के लिए जगह कही नहीं मिलती है।

यह विधि सुंदरतम विधियों में से एक है। मन अचानक बिखर जाता हे। और आकाश प्रकट हो जाता है। तीन महीने के भीतर यह अनुभव संभव है और तुम्हारा संपूर्ण जीवन रूपांतरित हो जाएगा।

लेकिन एक-एक कदम चलना होगा। क्योंकि कभी-कभी इस विधि से लोग विक्षिप्त भी हो जाते है। अपना संतुलन खो देते है। यह प्रयोग और इसका प्रभाव बहुत विराट है। अगर अचानक यह विराट आकाश तुम पर टूट पड़े और तुम्हें बोध हो कि तुम्हारे सिर में समस्त अंतरिक्ष समाहित हो गया है और तुम्हारे सिर में चाँद-तारे और पूरा ब्रह्मांड घूम रहा है। तो तुम्हारा सिर चकराने लगेगा। इसलिए अनेक परंपराओं में इस विधि के प्रयोग में बहुत सावधानियां बरती जाती है।

इस सदी में एक संत, राम तीर्थ ने इस विधि का प्रयोग किया था। और अनेक लोगों को, जो जानते है, संदेह है कि इसी विधि के कारण उन्होंने आत्मघात कर लिया। राम तीर्थ के लिए आत्मघात नहीं था। क्योंकि उसने जान लिया था कि सारा अंतरिक्ष उसमें समाहित है। उसके लिए आत्मघात असंभव है—वह आत्मघात नहीं कर सकता। वहां कोई आत्मघात करने वाला ही नहीं बचा। लेकिन दूसरों के लिए, जो बाहर से देख रहे थे, यह आत्मघात है।

राम तीर्थ को ऐसा अनुभव होने लगा कि सारा ब्रह्मांड उनके भीतर, उनके सिर के भीतर घूम रहा हे। उनके शिष्यों ने पहले तो सोचा कि वे काव्य की भाषा में बोल रहे है। लेकिन फिर उन्हें लगने लगा कि वे पागल हो गये है।

क्योंकि उन्होंने दावा करना शुरू कर दिया कि मैं ब्रह्मांड हूं और सब कुछ मेरे भीतर है। और फिर एक दिन वे एक पहाड़ की चोटी से नदी में कूद गये।
राम तीर्थ ने नदी में कूदने के पहले एक सुंदर कविता लिखी। जिसमें उन्होंने कहा है:

'मैं ब्रह्मांड हो गया हूं,अब मेरा शरीर भार हो गया है, इस शरीर को मैं अब अनावश्यक मानता हूं। इसलिए मैं इसे वापस करता हूं। अब मुझ किसी सीमा की जरूरत नहीं है। मैं निस्सीम ब्रह्म हो गया हूं।'

मनोचिकित्सक तो सोचते है कि वे विक्षिप्त हो गए। वह पागल हो गए। लेकिन जिन्हें मनुष्य चेतना के गहन आयामों का पता है, वे कहते है कि मुक्त हो गये। बुद्ध हो गये। लेकिन सामान्य चित के लिए यह आत्मघात है। तो ऐसी विधि से खतरा हो सकता है। इस कारण में कहता हूं उनकी तरफ क्रमश: बढ़ो, धीरे-धीरे चलो। तुम्हें इसका पता नहीं है, अत: कुछ भी संभव है। तुम्हें अपनी संभावनाओं का ज्ञान नहीं है। तुम्हारी कितनी तैयारी है, इसकी भी तुम्हें प्रत्यभिज्ञा नहीं है। ओर कुछ भी संभव है। अंत: सावधानीपूर्वक इस प्रयोग को करने की जरूरत है।

पहले छोटी-छोटी चीजों पर अपनी कल्पना का प्रयोग करो। भाव करो कि शरीर बड़ा हो गया है। छोटा हो रहा है। तुम दोनों तरफ जा सकते हो। तुम यदि पाँच फीट छह इंच के हो तो भाव करो कि चार फीट का हो गया हूं, तीन फीट का हो गया हू....दो फीट का हो गया हूं.....एक फीट का हो गया हूं....एक बिंदू मात्र रह गया हूं।

यह तैयारी भर है, इस बात की तैयारी है कि धीरे-धीरे तुम जो भी भाव करना चाहों वह कर सकते हो। तुम्हारा आंतरिक चित भार करने के लिए बिलकुल स्वतंत्र है। उसे कुछ भी भाव करने में कोई बाधा नहीं है। यह तुम्हारा भाव है, तुम चाहों तो फैल कर बड़े हो सकते हो और चाहो तो सिकुड़कर छोटे हो सकते हो। और तुम्हें वैसा बोध भी होने लगेगा।

और अगर तुम इस प्रयोग को ठीक से करो तो तुम बहुत आसानी से अपने शरीर से बाहर आ सकते हो। अगर तुम कल्पना से शरीर को छोटा-बड़ा कर सकते हो तो तुम शरीर से बहार आने में समर्थ हो। तुम सिर्फ कल्पना करो कि मैं अपने शरीर के बाहर खड़ा हूं, और तुम बाहर खड़े हो जाओगे।

लेकिन यह इतनी जल्दी नहीं होगा। पहले छोटे-छोटे चरणों में प्रयोग करने होगें। और जब तुम्हें लगे कि तुम शांत रहते हो, घबराते नही, तब भाव करो कि तुम्हारे पूरे कमरे को भर दिया है। और तुम वास्तव में दीवारों का स्पर्श अनुभव करने लगोगे। और तब भाव करो कि पूरा मकान तुम्हारे भीतर समा गया है। और तुम उसे अपने भीतर अनुभव कर रहे हो। इस भांति एक-एक कदम आगे बढ़ो। और तब, धीरे-धीरे आकाश को अपने सिर के भीतर अनुभव करो। और जब तुम आकाश को अपने भीतर अनुभव करते हो। जब तुम आकाश को अपने साथ महसूस करते हो, उसके साथ एक हो जाते हो। तो मन एक दम विदा हो जाता है। अब वहां उसका कोई काम नहीं है।

REPORT THIS AD

इस विधि को किसी गुरु या मित्र के साथ रह कर करना अच्छा होगा। अकेले में प्रयोग करना खतरनाक भी हो सकता हे। तुम्हारे पास कोई होना चाहिए। जो तुम्हारी देखभाल कर सके। यह समूह विधि है। गुरूकुल या आश्रम में प्रयोग करने की विधि है। किसी आश्रम में जहां अनेक लोग मिलकर काम करते हों। वहां इस विधि का प्रयोग आसान है। कम खतरनाक और कम हानिकारक है। क्योंकि जब भीतर का आकाश विस्फोटित होता है। तो संभव है कि कई दिनों तक तुम्हें अपने शरीर की सुध ही नहीं रहे। तुम भाव में इतने आविष्ट हो जाओ कि तुम्हारा बाहर आना ही संभव न हो। क्योंकि उस विस्फोट के साथ समय विलीन हो जाता है। तो तुम्हें पता ही नहीं चलेगा कि

कितना समय व्यतीत हो गया है। शरीर का पता ही नहीं चलेगा। शरीर का बोध ही नहीं रहता। तुम तो आकाश हो जाते हो।

तो कोई चाहिए जो तुम्हारे शरीर की देखभाल करे। बहुत ही प्रेमपूर्ण देखभाल की जरूरत होगी। इसीलिए किसी गुरू या समूह के साथ प्रयोग करने से यह विधि कम हानिकारक हो जाती हे। कम खतरनाक रह जाती हे। और समूह भी ऐसा होना चाहिए, जो जानता हो कि इस विधि में क्या-क्या संभव है, क्या-क्या घटित हो सकता है और तब क्या किया जा सकता है। क्योंकि मन की इस अवस्था में अगर तुम्हें अचानक जगा दिया जाए तो तुम विक्षिप्त भी हो सकते हो। क्योंकि मन को वापस आने के लिए समय की जरूरत होती है। अगर झटक से तुम्हें शरीर में वापस आना पड़े तो संभव है कि तुम्हारा स्नायु संस्थान उसे बर्दाश्त न कर सके। उसे कोई अभ्यास नहीं है। उसे प्रशिक्षित करना होगा।

तो अकेले प्रयोग न करें;समूह में या मित्रों के साथ एकांत जगह में यह प्रयोग कर सकते है। और धीरे-धीरे, एक-एक कदम बढ़े, जल्दबाजी न करे।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 75

'जागते हुए सोते हुए, स्वप्न देखते हुए, अपने को प्रकाश समझो।'

पहले जागरण से शुरू करो। योग ओर तंत्र मनुष्य के मन के जीवन को तीन भागों में बाँटता है—स्मरण रहे, मन के जीवन को। वे मन को तीन भोगों में बांटते है: जाग्रत,सुषुप्ति और स्वप्न। ये तुम्हारी चेतना के नहीं, तुम्हारे में के भाग है।

चेतना चौथी है—तुरीय। पूर्व मैं इसे कोई नाम नहीं दिया गया है। सिर्फ तुरीय या चतुर्थ कहा गया है। तीन के नाम है। वे बादल है जिनके नाम हो सकते है। कोई जागता हुआ बादल है, कोई सोया हुआ बादल है। और कोई स्वप्न देखता हुआ बादल है। और जिस आकाश में वह घूमते है, वह अनाम है, उसे मात्र तुरीय कहां जाता है।

पश्चिम का मनोविज्ञान हाल में ही स्वप्न के आयाम से परिचित हुआ है। असल में फ्रायड के साथ स्वप्न महत्वपूर्ण हुआ। लेकिन हिंदुओं के लिए यह अत्यंत प्राचीन धारणा है। कि तुम तब तक किसी मनुष्य को सच में नहीं जान सकते जब तक तुम यह नहीं जानते कि वह अपने स्वप्नों में क्या करता है। क्योंकि वह जागते समय में जो भी करता है वह अभिनय हो सकता है। झूठ हो सकता है। क्योंकि वह जागते समय में वह जो करता है बहुत मजबूरी में करता है। वह स्वतंत्र नहीं है; समाज है, नियम है, नैतिक व्यवस्था है। वह निरंतर अपनी कामनाओं के साथ संघर्ष करता है, उनका दमन करता है। उनमें हेर-फेर करता है। समाज के ढांचे के अनुरूप उन्हें बदलता है। और समाज तुम्हें कभी तुम्हारी समग्रता में स्वीकार नहीं करता है। वह चुनाव करता है, काट-छांट करता है।

संस्कृति का यही अर्थ है; संस्कृति चुनाव है। प्रत्येक संस्कृति एक संस्कार है। कुछ चीजें स्वीकृत है और कुछ चीजें अस्वीकृत है। कहीं भी तुम्हारे समग्र अस्तित्व को, तुम्हारी निजता को स्वीकृति नहीं दी जाती है। कही भी नहीं। कहीं कुछ पहलू स्वीकृत है; कहीं कुछ और पहलू स्वीकृत है। कहीं भी समग्र मनुष्य नहीं है।

तो जाग्रत अवस्था में तुम झूठे, नकली कृत्रिम और दमित होने के लिए मजबूर हो। तुम जागते हुए प्रामाणिक नहीं हो सकते, अभिनेता भर हो सकते हो। तुम सहज नहीं हो सकते। तुम अंत: प्ररेणा से नहीं चलते, बाहर से धकाए जाते हो।

केवल अपने स्वप्नों में तुम प्रामाणिक हो सकते हो। तुम अपने स्वप्नों में जो चाहे कर सकते हो। उससे किसी को लेना-देना नहीं है। वहां तुम अकेले हो। तुम्हारे सिवाय कोई भी उसमें प्रवेश नहीं कर सकता है। कोई भी तुम्हारे स्वप्नों में नहीं झांक सकता है। और किसी को इसकी चिंता भी नहीं है। कि तुम अपने स्वप्नों में क्या करते हो। इससे किसी को क्या लेना-देना। सपने तुम्हारे बिलकुल निजी है। क्योंकि वे बिलकुल निजी है और उनका किसी से कोई लेना देना नहीं है। इसलिए तुम स्वतंत्र हो सकते हो।

तो जब तक तुम्हारे सपनों को नहीं जाना जाता, तुम्हारे असली चेहरे से भी परिचित नहीं हुआ जा सकता हे। हिंदुओं को इसका बोध था। सपनों में प्रवेश करना अनिवार्य है। लेकिन सपने भी बादल ही है। यद्यपि ये बादल निजी है, कुछ स्वतंत्र है; फिर भी बादल ही तो है। उनके भी पार जाना है।

ये तीन अवस्थाएं है: जाग्रत सुषुप्ति और स्वप्न। फ्रायड के साथ सपनों पर काम शुरू हुआ। अब सुषुप्ति पर, गहरी नींद पर काम होने लगा है। पश्चिम में अनेक प्रयोगशालाओं में यह जानने के लिए काम हो रहा है कि नींद क्या है। क्योंकि यह बहुत आश्चर्य की बात लगती है कि हमें यह भी नहीं पता कि नींद क्या है? कि नींद में क्या यथार्थत: घटित होता है। यह अभी वैज्ञानिक ढंग से नहीं जाना गया है।

और अगर हम नींद को नहीं जान सकते तो मनुष्य को जानना बहुत कठिन होगा। क्योंकि मनुष्य अपने जिंदगी का एक तिहाई हिस्सा नींद से गुजारता है। जीवन का एक तिहाई हिस्सा, अगर तुम साठ साल जीने वाले हो तो बीस साल तुम सौकर गुज़ारते हो। इतना बड़ा हिस्सा है यह। जब तुम सोए हो तो तुम क्या कर रहे हो?

जागरण की अवस्था में तुम समाज के साथ होते हो। स्वप्न के अवस्था में तुम अपनी कामनाओं के साथ होते हो। और गहरी नींद में तुम प्रकृति के साथ होते हो। प्रकृति के गहन गर्भ में होते हो। योग और तंत्र का कहना है कि इन तीनों के पार जाने पर ही तुम ब्रहम में प्रवेश कर सकते हो। इन तीनों से गुजरना होगा। इनके पार जाना होगा, इनका अतिक्रमण करना होगा।

एक फर्क है। अभी पश्चिम का मनोविज्ञान इन अवस्थाओं के अध्ययन में उत्सुक हो रहा है। पूर्व के साधक इन अवस्थाओं में उत्सुक थे। इनके अध्ययन में नहीं। वे इसमे उत्सुक थे कि कैसे इनका अतिक्रमण किया जाए। यह विधि अतिक्रमण की विधि है।

'जागते हुए, सोते हुए,स्वप्न देखते हुए, अपने को प्रकाश समझो।'

बहुत कठिन है। तुम जागरण से शुरू करना होगा। तुम स्वप्नों में कैसे स्मरण रख सकते हो? क्या तुम सचेतन रूप से कोई स्वप्न पैदा कर सकते हो? क्या तुम स्वप्न को व्यवस्था दे सकते हो। उसमें हेर-फेर कर सकते हो? आदमी

कितना नापुंसग है। तुम अपने स्वप्न भी नहीं निर्मित कर सकते हो। वे भी अपने आप आते है; तुम बिलकुल असहाय हो।

लेकिन कुछ विधियां है जिनके द्वारा स्वप्न निर्मित किए जा सकते है। और ये विधियां अतिक्रमण करने में बहुत सहयोगी है। क्योंकि अगर तुम स्वप्न निर्मित कर सकते हो तो तुम उसका अतिक्रमण भी कर सकते हो। लेकिन आरंभ तो जाग्रत अवस्था से ही करना होगा।

जागते समय–चलते समय, खाते समय,काम करते समय। अपने को प्रकाश रूप में स्मरण रखो। मानो तुम्हारा ह्रदय में एक ज्योति जल रही है और तुम्हारा शरीर उस ज्योति का प्रभामंडल भर है। कल्पना करो कि तुम्हारे ह्रदय में एक लपट जल रही है। और तुम्हारा शरीर उस लपट के चारों और प्रभामंडल के अतिरिक्त कुछ नहीं है; तुम्हारा शरीर उस लपट के चारों और फैला प्रकाश है। इस कल्पना को, इस भाव को अपने मन ओर चेतना की गहराई में उतरने दो। इसे आत्मसात करो।

थोड़ा समय लगेगा। लेकिन यदि तुम यह स्मरण करते रहे,कल्पना करते रहे,तो धीरे-धीरे तुम इसे पूरे दिन स्मरण रखने में समर्थ हो जाओगे। जागते हुए, सड़क पर चलते हुए, तुम एक चलती फिरती ज्योति हो जाओगे। शुरू-शुरू में किसी दूसरे को इसका बोध नहीं होगा; लेकिन अगर तुमने यह स्मरण जारी रखा तो तीन महीनों में दूसरों को भी इसका बोध होने लगेगा।

और जब दूसरों को आभास होने लगे तो तुम निश्चिंत हो सकते हो। किसी से कहना नहीं है। सिर्फ ज्योति का भा करना है। और भाव करना है कि तुम्हारा शरीर उसके चारों और फैला प्रभामंडल है। यह स्थूल शरीर नहीं हे। विद्युत शरीर है। प्रकाश शरीर है। अगर तुम धैर्य पूर्वक लगे रहे तो तीन महीनों में, करीब-करीब तीन महीनों में दूसरों को बोध होने लगेगा। कि तुम्हें कुछ घटित हो रहा हे। वे तुम्हारे चारों और एक सूक्ष्म प्रकाश महसूस करेंगें। जब तुम निकट जाओगे,उन्हें एक तरह की अलग उष्मा महसूस होगी। तुम यदि उन्हें स्पर्श करोगे तो उन्हें उष्मा स्पर्श महसूस होगी। उन्हें पता चल जायेगा कि तुम्हें कुछ अद्भुत घटित हो रहा है। पर किसी से कहो मत और जब दूसरों को पता चलने लगे तो तुम आश्वस्त हो सकते हो। और तब तुम दूसरे चरण में प्रवेश कर सकते हो। उसके पहले नहीं।

दूसरे चरण में इस विधि को स्वप्नावस्था में ले चलना है। अब तुम स्वप्न जगत में इसका प्रयोग शुरू कर सकते हो। यह अब यथार्थ है, अब यह कल्पना ही नहीं है। कल्पना के द्वारा तुम ने सत्य को उघाड़ लिया है। यह सत्य है। सब कुछ प्रकाश से बना है। सब कुछ प्रकाश मय है। तुम प्रकाश हो; हालांकि तुम्हें इसका बोध नहीं है। क्योंकि पदार्थ का कण-कण प्रकाश है। वैज्ञानिक कहते है कि पदार्थ इलेक्ट्रॉन से बना हे। वह वही बात है। प्रकाश ही सब का स्त्रोत है। तुम भी घनीभूत प्रकाश हो। कल्पना के जरिए तुम सिर्फ सत्य को उघाड़ रहे हो। प्रकट कर रहे हो। इस सत्य को आत्मसात करो। और जब तुम उससे आपूर हो जाओ तो उसे दूसरे चरण में, स्वप्न में ले जा सकते हो। उसके पहले नही।

तो नींद में उतरते हुए ज्योति को स्मरण करते रहो। देखते रहो, भाव करते रहो कि मैं प्रकाश हूं। और इसी स्मरण के साथ नींद में ओर उतर जाओ, और नींद में भी यही स्मरण जारी रहता है। आरंभ में कुछ ही स्वप्न ऐसे होंगे जिनमें तुम्हें भाव होगा कि तुम्हारे भीतर ज्योति है। कि तुम प्रकाश हो। पर धीरे-धीरे स्वप्न में भी तुम्हें यह भाव बना रहने लगेगा।

और जब यह भाव स्वप्न में प्रवेश कर जाएगा। सपने विलीन होने लगेंगे। सपने खोने लगेंगे। सपने कम से कम होने लगेंगे। और गहरी नींद की मात्रा बढ़ने लगेगी। और जब तुम्हारी स्वप्नावस्था में यह सत्य प्रकट हो कि तुम प्रकाश हो, ज्योति हो प्रज्वलित ज्योति हो, तब स्वप्न विदा हो जायेंगे।

और जब स्वप्न विदा हो जाते है, तभी इस भाव को सुषुप्ति में गहन नींद में ल जाया जा सकता है। उसके पहले नहीं। अब तुम द्वार पर हो। जब सपने विदा हो गए है और तुम अपने को ज्योति की भांति स्मरण रखते हो तो तुम नींद के द्वार पर हो। अब तुम इस भा के साथ नींद में प्रवेश कर सकते हो। और यदि तुम एक बार नींद में इस भाव के साथ उतर गये। कि मैं ज्योति हूं। तो तुम्हें नींद में भी बोध बना रहेगा। और अब नींद केवल तुम्हारे शरीर को घटित होगी। तुम्हें नहीं।

कृष्ण गीता में यही कहते है कि योगी कभी नहीं सोते; जब दूसरे सोते है तब भी वे जागते है। ऐसा नहीं है कि उनके शरीर को नींद नही आती। उनके शरीर तो सोते है। लेकिन शरीर ही। शरीर को विश्राम की जरूरत है। चेतना को विश्राम की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि शरीर यंत्र है। चेतना यंत्र नहीं है। शरीर को ईंधन चाहिए। उसे विश्राम चाहिए। यही कारण है। कि शरीर जन्म लेता है, युवा होता है, वृद्ध होता है। और मर जाता है। चेतना न कभी जन्म लेती है, न कभी बूढी होती है,और न कभी मरती है। उसे न ईंधन की जरूरत है और न विश्राम की। यह शुद्ध ऊर्जा है; नित्य-शाश्वत ऊर्जा।

अगर तुम इस ज्योति के, प्रकाश के बिंब को नींद के भीतर ले जा सके तो तुम फिर कभी नहीं सोओगे। सिर्फ तुम्हारा शरीर विश्राम करेगा। और जब शरीर सोया है तो तुम यह जानते रहोगे। और जैसे ही यह घटित होता है–तुम तुरीय हो, चतुर्थ हो। स्वप्न ओ सुषुप्ति मन के अंश है। वे अंश है और तुम तुरीय हो गय हो। चतुर्थ हो गए हो। तुरीय वह है जो उनमें से गुजरता है, लेकिन उनमें से कोई भी नहीं।

वस्तुत: यह बिलकुल सरल है। अगर तुम जाग्रत हो ओर फिर तुम स्वप्न देखने लगते हो तो तुम दोनों नहीं हो सकते। अगर तुम जाग्रति हो तो तुम स्वप्न नहीं देख सकते। और अगर तुम स्वप्न हो तो तुम सुषुप्ति में कैसे उतर सकते हो, जहां कोई सपने नहीं होते?

तुम एक यात्रा हो और ये अवस्थाएं पड़ाव है–तभी तुम यहां से वहां जा सकते हो। और फिर वापस आ सकते हो। सुबह तुम फिर जाग्रत अवस्था में वापस आ जाओगे। ये अवस्थाएं है; और जब इन अवस्थाओं से गुजरता है वह तुम हो। लेकिन वह तुम चतुर्थ हो। और इसी चतुर्थ को आत्मा कहते है। इसी चतुर्थ को भगवता कहते है; इसी चतुर्थ को अमृत तत्व कहते है, शाश्वत जीवन कहते है।

जागते हुए,सोते हुए,स्वप्न देखते हुए, अपने को प्रकाश समझो।

यह बहुत सुंदर विधि है। लेकिन जाग्रत अवस्था से आरंभ करो। और स्मरण रहे कि जब दूसरों को इसका बोध होने लगे तभी तुम सफल हुए। उन्हें बोध होगा। और तब तुम स्वप्न में और फिर निद्रा में प्रवेश कर सकते हो। और अंत में तुम उसके प्रति जागोगे जो तुम हो–तुरीय।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 76

अंधकार–संबंधी पहली विधि -

'वर्षा की अंधेरी राम में उस अंधकार में प्रवेश करो,जो रूपों का रूप है।'

अतीत में एक बहुत पुराना गुह्म विधा का संप्रदाय था। जिसके बारे में शायद तुमने न सुना हो। यह संप्रदाय 'इसेनी' नाम से जाना जाता था। जीसस की शिक्षा-दीक्षा उसी संप्रदाय में हुई थी। जीसस उस संप्रदाय के सदस्य थे। इसेनी संप्रदाय संसार में अकेला संप्रदाय है जिसने परमात्मा की धारणा परम अंधकार के रूप में कि है। कुरान कहती है कि परमात्मा प्रकाश है। वेद कहते है कि परमात्मा प्रकाश है। बाइबिल भी कहती है की परमात्मा प्रकाश है। पूरी दुनियां में सिर्फ इसेनी की परंपरा कहती है कि परमात्मा घनघोर अंधकार है। परमात्मा सर्वथा अंधकार है; एक अनंत रात जैसा है।

यह धारणा बहुत सुंदर है। आश्चर्यजनक है, पर बहुत सुंदर है। और बहुत अर्थपूर्ण भी है। तुम्हें इसका अर्थ जरूर समझना चाहिए। और तब यह विधि बहुत सहयोगी हो जाएगी। क्योंकि इस विधि का प्रयोग इसेनी साधक अंधकार में प्रवेश करने के लिए, उसके साथ एक होने के लिए करते थे।

थोड़ा इस पर विचार करो कि क्यों परमात्मा को सब जगह प्रकाश की भांति चित्रित किया गया है। इसलिए नहीं क्योंकि परमात्मा प्रकाश है, बल्कि इसलिए क्योंकि मनुष्य अंधकार से भयभीत है। यह मानवीय भय है। हम प्रकाश को पसंद करते है और अंधकार से डरते है। इसलिए हम अंधकार या कालिमा के रूप में ईश्वर की धारणा नही बना सकते। वह मानवीय धारणा है। हम ईश्वर को प्रकाश की भांति सोचते है। क्योंकि हम अंधकार से भयभीत है।

हमारे ईश्वर हमारे भय की ही निर्मिति है। हम ही उन्हें आकार और रूप देते है। और क्योंकि आकार और रूप हम देते है। ये आकार और रूप हमारे संबंध में खबर देते है। परमात्मा के संबंध में नहीं। वे हमारी निर्मिति है। हम अंधकार से भयभीत है; इसलिए परमात्मा प्रकाश है।

लेकिन ये विधियां एक भिन्न संप्रदाय की विधियां है। इसेनी कहते है कि ईश्वर अंधकार है। और इस बात में कुछ सार है।

पहली बात : पहली तो बात की अंधकार शाश्वत है। प्रकाश आता है जाता है। अंधकार सदा है। सुबह सूर्य उगता है। और प्रकाश होता है। अंधकार सदा है। डूबता है और अंधकार छा जाता है। अंधकार के लिए कुछ उदय नहीं होता है; अंधकार सदा है। वह न कभी उगता है और न डूबता हे। प्रकाश आता है जाता है। अंधकार बन रहता है। और प्रकाश का सदा कोई स्त्रोत है। अंधकार स्त्रोत हीन है। और जिसका कोई

स्त्रोत है वह शाश्वत नहीं हो सकता है। असीम और शाश्वत तो वही हो सकता है। जिसका कोई स्त्रोत न हो, जो स्त्रोत हीन हो। और प्रकाश में थोड़ा तनाव है। यही कारण है कि तुम प्रकाश में कभी सो नहीं सकते। वह तनाव पैदा करता है। अंधकार विश्राम है—समग्र विश्राम।

लेकिन हम अंधकार से भयभीत क्यों है। कारण यह है कि प्रकाश हमें जीवन जैसा मालूम पड़ता है। वह जीवन है। और अंधकार मृत्यु जैसा प्रतीत होता है; वह मृत्यु है। जीवन प्रकाश से आता हे। और जब तुम मरते हो तो ऐसा लगता है कि तुम शाश्वत अंधकार में गिर रहे हो। यही कारण है हम मृत्यु को काले रंग से चित्रित करते है। और काला रंग शोक का रंग बन गया है। ईश्वर प्रकाश है ओर मृत्यु अंधकार है

लेकिन ये हमारे भय है—प्रक्षेपित और आरोपित भय। वस्तुत: अंधकार असीम है; प्रकाश सीमित है। अंधकार गर्भ जैसा है। जिसमें सब चीजें जन्म लेती है और जिसमें फिर विलीन हो जाती है।

यह इसेनियों का दृष्टिकोण बहुत सुंदर है। और बहुत सहयोगी भी। क्योंकि अगर तुम अंधकार को प्रेम कर सको तो तुम मृत्यु से निर्भय हो जाओगे। अगर तुम अंधकार में प्रवेश कर सको—और यह प्रवेश तभी हो सकता है जब भय न हो—तो तुम समग्र विश्राम को उपलब्ध हो जाओगे। अगर तुम अंधकार के साथ एक हो सको तो तुम खो जाओगे। विलीन हो जाओगे। सही समर्पण है। अब कोई भय न रहा। क्योंकि जब तुम अंधकार के साथ एक हो गए तो तुम मृत्यु के साथ एक हो गए। अंग तुम्हारी मृत्यु नहीं हो सकती। तुम अब अमृत हो गए। अंधकार अमृत है। प्रकाश जन्मता है और मर जाता है। अंधकार बस है। वह अमृत है।

इस विधियों के संबंध में पहली बात यह स्मरण रखना चाहिए कि तुम्हारे मन में अंधकार के प्रति, कालिमा के प्रति कोई भय न रहे। अन्यथा तुम यह प्रयोग नहीं कर सकोगे। पहले भय को छोड़ना होगा। तो आरंभिक चरण के रूप में एक काम यह करो; अंधकार में बैठ जाओ, रोशनी बुझा दो और अंधकार को अनुभव करो। उसके प्रति प्रेमपूर्ण दृष्टि रखो; अंधकार को तुम्हें छूने दो। उसे देखो। अंधेरे कमरे में या अंधेरी रात में अपनी आंखे खोलों और अंधकार को अनुभव करो। उसके साथ संवाद करो, उससे मैत्री बांधों।

यदि तुम भयभीत हो गए तो ये विधियां तुम्हारे लिए किसी काम की नहीं है। तब तुम इनका प्रयोग नहीं कर सकोगे। पहले अंधकार के साथ घनिष्ठ मैत्री की जरूरत है। कभी रात में, जब सब लोग सोने के लिए चले जाये,तुम अंधकार के साथ रहो। कुछ मत करो,बस उसके साथ रहो। और उसके साथ मात्र रहना ही तुम्हें उससे प्रति गहन भाव से भर देगा। कारण यह है कि अंधकार बहुत विश्राम दायी है। सिर्फ भय के कारण तुम्हें अंधकार के इस पहलू से परिचित नहीं हुए। अगर रात में तुम नींद न आए तो तुम तुरंत बत्ती जला लोगे और कुछ करने या पढ़ने लगोगे। लेकिन तुम अंधकार के साथ नहीं रह सकते। अंधकार के साथ रहो। और अगर तुम उसके साथ रह सके तो तुम्हारा उसके साथ एक नया संपर्क बनेगा, तुम्हें उसमें एक नया द्वार मिलेगा।

मनुष्य ने अपने को अंधकार के प्रति बिलकुल बंद कर लिया है। उसके कारण थे ऐतिहासिक कारण थे। पुराने जमाने में मनुष्य जंगलों और गुफाओं में रहा करता था। वहां रातें बहुत खतरनाक होती थी। दिन में तो वह सुरक्षित अनुभव करता था। चारो और देख सकता था। दिन में वह अपने को जंगली जानवरों के हमने से बचा सकता था। कम से कम उनसे भाग तो सकता था। लेकिन रात में चारों तरफ अँधेरा होता था। और वह बहुत असहाय हो जाता था। इससे ही वह अंधकार से भयभीत हो गया।

और यह भय उसके अचेतन में गहरा समा गया है। हम अब भी भयभीत है। तुम्हारा अचेतन तुम्हारा अपना अचेतन नहीं है; वह सामूहिक है, वंशानुगत है। वह तुम्हें विरासत में मिला है। वह भय वहां है और उस भय के कारण तुम अंधेरे के साथ संवाद नहीं कर सकते हो।

एक और बात इस भय के कारण ही मनुष्य ने अग्नि को पूजना शुरू कर दिया। जब आग खोजी गई तो आग देवता बन गई। ऐसा नहीं कि आग को पूजना शुरू किया। ऐसा नहीं है कि आग देवता है। पर अंधेरे के डर के कारण वह देवता बन गई। तो जब आग का आविष्कार हुआ तो वह देवता बन गई। वह उस समय सबसे सुरक्षित और विश्वास तुल्य बन गई। पारसी लोग आज भी अग्नि की पूजा करते है। रात के कारण आग आदमी की मित्र और सुरक्षा बन गई—दैवी सुरक्षा बन गई।

यह भय आज भी बना हुआ है। भले ही तुम्हें उसका बोध न हो; क्योंकि उसके प्रति बोधपूर्ण होने की स्थितियाँ नहीं है। लेकिन किसी भी रात रोशनी बुझा दो और अंधकार में बैठो। और वह आदिम भय आज भी तुम्हें घेर लेगा। तुम्हें अपने घर में लगेगा कि चारों और जंगली जानवर खड़े है। कोई आवाज होगी और तुम्हें जंगली जानवरों का भय पकड़ लेगा। प्रयोग कर सकते हो यह अद्‌भुत है। तब तुम ऐसे प्रगाढ़ विश्राम में प्रवेश करोगे जिसका अनुभव तुम्हें कभी न हुआ होगा।

लेकिन पहले अपने अचेतन भयो को उघाड़ो तथा अंधकार को जीना और प्रेम करना सिखों। वह बहुत आनंददायी है। एक बार तुम इसे जान लेते हो और इसके संपर्क में होते हो तो तुम एक बहुत गहन जागतिक घटना के संपर्क में आ जाते हो।

जब भी तुम्हें अंधेरे में होने का मौका मिले तो जागे रहने का ख्याल रखो। क्योंकि तुम दो काम कर सकते हो: या तो तुम रोशनी जला लोगे या नींद में चल जाओगे। ये दोनों अंधकार से बचने की तरकीबें है। अगर तुम सो जाते हो तो भय चला जाता है। क्योंकि तुम चेतन नहीं रहे। या अगर तुम चेतन रहे तो तुम रोशनी जला लोगे। न रोशनी जलाओ और न नींद में उतरो। अंधकार के साथ रहो।

बहुत से भय पकड़ेगे उन्हें अनुभव करो। उनके प्रति सजग होओ। उन्हें अपने चेतन में ले आओ। वह अपने आप ही आएँगे। और वह जब आएं तो उनके साक्षी भर रहो। वे भय विदा हो जाएंगे। और शीध्र ही वह दिन आएगा जब तुम अंधेरे में पूरे समर्पण के साथ रहोगे। और तुम्हें कोई डर नहीं घेरेगा। तब तुम सहजता से अंधकार के साथ रह सकते हो। और तब एक सुंदर घटना घटती है। और तभी तुम इसेनियों के इस वक्तव्य को समझ सकोगे। परमात्मा अंधकार है। परम अंधकार है।

‘वर्षा की अंधेरी रात में उस अंधकार में प्रवेश करो, जो रूपों का रूप है।’

शिव कहते है कि यह विधि वर्षा की रात में करने योग्य है। जब सब कुछ अंधकार में डूबा हो। जब काले बादलों में तारे भी नहीं दिखाई देते हो। अंधेरी रात में जब चाँद न हो ‘उस अंधकार में प्रवेश करो, जो रूपों का रूप है।’ उस अंधकार के साक्षी बनों। और फिर उसमे विलीन हो जाओ। वह सब रूपों का रूप है। तुम रूप हो; तुम उसमे विलीन हो सकते हो।

जब प्रकाश होता है तो तुम परिभाषित हो जाते हो, सीमित हो जाते हो। मैं तुम्हें देख सकता हूं। क्योंकि प्रकाश है। तुम्हारे शरीर की सीमाएं है। तुम्हारी सीमाएं बन जाती है। तुम्हारी हदे निर्मित हो जाती है। तुम्हारी सीमाएं प्रकाश के कारण है। जब प्रकाश नहीं होता तो सीमाएं खो जाती है। अंधकार में कहीं कोई सीमा नहीं है। हर चीज दूसरी चीज में समा जाती है। रूप विसर्जित हो जाता है।

वह भी हमारे भा का एक कारण हो सकता है। क्योंकि तब तुम्हारी परिभाषा नही रहती है। और तुम नहीं जानते हो कि तुम कौन हो। तब तुम्हारा चेहरा नहीं देखा जा सकता, तुम्हारा शरीर नहीं देखा जा सकता है। सब कुछ रूप ही अस्तित्व में घुल मिल जाता है। वह भय का एक कारण हो सकता है। क्योंकि तुम्हें तुम्हारे सीमित अस्तित्व का अहसास नहीं रहता। अस्तित्व धुंधला-धुंधला हो जाता है। और भय तुम्हें पकड़ लेता है। क्योंकि अब तुम नहीं जानते कि तुम कौन हो। तब अहंकार नहीं रह सकता। सीमा के बिना अहंकार का होना कठिन है। आदमी भय अनुभव करता है। वह प्रकाश चाहता है।

धारण और ध्यान करते हुए प्रकाश की बजाएं अंधकार में विलीन होना आसान है। प्रकाश तोड़ता है। पृथकता पैदा करता है। अंधकार सभी पृथकता और फर्क मिटा देता है। प्रकाश में तुम सुंदर हो या कुरूप हो। अमीर हो या गरीब हो। प्रकाश तुम्हें व्यक्तित्व देता है। विशिष्टता देता है। शिक्षित हो, अशिक्षित हो, पुण्य आत्मा हो या पापी हो। प्रकाश तुम्हें पृथक व्यक्ति की तरह प्रकट करता है। अंधकार तुम्हें अपने में समेट लेता है। तुम्हें स्वीकार कर लेता है। वह तुम्हें पृथक व्यक्ति की तरह नहीं लेता है। वह तुम्हें बिना किसी परिभाषा के स्वीकार कर लेता है। तुम उसमें डूब जाते हो। तुम उसमें एक हो जाते हो।

अंधकार में सदा ही ऐसा होता है। लेकिन भयभीत होने के कारण तुम नहीं समझ पाते हो। अपने भय को अलग करो और उससे एक हो जाओ।

‘उस अंधकार में प्रवेश करो, जो रूपों का रूप है। उस अंधकार में प्रवेश करो।’

तुम अंधकार में कैसे प्रवेश कर सकते हो। ती बात है। एक अंधकार को देखो। यह कठिन है। किसी ज्योति को, किसी रोशनी के स्त्रोत को देखना आसान है; क्योंकि वह एक आब्जेक्ट्स की भांति सामने है और तुम उसे देख सकते हो। अंधकार कोई आब्जेक्ट्स नहीं है। वह सब जगह है, चारों और है। तुम उसे एक आब्जेक्ट्स की तरह नहीं देख सकते हो। शून्य में देखो, खालीपन में झांको। वह सब और है। तुम

बस देखा। शिथिल होकर विश्राम पूर्व देखते रहो। वह तुम्हारी आंखों में प्रवेश करने लगेगा। और जब अंधकार तुम्हारी आंखों में प्रवेश करता है तो तुम भी उसमें प्रवेश करते हो।

अंधेरी रात में इस विधि का प्रयोग करते हुए अपनी आंखें खुली रखो। आंखों को बंद मत करो। बंद आंखों से तुम एक अलग तरह के अंधकार में होते हो। वह तुम्हारा निजी अंधकार है। तुम्हारे मन का अंधकार है। वह यथार्थ नहीं है। सच तो यह है कि बंद आंखों का अंधकार नकारात्मक हे; वह विधायक अंधकार नहीं है।

यहां प्रकाश है; और तुम अपनी आंखें बंद कर लेते हो। तब तुम्हें जो अंधकार दिखाई देता है वह सिर्फ प्रकाश का नकारात्मक रूप है। वह सच्चा अंधकार नहीं है। जैसे कि तुम खिड़की को देखते हो ओर फिर आंखें बंद कर लेते हो। तो तुम्हारी आंखों में खिड़की की नकारात्मक आकृति तैरती रहती है। हमारे सभी अनुभव प्रकाश के है। इसलिए हम जब आँख बंद करते हे तो हमें प्रकाश का नकारात्मक अनुभव होता है। जिसे हम अंधकार कहते है वह असली अंधकार नहीं है। उससे काम नहीं चलेगा।

अपनी आंखें खुली रखो और अंधकार में खुली आंखों से देखते रहे। तब तुम्हें एक अगर ही किस्म का अंधकार मिलेगा—विधायक अंधकार। वह सचमुच है। उसमें टकटकी लगाओ । अंधकार को घूरते रहो। तुम्हारे आंसू बहने लगेंगे। तुम्हारी आंखें दूखने लगेगी। इसकी चिंता मत करना। प्रयोग को जारी रखो। जिस क्षण अंधकार असली अंधकार तुम्हारी आंखों में प्रवेश करेगा, वह तुम्हें एक सुखद भाव से भर देगा। मानों कड़ी घूप में चलने वाली राही को घनी छाया मिल गई हो। और विधायक अंधकार का प्रवेश तुम्हारे भीतर से सभी नकारात्मक अंधकार को हटा देगा। यह बहुत अद्भुत अनुभव है।

असली अंधकार से इसेनियों के और शिव के अंधकार से हमारा संपर्क खो गया है। उसके साथ हमारा कोई संपर्क नहीं है। हम उससे इतने भयभीत है कि हम उससे बिलकुल ही विमुख हो गए है। हमने उसकी तरफ अपनी पीठ कर ली है।

तो यह विधि प्रयोग में कठिन होगी। लेकिन अगर तुम इसे कर सको तो यह अद्भुत है। तब तुम्हारा होना सर्वथा भिन्न होगा; तब तुम और ही व्यक्ति होगे।

जब अंधकार तुममें प्रवेश करता है तो तुम उसमें प्रवेश करते हो। यह सदा पारस्परिक है। दोनों तरफ से है। तुम किसी जागतिक तत्व में नहीं प्रवेश कर सकते हो। अगर वह तत्व तुम्हारे प्रवेश न करो। तुम जबरदस्ती नहीं कर सकते; उसमें जबरदस्ती प्रवेश नहीं हो सकता है। अगर तुम उपलब्ध हो, खुले हो वलनरेबल हो, अगर तुम किसी जागतिक तत्व को अपने भीतर प्रवेश देते हो, तो ही तुम उस तत्व में प्रवेश कर सकते हो। यह सदा पारस्परिक है, साथ-साथ है। तुम जबरदस्ती नहीं कर सकते, तुम उसे सिर्फ घटित होने दे सकते हो।

अभी तो शहरों में हमारे घरों में असली अंधकार का मिलना कठिन हो गया है। और नकली प्रकाश के साथ हमारा सब कुछ नकली हो गया है। हमारा अंधकार भी प्रदूषित है; वह भी शुद्ध नहीं है। तो अच्छा है कि सिर्फ अंधकार के अनुभव के लिए हम कहीं दूर निकल जाएं। तो किसी गांव में चले जाओ; जहां अभी बिजली न पहुंची हो। या किसी पहली पर चले जाओ और वहां हफ्ते भर रहो। ताकि शुद्ध अंधकार का अनुभव हो सके। तुम वहां से और ही आदमी होकर लौटोगे।

पूर्ण अंधकार में बिताए उन साथ दिनों में तुम्हारे सारे भय, सारे आदिम भय उभर कर ऊपर आ जाएंगे। भयानक जीव-जंतुओं से तुम्हारा सामना होगा। तुम्हें तुम्हारे अचेतन का साक्षात होगा। ऐसा लगेगा कि तुम उस पूरे विकास क्रम से गुजर रहे हो। जिससे पूरी मनुष्यता गुजरी है। अचेतन की गहराई में दबी बहुत चीजें ऊपर आ जाएंगी। और वे यथार्थ मालूम पड़ेगी। तुम भयभीत हो सकते हो। आतंकित हो सकते हो। क्योंकि वह चीजें यथार्थ मालूम पड़ेगी—और वे तुम्हारी मानसिक निर्मितियां भर है।

हमारे पागल खानों में अनेक पागल बंद है जो किसी और चीज से नहीं, इसी आदिम भय से पीडित है। जो भय उनके अचेतन से उभरकर बाहर आ गया है। यह भय वहां मौजूद है, और विक्षिप्त लोग उससे ही हमेशा भयभीत है, आतंकित है। और हम अभी तक नहीं मालूम है कि इन आदिम भयो से मुक्त कैसे हुआ जाए। यदि इन पागलों को अंधकार पर ध्यान करने के लिए राज़ी किया जा सके तो उनका पागल पन विदा हो जाएगा।

सिर्फ जापन में इस दिशा में इस कुछ प्रयास किया है। वे अपने पागल लोगों के साथ बिलकुल भिन्न व्यवहार करते है। यदि कोई व्यक्ति पागल हो जाता है विक्षिप्त हो जाता है, तो जापन में वे उसे उसकी जरूरत के मुताबिक तीन या छह हफ्तों के लिए एकांत में रख देते है। वे उसे सिर्फ एकांत में रहने के लिए छोड़ देते है। उसकी अन्य जरूरतें पूरी करते रहते है। वे उसे समय पर भोजन देते है। लेकि एक काम किया जाता है, राम में रोशनी नहीं जलाई जाती। उसे अंधेरे में अकेले रहना पड़ता है। निश्चित ही उसे बहुत पीड़ा से गुजरना होता है। अनेक अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। उसकी सब देख की जाती है, लेकिन उसे किसी तरह का साथ-संग नहीं दिया जाता। उसे अपनी विक्षिप्तता का साक्षात्कार सीधे और प्रत्यक्ष रूप से करना पड़ता है। और तीन से छह सप्ताह के अंदर उसका पागलपन दूर होने लगता है।

दरअसल कुछ नहीं किया गया, उसे सिर्फ एकांत में रखा गया है। बस इतना ही किया गया। पश्चिम के मनोचिकित्सक चकित है। उन्हें यह बात समझ में नहीं आती कि यह कैसे हो सकता है। वे खुद वर्षों मेहनत करते है। वे मनोविश्लेषण करते है, उपचार करते है। वे सब कुछ करते है। लेकिन वे रोगी को कभी अकेला नहीं छोड़ते। वे उसे कभी स्वयं ही अपने आंतरिक अचेतन का साक्षात्कार करने का मौका नहीं देते। क्योंकि तुम उसे जितना ही सहारा देते हो, वह उतना ही बेसहारा हो जाता है। वह उतना ही तुम पर निर्भर हो जाता है। और उतना ही तुम पर निर्भर हो जाता है। और असली सवाल आंतरिक

साक्षात्कार का है। स्वयं को देखने का है। सच में कोई भी कुछ सहारा नहीं दे सकता हे। तो जो जानते है वे तुम्हें अपना साक्षात्कार करने को छोड़ देंगे। तुम्हें अपने अचेतन को भर आँख देखना होगा।

और अंधकार पर किया जानेवाला ध्यान तुम्हारे सारे पागलपन को पी जायेगा। इस प्रयोग को करो। तुम अपने घर में भी इस प्रयोग को कर सकते हो। रोज रात को एक घंटा अंधकार के साथ रहो। कुछ मत करो; सिर्फ अंधकार में टकटकी लगाओ, उसे देखो। तुम्हें पिघलने जैसा अनुभव होगा। तुम्हें एहसास होगा कि कोई चीज तुम्हारे भीतर प्रवेश कर रही हे। और तुम किसी चीज में प्रवेश कर रहे हो। तीन महीने तक रोज रात एक घंटा अंधकार के साथ रहने पर तुम्हारे वैयक्तिकता के, पृथकता के सब भाव विदा हो जायेगे। तब तुम द्वीप नहीं रहोगे,तुम सागर हो जाओगे। तुम अंधकार के साथ एक हो जाओगे।

और यह अंधकार इतना विराट है, कुछ भी उतना विराट और शाश्वत नहीं है। और कुछ भी उतना निकट नहीं है। और तुम इस अंधकार से जितने भयभीत हो त्रस्त हो उतने भयभीत और त्रस्त किसी अन्य चीज से नहीं हो। और यह तुम्हारे पास ही है, सदा तुम्हारी प्रतीक्षा में है।

'वर्षा की अंधेरी रात में उस अंधकार में प्रवेश करो, जो रूपों का रूप है।'

उसे इस तरह देखो कि वह तुममें प्रविष्ट हो जाए।

दूसरी बात: लेट जाओ और भाव करो कि तुम अपनी मां के पास हो। अंधकार मां है—सब की मां। थोड़ा विचार करो कि जब कुछ भी नहीं था तो क्या था? तुम अंधकार के अतिरिक्त ओर किसी चीज की कल्पना नहीं कर सकते हो। और यदि सब कुछ विलीन हो जाए तो क्या रहेगा? अंधकार रहेगा। अंधकार माता है, गर्भ है।

तो लेट जाओ और भाव करो कि मैं अपनी मां के गर्भ में पडा हूं। और वह सच में वैसा अनुभव होगा। वह उष्ण मालूम पड़ेगा। और देर अबेर तुम महसूस करोगे कि अंधकार का गर्भ मुझे सब तरफ से घेरे है। और मैं उसमे हूं।

और तीसरी बात: चलते हुए, काम करते हुए, भोजन करते हुए, कुछ भी करते हुए अपने साथ अंधकार का एक हिस्सा साथ लिए चलो। जो अंधकार तुममें प्रवेश कर गया है उसे साथ लिए चलो। जैसे हम ज्योति को साथ लिए चलने की बात करते थे। वैसे ही अंधकार को साथ लिए चलो। और जैसे मैंने तुम्हें बताया कि अगर तुम अपने साथ ज्योति को लिए चलो और भाव करो कि मैं प्रकाश हूं तो तुम्हारा शरीर एक अद्भुत प्रकाश विकीरित करेगा और संवेदनशील लोग उसे अनुभव भी करेंगे। ठीक वही बात अंधकार के इस प्रयोग के साथ भी घटित होगी।

अगर तुम अपने साथ अंधकार को लिए चलो तो तुम्हारा सारा शरीर इतना विश्रांत हो जाएगा, इतना शांत और शीतल हो जाएगा कि वह दूसरों को भी अनुभव होने लगेगा। और जैसे साथ में प्रकाश साथ लिए चलने पर कुछ लोग तुम्हारे प्रति आकर्षित होंगे वैसे ही साथ में अंधकार लिए चलने पर कुछ लोग तुमसे

विकर्षित होंगे, दूर भागेगे। वे तुमसे भयभीत और त्रस्त होंगे। वे ऐसा उपस्थिति को झेल नहीं पाएंगे। यह उनके लिए असह्य होगा।

अगर तुम अपने साथ अंधकार लिए चलोगे तो अंधकार से भयभीत लोग तुमसे बचने की कोशिश करेंगे, वे तुम्हारे पास नहीं आएँगे। और प्रत्येक आदमी अंधकार से डरा हुआ है। तब तुम्हें लगेगा कि मित्र मुझे छोड़ रहे है। जब तुम अपने घर आओगे तो तुम्हारा परिवार परेशान होगा। क्योंकि तुम तो शीतलता के पुंज की तरह प्रवेश करोगे। और लोग अशांत ओर क्षुब्ध है। उनके लिए तुम्हारी आंखों मे देखना कठिन होगा; तुम्हारी आंखें घाटी की तरह गहन खाई की तरह होंगी। अगर कोई व्यक्ति तुम्हारी आंखों मे झांकेगा तो वहां उसे ऐसी अतल खाई दिखेगी कि उसका सर चकराने लगेगा।

दिन भर अपने साथ अंधकार चलना तुम्हारे लिए बहुत उपयोगी होगा। क्योंकि जब तुम रात में अंधकार पर ध्यान करोगे तो जो आंतरिक अंधकार तुम अपने साथ दिन भर लिए चले रहे थे वह तुम्हें बाहरी अंधकार से जुड़ने में सहयोग देगा। आंतरिक बाह्म से मिलने के लिए उभर आयेगा।

और सिर्फ इसके स्मरण से—कि मैं अंधकार लिए चल रहा हूं कि मैं अंधकार से भरा हूं कि मेरे शरीर की एक-एक कोशिका अंधकार से भरी है। तुम बहुत विश्राम अनुभव करोगे। इसे प्रयोग करो; तुम्हारे भीतर सब कुछ शांत और विश्रामपूर्ण हो जाएगा। तब तुम दौड़ नहीं सकोगे। तुम बस चलोगे र वह चलना भी धीमे-धीमे होगा। तुम धीरे-धीरे चलोगे—जैसे की कोई गर्भवती स्त्री चलती है। तुम धीरे-धीरे चलोगे और बहुत सजगता से चलोगे। तुम अपने साथ कुछ लिए चल रहे हो।

और जब तुम अपने साथ ज्योति लेकर चलोगे तो उलटी बात घटित होगी। तब तुम्हारा चलना तेज हो जाएगा। बल्कि तुम दौड़ना चाहोगे। तुम्हारी गतिविधि बढ़ जायेगी। तुम ज्यादा सक्रिय होगे। अंधकार को साथ लिए हुए तुम विश्राम अनुभव करोगे और दूसरे लोग समझेंगे कि तुम आलसी हो गये हो।

जिन दिनों मैं विश्वविद्यालय में था, दो वर्षों तक मैंने इस विधि का प्रयोग किया। और मैं इतना आलसी हो गया कि सुबह बिस्तर से उठना भी मुश्किल था। मेरे प्राध्यापक इससे बहुत चिंतित थे और उन्हें लगाता था कि मेरे साथ कुछ गड़बड़ हो गई है। वे सोचते थे कि या तो मैं बीमार हूं या बिलकुल उदासीन हो गया हूं। एक प्राध्यापक तो, जो विभागीय अध्यक्ष थे और मुझे बहुत प्रेम करते थे इतने चिंतित थे कि परीक्षा के दिनों में वे खूद मुझे सुबह होस्टल से लेकर परीक्षा कक्ष पहुंचा आते थे। ताकि में वहां समय पर पहुंचूं। यह उनका रोज का काम था कि वे मुझे परीक्षा कक्ष में दाखिल करके चैन लेते थे और घर चले जाते थे।

तो इस प्रयोग में लाओ। अपने भीतर अंधकार लिए चलना, अंधकार ही हो जाना, जीवन के सुंदरतम अनुभवों मे एक है। चलते हुए, बैठे हुए, भोजन करते हुए, कुछ भी करते हुए स्मरण रखो कि मैं अंधकार हूं। कि मैं अंधकार से भरा हूं। और फिर देखो कि चीजें किस तरह बदलती है। तब तुम उत्तेजित नही हो

सकते, बहुत सक्रिय नही हो सकते, तनावग्रस्त नही हो सकते। तब तुम्हारी नींद इतनी गहरी हो जाएगी कि सपने विदा हो जाएंगे। और पूरे दिन तुम मदहोश जैसे रहोगे।

सूफियों ने, उनके एक संप्रदाय ने इस विधि का प्रयोग किया है। और वे मस्त सूफियों के नाम से जाने जाते है। वे इसी अंधकार के नशे में चूर रहते थे। वे जमीन में गड़े खोदकर उसमें पड़े-पड़े ध्यान करते थे। अंधकार पर ध्यान करते है। और अंधकार के साथ एक हो जाते है। उनकी आंखें तुम्हें कहेगी कि वी पीए हुए है। नशे में है। तुम्हें उनकी आंखों में ऐसे प्रगाढ़ विश्राम का एहसास होगा जो तभी घटित होता है जब तुम गहरे नशे में होते हो। या जब तुम्हें नींद आती हे। तभी तुम्हारी आंखों में वैसी अभिव्यक्ति होती है। वे मस्त सूफियों के नाम से प्रसिद्‌ध है। और उनका नशा अंधकार का नशा है।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 77

अंधकार–संबंधी दूसरी विधि:

‘जब चंद्रमाहीन वर्षा की रात में उपलब्ध न हो तो आंखें बंद करो और अपने सामने अंधकार को देखो। फिर आंखे खोकर अंधकार को देखो। इस प्रकार दोष सदा के लिए विलीन हो जाते है।’

मैंने कहा कि अगर तुम आंखें बंद कर लोगे तो जो अंधकार मिलेगा वह झूठा अंधकार होगा। तो क्या किया जाए अगर चंद्रमाहीन रात, अंधेरी रात न हो। यदि चाँद हो और चाँदनी का प्रकाश हो तो क्या किया जाए? यह सूत्र उसकी कुंजी देता है।

‘जब चंद्रमाहीन वर्षा की रात उपलब्ध न हो तो आंखें बंद करो और अपने सामने अंधकार को देखो।’

आरंभ में यह अंधकार झूठा होगा। लेकिन तुम इसे सच्चा बना सकते हो, और यह इसे सच्चा बनाने का उपाय है।

‘फिर आंखें खोलकर अंधकार को देखो।’

पहले अपनी आंखें बंद करो और अंधकार को देखो। फिर आंखें खोलों और जिस अंधकार को तुमने भीतर देखा उसे बाहर देखो। अगर बाहर वह विलीन हो जाए तो उसका अर्थ है कि जो अंधकार तुम्हारे भीतर देखा था वह झूठा था।

यह कुछ ज्यादा कठिन है। पहली विधि में तुम असली अंधकार को भीतर लिए चलते हो। दूसरी विधि में तुम झूठे अंधकार का बाहर लाते हो। उसे बाहर लाते रहो। आंखें बंद करो अंधेरे को महसूस करो। आंखे खोलों और खुली आंखों से अंधेरे को बाहर फेंको। इस भांति तुम भीतर के झूठे अंधकार को बाहर फेंकते हो। उसे बाहर फेंकते रहो।

इसमें कम से कम तीन से छह सप्ताह का समय लगेगा। और तब एक दिन तुम अचानक भीतर के अंधकार को बाहर लाने में सफल हो जाओगे। और जि दिन तुम भीतर के अंधकार को बाहर ला सको,तुमने सच्चे आंतरिक अंधकार को पा लिया। सच्चे को ही बाहर लाया जा सकता है। झूठे को नहीं लाया जा सकता है।

यह एक बहुत अद्‌भुत अनुभव है। अगर तुम भीतरी अंधकार को बाहर ला सकते हो तो तुम इसे प्रकाशित कमरे में भी बाहर ला सकते हो। और अंधकार का टुकड़ा तुम्हारे सामने फैल जाएगा। यह बहुत अद्‌भुत अनुभव है, क्योंकि कमरा प्रकाशित है। सूर्य के प्रकाश में भी यह संभव है; अगर तुम आंतरिक अंधकार को पा सके तो तुम उसे बाहर भी ला सकते हो। तुम उसे देख सकते हो।

एक बार तुम जान गए कि ऐसा हो सकता है तो तुम भरी दोपहरी में भी अंधेरी से अंधेरी से अंधेरी रात जैसा अंधकार फैला सकते हो। सूर्य मौजूद है और तुम अंधकार को फैल सकते हो।

तिब्बत में इसी तरह की अनेक विधियां है। वे चीजों को भीतरी जगत से बाहरी जगत में ला सकते है। तुमने एक प्रसिद्‌ध विधि के संबंध में सूना होगा। वे इसे ताप-योग कहते है। सर्द रात में, बर्फ जैसी सर्द रात में बर्फ गिर रही है। एक तिब्बती लामा उस सर्द राम में जब चारों और बर्फ गिर रही है। और तापमान शून्य से नीचे हो, खुले आकाश के नीचे बैठता है और उसके शरीर से पसीना बहने लगता है।

शरीर शास्त्र के हिसाब से ये चमत्कार है। पसीना कैसे निकलने लगता है। वह भीतरी ताप को बाहर ला रहा है। वैसे ही आंतरिक शीतलता को भी बाहर लाया जा सकता है।

महावीर के जीवन में उल्लेख है; अब तक किसी ने भी उसको समझा नहीं है। जैन सोचते है कि महावीर कोई तप कर रहे थे। अब तक किसी ने भी उसको समझा नहीं है। कहां जाता है कि जब गर्मी होती है, सूर्य तपता है। तो महावीर सदा ऐसी जगह खड़े होते थे जहां कोई छाया, कोई वृक्ष नहीं होता, कुछ भी नहीं होता। गर्मी के दिनों में वे जलती धूप में खड़े होते। और सर्दी के दिनों में वे कोई शीतल स्थान, वृक्ष की छाया या नदी का किनारा चुनते थे। जहां ताप शून्य से नीचे हो। सर्दी के समय में वे ध्यान करने के लिए सर्द स्थान चुनते थे और गर्मी के दिनों में गर्म स्थान चुनते थे। लोग सोचते थे वे पागल हो गये है। और उनके अनुयायी सोचते है कि वे तप कर रहे थे।

ऐसी बात नहीं है। असल में महावीर इसी तरह की किसी आंतरिक विधि का प्रयोग कर रहे थे। जब गर्मी पड़ती थी तो वे भीतरी शीतलता को बाहर लाने का प्रयोग कर रहे थे। और यह विपरीत स्थिति में ही

अनुभव किया जा सकता है। जब सर्दी पड़ती थी तो भीतरी ताप को बाहर लाने का प्रयत्न करते थे। और यह भी प्रतिकूल पृष्ठभूमि में ही महसूस हो सकता है। वे शरीर के शत्रु नही थे, वे शरीर के विरोध में नहीं थे, जैसा जैन समझते है।

जैन समझते है कि महावीर शरीर को मिटाने में लगे थे। क्योंकि अगर तुम अपने शरीर को मिटा सको तो तुम अपनी कामनाओं को भी मिटा सकते हो। यह निरी बकवास है। वे तप-वप नहीं कर रहे थे। वे बस आंतरिक को बाहर ला रहे थे। और वे आंतरिक द्वारा सुरक्षित थे। जैसे तिब्बती लामा गिरती बर्फ के नीचे ताप पैदा करके पसीना बहा सकते थे। वैसे ही महावीर जलती धूप में खड़े रहते और उन्हें पसीना नहीं आता था। वे अपनी आंतरिक शीतलता को बाहर ला रहे थे। वह आंतरिक शीतलता बाहर आकर उनके शरीर की रक्षा करती थी।

इस तरह तुम अपने आंतरिक अंधकार को बाहर ला सकते हो। और वह अनुभव बहुत शीतल होता है। अगर तुम उसे ला सके तो तुम उससे सुरक्षित रहोगे। कोई उत्तेजना कोई मनोवेग तुम्हें विचलित नहीं कर सकेगा।

तो प्रयोग करो। ये तीन बातें है। एक अंधकार में खुली आंखों से देखा और अंधकार को अपने भीतर प्रवेश करने दो। दूसरी अंधकार को अपने चारों और मां के गर्भ की तरह अनुभव करो, उसके साथ रहो ओर उसमें अपने को अधिकाधिक भूल जाओ। और तीसरी बात जहां भी जाओ अपने हृदय में अंधकार का एक टुकड़ा साथ लिए जाओ।

अगर तुम यह कर सके तो अंधकार प्रकाश बन जाएगा। तुम अंधकार के द्वारा बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओगे।

‘जब चंद्रमाहीन वर्षा की रता उपल्बध न हो तो आंखें बंद करो, और अपने सामने अंधकार को देखो, फिर आंखें खोल कर अंधकार को देखो।’

यह विधि है। पहले इसे भीतर अनुभव करो, गहन अनुभव करो, ताकि तुम उसे बाहर देख सको। फिर आंखों को अचानक खोल दो और बाहर अनुभव करो। इसमे थोड़ा समय जरूर लगेगा।

‘इस प्रकार दोष सदा के लिए विलीन हो जाते है।’

अगर तुम आंतरिक अंधकार को बाहर ला सके तो दोष सदा के लिए विलीन हो जाते है। क्योंकि आंतरिक अंधकार अनुभव में आ जाए तो तुम इतने शीतल, इतने शांत इतने अनुद्विग्न हो जाओगे। कि दोष तुम्हारे साथ नहीं रह सकेगा।

स्मरण रहे। दोष तभी तक रहते है जब तक तुम उत्तेजित होने की हालत में रहे हो। दोष अपने आप नहीं रहते; वे तुम्हारी उत्तेजना की क्षमता में ही रहते है। कोई व्यक्ति तुम्हारा अपमान करता है और

तुम्हारे भीतर उस अपमान को पीने के लिए अंधकार नहीं है, तुम जल भूल जाते हो। क्रोधित हो जाते हो। और तब कुछ भी संभव है। तुम हिंसक हो सकते हो। तुम हत्या कर सकते हो। तुम वह सब कर सकते हो जो सिर्फ पागल आदमी कर सकता है। कुछ भी संभव है; अब तुम विक्षिप्त हो। फिर कोई व्यक्ति तुम्हारी प्रशंसा करता है और तुम दूसरे छोर पर विक्षिप्त हो। तुम्हारे चारों और स्थितियाँ है और तुम उन्हें चुपचाप आत्मसात करने में समर्थ नहीं हो।

किसी बुद्ध का अपमान करो। वे आत्मसात कर लेंगे। वे उसे पचा जाएंगे। कौन अपमान को पचा जात है? अंधकार का, शांति का आंतरिक पुंज उसे पचा लेता है। तुम कुछ भी विषाक्त फैंको, वह आत्मसात हो जाता है। उससे कोई प्रति क्रिया नही लौटती हे।

इसे प्रयोग करो। जब कोई तुम्हारा अपमान करे तो इतना ही स्मरण रखो। कि मैं अंधकार से भरा हूं। और सहसा तुम्हें प्रतीत होगा कि कोई प्रतिक्रिया नहीं उठती है। तुम रास्ते से गुजर रहे हो और एक सुंदर स्त्री या पुरूष दिखाई देता है और तुम उत्तेजित हो उठते हो। ख्याल करो कि मैं अंधकार से भरा हुआ हुं। और कामवासना विदा हो जाएगी। प्रयोग करके देखो। वह बिलकुल प्रायोगिक विधि है। इसमें विश्वास करने की जरूरत नहीं है।

जब भी तुम्हें मालूम पड़े कि मैं वासना से, या कामना से, या कामवासना से भरा हुआ हूं तो आंतरिक अंधकार को स्मरण करो। एक क्षण के लिए आंखें बंद करो। अंधकार की भावना करो और तुम देखोगें कि वासना विलीन हो गई है। कामना विदा हो गई है। आंतरिक अंधकार ने उसे पचा लिया। तुम एक असीम शून्य हो गए हो। जिसमें कोई भी चीज गिर कर फिर वापस लौट सकती है। तुम अब एक अतल खाई है।

इसलिए शिव कहते है: ‘इस प्रकार दोष सदा के लिए विलीन हो जाते है।’

ये विधियां आसान मालूम पड़ती है। वे आसान है। लेकिन क्योंकि वे सरल दिखती है, इसलिए उन्हें प्रयोग किए बगैर मत छोड़ दो। वे तुम्हारे अहंकार को चुनौती न भी दें तो भी प्रयोग करो। यह हमेशा होता है कि हम सरल चीजों को प्रयोग नहीं करते है। हम सोचते है कि वे इतनी सरल है कि सच नहीं हो सकती है। और सत्य सदा सरल होता है। वह कभी जटिल नहीं होता। उसे जटिल होने की जरूरत ही नहीं है। सिर्फ झूठ जटिल होता है। वह सरल नहीं हो सकता। अगर वह सरल हो तो उसका झूठ जाहिर हो जायेगा। और क्योंकि कोई चीज सरल मालूम पड़ती है। हम सोचते है कि इससे कुछ नहीं होगा। ऐसा नहीं है कि उससे कुछ नहीं होता है। लेकिन हमारा अहंकार तभी चुनौती पाता है जब कोई चीज बहुत कठिन हो।

तुम्हारे ही कारण अनेक संप्रदायों ने अपनी विधियों को जटिल बना दिया है। उसकी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन वे उसमे अनावश्यक जटिलता और अवरोध निर्मित करते है। ताकि वे कठिन हो सकें। ताकि वे तुम्हें भाएं। उनसे तुम्हारे अहंकार को चुनौती मिले। अगर कोई चीज बहुत कठिन हो, जिसे बहुत थोड़े

लोग करने में समर्थ हों, तो तुम्हें लगता है कि यह करने जैसा है। यह तुम्हें सिर्फ इसलिए करने जैसा लगता है। क्यों कि बहुत थोड़े लोग ही इसे कर सकते है।

ये विधियां एक दम सरल है। शिव तुम्हारा विचार नहीं करते है; वे विधि का वर्णन ठीक वैसा कर रहे है जैसा वह है। वे उसे सरलतम रूप में, कम से कम शब्दों में सूत्र के रूप में प्रकट कर रहे है। तो अपने अहंकार के लिए चुनौती मत खोजों। ये विधियां तुम्हें अहंकार की यात्रा पर ले जाने के लिए नहीं है। वे तुम्हारे अहंकार को कोई चुनौती नहीं देती। लेकिन यदि तुम इनका प्रयोग करोगे तो वे तुम्हें रूपांतरित कर देंगी। और चुनौती कोई अच्छी बात नहीं है। क्योंकि चुनौती से तुम ज्वर-ग्रस्त हो जाते हो। विक्षिप्त हो जाते हो।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 78

अंधकार संबंधि तीसरी विधि:

"जहां कहीं भी तुम्हारा अवधान उतरे, उसी बिंदु पर अनुभव।"

क्या? क्या अनुभव? इस विधि में सबसे पहले तुम्हें अवधान साधना होगा, अवधान का विकास करना होगा। तुम्हें इस भांति का अवधान पूर्ण रूख, रुझान विकसित करना होगा; तो ही यह विधि संभव होगी। और तब जहां भी तुम्हारा अवधान उतरे, तुम अनुभव कर सकते हो—स्वयं को अनुभव कर सकते हो। एक फूल को देखने भर से तुम स्वयं को अनुभव कर सकते हो। तब फूल को देखना सिर्फ फूल को ही देखना नहीं है। वरन देखने वाले को भी देखना है। लेकिन यह तभी संभव है जब तुम अवधान का रहस्य जान लो।

तुम भी फूल को देखते हो और तुम सोच सकते हो कि मैं फूल को देख रहा हूं। लेकिन तुमने तो फूल के बारे में विचार करना शुरू कर दिया और तुम फूल को चूक गये। तुम वहां नहीं हो जहां फूल है। तुम कहीं और चले गए, तुम दूर हट गए। अवधान का अर्थ है कि जब तुम फूल को देखते हो तो तुम फूल को ही देखते हो। कोई दूसरा काम नहीं करते हो—मानों मत ठहर गया है। अब कोई विचारणा नहीं हे। फूल का सीधा अनुभव भर है। तुम यहां हो और फूल वहां है। और कोई विचारण नहीं, दोनों के बीच कोई विचार नहीं।

यदि यह संभव हो तो अचानक तुम्हारा अवधान फूल से लौटकर स्वयं पर आ जाएगा। एक वर्तुल बन जाएगा। तुम फूल को देखोगें और वह दृष्टि वापस लौटेंगी; फूल उसे वापस कर देगा, द्रष्टा पर ही लौटा देगा। अगर विचार नहीं तो यह घटित होता हे। तब तुम फूल को ही नहीं देखते, तुम देखने वाले को देखते हो। तब देखने वाला और फूल दो आब्जेक्ट्स हो जाते है। तुम दोनों के साक्षी हो जाते हो।

लेकिन पहले अवधान को प्रशिक्षित करना होगा। तुममें अवधान बिलकुल नहीं है। तुम्हारा अवधान सतत बदलता रहता है–यहां से वहां से कही और। तुम एक क्षण के लिए भी अवधान पूर्ण नहीं रहते हो। जब मैं यहां बोल रहा हूं तो तुम मेरी बात भी कभी नहीं सुनते। तुम एक शब्द सुनते हो और फिर तुम्हारा अवधान और कहीं चला जाता है। फिर तुम्हारा अवधान वापस मेरी बात पर आता है। फिर तुम एक शब्द सुनते हो, फिर तुम्हारा ध्यान कही और चला जाता है।

तुम थोड़े से शब्द सुनते हो और बाकी के खाली स्थानों पर अपने शब्द डाल लेते हो। और सोचते हो कि तुमने मुझे सुना। और तुम जो भी यहां से ले जाते हो वह तुम्हारी अपनी रचना है, तुम्हारा अपना धंधा है। तुमने मेरे थोड़े से शब्द सुने और खाली जगह पर अपने शब्द भर दिये। और तुम जितनी खाली जगह को भरते हो, वह पूरी चीज को बदल देती है।

मैं एक शब्द बोलता हूं और तुमने उसके संबंध में झट सोचना शुरू कर दिया; तुम मौन नहीं रह सकते। यदि तुम सुनते हुए मौन रह सको तो तुम अवधान पूर्ण हो। अवधान का अर्थ है वह मौन सजगता। वह शांत बोध। जिसमें विचारों का कोई व्यवधान न हो, बाधा न हो।

तो अवधान का विकास करो। और उसे करके ही तुम उसका विकास कर सकते हो; इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। अवधान दो, उसे बढ़ाते जाओ,प्रयोग से वह विकसित होगा। कुछ भी करते हुए। कहीं भी तुम अवधान को विकसित कर सकते हो। तुम कार में या रेलगाडी में यात्रा कर रहे हो। वही अवधान को बढ़ाने का प्रयोग करो। समय मत गंवाओ। तुम आधा घंटा कार या रेलगाड़ी में रहने वाले हो; वही अवधान साधो। बस वहां होओ। विचार मत करो। किसी व्यक्ति को देखो, रेलगाड़ी को देखो या बाहर देखो,पर द्रष्टा रहो। विचार मत करो। वहां होओ और देखो। तुम्हारी दृष्टि सीधी, प्रत्यक्ष और गहरी हो जाएगी। और तब सब तरफ से तुम्हारी दृष्टि वापस लौटने लगेगी। और तुम द्रष्टा के प्रति बोध से भर जाओगे।

तुम्हें अपना बोध नहीं है। तुम अपने प्रति सावचेत नहीं हो। क्योंकि विचारों की एक दीवार है। जब तुम एक फूल को देखते हो तो पहले तुम्हारे विचार तुम्हारी दृष्टि को बदल देते है; वह उसे अपना रंग दे देते है। और वह दृष्टि वापस आती है। वह तुम्हें कभी वहां नहीं पाती; तुम कहीं और चले गए होते हो। तुम वहां नहीं होते हो।

प्रत्येक दृष्टि वापस लौटती है। प्रत्येक चीज प्रतिबिंबित होती है। प्रतिसंवेदित होती है। लेकिन तुम उसे ग्रहण करने के लिए वहां मौजूद नहीं होते। तो उसके ग्रहण के लिए मौजूद रहो। पूरे दिन तुम अनेक

चीजों पर यह प्रयोग कर सकते हो। और धीरे-धीरे तुम्हारा अवधान विकसित होगा। तब इस अवधान के साथ एक प्रयोग करो।

'जहां कहीं भी तुम्हारा अवधान उतरे, उसी बिंदु पर, अनुभव।'

तब कहीं भी देखा, लेकिन देखो। अब अवधान वहां है। अब तुम स्वयं को अनुभव करोगे। लेकिन पहली शर्त है अवधान पूर्ण होने की क्षमता को प्राप्त करना। और तुम इसका अभ्यास कही भी कर सकते हो। उसके लिए अतिरिक्त समय की जरूरत नहीं है। तुम जो भी कर रहो हो, भोजन कर रहे हो, या स्नान कर रहे हो, बस अवधान पूर्ण होओ।

लेकिन समस्या क्या है? समस्या यह है कि हम सब काम मन के द्वारा करते है। और हम निरंतर भविष्य के लिए योजनाएं बनाते है। तुम रेलगाड़ी में सफर कर रहे हो और तुम्हारा मन किन्हीं दूसरी यात्राओं के आयोजन में व्यस्त है। उनके कार्यक्रम बनाने में संलग्न है। इसे बंद करो।

झेन संत बोकोजू ने कहा है: 'मैं यही एक ध्यान जानता हूं। जब में भोजन करता हूं तो भोजन करता हूं। जब मैं चलता हूं तो चलता हूं। और जब मुझे नींद आती है तो मैं सो जाता हूं। जो भी होता है; होता है, उसमें मैं कभी हस्तक्षेप नहीं करता।'

इतना ही करने को है कि हस्तक्षेप मत करो। और जो भी घटित होता हो उसे घटित होने दो। तुम सिर्फ वहां मौजूद रहो। यही चीज तुम्हें अवधान पूर्ण बनाएगी। और जब तुम्हें अवधान प्राप्त हो जाए तो यह विधि तुम्हारे हाथ में है।

'जहां कहीं भी तुम्हारा अवधान उतरे, उसी बिंदु पर, अनुभव।'

तुम अनुभव करने वाले को अनुभव करोगे। तुम स्वयं पर लौट आओगे। सब जगह से तुम प्रतिबिंबित होगे। सब जगह से तुम प्रतिध्वनित होगे। सारा अस्तित्व दर्पण बन जाएगा। तुम सब जगह प्रति बिंबित होगे। पूरा अस्तित्व तुम्हें प्रतिबिंबित करेगा।

और केवल तभी तुम स्वयं को जान सकते हो। उसके पहले नहीं । जब तक समस्त अस्तित्व ही तुम्हारे लिए दर्पण न बन जाए। जब तक अस्तित्व का कण-कण तुम्हें प्रकट न करे; जब तक प्रत्येक संबंध तुम्हें विस्तृत न करे...। तुम इतने असीम हो कि छोटे दर्पणों से नहीं चलेगा। तुम अंतस से इतने विराट हो कि जब तक सारा आस्तित्व दर्पण न बने, तुम्हें झलक नहीं मिल पाएगी। जब समस्त अस्तित्व दर्पण बन जाता है, केवल तभी तुम प्रतिबिंबित हो सकते हो। तुम्हारे भीतर भगवता विराजमान है।

और अस्तित्व को दर्पण बनाने की विधि है: अवधान पैदा करो, ज्यादा सावचेत बनो, और जहां कहीं तुम्हारा अवधान उतरे–जहां भी, जिस किसी विषय पर भी तुम्हारा ध्यान जाए–अचानक स्वयं को अनुभव करो।

यह संभव है। लेकिन अभी तो यह असंभव है। क्योंकि तुमने बुनियादी शर्त नहीं पूरी की है। तुम एक फूल को देख सकते हो। लेकिन वह अवधान नहीं है। अभी तो तुम फूल के चारों और बाहर-भीतर धूम रहे हो। तुमने भागते-भागते फूल को देखा है; तुम उसके साथ क्षण भर के लिए नहीं रहे हो। रुको, अवधान पैदा करो, सावचेत बनो, और समस्त जीवन ध्यान पूर्ण हो जाता

'जहां कहीं भी तुम्हारा अवधान उतरे, उसी बिंदु पर, अनुभव।'

बस स्वयं को स्मरण करो।

इस विधि के सहयोगी होने का एक गहरा कारण है। तुम एक गेंद को दीवार पर मारो; गेंद वापस लौट आयेगी। जब तुम किसी फूल या किसी चेहरे को देखते हो तो तुम्हारी कुछ उर्जा उस दशा में गति कर रही है। तुम्हारा देखना ही उर्जा है। तुम्हें पता नहीं है कि जब तुम देखते हो तो तुम उर्जा दे रह हो। थोड़ी ऊर्जा फेंक रहे हो। तुम्हारी ऊर्जा का, तुम्हारी जीवन ऊर्जा का एक अंश फेंका जा रहा है। यही कारण है कि दिन भर रास्ते पर देखते-देखते तुम थक जाते हो। चलते हुए लोग, विज्ञापन, भीड़ दुकानें—इन्हें देखते देखते। तुम थकान अनुभव करते हो। और आराम करने के लिए आंखें बंद कर लेना चाहते हो। क्या हुआ? तुम इतने थके माँदे क्यों हो? तुम ऊर्जा फेंकते रहे हो।

बुद्‌ध और महावीर दोनों इस पर जोर देते थे। कि उनके शिष्य चलते हुए दूर तक न देखें। जमीन पर दृष्टि रखकर चलें। बुद्‌ध कहते थे कि तुम सिर्फ चार फीट आगे तक देख सकते हो। इधर-उधर कहीं मत देखो। सिर्फ अपनी राह को देखो जि पर चल रहे हो। चार फीट आगे सरक जाएगी। उससे ज्यादा दूर मत देखो। क्योंकि तुम्हें अकारण अपनी ऊर्जा का अपव्यय नहीं करना है।

जब तुम देखते हो तो तुम थोड़ी ऊर्जा बाहर फेंकते हो। रुको, मौन प्रतीक्षा करो,उस ऊर्जा को वापस आने दो। और तुम चकित हो जाओगे। अगर तुम ऊर्जा को वापस आने देते हो तो तुम कभी नहीं थकोंगे। इसे प्रयोग करो। कल सुबह इस विधि का प्रयोग करो। शांत हो जाओ। किसी चीज को देखो। शांति रहो। उसके बारे में विचार मत करो। और एक क्षण धैर्य से प्रतीक्षा करो। ऊर्जा वापस आएगी। असल में तुम और भी प्राणवान हो जाओगे।

लोग निरंतर मुझसे पूछते है; मैं सतत पढ़ता रहता हूं। इसलिए वे पूछते है; आपकी आंखें अभी भी ठीक कैसे है? आप जितना पढ़ते है, आपको कत का चश्मा लग जाना चाहिए था। तुम पढ़ सकते हो लेकिन अगर तुम निर्विचार मौन होकर पढ़ो तो ऊर्जा वापस आ जाती है। वह व्यर्थ नहीं होती है। और तुम कभी थकान अनुभव नहीं करोगे। मैं जिंदगी भर रोज बारह घंटे पढ़ता रहा हूं। कभी-कभी अठारह घंटे भी; लेकिन मैंने थकावट कभी महसूस नही की। मैंने अपनी आंखों में कभी कोई अड़चन, कभी कोई थकान नहीं अनुभव की।

निर्विचार अवस्था में उर्जा लौट आती है। कोई बाधा नहीं पड़ती है। और अगर तुम वहां मौजूद हो तो तुम उसे पुन: आत्मसात कर लेते हो। और वह पून: आत्मसात करना तुम्हें पुनरुज्जीवित कर देता है। सच तो यह है कि तुम्हारी आंखें थकनें के बजाय ज्यादा शिथिल, ज्यादा प्राणवान, ज्यादा ऊर्जावान हो जाती है।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 79

अग्नि संबंधि पहली विधि:

'भाव करो कि एक आग तुम्हारे पाँव के अंगूठे से शुरू होकर पूरे शरीर में ऊपर उठ रही है। और अंतत: शरीर जलकर राख हो जाता है। लेकिन तुम नहीं।'

यह बहुत सरल विधि है और बहुत अद्‍भुत है, प्रयोग करने में भी सरल है। लेकिन पहले कुछ बुनियादी जरूरतें पूरी करनी होती है।

बुद्‍ध को यह विधि बहुत प्रीतिकर थी और वे अपने शिष्यों को इस विधि में दीक्षित करते थे। जब भी कोई व्यक्ति बुद्‍ध से दीक्षित होता था तो वे उससे पहली बात यही कहते थे; कि मरघट चले जाओ और वहां किसी जलती चिता को देखो, जलते हुए मरघट में बैठकर देखना था।

तो साधक गांव के मरघट में चला जाता था और तीन महीने तक दिन-रात वही रहता था। और जब भी कोई मुर्दा आता, वह बैठकर उस पर ध्यान करता था। वह पहले शव को देखता; फिर आग जलाई जाती और शरीर जलने लगता और वह देखता रहता। तीन महीने तक वह इसके सिवाय कुछ और नहीं करता। वह मुर्दों को जलते देखता रहता।

बुद्‍ध कहते थे, 'उसके संबंध में विचार मत करना, उसे बस देखना।'

और यह कठिन है कि साधक के मन में यह विचार न उठे कि देर-अबेर मेरा शरीर भी जला दिया जायेगा। तीन महीने लंबा समय है। और साधक को रात दिन निरंतर जब भी कोई चिता जलती, उस पर ध्यान करना था। देर अबेर उसे दिखाई देने लगता कि चिता पर मेरा शरीर ही जल रहा है। चिता पर मैं ही जलाया जा रहा हूं।

लोग अपने सगे-संबंधियों को जलाने ले जाते है। लेकिन वे कभी उस घटना को देखते नहीं। वे दूसरी चीजों के संबंध में या मृत्यु के संबंध में ही बातचीत करने लगते है। वे विवाद करते है। विवेचन करते है, वे बहुत कुछ करते है, गपशप करते है, लेकिन वे कभी दाह-संस्कार क्रिया का निरीक्षण नहीं करते है। इसे तो ध्यान बना लेना चाहिए। वहां बातचीत की इजाजत नहीं होनी चाहिए। अपने किसी प्रिय को

जलते हुए देखना दुर्लभ अनुभव है। वहां तुम्हें यह भाव अवश्य उठेगा कि मैं जल रहा हूं। अगर तुम अपनी मां को जलते हुए देख रहे हो, या पिता को, या पत्नी को, या पति को, तो यह असंभव है कि तुम अपने को भी उस चिता में जलते हुए न देखो।

यह अनुभव इस विधि के लिए सहयोगी होगा—यह पहली बात।

दूसरी बात कि अगर तुम मृत्यु से बहुत भयभीत हो तो तुम इस विधि का प्रयोग नहीं कर सकोगे। क्योंकि यह भय ही अवरोध बन जाएगा। तुम उसमें प्रवेश न कर सकोगे। या तुम ऊपर-ऊपर कल्पना करते रहोगे। मगर तुम अपने गहन प्राणों से उसमें प्रवेश नहीं करोगे।

तब तुम्हें कुछ भी नहीं होगा। तो यह दूसरी बात स्मरण रहे कि तुम चाहे भयभीत हो या नहीं हो, मृत्यु निश्चित है। केवल मृत्यु निश्चित है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कि तुम भयभीत हो या नहीं; यह अप्रासंगिक है। जीवन में मृत्यु के अतिरिक्त कुछ भी निश्चित नहीं है। सब कुछ अनिश्चित है। केवल मृत्यु निश्चित है। सब कुछ सांयोगिक है—हो सकता है या नहीं भी हो सकता है। लेकिन मृत्यु सांयोगिक नहीं है।

लेकिन मनुष्य के मन को देखा। हम सदा मृत्यु की चर्चा इस भांति करते है मानों वह दुर्धटना हो। जब भी किसी की मृत्यु होती है, हम कहते है कि वह असमय मर गया। जब भी कोई मरता है तो हम इस तरह की बातें करने लगते है। मानों यह कोई अनहोनी घटना है। सिर्फ मृत्यु अनहोनी नहीं है। सिर्फ मृत्यु सुनिश्चित है। बाकी सब कुछ सांयोगिक है। मृत्यु बिलकुल निश्चित है। तुम्हें मरना है।

और जब मैं कहता हूं कि तुम्हें मरना है तो ऐसा लगता है कि यह मरना कहीं भविष्य में है, बहुत दूर है। ऐसी बात नहीं है। तुम मर ही चुके हो। जिस क्षण तुम पैदा हुए, तुम मर चुके। जन्म के साथ ही मृत्यु निश्चित है। उसका एक छोर, जन्म का छोर घटित हो चुका है। अब दूसरे छोर को, मृत्यु के छोर को घटित होना है। इसलिए तुम मर चुके हो, आधे मर चुके हो। क्योंकि जन्म लेने के साथ ही तुम मृत्यु के घेरे में आ गए, दाखिल हो गए। अब कुछ भी उसे नहीं बदल सकता है। अब उसे बदलने का उपाय नहीं है।

और दूसरी बात कि मृत्यु अंत में नहीं घटेगी, वह घट ही रही है। मृत्यु एक प्रक्रिया है। जैसे जीवन प्रक्रिया है, वैसे ही मृत्यु भी प्रक्रिया है। द्वैत हम निर्मित करते है। लेकिन जीवन ओर मृत्यु ठीक तुम्हारे दो पाँवों की तरह है। जीवन और मृत्यु दोनों एक प्रक्रिया है। तुम प्रतिक्षण मर रहे हो।

मुझे यह बात इस तरह से कहने दो: जब तुम श्वास भीतर ले जाते हो तो वह जीवन है; और जब तुम श्वास बाहर निकालते हो तो वह मृत्यु है। बच्चा जन्म लेने पर पहला काम करता है कि वह श्वास भीतर ले जाता है। बच्चा पहले श्वास छोड़ नही सकता है। उसका पहला काम श्वास लेना है। वह श्वास छोड़ नही सकता। क्योंकि उसके सीने में हवा नहीं है। और मरता हुआ बूढ़ा आदमी अंतिम कृत्य करता है कि

वह श्वास छोड़ता है। मरते हुए तुम श्वास ले नहीं सकते। या कि ले सकते हो। जब तुम मर रहे हो तो तुम श्वास छोड़ना ही होगा। पहला काम श्वास लेना है और अंतिम काम श्वास छोड़ना है। श्वास लेना जीवन और श्वास छोड़ना मृत्यु है। प्रत्येक क्षण तुम यही काम कर रहे हो।

तुमने शायद यह निरीक्षण न किया हो, लेकिन यह निरीक्षण करने जैसा है। जब भी तुम श्वास छोड़ते हो, तुम शांत अनुभव करते हो। लंबी श्वास बाहर फेंको और तुम्हें अपने भीतर एक शांति का अनुभव होगा। और जब भी तुम श्वास भीतर लेते हो तुम बेचैन हो जाते हो। तनावग्रस्त हो जाते हो। भीतर जाती श्वास की तीव्रता ही तनाव पैदा करती है।

और सामान्यत: हम सदा श्वास लने पर जोर देते है। अगर मैं कहूं कि गहरी श्वास लो तो तुम सदा श्वास लने से शुरू करोगे। सच तो यह है कि हम श्वास छोड़ने से डरते है। यही कारण है कि हमारी श्वास इतनी उथली हो गई है। तुम कभी श्वास छोड़ते नहीं, तुम श्वास लेते हो। सिर्फ तुम्हारा शरीर श्वास छोड़ने का काम करता है। क्योंकि शरीर सिर्फ श्वास लेकिन ही जीवित नही रह सकता।

एक प्रयोग करो। पूरे दिन जब भी तुम्हें स्मरण रहे। श्वास छोड़ने पर ध्यान दो। श्वास बाहर फेंको। और तुम श्वास भीतर मत लो। श्वास लेने का काम शरीर पर छोड़ दो; तुम केवल श्वास छोड़ते जाओ। लंबी और गहरी श्वास और तब तुम्हें एक गहन शांति का अनुभव होगा; क्योंकि मृत्यु मौन है, मृत्यु शांति है।

और अगर तुम श्वास छोड़ने पर ध्यान दे सके, ज्यादा से ज्यादा ध्यान दे सके, तो तुम अहंकार रहित अनुभव करोगे। श्वास लेने से तुम ज्यादा अहंकारी अनुभव करोगे। और श्वास छोड़ने से ज्यादा अहंकार रहित। तो श्वास छोड़ने पर ज्यादा ध्यान दो। पूरे दिन जब भी याद आए, गहरी श्वास बाहर फेंको लो मत, श्वास लेने का काम शरीर को करने दो; तुम कुछ मत करो।

श्वास छोड़ने पर यह जोर तुम्हें इस विधि के प्रयोग में बहुत सहयोगी होगा; क्योंकि तुम मरने के लिए तैयार होगे। मरने की तैयारी जरूरी हे। अन्यथा यह विधि बहुत काम की नहीं होगी। और तुम मृत्यु के लिए तैयार तभी हो सकते हो जब तुमने किसी ने किसी तरह से एक बार उसका स्वाद लिया हो। गहरी श्वास छोड़ो और तुम्हें उसका स्वाद मिल जायेगा।

हम मृत्यु से भयभीत है, इसका कारण मृत्यु नहीं है। मृत्यु को तो हम जानते ही नहीं है। तुम उस चीज से कैसे भयभीत हो सकते हो जिसका तुम्हें कभी सामना ही नहीं हुआ। तुम उस चीज से कैसे भयभीत हो सकते हो जिसे तुम जानते ही नहीं। किसी चीज से भयभीत होने के लिए उसे जानना जरूरी है।

तो असल में तुम मृत्यु से भयभीत नहीं हो, यह भय कुछ और है। तुम वस्तुत: कभी जीए ही नहीं; और इससे ही मृत्यु का भय पैदा होता है। मृत्यु का भय पकड़ता है। क्योंकि तुम जी नहीं रहे हो। और तुम्हारा भय यह है: 'अब तक मैं जीया ही नहीं,और मृत्यु आ गई तो क्या होगा? मैं तो अतृप्त अन जीया ही मर जाऊँगा।' मृत्यु का भय उन्हें ही पकड़ता है जो वस्तुत: जीवित नहीं है।

यदि तुमने जीवन को जीया है, जीवन को जाना है, तो तुम मृत्यु का स्वागत करोगे। तब कोई भय नहीं है। तुमने जीवन को जान लिया; अब तुम मृत्यु को भी जानना चाहोगे। लेकिन हम जीवन से ही इतने डरे हुए है कि हम उसे नहीं जान पाए है; हम उसमें गहरे नहीं उतरे है। वही चीज मृत्यु का भय पैदा करती है।

अगर तुम इस विधि में प्रवेश करना चाहते हो तो तुम्हें मृत्यु के प्रति इस सघन भय के प्रति जागना होगा, बोधपूर्ण होना होगा। और इस सघन भय को विसर्जित करना होगा। तो ही तुम इस विधि में प्रवेश कर सकते हो।

इससे मदद मिलेगी; श्वास छोड़ने पर ज्यादा ध्यान दो। सारा ध्यान श्वास छोड़ने पर दो, श्वास लेना भूल जाओ। और डरो मत कि मर जाओगे। तुम नहीं मरोगे। श्वास लेने का काम खुद शरीर कर लेगा। शरीर का अपना विवेक है। अगर तुम गहरी श्वास बाहर फेंकोगे तो शरीर खुद गहरी श्वास भीतर लेगा। तुम्हें हस्तक्षेप करने की जरूरत नहीं है। और तुम्हारी समस्त चेतना पर एक गहरी शांति फैल जाएगी। सारा दिन विश्राम अनुभव करोगे। और एक आंतरिक मौन घटित होगा।

अगर तुम एक और प्रयोग करो तो विश्रांति और मौन का यह भाव और भी प्रगाढ़ हो सकता है। दिन में सिर्फ पंद्रह मिनट के लिए गहरी श्वास बाहर छोड़ो। कुर्सी पर या जमीन पर बैठ जाओ फिर गहरी श्वास छोड़ो और शरीर को श्वास लेने दो। और जब श्वास भीतर जाये, आंखें खोल लो और तुम बाहर चले जाओ। ठीक उलटा करो: जब श्वास बाहर आये तुम भीतर चले जाओ। और जब श्वास भीतर आये तो तुम बाहर चले आओ।

जब तुम श्वास छोड़ते हो तो भीतर खाली स्थान, अवकाश निर्मित होता है। क्योंकि श्वास जीवन है। जब तुम गहरी श्वास छोड़ते हो तो तुम खाली हो जाते हो। जीवन बाहर निकल गया। एक ढंग से तुम मन गए। क्षण भर के लिए मर गए। मृत्यु के उस मौन में अपने भीतर प्रवेश करो। श्वास बाहर जा रही है। आंखें बंद करो और भीतर सरक जाओ। वहां अवकाश है; तुम आसानी से सरक सकते हो। स्मरण रहे, जब तुम श्वास ले रहे हो तो तब भीतर जाना बहुत कठिन है। वहां जाने के लिए जगह कहां। तुम श्वास छोड़ते हुए ही तुम भीतर जा सकते हो। और जब श्वास भीतर हो तो तुम बाहर चले जाओ। आंखें खोलों और बहार निकल जाओ। इन दोनों के बीच एक लयवद्यिता निर्मित करो लो।

पंद्रह मिनट के इस प्रयोग से तुम गहन विश्राम में उतर जाओगे। और तब तुम इस विधि के प्रयोग के लिए अपने को तैयार पाओगे। इस विधि में उतरने के लिए पहले पंद्रह मिनट के लिए यह प्रयोग जरूर करे। ताकि तुम तैयार हो सको–तैयार ही नहीं उसके प्रति स्वागत पूर्ण हो सको। खुले हो सको। मृत्यु का भय खो जाये। क्योंकि अब मृत्यु प्रगाढ़ विश्राम मालूम पड़ेगी। अब मृत्यु जीवन के विरूद्ध नहीं,वरन जीवन का स्त्रोत जीवन की ऊर्जा मालूम पड़ेगा। जीवन तो झील की सतह पर लहरों की भांति है और मृत्यु स्वयं झील है। और जब लहरें नहीं है तब भी झील है। और झील तो लहरों के बिना हो सकती है,

लेकिन लहरें झील के बिना नहीं हो सकती। जीवन मृत्यु के बिना नहीं हो सकता। लेकिन मृत्यु जीवन के बिना हो सकती है। क्योंकि मृत्यु स्त्रोत है। और तब तुम इस विधि का प्रयोग कर सकते हो।

'प्रयोग करो कि एक आग तुम्हारे पाँव के अंगूठे से शुरू होकर पूरे शरीर में ऊपर उठ रही है......।'

बस लेट जाओ। पहले भाव करो कि तुम मर गए हो। शरीर एक शव मात्र है। लेटे रहो और अपने ध्यान को पैर के अंगूठे पर ले जाओ। आंखें बंद करके भीतर गति करो। अपने ध्यान को अँगूठों पर ले जाओं और भाव करो कि वहां से आग ऊपर बढ़ रही है। और सब कुछ जल रहा है......जैसे-जैसे आग बढ़ती है वैसे-वैसे तुम्हारा शरीर विलीन हो रहा है। अंगूठे से शुरू करो और ऊपर बढ़ो।

अंगूठे से क्यों शुरू करो। यह आसान होगा। क्योंकि अंगूठा तुम्हारे 'मैं' से, तुम्हारे अहंकार से बहुत दूर है। तुम्हारा अहंकार सिर में केंद्रित है; वहां से शुरू करना कठिन होगा। तो बिंदु से शुरू करो; भाव करो कि अंगूठे जल रहे है। और वहां अब राख ही बची है।

और फिर धीरे-धीरे ऊपर बढ़ो और जो भी आग की राह में पड़े उसे जलाते जाओ। सारे अंग–पैर,जांघ– विलीन हो जाएंगे। और देखते जाओ कि अंग-अंग राख हो रहे है; जिन अंगों से होकर आग गुजरी है वे अब नहीं है। वे राख हो गए है। ऊपर बढ़ते जाओ; और अंत में सिर भी विलीन हो जाता है। प्रत्येक चीज राख हो गई है; धूल-धूल में मिल रही है। और तुम देख रहे हो।

'और अंततः शरीर जलकर राख हो जाता है। लेकिन तुम नहीं।'

तुम शिखर पर खड़े द्रष्टा रह जाओगे, साक्षी रह जाओगे। शरीर वहां पडा होगा, मृत जला हुआ, राख–और तुम द्रष्टा होगे, साक्षी होगे। इस साक्षी का कोई अहंकार नहीं है।

यह विधि निरहंकार अवस्था की उपलब्धि के लिए बहुत उपयोगी है। क्यो? क्योंकि इसमें बहुत सी बातें घटती है। यह विधि सरल मालूम पड़ती है। लेकिन यह उतनी सरल है नहीं। इसकी आंतरिक संरचना बहुत जटिल है।

पहली बात यह है कि तुम्हारी स्मृतियां शरीर का हिस्सा है। स्मृति पदार्थ है; यही कारण है कि उसे संग्रहीत किया जा सकता है। स्मृति मस्तिष्क के कोष्ठों में संग्रहीत है। स्मृतियां भौतिक है, शरीर का हिस्सा है। तुम्हारे मस्तिष्क का आपरेशन करके अगर कुछ कोशिकाओं को निकाल दिया जाए तो उनके साथ कुछ स्मृतियां भी विदा हो जायेगी। स्मृतियां मस्तिष्क में संग्रहीत रहती है। स्मृति पदार्थ है; उसे नष्ट किया जा सकता है।

और अब तो वैज्ञानिक कहते है कि स्मृति प्रत्यारोपित कि जा सकती है। देर-अबेर हम उपाय खोज लेंगे कि जब आइंस्टीन जैसा व्यक्ति मरे तो हम उसके मस्तिष्क की कोशिकाओं को बचा लें। और उन्हें किसी

बच्चे में प्रत्यारोपित कर दें। और उस बच्चे को आइंस्टीन के अनुभवों से गूज़रें बिना ही आइंस्टीन की स्मृतियां प्राप्त हो जाएगी।

तो स्मृति शरीर का हिस्सा है। और अगर सारा शरीर जल जाए, राख हो जाए,तो कोई स्मृति नहीं बचेगी। याद रहे,यह बात समझने जैसी है। अगर स्मृति रह जाती है तो शरीर अभी बाकी है। और तुम धोखे में हो। अगर तुम सचमुच गहराई से इस भाव में उतरोगे कि शरीर नहीं है। जल गया है, आग ने उसे पूरी तरह राख कर दिया है। तो उसे क्षण तुम्हें कोई स्मृति नहीं रहेगी। साक्षित्व के उस क्षण में कोई मन नहीं रहेगा। सब कुछ ठहर जाएगा। विचारों की गति रूक जाएगी। केवल दर्शन,मात्र देखना रह जाएगा कि क्या हुआ है।

और एक बार तुमने यह जान लिया तो तुम इस अवस्था में निरंतर रह सकते हो। एक बार सिर्फ यह जानना है कि तुम अपने को अपने शरीर से अलग कर सकते हो। यह विधि तुम्हें अपने शरीर से अलग जानने का, तुम्हारे और तुम्हारे शरीर के बीच एक अंतराल पैदा करने का, कुछ क्षणों के लिए शरीर से बाहर होने का एक उपाय है। अगर तुम इसे साध सको तो तुम शरीर में होते हुए भी शरीर में नहीं होगे। तुम पहले की तरह ही जीए जा सकते हो; लेकिन अब तुम फिर कभी वही नहीं हो सकते हो।

इस विधि में कम से कम तीन महीने लगेंगे। इसे करते रहो; यह एक दिन में नहीं होगी। लेकिन यदि तुम प्रतिदिन इसे एक घंटा देते हो तो तीन महीने के भीतर किसी दिन अचानक तुम्हारी कल्पना सफल होगी। और एक अंतराल निर्मित हो जाएगा। और तुम सचमुच देखोगें कि तुम्हारा शरीर राख हो रहा है। तब तुम उसका निरीक्षण कर सकते हो। और उस निरीक्षण में एक गहन तथ्य को बोध होगा। कि अहंकार असत्य है, झूठ है; उसकी कोई सत्ता नहीं है। अहंकार था; क्योंकि तुम शरीर से विचारों से मन से तादात्म्य किए बैठे थे। तुम उनमें से कुछ भी नहीं हो—न मन, न विचार, न शरीर। तुम उस सब से भिन्न हो जो तुम्हें घेर हुए है। तुम अपनी परिधि से सर्वथा भिन्न हो।

तो उपर से यह विधि सरल मालूम पड़ती है। लेकिन यह तुम्हारे भीतर गहन रूपांतरण ला सकती है। लेकिन पहले मरघट में जाकर ध्यान करो, जो लोगों को जलाया जाता है। देखो कि कैसे शरीर जलता है। कैसे शरीर फिर मिट्टी हो जाता है। ताकि तुम फिर आसानी से कल्पना कर सको। और जब अँगूठों से आरंभ करो और बहुत धीरे-धीरे उपर बढ़ो।

और इस विधि में उतरने के पहले श्वास छोड़ने पर ज्यादा ध्यान दो। इस विधि को करने के ठीक पहले पंद्रह मिनट तक श्वास छोड़ो और आंखे बंद कर लो, फिर शरीर को श्वास लेने दो और आंखें खोल दो। पंद्रह मिनट तक गहन विश्राम में रहो। और फिर विधि में प्रवेश करो।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 80

अग्नि संबंधि दूसरी विधि:

'यह काल्पनिक जगत जलकर राख हो रहा है, यह भाव करो; और मनुष्य से श्रेष्ठतर प्राणी बनो।'

अगर तुम पहली विधि कर सके तो यह दूसरी विधि बहुत सरल हो जाएगी। अगर तुम भाव कर सके कि तुम्हारा शरीर जल रहा है तो यह भाव करना कठिन नहीं होगा कि सारा जगत जल रहा है। क्योंकि तुम्हारा शरीर जगत का हिस्सा है। और तुम अपने शरीर के द्वारा ही जगत को जानते हो। उस से जुड़े हो। सच तो यह है कि अपने शरीर के कारण ही तुम इस जगत से जूड़े हो। जगत तुम्हारे शरीर का फैलाव है। अगर तुम अपने शरीर के जलने की कल्पना कर सकते हो तो जगत के जलने की कल्पना करना कठिन नहीं है।

और सूत्र कहता है कि यह जगत काल्पनिक है; वह है, क्योंकि तुमने उसे माना हुआ है। और यह सारा जगत जल रहा है, विलीन हो रहा है।

लेकिन अगर तुम्हें लगे कि पहली विधि कठिन है तो तुम दूसरी विधि से भी आरंभ कर सकते हो। पर पहली को साध लने से दूसरी बहुत आसान हो जाती है। और असल में अगर कोई पहली विधि को साध लेने से दूसरी विधि की जरूरत ही नहीं रहती। तुम्हारे शरीर के साथ सब कुछ अपने आप ही विलीन हो जाता है। लेकिन यदि पहली विधि कठिन लगे तो तुम दूसरी विधि में सीधे भी उतर सकते हो।

मैंने कहा कि अँगूठों से आरंभ करो, क्योंकि वे सिर से, अहंकार से बहुत दूर है। लेकिन हो सकता है कि तुम्हें अँगूठों से आरंभ करने की बात भी न जमे। तो और दूर निकल जाओ–संसार से शुरू करो। और तब अपनी तरफ आओ; संसार से शुरू करो। और अपने निकट आओ। और जब सारा जगत जल रहा हो तो तुम्हारे लिए उस पूरे जलते जगत में जलना आसान होगा।

दूसरी विधि: 'यह काल्पनिक जगत जलकर राख हो रहा है। यह भाव करो;और मनुष्य से श्रेष्ठतर प्राणी बनो।'

अगर तुम सारे संसार को जलता हुआ देख सके तो तुम मनुष्य के ऊपर उठ गए, तुम अतिमान हो गए। तब तुम अति मानवीय चेतना को जान गए।

तुम यह कल्पना कर सकते हो; लेकिन कल्पना का प्रशिक्षण जरूरी है। हमारी कल्पना बहुत प्रगाढ़ नहीं है। यह कमजोर है, क्योंकि कल्पना के प्रशिक्षण की व्यवस्था ही नहीं है। बुद्धि प्रशिक्षित है; उसके लिए विद्यालय है और महाविद्यालय है। बुद्धि के प्रशिक्षण में जीवन का बड़ा हिस्सा खर्च हो जाता है।

लेकिन कल्पना का कोई प्रशिक्षण नहीं होता है। और कल्पना का अपना ही जगत है। बहुत अद्भुत जगत है। यदि तुम अपनी कल्पना को प्रशिक्षित कर सको तो चमत्कार घटित हो सकते है।

छोटी-छोटी चीजों से शुरू करो। क्योंकि बड़ी चीजों में कूदना कठिन है। और संभव है तुम्हें उनमें असफलता हाथ लगे। उदाहरण के लिए, यह कल्पना कि सारा संसार जल रहा है, जरा कठिन है। यह भाव बहुत गहरा नहीं जा सकता है।

पहली बात कि तुम जानते हो कि यह कल्पना है। और यदि कल्पना में तुम सोचो भी कि चारों और लपटें ही लपटें है तो भी तुम्हें लगेगा कि संसार जला नहीं है। वह अभी भी है। क्योंकि यह केवल तुम्हारी कल्पना है। और तुम नहीं जानते हो कि कल्पना कैसे यर्थाथ बनती है। तुम्हें पहले उसे महसूस करना होगा।

इस विधि में उतरने के पहले एक सरल प्रयोग करो। अपने दोनों हाथों को एक दूसरे में गूँथ लो, आंखें बंद कर लो। और भाव करो कि अब वे ऐसे गूँथ गए है कि खुल नहीं सकते। और उन्हें खोलने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता।

शुरू-शुरू में तुम्हें लगेगा कि तुम केवल कल्पना कर रहे हो। और तुम उन्हें खोल सकते हो। लेकिन तुम सतत दस मिनट तक भाव करते रहो कि मैं उन्हें नहीं खोल सकता। मैं उन्हें खोलने के लिए कुछ नहीं कर सकता। मेरे हाथ खुल ही नहीं सकते। और फिर दस मिनट के बाद उन्हें खोलने कि कोशिश करो।

दस में से चार व्यक्ति तुरंत सफल हो जाएंगे। चालीस प्रतिशत लोग तुरंत कामयाब हो जाएंगे—दस मिनट के बाद वे अपने हाथ नहीं खोल सकते। कल्पना यथार्थ हो गई। वे जितना ही संघर्ष करेंगे। वे हाथ खोलने के लिए जितनी ताकत लगाएंगे उतना ही हाथों का खुलना कठिन होता जाएगा। तुम्हें पसीना आने लगेगा। तुम्हारे ही हाथ है। और तुम देख रहे हो कि वे बंध गए है और तुम उन्हें नहीं खोल सकत।

लेकिन भयभीत मत होओ। फिर आंखें बंद कर लो और फिर भाव करो कि मैं उन्हें खोल रहा हूं। खोल सकता हूं। और तुम उसे खोल सकते हो। चालीस प्रतिशत लोग तुरंत खोल लेंगे।

ये चालीस प्रतिशत लोग इस विधि में आसानी से उतर सकते है। उनके लिए कोई कठिनाई नहीं है। बाकी साठ प्रतिशत के लिए यह विधि कठिन पड़ेगी; उन्हें समय लगेगा। जो लोग बहुत भाव प्रवण है वे कुछ भी कल्पना कर सकते है। और वह घटित होगा। और एक बार उन्हें यह प्रतीति हो जाए कि कल्पना यथार्थ हो सकती है। कि भाव वास्तविक बन सकता है। तो उन्हें आश्वासन मिल गया। और वे आगे बढ़ सकते है। तब तुम अपने भाव के द्वारा बहुत कुछ कर सकते हो।

तुम अभी भी भाव से बहुत कुछ करते हो, लेकिन तुम्हें पता नहीं होता। तुम अभी भी करते हो, लेकिन तुम्हें उसका बोध नहीं है। शहर में कोई नया रोग फैलता है, फ्रैंच फ्लू फैलता है, और तुम उसके शिकार हो जाते हो। तुम कभी सोच भी नहीं सकते कि सौ में से सत्तर लोग सिर्फ कल्पना के कारण बीमार हो

जाते है। चूंकि शहर में रोग फैला है। तुम कल्पना करने लगते हो कि मैं भी इसका शिकार होने वाला हूं– और तुम शिकार हो जाओगे। तुम सिर्फ अपनी कल्पना से अनेक रोग पकड़ लेते हो। तुम सिर्फ अपनी कल्पना से अनेक समस्याएं निर्मित कर लेते हो।

तो तुम समस्याओं को हल भी कर सकते हो। यदि तुम्हें पता हो कि तुमने ही उन्हें निर्मित किया है। अपनी कल्पना को थोड़ा बढ़ाओं और तब यह विधि बहुत उपयोगी होगी।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 81

अग्नि संबंधि तीसरी विधि:

'जैसे विषयीगत रूप से अक्षर शब्दों में और शब्द वाक्यों में जाकर मिलते है और विषयगत रूप से वर्तुल चक्रों में और चक्र मूल-तत्व में जाकर मिलते है, वैसे ही अंतत: इन्हें भी हमारे अस्तित्व में आकर मिलते हुए पाओ।'

यह भी एक कल्पना की विधि है।

अहंकार सदा भयभीत है। वह संवेदनशील होने से, खुला होने से डरता है। वह डरता है कि कोई चीज भीतर प्रवेश करके उसे नष्ट कर न दे। इसलिए अहंकार अपने चारों और एक किला बंदी करता है। और तुम एक कारागृह में रहने लगते हो। तुम अपने अंदर किसी को भी प्रवेश नहीं देते हो। तुम डरते हो कि यदि कोई चीज भीतर आ गई तो झंझट खड़ा कर देगी। तो बेहतर है कि किसी को आने ही मत दो। तब सारा संवाद बंद हो जाता है; उनके साथ भी संवाद बंद हो जाता है। जिन्हें तुम प्रेम करते हो। या सोचते हो कि तुम प्रेम करते हो।

किन्हीं पति-पत्नी को बा करते हुए देखा; वे एक दूसरे से बात नहीं कर रहे है। उनके बीच कोई संवाद नहीं है। बल्कि वे शब्दों के द्वारा एक दूसरे से बच रहे है। वे बात कर रहे है ताकि एक दूसरे से बचा जाए। मौन में वे एक दूसरे के प्रति खुल जाएंगे। मौन में वे एक दूसरे के समीप आ जायेंगे। क्योंकि मौन में कोई दीवार नहीं रहती है। कोई अहंकार नही रहता हे। इसलिए पति पत्नी कभी चुप नहीं रहते, वे समय काटने के लिए किसी ने किसी चीज की चर्चा करते रहेगें। अन्यथा डर है कि कहीं एक दूसरे के प्रति संवेदनशील न हो जाएं। खुल न जाएं। हम एक दूसरे से इतने भयभीत है।

मैंने सुना है कि एक दिन मुल्ला नसरूदीन घर से बाहर निकल रहा था कि उसकी पत्नी ने कहा: 'नसरूदीन क्या तुम भूल गये कि आज कौन सा दिन है?' नसरूदीन को पता था, यह विवाह की

पच्चीसवीं वर्षगांठ का दिन था। तो उसने कहा, 'मुझे याद है, बखूबी याद है।' पत्नी ने फिर पूछा: 'तो हम लोग इस दिन को किस तरह मनाने जा रहे है?' नसरूदीन ने कहा: 'प्रिये मुझे नहीं मालूम।' और फिर उसने सिर खुजलाते हुए हैरानी के स्वर में कहा: 'कितना अच्छा होगा कि हम इस उपलक्ष्य में दो मिनट मौन रहें।'

तुम किसी के साथ मौन नहीं रह सकते: तुम बेचैन होने लगते हो। मौन में दूसरा तुम्हें प्रवेश करने लगता है। मौन में तुम खुले होते हो; तुम्हारे द्वार दरवाजे खुल होते है। तुम्हारी खिड़कियाँ खुली होती है। तुम डरते हो। तो तुम बातचीत करते हो, बंद रहने के उपाय करते हो। अहंकार कवच है, अहंकार कारागृह है। और हम इतने असुरक्षित अनुभव करते है। कि हमें कारागृह भी स्वीकार है। कारागृह थोड़ी सुरक्षा का भाव देता है; तुम सुरक्षित अनुभव करते हो।

इस विधि का, इस तीसरी विधि का प्रयोग करने के लिए पहली और सब से बुनियादी बात है कि भली भांति जान लो कि जीवन एक असुरक्षा है। उसे सुरक्षित बनाने का कोई उपाय नहीं है। तुम जो भी करोगे, उससे कुछ होने वाला नहीं है। तुम सिर्फ सुरक्षा का भ्रम पैदा कर सकते हो; जीवन असुरक्षित ही रहता है। असुरक्षा ही उसका स्वभाव है; क्योंकि मृत्यु उसमें अंतर्निहित है, साथ-साथ जुड़ी है। जीवन सुरक्षित कैसे हो सकता है?

एक क्षण के लिए सोचो, अगर जीवन पूरी तरह सुरक्षित हो तो वह मृत ही होगा। सर्वथा सुरक्षित जीवन, समग्ररतः: सुरक्षित जीवन जीवंत नहीं हो सकता। क्योंकि उसमें चुनौती की पुलक नहीं रहेगी। अगर तुम सभी खतरों से सुरक्षित हो जाओगे तो तुम मुर्दा हो जाओगे। जीवन के होने में ही जोखिम है, खतरा है, असुरक्षा है, चुनौती है। उसमें मौत सम्मिलित है।

मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। अब मैं खतरनाक रास्ते पर कदम रखा है। अब कुछ भी सुरक्षित नहीं हो सकता। लेकिन अब मैं कल के लिए सब कुछ सुरक्षित करने की चेष्टा करूंगा। कल के लिए मैं उस सब की हत्या करूंगा जो जीवित है। क्योंकि तभी में कल के लिए सुरक्षित अनुभव करूंगा। तो प्रेम विवाह में बदल जाता है।

विवाह सुरक्षा है। प्रेम असुरक्षित है—अगले क्षण सब कुछ बदल सकता है। और तुमने कितनी-कितनी आशाएं बांधी है। और अगले क्षण प्रेमिका तुम्हें छोड़कर चली जा सकती है। या मित्र तुम्हें छोड़ कर जा सकता है। तुम अपने को अचानक अकेला पाते हो। प्रेम असुरक्षित है। तुम भविष्य के संबंध में आश्वस्त नहीं हो सकते; कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती है।

तो हम प्रेम की हत्या कर देते है। और उसकी जगह एक सुरक्षित परिपूरक खोज लेते है। उसका नाम विवाह है। विवाह के साथ तुम सुरक्षित हो सकते हो, उसकी भविष्यवाणी की जा सकती है। तुम्हारी पत्नी कल भी तुम्हारी पत्नी रहेगी। तुम्हारा पति भविष्य में भी तुम्हारा पति रहेगा। लेकिन क्योंकि तुमने सब सुरक्षा कर ली, अब कोई खतरा नहीं है। प्रेम मर गया। वह नाजुक संबंध मर गया। क्योंकि मृत चीजें ही

स्थाई हो सकती है। जीवित चीजें बदलेगी ही, वे बदलने का बाध्य है। बदलाहट जीवन का गुण है; और बदलाहट में असुरक्षा है।

तो जो भी जीवन की गहराइयों में उतना चाहते है उन्हें असुरक्षित रहने के लिए तैयार रहना चाहिए; उन्हें खतरे में जीने के लिए तैयार रहना चाहिए। उन्हें अज्ञात में जीने के लिए तैयार रहना चाहिए। उन्हें किसी भी तरह भविष्य को बांधने की सुरक्षित करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। यह चेष्टा ही सब चीजों की हत्या कर देती है।

और यह भी स्मरण रहे, असुरक्षा जीवंत ही नहीं है, सुंदर भी है। सुरक्षा कुरूप और गंदी है। असुरक्षा जीवंत और सुंदर है। तुम तभी सुरक्षित हो सकते हो, यदि तुम अपने सभी द्वार दरवाजे , सभी खिड़कियाँ, सब झरोखे बंद कर लो। न हवा को अंदर आने दो और न रोशनी को, कुछ भी अंदर मत आने दो। तब किसी तरह तुम सुरक्षित हो जाते हो। लेकिन तब तुम जीवित नहीं हो, तुम अपनी कब्र में प्रवेश कर गए।

यह विधि तभी संभव है जब तुम खुले हुए हो, ग्रहणशील हो, भयभीत नहीं हो। क्योंकि यह विधि पूरे ब्रह्मांड को अपने में प्रवेश देने की विधि है।

''जैसे विषयीगत रूप से अक्षर शब्दों में और शब्द वाक्यों में जाकर मिलते है और विषयगत रूप में वर्तुल चक्रों में और चक्र मूल तत्व में जाकर मिलते है, वैसे ही अंतत: इन्हें भी हमारे आस्तित्व में आकर मिलते हुए पाओ।''

प्रत्येक चीज मेरे अस्तित्व में आकर मिल रही है। मैं खुले आकाश के नीचे खड़ा हूं और सभी दिशाओं से, सभी कोने-कातर से सारा आस्तित्व मुझमें मिलने चला आ रहा है। इस हालत में तुम्हारा अहंकार नहीं रह सकता। इस खुलेपन में जहां समस्त अस्तित्व तुममें मिल रहा है, तुम 'मैं' की भांति नहीं रह सकते हो। तुम खुले आकाश की भांति तो रहोगे, लेकिन एक जगह केंद्रित 'मैं' की भांति नहीं।

इस विधि को छोटे-छोटे प्रयोगों से शुरू करो। किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाओ। हवा बह रही है। और वृक्ष के पत्तों से सरसराहट की आवाज हो रही है। हवा तुम्हें छूती है, तुम्हारे चारों और डोलती है। तुम्हें छू कर गूजर रही है, लेकिन तुम उसे ऐसे मत गुजरने दो। उसे अपने भीतर प्रवेश करने दो और अपने में होकर गुजरने दो। आंखें बंद कर लो। और जैसे हवा वृक्ष से होकर गुज़रे और पत्तों में सरसराहट हो, तुम भाव करो कि मैं भी वृक्ष के समान खुला हुआ हूं। और हवा मुझमें से होकर गुजर रही है। मेरे आस-पास से नहीं, ठीक मेरे भीतर से होकर वह बह रही है। वृक्ष की सरसराहट तुम्हें अपने भीतर अनुभव होगी और तुम्हें लगेगा कि मेरे शरीर के रंध्र-रंध्र से हवा गुजर रही है।

और हवा वस्तुत: तुमसे होकर गुजर रही है। यह कल्पना ही नहीं है, यह तथ्य है। तुम भूल गये हो। तुम नाक से ही श्वास नहीं लेते,तुम्हारा पूरा शरीर श्वास लेता है। एक-एक रंध्र से श्वास लेता है। लाखों छिद्रों

से श्वास लेता है। अगर तुम्हारे शरीर के सभी छिद्र बंद कर दिये जाये,उन पर रंग पोत दिया जाये और तुम सिर्फ नाक से श्वास लेने दिया जाए तो तुम तीन घंटे के अंदर मर जाओगे। सिर्फ नाक से श्वास लेकर तुम जीवित नहीं रह सकते। तुम्हारे शरीर का प्रत्येक कोष्ठ जीवंत है और प्रत्येक कोष्ठ श्वास लेता है। हवा सच में तुम्हारे शरीर से होकर गुजरती है, लेकिन उसके साथ तुम्हारा संपर्क नहीं रहा है।

तो किसी झाड़ के नीचे बैठो और अनुभव करो। आरंभ में यह कल्पना मालूम पड़ेगी। लेकिन जल्दी ही कल्पना यथार्थ बन जाएगी। वह यथार्थ ही है कि हवा तुमसे होकर गुजर रही है। और फिर उगते हुए सूरज के नीचे बैठो और अनुभव करो कि सूरज की किरणें न केवल मुझे छू रही है। बल्कि मुझमें प्रवेश कर रही है। और मुझसे होकर गुजर रही है। इस तरह तुम खुल जाओगे, ग्रहणशील हो जाओगे।

और यह प्रयोग किसी भी चीज के साथ किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, मैं यहां बोल रहा हूं,और तुम सुन रहे हो। तुम मात्र कानों से भी सून सकते हो और अपने पूरे शरीर से भी सून सकते हो। तुम अभी और यहीं यह प्रयोग कर सकते हो। सिर्फ थोड़ी सी बदलाहट की बात है। और अब तुम मुझे कानों से ही नहीं सुन रहे हो, तुम मुझे अपने पूरे शरीर से सून रहे हो। तुम्हारा कोई अंश नहीं सुनता है, तुम्हारी ऊर्जा का कोई एक खंड नहीं सुनता है; पूरे के पूरे सुनते हो। तुम्हारा समूचा शरीर सुनने में संलग्न होता है। और तब मेरे शब्द तुमसे होकर गुजरते है; अपने प्रत्येक कोष्ठ से, प्रत्येक रंध्र से, प्रत्येक छिद्र से तुम उन्हें पीते हो। वे सभी और से तुममें समाहित होते है।

तुम एक और प्रयोग कर सकते हो: जाओ और किसी मंदिर में बैठ जाओ। अनेक भक्त आएँगे जाएंगे ओर मंदिर का घंटा बार-बार बजेगा। तुम अपने पूरे शरीर से उसे सुनो। घंटा बज रहा है और पूरा मंदिर उसकी ध्वनि से गूंज रहा है। मंदिर की प्रत्येक दीवार उसे प्रतिध्वनित कर रही है। उसे तुम्हारी ओर वापित फेंक रही है।

इस लिए हमनें मंदिर को गोलाकार बनाया है। ताकि आवाज हर तरफ से प्रतिध्वनित हो और तुम्हें अनुभव हो कि हर तरफ से ध्वनि तुम्हारी और आ रही है। सब तरफ से ध्वनि लौटा दी जाती है। सब तरफ से ध्वनि तुममें आकर मिलती है। और तुम उसे अपने पूरे शरीर से सुन सकते हो। तुम्हारी प्रत्येक कोशिका, प्रत्येक रंध्र उसे सुनता है। उसे पीता है। अपने में समाहित करता है। ध्वनि तुम्हारे भीतर होकर गुजरती है। तुम रंध्र मय हो गए हो। सब तरफ द्वार ही द्वार है। अब तुम किसी चीज के लिए बाधा न रहे हो। अवरोध न रहे—न हवा के लिए,न ध्वनि के लिए—न किरण के लिए, किसी के लिए भी नहीं। अब तुम किसी भी चीज का प्रतिरोध नहीं करते हो। अब तुम दीवार न रहे।

और जैसे ही तुम्हें अनुभव होता है कि तुम अब प्रतिरोध नहीं करते,संघर्ष नहीं करते। वैसे ही अचानक तुम्हें बोध होता है कि अहंकार भी नहीं है। क्योंकि अहंकार तो तभी है जब तुम संघर्ष करते हो। अहंकार प्रतिरोध है। जब-जब तुम कहते हो, 'नहीं' अहंकार खड़ा हो जाता है। जब-जब तुम कहते हो 'हां' अहंकार विदा हो जाता है।

मैं उस व्यक्ति को आस्तिक कहता हूं,सच्चा आस्तिक जिसने अस्तित्व को हाँ कहां है। उसमें कोई 'नहीं' नहीं रहा, कोई प्रतिरोध नही रहा। उसे सब स्वीकार है; वह सब कुछ को घटित होने देता है। अगर मृत्यु भी आती है तो वह अपना द्वार बंद नहीं करेगा। उसके द्वार मृत्यु के लिए भी खुले रहेंगे।

इस खुलेपन को लाना है; तो ही तुम यह विधि साध सकते हो। क्योंकि यह विधि कहती है कि सारा अस्तित्व तुममें बहा आ रहा है। तुममें आकर मिल रहा है। तुम समस्त अस्तित्व के संगम हो, तुम्हारी तरफ से विरोध नहीं स्वागत है; तुम उसे अपने में मिलने देते हो। इस मिलन में तुम तो विलीन हो जाओगे, तुम तो शुन्य आकाश हो जाओगे–असीम आकाश। क्योंकि यह विराट ब्रहमांड अहंकार जैसी क्षुद्र चीज में नहीं उतर सकता। वह तो तभी उतर सकता है जब तुम भी उसके जैसे ही असीम हो गए हो। जब तुम स्वयं विराट आकाश हो गए हो। लेकिन यह होता है। धीरे-धीरे तुम्हें ज्यादा से ज्यादा संवेदनशील होना है और तुम्हें अपने प्रतिरोधों के प्रति बोधपूर्ण होना है।

हम बहुत प्रतिरोध से भरे है। अगर मैं अभी तुम्हें स्पर्श करूं तो तुम महसूस करोगे कि तुम मेरे स्पर्श का प्रतिरोध कर रहे हो। तुम एक बाधा खड़ी कर रहे हो। ताकि मेरी ऊष्मा तुममें प्रविष्ट न हो सके। मेरा स्पर्श तुममें प्रविष्ट न हो सके। हम एक दूसरे को छूने को इजाजत भी नहीं देते। अगर कोई तुम्हें जरा सा भी छू देता है तो तुम सजग हो जाते हो और दूसरा कहता है: 'क्षमा करें।'

हर जगह प्रतिरोध है। अगर मैं तुम्हें गौर से देखता हूं तो तुम प्रतिरोध करते हो; क्योंकि मेरा देखना तुममें प्रवेश कर सकता है, तुममें उतर सकता है, तुम्हें उद्वेलित कर सकता है। तब तुम क्या करोगे?

और ऐसा अजनबी व्यक्ति के साथ ही नहीं होता है। वैसे तो अजनबी व्यक्ति के साथ अजनबी है। एक ही छत के नीचे रहने से अजनबी नहीं है। या कहें कि हर कोई अजनबी है। एक ही छत के नीचे रहने से अजनबीपन कैसे मिट सकता है। क्या तुम अपने पिता को जानते हो जिन्होंने तुम्हें जन्म दिया है? वह भी अजनबी है। तो या तो हर कोई अजनबी है या कोई भी अजनबी नहीं है। लेकिन हम डरे हुए है। और हम सब जगह अवरोध निर्मित करते है। और ये अवरोध हमें असंवेदनशील बना देता है। और तब कुछ भी हममें प्रवेश नहीं कर सकता है।

लोग मेरे पास आते है और वे कहते है: 'कोई प्रेम नही करता, कोई मुझे प्रेम नहीं करता है।' और मैं उस व्यक्ति को छूता हूं और महसूस करता हूं कि वह स्पर्श से भी डर जाता है। एक सूक्ष्म खिंचाव है, मैं उसका हाथ अपने हाथ में लेता हूं और वह अपने को सिकोड़ लेता है। वह अपने हाथ में मौजूद ही नहीं है। मेरे हाथ में उसका मुर्दा हाथ है। वह तो पीछे हट चुका है। और वह कहता है कि 'कोई मुझे प्रेम नहीं करता है।'

कोई तुम्हें प्रेम कैसे कर सकता है। और अगर सारा संसार भी तुम्हें प्रेम करे तो भी तुम उसे अनुभव नहीं करोगे। क्योंकि तुम बंद हो। प्रेम तुममें प्रवेश नहीं कर सकता है। कोई द्वार-दरवाजा नहीं है। और तुम अपने ही कारागृह में बंद होकर दुःख पा रहे हो।

अगर अहंकार है तो तुम बंद हो–प्रेम के प्रति, ध्यान के प्रति, परमात्मा के प्रति। इसलिए पहले तो ज्यादा संवेदनशील,ज्यादा ग्राहक, ज्यादा खुले होने की चेष्टा करो; जो तुम्हें होता है उसे होने दो। तो ही भगवता घटित हो सकती है। क्योंकि वह अंतिम घटना है। अगर तुम साधारण चीजों को ही अपने में प्रवेश नहीं दे सकते हो तो परम तत्व को कैसे प्रवेश दोगे? क्योंकि जब तुम्हें परम घटित होगा तब तो तुम बिलकुल नही रहोगे; तुम बिलकुल खो जाओगे।

कबीर ने कहा है: 'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।' खोजने वाला कबीर अब नहीं रहा? वह तो रहा नहीं। कबीर आश्चर्य से पूछते है: 'ये कैसा मिलन है? जब मैं था तो परमात्मा नहीं था और अब जब परमात्मा है तो मैं नहीं हूं।'

लेकिन वस्तुत: यही मिलन-मिलन है। क्योंकि दो नहीं मिल सकते। सामान्यत: हम सोचते है कि मिलन के लिए दो की जरूरत है। अगर एक ही है तो मिलन कैसे होगा। सामान्य तर्क कहता है कि मिलन के लिए दो जरूरी है। मिलन के लिए दूसरा जरूरी है। लेकिन सच्चे मिलन के लिए, उस मिलन के लिए जिसे हम समाधि कहते है, एक ही होना चाहिए। जब साधक है तो साध्य नहीं है। और जब साध्य आता है तो साधक विलीन हो जाता है।

ऐसा क्या होता है?

क्योंकि अहंकार बाधा है। जब तुम्हें लगता है कि मैं हूं तो तुम इतने मौजूद होते हो कि तुममें कुछ भी प्रवेश नही कर सकता। तुम अपने से ही इतने भरे होते हो। जब तुम नहीं होते हो तो सब कुछ तुमसे होकर गुजर सकता है। तुम इतने विराट हो गए होते हो कि परमात्मा भी तुमसे होकर गुजर सकता है। अब पूरा अस्तित्व तुमसे होकर गुजरने को तैयार है; क्योंकि तुम तैयार हो।

धर्म की सारी कला इसमें है कि कैसे स्वयं को खोया जाए कैसे विलीन हुआ जाए। कैसे समर्पित हुआ जाए,कैसे शुन्य आकाश हुआ जाए।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 81

केवल असत्य विलीन हो जाता है:

(अनुभव करो: मेरा विचार,मैं-पन, आंतरिक इंद्रियाँ–मुझ)

यह बहुत ही सरल विधि है और अति सुंदर भी।
पहली बात यह है कि विचार नहीं करना है, अनुभव करना है। विचार करना और अनुभव करना दो भिन्न-भिन्न आयाम है। और हम बुद्धि से इतनी ग्रस्त हो गए है कि जब हम यह भी कहते है कि हम अनुभव करते है तो भी हम अनुभव नही करते,सोच-विचार ही करते है। तुम्हारा भाव-पक्ष, तुम्हारा हृदय-पक्ष, बिलकुल बंद हो गया है। मुर्दा हो गया है। जब तुम कहते हो कि, 'मैं तुम्हें प्रेम करता हूं।' तो भी वह भाव नहीं होता, विचार ही होता है।

और भाव और विचार में फर्क क्या है? अगर तुम भाव करोगे तो तुम अपने को हृदय के पास केंद्रित अनुभव करोगे। अगर मैं कहता हूं कि तुम्हें मैं प्रेम करता हूं तो मेरा यह प्रेम का भाव मेरे हृदय से प्रवाहित होगा। उसका स्त्रोत कहीं हृदय के आसपास होगा। और अगर वह विचार मात्र होगा तो वह सिर से आता होगा। जब तुम किसी व्यक्ति को प्रेम करते हो तो यह महसूस करने की कोशिश करो कि यह प्रेम सिर से आ रहा है या हृदय से।

जब भी तुम किसी प्रगाढ़ भाव में होते हो तो तुम सिर के बिना होते हो। उस क्षण कोई सिर नहीं होता है; हो भी नहीं सकता। तब हृदय तुम्हारा समस्त अस्तित्व होता है—मानों सिर है ही नहीं। भाव की अवस्था में हृदय तुम्हारे होने का केंद्र होता है।

जब तुम सोच-विचार कर रहे होते हो तब सिर तुम्हारे होने का केंद्र होता है। और क्योंकि विचार करना जीने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। इसलिए हमने और सब कुछ बंद कर दिया। हमारे जीवन के अन्य सभी आयाम बंद हो गये है। हम सिर ही सिर रह गये है। और हमारे शरीर सिर के आधार भर है। हम सोच विचार ही करते रहते है। हम अपने भावों के बारे में भी विचार ही करते रहते है।

तो भाव में उतरने की कोशिश करो। तुम्हें थोड़ी मेहनत करनी पड़ेगी; क्योंकि भाव की क्षमता करो। भाव का गुण कुंठित पडा है। उस संभावना का द्वार पुन: खोलने के लिए तुम्हें कुछ करना होगा।

तुम एक फूल को देखते हो, और देखते ही कहते हो कि यह सुंदर है। थोड़ा रुको, जरा प्रतीक्षा करो। जल्दी निर्णय मत करो। प्रतीक्षा करो। और फिर देखो कि कहीं तुमने सिर से ही तो यह नहीं कह दिया कि यह सुंदर है। क्या है तुमने यह अनुभव किया है? क्या सिर्फ यह आदतवश तो नहीं? क्योंकि तुम जानते हो कि गुलाब सुंदर होता है। गुलाब को सुंदर समझा जाता है। लोग कहते है कि यह सुंदर है और तुमने भी अनेक बार कहा है कि सुंदर है।

जैसे ही तुम गुलाब को देखते हो, मन आगे आ जाता है। मन कहता है कि यह सुंदर है। बात खत्म हुई। अब गुलाब से कोई संपर्क नहीं रहा। उसकी जरूरत न रही; तुमने कह दिया। अब तुम अन्यत्र जा सकते हो। गुलाब से कोई मिलन न हुआ; मन ने तुम्हें गुलाब की एक झलक भी नहीं मिलने दी। मन बीच में आ गया और हृदय गुलाब के संपर्क में न आ सका।

केवल हृदय कह सकता है कि यह सुंदर है या नहीं। क्योंकि सौंदर्य एक भाव है, कोई विचार नहीं है। तुम बुद्धि से नहीं कह सकते कि यह सुंदर है। कैसे कह सकते हो? सौंदर्य कोई गणित नहीं है; वह गणनातित है। और सौंदर्य वस्तुत: केवल गुलाब में नहीं है। क्योंकि संभव है कि किसी अन्य के लिए वह जरा भी सुंदर न हो। और कोई अन्य उसे देखे बिना ही उसके पास से गुजर जाए। और यह भी संभव है कि किसी अनय के लिए गुलाब कुरूप हो। तो सौंदर्य केवल गुलाब में नहीं है। सौंदर्य तो हृदय ओर गुलाब के मिलन में है। जब हृदय गुलाब से मिलता है तो सौदर्य का फूल खिलता है। जब हृदय किसी चीज के प्रगाढ़ संपर्क से आता है तो बड़ी अद्भुत घटना घटती है।

जब तुम किसी व्यक्ति के प्रगाढ़ संपर्क में आते हो तो वह व्यक्ति सुंदर हो जाता है। और यह मिलन जितना ज्यादा गहरा होता है उतना ही ज्यादा सौंदर्य प्रकट होता है। तो सौंदर्य वह भाव है जो ह्रदय को घटित होता है। मस्तिष्क को नहीं। सौंदर्य कोई हिसाब-किताब नहीं है और न सौंदर्य को परखने की कोई कसौटी है। वह एक भाव है। यदि मैं कहूं कि गुलाब सुंदर नहीं है। तो तुम विवाद नहीं कर सकते हो, कि क्यों? विवाद करने की जरूरत भी नहीं है। तुम कहोगे: 'यह तुम्हारा भाव है। और गुलाब सुंदर है—यह मेरा भाव है।' वहां विवाद का कोई प्रश्न ही नहीं है। मस्तिष्क विवाद कर सकता है, ह्रदय विवाद नहीं कर सकता। बात वहीं खत्म हो गई: पूर्ण विराम आ गया। अगर मैं कहता हूं कि यह मेरा भाव है, तो विवाद की जरूरत ही नहीं है।

सिर के तल पर विवाद जारी रह सकता है। और फिर हम किसी निष्कर्ष पर पहुंच सकते है। ह्रदय के तल पर निष्कर्ष पहले ही आ चुका है। ह्रदय से निष्कर्ष तक पहुंचने की कोई प्रक्रिया नहीं है। कोई विधि नहीं है। उसका निष्कर्ष तत्काल होता है। तुरंत होता है। सिर से निष्कर्ष पर पहुचने की एक प्रक्रिया है, एक व्यवस्था है: तुम तर्क करते हो, तुम विवाद करते हो, तुम विश्लेषण करते हो, और तब निष्कर्ष पर पहुंचते हो कि ऐसा है या नहीं। ह्रदय के लिए यह तात्कालीन घटना है; निष्कर्ष पहले ही आ जाता है।

सिर के तल पर विवाद जारी रहा सकता है और फिर हम किसी निष्कर्ष पर पहुंच सकते है। ह्रदय के तल पर निष्कर्ष पहले ही आ चुका है। ह्रदय से निष्कर्ष पर पहुंचने की कोई प्रक्रिया नही है। कोई विधि नहीं है। उसका निष्कर्ष तत्काल होता है। तत्क्षण होता है। तुरंत होता है। सिर के निष्कर्ष पर पहुंचने की एक प्रक्रिया है। एक व्यवस्था है; तुम तर्क करते हो, तुम विवाद करते हो, तुम विश्लेषण करते हो, और तब निष्कर्ष पर पहुंचते हो कि ऐसा है या नहीं है। ह्रदय के लिए यह तात्कालिक घटना है; निष्कर्ष पहले ही आ जाता है।

इस पर गौर करो। सिर के तल पर निष्कर्ष अंत में आता है; ह्रदय के तल पर निष्कर्ष पहले ही आता है। ह्रदय से तुम निष्कर्ष पहले ले लेते हो और तब तुम प्रक्रिया खोजते हो। यह प्रक्रिया खोजना सिर का काम है।

तो ऐसी विधियों के प्रयोग में पहली कठिनाई यह है कि तुम्हें यही पता नहीं है कि भाव क्या है। पहले भाव को विकसित करने की कोशिश करो। जब तुम किसी चीज को छुओ तो आंखें बंद कर लो—विचार मत करो। अनुभव करो। उदाहरण के लिए, मैं तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेता हूं, और कहता हूं कि आंखें बंद करो और महसूस करो कि क्या हो रहा है। तो तुम तुरंत कहोगे कि आपका हाथ मेरे हाथ में है।

लेकिन यह भाव नहीं हे। यह विचार है। मैं फिर कहता हूं: 'विचार नहीं, अनुभव करो।' तब तुम कहते हो: 'आप प्रेम प्रकट कर रहे है।' वह भी विचार है। अगर मैं फिर जोर दूँ और आपसे कहूं की अनुभव करो। सिर को बीच में मत लाओ। बताओ की ठीक-ठीक क्या अनुभव हो रहा है। तो ही तुम कुछ अनुभव कर पाओगे। और कहोगे: 'उष्मा अनुभव कर रहा हूं।'

क्योंकि प्रेम भी एक निष्पत्ति है। 'आपका हाथ मेरे हाथ में है।' यह सिर से निकला हुआ विचार है। सच्ची बात यह है कि मेरे हाथ से तुम्हारे हाथ में या तुम्हारे हाथ से मेरे हाथ में एक उष्मा प्रवाहित हो रही है। हमारी जीवन-ऊर्जाओं का मिलन हो रहा है। और मिलन का बिंदु उष्मा से भरा है। यह भाव है। अनुभव है, संवेदना है। यह यथार्थ है।

लेकिन हम निरंतर सिर में रहते है। वह हमारी आदत हो गई है। हमें उसका ही प्रशिक्षण मिला है। तो तुम्हें अपने बंद ह्रदय को फिर से खोलना होगा।

भावों के साथ रहने की चेष्टा करो। दिन में कभी-कभी—जब तुम कोई धंधा नहीं कर रहे हो। क्योंकि धंधे में व्यस्त रहकर शुरू-शुरू में भावों के साथ जीना कठिन होगा। वहां सिर बहुत कुशल सिद्ध हुआ है और वहां भावों का भरोसा नहीं किया जा सकता है। लेकिन जब तुम अपने घर पर बच्चों के साथ खेल रहे हो तो वहां सिर की जरूरत नहीं है—यह धंधा नहीं है। लेकिन तुम तो वहां भी अपने सिर को अलग नहीं करते हो।

तो अपने बच्चों के साथ खेलते हुए,या अपनी पत्नी के साथ बैठे हुए,या कुछ भी न करते हुए, कुर्सी पर विश्राम करते हुए—भाव में जीओं, अनुभव करो। कुर्सी की बुनावट को अनुभव करो, तुम्हारा हाथ कुर्सी को स्पर्श कर रहा है। तुम्हें कैसा अनुभव हो रहा है। हवा चल रही है। हवा अंदर आ रही है, वह तुम्हें स्पर्श कर रही है, तुम्हें कैसा महसूस हो रहा है। रसोईघर से गंध आ रही है; वह कैसी लग रही है। उसे महसूस करो;उस पर विचार मत करो। सोच-विचार मत करने लगो कि रसोईघर में कुछ पक रहा हे। तब तुम उसके बारे में सपना देखने लगोगे। नहीं, तो भी तथ्य है उसे महसूस करो। और तथ्य के साथ रहो; विचार में मत भटकों।

तुम चारों और से घटनाओं से घिरे हो; तुम्हारी तरफ चारों और से बहुत कुछ आ रहा है। तुमसे आकर मिल रहा है। सभी और से अस्तित्व तुमसे मिलने के लिए आ रहा है। तुम्हारी सभी इंद्रियों से होकर तुममें प्रवेश कर रहा है। लेकिन तुम हो कि अपने सिर में बंद हो। तुम्हारी इंद्रियाँ मुर्दा हो गई है। वे कुछ भी महसूस नहीं करती है। तो इसके पहले कि तुम यह विधि प्रयोग करो, थोड़ा संवेदना का विकास जरूरी है। क्योंकि यह आंतरिक प्रयोग है। जब तुम बाह्य को ही नहीं अनुभव कर सकते तो तुम्हारे लिए आंतरिक को अनुभव करना बहुत कठिन है। क्योंकि आंतरिक सूक्ष्म है; अगर तुम स्थूल को नहीं अनुभव कर सकते तो सूक्ष्म को कैसे कर सकते हो। अगर तुम ध्वनियों को नहीं सून सकते हो तो आंतरिक मौन को, निशब्द को, अनाहत नाद को सुनना कठिन होगा। बहुत कठिन होगा। वह बहुत ही सूक्ष्म है।

तुम बग़ीचे में बैठे हो और सड़क पर ट्रैफिक है, शोरगुल है और तरह-तरह की आवाजें आ रही है। तुम अपनी आंखें बंद कर लो और वहां होने वाली सबसे सूक्ष्म आवाज को पकड़ने की कोशिश करो। कोई कौआ कांव-कांव कर रहा है; कौए की इस कांव-कांव पर अपने को एकाग्र करो। सड़क पर यातायात का भारी शोर है। इसमें कौए की आवाज इतनी धीमी हे, इतनी सूक्ष्म है कि जब तक तुम अपने बोध को उस पर एकाग्र नहीं करोगे तुम्हें उसका पता नहीं चलेगा। लेकिन अगर तुम एकाग्रता से सुनोंगे तो सड़क का सारा शोरगुल दूर हट जाएगा। और कौए की आवाज केंद्र बन जाएगी। और तुम उसे सुनोंगे, उसके सूक्ष्म भेदों को भी सुनोंगे। वह बहुत सूक्ष्म है। लेकिन तुम उसे सुन पाओगे।

तो अपनी संवेदनशीलता को बढ़ाओं। तब कुछ स्पर्श करो। जब कुछ सुनो, जब भोजन करो,जब स्नान करो तो अपनी इंद्रियों को खुला रहने दो। और विचार मत करो। अनुभव करो। तुम स्नान कर रहे हो; अपने ऊपर गिरते हुए पानी की ठंडक को महसूस करो। उस पर विचार मत करो। यह मत कहो कि पानी ठंडा है। बहुत अच्छा है। कुछ मत कहो, काई शब्द मत दो। क्योंकि जैसे ही तुम शब्द देते हो, तुम अनुभव से चूक जाते हो। जैसे ही शब्द आते है, मन सक्रिय हो जाता है। कोई शब्द मत दो। शीतलता को अनुभव करो,मगर यह मत कहो कि पानी ठंडा है। कुछ कहने की जरूरत नहीं है।

लेकिन हमारा मन विक्षिप्त है; हम कुछ न कुछ कहे ही चले जाते है।

मुझे स्मरण है, मैं एक विश्वविद्यालय में था। मेरे साथ वहां एक महिला प्रोफेसर भी थी जो लगातार कुछ न कुछ बोलती ही रहती थी। उसके लिए असंभव था की वह कभी भी चुप रहे। एक दिन मैं कालेज के बरामदे में खड़ा था

और सूर्यास्त हो रहा था। अत्यंत सुंदर सूर्यास्त था। और वह स्त्री ठीक मेरे बगल में खड़ी थी। मैंने कहा: 'देखो।' वह कुछ बोल रही थी, तो मैंने उससे कहा: 'देखो कैसा सुंदर सूर्यास्त है।' बह बहुत अनिच्छा से देखने को राज़ी हुई। फिर उसने कहा: 'क्या आप नहीं सोचते की बायी और यदि कुछ और जामुनी रंग रहता तो ठीक था।' यह कोई चित्र नहीं था असली सूर्यास्त था।

हम लगातार बोलते रहते थे। और हमें यह भी बोध नहीं रहता कि हम क्या बोल रहे है। मन की इस सतत बातचीत को बंद करो तो ही तुम अपने भावों को प्रगाढ़ कर सकते हो। और अगर भाव प्रगाढ़ हो तो यह विधि तुम्हारे लिये चमत्कार कर सकती है।

'अनुभव करो: मेरा विचार......।'

आंखों को बंद कर लो और विचार को अनुभव करो। विचारों की सतत धारा चल रही है; विचारों का एक प्रवाह, एक धारा बही जा रही है। इन विचारों को अनुभव करो। और उनकी उपस्थिति को अनुभव करो। तुम जितना ही उन्हें अनुभव करोगे, वे उतने ही अधिक प्रकट होंगे। पर्त दर पर्त, न सिर्फ वे विचार प्रकट होंगे जो सतह पर है; उनके पीछे और भी विचारों की पर्तें है; और उनके पीछे भी और पर्तें है—पर्तों पर पर्तें।

और विधि कहती है, 'अनुभव करो, मेरा विचार।'

और हम कहे चले जाते है: 'ये मेरे विचार है।' लेकिन अनुभव करो: क्या वे सचमुच तुम्हारे विचार है। क्या तुम कह सकते हो कि वे मेरे है? तुम जितना ही अनुभव करोगे। उतना ही तुम्हारे लिए वह कहना कठिन होगा कि वे मेरे है। वे सब उधार है; वे सब बाहर से आए है। वे तुम्हारे पास आए है। लेकिन वे तुम्हारे नहीं है। कोई विचार तुम्हारा नहीं है। वह धूल है जो तुम पर आ जमी है। चाहे तुम्हें यह पता हो या न हो। कि स्त्रोत से यह विचार आया है। तो भी विचार तुम्हारा नहीं है। और अगर तुम पूरी चेष्टा करोगे तो तुम जान लोगे कि यह विचार कहीं से आया है। सिर्फ आंतरिक मौन तुम्हारा है। किसी ने तुम्हें यह नहीं दिया है। तुम इसके साथ ही पैदा हुए थे। और इसके साथ ही तुम मरोगे। विचार तुम्हें दिए गये है। तुम उनसे संस्कारित हो। अगर तुम हिंदू हो तो तुम्हारे विचार एक तरह के है। अगर तुम मुसलमान हो तो तुम्हारे विचार और तरह के है। और अगर तुम कम्युनिस्ट हो तो तुम्हारे विचार कुछ और ही है। वे तुम्हें दिये गये है। या संभवत: तुमने उन्हें स्वेच्छा से ग्रहण किया हुआ है। लेकिन कोई विचार तुम्हारा नहीं है।

अगर तुम विचारों की उपस्थिति, उनकी भीड़ की उपस्थिति महसूस कर सको तो तुम यह भी महसूस करोगे कि वे विचार मेरे नहीं है। यह भीड़ बाहर से तुम्हारे पास आई है। यह तुम्हारे चारों तरफ इकट्ठी हो गई है। लेकिन यह तुम्हारी नहीं है। और अगर तुम्हें यह अनुभव हो कि कोई विचार मेरा नहीं है। तो ही तुम मन को अपने से अलग कर सकते हो। अगर वे विचार तुम्हारे है तो तुम उनका बचाव करोगे। यह भाव कि यह विचार मेरा है। यही तो आसक्ति है। लगाव है। तब मैं उसे अपने भीतर जड़ें देता हूं, तब मैं जीवन बन जाता हूं और विचार मुझमें जड़ें जमा सकता है। और जब मैं देखता हूं कि कोई विचार मेरा नहीं है तो वह निर्मूल हो जाता है। उखड़ जाता है,तब मेरा उससे कोई लगाव नहीं रहता है। 'मेरे' का भाव ही लगाव पैदा करता है।

तुम अपने विचारों के लिए लड़ सकते हो। तुम अपने विचारों के लिए शहीद हो सकते हो। तुम अपने विचारों के लिए हत्या कर सकते हो। खून कर सकते हो। और विचार तुम्हारे नहीं है। चैतन्य तुम्हारा है: लेकिन विचार तुम्हारे नहीं है। और क्योंकि इस बोध से मदद मिलती है?

अगर तुम देख सको कि विचार मेरे नहीं है तो कुछ भी तुम्हारा नहीं रह जाता है। क्योंकि विचार ही हर चीज की जड़ में है। मेरा घर, मेरी संपति, मेरा परिवार—ये चीजें तो बाहरी है। लेकिन गहरे में विचार मेरे है। अगर विचार मेरे है तो ही ये चीजें, इनका विस्तार, इनका फैलाव मेरा हो सकता है। अगर विचार मेरे नहीं है तो कुछ भी महत्व का न रहा। क्योंकि यह भी एक विचार ही है। कि तुम मेरी पत्नी हो। कि तुम मेरे पति हो। यह भी एक विचार ही है। और अगर बुनियादी तौर से विचार ही मेरा नहीं है तो पत्नी मेरी कैसे हो सकती है। या पति मेरा कैसे हो सकता है। विचार के मिटते ही सारा संसार मिट जाता है। तब तुम संसार में रह कर भी संसार में नहीं रहते हो। तुम हिमालय चले जा सकते हो, तुम संसार छोड़ सकते हो, लेकिन अगर तुम सोचते हो कि विचार मेरे है तो तुम कहीं नहीं गए। तुम वहीं हो। हिमालय में बैठे हुए तुम संसार में उतने ही होगे जितने यहां रह कर हो। क्योंकि विचार संसार है। तुम हिमालय में भी अपने विचार साथ लिए जाते है। तुम घर छोड़ देते हो, लेकिन असली घर अंदर है। असली घर विचार की ईटों से बना है। बाहर का घर असली घर नहीं है।

यह अजीब बात है, लेकिन यह रोज ही घटती है। मैं एक व्यक्ति को देखता हूं कि उसने संसार छोड़ दिया और फिर भी वह हिंदू ही है। वह संन्यासी हो जाता है। और फिर भी हिन्दू जैन बना रहा था। इसका क्या मतलब है। यह संसार का त्याग कर देता है। लेकिन विचारों का त्याग नहीं करता। वह अभी भी जैन है। वह अभी भी हिंदू है। उसका विचारों का संसार अभी भी कायम है। और विचारों का संसार ही असली संसार है।

अगर तुम देख सको कि कोई विचार मेरा नहीं है......ओर तुम देख सकोगे। क्योंकि तुम द्रष्टा होगे, और विचार विषय बन जाएंगे। जब तुम शांत होकर विचारों का निरीक्षण करोगे तो विचार विषय होंगे और तुम देखने वाले होगे। तुम द्रष्टा होंगे। तुम साक्षी होगे और विचार तुम्हारे सामने तैरते रहेंगे।

और अगर तुम गहरे देख सके, गहरे अनुभव कर सके। तो तुम देखोगें कि विचारों की कोई जड़ें नहीं है। तुम देखोगें कि विचार आकाश में बादलों की भांति तैर रहे है और तुम्हारे भीतर उसकी कोई जड़ें नहीं है। वे आते है और चले जाते है। तुम नाहक उनके शिकार हो गये हो। नाहक तुम्हारा उनके साथ तादात्म्य हो गया है। विचार का जो भी बादल तुम्हारे घर से गुजरता है, तुम कहते हो कि यह मेरा बादल है।

विचार बादलों जैसे है। तुम्हारी चेतना के आकाश से वे गुजरते रहते है और तुम उनसे लगाव निर्मित करते रहते हो। तुम कहते हो कि यह बादल मेरा है। और सिर्फ एक आवारा बादल है, जो गुजर रहा है। और यह गुजर जाएगा। अपने बचपन में लोटों। उस समय भी तुम्हारे कुछ विचार थे। और उनसे तुम्हारा लगाव था। और तुम कहते थे कि वे मेरे विचार है। और फिर बचपन विदा हो गया। और बचपन के साथ वे विचार, वे बादल भी विदा हो गये। अब वे तुम्हें याद भी नहीं है। फिर तुम जवान हुए। और तब दूसरे बादल आए, जो जवानी से आकर्षित होकर आते है। और तुमने उनसे भी अपना लगाव बनाया। और अब तुम बूढ़े हो। जवानी के विचार अब नहीं है; वे अब तुम्हें याद तक नहीं है। और कभी वे इतने महत्वपूर्ण थे कि तुम उनके लिए जान तक दे सकते थे। वे अब याद तक नहीं है। अब तुम अपनी उस मूढ़ता पर हंस सकते हो। तुम उसके लिए मर सकते थे। कि तुम उसके लिए शहीद हो सकते थे। अब तुम उनके लिए दो कौड़ी भी खर्च करने को राज़ी नहीं हो। वे अब तुम्हारे न रहे। वे बादल चले गए। लेकिन उनकी जगह दूसरे बादल आ गए है और तुम उन्हें पकड़कर बैठ गए हो।

बादल बदलते रहते है, लेकिन तुम्हारा लगाव, तुम्हारी पकड़ नहीं बदलती। यही समस्या है। और ऐसा नहीं है कि तुम्हारे बचपन के जाने पर ही बादल बदलते है। वे प्रतिपल बदल रहे है। एक मिनट पहले तुम एक तरह के बादलों से घिरे थे, अब तुम और तरह के बादलों से घिरे हो। जब तुम यहां आये थे, एक तरह के बादल तुम पर मंडरा रहे

थे। जब तुम यहां से जाओगे, दुसरी तरह के बादल मंडराएंगे। और तुम प्रत्येक बादल के साथ चिपक जाते हो। उससे लगाव बना लेते हो। अगर अंत में तुम्हारे हाथ कुछ भी नहीं आता है तो यह स्वाभाविक है,क्योंकि बादलों से क्या मिल सकता है? और विचार बादल ही है।

यह विधि जड़ से ही शुरू करती है। और विचार ही सबकी जड़ है। अगर 'मेरे' के भाव को उसकी जड़ में ही काट सको तो वह फिर प्रकट नहीं होगा—वह फिर कहीं नहीं दिखाई पड़ेगा। और अगर तुम उसे जड़ से नहीं काटते हो तो फिर और कहीं काटने से कुछ नहीं होगा—चाहे तुम जितना काटो वह व्यर्थ होगा; वह फिर-फिर प्रकट होता रहेगा। मैं उसे काट सकता हूं; मैं कह सकता हूं कि कोई मेरी पत्नी नहीं है। हम लोग अजनबी है और विवाह तो केवल एक सामाजिक औपचारिकता है। मैं अपने को अलग कर लेता हूं; मैं कहता हूं कि कोई मेरी पत्नी नहीं है। लेकिन यह बात बहुत सतही है। फिर मैं कहता हूं: मेरा धर्म। फिर मैं कहता हूं: मेरा संप्रदाय। मैं कहता हूं: यह मेरा धर्मग्रंथ, यह बाईबिल है, यह कुरान है, यह मेरा शास्त्र है। इस तरह 'मेरे' का भाव किसी दूसरे क्षेत्र में जारी रहता है। और तुम वही के वही रहते हो।

'मेरा विचार' और तब 'मैं-पन'। पले विचारों की श्रंखला को देखो। विचारों की प्रक्रिया को देखो,विचारों के प्रवाह को देखो। और खोजों कि कौन से विचार तुम्हारे है, या कि वे भटकते बादल भर है। और जब तुम्हें प्रतीत हो कि काई विचार तुम्हारे नहीं है। विचारों से 'मेरे' को जोड़ना ही भ्रम है। तो तुम आगे बढ़ सकते हो। तब तुम और गहरे उतर सकते हो। तब मैं-पन के प्रति होश साधो। यह ''मैं'' कहा है?

रमण अपने शिष्यों को एक विधि देते थे। उनके शिष्य पूछते थे: 'मैं कौन हूं?' तिब्बत में भी वे एक ऐसी ही विधि का उपयोग करते है जो रमण की विधि से भी बेहतर है। वे यह नहीं पूछते थे कि मैं कौन हु। वे पूछते थे कि 'मैं कहां हूं?' क्योंकि ये 'कौन' समस्या पैदा कर सकता है। जब तुम पूछते हो कि 'मैं कौन हूं?' तो तुम यह तो मान हीलेते हो कि मैं हूं, इतना ही जानना है कि मैं कौन हूं। अब प्रश्न इतना ही है कि मैं कौन हूं। केवल प्रतिभिक्षा होनी है, सिर्फ चेहरा पहचानना है; लेकिन वह है—अपरिचित ही सही, पर वह है।

तिब्बती विधि रमण की विधि से बेहतर है। तिब्बती विधि कहती है कि मौन हो जाओ और खोजों कि मैं कहां हूं। अपने भीतर प्रवेश करो। एक-एक कोन कातर में जाओ और पूछो: 'मैं कहां हूं?' तुम्हें 'मैं' कहीं नहीं मिलेगा। तुम उसे कहीं नहीं पाओगे। तुम उसे जितना ही खोजोगे उतना ही वह वहां नहीं होगा।

और यह पूछते-पूछते कि 'मैं कौन हूं?' या की मैं 'कहां हूं?' एक क्षण आता है जब तुम उस बिंदु पर होते हो जहां तुम तो होते हो, लेकिन कोई 'मैं' नहीं होता। जहां तुम बिना किसी केंद्र के होते हो। लेकिन यह तभी घटित होगा जब तुम्हारी अनुभूति हो कि विचार तुम्हारे नहीं है। यह ज्यादा गहन क्षेत्र है-यह 'मैं'-पन'।

हम इसे कभी अनुभव नहीं करते है। हम सतत 'मैं-मैं' करते रहते है। 'मैं' शब्द का निरंतर उपयोग होता रहता है। जो शब्द सर्वाधिक उपयोग में किया जात है वह 'मैं' है। लेकिन तुम्हें उसका अनुभव नहीं होता। 'मैं' से तुम्हारा क्या मतलब है? जब तुम कहते हो मैं तो उससे क्या मतलब है। मैं इशारा कर सकता हूं और कह सकता हूं कि मेरा मतलब यह है। मैं अपने शरीर की तरफ इशारा कर सकता हूं। और कह सकता हूं कि मेरा मतलब यह है1 लेकिन तब यह पूछा जा सकता है कि तुम्हारा मतलब हाथ से है। कि तुम्हारा मतलब पैर से है। कि तुम्हारा मतलब पेट से है। तब मुझे इनकार करना पड़ेगा; मुझे नहीं कहना पड़ेगा। और इस तरह मुझे पूरे शरीर को ही इंकार करना होगा। तो फिर तुम्हारा क्या मतलब है जब तुम 'मैं' कहते हो। क्या तुम्हारा मतलब सिर से है? कहीं गहरे में जब भी तुम 'मैं' कहते हो,एक बहुत धुंधला-सा, अस्पष्ट सा भाव होता है। और यह अस्पष्ट भाव तुम्हारे विचारों का है।

भाव में स्थित होकर, विचारों से पृथक होकर इस ‘मैं-पन’ का साक्षात करो, इसे सीधे-सीधे देखो। और जैसे-जैसे तुम उसका साक्षात करते हो तुम पाते हो कि वह नहीं है। वह सिर्फ एक उपयोगी शब्द था। भाषागत प्रतीक था। आवश्यक था; लेकिन वह सत्य नहीं था। बुद्‌ध भी उसका उपयोग करते है। बुद्‌धत्व को उपलब्ध होने के बाद भी वे उसका उपयोग करते है। यह सिर्फ एक कामचलाऊ उपाय है। लेकिन जब बुद्‌ध ‘मैं’ कहते है तो उसका मतलब अहंकार नहीं होता,क्योंकि वहां कोई भी नहीं है।

जब तुम इस ‘मैं-पन’ का साक्षात करोगे तो यह विलीन हो जाएगा। इस क्षण में तुम्हें भय पकड़ सकता है। तुम आतंकित हो सकते हो। और यह अनेक लोगों के साथ होता है कि जब वे इस विधि में गहरे उतरते है तो वे इतने भयभीत हो जाते है कि भाग खड़े होते है।

तो यह स्मरण रहे: जब तुम अपने मैं पन का साक्षात करोगे, उसको अनुभव करोगे। तो तुम ठीक उसी स्थिति में होगे जिस स्थिति में मृत्यु के समय होगा। ठीक उसी स्थिति में क्योंकि ‘मैं’ विलीन हो रहा है। और तुम्हें लगेगा कि मेरी मृत्यु घटित हो रही है। तुम्हें डूबने जैसा भाव होगा कि मैं डूबता जा रहा हूं। और यदि तुम भयभीत हो गये। तो तुम बाहर आ जाओगे। और फिर विचारों को पकड़ लोगे; क्योंकि वे विचार सहयोगी होंगे। वे बादल वहां होंगे; तुम उनसे फिर चिपक जा सकते हो, और तुम्हारा भय जाता रहेगा।

पर स्मरण रहे, यह भय बहुत शुभ है। यह एक आशापूर्ण लक्षण है। यह भय बताता है कि तुम गहरे जा रहे हो। और मृत्यु गहनत्म बिंदू है। यदि तुम मृत्यु में उतर सके तो तुम अमृत हो जाओगे। क्योंकि जो मृत्यु में प्रवेश कर जाता है, उसकी मृत्यु असंभव है। क्योंकि जो मृत्यु में उतर जाता है, उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। तब मृत्यु भी बाहर-बाहर है। परिधि पर है। मृत्यु कभी केंद्र पर नहीं है। वह सदा परिधि पर है। जब मैं पन विदा होता है तो तुम ठीक मृत्यु जैसे ही हो जाते हो। पुराना गया और नये का आगमन हुआ।

यह चैतन्य, जो मैं-पन के जाने पर आता है, सर्वथा नया है। अछूता है, युवा है, कुंआरा है। पुराना बिलकुल नहीं बचा और पुराने ने इसे स्पर्श भी नहीं किया है। वह मैं-पन विलीन हो जाता है और तुम अपने अछूते कुंआरापन में, अपनी संपूर्ण ताजगी में प्रकट होते हो। तुमने अस्तित्व का गहरे से गहरातल छू लिया है।

तो इस तरह सोचो: विचार, उसके नीचे मैं-पन, उसके नीचे तीसरी चीज:

‘अनुभव करो: मेरा विचार, मैं-पन, आंतरिक इंद्रियाँ—मुझ।’

जब विचार विलीन हो चुके है या उन पर तुम्हारी पकड़ छूट गई है—वे चल भी रहे हों तो उनसे तुम्हें लेना-देना नहीं है। तुम पृथक, अनासक्त और विमुक्त हो—और मैं-पन भी विदा हो गया है, तब तुम आंतरिक इंद्रियों को देखते हो। ये आंतरिक इंद्रियाँ—यह सबसे गहरी बात है। हम अपने बाह्म इंद्रियों को जानते है। हाथ से मैं तुम्हें छूता हूं। आँख से देखता हूं। ये बाह्म इंद्रियां है। आंतरिक इंद्रियां वे है, जिनमें मैं अपने होने को देखता हूं। महसूस करता हूं, अनुभव करता हूं। बाह्म इंद्रियां दूसरों के लिए है। मैं बाह्म इंद्रियों के द्‌वारा तुम्हारे संबंध में जानता हूं।
लेकिन मैं अपने बारे में कैसे जानता हूं? ये हूं, यह भी मैं कैसे जानता हूं? मुझे मेरे होने की अनुभूति, होने की प्रतीति, होने का अहसास कौन देता है?

इसके लिए आंतरिक इंद्रियां है। जब विचार ठहर जाते है और जब मैं-पन नहीं बचता है तो उस शुद्‌धता में, उस स्पष्टता में तुम आंतरिक इंद्रियों को देख सकते हो।

चैतन्य, प्रतिभा, मेधा—ये आंतरिक इंद्रियां है। उनके द्वारा हमें अपने होने का, अपने अस्तित्व का बोध होता है। यही कारण है कि अगर तुम अपनी आंखें बंद कर लो तो तुम अपने शरीर को बिलकुल भूल सकते हो। लेकिन तुम्हारा यह भाव कि मैं हूं बना ही रहेगा।

और उससे ही यह बात भी समझ में आती है—और यह बात बिलकुल सच है—कि जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो हमारे लिए तो वह मर जाता है, लेकिन उसे थोड़ा समय लग जाता है इस तथ्य को पहचानने में कि मैं मर गया हूं। क्यों कि होने का आंतरिक भाव वही का वही बना रहता है।

तिब्बत में तो मरने के विशेष प्रयोग है और वे कहते है कि मरने की तैयारी बहुत जरूरी है। उनका एक प्रयोग इस प्रकार है: 'जब भी कोई व्यक्ति मरने लगता है तो गुरु या पुरोहित, या कोई भी जो बारदो प्रयोग जानता है, उससे कहता है कि 'स्मरण रखो, ''होश रखो'' बोध बनाए रखो कि मैं शरीर छोड़ रहा हूं।'' क्योंकि जब तुम शरीर छोड़ देते हो तो यह समझने में थोड़ा समय लगाता है कि मैं मर गया। क्योंकि आंतरिक भाव वही का वही बना रहता है। उसमें कोई बदलाहट नहीं होती।

शरीर तो केवल दूसरों को छूने और अनुभव करने के लिए है। इसके द्वारा तुमने कभी अपने को नहीं स्पर्श किया है। न अपने को जाना है। तुम अपने को किन्हीं अनय इंद्रियों के द्वारा जाते हो। जो आंतरिक है। लेकिन हमारी मुश्किल यह है कि हमें अपने उन इंद्रियों का पता नहीं है। और हम अपने को दूसरों के द्वारा जानते है। हमारी ही नजर में हमारी जो तस्वीर है। वह दूसरों द्वारा निर्मित है। मेरे बारे में दूसरे जो कहते है, वहीं मेरी मेरे संबंध में जानकारी है। अगर वे कहते है कि तुम सुंदर हो, या अगर वे कहते है कि तुम कुरूप हो, तो मैं उस पर भरोसा कर लेता हूं। मेरे बारे में दूसरों के माध्यम से, दूसरों से प्रतिफलित होकर जो कुछ मुझे बताती है। वही मेरे संबंध में धारणा बन जाती है।

अगर तुम अपनी आंतरिक इंद्रियों को पहचान लो तो तुम समाज से बिलकुल मुक्त हो गए। यह मतलब है जब पुराने शास्त्रों में कहा जाता है कि संन्यासी समाज का हिस्सा नहीं है। क्योंकि वह अब स्वयं को आंतरिक इंद्रियों के द्वारा जानता है। अब उसका अपने संबंध में ज्ञान दूसरों के मत पर आधारित नहीं है, अब यह ज्ञान किसी के माध्यम से देखा गया प्रतिफलन नहीं है। अब उसे स्वयं को जानने के लिए किसी दर्पण की जरूरत नहीं है। उसने आंतरिक दर्पण को पा लिया है। और वह स्वयं को आंतरिक दर्पण जानता है।

और आंतरिक सत्य को तभी जाना जा सकता है जब तुमने आंतरिक इंद्रियों को पा लिया हो। और तब तुम उन आंतरिक इंद्रियों के द्वारा देख सकेत हो। और तब—'मुझे'। इसे शब्दों में कहना गलत होगा। इस लिए 'मुझे' का प्रयोग किया गया है। कोई शब्द गलत होगा 'मुझे' भी गलत है। लेकिन मैं विलीन हो गया। स्मरण रहे, इस 'मुझ' को 'मैं' से कुछ लेना-देना नहीं है। जब 'मुझ' प्रकट होता है। तब पहली दफा मेरा असली होना प्रकट होता है। वह असली होना 'मुझ' है।

बाहरी संसार न रहा, विचार न रहे,अहंकार का भाव न रहा और मैंने अपनी आंतरिक इंद्रियों को, चैतन्य को, मेधा को, या उसे जो कुछ भी कहो, जान लिया है। तब इस आंतरिक इंद्रियों के प्रकाश में 'मुझे' का आवरण होता है। यह 'मुझ' तुम्हारा नहीं है; यह तुम्हारा अंतरतम है। यह 'मुझ' जागतिक है, विराट है। इस 'मुझ' की कोई सीमा नहीं है। इसमें सब कुछ निहित है, समाया है। यह लहर नहीं है; यह सागर ही है।

'अनुभव करो: मेरा विचार, मैं-पन, आंतरिक इंद्रियां।'

और तब एक अंतराल है और अचानक 'मुझ' प्रकट होता है। जब यह 'मुझ' प्रकट होता है तो व्यक्ति जानता है कि मैं ब्रह्म हूं, अहं ब्रह्मास्मि। अहंकार का दावा नहीं है। अहंकार तो जा चूका। इस विधि के द्वारा तुम अपना रूपांतरण कर सकते हो। लेकिन पहले भाव में स्थिर होओ।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 83

दूसरी विधि:

(कामना के पहले और जानने के पहले मैं कैसे कह सकता हूं कि मैं हूं। विमर्श करो। सौंदर्य में विलीन हो जाओ।)

एक कामना पैदा होती है और कामना के साथ यह भाव पैदा होता है कि मैं हूं। एक विचार उठता है और विचार के साथ यह भाव उठता है कि मैं हूं। इसे अपने अनुभव में ही देखो; कामना के पहले और जानने के पहले अहंकार नहीं है।

मौन बैठो और भीतर देखो। एक विचार उठता है। और तुम उस विचार के साथ तादात्म्य कर लेते हो। एक कामना पैदा होती है और तुम उस कामना के साथ तादात्म्य कर लेते हो। तादात्म्य में तुम अहंकार बन जाते हो। फिर जरा सोचो: कोई कामना नही है। कोई ज्ञान नहीं है। कोई विचार नहीं है—तुम्हारा किसी के साथ तादात्म्य नहीं हो सकता है। अहंकार खड़ा नहीं हो सकता।

बुद्ध ने इस विधि का उपयोग किया है। और उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि और कुछ मत करो, सिर्फ इतना ही करो कि जब कोई विचार उठे तो उसे देखो। बुद्ध कहा करते थे कि जब कोई विचार उठे तो देखो कि यह विचार उठ रहा है। अपने भीतर ही देखो कि अब विचार उठ रहा है, अब विचार है। अब विचार विदा हो रहा है। बस देखते भर रहो। कि अब विचार उठ रहा है। अब विचार पैदा हो रहा है। अब विचार विलीन हो रहा है। ऐसा देखने से तादात्म्य नहीं होता।

यह विधि सुंदर है और बहुत सरल है। एक विचार उठता है। तुम सड़क पर चल रहे हो, एक सुंदर कार गुज़रती है और तुम उसे देखते हो। और तुमने अभी देखा भी नहीं कि उसे पाने की कामना पैदा हो जाती है। इस पर प्रयोग करो। आरंभ में धीमे शब्दों में कहो, धीरे से कहो कि मैं कार देखता हूं, कार सुंदर है और उसे पाने की कामना पैदा हो रही है। पूरी घटना को शब्दिक रूप दो।

शुरू-शुरू में शाब्दिक रूप देना अच्छा है। अगर तुम इसे जोर से कह सको तो और भी अच्छा है। जोर से कहो कि 'मैं देख रहा हूं कि एक कार गुजरी है और मन कहता है कि कार सुंदर है और अब कामना उठी है कि यह कार प्राप्त करके रहूंगा।' सब कुछ शब्दों में कहो, स्वयं से ही कहो और जोर से कहो; और तुरंत तुम्हें अहसास होगा कि मैं इस पूरी प्रक्रिया से अलग हूं।

पहले देखो, मन ही मन में कामना के उठने को देखो। और जब तुम देखने में निष्णात हो जाओ तब जोर से कहने की जरूरत नहीं है। तब मन ही मन देखो कि एक कामना पैदा हुई है। एक सुंदर स्त्री गुजरती है। और कामवासना उठती है। उसे मन ही मन ऐसे देखो जैसे कि तुम्हें उससे कुछ लेना देना नहीं है। तुम सिर्फ घटित होने वाल तथ्य को देख भर रहे हो। और तुम अचानक अनुभव करोगे कि मैं इससे बाहर हूं।

बुद्ध कहते है कि जो भी हो रहा है, उसे देखो; और जब वह विदा हो जाए तो उसे भी देखो कि अब कामना विदा हो गई है। और तुम उस विचार से, उस कामना से एक दूरी, एक पृथकता अनुभव करोगे।

यह विधि कहती है: 'कामना के पहले ओर जानने के पहले के पहले मैं कैसे कह सकता हूं कि मैं हूं?'
अगर कोई कामना नहीं है, कोई विचार नहीं है। तो तुम कैसे कह सकते हो कि मैं हूं? मैं कैसे कह सकता हूं कि मैं हूं? तब सब कुछ मौन है, शांत है; एक लहर भी तो नहीं है। और लहर के बिना मैं 'मैं' का भ्रम कैसे निर्मित कर सकता हूं? अगर कोई लहर हो तो मैं उससे आसक्त हो सकता हूं और उसके माध्यमसे में अनुभव कर सकता हूं कि मैं हूं। जब चेतना में कोई लहर नहीं है तो कोई 'मैं'नहीं है।

तो कामना के उठने से पहले स्मरण रखो, जब कामना आ जाए तो स्मरण रखो, और जब कामना विदा हो जाए तो भी स्मरण रखो। जब कोई विचार उठे तो स्मरण रखो, उसे देखो। सिर्फ देखो कि विचार उठा है। देर अबेर वह विदा हो जाएगा। क्योंकि सब कुछ क्षणिक है। और बीच में एक अंतराल होगा। दो विचारों के बीच में खाली जगह है। दो कामनाओं के बीच में अंतराल है। और उस अंतराल में, उस खाली जगह में 'मैं'नहीं है।

मन में चलते विचार को देखो और तुम पाओगे कि वहां एक अंतराल भी है चाहे वह कितना ही छोटा हो, अंतराल है। फिर दूसरा विचार आता है और फिर एक अंतराल। उन अंतरालों में 'मैं' नहीं। और वे अंतराल ही तुम्हारा असली होना है। तुम्हारा अस्तित्व है। आकाश में विचार के बादल चल रहे है। दो बादलों के अंतराल को देखो और आकाश प्रकट हो जाएगा।

'विमर्श करो। सौंदर्य में विलीन हो जाओ।'

विमर्श करो कि कामना पैदा हुई और कामना विदा हो गई—और मैं उसके अंतराल में हूं और कामना ने मुझे अशांत नहीं किया है। विमर्श करो कि कामना आई, कामना गई, वह थी और अब नहीं है। और मैं अनुद्विग्न रहा हूं। वैसा ही रहा हूं जैसा पहले था; मुझमें कोई बदलाहट नहीं हुई है। विमर्श करो कि कामना छाया की भांति आई और चली गई। उसने मुझे स्पर्श भी नहीं किया। मैं अछूता रह गया। इस कामना की गतिविधि के प्रति, इस विचार की हलचल के प्रति विमर्श से भरों। और अपने भीतर की अगति के प्रति भी, ठहराव के प्रति भी विमर्श पूर्ण होओ।

'विमर्श करो। सौंदर्य में विलीन हो जाओ।'

और वह अंतराल सुंदर है; उस अंतराल में डूब जाओ। उस अंतराल में डूब जाओ। शून्य हो जाओ। यह सौंदर्य का प्रगाढ़तम अनुभव है। और केवल सौंदर्य का ही नहीं, शुभ और सत्य का भी प्रगाढ़तम अनुभव है। उस अंतराल में तुम हो।

सारा ध्यान भरे हुए स्थानों से हटाकर खाली स्थानों पर लगाना है। तुम कोई किताब पढ़ रहे हो। उसमें शब्द है, उसमें वाक्य है। लेकिन शब्दों के बीच वाक्यों के बीच खाली स्थान पर भी है। और उन खाली स्थानों में तुम हो।

कागज की जो शुभ्रता है, वह तुम हो; और जो काले अक्षर है वे तुम्हारे भीतर चलने वाले विचार और कामना के बादल है। अपने परिप्रेक्ष्य को बदलों; काले अक्षरों को मत देखो, शुभ्रता को देखो।

अपने प्राणों के अंतराल को देखो। जो भरे हुए स्थान है, उनके प्रति उदासीन रहो; और अंतराल के प्रति, खाली आकाश के प्रति सावचेत बनो। और उस अंतराल के द्वारा, उस आकाश के द्वारा तुम परम सौंदर्य में विलीन हो जाओगे।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 84

अनासक्ति—संबंधी पहली विधि:

'शरीर के प्रति आसक्ति को दूर हटाओं और यह भाव करो कि मैं सर्वत्र हूं। जो सर्वत्र है वह आनंदित है।'

बहुत सी बातें समझने जैसी है। 'शरीर के प्रति आसक्ति को दूर हटाओं।'

शरीर के प्रति हमारी आसक्ति प्रगाढ़ है। वह अनिवार्य है; वह स्वाभाविक है। तुम अनेक-अनेक जन्मों से शरीर में रहते आए है; आदि काल से ही तुम शरीर में हो। शरीर बदलते रहे है। लेकिन तुम सदा शरीर में रहे हो। तुम सदा सशरीर रहे हो।

ऐसे क्षण, ऐसे समय भी रहे है जब तुम शरीर में नहीं थे। लेकिन तब तुम अचेतन थे, मूर्छित थे। जब तुम मरते हो, जब तुम एक शरीर छोड़ते हो, तो तुम मूर्च्छा की हालत में मरते हो और तुम मूर्च्छित ही रहते हो। फिर तुम्हारा एक नए शरीर में जन्म होता है। लेकिन उस समय भी तुम मूर्छित ही रहते हो। एक मृत्यु और दूसरे जन्म के बीच का अंतराल मूर्च्छा में बीतता है। इसलिए तुम्हें हो तो तुम्हें एक ही बात का पता है और वह है शरीर में होने का; तुमने अपने को शरीर में ही जाना है।

यह इतनी प्राचीन है, इतनी निरंतर है, कि तुम भूल ही गए हो कि मैं भिन्न हूं। यह एक विस्मरण है जो स्वाभाविक है, अनिवार्य है। और इसी कारण से आसक्ति है। तुम्हें लगता है कि मैं शरीर हूं; और यही आसक्ति है। तुम्हें लगता है कि मैं शरीर के सिवाय कुछ भी नहीं हूं, शरीर से अधिक कुछ भी नहीं है।

शायद तुम मेरे साथ इस बात पर सहमत न हो, क्योंकि कई बार तुम सोचते हो कि मैं शरीर नहीं हूं। मैं आत्मा हूं। लेकिन यह तुम्हारा जानना नहीं है। यह बस तुमने सुना है। तुमने पढ़ा है। यह तुमने जाने बिना मान लिया है। तो पहला काम यह है कि तुम्हें इस तथ्य को स्वीकार करना है कि वस्तुत: मेरा जानना यही है कि मैं शरीर हूं। अपने को धोखा मत दो; क्योंकि धोखा देने से काम नहीं चलेगा। अगर तुम सोचते हो कि मैं पहले से ही जानता हूं कि मैं शरीर हूं तो तुम शरीर के प्रति अपनी आसक्ति को दूर नहीं कर सकते। क्योंकि तुम्हारे लिए आसक्ति है ही नहीं। तुम जानते ही हो। और तब अनेक कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी। जिनका समाधान नहीं हो सकता। किसी कठिनाई को आरंभ में ही हल कर सकते। हल करने के लिए तुम्हें फिर आरंभ पर लौटना होगा। तो यह स्मरण रहे,

तुम्हें पहले यह भली भांति बोध होना चाहिए कि मैं नहीं जानता कि मैं शरीर के अतिरिक्त कुछ नहीं हूं। यह पहला बुनियादी बोध है।

यह बोध अभी तुम्हें नहीं है। तुमने जो कुछ सुना है उससे तुम्हारा मन भरा है और भ्रांत है। तुम्हारा मन दूसरों से मिले ज्ञान से संस्कारित है। यह ज्ञान उधार है। यह ज्ञान सच्चा नहीं है। ऐसा नहीं है कि यह गलत है। जिन्होंने कहा है उन्होंने ऐसा जाना है। लेकिन जब तक यह तुम्हारा अनुभव न हो जाए, तब तक तुम्हारे लिए गलत है। जब मैं कहता हूं कि कोई चीज गलत है तो मेरा मतलब यह है कि यह तुम्हारा अपना अनुभव नहीं है। यह किसी और के लिए सच हो सकता है। लेकिन तुम्हारे लिए सच नहीं है। और इस अर्थ में सत्य वैयक्तिक अनुभूति है। अनुभूत सत्य ही सत्य है। जो अनुभूत नहीं है वह सत्य नहीं है। कोई जागतिक सत्य नहीं होता है। प्रत्येक सत्य को सत्य होने के लिए पहले वैयक्तिक होना पड़ता है।

तुम जानते हो, तुमने सुना है कि मैं शरीर नहीं हूं–यह तुम्हारे ज्ञान का हिस्सा है, यह तुमने बाप दादों से सुना है–लेकिन यह तुम्हारा अनुभव नही है। पहले इस तथ्य का साक्षात करो कि मैं अपने को शरीर की भांति ही जानता हूं। यह साक्षात्कार तुम्हारे भीतर बड़ी बेचैनी पैदा करेगा। इस बेचैनी को छिपाने के लिए ही तुमने यह ज्ञान इकट्ठा किया था। तुम माने रहते हो कि मैं शरीर नहीं हूं। और तुम शरीर की भांति रहे आते हो। इससे तुम विभाजित हो जाते हो। इससे तुम्हारा सारा जीवन अप्रामाणिक हो जाता है। झूठ और नकली हो जाता है। वस्तुत: यह चित की रूग्ण अवस्था है, भ्रांत अवस्था है। तुम जीते हो शरीर की तरह और तुम बातें करते हो आत्मा की तरह। और तब द्वंद्व है। संघर्ष है। तब तुम सतत एक आंतरिक उपद्रव में,एक गहन अशांति में जीते हो। जिसका निराकरण संभव नहीं है।

तो पहले इस तथ्य को देखो कि मैं आत्मा के संबंध में कुछ नहीं जानता हूं, मैं जो कुछ भी जनता हूं वह शरीर के संबंध में जानता हूं। इससे तुम्हारे भीतर एक बड़ी बेचैनी की स्थिति पैदा होगी। जो भी अंदर छिपा है वह उभर कर सतह पर आएगा। इस तथ्य के साक्षात्कार से कि मैं शरीर हूं। तुम्हें वस्तुत: पसीना आने लगेगा। इस तथ्य का साक्षात करके कि मैं शरीर हूं, तुम्हें बहुत बेचैनी होगी। तुम बहुत अजीब अनुभव करोगे। लेकिन इस अनुभव से गुजरना ही होगा; तो ही तुम जान सकते हो कि शरीर के प्रति आसक्ति का क्या अर्थ है।

ऐसे शिक्षक है जो कहे चले जाते है कि तुम्हें अपने शरीर से आसक्त नहीं होना चाहिए। लेकिन तुम्हें इस बुनियादी बात का ही पता नहीं है कि शरीर के प्रति यह आसक्ति क्या है। शरीर के प्रति आसक्ति शरीर के साथ प्रगाढ़ तादात्म्य है, लेकिन पहले तुम्हें समझना है कि यह तादात्म्य क्या है।

तो अपने उस सारे ज्ञान को अलग हटा दो जिसने तुम्हें यह भ्रांत धारणा दी है कि तुम आत्मा हो। यह अच्छी तरह जान लो कि मैं एक ही चीज को जानता हूं और शरीर है। कैसे यह बोध तुम्हारे भीतर छिपे हुए उपद्रव को, तुम्हारे भीतर छिपे हुए नरक को उभार कर ऊपर ले आता है। उसे प्रत्यक्ष कर देता है।

जब तुम्हें बोध होता है कि मैं शरीर हूं तो पहली दफा तुम्हें आसक्ति का बोध होता है। पहली दफा तुम्हारी चेतना में इस तथ्य का बोध होता है कि यह शरीर है–जो पैदा होता है और मर जाता है। यहीं मैं हूं। पहली दफा तुम्हें इस तथ्य का बोध होता है कि यह कामवासना, क्रोध–यही मैं हूं। इस तरह सभी झूठी प्रतिमाएं गिर जाती है। तुम अपने सचाई में प्रकट हो जाते हो।

यह सचाई दुखद है, बहुत दुखद है। यही कारण है कि हम उसे छिपाते रहते है। यह एक गहरी चालाकी है। तुम अपने को आत्मा को आत्मा माने रहते हो और जो भी तुम्हें नापसंद है उसे तुम शरीर पर थोप देते हो। तुम कहते हो कि कामवासना शरीर की है, और प्रेम मेरा। तुम कहते हो कि लोभ और क्रोध शरीर का है और करूणा मेरी है। करूणा आत्मा की है और क्रुरता की है। क्षमा आत्मा की है और क्रोध शरीर का है। जो भी तुम्हें गलत और कुरूप मालूम पड़ता है। उसे तुम शरीर पर थोप देते हो। और जो भी तुम्हें गलत और कुरूप मालूम पड़ता है। उसे तुम शरीर पर थोप देते हो। और जो भी तुम्हें सुंदर मालूम पड़ता है। उसके साथ तुम अपना तादात्म्य बना लेते हो। इस तरह तुम विभाजन पैदा करते हो।

यह विभाजन तुम्हें जानने नहीं देता कि आसक्ति क्या है। और जब तक तुम यह नहीं जानते कि आसक्ति क्या है और जब तक तुम उसके नरक से, उसकी पीड़ा से नहीं गुजरते हो, तब तक तुम उसे दूर नहीं हटा सकते। कैसे दूर करोगे? तुम किसी चीज को तभी दूर करोगे जब वह रो सिद्ध हो, जब वह भारी बोझ सिद्ध हो। जब वह नरक सिद्ध हो। तभी तुम उसे अपने से अलग कर सकते हो।

तुम्हारी आसक्ति अभी नरक नहीं सिद्ध हुई है। बुद्ध कुछ भी कहें, महावीर कुछ भी कहें, वह अप्रासंगिक है। वे कहे जा सकते है कि आसक्ति नरक है। लेकिन यह तुम्हारा भाव नहीं है। इसीलिए तुम बार-बार पूछते हो कि आसक्ति से कैसे छूटा जाए। अनासक्त कैसे हुआ जाये। आसक्ति के पार कैसे हुआ जाए। तुम यह ''कैसे'' इसीलिए पूछते रहते हो क्योंकि तुम्हें नहीं मालूम है कि आसक्तिक्या है। इधर तुम जानते हो कि आसक्ति क्या है तो तुम कूद कर बाहर निकल जाओगे, तभी तुम 'कैसे' नहीं पूछोगे!

अगर तुम्हारे घर में आग लगी हो तो तुम किसी से पूछने नहीं जाओगे, तुम किसी गुरु के पास यह पूछने नहीं जाओगे कि आग से कैसे बचा जाये। अगर घर जल रहा हो तो तुम तत्क्षण बाहर निकल जाओगे। तुम एक क्षण भी देर नहीं करोगे। तुम गुरु की खोज भी नहीं करोगे। तुम शास्त्रों से सलाह नहीं लोगे। तुम यह जानने की चेष्टा भी नहीं करोगे कि निकलने के उपाय क्या है, कि निकलने के लिए किन साधनों को काम में लाया जाए, कि निकलने के लिए कौन सा द्वार सही द्वार है। ये चीजें अप्रासंगिक है, जब घर धू-धू कर जल रहा हो।

जब तुम जानते हो कि आसक्ति क्या है तो तुम यह जानते हो कि घर जल रहा है। और तब तुम उसे अपने से दूर कर सकते हो।

इस विधि में प्रवेश के पहले तुम्हें आत्मा संबंधी उधार ज्ञान को हटा देना होगा, ताकि शरीर के प्रति आसक्ति अपनी समग्रता में प्रकट हो सके। यह बहुत कठिन होगा; उसका साक्षात्कार गहरी चिंता और संताप में ले जाएगा। यह आसान नहीं होगा; कठिन होगा, दुष्कर होगा। लेकिन यदि तुम्हें एक बार उसका साक्षात्कार हो जाए तो तुम उसे दूर कर सकते हो। और ''कैसे'' पूछने की जरूरत नहीं है। यह बिलकुल ही आग है, नरक है; तुम उससे छलांग लगाकर बाहर निकल सकते हो।

यह सूत्र कहता है: 'शरीर के प्रति आसक्ति को दूर हटाओं और यह भाव करो कि मैं सर्वत्र हूं। जो सर्वत्र है वह आनंदित है।'

और जिस क्षण तुम आसक्ति को दूर हटाओगे, तुम्हें बोध होगा कि मैं सर्वत्र हूं। इस आसक्ति के कारण तुम्हें महसूस होता है कि मैं शरीर में सीमित हूं। शरीर तुम्हें नहीं सीमित करता है, तुम्हारी आसक्ति तुम्हें सीमित करती

है। शरीर तुम्हारे और सत्य के बीच अवरोध नहीं निर्मित करता है, उसके प्रति तुम्हारी आसक्ति अवरोध निर्मित करती है।

एक बार तुम जान गए कि आसक्ति नहीं है तो फिर तुम्हारा कोई शरीर भी नहीं है—अथवा सारा अस्तित्व तुम्हारा शरीर बन जाता है। तुम्हारा शरीर समग्र अस्तित्व का हिस्सा बन जाता है। तब वह पृथक नहीं है।

सच तो यह है कि तुम्हारा शरीर तुम्हारे पास आया हुआ निकटतम अस्तित्व है; और कुछ नहीं। शरीर निकटतम अस्तित्व है। और वही फिर फैलता जाता है। तुम्हारा शरीर अस्तित्व का निकटतम हिस्सा है और फिर सारा अस्तित्व फैलता जाता है। एक बार तुम्हारी आसक्ति गई कि तुम्हारे लिए शरीर न रहा। अथवा समस्त अस्तित्व तुम्हारा शरीर बन जाता है। तब तुम सर्वत्र हो, सब तरफ हो।

शरीर में तुम एक जगह हो; शरीर के बिना तुम सर्वत्र हो। शरीर में तुम एक विशेष स्थान में सीमित हो; शरीर के बिना तुम पर कोई सीमा न रही। यही कारण है कि जिन्होंने जाना है वे कहते है कि शरीर कारागृह है। दरअसल, शरीर कारागृह नहीं है। आसक्ति कारागृह है। जब तुम्हारी निगाह शरीर पर ही सीमित नहीं है तब तुम सर्वत्र हो। यह बात बेतुकी मालूम पड़ती है। मन को, जो शरीर में है, यह बात बेतुकी मालूम पड़ती है। यह बात पागलपन जैसी लगती है—कोई व्यक्ति सभी जगह कैसे हो सकता है। और वैसे ही बुद्ध पुरूष को हमारा यह कहना कि मैं 'यहां' हूं, पागलपन जैसा मालूम पड़ता है। तुम किसी एक स्थान में कैसे हो सकते हो? चेतना कोई स्थान नहीं लेती है, इसीलिए अगर तुम आंखें बंद कर लो तो पता लगाने की चेष्टा करो कि शरीर में ही कहां हूं तो तुम हैरान रह जाओगे; तुम नहीं खोज पाओगे कि मैं कहा हूं।

अनेक धर्म ओर अनेक संप्रदाय हुए है जो कहते है कि तुम नाभि में हो। दूसरे कहते है तुम ह्रदय में हो। कुछ कहते है कि तुम सिर में हो। कुछ कहते है कि तुम इस चक्र में हो और कुछ कहते है कि उस चक्र में हो। लेकिन शिव कहते है कि तुम कहीं नहीं हो। यही कारण है कि अगर तुम आंखें बंद कर लो और खोजने की कोशिश करो कि मैं कहां हूं तो तुम कुछ नहीं बता सकते। तुम तो हो, लेकिन तुम्हारे लिए कोई 'कहां' नहीं है। तुम बस हो।
प्रगाढ़ नींद में भी तुम्हें शरीर का बोध नहीं रहता है। तुम तो हो। सुबह जाग कर तुम कहोगे कि नींद बहुत गहरी थी। बहुत आनंदपूर्ण थी। तुम्हें एक गहन आनंद का बोध था लेकिन तुम्हें शरीर का बोध नहीं था। प्रगाढ़ निद्रा में तुम कहां होते हो? और मरते हो तो तुम कहां जाते हो? लोग निरंतर पूछते है कि जब कोई मरता है तो वह कहां जाता है?

लेकिन यह प्रश्न निरर्थक है, मूढ़ता पूर्ण है। यह प्रश्न हमारे इस भ्रम से ही उठता है कि हम शरीर में है। अगर हम मानते है कि हम शरीर है तो फिर प्रश्न उठता है कि मरने पर हम कहां जाते है।

तुम कहीं नहीं जाते हो। जब तुम मरते हो तो तुम कहीं नहीं जाते हो। यही कारण है कि वे 'निर्वाण' शब्द चुनते हो। निर्वाण का अर्थ है कि तुम कहीं नहीं हो। ज्योति के बुझने को भी निर्वाण कहते है। तुम कह सकते हो कि बुझने के बाद ज्योति कहां है? बुद्ध कहेंगे कि यह कहीं नहीं है। ज्योति बस नहीं हो गई है। बुद्ध नकारात्मक शब्द चुनते है: 'कहीं नहीं।' निर्वाण का अर्थ है। जब तुम शरीर से बंधे नहीं हो तो तुम निर्वाण में हो, तुम कहीं नहीं हो। अगर तुम बुद्ध से पूछोगे तो वे कहेंगे कि तुम नहीं हो। यही कारण है कि वे 'निर्वाण' शब्द चुनते है। निर्वाण का अर्थ है कि तुम कहीं नहीं हो। ज्योति के बुझने को भी निर्वाण कहते है। तुम कह सकते हो कि बुझने के बाद ज्योति कहां है। बुद्ध कहेंगे कि वह कहीं नहीं है। ज्योति बस नहीं हो गई है। बुद्ध नकारात्मक शब्द चुनते है। 'कहीं नहीं।' निर्वाण का वहीं अर्थ है। जब तुम शरीर से बंधे नहीं हो तो तुम निर्वाण में हो, तुम कहीं नहीं हो।

शिव विधायक शब्द चुनते है; वे कहते है कि तुम सब कहीं हो। लेकिन दोनों शब्द एक ही अर्थ रखते है। अगर तुम सब कहीं हो तो तुम कहीं एक जगह नहीं हाँ सकते। तुम सब कहीं हो, यह कहना करीब-करीब वैसा ही है जैसा वह कहना कि तुम कहीं नहीं हो। लेकिन शरीर से हम आसक्त है और हमें लगता है कि हम बंधे है। यह बंधन मानसिक है; यह तुम्हारी अपनी करनी है। तुम अपने को किसी भी चीज के साथ बाँध सकते हो। तुम्हारे पास एक कीमती हीरा है, और तुम्हारे प्राण उसमें अटके हो सकते है। यदि वह हीरा चोरी हो जाए तो तुम आत्महत्या कर सकते हो। तुम पागल हो सकते हो। क्या करण है? बहुत लोग है जिनके पास हीरा नही है। उनमें से कोई भी आत्महत्या नहीं कर सकता है। किसी को हीरे के बिना कोई कठिनाई नहीं हो रही है। लेकिन तुम्हें क्या हुआ है? कभी तुम भी हीरे के बिना थे और कोई समस्या नहीं थी। अब तुम फिर हीरे के बीना हो, लेकिन अब समस्या है। यह समस्या कैसे निर्मित होती है? यह तुम्हारी अपनी करनी है। अब तुम आसक्त हो, बंधे हो। हीरा तुम्हारा शरीर बन गया है; अब तुम इसके बिना नहीं रह सकत। अब इसके बिना तुम्हारा जीना असंभव है।

जहां भी तुम आसक्त होते हो, नया कारागृह बन जाता है। और हम जीवन में यहीं करते है; हम निरंतर और-और कारागृह बनाते जाते है। बड़े से बड़े कारागृह बनाते रहते है। और फिर हम उन कारागृहों को सजाते है। ताकि वे घर मालूम पड़ें और फिर हम भूल ही जाते है कि वे कारागृह है।

यह सूत्र कहता है कि अगर तुम शरीर से अपनी आसक्ति को दूर कर सको तो यह बोध घटित होगा कि मैं सर्वत्र हूं,सब कहीं हूं। तब तुम बूंद न रहे, सागर हो गए; तब तुम्हें सागर होने का भाव होता है। अब तुम्हारी चेतना किसी स्थान से नहीं बंधी है; वह स्थान मुक्त है। तुम बिलकुल आकाश के सामन हो जाते हो। जो सबको घेरे हुए है। अब सबकुछ तुममें है—तुम्हारी चेतना अनंत तक फैल गई है।

और फिर सूत्र कहता है: 'जो सर्वत्र है वह आनंदित है।'

एक जगह से बंधे रह कर तुम दुःख में रहोगे क्योंकि तुम सदा उससे बड़े हो जहां तुम बंधे हो। यही दुःख है। मानों तुम अपने को एक छोटे-से पात्र में सीमित कर रहे हो। सागर को एक घड़े में बंद किया जा रहा है। दुःख अनिवार्य है। यही दुःख है। और जब भी इस दुःख की अनुभूति हुई है, बुद्धत्व की खोज, ब्रहम की खोज शुरू हो जाती है। ब्रहम का अर्थ है अनंत, असीम फैलाव। और मोक्ष की खोज स्वतंत्रता की खोज है। सीमित शरीर में तुम स्वतंत्र नहीं हो सकते हो। एक स्थान में तुम बंध जाते हो। कहीं नहीं या सब कहीं में ही तुम स्वतंत्र हो सकते हो।

मनुष्य के मन को देखो। वह सदा स्वतंत्रता खोज रहा है—उसकी दिशा चाहे जो भी हो। दिशा राजनीतिक हो सकती है, सामाजिक हो सकती है, मानसिक हो सकती है, धार्मिक हो सकती है। दिशा जो भी हो, मनुष्य का मन स्वतंत्रता की खोज कर रहा है। स्वतंत्रता मनुष्य की गहनत्म आवश्यकता मालूम पड़ती है। जहां भी मनुष्य के मन को अवरोध मिलता है, जहां भी उसे गुलामी का बंधन का अहसास होता है, वह उसके विरूद्ध लड़ता है।

मनुष्य का सारा इतिहास स्वतंत्रता के युद्ध का इतिहास है। आयाम भिन्न हो सकते है। माक्र्स और लेनिन आर्थिक स्वतंत्रता के लिए लड़ते है। गांधी और अब्राहम लिंकन राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए लड़ते है। और हजारों तरह की गुलामियां है, और संघर्ष जारी है। लेकिन एक बात निश्चित है कि कहीं गहरे में मनुष्य निरंतर और-और स्वतंत्रता की खोज कर रहा है।

शिव कहते है—और यही बात सभी धर्म कहते है—कि तुम राजनीतिक तल पर स्वतंत्र हो सकते हो, लेकिन संघर्ष समाप्त नहीं होगा। एक तरह की गुलामी हट जाएगी लेकिन और तरह की गुलामियां है। जब तुम राजनीतिक रूप

से स्वतंत्र होगे तो तुम्हें अनय गुलामियों का बोध होगा। आर्थिक गुलामी समाप्त हो सकती है। लेकिन तब तुम अन्य गुलामियां के प्रति सजग हो जाओगे; यौन और शरीर के तल पर जो गुलामियां है उनके प्रति सजग हो जाओगे। यह संघर्ष तब तक नहीं खत्म होगा जब तक तुम यह नहीं अनुभव करते,यह नहीं जानते कि मैं सर्वत्र हूं। जिस क्षण तुम्हें प्रतीत होता है कि मैं सर्वत्र हूं, कि मैं सब जगह हूं, तो स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

यह स्वतंत्रता राजनीतिक नहीं है, यह स्वतंत्रता आर्थिक नहीं है, यह स्वतंत्रता सामाजिक नहीं है। यह स्वतंत्रता अस्तित्वगत है। यह स्वतंत्रता समग्र है। इसीलिए हमने उसे मोक्ष कहा है—समग्र स्वतंत्रता। और तुम तभी आनंदित हो सकते हो। हर्ष या आनंद तभी संभव है जब तुम पूरी तरह स्वतंत्र हो। सच तो यह है कि पूरी तरह स्वतंत्र होना ही आनंद है। आनंद परिणाम नहीं है। स्वतंत्रता की घटना ही आनंद है। जब तुम पूरी तरह स्वतंत्र हो तो तुम आनंदित हो।

यह आनंद परिणाम की तरह नहीं घटित हो रहा है। स्वतंत्रता ही आनंद है, गुलामी दुःख है। संताप है। जिस क्षण तुम किसी सीमा में बंधा अनुभव करते हो उसी क्षण तुम दुःख में पड़ जाते हो। जहां-जहां भी तुम सीमित अनुभव करते हो वहां-वहां तुम दुःख अनुभव करते हो। और जब तुम असीम-अनंत अनुभव करते हो, दुःख विलीन हो जाता है।

तो बंधन दुःख है और मुक्ति आनंद है। जब भी तुम्हें इस स्वतंत्रता का अनुभव होता है। तुम्हें आनंद घटित होता है। अभी भी जब तुम्हें किसी तरह की स्वतंत्रता का अनुभव होता है, चाहे वह समग्र न भी हो, तो तुम प्रसन्न हो जाते हो। जब तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो, तुम पर एक खुशी, एक आनंद बरस जाता है। यह क्यों होता है? असल में जब भी तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो तो तुम शरीर के प्रति अपनी आसक्ति को दूर हटा देते हो। किसी गहरे अर्थ में अब दूसरे का शरीर भी तुम्हारा अपना शरीर हो गया है। तुम अब अपने शरीर में ही सीमित नहीं हो, दूसरे का शरीर भी तुम्हारा आवास बन गया है। घर बन गया है। तुम्हें थोड़ी स्वतंत्रता महसूस होती है। अब तुम दूसरे में गति कर सकते हो और दूसरे तुममें गति कर सकते है। एक अर्थ में एक अवरोध गिर गया; अब तुम पहले से ज्यादा हो।

जब तुम किसी को प्रेम करते हो तो तुम पहले से बहुत ज्यादा हो जाते हो। तुम्हारा होना थोड़ा फैला, थोड़ा विराट हुआ। तुम्हारी चेतना अब पहले कि तरह क्षुद्र न रही; उसने नया विस्तार पा लिया है। प्रेम में तुम थोड़ी स्वतंत्रता का अनुभव होता है। हालांकि यह समग्र नहीं है। और देर-अबेर तुम फिर बंधन अनुभव करोगे। तुम्हें विस्तार तो मिला, लेकिन यह विस्तार अभी भी सीमित है।

इसीलिए जो लोग वस्तुत: प्रेम करते है वे देर-अबेर प्रार्थना में उतर जाते है। प्रार्थना का अर्थ है,वृहद प्रेम। प्रार्थना का अर्थ है पूरे आस्तित्व के साथ प्रेम। अब तुम्हें रहस्य का पता चल गया। तुम्हें कुंजी का, गुप्त कुंजी का पता चल गया। कि मैंने एक व्यक्ति को प्रेम किया ओर जिस क्षण मैंने प्रेम किया, सारे अवरोध गिर गए। सारे दरवाजे खुल गए और कम से कम एक व्यक्ति के लिए मेरा होना विस्तृत हुआ। मेरे प्राणों का विस्तार हुआ। अब तुम्हें गुप्त कुंजी मालूम है कि अगर मैं पूरे-अस्तित्व को प्रेम करने लगू तो मैं शरीर नहीं रहूंगा।

प्रगाढ़ प्रेम में तुम शरीर नहीं रह जाते हो। जब तुम किसी के प्रेम में होते हो तो तुम अपने को शरीर नहीं समझते हो। तो जब तुम्हें प्रेम नहीं मिलता है, जब तुम प्रेम में नहीं होते हो, तब तुम अपने को शरीर ज्यादा अनुभव करते हो। तब तुम्हें अपने शरीर का ख्याल ज्यादा रहता है। तब तुम्हारा शरीर बोझ बन जाता है। जिसे तुम किसी तरह ढोते हो। जब तुम्हें प्रेम मिलता है, शरीर निर्भार हो जाता है। जब तुम्हें प्रेम मिलता है और तुम प्रेम में होते हो तो

तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि गुरूत्वाकर्षण को कोई प्रभाव है। तुम नाच सकते हो, तुम वस्तुत: उड़ सकते हो। एक अर्थ में शरीर नहीं रहा—लेकिन सीमित अर्थ में ही। वही बात एक गहरे अर्थ में तब घटती है। जब तुम समग्र अस्तित्व के साथ प्रेम में होते हो।

प्रेम में तुम्हें आनंद मिलता है। आनंद सुख नहीं है। स्मरण रहे, आनंद सुख नहीं है। सुख इंद्रियों के द्वारा मिलता है। आनंद इंद्रियगत नहीं है, वह अतींद्रिय अवस्था में प्राप्त होता है। सुख तुम्हें शरीर से मिलता है। आनंद तब मिलता है जब तुम शरीर नहीं होते हो। जब क्षण भर के लिए शरीर विलीन हो गया है और तुम मात्र चेतना हो तो तुम्हें आनंद प्राप्त होता है। और जब तुम शरीर हो तो तुम्हें केवल सुख मिल सकता है। वह सदा शरीर से मिलता है। शरीर से दुःख संभव है, सुख संभव है, लेकिन आनंद तभी संभव है जब तुम शरीर नहीं हो।

आनंद कभी-कभी अचानक और आकस्मिक रूप से भी घटित होता है। तुम संगीत सुन रहे हो और अचानक सब कुछ खो जाता है। तुम संगीत में इतने तल्लीन हो कि तुम्हें अपने शरीर की सुख भूल गई। तुम संगीत में डूब गए हो; तुम संगीत के साथ एक हो गए हो। तुम इतने एक हो गये हो कि कोई सुननेवाला बचा ही नहीं; सुनने वाला और सुना जाने वाला, संगीत एक हो गए है। सिर्फ संगीत बचा है; तुम नहीं बचे। तुम विस्तृत हो गए, फैल गये। मौन में विलीन हो रहे है और तुम भी उनके साथ मौन में विलीन हो रहे हो। शरीर की सुधि जाती रही। और जब भी शरीर की सुधि नहीं रहती। शरीर अनजाने ही, अचेतन रूप से दूर हट जाता है। और तुम्हें आनंद घटित होता है। तंत्र और योग के द्वारा तुम यही चीज विधिपूर्वक कर सकते हो। तब वह आकस्मिक नहीं है; तब तुम उसके मालिक हो। तब यह चीज तुम्हें अनजाने नहीं घटती है; तब तुम्हारे हाथ में कुंजी है और तुम जब चाहो द्वार खोल सकते हो—या तुम चाहो तो द्वार हमेशा के लिए खोल सकते हो और कुंजी को फेंक सकते हो। द्वार को फिर बंद करने की जरूरत नहीं रही।

सामान्य जीवन में भी आनंद घटती होता है; लेकिन वह कैसे घटता है, यह तुम्हें नहीं मालूम। स्मरण रहे, यह सदा तभी घटता है जब तुम शरीर नहीं होते हो। तो जब भी तुम्हें पुन: किसी आनंद के क्षण का अनुभव हो तो सजग होकर देखना कि उस क्षण में तुम शरीर हो या नहीं। तुम शरीर नहीं होगे। जब भी आनंद है, शरीर नहीं है। ऐसा नहीं कि शरीर नहीं रहता है। शरीर तो रहता है, लेकिन तुम शरीर से आसक्त नहीं हो। तुम शरीर से बंधे नहीं हो। तुम उससे बाहर निकल गए हो। हो सकता है, संगीत के कारण तुम बाहर निकल गए, या खूब सूरत सूर्योदय को देखकर बाहर निकल गए। या एक बच्चे को हंसते देखकर बाहर निकल गए। या किसी के प्रेम में होने के कारण शरी से बाहर आ गए—कारण जो भी हो,मगर तुम क्षण भर के लिए बाहर आ गए। शरीर तो है, लेकिन दूर हो गए। तुम उससे आसक्त नही हो। तुमने एक उड़ान ली।

इस विधि के द्वारा तुम जानते हो कि जो सर्वत्र है वह दुखी नहीं हो सकता; वह आनंदित है। वह आनंद है। तो स्मरण रहे, तुम जितने सीमित होगे उतने ही दुःखी होगे। फैलो, अपनी सीमाओं को दूर हटाओं। और जब भी संभव हो, शरीर को अलग हटा दो। तुम आकाश को देखो, बादल तैर रहे है, उन बादलों के साथ तेरो, शरीर को जमीन पर ही रहने दो। और आकाश में चाँद है, चाँद के साथ यात्रा करो। जब भी तुम शरीर को भूल सको, उस अवसर को मत चूको, यात्रा पर निकल पड़ो। और तुम धीरे-धीरे परिचित हो जाओगे कि शरीर से बाहर होने का क्या मतलब है। और यह सिर्फ अवधान की बात है। आसक्ति अवधान देने की बात है। अगर तुम शरीर को अवधान देते हो तो तुम उससे आसक्त हो। अगर अवधान हटा लिया जाए तो तुम आसक्त नहीं रहे।

उदाहरण के लिए तुम खेल के मैदान में खेल रहे हो। तुम हाकी या बाली-बाल खेल रहे हो। या कोई और खेल रहे हो। तुम खेल में इतने तल्लीन हो कि तुम्हारा अवधान शरीर पर नहीं है। तुम्हारे पैर पर चोट लग गई है और खून बह रहा है; लेकिन तुम्हें उसका पता नहीं है। दर्द भी है, लेकिन तुम वहां नही हो। खून बह रहा है। लेकिन तुम शरीर के बाहर हो। तुम्हारी चेतना, तुम्हारा अवधान गेंद के साथ दौड़ रहा है। गेंद के साथ भाग रहा है। तुम्हारा अवधान कहीं और है। लेकिन जैसे ही खेल समाप्ति होता है। तुम अचानक शरीर में लौट आते हो और देखते हो कि खून बह रहा है। पीड़ा हो रही है। और तुम्हें आश्चर्य होता है कि यह कैसे हुआ। कब हुआ और कैसे तुम्हें इसका बोध नहीं हुआ।

शरीर में रहने के लिए तुम्हें अवधान की जरूरत है। यह स्मरण रहे,जहां भी तुम्हारा अवधान है तुम वही हो। अगर तुम्हारा अवधान फूल में है तो तुम फूल में हो। और अगर तुम्हारा अवधान धन में हो तो तुम धन में हो। तुम्हारा अवधान ही तुम्हारा होना है। और अगर तुम्हारा अवधान कहीं नहीं है तो तुम सब कहीं हो।

ध्यान की पूरी प्रक्रिया चेतना की उस अवस्था में होना है जहां तुम्हारा अवधान कहीं नहीं हो, जहां तुम्हारे अवधान का कोई विषय न हो, कोई लक्ष्य न हो। जब कोई विषय नहीं है। कोई शरीर नहीं है। तुम्हारा अवधान ही शरीर का निर्माण करता है। तुम्हारा अवधान ही तुम्हारा शरीर है। और जब अवधान कहीं नहीं है तो तुम सब कहीं हो। और तब तुम्हें आनंद घटित होता है। वह कहना भी ठीक नहीं है कि तुम्हें आनंद घटित होता है। तुम ही आनंद हो। अब यह तुमसे अलग नहीं हो सकता। यह तुम्हारा प्राण ही बन गया है।

स्वतंत्रता आनंद है। इसीलिए स्वतंत्रता की इतनी अभीप्सा है, इतनी खोज है।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 85

अनासक्ति—संबंधी दूसरी विधि:

‘ना-कुछ का विचार करने से सीमित आत्मा असीम हो जाती है।’

मैं यहीं कह रहा था। अगर तुम्हारे अवधान का कोई विषय नहीं है, कोई लक्ष्य नहीं है, तो तुम कहीं नहीं हो, या तुम सब कहीं हो। और तब तुम स्वतंत्र हो तुम स्वतंत्रता ही हो गए हो।

यह दूसरा सूत्र कहता है: ‘ना कुछ का विचार करने से सीमित आत्मा असीम हो जाती है।’

अगर तुम सोच विचार नहीं कर रहे हो तो तुम असीम हो। विचार तुम्हें सीमा देता है। और सीमाएं अनेक तरह की है। तुम हिंदू हो, यह एक सीमा है। हिंदू होना किसी विचार से, किसी व्यवस्था से, किसी ढंग ढांचे से बंधा होना है। तुम ईसाई हो, यह भी एक सीमा है। धार्मिक आदमी कभी भी हिंदू या ईसाई नहीं हो सकता। और अगर कोई आदमी हिंदू या ईसाई है तो वह धार्मिक नहीं है। असंभव है। क्योंकि ये सब बिचार है। धार्मिक आदमी का अर्थ है कि वह विचार से नहीं बंधा है। वह किसी विचार से सीमित नहीं है। वह किसी व्यवस्था से, किसी ढंग-ढांचे से नहीं बंधा है। वह मन की सीमा में नहीं जीता है—वह असीम में जीता है।

जब तुम्हारा कोई विचार है तो वह विचार तुम्हारा अवरोध बन जाता है। वह विचार सुंदर हो सकता है। लेकिन फिर भी वह बंधन है। सुंदर कारागृह भी कारागृह ही है। विचार स्वर्णिम हो सकता है, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता; स्वर्णिम विचार भी तो उतना ही बाँधता है,जितना कोई और विचार बाँधता है। और जब तुम्हारा कोई विचार है, और तुम उससे आसक्त हो तो तुम सदा किसी के विरोध में हो। क्यों कि सीमा हो ही नहीं सकती, यदि तुम किसी के विरोध में नहीं हो। विचार सदा पूर्वाग्रह ग्रस्त होता है। विचार सदा पक्ष या विपक्ष में होता है।

मैंने एक बहुत धार्मिक ईसाई के संबंध में सूना है, जो कि एक गरीब किसान था। वह मित्र समाज का सदस्य था। वह क्वेकर था। क्वेकर लोग अहिंसक होते है। वे प्रेम और मैत्री में विश्वास करते है। वह क्वेकर अपनी खच्चर गाड़ी पर बैठकर शहर से गांव वापस आ रहा था। एक जगह खच्चर अचानक बिना किसी कारण के रूक गया और आगे बढ़ने से इनकार करने लगा। उसने खच्चर को ईसाई ढंग से, मैत्रीपूर्ण ढंग से, अहिंसक ढंग से फुसलाने की कोशिश की। वह क्वेकर था, वह खच्चर को मार नहीं सकता था। उसे कठोर वचन नहीं कह सकता था। उसे डांट-फटकार या गाली भी नहीं दे सकता था। लेकिन वह गुस्से से भरा था।

लेकिन खच्चर को मारा कैसे जाएं। वह उसे मारना चाहता था। तो उसने खच्चर से कहा: 'ठीक से आचरण करो। मैं क्वेकर हूं, इस लिए मैं तुम्हें मार नहीं सकता हूं,लेकिन स्मरण रहे ऐ खच्चर, कि मैं तुम्हें किसी ऐसे आदमी के हाथ बेच तो सकता हूं जो ईसाई न हो।'

ईसाई की अपनी दूनिया है और गैर-ईसाई उसके बाहर है। कोई ईसाई यह सोच भी नहीं सकता कि कोई गैर-ईसाई ईश्वर के राज्य में प्रवेश पा सकता है। वैसे ही कोई हिंदू या जैन यह नहीं सोच सकता कि उनके अलावा कोई दूसरा आनंद के जगत में प्रवेश पा सकता है।

विचार सीमा बनता है। अवरोध खड़े करता है; और जो लोग पक्ष में नहीं है उन्हें विरोधी मान लिया जाता है। जो मेरे साथ सहमत नहीं है वे मेरे विरोध में है। फिर तुम सब कहीं कैसे हो सकते हो। तुम ईसाई के साथ हो सकते हो; तुम गैर ईसाई के साथ नहीं हो सकते। तुम हिंदू के साथ हो सकते हो; लेकिन तुम गैर हिंदू के साथ, मुसलमान के साथ नहीं हो सकते। विचार को किसी न किसी के विरोध में होना पड़ता है। चाहे वह किसी व्यक्ति के विरोध में हो या किसी वस्तु के। वह समग्र नहीं हो सकता है। स्मरण रहे, विचार कभी समग्र नहीं हो सकता; केवल निर्विचार ही समग्र हो सकता है।

दूसरी बात कि विचार मन से आता है। वह सदा मन की उप-उत्पती है। विचार तुम्हारा रुझान है, तुम्हारा अनुमान है। पूर्वाग्रह है। विचार तुम्हारी प्रतिक्रिया है। तुम्हारा सिद्धांत है। तुम्हारी धारणा है, तुम्हारी मान्यता है। लेकिन विचार अस्तित्व नहीं है। वह अस्तित्व के संबंध में है। वह स्वयं अस्तित्व नहीं है।

एक फूल है। तुम उस फूल के संबंध में कुछ कह सकते हो। वह कहना एक प्रतिक्रिया है। तुम कह सकते हो कि फूल सुंदर है, कि असुंदर है। तुम कह सकते हो कि फूल पवित्र है। लेकिन तुम फूल के संबंध में जो भी कहते हो वह फूल नहीं है। फूल का होना तुम्हारे विचारों के बिना है। और तुम फूल के संबंध में जो भी सोच विचार करते हो उससे तुम अपने ओर फूल के बीच अवरोध निर्मित कर रहे हो। फूल को होने के लिए तुम्हारे विचारों की जरूरत नहीं है। फूल बस है। अपने विचारों को छोड़ो और तब तुम फूल में डूब सकते हो।

यह सूत्र कहता है: 'ना-कुछ का विचार करने से सीमित आत्मा असीम हो जाती है।'

अगर तुम सोच विचार में उलझे नहीं हो, अगर तुम सिर्फ हो, पूरे सजग और सावचेत हो, विचार के किसी धुएँ के बिना हो, तो तुम असीम हो।

यह शरीर ही एकमात्र शरीर नहीं है; एक गहन तर शरीर भी है। वह मन है। शरीर पदार्थ से बना है। मन भी पदार्थ से बना है; वह और सूक्ष्म से बना है। शरीर बाहरी पर्त है और मन आंतरिक पर्त है। और शरीर से अनासक्त होना बहुत कठिन नहीं है। मन से अनासक्त होना बहुत कठिन है। क्योंकि मन के साथ तुम्हारा तादात्म्य ज्यादा गहरा है। तुम मन से ज्यादा जुड़े हो।

अगर कोई तुमसे कहे कि तुम्हारा शरीर रूग्ण मालूम होता है तो तुम्हें पीड़ा नहीं होती है। तुम शरीर से उतने आसक्त नहीं हो; वह तुमसे जरा दूरी पर मालूम पड़ता है। लेकिन अगर कोई तुमसे कहे कि तुम्हारा मन रूग्ण है। अस्वस्थ मालूम होता है। तो तुम्हें पीड़ा होती है। उसने तुम्हारा अपमान कर दिया। मन से तुम अपने को ज्यादा निकट अनुभव करते हो। अगर कोई आदमी तुम्हारे शरीर के संबंध में कुछ बुरा कहे तो तुम उसे बरदाश्त करना असंभव होगा। क्योंकि उसने गहरे में चोट कर दी।

मन शरीर की भीतरी पर्त है। मन और शरीर दो नहीं है। तुम्हारे शरीर की बाहरी पर्त शरीर है। और भीतरी पर्त मन है। ऐसा समझो कि तुम्हारा एक घर है; तुम उस घर को बाहर से देख सकते हो और तुम उस घर को भीतर से देख सकते हो। बाहर से दीवारों की बाहरी पर्त दिखाई पड़ेगी; भीतर से भीतरी पर्त दिखाई पड़ेगी। मन तुम्हारी आंतरिक पर्त है। वह तुम्हारे ज्यादा निकट है। लेकिन फिर भी वह शरीर ही है।

मृत्यु में तुम्हारा बाहरी शरीर गिर जाता है। लेकिन उसका भीतरी सूक्ष्म पर्त को तुम अपने साथ ले जाते हो। तुम उससे इतने आसक्त हो कि मृत्यु भी तुम्हें तुम्हारे मन में पृथक नहीं कर पाती। मन जारी रहता है1 यहीं कारण है कि तुम्हारे पिछले जन्मों को जाना जा सकता है। तुम अभी भी अपने सभी अतीत के मनों को अपने साथ लिए हुए हो। वे सब के सब तुम में मौजूद है। अगर तुम कभी कुत्ते थे तो कुत्ते का मन अब भी तुम्हारे भीतर है। अगर तुम कभी वृक्ष थे तो वृक्ष का मन अब भी तुम्हारे साथ है। अगर तुम कभी स्त्री या पुरूष थे तो वे चित अब भी तुम्हारे भी मौजूद है। सारे के सारे चित तुम्हारे पास है। तुम उनसे इतने बंधे हो कि तुम उनकी पकड़ को नहीं छोड़ सकते।

मृत्यु में बाह्म विलीन हो जाता है। लेकिन आंतरिक कायम रहता है। वह आंतरिक शरीर बहुत ही सूक्ष्म पदार्थ है। वस्तुत: वह ऊर्जा का स्पंदन मात्र है—विचार की तरंगें। तुम उन्हें अपने साथ लिए चलते रहते हो। और तुम उन्हीं विचार तरंगों के अनुरूप फिर नए शरीर में प्रवेश करते हो। तुम अपने विचारों के ढांचे के अनुकूल अपनी कामनाओं के अनुकूल अपने मन के अनुकूल अपने लिए नया शरीर निर्मित कर लेते हो। मन में उसका ब्लू प्रिंट, उसकी रूपरेखा मौजूद है। और उसके अनुरूप बाहरी पर्त फिर बनती है।

तो पहला सूत्र शरीर को अलग करने के लिए है। दूसरा सूत्र मन को अलग करने का है, आंतरिक शरीर। मृत्यु भी तुम्हें तुम्हारे मन से अलग नहीं कर पाती; यह काम केवल ध्यान कर सकता है। यहीं कारण है कि ध्यान मृत्यु से भी बड़ी मृत्यु है; वह मृत्यु से भी गहरी शल्य-चिकित्सा है। इसलिए ध्यान से इतना भय होता है। लोग ध्यान के बारे में सतत बात करेंगे लेकिन वे ध्यान कभी करेंगे नहीं। वे बात करेंगे, वे उसके संबंध में लिखेंगे, वे उस पर उपदेश भी देंगे; लेकिन वे कभी ध्यान करेंगे नहीं। ध्यान से एक गहरा भय है। और वह भय मृत्यु का भय है। जो लोग ध्यान करते है वे किसी न किसी दिन उस बिंदू पर पहुंच जाते है जहां वे घबड़ा जाते है। जहां से वे पीछे लौट जाते है। वे मेरे पास आते है, और कहते है: 'अब हम आगे प्रवेश नहीं कर सकते; यह असंभव है।' एक क्षण

आता है जब व्यक्ति को लगता है कि मैं मर रहा हूं। और वह क्षण किसी भी मृत्यु से बड़ी मृत्यु का क्षण है। क्योंकि जो सबसे अंतरस्थ है वहीं अलग हो रहा है। वहीं मिट रहा है। व्यक्ति को लगता है कि मैं मर रहा हूं। उसे लगता है कि में अब अनस्तित्व में सरक रहा हूं। एक गहन अतल का द्वार खुल जाता है। एक अनंत शून्य सामने आ जाता है। वह घबरा जाता है। और पीछे लौट कर शरीर को पकड़ लेता है। ताकि मिट न जाए; क्योंकि पाँव के नीचे से जमीन खिसक रही है। और सामने एक अतल खाई खुल रही है—शून्य की खाई।

इसलिए लोग यदि चेष्टा भी करते है तो सदा ऊपर-ऊपर करते है। वे पूरी त्वरा से ध्यान नहीं करते है। कहीं अचेतन में उन्हें बोध है कि अगर हम गहरे उतरेंगे तो नहीं बचेंगे। और यही सही है। यह भय सच है। तुम फिर तुम नहीं रहोगे। एक बार तुमने उस अतल को, शून्य को जान लिया तो तुम फिर वही नहीं रहोगे जो थे। तुम उससे एक नया जीवन लेकिन लौटोगे, तुम नए मनुष्य हो जाओगे।

पुराना मनुष्य तो मिट गया; वह कहां गया, तुम्हें इसका नामों निशान भी नहीं मिलेगा। पुराना मनुष्य मन के साथ तादात्म्य में था; अब तुम मन के साथ तादात्म्य नहीं कर सकते हो। अब तुम मन का उपयोग कर सकते हो। अब तुम शरीर का उपयोग कर सकते हो। लेकिन अब मन और शरीर यंत्र है और तुम उनसे ऊपर हो। तुम उनका जैसा चाहो वैसा उपयोग कर सकते हो। लेकिन तुम उनसे तादात्म्य नहीं करते हो। यह स्वतंत्रता देता है।

लेकिन यह तभी हो सकता है जब तुम ना कुछ का विचार करो। 'ना कुछ का विचार'—यह बहुत विरोधाभासी है। तुम किसी चीज के बारे में विचार कर सकते हो, लेकिन ना-कुछ के बारे में कैसे विचार कर सकते हो? इस 'ना कुछ' का क्या अर्थ है? और तुम उसके संबंध में विचार कैसे कर सकते हो? जब भी तुम किसी के संबंध में विचार करते हो, वह विषय बन जाता है। वह विचार बन जाता है। और विचार पदार्थ है। तुम ना-कुछ का विचार कैसे कर सकते हो। तुम शून्य के संबंध में कैसे सोच सकते हो। तुम नहीं सोच सकते , यह संभव नहीं है। लेकिन इस प्रयत्न में ही, ना-कुछ के विषय में शून्य के संबंध में सोचने के प्रयत्न में ही सोच-विचार खो जाएगा। विलीन हो जाएगा।

तुमने झेन कोआन के संबंध में सुना होगा। झेन गुरु साधक को एक कोआन देता है। और कहता है कि इस पर विचार करो। यह कोआन जान बूझ कार विचार को बंद करने के लिए दी जीती है। उदाहरण के लिए वे साध से कहता है: 'जाओ और पता लगाओ कि तुम्हारा मौलिक चेहरा क्या है, वह चेहरा जो तुम्हारे जन्म के भी पहले था। अभी जो तुम्हारा चेहरा है उस पर मत विचार करो, उस चेहरे पर विचार करो जो जन्म के पहले था।'

तुम इस संबंध में क्या सोच विचार कर सकते हो। जन्म के पहले तुम्हारा कोई चेहरा नहीं था। चेहरा तो जन्म के साथ आता है। चेहरा तो शरीर का हिस्सा है। तुम्हारा कोई चेहरा नहीं है। चेहरा शरीर का है। आंखें बंद करो और कोई चेहरा नहीं हे। तुम अपने चेहरे के बारे में दर्पण के द्वारा जानते हो। तुमने खुद उसे कभी देखा नहीं है। तुम उसे देख भी नहीं सकते हो। तो कैसे मौलिक चेहरे के संबंध में सोच-विचार कर सकते हो।

लेकिन साधक चेष्टा करता है। और यह चेष्टा करना ही मदद करता है। साधक चेष्टा वर चेष्टा करेगा—और यह असंभव चेष्टा है। यह बार-बार गुरु के पास आएगा और कहेगा। 'क्या मौलिक चेहरा यह है?' लेकिन उसके पूछने के पहले ही गुरू कहता है: 'नहीं,यह गलत है।' तुम जो कुछ भी लाओगे वह गलत होने ही बाला है।

साधक महीनों तक बार-बार आता जाता रहता है। कुछ खोजता है, कुछ कल्पना करता है। कोई चेहरा देखता है और गुरु से कहता है: 'यह रहा मौलिक चेहरा।' और गुरु फिर कहता है: नहीं। हर बार उसे यह नहीं सुनने को मिलता है। और धीरे-धीरे वह बहुत ज्यादा भ्रमित हो जाता है। उलझन ग्रस्त हो जाता है। वह कुछ सोच नहीं पाता है। वह हर

तरह से प्रयत्न करता है। और हर बार असफल होता है। यह असफलता ही बुनियादी बात है। किसी दिन वह समस्त असफलता पर पहूंच जाता है। उस समग्र असफलता में सब सोच-विचार ठहर जाता है। और उसे बोध होता है। कि मौलिक चेहरे के संबंध में कोई सोच-विचार नहीं हो सकता है। और इस बोध के साथ ही सोच विचार गिर जाता है।

और जब साधक को इस अंतिम असफलता का बोध होता है। और वह गुरु के पास आता है तो गुरु उससे कहता है: 'अब कोई जरूरत नहीं है, मैं मौलिक चेहरा देख रहा हूं।' साधक की आंखें शून्य है। वह गुरु से कुछ कहने नहीं, सिर्फ उनके सान्निध्य में रहने को आया है। उसे कोई उत्तर नहीं मिला; उत्तर था ही नहीं। वह पहली बार उतर के बाना आया है। कोई उत्तर नहीं है। वह मौन होकर आया है।

यहीं अ-मन की अवस्था है। इस अ-मन की अवस्था में 'सीमित आत्मा असीम हो जाती है।' सीमाएं विलीन हो जाती है। और तुम अचानक सर्वत्र हो, सब कहीं हो। तुम अचानक सब कुछ हो। अचानक तुम वृक्ष में हो, पत्थर में हो, आकाश में हो, मित्र में हो, शत्रु में हो—अचानक तुम सक कही हो, सब में हो। सारा अस्तित्व दर्पण के समान हो गया है—और तुम सर्वत्र अपनी ही प्रति छवि देख रहे हो।

यहीं अवस्था आनंद की अवस्था है। अब तुम्हें कुछ भी अशांत नहीं कर सकता; क्योंकि तुम्हारे अतिरिक्त कुछ और नहीं है। अब कुछ भी तुम्हें नहीं मिटा सकता, क्योंकि तुम्हारे सिवाय कोई और नहीं है। अब मृत्यु नहीं है। क्योंकि मृत्यु में भी तुम हो। अब कुछ भी तुम्हारे विरोध में नहीं है।

इस एकाकीपन को महावीर ने कैवल्य कहा है—समग्र एकांत। एकांत क्यों? क्योंकि सब कुछ तुममें समाहित है, सब कुछ तुममें है।

तुम इस अवस्था को दो ढंगों से अभिव्यक्त कर सकते हो। तुम कह सकते हो, क्योंकि मैं हूं, अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। मैं परमात्मा हूं। मैं समग्र हूं। सब कुछ मेरे भीतर आ गया है। सारी नदिया मेरे सागर में विलीन हो गई है। अकेला मैं ही हूं; और कुछ भी नहीं हूं। सूफी संत यही कहते है। और मुसलमान कभी नहीं समझ पाते कि क्यों सूफी ऐसी बातें कहते है। एक सूफी कहता है: 'कोई परमात्मा नहीं है, केवल मैं हूं।' या वह कहता है: 'मैं परमात्मा हूं।' यह विधायक ढंग है कहने का कि अब कोई पृथकता न रही। बुद्ध नकारात्मक ढंग। उपयोग करते है; वे कहते है: मैं न रहा, कुछ भी नहीं रहा।

दोनों बातें सच है, क्योंकि जब सब कुछ मुझमें समाहित है तो अपने ''मै''कहने में कोई तुक नहीं है। ''मैं'' सदा ही ''तू'' के विरोध में है। 'तू' के संदर्भ में 'मैं' अर्थपूर्ण है। जब तूँ न रहा तो 'मैं व्यर्थ हो गया। इसीलिए बुद्ध कहते है कि 'मैं' नहीं हूं, कुछ नहीं है।'

या तो सब कुछ तुममें समा गया है, या तुम शून्य हो गए हो। और सबमें विलीन हो गए हो। दोनों अभिव्यक्तियां ठीक है।

निशचित ही कोई भी अभिव्यक्ति पूरी तरह सही नहीं हो सकती है। यही कारण है कि विपरीत अभिव्यक्ति भी सदा सही है। प्रत्येक अभिव्यक्ति आंशिक है, अंश है; इसीलिए विरोधी अभिव्यक्ति भी सही है। विरोधी अभिव्यक्ति भी उसका ही अंश है।

इसे स्मरण रखो। तुम जो वक्तव्य देते हो वह सच हो सकता है। और उसका विरोध वक्तव्य भी, बिलकुल विरोधी वक्तव्य भी सच हो सकता है। वस्तुत: यह होना अनिवार्य है। क्योंकि प्रत्येक वक्तव्य अंश मात्र है। और अभिव्यक्ति के दो ढंग है। तुम विधायक ढंग चुन सकते हो या नकारात्मक ढंग चून सकते हो। अगर तुम विधायक ढंग चुनते हो तो नकारात्मक ढंग गलत मालूम पड़ता है। लेकिन वह गलत नहीं है। वह परिपूरक है। वह दरअसल उसके विरोध में नहीं है।

तो तुम चाहे उसे ब्रह्म कहो या निर्वाण कहो, दोनों एक ही अनुभव की तरफ इशारा करते है। और वह अनुभव यह है: ना-कुछ का विचार करने से तुम उसे जान लेते हो।

इस विधि के संबंध में कुछ बुनियादी बातें समझ लेनी चाहिए। एक कि विचार करते हुए तुम अस्तित्व से पृथक हो जाते हो। विचार करना कोई संबंध नहीं है; वह कोई संवाद नहीं है। विचार करना अवरोध है। निर्विचार में तुम अस्तित्व से संबंधित होते हो, जुड़ते हो; निर्विचार में तुम संवाद में होते हो।

जब तुम किसी से बात चीत करते हो तो तुम उससे जुड़े नहीं हो। बातचीत ही बाधा बन जाती है। और तुम जितना ही बोलते हो तुम उससे उतने ही दूर हट जाते हो। अगर तुम किसी के साथ मौन में होते हो तो तुम उससे जुड़ते हो। अगर तुम दोनों का मौन सच ही गहन हो, अगर तुम्हारे मन में कोई विचार न हो, दोनों के मन पूरी तरह मौन हों—तो तुम एक हो।

दो शुन्य दो नहीं हो सकते, दो शून्य एक हो जाते है। अगर तुम दो शुन्यों को जोड़ों तो वे दो नहीं रहते। वे मिलकर एक बड़ा शून्य हो जाते है। और अगर तुम किसी के साथ मौन में होते हो तो तुम उससे जुड़ते हो। अगर तुम दोनों को मौन सच ही गहन हो, अगर तुम्हारे मन में कोई विचार न हो, दोनों के मन पूरी तरह मौन हो—तो तुम एक हो। यह विधि कहती है कि अस्तित्व के साथ मौन होओ। और तब तुम परमात्मा को जान लोगे। अस्तित्व के साथ संवाद का एक ही साधन है,मौन। यदि तुम अस्तित्व से बातचीत करते हो तो तुम चूकते हो। तब तुम अपने विचारों में ही बंद हो।

इसे प्रयोग की तरह करो। किसी चीज के साथ भी, एक पत्थर के साथ भी इसे प्रयोग करो। पत्थर के साथ मौन होकर रहो; उसे अपने हाथ में ले लो और मौन हो जाओ। और संवाद घटित होगा। मिलन घटित होगा। तुम पत्थर में गहरे प्रवेश कर जाओगे और पत्थर तुममें गहरे प्रवेश कर जाएगा। तुम्हारे रहस्य पत्थर के प्रति खुल जाएंगे। और पत्थर और रहस्य तुम्हारे प्रति प्रकट कर देगा। लेकिन तुम पत्थर के साथ भाषा का उपयोग नही कर सकते हो। पत्थर कोई भाषा नहीं जानता है। और चूंकि तुम भाषा का उपयोग करते हो, तुम उसके साथ संबंधित नहीं हो सकते।

मनुष्य ने मौन बिलकुल खो दिया है। जब तुम कुछ नहीं कर रहे होते हो तो भी तुम मौन नहीं हो। मन कुछ न कुछ करता ही रहता है। और इस निरंतर की भीतरी बातचीत के कारण,इस सतत आंतरिक बकवास के कारण तुम किसी के भी साथ संबंधित नहीं होते हो। तुम अपने प्रियजनों के साथ भी संबंधित नहीं हो सकते, क्योंकि यह बातचीत चलती रहती है।

तुम अपनी पत्नी के साथ बैठे हो सकते हो; लेकिन तुम अपने भीतर बातचीत में लगे हो और तुम्हारी पत्नी अपने भीतर बातचीत में लगी है। तुम दोनों अपने-अपने भीतर बातचीत में लगे हो और तुम्हारी पत्नी अपने भीतर बातचीत में लगी है। तब तुम एक दूसरे को दोष देते हो। कि तुम मुझे 'प्रेम नही करते हो।'

असल में प्रेम का प्रश्न ही नहीं है। प्रेम संभव ही नहीं है। प्रेम मौन का फूल है। प्रेम का फूल मौन से खिलता है। मौन मिलन में खिलता है। यदि तुम निर्विचार नहीं हो सकते हो तो तुम प्रेम में भी हो सकते हो। और फिर प्रार्थना में होना तो असंभव ही है।

लेकिन हम तो प्रार्थना करते हुए भी बातचीत में लगे हो। हमारे लिए प्रार्थना परमात्मा के साथ बातचीत है। हम बातचीत के इतने अभ्यस्त हो गए है, इतने संस्कारित हो गए है, कि जब हम मंदिर या मस्जिद भी जाते है तो वहां भी अपनी बकवास जारी रखते है। हम परमात्मा के साथ भी बोलते रहते है। बातचीत करते रहते है।
यह बिलकुल मूढ़ता पूर्ण हे। परमात्मा या अस्तित्व तुम्हारी भाषा नहीं समझ सकता है। अस्तित्व एक ही भाषा समझता है—मौन की भाषा और मौन न संस्कृत है, न अरबी, न अंग्रेजी, न हिंदी। मौन जागतिक है। मौन किसी एक का नहीं है।

पृथ्वी पर कम से कम चार हजार भाषाएं है। और प्रत्येक मनुष्य अपनी भाषा के घेरे में बंद है। अगर तुम उसकी भाषा नहीं जानते हो तो तुम उसके साथ संबंधित नहीं हो सकते हो। तब तुम एक दूसरे के लिए अजनबी हो। हम एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकते है। न ही हम एक दूसरे को समझ सकते है और न ही एक दूसरे को प्रेम कर सकते है।

ऐसा इस लिए है; क्योंकि हमें वह बुनियादी जागतिक भाषा नहीं आती। जो मौन की है। सच तो यह है कि मौन के द्वारा ही कोई किसी से संबंधित हो सकता है। और अगर तुम मौन की भाषा जानते हो तो तुम किसी भी चीज के साथ संबंधित हो सकते हो। जुड़ सकते हो। क्योंकि चट्टानें मौन है। वृक्ष मौन है। आकाश मौन है। मौन अस्तित्वगत है। यह मानवीय गुण ही नहीं है, यह अस्तित्वगत है। सबको पता है कि मौन क्या है, सबका अस्तित्व मौन में ही है।

ध्यान का अर्थ मौन है। कोई विचार नहीं। विचार बिलकुल खो गए है। ध्यान है मात्र होना—खुला, ग्रहणशील, तत्पर, मिलने को उत्सुक, स्वागत में, प्रेमपूर्ण—लेकिन वहां सोच-विचार बिलकुल नहीं है। और तब तुम्हें अनंत प्रेम घटित होगा। और तुम यह कभी नहीं कहोगे कि कोई मुझे प्रेम नहीं करता है। तुम यह कभी नहीं कहोगे, तुम्हें कभी यह भाव भी नहीं उठेगा।

अभी तो तुम कुछ भी करो, तुम यही कहोगे कि कोई मुझे प्रेम नहीं करता है। और तुम्हें यह भाव भी उठेगा कि कोई मुझे प्रेम नहीं देता है। हो सकता है कि तुम यह नहीं कहो; तुम यह दिखावा भी कर सकते हो कि कोई मुझे प्रेम करता है। लेकिन गहरे में तुम जानते हो कि कोई तुम्हें प्रेम नहीं करता है।

प्रेमी भी एक दूसरे से पूछते रहते है: 'क्या तुम मुझे प्रेम करते हो?' अनेक ढंगों से वे निरंतर यही बात पूछते रहते है। सब डरे हुए है। सब अनिश्चित में है, सब असुरक्षित है। बहुत तरीकों से वे यह जानते कि कोशिश करते है। कि दूसरा सच में मुझे प्रेम करता है। और उन्हें कभी भरोसा नहीं हो सकता हे। क्योंकि प्रेमी कह सकता है कि हां, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं; लेकिन इसका भरोसा क्या? तुम्हें पक्का कैसे होगा? तुम कैसे जानोंगे कि प्रेमी तुम्हें धोखा नहीं दे रहा है? वह तुम्हें समझा बुझा सकता है। वह तुम्हें यकीन दिला सकता है। लेकिन इससे सिर्फ बुद्धि संतुष्ट हो सकती है, ह्रदय तृप्त नहीं होगा।

प्रेमी-प्रेमी का सदा दुःखी रहते है। उन्हें कभी इस बात का पक्का भरोसा नहीं होता कि दूसरा मुझे प्रेम करता है। तुम्हें कैसे भरोसा आ सकता है। असल में भाषा के जरिए भरोसा देने का कोई उपाय नहीं है। और तुम भाषा के

जरिए पूछ रहे हो। कह रहे हो। और जब प्रेमी मौजूद है तो तुम मन में बातचीत में उलझे हो, प्रश्न पूछ रहे हो। विवाद कर रहे हो। तुम्हें कभी भरोसा नहीं आएगा। और तुम्हें सदा लगेगा कि मुझे प्रेम नहीं मिल रहा है। और यही गहन संताप बन जाता है।

और ऐसा इसलिए नहीं होता है कि कोई तुम्हें प्रेम नहीं करता हे। ऐसा इसलिए होता है कि तुम बंद हो, तुम विचारों में बंद हो। वहां कुछ भी प्रवेश नहीं कर पाता है। विचारों में प्रवेश नही किया जा सकता है। उन्हें गिराना होगा। और अगर तुम उन्हें गिरा देते हो तो सारा अस्तित्व तुममें प्रवेश कर जाता है।

ये सूत्र कहता है: 'ना-कुछ का विचार करने से सीमित आत्मा असीम हो जाती है।'

तुम असीम हो जाओगे। तुम पूर्ण हो जाओगे। तुम जागतिक हो जाओगे। तुम सब कहीं होगे। और तुम आनंद ही हो।

अभी तुम दुःख ही दुःख हो और कुछ नहीं। जो चालाक है वे अपने को धोखे में रखते है कि हम दुःखी नहीं है। या वे इस आशा में रहते है कि कुछ बदलेगा, कुछ घटित होगा। और हमें अपने जीवन के अंत में सब उपलब्ध हो जाएगा। लेकिन तुम दुःखी हो। तुम दिखावे और धोखे निर्मित कर सकते हो। तुम मुखौटे ओढ़ सकते हो। तुम निरंतर मुस्कराते रह सकते हो। लेकिन गहरे में तुम जानते हो कि मैं दुःखी हूं, पीड़ित हूं।

यह स्वाभाविक है। विचारों में बंद रहकर तुम दुःख में ही रहोगे। विचारों से मुक्त होकर, विचारों के पार होकर—सजग। सचेतन, बोधपूर्ण, लेकिन विचारों से अछूते—तुम आनंद ही आनंद हो।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 86

'भाव करो कि मैं किसी ऐसी चीज की चिंतना करता हूं जो दृष्टि के परे है, जो पकड़ के परे है। जो अनस्तित्व के, न होने के परे है—मैं।'

"भाव करो कि मैं किसी ऐसी चीज कीं चिंतना करता हूं जो दृष्टि के परे है।" जिसे देखा नहीं जा सकता।
लेकिन क्या तुम किसी ऐसी चीज की कल्पना कर सकते हो जो देखी न जा सके। कल्पना तो सदा उसकी होती है जो देखी जा सके। तुम उसकी कल्पना कैसे कर सकते हो, उसका अनुमान कैसे कर सकते हो। जो देखी ही न जा सके। तुम उसकी ही कल्पना कर सकते हो जिसे तुम देख सकते हो। तुम उस चीज का स्वप्न भी नहीं देख सकते जो दृश्य न हो। जो देखी न जा सके। यही कारण है कि तुम्हारे सपने भी वास्तविकता की छायाएं है। तुम्हारी कल्पना भी शुद्ध कल्पना नहीं है; क्योंकि तुम जो भी कल्पना करते हो उसे उस संयोजन के सभी तत्व परिचित होंगे, जाने-माने होंगे।
तुम कल्पना कर सकते हो कि एक सोने का पहाड़ आकाश में बादलों की भांति उड़ा जा रहा है। तुमने कभी ऐसी चीज नहीं देखी है। लेकिन तुमने बादल देखा है; तुमने पहाड़ देखा है; तुमने सोना देखा है। ये तीन तत्व इकट्ठे किए जा सकते है। तो कल्पना कभी मौलिक नहीं होती; वह सदा ही उनका जोड़ होती है जिन्हें तुमने देखा है।

यह विधि कहती है: 'भाव करो कि मैं किसी ऐसी चीज की चिंतना करता हूं जो दृष्टि के परे है।'
यह असंभव है। लेकिन इसीलिए यह प्रयोग करने लायक है। क्योंकि इसे करने में ही तुम्हें कुछ घटित हो जाएगा। ऐसा नहीं कि तुम देखने में सक्षम हो जाओगे। लेकिन अगर तुम उसे देखने की चेष्टा करोगे जो देखी न जा सके तो सारा दर्शन खो जाएगा। ऐसी चीज के देखने के प्रयत्न में तुमने जो भी देखा है वह सब विलीन हो जाएगा। अगर तुम इस प्रयत्न में धैर्यपूर्वक लगे रहे तो अनेक चित्र, अनेक बिंब तुम्हारे सामने प्रकट होंगे। तुम्हें उन प्रतिबिंबों को इनकार कर देना है, क्योंकि तुम जानते हो कि तुमने उन्हें देखा है। वे देखे जा सकते है। हो सकता है कि तुमने उन्हें बिलकुल वैसे ही न देखा हो जैसे वे है; लेकिन यदि तुम उनकी कल्पना कर सकते हो तो वे देखे भी जा सकते है। उन्हें अलग हटा दो। और इसी तरह अलग करते चलो। यह विधि कहती है कि जो नहीं देखा जा सकता उसे देखने के प्रयत्न में लगे रहो।

यदि तुम मन में उभरने वाले प्रतिबिंबों को हटाते गए तो क्या होगा? यह कठिन होगा क्योंकि अनेक चित्र उभर कर सामने आएँगे। तुम्हारा मन अनेक चित्र, अनेक बिंब, अनेक सपने सामने ले आएगा। अनेक धारणाएं आएँगी। अनेक प्रतीक पैदा होंगे। तुम्हारा मन नए-नए दृश्य निर्मित करेगा। लेकिन उन्हें हटाते चलो, जब तक कि तुम्हें वह न घटित हो जो अदृश्य है। क्या है वह?

यदि तुम हटाते ही गए तो बाहर से तुम्हें कुछ घटित नहीं होगा। सिर्फ मन का पर्दा खाली हो जाएगा। उस पर कोई चित्र कोई प्रतीक कोई बिंब, कोई सपने नहीं होंगे। उस क्षण में रूपांतरण घटित होता है। जब खाली पर्दा रहता है, उस पर कोई चित्र नहीं रहता, उस क्षण में तुम्हें अपना बोध होता है। सारी चेतना पीछे लौट कर देखने लगती है। स्वमुखी हो जाती है। जब तुम्हें देखने को कुछ नहीं होता है तब तुम्हें पहली बार स्वयं का बोध होता है। तब तुम स्वयं को देखते हो।

यह सूत्र कहता है: 'भाव करो कि मैं किसी ऐसी चीज की चिंतना करता हूं जो दृष्टि के परे है, जो पकड़ के परे है। जो अनस्तित्व के, अन होने के परे है—मैं।'

तब तुम स्वयं को उपलब्ध होते हो। स्वयं होते हो। तब तुम पहली दफा उसे जानते हो। जो देखता है। जो समझता है, जो जानता है। लेकिन यह जानने वाला सदा विषयों मैं छिपा होता है। तुम चीजों को तो जानते हो, लेकिन तुम कभी जानने वाले को नहीं जानते हो। ज्ञाता ज्ञान में खोया रहता है। मैं तुम्हें देखता हूं और फिर किसी दूसरे को देखता हूं,और यह जुलूस चलता रहता है। जन्म से मृत्यु तक मैं हजार-हजार चीजें देखता हूं। और जो दृष्टा है, जो इस जुलूस को देखता है, वह भूल गया है। वह भीड़ में खो गया है। भीड़ विषयों की और द्रष्टा उसमें खो गया है। यह सूत्र कहता है कि अगर किसी ऐसी चीज की चिंतना करने की चेष्टा करते हो जो दृष्टि के परे है। पकड़ के परे है। जिसे तुम मन से नहीं पकड़ सकते—और जो अनस्तित्व के, न होने के भी परे है। तो तुरंत मन कहेगा कि अगर कोई चीज देखी नहीं जा सकती और पकड़ी नहीं जा सकती तो वह चीज है ही नहीं। मन तुरंत प्रतिक्रिया करेगा कि अगर कोई चीज अदृष्य और अग्राह्य है तो वह नहीं है। मन कहेगा कि वह नहीं है, असंभव है।

इस मन की बातों में मत पड़ो। यह सूत्र कहता है: 'दृष्टि के परे, पकड़ के परे, अनस्तित्व के परे।' मन कहेगा कि ऐसा कुछ नहीं है। ऐसा हो ही नहीं सकता। यह असंभव है। सूत्र कहता है कि इस मन का विश्वास मत करो। कुछ हो जो अनस्तित्व के परे अस्तित्ववान है, जो है और फिरा भी देखा नहीं जा सकता, पकड़ा नहीं जा सकता। वह तुम हो।

तुम अपने को नहीं देख सकते हो। या देख सकते हो? क्या तुम किसी एक ऐसी स्थिति की कल्पना कर सकते हो। जिसमें तुम अपना साक्षात्कार कर सको। जिसमें तुम अपने को जान सको? तुम आत्म ज्ञान शब्द को दोहराते रह सकते हो। लेकिन वह एक अर्थ हीन शब्द है। क्योंकि तुम स्वयं को, अपने को नहीं जान सकते हो। आत्मा सदा ज्ञाता है। उसे ज्ञान का विषय नहीं बनाया जा सकता है।

उदाहरण के लिए, अगर तुम सोचते हो कि मैं आत्मा को जान सकता हूं तो जिस आत्मा को तुम जानोंगे वह तुम्हारी आत्मा नहीं होगी। आत्मा तो वह होगी जो इस आत्मा को जान रही है। तुम सदा ज्ञाता रहोगे। तुम सदा ही पीछे रहोगे। तुम जो भी जानोंगे वह तुम नहीं हो सकते। इसका यह अर्थ है कि तुम स्वयं को नहीं जान सकते हो। तुम स्वयं को उस भांति नहीं जान सकते हो जिस भांति अन्य चीजों को जानते हो।

मैं अपने को उस भांति नही देख सता जिस भांति मैं तुम्हें देखता हूं। देखेगा कौन? क्योंकि ज्ञान, दृष्टि दर्शन का अर्थ है कि वहां कम से कम दो है: जानने वाला और जाना जाने वाला। इस अर्थ में आत्मज्ञान संभव नहीं है; क्योंकि वहां एक ही है। वहां ज्ञाता और ज्ञेय एक है; वहां द्रष्टा और दृश्य एक है। तुम अपने को विषय नहीं बना सकते हो। इसलिए आत्मज्ञान शब्द गलत है। लेकिन यह कुछ कहता है। कुछ इशारा करता है। जो कि सच है। तुम अपने को जान सकते हो, लेकिन यह जानना उस जानने से भिन्न होगा। बिलकुल भिन्न होगा। जब सभी विषय खो जाते है, जब जो भी देखा और ग्रहण किया जा सकता है वह विदा हो जाता है। जब तुम सबको अलग कर देते हो, तब तुम्हें अचानक स्वयं का बोध होता है। और यह बोध द्वंद्वात्मक नहीं है। इसमें दो नहीं है। इसमें आब्जेक्ट्स ओर सब्जैक्ट नहीं है। यह अद्वैत है, अखंड है।

यह बोध एक भिन्न ही भांति का जानना है। यह बोध तुम्हें अस्तित्व का एक भिन्न ही आयाम देता है। तुम दो में नहीं बंटे हो; तुम स्वयं के प्रति बोधपूर्ण हो। तुम उसे देख नहीं रहे, तुम उसे पकड़ नहीं सकते हो; और बावजूद वह है—पूरी तरह है।

इसे इस तरह समझो, हमारे पास ऊर्जा है; वह ऊर्जा विषयों की तरफ बही जा रही है। ऊर्जा गतिहीन नहीं हो सकती है। कहीं ठहरी हुई नहीं है। स्मरण रहे, अस्तित्व के परम नियम में एक नियम यह है कि ऊर्जा गतिहीन नहीं हो सकती, वह गत्यात्मक है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। उसे सतत गतिमान रहना है। गत्यात्मकता उसका स्वभाव है। ऊर्जा सतत गतिमान है।

तो जब मैं तुम्हें देखता हूं तब मेरी ऊर्जा तुम्हारी तरफ बहती है। जब मैं तुम्हें देखता हूं तो एक वर्तुल बन जाता है। मेरी ऊर्जा तुम्हारी तरफ बहती है। और फिर मेरी तरफ बहती है। इस तरह एक वर्तुल निर्मित होता है। यदि मेरी ऊर्जा तुम्हारी तरफ जाए, लेकिन मेरी तरफ वापस न आए तो मैं नहीं जान पाऊंगा। एक वर्तुल जरूरी है। ऊर्जा को जाना चाहिए और फिर लौट कर आना चाहिए।

ज्ञान का अर्थ है ऊर्जा ने एक वर्तुल बनाया है। उसने भीतर से बाहर की तरफ गति की; और फिर वह वापस मूल स्त्रोत पर लौट आई। अगर मैं इसी भांति जीता रहूँ, दूसरों के साथ वर्तुल बनाता रहूँ, तो मैं कभी स्वयं को नहीं जान पाऊंगा। क्योंकि मेरी ऊर्जा दूसरों की ऊर्जा से भरी है। वह दूसरों के प्रभा, दूसरों के प्रतिबिंब मुझे देती जाती है। इसी भांति तो तुम ज्ञान इकट्ठा करते हो।

यह विधि कहती है कि विषय को विलीन हो जाने दो अपनी ऊर्जा को रिक्तता में, शून्य में गति करने दो। वह तुम्हारी और से चलती तो है, लेकिन कोई विषय वहां नहीं है। जिसे वह पकड़ या जिसे देखे। तो वह शून्यता से

गुजर कर तुम्हारे पास लौट आती है। वहां कोई विषय नहीं है। वह तुम्हारे लिए कोई जानकारी नहीं लाती है। वह खाली रिक्त और शुद्ध लौट आती है। वह अपने साथ कुछ नहीं लाती है। वह कुंवारी की कुंवारी है; कुछ भी उससे प्रविष्ट नहीं हुआ है। वह विशुद्ध है।

यही ध्यान की पूरी प्रक्रिया है। तुम शांत बैठे हो और तुम्हारी ऊर्जा गति कर रही है। वहां कोई विषय नहीं है, जिससे वह दूषित हो सके। जिससे वह आबद्ध हो सके, जिससे वह प्रभावित हो सके। जिसके साथ वह एक हो सके। तब तुम उसे अपने पर लौटा लेते हो। वहां कोई विषय नहीं है। कोई विचार नहीं है। कोई प्रतिबिंब नहीं है। ऊर्जा गति करती है। उसकी गति शुद्ध है। और वह शुद्ध ओर कुंवारी ही तुम्हारे पास लौट आती है। जिस अवस्था में वह तुमसे गई थी उसी अवस्था में वह लौट आती है। अपने साथ कुछ भी नहीं लाती है। वह सिर्फ अपने को अपने साथ लाती है। और शुद्ध ऊर्जा के उस प्रवेश में तुम स्वयं के प्रति बोध से भर जाते हो।

यदि ऊर्जा अपने साथ कोई जानकारी लाए तो तुम उस चीज के प्रति हो बोधपूर्ण होगे। तुम एक फूल को देखते हो। तुम्हारी ऊर्जा फूल पर जाली है। और उस फूल को फूल, फूल के प्रतिबिंब को, फूल के रंग को, फूल की गंध को अपने साथ ले आती है। ऊर्जा फूल को तुम्हारे पास ल रही है। वह तुम्हें फूल की जानकारी देती है। ऊर्जा फूल से आच्छादित है। तुम कभी उस शुद्ध ऊर्जा से परिचित नही हो सकते। तुम दूसरों की तरफ जाते हो और स्त्रोत पर लौट आते हो।

अगर इस ऊर्जा को कुछ भी प्रभावित न करे, अगर वह अप्रभावित संस्कारित, अस्पर्शित लौट जाए, अगर वह वैसी की वैसी लौट आए जैसी गई थी। अगर वह शुद्ध लौट आये तो कुछ साथ न लाए। तो तुम स्वयं को जानते हो। यह ऊर्जा का शुद्ध वर्तुल है। अब ऊर्जा कहीं बाहर न जाकर तुम्हारे भीतर ही गति करती है। तुम्हारे भीतर ही वर्तुल बनाती है। अब कोई दूसरा नहीं है। तुम स्वयं अपने में गति करते हो। यह गति ही आत्म-प्रकाश बन जाती है। आत्मज्ञान, आत्मबोध बन जाती है। बुनियादी तौर से सब ध्यान विधियां इसी के अलग-अलग प्रकार है।

'भाव करो कि मैं किसी ऐसी चीज की चिंतना करता हूं जो दृष्टि के परे है। जो पकड़ के परे है। जो अनस्तित्व के, न होने के परे है—मैं।'

अगर यह हो सके तो तुम पहली दफा स्वय को जानोंगे। स्वयं के अस्तित्व को अस्तित्व को जानोंगे। जानने वाले को, आत्मा को जानोंगे।

ज्ञान दो प्रकार का है: विषयगत ज्ञान और आत्मगत ज्ञान। एक तो विषय का ज्ञान है और दूसरा स्वयं का ज्ञान है। और कोई आदमी चाहे लाखों चीजें जान ले। चाहे वह पूरे जगत को जान ले। लेकिन अगर वह स्वयं को नहीं जानता है तो वह अज्ञानी है। वह जानकार हो सकता है। पंडित हो सकता है। लेकिन वह प्रज्ञावान नहीं है। संभव है कि वह बहुत जानकारी इकट्ठी कर ले। बहुत ज्ञान इकट्ठा कर ले, लेकिन उसके पास उस बुनियादी चीज का अभाव है जो किसी को प्रज्ञावान बनाता है। वह स्वयं को नहीं जानता है।

उपनिषदों में एक कथा है। एक युवक, श्वेतकेतु, अपने गुरु के आश्रम से शिक्षा प्राप्त कर के घर आता है। उसने सभी परीक्षाए उत्तीर्ण कर ली थी। और उसने उनमें विशिष्टता हासिल की थी। गुरु जो भी उसे दे सके, उसने सब संजो कर रख लिया था। और वह बहुत अंहकार से भर गया था।

जब वह अपने पिता के घर पहुंचा तो पहली बात जो पिता ने पूछी वह यह थी: 'तुम ज्ञान से बहुत भरे हुए मालूम पड़ते हो और तुम्हारे ज्ञान ने तुम्हें बहुत अहंकारी बना दिया है। यह तुम्हारे चलने के ढंग से–जिस ढंग से तुमने घर में प्रवेश किया–प्रकट होता है। मुझे तुमसे एक ही प्रश्न पूछना है, क्या तुमने उसे जान लिया है जिस के जानने से सब जाना लिया जाता है। तुम स्वय को जान गये हो।'

श्वेतकेतु ने कहा: 'लेकिन हमारे विद्यापीठ के पाठय क्रम में यह नहीं था। हमारे गुरु ने इसकी कोई चर्चा नहीं की। मैंने सब जान लिया है जो जाना जा सकता है। आप मुझ कुछ भी पूछे और मैं उत्तर दूँगा। लेकिन यह जो आप पूछ रहे है। यह तो कभी बताया ही नहीं गया।'

पिता ने कहा: 'फिर तुम वापस जाओ। और जब तक उसे नह जान लो जिसे जानकर सब जान लिया जाता है। और जिसे जाने बिना कुछ भी नहीं जाना जाता। तब तक घर मत लौटना। पहले स्वयं को जानो।'

श्वेतकेतु वापस गया। उसने गुरू से कहा: 'मेरे पिता ने कहा कि तुम्हें घर में नहीं आने दिया जाएगा, इस घर में तुम्हारा स्वागत नहीं होगा; क्योंकि हमारे कुल में हम जन्म से ही ब्राह्मण नहीं है। हम ब्रह्म को जानकर ब्राह्मण है। हम ब्राह्मण जन्म से ही नहीं है, प्रामाणिक ज्ञान को प्राप्त करके हम ब्राह्मण है। तो जब तक तुम सच्चे ब्राह्मण न हो जाओ–जो जन्म से नहीं बह्म को जानकर हुआ जाता है। तब तक इस घर में प्रवेश मत करना। तुम हमारे योग्य नहीं हो। इसलिए अब आप मुझे वह ज्ञान सिखाएं।'

गुरु ने कहा: 'जो भी सिखाया जा सकता है। वह सब मैंने तुम्हें सिखा दिया है। और तुम जिसकी बात कर रहे हो वह सिखाया नहीं जा सकता है। तो तुम एक काम करो; तुम बस इसके प्रति उपलब्ध रहो, इसके प्रति खुल रहो। यह ज्ञान सीधे-सीधे नहीं सिखाया जा सकता है। तुम सिर्फ खुले रहो। और किसी दिन घटना घट जाएगी। तुम आश्रम की गायों को ले जाओ।' आश्रम में बहुत गायें थी। कहते चार सौ गाये थी–गुरु ने श्वेतकेतु से कहा: 'तुम गायों को जंगल ले जाओ और गायों के साथ रहो। विचार करना बंद कर दो। शब्दों को छोड़ो; पहले गाय बनो। गायों के साथ रहो, उन्हें प्रेम करो, और वैसे ही मौन हो जाओ। जैसे गायें मौन है। जब गायें के साथ रहो, उन्हें प्रेम करो, और वैसे ही मौन हो जाओ जैसे गायें मौन है। और जब गायें एक हजार हो जाएं तब वापस आ जाना।'

श्वेतकेतु चार सौ गायों को लेकर जंगल चला गया। वहां सोचविचार का कोई उपयोग नहीं था। वहां कोई नहीं था। जिसके साथ बातचीत की जा सके। उसका चित धीरे-धीरे गाय जैसा हो गया। वह वृक्षों के नीचे मौन बैठा रहता था। और ऐसे वर्षो बीत गए, क्योंकि वह तभी वापस जा सकता था। जब गाएं एक हजार हो जाएं। धीरे-धीरे उसके मन से भाषा विलीन हो गई। धीरे-धीरे समाज उसके मन से विदा हो गया। धीरे-धीरे वह मनुष्य भी नहीं रहा;उसकी आंखें गायों की आंखों जैसी हो गई। वह गायों जैसा ही हो गया।

और कहानी बहुत सुंदर है। कहानी कहती है कि श्वेतकेतु गिनना भूल गया। क्योंकि अगर भाषा विलीन हो जाए, शब्द जाल खो जाए तो गिनना कैसा। वह भूल गया कि कैसे गिनती की जाती है। वह यह भी भूल गया कि वापस जाना है। और आगे की कहानी तो और भी सुंदर है। तब गायों ने कि: 'श्वेतकेतु,अब हम हजार हो गई है। अब हम गुरु के घर लौट चलें। गुरु हमारी प्रतीक्षा करते होंगे।'

श्वेतकेतु वापस आया। और गुरु ने दूसरे शिष्यों से कहा: 'गायों की गिनती करो।' गायों की गिनती की गई। और शिष्यों ने गुरु से कहा: ''एक हजार गाएं है।'' गुरु ने कहा: 'एक हजार नहीं, एक हजार एक गाए है–वह एक श्वेतकेतु है।'

श्वेतकेतु गायों के बीच खड़ा था—मौन,शांत; न कोई विचार था, न मन था; वह बिलकुल गाय की भांति शुद्ध और सरल और निर्दोष हो गया था। और गुरू ने उससे कहा: 'तुम्हें यहां आने की जरूरत नहीं है, तुम अपने पिता के घर वापस चले जाओ। तुमने जान लिया; घटना घट गई। तुम अब मेरे पास क्यों आए हो?'

घटना घटती है—जब चित में जानने के लिए कोई विषय नहीं रहता तो तुम जानने वाले को जानते हो। जब मन विचारों से खाली है, जब एक भी लहर नहीं है, एक भी कंपन नहीं है, तब तुम अकेले हो, स्वयं हो। तब तुम्हारे अतिरिक्त कुछ भी नहीं हो। एक आत्म-प्रकाश घटित होता है। आत्मबोध घटित होता है।

यह सूत्र आधार भूत सूत्रों में एक है। इसे प्रयोग करो। प्रयोग कठिन है। क्योंकि विचार करने की आदत, विषयों से चिपकने की आदत, देखे जा सकने वाले और पकड़े जा सकने वाले विषयों की आदत इतनी गहरी है कि उससे मुक्त होने के लिए, विषयों में विचारों में फिर ग्रस्त न होकर मात्र साक्षी हो जाने के लिए, नेति-नेति कह कर सब को हटा देने के लिए बहुत समय और सतत श्रम की जरूरत होगी।

उपनिषदों की समस्त विधि का सार निचोड़ इन दो शब्दों में निहित है: 'नेति-नेति। यह भी नहीं, यह भी नहीं। जो भी मन के सामने आए उसे कहो। यह भी नहीं। यह कहते जाओ और मन के सारे फर्नीचर को बाहर फेंकते जाओ। हटाते जाओ। कमरे को खाली कर देना है। बिलकुल खाली कर देना है। उसी खालीपन में घटना घटती है।'

अगर कुछ भी रह जाएगा तो तुम उससे प्रभावित होते रहोगे। और तब तुम अपने को नहीं जान सकोगे। तुम्हारी निर्दोषता विषयों में खो जाती है। विचारों से भरा मन बाहर भटकता रहता है। तब तुम स्वयं से नहीं जुड़ सकते।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 87

मैं हूं,
यह मेरा है।
यह-यह है।
हे प्रिये, भाव में भी असीमत: उतरो।

'मैं हूं।' तुम इस भाव में कभी गहरे नहीं उतरते हो कि मैं हूं। है प्रिये, ऐसे भाव में भी असीमत: उतरो।
मैं तुम्हें एक झेन कथा कहता हूं। तीन मित्र एक रास्ते से गुजर रहे थे संध्या उतर रही थी। और सूरज डूब रहा था। तभी उन्होंने एक साधु को नजदीक की पहाड़ी पर खड़ा देखा। वे लोग आपस में विचार करने लगे कि साधु क्या कर रहा है। एक ने कहा: 'यह जरूर अपने मित्रों की प्रतीक्षा कर रहा है। वह अपने झोंपड़े से घूमने के लिए निकला होगा और उसके संगी-साथी पीछे छूट गए होंगे। वह उनकी राह देख रहा है।'

दूसरे मित्र ने इस बात को काटते हुए कहा: 'यह सही नहीं है, अगर कोई व्यक्ति किसी की राह देखता है तो वह कभी-कभी पीछे मुड़ कर भी देखता है। लेकिन यह आदमी तो पीछे की तरफ कभी नहीं देखता है। इसलिए मेरा अनुमान है कि यह किसी की राह नहीं देख रहा है। बल्कि उसकी गाय खो गई है। सांझ निकट आ रही है। सूरज डूब रहा है। और जल्दी ही अँधेरा घिर जाएगा। इसलिए वह अपनी गाय की तलाश कर रहा है। वह पहाड़ी की चोटी पर खड़ा देख रहा है। जंगल में गाय कहां है।'

तीसरे मित्र ने कहा: 'ऐसा नहीं हो सकता है। क्योंकि वह इतना शांत खड़ा है, जरा भी इधर-उधर नहीं हिलता है। ऐसा नहीं लगता है कि वह कहीं कुछ देख रहा है—उसकी आंखें भी बंद है। जरूर वह प्रार्थना कर रहा होगा। वह किसी खोई हुई गाय का या किन्हीं पीछे छूट गए मित्रों का इंतजार नहीं कर रहा है।'

इस तरह वह तर्क-वितर्क करते रहे। लेकिन किसी नतीजे पर नहीं पहूंच पाए। फिर उन्होंने तय किया कि हमें पहाड़ी पर चलकर खुद साधु से पूछना चाहिए कि आप क्या कर रहे है। और वे साधु के पास उपर गये। क्या आप अपने मित्र की प्रतीक्षा कर रहे है जो पीछे छूट गए है।

साधु ने आंखें खोली और कहा: मैं किसी की भी प्रतीक्षा में नहीं हूं। और मेरे न मित्र है और न शत्रु, जिनकी मैं प्रतीक्षा करूं। यह कह कर उसने आंखे बंद कर ली।

दूसरे मित्र ने कहा : 'तब मैं जरूर सही हूं। क्या आप अपनी गाय को खोज रहे है जो जंगल में खो गई है।'
साधु ने कहा: 'नहीं मैं किसी को नहीं खोज रहा हूं—न गाय को और न किसी अन्य को। मैं स्वयं के अतिरिक्त किसी में भी उत्सुक नहीं हूं।'

तीसरे मित्र ने कहा: ''तब तो निश्चित ही आप कोई प्रार्थना या कोई ध्यान कर रहे है।''
साधु ने फिर आंखे खोली और कहा: 'मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं मैं बस यहां हूं।'
बौद्ध इसे ही ध्यान कहते है। अगर तुम कुछ करते हो तो वह ध्यान नहीं है। तुम बहुत दूर चले गए। अगर तुम प्रार्थना करते हो तो वह ध्यान नहीं है; तुम बातचीत करने लगे। अगर तुम कोई शब्द उपयोग में लाते हो तो वह ध्यान नहीं है; मन उसमें प्रविष्ट हो गया। उस साधु ने ठीक कहा। उसने कहा: मैं यहां बस हूं, कुछ कर नहीं रहा हूं। यह सूत्र कहता है: 'मैं हूं।'

इस भाव में गहरे उतरो। बस बैठे हुए इस भाव में गहरे उतरो कि मैं मौजूद हूं। मैं हूं। इसे अनुभव करो;इस पर विचार मत करो। तुम अपने मन में कह सकते हो कि मैं हूं; लेकिन कहते ही वह व्यर्थ हो गया। तुम्हारा सिर सब गुड़ गोबर कर देता है। सिर में मत दोहराओं कि मैं जीता हूं, मैं हूं। कहना व्यर्थ है; कहना दो कौड़ी का है। तुम बात ही चूक गए। इसे अपने प्राणों में अनुभव करो। इसे अपने पूरे शरीर में अनुभव करो। केवल सिर में नहीं। इसे समग्र इकाई की भांति अनुभव करो। बस अनुभव करो: 'मैं हूं।'

मैं हूं, इन शब्दों का उपयोग मत करो। क्योंकि मैं तुम्हें समझा रहा हूं, इसलिए मुझे इन शब्दों का उपयोग करना पड़ रहा है। शिव पार्वती को समझा रहे थे। इसलिए उन्हें भी मैं हूं को शब्दों में कहना पडा।

तुम शब्दों का उपयोग मत करा। यह कोई मंत्र नहीं है। तुम्हें यह दोहराना नहीं है कि मैं हूं। अगर तुम दोहराओगे तो तुम सो जाओगे। तुम आत्म-सम्मोहित हो जाओगे।

जब तुम किसी चीज को दोहराते हो तो तुम आत्मा-सम्मोहित हो जाते हो। पहले दोहराने से ऊब पैदा होती है। और फिर तुम्हें नींद आने लगती है। और फिर होश खो जाता है। तुम इस आत्म-सम्मोहन में जब वापस आओगे तो बहुत ताजा अनुभव करोगे—वैसे ही ताजा अनुभव करोगे, जैसे गहरी नींद से जागने पर करते हो।

यह स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। लेकिन यह ध्यान नहीं है। अगर तुम्हें नींद न आती हो तो तुम मंत्र का उपयोग कर सकते हो। मंत्र बिलकुल ट्रैंक्विलाइजर जैसा है—उससे भी बेहतर। तुम किसी शब्द को निरंतर दोहराते रहो, उसका एकसुरा जाप करते रहो। और तुम्हें नींद लग जाएगी। जो भी चीज ऊब लाती है। वह नींद पैदा करती है।

मनोवैज्ञानिक और मनोचिकित्सक अनिद्रा से पीड़ित लोगों को सलाह देते है कि घड़ी की टिक-टिक सुनते रहो और तुम्हें नींद आ जाएगी। यह टिक-टिक लोरी का काम करता है। मां के गर्भ में बच्चा निरंजन नौ महीने तक सोया रहता है। मां का ह्रदय निरंतर धड़कता रहता है और वह धड़कन नींद का कारण बन जाती है।

यही कारण है कि जब तुम्हें कोई अपने ह्रदय से लगा लेता है तो तुम्हें अच्छा लगाता है। उस धड़कन के पास तुम्हें अच्छा लगता है। तुम विश्राम अनुभव करते हो। जो भी चीज एकरसता पैदा करती है उसे विश्राम मिलता है। तुम सो जाते हो।

तुम गांव में शहर के मुकाबले ज्यादा नींद ले सकते हो। क्योंकि गांव का जीवन एकरस है, सपाट है, उबाऊ है। शहर का जीवन भिन्न है। यहां प्रतिपल कुछ न कुछ नया हो गया है। सड़कों का शोरगुल भी बदलता रहता है। गांव में सब कुछ वहीं का वही रहता है। सच तो यह है गांव में खबर ही निर्मित नहीं होती है। वहां कुछ होता ही नहीं है। गांव में सब कुछ वर्तुल में ही घूमता रहता है। इसलिए गांव के लोग गहरी नींद सोते है। क्योंकि उनके चारों और का जीवन उबाने वाला है। शहर में नींद कठिन है, क्योंकि तुम्हारे चारों और का जीवन उत्तेजना से भरा है; वहां सब कुछ बदल रहा है।

तुम कोई भी मंत्र काम में ला सकते हो। राम-राम या ओम-ओम कुछ भी चलेगा। तुम जीसस क्राइस्ट का नाम जप सकते हो। अवे मारिया जप सकते हो। कोई भी शब्द ले लो और उसे एक ही सुर में जपते रहो, तुम्हें गहरी नींद आ जाएगी। और तुम यह भी कर सकते हो। रमण महर्षि साधना की एक विधि बताते थे कि स्वयं पूछो कि मैं कौन हूं। लोगों ने उसको भी मंत्र बना लिया। वे आंखें बंद करके बैठते थे और दोहराते रहते थे। 'मैं कौन हूं?' मैं कौन हूं? यह मंत्र बन गया। लेकिन वह रमण का उद्देश्य नहीं था।

तो इसे मंत्र बनाओ। बैठ कर यह मत दोहराओं कि मैं हूं, उसकी कोई जरूरत नहीं है। सब जानते है और तुम भी जानते हो कि तुम हो। उसकी जरूरत नहीं है। वह फिजूल है। मैं हूं—यह अनुभव करो। अनुभव भिन्न बात है। सर्वथा भिन्न बात है। विचार करना अनुभव से बचने की तरकीब है। विचार करना न केवल भिन्न है। बल्कि धोखा है। जब मैं कहता हूं कि अनुभव करो कि मैं हूं तो उसका क्या मतलब है। मैं इस कुर्सी पर बैठा हूं। अगर मैं अनुभव करने लगू कि मैं हूं तो मैं अनेक चीजों के प्रति बोधपूर्ण हो जाऊँगा। कुर्सी पर पड़ने वाले दबाव का बोध होगा। मखमल के स्पर्श का बोध होगा। कमरे से हवा के गुजरने का बोध होगा। मेरे शरीर से ध्वनि के स्पर्श होने का बोध होगा। ह्रदय की धड़कन का बोध होगा। शरीर में खून मौन प्रवाह का बोध होगा, शरीर की एक सूक्ष्म तरंग का बोध होगा। हमारा शरीर जीवंत और गत्यात्मक है; वह कोई स्थिर, ठहरी हुई चीज नहीं है। तुम तरंगायित हो रहे हो। निरंतर एक सूक्ष्म कंपन जारी है; और जब तक तुम जीवित हो, यह जारी रहेगा। तो एक कंपन का बोध होगा। तुम सारी बहुआयामी चीजों के प्रति बोध से भर जाओगे।

और अगर तुम इसी क्षण अपने भीतर-बाहर होने वाली चीजों के प्रति इतने ही बोधपूर्ण हो जाओ, तो मैं हूं का वह अनुभव होगा जो उसका मतलब है। अगर तुम पूरी तरह बोधपूर्ण हो जाओ तो विचार रूक जायेगे। क्योंकि जब तुम अनुभव ऐसी समग्र घटना है कि उसमें विचार नहीं चल सकता।

शुरू-शुरू में तुम पाओगे कि विचार तैर रहे है। लेकिन धीरे-धीरे जब अस्तित्व में तुम्हारी जड़ें गहरी होगी। जितने ही तुम अपने होने के अनुभव में थिर होगे। उतने ही विचार दूर होते जाएंगे। और तुम इस दूरी को महसूस करोगे। तुम्हें लगेगा कि यह विचार मुझे नहीं , किसी और को घट रहे है—बहुत-बहुत दूर। दूरी स्पष्ट अनुभव होगी। और तुम जब वस्तुत: अपने केंद्र में अपने होने में स्थित हो जाओगे, तब मन विलीन हो जाएगा। तुम होगे; लेकिन न कोई शब्द होगा, न कोई प्रतिबिंब होगा।

ऐसा क्यों होता है? क्योंकि मन दूसरों से संबंधित होने का एक उपाय है। यदि मुझे तुमसे संबंधित होना है। तो मुझे मन का उपयोग करना होगा। मुझे शब्दों का और भाषा का उपयोग करना पड़ेगा। यह सामाजिक घटना है, सामूहिक क्रिया है। अगर तुम अकेले में भी बोलते हो तो तुम अकेले नहीं हो। तुम किसी अन्य व्यक्ति से बोल रहे हो। भले ही तुम अकेले हो, लेकिन अगर तुम बातचीत कर रहे हो तो तुम अकेले नहीं हो। तुम किसी से बातें कर रहे हो। तुम अकेले कैसे बातें कर सकते हो। कोई और मन के भीतर मौजूद है और तुम उससे बोल रहे हो।

मैं दर्शन शास्त्र के एक अध्यापक की आत्मकथा पढ़ रहा था। उसने अपने संस्मरण में कहा है कि एक दिन वह अपनी पाँच साल कि बेटी को स्कूल छोड़ने जा रहा था। बेटी को स्कूल में छोड़कर उसे विश्वविद्यालय पहुंचना था और वहां लेक्चर देना था। तो वह रास्ते में अपने लेक्चर की तैयारी करने लगा।

वह भूल ही गया कि उसकी बेटी कार में उसके बगल में बैठी है और वह बोल-बोल कर लेक्चर देने लगा। लड़की कुछ क्षणों तक सब सुनती रही और फिर उसने पूछा: 'डैडी, आप मुझसे बोल रहे है या मेरे बिना बोल रहे है।'

जब भी तुम बोलते हो तो किसी से बोलते हो—किसी न किसी से बोलते हो। चाहे वह वहां उपस्थित न हो, लेकिन तुम्हारे लिए वह उपस्थित है, तुम्हारे मन के लिए वह उपस्थित है। सब विचार वार्तालाप है विचार मात्र वार्तालाप है। वह एक सामाजिक कृत्य है। इसलिए अगर किसी बच्चे को समाज के बाहर बड़ा किया जाए तो वह भाषा से वंचित रह जाएगा। वह बातचीत करना नहीं सीख पाएगा। समाज तुम्हें भाषा देता है। समाज के बिना भाषा नहीं हो सकती। भाषा सामाजिक घटना है।

जब तुम अपने में प्रतिष्ठित हो जाते हो तो कोई समाज नहीं रहता है। कोई भी नहीं रहता है। मात्र तुम होते हो। मन विलीन हो जाता है। तब तुम किसी से संबंधित नहीं हो रहे हो—कल्पना में भी नहीं—और इसीलिए मन विलीन हो जाता है। तुम मन के बिना होते हो—और यही ध्यान है। मन के बिना होना ही ध्यान है। तुम मूर्च्छित नहीं हो, पूर्णत: सजग और सावचेत हो, अस्तित्व को उसकी समग्रता में उसके बहु-आयाम मे अनुभव कर रहे हो। लेकिन मन खो गया है।

और मन के खोने के साथ ही अनेक चीजें विदा हो जाती है। मन के साथ तुम्हारा नाम विदा हो जाता हे। मन के साथ तुम्हारा रूप विदा हो जाता है। मन के साथ तुम्हारा हिंदू, मुसलमान या पारसी होना विदा हो जाता है। मन के साथ ही तुम्हारा भला या बुरा होना, पुण्यात्मा या पापी होना सुंदर या कुरूप होना विदा हो जाता है। मन के साथ ही तुम्हारा सब कुछ, जो तुम पर थोपा गया था, विलीन हो जाता है। तब तुम अपनी मौलिक शुद्धता में प्रकट होते हो।

तब तुम अपनी समग्र निर्दोषता में, अपने कुँवारे पन में प्रकट होते हो। तब तुम तिनके की तरह झोंकों में उड़ते रहते हो। तुम अस्तित्व में प्रतिष्ठित होते हो।

मन के साथ तुम अतीत में गति कर सकते हो। मन के साथ तुम भविष्य की यात्रा कर सकते हो। मन के बिना न तुम अतीत में जा सकते हो और न भविष्य में। मन के बिना तुम यहां और अभी हो। मन के विलीन होते ही वर्तमान क्षण शाश्वत हो जाता है। वर्तमान क्षण के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता है। और आनंद घटित होता है। तुम्हें किसी खोज में नहीं जाना है। वर्तमान क्षण में स्थित, आत्मा में प्रतिष्ठित—तुम आनंदित हो। और यह आनंद कुछ ऐसा नहीं है जो तुम्हें घटित होता है। तुम स्वयं आनंद हो।

तुमने कभी अपने शरीर को अनुभव नहीं किया। तुम्हारे हाथ है, लेकिन तुमने उन्हें भी कभी अनुभव नहीं किया। तुमने कभी नहीं जाना कि हाथ क्या करते है। वे सतत तुम्हें क्या-क्या सूचनाएं देते रहते है। हाथ कभी भारी और उदास होता है और कभी हलका और प्रफुल्लित। कभी उसमें रसधार बहती है। और कभी सब कुछ मुर्दा हो जाता है। कभी तुम उसे जीवंत और नृत्य करते हुए पाते हो और कभी ऐसा लगता है कि उसमें जीवन नहीं है। वह जड़ और मृत है, तुमसे लटका है, लेकिन जीवित नहीं है।

जब तुम अपने अस्तित्व को अनुभव करने लगते हो तो सारा जगत तुम्हारे लिए सर्वथा नए रूप में जीवित हो उठता है। अब तुम उसी सड़क से गुजरते हो जिससे रोज गुजरते थे, लेकिन अब वह सड़क वही सड़क नहीं है। क्योंकि अब तुम अस्तित्व में केंद्रित हो। तुम उन्हीं मित्रों से मिलते हो जिनसे सदा मिलते थे। लेकिन अब वे वही नहीं है। क्योंकि तुम बदल गए हो। तुम अपने घर वापस आते हो तो जिस पत्नी के साथ वर्षों से रहते आए हो उसी भी सर्वथा भिन्न पाते हो। वह भी वही नहीं रही।

तुम सोए-सोए चलते हो और ऐसे ही सोए लोगों की भीड़ के बीच जीते हो। प्रत्येक व्यक्ति गहरी नींद में है। तुम्हें बस इतना होश है कि तुम गहरी नींद में सोए लोगों के बीच से गुजरते हो और बिना किसी दुर्घटना के अपने घर वापस आ जाते हो। बस इतना ही। इतना होश तुम्हें है। और मनुष्य के लिए यह अल्पतम संभावना है। यही कारण है कि तुम इतने ऊबे हुए हो। इतने सुस्त और मंद हो। जीवन एक बोझ है। और भीतर प्रत्येक मनुष्य मृतयु की प्रतीक्षा कर रहा है। ताकि जीवन से छुटकारा हो। मृत्यु ही एक मात्र आशा मालूम पड़ती है।

ऐसा क्यों है? जीवन परम आनंद हो सकता है। वह इतना ऊब भरा क्यो है? क्योंकि तुम जीवन में केंद्रित नहीं हो। तुम जीवन से उखड़ गये हो। तुम अल्पतम पर जीते हो। और जीवन तो तभी घटित होता है जब तम अधिकतम पर जीते हो।

यह सूत्र तुम्हें अधिकतम जीवन प्रदान करेगा। विचार तुम्हें अल्पतम ही दे सकता है। भाव तुम्हें अधिकतम दे सकता है। जीवन की रहा मन से होकर नहीं जाती, ह्रदय से होकर ही उसकी राह है।

‘मैं हूं। इसे ह्रदय से अनुभव करो। और अनुभव करो कि यह अस्तित्व मेरा है।’

‘यह मेरा है। यह-यह है।’

यह बहुत सुंदर है—इसे अनुभव करो। इसमे स्थित होओ। और फिर जानो कि यह मेरा है, यह अस्तित्व, यह प्रवाहमान जीवन मेरा है।

तुम कहे चले जाते हो कि यह घर मेरा है, यह सामान मेरा है। तुम अपनी चीज की बातें करते रहते हो और तुम्हें पता भी नहीं चलता की तुम्हारी सच्ची संपदा क्या है। समग्र जीवन, समस्त आत्मा तुम्हारी संपदा है। तुम्हारे भीतर गहनत्म संभावना है। अस्तित्व का आत्यंतिक रहस्य तुममें छिपा है और तुम उसके मालिक हो।
शिव कहते है: 'मैं हूं—इसे अनुभव करो। और अनुभव करो कि यह मेरा है।

यह बात सतत स्मरण रखनी है कि इसे विचार नहीं बना लेना है। इसे अनुभव करो, ह्रदय से अनुभव करो कि यह मेरा है। यह अस्तित्व मेरा है और तब तुम कृत्यज्ञता अनुभव करोगे, तब तुम अहोभाव अनुभव करोगे।

अभी तो तुम परमात्मा को धन्यवाद कैसे दे सकते हो? तुम्हारा धन्यवाद भी ऊपरी है। औपचारिकता है। और कैसी हमारी दीनता है कि हम परमात्मा के साथ भी औपचारिकता बरतते है। तुम कृतज्ञ कैसे हो सकते हो? कृतज्ञ होने लायक तुमने कुछ किया ही नहीं है, कुछ ऐसा जाना ही नहीं है।

अगर तुम अपने को अस्तित्व में केंद्रित अनुभव कर सको। उसके साथ एक अनुभव कर सको, उससे परिपूरित अनुभव कर सको। उसके साथ नृत्य में सहभागी हो सको—तब तुम अनुभव करोगे कि यह मेरा है, यह अस्तित्व मेरा है। तब तुम्हें प्रतीति होगी कि यह समस्त रहस्यमय ब्रहमांड मेरा है। यह सारा जगत मेरा लिए अस्तित्व में है। उसने पैदा किया है और मैं उसका ही फूल हूं।

यह चेतना जो तुम्हें मिली है, यही जगत का सुंदरतम फूल है। और करोड़ो-करोड़ो वर्षो से यह पृथ्वी तुम्हारे होने के लिए तैयार है।

''यह मेरा है। यह-यह है।''

यह अनुभव करना है। अनुभव करना है कि यही जीवन है, ऐसा है—यह तथाता। अनुभव करना कि मैं नाहक ही चिंता कर रहा हूं। मैं व्यर्थ ही भिखारी बना हुआ था। व्यर्थ ही अपने को भिखारी समझ रहा था। मैं तो मालिक हूं। जब तुम केंद्रित होते हो तो तुम समष्टि के साथ पूर्ण के साथ हो जाते हो। और तब समस्त अस्तित्व तुम्हारे लिए है; तब तुम भिखारी नहीं हो, तुम अचानक सम्राट हो जाते हो।

यह-यह है। प्रिये ऐसे भाव में भी असीमत: उतरो।

और यह अनुभव करते हुए उसकी कोई सीमा मत बनाओ, उसे असीमत: अनुभव करो। उस पर कोई सीमा-रेखा मत खींचो; कोई सीमा है भी नहीं। वह कहीं समाप्त होता है। अस्तित्व का न कोई आरंभ है और न अंत। और तुम्हारा भी कोई आरंभ और अंत नहीं है।

आरंभ और अंत मन के कारण है। मन का आरंभ है और मन का अंत है। अपने जीवन में वापस लोटों, पीछे की और चलो। और तुम पाओगे कि एक क्षण आता है जहां सब कुछ ठहर जाता है। वहां आरंभ है—मन का आरंभ। तुम पीछे वहां तक स्मरण कर सकते हो। जब तुम तीन वर्ष के रहे होगे या ज्यादा से ज्यादा दो वर्ष के रहे होगे। दो वर्ष तक लौटना बहुत दुर्लभ है—वहां जाकर स्मृति ठहर जाती है। तुम अपनी स्मृति में ज्यादा से ज्यादा वहां तक लौट सकते हो जब तुम दो वर्ष के थे। इसका क्या अर्थ है? इसके पहले की, दो वर्ष की उम्र के पहले की कोई स्मृति तुम्हारे पास नहीं है। अचानक एक शून्य, एक गैप आ जाता है। तुम्हें उसके आगे कुछ भी नहीं मालूम है।

क्या तुम्हें अपने जन्म के संबंध में कुछ याद है? क्या तुम्हें उन नौ महीनों का कुछ स्मरण है जब तुम मां के पेट में थे? तुम तो थे, लेकिन मन नहीं था। मन का आरंभ दो वर्ष की उम्र के आसपास हुआ। यही कारण है कि दो वर्ष की उम्र तक तुम लौटकर स्मरण कर सकते हो। उसके आगे मन नहीं है। वहां स्मृति ठहर जाती है।

तो मन का आरंभ है। मन का अंत है। लेकिन तुम्हारा कोई आरंभ नहीं है। तुम अनादि हो। अगर गहन ध्यान में, अगर ऐसे ध्यान में तुम अस्तित्व को अनुभव कर सको तो मन नहीं है। केवल एक आरंभहीन, अंतहीन ऊर्जा का प्रवाह है, जागतिक ऊर्जा का प्रवाह है। तुम्हारे चारो और एक अनंत असीम सागर है और तुम उसमें मात्र एक लहर हो। लहर का आरंभ है और अंत है। लेकिन सागर का कोई आरंभ और अंत नहीं है। और जब तुम जान लेते हो कि तुम लहर नहीं हो, सागर हो, तो सब दुख, सब संताप विलीन हो जाता है।

तुम्हारे दुःख की नींव में, उसकी गहराई में क्या है? उसकी गहराई में मृत्यु है। तुम भयभीत हो कि तुम्हारा अंत होगा, तुम्हारी मृत्यु होगी। वह बिलकुल निश्चित है। जगत में कुछ भी उतना निश्चित नहीं है। जितनी मृत्यु निश्चित है। वही भय है। वही कंपन है। वहीं दुःख है। कुछ भी करो। तुम मृत्यु के सामने असहाय हो। लाचार हो। कुछ भी नहीं किया जा सकता है। मृत्यु होने ही वाली है। और यह बात तुम्हारे चेतन-अचेतन मन में चलती ही रहती है। जब यह बात चेतन मन में उभर आती है। तुम मृत्यु से भयभीत हो जाते हो। फिर तुम उसे दबा देते हो, और वह भय अचेतन में सरकता रहता है। प्रत्येक क्षण तुम मृत्यु से, मिटने से भयभीत हो।

मन मिटेगा, लेकिन तुम नहीं मिटोगे। मगर तुम अपने को नहीं जानते हो। तुम जिसे जानते हो वह मन है। वह निर्मित हुआ है। उसका आरंभ है और उसका अंत हे। जिसका आरंभ है, उसका अंत निश्चित है। अगर तुम अपने भीतर खोज सको जिसका कोई आरंभ नहीं है। जो बस है, जिसका कोई अंत नहीं है। तो मृत्यु का भय विलीन हो जाता है।

और जब मृत्यु का भाव खो जाता है। तब तुमसे प्रेम प्रवाहित होता है—उसके पहले नहीं। जब तक मृत्यु है तब तक तुम प्रेम कैसे कर सकते हो? तुम किसी से चिपके रह सकते हो। लेकिन तुम प्रेम नही कर सकते। तुम किसी का उपयोग कर सकते हो। तुम प्रेम नहीं कर सकते। तुम किसी का शोषण कर सकते हो। तुम प्रेम का फूल नहीं खिला सकते हो।

प्रत्येक मनुष्य मरने वाला है, प्रत्येक मनुष्य क्यू में, कतार में खड़ा अपने समय का इंतजार कर रहा है। तुम प्रेम कैसे कर सकते हो। पूरी बात ही बेतुकी मालूम पड़ती है। मृत्यु है तो प्रेम अर्थहीन मालूम पड़ता है। क्योंकि मृत्यु सब कुछ मिटा देगी। प्रेम भी शाश्वत नहीं है। तुम अपने प्रियजन के लिए चाहते हुए भी कुछ नहीं कर सकते हो। क्योंकि तुम मृत्यु को नहीं टाल सकते हो। मृत्यु सब के पीछे खड़ी है।

तुम मृत्यु को भूल सकते हो। तुम एक धोखा निर्मित कर सकते हो। तुम मान सकते हो की मृत्यु नहीं है। लेकिन तुम्हारा सब मानना ऊपर का है। गहरे में तुम जानते हो कि मृत्यु होने वाली है। अगर मृत्यु है तो जीवन अर्थ हीन मालूम होता है। तुम झूठे अर्थ रच ले सकते हो। लेकिन उनसे कुछ हल नहीं होगा। थोड़ी देर के लिए उनसे सहारा मिल सकता है। लेकिन फिर सचाई उभरेगी और अर्थ खो जाएंगे। तुम बस अपने को धोखे में रख सकते हो, तुम सतत आत्म वंचना में रह सकते हो—यदि तुम उसे नहीं जानते हो जो अनादि और अंनत है, जो मृत्यु के पार है। अमृत को जानने पर ही प्रेम संभव है, क्योंकि तब मृत्यु नहीं है। प्रेम संभव है। बुद्ध तुम्हें प्रेम करते है। जीसस तुम्हें प्रेम करते है। लेकिन वह प्रेम तुम्हारे लिए बिलकुल अपरिचित है। सर्वथा अज्ञात है। वह प्रेम भय के विलीन होने से आया है।

तुम्हारा प्रेम तो भय से बचने का उपाय भर है। इसलिए जब तुम प्रेम में होते हो, तुम निर्भय मालूम पड़ते हो। कोई तुम्हें बल देता है। और यह पारस्परिक बात है। तुम दूसरे को बल देते हो। दूसरा तुम्हें बल देता है। दोनों दीन-हीन है और दोनों किसी दूसरे को खोज रहे है। और फिर दो दीन हीन व्यक्ति मिलते है और एक दूसरे को बल देने की चेष्टा करते है। यह चमत्कार है। यह हो कैसे सकता है? यह केवल वंचना है, धोखा है। तुम सोचते हो कि कोई तुम्हारे पीछे है, तुम्हारे साथ है। लेकिन तुम भली भांति जानते हो कि मृत्यु में कोई भी तुम्हारे साथ नहीं हो सकता। और जब कोई मृत्यु में तुम्हारे साथ नहीं हो सकता तो वह जीवन में तुम्हारे साथ कैसे हो सकता है। यह मृत्यु को टालने का, भुलाने का उपाय भर है। क्योंकि तुम भयभीत हो, तुम्हें निर्भय होने के लिए किसी की जरूरत नहीं है। कहा जाता है, इमर्सन ने कहीं कहा है, कि बड़े से बड़ा योद्धा भी अपनी पत्नी के सामने कायर होता है। नेपोलियन भी पत्नी के सामने कायर है। क्योंकि पत्नी जानती है कि पति को उसके सहारे की जरूरत है। उसे स्वयं होने के लिए उसके बल की जरूरत है। पति पत्नी पर निर्भर है। जब वह युद्ध क्षेत्र से वापस आता है, लड़ कर वापस आता है, तो कांपता आता है। भयभीत आता है। पत्नी की बाँहों में विश्राम पाता है। आश्वासन पाता है। पत्नी उसे सांत्वना देती है। आश्वस्त करती है। पत्नी के सामने वह बच्चे जैसा हो जाता है। हरेक पति पत्नी केसामने बच्चा है। और पत्नी? वह पति पर निर्भर है। वह पति के सहारे जीती है। वह पति के बिना नहीं जी सकती है। पति उसका जीवन है।

पारस्परिक धोखा है। दोनों भयभीत है, क्योंकि मृत्यु है। दोनों एक दूसरे के प्रेम में मृत्यु को भुलाने की चेष्टा करते है। प्रेमी-प्रेमिका निर्भीक हो जाती है। या निर्भीक होने की चेष्टा करते है। वे कभी-कभी बहुत निर्भीकता के साथ मृत्यु का मुकाबला भी कर लेते है। लेकिन वह भी ऊपरी है; वैसा दिखता भर है।

हमारा प्रेम भय का ही अंग है। उससे बचने के लिए है। सच्चा प्रेम तब घटित होता है जब भय नहीं रहता है। जब भय विलीन हो जाता है। जब तुम जानते हो कि न तुम्हारा कोई आरंभ है और न तुम्हारा कोई अंत है।

और इस पर विचार मत करो। भय के कारण तुम ऐसा सोचने लग सकते हो। तुम सोच सकते हो। 'हां, मैं जानता हूं,मेरा कोई अंत नहीं है। मेरी कोई मृत्यु नहीं है। आत्मा अमर है।' तुम भय के कारण ऐसा सोच सकते हो, लेकिन उसमे कुछ भी नहीं होगा।

प्रामाणिक अनुभव तभी होगा जब तुम ध्यान में गहरे उतरोगे। तब भय विसर्जित हो जाएगा। क्योंकि तुम स्वयं को अनंत-असीम देखते हो। तुम अनंत की तरह फैल जाते हो—आदिहीन अतीत में, अंतहीन भविष्य में। और इस क्षण में,इस वर्तमान क्षण में उसकी गहराई में तुम हो। तुम बस हो, सनातन से हो—तुम्हारा कभी आरंभ नहीं था, तुम्हारा कभी अंत नहीं होगा।

इसे असीमत: अनुभव करो, अनंतत: अनुभव करो।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 88

'प्रत्येक वस्तु ज्ञान के द्वारा ही देखी जाती है।
ज्ञान के द्वारा ही आत्मा क्षेत्र में प्रकाशित होती है।
उस एक को ज्ञाता और ज्ञेय की भांति देखो।'.

जब भी तुम कुछ जानते हो, तुम उसे ज्ञान के द्वारा, जानने के द्वारा जानते हो। ज्ञान की क्षमता के द्वारा ही कोई विषय तुम्हारे मन में पहुंचता है। तुम एक फूल को देखते हो; तुम जानते हो कि यह गुलाब का फूल है। गुलाब का फूल बाहर है और तुम भीतर हो। तुमसे कोई चीज गुलाब तक पहुँचती है। तुमसे कोई चीज फूल तक आती है। तुम्हारे भीतर से कोई उर्जा गति करती है। गुलाब तक आती है, उसका रूप रंग और गंध ग्रहण करती है और लौट कर तुम्हें खबर देती है कि यह गुलाब का फूल है। सब ज्ञान, तुम जो भी जानते हो, जानने की क्षमता के द्वारा तुम पर प्रकट होता है। जानना तुम्हारी क्षमता है; सारा ज्ञान इसी क्षमता के द्वारा अर्जित किया जाता है।

लेकिन यह जानना दो चीजों को प्रकट करता है—ज्ञात को और ज्ञाता को। जब भी तुम गुलाब के फूल को जानते हो, तब अगर तुम ज्ञाता को, जो जानता है उसको भूल जाते हो। तो तुम्हारा ज्ञान आधा ही है। तो गुलाब को जानने में तीन चीजें घटित हुई: ज्ञेय यानी गुलाब, ज्ञाता यानी तुम और दोनों के बीच का संबंध यानी ज्ञान।

तो जानने की घटना को तीन बिंदुओं में बांटा जा सकता है। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। ज्ञान दो बिंदुओं के बीच, ज्ञाता और ज्ञेय के बीच सेतु की भांति है। सामान्यत: तुम्हारा ज्ञान सिर्फ ज्ञेय को, विषय को प्रकट करता है। और ज्ञाता जानने वाला अप्रकट रह जाता है। सामान्यतः तुम्हारे ज्ञान में एक ही तीर होता है। वह तीर गुलाब की तरफ तो जाता है। लेकिन वह कभी तुम्हारी तरफ नहीं जाता। और जब तक वह तीर तुम्हारी तरफ भी न जाने लगे तब तक ज्ञान तुम्हें संसार के संबंध में तो जानने देगा। लेकिन वह तुम्हें स्वयं को नहीं जानने देगा।

ध्यान की सभी विधियां जानने वाले को प्रकट करने की विधियां है। जार्ज गुरजिएफ इसी तरह की एक विधि का प्रयोग करता था। वह इसे आत्म-स्मरण करता था। उसने कहा है कि जब तुम किसी चीज को जान रहे हो तो सदा जानने वाले को भी जानो। उसे विषय में मत भुला दो; जानने वाले को भी स्मरण रखो।

अभी तुम मुझे सुन रहे हो। जब तुम मुझे सुन रहे हो तो तुम दो ढंगों से सुन सकते हो। एक कि तुम्हारा मन सिर्फ मुझ पर केंद्रित हो। तब तुम सुनने वाले को भूल जाते हो। तब बोलने वाला तो जाना जाता है, लेकिन सुनने वाला भुला दिया जाता है। गुरजिएफ कहता था कि सुनते हुए बोलने वाले के साथ-साथ सुनने वाले को भी जानों। तुम्हारे ज्ञान को द्विमुखी होना चाहिए। वह एक साथ दो बिंदुओं की ओर, ज्ञाता और ज्ञेय दोनों की और प्रवाहित हो। उसे एक ही दिशा में सिर्फ विषय की दिशा में नहीं बहना चाहिए। उसे एक साथ दो दिशाओं में, ज्ञेय और ज्ञाता की तरफ प्रवाहित होना चाहिए। इसे ही आत्मा-स्मरण कहते है। फूल को देखते हुए उसे भी स्मरण रखो जो देख रहा है।

यह कठिन है। क्योंकि अगर तुम प्रयोग करोगे, अगर देखने वाले को स्मरण रखने की चेष्टा करोगे तो तुम गुलाब को भूल जाओगे। तुम एक ही दिशा में देखने के ऐसे आदी हो गए हो कि साथ-साथ दूसरी दिशा को भी देखने में थोड़ा समय लगाता है। अगर तुम ज्ञाता के प्रति सजग होते हो तो ज्ञेय विस्मृत हो जाएगा। और अगर तुम ज्ञेय के प्रति सजग होते हो तो ज्ञाता विस्मृत हो जाएगा। लेकिन थोड़े प्रयेत्न से तुम धीरे-धीरे दोनों के प्रति सजग होने में समर्थ हो जाओगे।

इसे ही गुरजिएफ आत्म-स्मरण कहता है। यह एक बहुत प्राचीन विधि है। बुद्ध ने इसका खूब उपयोग किया था। फिर गुरजिएफ इस विधि को पश्चिमी जगत में लाया। बुद्ध इसे सम्यक स्मृति कहते थे। बुद्ध ने कहा कि तुम्हारा मन सम्यक रूपेण स्मृतिवान नहीं है। अगर वह एक ही बिंदु को जानता है। उसे दोनों बिंदुओं को जानना चाहिए। और तब एक चमत्कार घटित होता है। अगर तुम ज्ञेय और ज्ञाता दोनों के प्रति बोधपूर्ण हो तो अचानक तुम तीसरे हो जाते हो। तुम दोनों से अलग तीसरे हो जाते हो। ज्ञेय और ज्ञाता दोनों को जानने के प्रयत्न में तुम तीसरे हो

जाते हो। साक्षी हो जाते हो। तत्क्षण एक तीसरी संभावना प्रकट होती है—साक्षी आत्मा का जन्म होता है। क्योंकि तुम साक्षी हुए बिना दोनों को कैसे जान सकते हो? अगर तुम ज्ञाता हो तो तुम एक बिंदु पर स्थिर हो जाते हो। उससे बंध जाते हो। आत्मा-स्मरण में तुम ज्ञाता के स्थिर बिंदु से अलग हो जाते हो। उससे बंध जाते हो। आत्म-स्मरण में तुम ज्ञाता के एक अलग हो जाते हो। तब ज्ञाता तुम्हारा मन है और ज्ञेय संसार है और तुम तीसरा बिंदू हो जाते हो—चैतन्य, साक्षी, आत्मा।

इस तीसरे बिंदु का अतिक्रमण नहीं हो सकता। और जिसका अतिक्रमण नहीं हो सकता,जिसके पार नहीं जाया जा सकता, वह परम है। जिसका अतिक्रमण हो सकता है वह महत्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है। तुम उसका अतिक्रमण कर सकते हो।

मैं इस एक उदाहरण से समझाने की कोशिश करूंगा। रात में तुम सोते हो और सपना देखते हो; सुबह तुम जानते हो और सपना खो जाता है। जब तुम जागे हुए हो, जब तुम सपना नहीं देख रहे हो, तब एक भिन्न ही जगत तुम्हारे सामने होता है। तुम रास्तों पर चलते हो; तुम किसी कारखाने या कार्यालय में काम करते हो। फिर तुम अपने घर लौट आते हो। और रात में सो जाते हो। और वह संसार जिसे तुमने जागते हुए जाना था, विदा हो जाता है। तब तुम्हें स्मरण नहीं रहता कि मैं कौन हूं। तब तुम नहीं जानते हो कि मैं काला हूं या गोरा हूं। गरीब हूं या अमीर हूं, बुद्धिमान हूं या बेवकूफ, तुम कुछ भी नहीं जानते हो। कि मैं जवान हूं या बूढ़ा। तुम नहीं जानते हो कि मैं स्त्री हूं या पुरूष हूं। जाग्रत चेतना से जो कुछ संबंधित था वह सब विलीन हो जाता है। और तुम फिर स्वप्न के संसार में प्रवेश कर जाते हो। तुम उस जगत को भूल जाते हो जो तुमने जागते में जाना था; वह बिलकुल खो जाता है। और सुबह फिर सपने का संसार विदा हो जाता है। तुम यथार्थ की दुनियां में लौट आते हो।

इनमें से कौन सच हो? क्योंकि जब तुम सपना देख रहे हो तब वह यथार्थ संसार, जिसे तुम जागते हुए जानते हो, खोजता है। तुम तुलना भी नहीं कर सकते; क्योंकि जब तुम जागे हुए हो तो सपने का संसार नहीं रहता है। इसलिए तुलना असंभव है। कौन सच है? तुम स्वप्न जगत को झूठा कैसे कहते हो? कसौटी क्यों है?

अगर तुम यह कहते हो कि क्योंकि जब मैं जागता हूं तो स्वप्न जगत विलीन हो जाता है। तो यह दलील कसौटी नहीं बन सकती, क्योंकि जब तुम सपना देखते हो तो तुम्हारा जाग्रत जगत वैसे ही विलीन हो जाता है। और सच तो यह है कि अगर तुम इसी को कसौटी मानो तो स्वप्न जगत ज्यादा सच मालूम पड़ता है। क्योंकि जागने पर तुम स्वप्न को याद कर सकते हो, लेकिन जब तुम स्वप्न देख रहे हो जब जाग्रत चेतना को और उसके चारों ओर के जगत को बिलकुल पोंछ देता है। जिसे तुम असली संसार कहते हो। और तुम्हारा असली संसार स्वप्न के संसार को पूरी तरह से नहीं पोंछ पाता है। तब कसौटी क्या है? कैसे तय किया जाए? कैसे तुलना की जाए?

तंत्र कहता है कि दोनों झूठ है। तब सत्य क्या है? तंत्र कहता है कि सत्य वह है जो स्वप्न जगत को जानता है और जो जाग्रत जगत को भी जानता है। वही सत्य है; क्योंकि उसका कभी अतिक्रमण नहीं हो सकता। वह कभी हटाया नहीं जा सकता है। चाहे तुम सपना देख रहे हो या जागे हुए हो, वह है, वह अमिट है। तंत्र कहता है कि वह जो स्वप्न को जानता है कि अब जाग्रत जगत खो गया है। वह सत्य है—क्योंकि ऐसा कोई बिंदु नहीं है जहां वह नहीं है; वह सदा है। जिसे किसी भी अनुभव से अलग नहीं किया जा सकता, वह सत्य है।

वह जिसका अतिक्रमण नहीं हो सकता, जिसके पार तुम नहीं जा सकते हो, वह तुम हो, वह तुम्हारी आत्मा है। और अगर तुम उसके पार जा सकते हो तो वह तुम्हारी आत्मा नहीं है।

गुरजिएफ की यह विधि जिसे वह आत्म-स्मरण कहता है, यह बुद्ध की यह विधि जिसे वह सम्यक स्मृति कहते है, या तंत्र की यह विधि तुम्हें एक ही जगह पहुंचा देती है। वह तुम्हें भीतर उस बिंदु पर पहुंचा देती है जो न ज्ञेय है और न ज्ञाता है। बल्कि जो साक्षी आत्मा है, जो ज्ञेय और ज्ञाता दोनों को जानती है। यह साक्षी परम है; तुम उसके पार नहीं जा सकते हो। क्योंकि अब तुम जो भी करोगे वह साक्षी-भाव ही होगा। तुम साक्षी भाव के आगे नहीं जा सकते। तो साक्षी-भाव चैतन्य का परम आधार है, आत्यंतिक तत्व है।
यह सूत्र तुम पर साक्षी को प्रकट कर देगा।

'प्रत्येक वस्तु ज्ञान के द्वारा ही देखी जाती है। ज्ञान के द्वारा ही आत्मा क्षेत्र में प्रकाशित होती है। उस एक को ज्ञाता और ज्ञेय की भांति देखो।'

यदि तुम अपने भीतर उस बिंदु को देख सके तो ज्ञाता और ज्ञेय दोनों है। तो तुम आब्जेक्ट्स और सब्जैक्ट दोनों के पार हो गए। तब तुम उस पदार्थ और मन दोनों का अतिक्रमण कर गए; तब तुम बाहम और आंतरिक दोनों के पार हो गए। तब तुम उस बिंदु पर आ गए जहां ज्ञाता और ज्ञेय एक है। उनमें कोई विभाजन नहीं है। मन के साथ विभाजन है; साक्षी के साथ विभाजन समाप्त हो जाता है। साक्षी के साथ तुम यह नहीं कह सकते कि कौन ज्ञेय है और कौन ज्ञाता है; वह दोनों है।

लेकिन इस साक्षी का अनुभव होना चाहिए; अन्यथा वह दार्शनिक ऊहा पोह बन कर रह जाता है। इसलिए इसे प्रयोग करो। तुम गुलाब के फूल के पास बैठे हो; उसे देखो। पहला काम ध्यान को एक जगह केंद्रित करना है। गुलाब के प्रति पूरे ध्यान को लगा देना है—जैसे कि सारी दुनिया विलीन हो गई है। और सिर्फ गुलाब ही रह गया है। तुम्हारी चेतना गुलाब के अस्तित्व के प्रति पूरी तरह उन्मुख हो।

और अगर ध्यान समग्र हो तो संसार विलीन हो जाता है। क्योंकि ध्यान जितना ही एकाग्र होगा,उतना ही गुलाब के बाहर की दुनिया खो जाएगी। सारा संसार विलीन हो जाता है। केवल गुलाब रहता है। गुलाब ही सारा संसार हो जाता है।

यह पहला कदम है। गुलाब पर एकाग्र होना पहला कदम है। अगर तुम गुलाब पर एकाग्र नहीं हो सकते तो तुम ज्ञाता की तरफ गति नहीं कर सकते; क्योंकि तब तुम्हारा मन सदा भटक-भटक जाता है। इसलिए ध्यान की तरफ जाने के लिए एकाग्रता पहला कदम है। तब सिर्फ गुलाब बचता है और सारा संसार विलीन हो जाता है। अब तुम भीतर की तरफ गति कर सकते हो; अब गुलाब वह बिंदु है जहां से तुम गति कर सकते हो। अब गुलाब को देखो और साथ ही स्वयं के प्रति, ज्ञाता के प्रति जागरूक होओ।

आरंभ में तुम चूक-चूक जाओगे। अगर तुम ज्ञाता की और गति करोगे तो गुलाब तुम्हारी चेतना से ओझल हो जाएगा। तब गुलाब धुंधला जाएगा, खो जाएगा। जब तुम फिर गुलाब पर आओगे तो स्वयं को भूल जाओगे। यह लुकाछिपी का खेल कुछ समय तक चलता रहेगा। लेकिन अगर तुम प्रयत्न करते ही रहे, करते ही रहे तो देर-अबेर एक क्षण आएगा जब तुम अपने को दोनों के बीच में पाओगे। ज्ञाता होगा,मन होगा। गुलाब होगा। और तुम ठीक माध्य में होगे,दोनों को देख रहे होगे। वह मध्य बिंदु, वह संतुलन का बिंदु ही साक्षी है।

और एक बार तुम यह जान गए तो तुम दोनों हो जाओगे। तब गुलाब और मन, ज्ञेय और ज्ञाता,तुम्हारे पंख हो जाएंगे। तब आब्जेक्ट्स और सब्जैक्ट दो पंख है और तुम दोनों के केंद्र हो। तब वे तुम्हारे ही विस्तार है। तब संसार और भगवता दोनों तुम्हारे ही विस्तार है। तुम अपने अस्तित्व के केंद्र पर पहुंच गए। और यह केंद्र साक्षी मात्र है।

'उस एक को ज्ञाता और ज्ञेय की भांति देखो।'

किसी चीज पर एकाग्रता शुरू करो। और जब एकाग्रता समग्र हो तो भीतर की और मुड़ो, स्वयं के प्रति जागरूक होओ। और तब संतुलन की चेष्टा करो। इसमें समय लगेगा। महीनों लग सकते है। वर्षों भी लग सकते है। यह इस पर निर्भर है कि तुम्हारा प्रयत्न कितना तीव्र है। क्योंकि यह बहुत सूक्ष्म संतुलन है। लेकिन यह संतुलन आता है। और जब यह आता है तो तुम अस्तित्व के केंद्र पर पहुंच गए। उस केंद्र पर तुम आत्मस्थ हो। अचल हो, शांत हो, आनंदित हो, समाधिस्थ हो। वहां द्वैत नहीं रह जाता है। इसे ही हिंदुओं ने समाधि कहा है। इसे ही जीसस ने प्रभु का राज्य कहा है।

इसे सिर्फ शाब्दिक रूप से, सिर्फ शब्दों के तल पर समझना बहुत काम का नहीं है। लेकिन अगर तुम प्रयोग करते हो तो तुम्हें आरंभ से ही अनुभव होने लगेगा कि कुछ घटित हो रहा है। जब तुम गुलाब पर एकाग्रता करोगे तो सारा संसार विलीन हो जाएगा। यह चमत्कार है कि सारा संसार विलीन हो जाता है। तब तुम्हें बोध होता है कि बुनियादी चीज मेरा ध्यान है। तुम जहां भी अपनी दृष्टि को ले जाते हो वहीं एक संसार निर्मित हो जाता है। और जहां से तुम अपनी दृष्टि हटा लेते हो वह संसार खो जाता है। तो तुम अपनी दृष्टि से, अपने ध्यान से संसार की रचना कर सकते हो।

इसे इस भांति देखो। तुम यहां बैठे हो। अगर तुम किसी व्यक्ति के प्रेम में हो तो अचानक इस हॉल में एक ही व्यक्ति रह जाता है। शेष सब कुछ खो जाता है। मानो यहां और कुछ नहीं है। क्या हो जाता है। क्यों तुम्हारे प्रेम में होने पर एक ही व्यक्ति रह जाता है। सारा संसार बिलकुल खो जाता है। जैसे कि धूप छाया का खेल हो। सिर्फ एक व्यक्ति यथार्थ है, सच है। क्योंकि तुम्हारा मन एक व्यक्ति पर केंद्रित है, एकाग्र है; तुम्हारा मन एक व्यक्ति पर पूरी तरह तल्लीन है। शेष सब कुछ छाया वत हो जाता है। धूप छाया का खेल हो जाता है। तुम्हारे लिए यह यर्थाथ न रहा।

जब भी तुम एकाग्र होते हो, यह एकाग्रता तुम्हारे अस्तित्व के पूरे ढंग ढांचे को बदल देती है। तुम्हारे चित की सारी रूपरेखा बदल देती है। इसका प्रयोग करो–किसी भी चीज पर प्रयोग करो। बुद्ध की किसी प्रतिमा के साथ प्रयोग करो। या किसी फूल या वृक्ष या किसी भी चीज के साथ प्रयोग करो। या अपनी प्रेमिका या अपने मित्र के चेहरे पर प्रयोग करो–चेहरे को सिर्फ देखो।

यह सरल होगा, क्योंकि अगर तुम किसी चेहरे को प्रेम करते हो तो उस पर एकाग्र होना सरल होगा। और सच बात तो यह है जिन लोगों ने बुद्ध या जीसस या कृष्ण पर एकाग्र होने की कोशिश की, वे प्रेमी थे; बुद्ध को प्रेम करते थे। सारिपुत्र या मौद्गल्यायन या अनय शिष्यों के लिए बुद्ध के चेहरे पर ध्यान करना सरल था। जैसे ही वे बुद्ध के चेहरे को देखते थे, वे सरलता से उसकी तरफ प्रवाहित होने लगते थे। उन्हें उनसे प्रेम था; वे उनसे मोहित थे। तो कोई चेहरा खोज लो–और जिस चेहरे से भी तुम्हें प्रेम हो वह काम देगा–बस आंखों में झांको चेहरे पर एकाग्र होओ। और अचानक तुम पाओगे कि सारा संसार विलीन हो गया है। और एक नया ही आयाम खुल गया है। तब तुम्हारा चित किसी एक चीज पर एकाग्र होता है तब वह व्यक्ति या वह चीज तुम्हारे लिए सारा संसार बन जाती है।

मेरे कहने का मतलब यह है कि जब तुम्हारा ध्यान किसी चीज पर समग्र होता है, तब वह चीज ही सारा संसार हो जाती है। तुम अपने ध्यान के द्वारा अपना संसार निर्मित करते हो। तुम अपना संसार अपने ध्यान से बनाते हो। और जब तुम पूरी तरह तल्लीन हो, तुम्हारी चेतना जैसे नदी की धार की तरह विषय की तरफ बह रही है। तो

अचानक तुम उस मूल स्त्रोत के प्रति बोधपूर्ण हो जाओ जहां से ध्यान प्रवाहित हो रहा है। नदी बह रही है। तुम उसके उद्‌गम के प्रति मूल स्त्रोत के प्रति होश पूर्ण हो जाओ।

आरंभ में तुम बार-बार होश खो दोगे; तुम यहां से वहां डोलते रहोगे। अगर तुम उद्‌गम की तरफ ध्यान दोगे तो तुम नदी को भूल जाओगे। और उस विषय को, सागर को भूल जाओगे। जिसकी और नदी प्रवाहित हो रही है। यह फिर बदलेगा—यदि तुम लक्ष्य पर ध्यान दोगे तो मूल स्त्रोत भूल जाएगा। यह स्वभाविक है; क्योंकि मन का बंधा-बंधाया ढंग है—यह ऑब्जेक्ट को देखता है या सब्जैक्ट को।

यही कारण है कि बहुत से लोग एकांत में चले जाते है। ये संसार को छोड़ ही देते है। संसार को छोड़ने का बुनियादी कारण है कि वे विषय को छोड़ रहे है। ताकि वे अपने आप पर एकाग्र हो सके। यह सरल है। अगर तुम संसार छोड़ दो और आँख बंद कर लो, इंद्रियों को बंद कर लो, तो तुम आसानी से स्वयं के प्रति बोधपूर्ण हो सकते हो।
लेकिन यह बोध भी झूठा है। क्योंकि तुमने द्वैत का एक बिंदू ही चुना है। यह उसी रोग की दूसरी अति है। पहले तुम विषय के प्रति सजग थे, ज्ञेय के प्रति सजग थे और तुम स्वयं का, ज्ञाता का बोध नहीं था। और अब तुम ज्ञाता से बंधे हो और ज्ञेय को भूल गए हो। लेकिन तुम द्वैत में ही हो। और फिर यह पुराना ही मन है जा नए रूप में प्रकट हो रहा है। कुछ भी नहीं बदला है।

यही करण है कि मैं इस बात पर जोर देता हूं कि आब्जेक्ट्स के संसार को नहीं छोड़ना है। आब्जेक्ट्स के जगत से मत भागों; बल्कि ऑब्जेक्ट और सब्जैक्ट दोनों के प्रति साथ-साथ बोधपूर्ण होने की कोशिश करो, बाहम और आंतरिक दोनों के प्रति साथ-साथ सजग बनो। अगर दोनों मौजूद है तो ही तुम दोनों के बीच संतुलित हो सकते हो। अगर एक ही है तो तुम उससे ग्रस्त हो जाओगे।

जो लोग हिमालय चले जाते है और अपने को बंद कर लेते है, वे तुम्हारे ही जैसे लोग है सिर्फ शीर्षासन में खड़े है। तुम आब्जेक्ट्स से बंधे हो; वे सब्जैक्ट से बंध गए है। तुम बाहर अटके हो; वे भीतर अटक गए है। ने तुम मुक्त हो, न वे मुक्त है। क्योंकि एक के साथ तुम मुक्त नहीं हो सकते; एक के साथ तुम तादात्म्य कर लेते हो।
मुक्त तो तुम तभी हो सकते हो जब तुम दोनों के प्रति सजग होते हो, दोनों को जानते हो। तब तुम तीसरे हो जाते हो। और यह तीसरा ही मुक्ति का बिंदू है। एक के साथ तुम तादात्म्य कर लेते हो। दो के साथ गति संभव है, बदलाहट संभव है, संतुलन संभव है—और तुम मध्य बिंदु पर ठीक मध्य बिंदु पर पहुंच सकते हो।
बुद्‌ध कहते थे कि मेरा मार्ग मज्झम निकाय है। मध्य मार्ग है। यह बात ठीक से नहीं समझी गई कि क्यों वे इसे मध्यमार्ग कहने पर इतना जोर देते थे। कारण यह है; उनकी पूरी प्रक्रिया सजगता की है। सम्यक स्मृति की है—यह मध्य मार्ग है। बुद्‌ध कहते है: इस संसार को मत छोड़ो और परलोक से मत बंधो; मध्य में रहो। एक अति को छोड़कर दूसरी अति पर मत सरक जाओ। ठीक मध्य में रहो। क्योंकि मध्य में लोक और परलोक दोनों नहीं है। ठीक मध्य में तुम मुक्त हो। ठीक मध्य में द्वैत नही है। तुम अद्वैत को उपलब्ध हो गए और द्वैत तुम्हारा विस्तार भर है—जैसे दो पंख हो।

बुद्‌ध का मज्झम निकाय इसी विधि पर आधारित है। यह बहुत सुंदर विधि है। अनेक कारणों से यह सुंदर है। एक कि यह बहुत वैज्ञानिक है; क्योंकि तुम केवल दो के बीच संतुलन को उपलब्ध हो सकते हो। अगर एक ही बिंदु हो तो असंतुलन अनिवार्यतः: अनिवार्यतः: रहेगा। इसलिए बुद्‌ध कहते है। कि जो संसारी है तो असंतुलित और जो त्यागी है वे भी दूसरी अति पर असंतुलित है। संतुलित आदमी वह है जो न इस अति पर है और न उस अति पर;

जो ठीक मध्य में है। तुम उसे संसारी नहीं कह सकते; तुम उसे गैर संसारी भी नहीं कह सकते। वह गति करने के लिए स्वतंत्र है; वह किसी से भी आसक्त नहीं है, बंधा नहीं है। वह मध्य बिंदू पर स्वर्णिम मध्य पर पहुंच गया है। दूसरी बात: दूसरी अति पर चला जाना बहुत आसान है—बहुत ही आसान। अगर तुम बहुत भोजन लेते हो तो तुम उपवास आसानी से कर सकते हो; लेकिन सम्यक भोजन लेना कठिन है। अगर तुम बहुत बातचीत करते हो तो तुम मौन में आसानी से उतर सकत हो। लेकिन तुम मितभाषी नहीं हो सकते। अगर तुम बहुत खाते हो तो बिलकुल न खाना बहुत आसान है—यह दूसरी अति है। लेकिन सम्यक भोजन लेना, मध्य बिंदु पर रूक जाना बहुत मुश्किल है। किसी को प्रेम करना सरल है, किसी को धृणा करना भी सरल है; लेकिन उदासीन रहना बहुत मुश्किल है। तुम एक अति से दूसरी अति पर जा सकत हो। लेकिन मध्य में ठहरना बहुत कठिन है। क्यों?

क्योंकि मध्य में तुम्हें अपना मन गंवाना पड़ेगा। तुम्हारा मन अतियों में जीता है। मन का मतलब अति है। मन सदा अतियों में डोलता रहता है। तुम या तो किसी के पक्ष में होते हो यह विपक्ष में; तुम तटस्थ नहीं हो सकते। मन तटस्थता में नहीं हो सकता है। वह यहां हो सकता है या वहां हो सकता है। क्योंकि मन को विपरीत की जरूरत है; उसे किसी के विरोध में होना जरूरी है। अगर वह किसी के विरोध में नह हो तो वह तिरोहित हो जाता है। तब उसकी कोई प्रयोजन नहीं रहा जाता है।

इसे प्रयोग करो। किसी भी बात में तटस्थ हो जाओ, उदासीन हो जाओ, और तुम पाओगे कि अचानक मन को कोई काम न रहा। अगर तुम पक्ष में हो तो तुम सोच-विचार कर सकते हो। अगर तुम विपक्ष में हो तो भी तुम सोच विचार कर सकते हो। लेकिन अगर तुम न पक्ष में हो न विपक्ष में तो सोच विचार के लिए क्या रह जाता है। बुद्ध कहते है कि उपेक्षा मज्झम निकाय का आधार है। उपेक्षा—अतियों की उपेक्षा करो। बस इतना ही करो के अतियों के प्रति उदासीन रहो, और संतुलन घटित हो जाएगा।

यह संतुलन तुम्हें अनुभव का एक नया आयाम देगा। जहां तुम ज्ञाता और ज्ञेय दोनों हो, लोक और परलोक, यह और वह शरीर और मन दोनों हो; जहां तुम दोनों हो और साथ ही साथ दोनों नहीं हो, दोनों के पार हो, एक त्रिकोण निर्मित हो गया।

तुमने देखा होगा कि अनेक रहस्यवादी गुह्म संप्रदायों ने त्रिकोण को अपना प्रतीक चुना है। त्रिकोण गुह्म विद्या का एक अति प्राचीन प्रतीक रहा, उसका यही कारण है। त्रिकोण में तीन कोण है। सामान्यत: तुम्हारे दो कोण ही है। तीसरा कोण गायब है। तीसरा कोण अभी नहीं है। वह अभी विकसित नहीं हुआ है। तीसरा कोण दोनों के पार है। दोनों कोण इस तीसरे कोण के अंग है। और फिर भी यह कोण उनके पार है और दोनों से ऊँचा है।

अगर तुम यह प्रयोग करो तो तुम्हें अपने भीतर त्रिकोण निर्मित करने में सहयोगी होगा। तीसरा कोण धीरे-धीरे ऊपर उठेगा। और जब वह अनुभव में आता है तो तुम दुःख में नहीं रह सकते। एक बार तुम साक्षी हुए कि दुःख नहीं रह सकता है। दुःख का अर्थ है किसी चीज के साथ तादात्म्य बना लेना।

लेकिन एक सूक्ष्म बात याद रखने जैसी है—तब तुम आनंद के साथ भी तादात्म्य नहीं जोड़ोगे। यही कारण है कि बुद्ध कहते है: 'मैं इतना ही कहा सकता हूं,कि दुःख नहीं होगा। समाधि में दुःख नहीं होगा। मैं यह नहीं कहा सकता कि आनंद होगा। बुद्ध कहते है: मैं यह बात नहीं कह सकता; मैं यही कह सकता हूं कि दुःख नहीं होगा।'

और बुद्ध ठीक कहते है। क्योंकि आनंद का अर्थ है कि किसी भी तरह का तादात्म्य नहीं रहा, आनंद के साथ भी तादात्म्य नहीं रहा। यह बहुत बारीक बात है। सूक्ष्म बात है। अगर तुम्हें ख्याल है कि मैं आनंदित हूं तो देर अबेर तुम फिर दुःखी होने की तैयारी कर रहे हो। तुम अब भी किसी मनोदशा से तादात्म्य कर रहे हो।

तुम सुखी अनुभव करते हो; अब तुम सुख के साथ तादात्म्य कर रहे हो। और जिस क्षण तुम्हारा सुख से तादात्म्य होता है उसी क्षण दुख शुरू हो जाता है। अब तुम सुख से चिपकोगे; अब तुम उसके विपरीत से, दुःख से भयभीत होगे और चाहोगे कि सुख सदा तुम्हारे साथ रहे। अब तुमने वे सब उपाय कर लिए जो दुःख के होने के लिए जरूरी है। और फिर दुःख आएगा। और जब तुम सुख से तादात्म्य करते हो तो तुम दुःख से भी तादात्म्य कर लोगे। तादात्म्य ही रोग है।

इस तीसरे बिंदु पर तुम किसी के साथ भी तादात्म्य नहीं करते हो। जो भी आता-जाता है, बस आता-जाता है। तुम मात्र साक्षी रहते हो। देखते हो—तटस्थ, उदासीन और तादात्म्य रहित। सुबह आती है, सूरज उगता है। और तुम उसे देखते हो, तुम उसके साक्षी रहते हो। तूम यह नहीं कहते कि मैं सुबह हूं। फिर जब दोपहर आती है तो तुम यह नहीं कहते कि मैं दोपहर हूं। और जब सूरज डूबता है, अँधेरा उतरता है और रात आती है, तब तुम यह नहीं कहते कि मैं अँधेरा हूं, कि मैं रात हू। तुम उनके साक्षी रहते हो। तुम कहते हो कि सुबह थी, फिर दोपहर हुई फिर श्याम हुई, अब रात है। और फिर सुबह होगी और यह चक्र चलता रहेगा। और मैं केवल द्रष्टा हूं। देखनेवाला हूं, मैं देखता रहता हूं। और अगर यही बात तुम्हारी मनोदशा ओर के साथ लागू हो जाए—सुबह की मनोदशा, दोपहर की मनोदशा, श्याम की, रात की मनोदशा और उनके अपने वर्तुल है, वे घूमते रहते है। तो तुम साक्षी हो जाते हो। तुम कहते हो: अब सूख आया है—ठीक सुबह की भांति,और अब रात आयेगी—दूःख की रात। मेरे चारों और मन:स्थितियां बदलती रहेंगी और मैं स्वयं में केंद्रित, स्थिर बना रहूंगा। मैं किसी भी मन स्थिति में आसक्त नही होऊंगा। मैं किसी भी मन: स्थिति में चिपकूंगा नहीं, बाधूंगा नहीं। मैं किसी चीज की आशा नहीं करुंगा और न मैं निराशा ही अनुभव करूंगा। मैं केवल साक्षी रहूंगा। जो भी होगा मैं उसका देखूँगा। जब वह आएगा,मैं उसका आना देखूँगा; जब वह जाएगा मैं उसका जाना देखूँगा।

बुद्ध इसका बहुत प्रयोग करते है। वे बार-बार कहते है कि जब कोई विचार उठे तो उसे देखो। दूःख का विचार उठे, सूख का विचार उठे, उसे देखते रहो। जब वह शिखर पर आए तब उसे देखो, उसके साक्षी रहो। और जब वह उतरने लगे तब भी उसके द्रष्टा बने रहो। विचार अब पैदा हो रहा है। वह अब है, और अब वह विदा हो रहा है—सभी अवस्थाओं में तुम उसे देखते रहो। उसके साक्षी बने रहो।

यह तीसरा बिंदु तुम्हें साक्षी बना देता है। और साक्षी चैतन्य की परम संभावना है।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 89

'हे प्रिये, इस क्षण में मन, ज्ञान, प्राण, रूप, सब को समाविष्ट होने दो।'

यह विधि थोड़ी कठिन है। लेकिन अगर तुम इसे प्रयोग कर सको तो यह विधि बहुत अद्‌भुत और सुंदर है। ध्यान में बैठो तो कोई विभाजन मत करो;ध्यान में बैठे हुए सब को—तुम्हारे शरीर, तुम्हारे मन, तुम्हारे प्राण, तुम्हारे विचार,

तुम्हारे ज्ञान–सब को समाविष्ट कर लो। सब को समेट लो, सब को सम्मिलित कर लो। कोई विभाजन मत करो, उन्हें खंडों में मत बांटो।
साधारणत: हम खड़ों में बांटते रहते है। तोड़ते रहते है। हम कहते है: 'यह शरीर मैं नहीं हूं।' ऐसी विधियां भी है जो इसका प्रयोग करती है। लेकिन यह विधि सर्वथा भिन्न है, बल्कि ठीक विपरीत है। तो कोई विभाजन मत करो। मत कहो कि मैं शरीर नहीं हूं। मत कहो कि मैं श्वास नहीं हूं। मत कहो कि मैं मन नहीं हूं। कहो कि मैं सब हूं और सब हो जाओ। अपने भीतर कोई विभाजन, कोई बँटाव मत निर्मित करो। यह एक भाव दशा है। आंखें बंद कर लो और तुम्हारे भीतर जो भी है। सब को सम्मिलित कर लो। अपने को कहीं एक जगह केंद्रित मत करो–अकेंद्रित रहो। श्वास आती है और जाती है। विचार आता है और चला जाता है। शरीर का रूप बदलता रहता है। इस पर तुमने कभी ध्यान नहीं दिया है। अगर तुम आंखें बंद करके बैठो तो तुम्हें कभी लगेगा कि मेरा शरीर बहुत बड़ा है और कभी लगेगा कि मेरा शरीर बिलकुल छोटा है। कभी शरीर बहुत भारी मालूम पड़ता है। और कभी इतना हलका कि तुम्हें लगेगा कि मैं उड़ सकता हूं। इस रूप के घटने-बढ़ने को तुम अनुभव कर सकते हो। आंखों को बंद कर लो और बैठ जाओ। और तुम अनुभव करोगे कि कभी शरीर बहुत बड़ा है। इतना बड़ा कि सारा कमरा भर जाए और कभी इतना छोटा लगेगा जैसे कि अणु हो। यह रूप क्यो बदलता है?

जैसे-जैसे तुम्हारा ध्यान बदलता है। वैसे-वैसे तुम्हारे शरीर का रूप भी रूप बदलता है। अगर तुम्हारा ध्यान सर्वग्राही है तो रूप बहुत बड़ा हो जायेगा। और अगर तुम तोड़ते हो करते हो, विभाजन करते हो, कहते हो कि मैं यह नहीं हूं, तो तुम बहुत छोटा, बहुत सूक्ष्म और आणविक हो जाता है।

यह सूत्र कहता है: 'हे प्रिय, इस क्षण में मन, ज्ञान, रूप, सब को समाविष्ट होने दो।'

अपने अस्तित्व में सब को सम्मिलित करो, किसी को भी अलग मत करो, बाहर मत करो। मत कहो कि मैं यह नहीं हूं, कहो कि मैं यह हूं और सब को सम्मिलित कर लो। अगर तुम इतना ही कर सको तो तुम्हें बिलकुल नए अनुभव, अद्भुत अनुभव घटित होंगे। तुम्हें अनुभव होगा कि कोई केंद्र नहीं है। मेरा कोई केंद्र नहीं है।

और केंद्र के जाते ही अहंभाव नहीं रहता। अहंभाव नहीं रहता। केंद्र के जाते ही केवल चैतन्य रहता है–आकाश जैसा चैतन्य जो सब को घेरे हुए है। और जब यह प्रतीति बढ़ती है तो तुममें न सिर्फ तुम्हारी श्वास समाहित होगी, न केवल तुम्हारा रूप समाहित होगा, बल्कि अंतत: तुम में सारा ब्रह्मांड समाहित हो जाएगा।

स्वामी रामतीर्थ ने अपनी साधना में इस विधि का प्रयोग किया था। और एक क्षण आया जब उन्होंने कहना शुरू कर दिया कि सारा जगत मुझमें है और ग्रह-नक्षत्र मेरे भीतर घूम रहे है। कोई उनसे बात कर रहा था और उसने कहा कि यहां हिमालय में सब कुछ कितना सुंदर है। रामतीर्थ हिमालय में थे। और उस व्यक्ति ने उनसे कहा: यह हिमालय कितना सुंदर है। और कहते है रामतीर्थ ने उससे कहा: 'हिमालय? हिमालय मेरे भीतर है।'

उस आदमी ने सोचा कि रामतीर्थ पागल है। हिमालय कैसे उनके भीतर हो सकता है? लेकिन यदि तुम इस विधि का प्रयोग करो तो तुम यह अनुभव कर सकते हो। कि हिमालय तुममें है। मैं तुम्हें थोड़ा स्पष्ट करूं कि यह कैसे संभव है।

सच तो यह है कि जब तुम मुझे देखते हो तो उसे नहीं देखते जो कुर्सी पर बैठा हुआ है, तुम दरअसल मेरी तस्वीर को देखते हो जो तुम्हारे भीतर है। जो तुम्हारे मन में बनती है। तुम इस कुर्सी में बैठे हुए मुझको कैसे जान सकते हो? तुम्हारी आंखें केवल मेरी तस्वीर ले सकती है। तस्वीर भी नहीं, सिर्फ प्रकाश की किरणें तुम्हारी आंखों में प्रवेश

कर सकती है। फिर तुम्हारी आंखें खुद मन के पास नहीं पहुँचती है; सिर्फ आंखों से होकर गुजरने वाली किरणें भीतर जाती है। फिर तुम्हारा स्नायु-तंत्र जो उन किरणों को ले जाता है। उन्हें किरणों की भांति नहीं ले जा सकता । वह उन किरणों को रासायनिक पदार्थों में रूपांतरित कर देता है। तो केवल रासायनिक पदार्थ यात्रा करते है। वहां इन रासायनिक पदार्थों को पढ़ा जाता है। उन्हें डिकोड़ किया जाता है। उन्हें उनके मूल चित्र में फिर बदला जाता है। और तब तुम अपने मन में मुझे देखते हो।

तुम कभी अपने मन के बाहर नहीं गए हो। सम्पूर्ण जगत को, जिसे तुम जानते हो। तुम अपने मन में देखते हो। मन में ही उघाड़ते हो। मन में ही जानते हो। सारे हिमालय, समस्त सूर्य और चाँद-तारे तुम्हारे मन के भीतर अत्यंत सूक्ष्म अस्तित्व मे मौजूद है। अगर तुम अपनी आंखें बंद करो और अनुभव करो कि सब कुछ सम्मिलित है तो तुम जानोंगे कि सारा जगत तुम्हारे भीतर घूम रहा है।

और जब तुम यह अनुभव करते हो कि सारा जगत मेरे भीतर घूम रहा है। तो तुम्हारे सभी व्यक्तितत्व दुःख विसर्जित हो गए। विदा हो गए। अब तुम व्यक्ति न रहे, अव्यक्ति हो गए। परम हो गए। अब तुम समस्त अस्तित्व हो गए।

यह विधि तुम्हारी चेतना को विस्तृत करती है। उसे फैलाव देती है।

अब पश्चिम में चेतना को विस्तृत करने के लिए अनेक नशीली चीजों का प्रयोग हो रहा है। एल एस डी है, मारीजुआना है, दूसरी मादक द्रव्य है। भारत में भी पुराने दिनों में उनका प्रयोग होता था। क्योंकि ये मादक द्रव्य चेतना के विस्तार का एक झूठा भाव पैदा कर देते है। और जो लोग भी मादक द्रव्य लेते है, उनके लिए ये विधियां बहुत सुंदर है, बहुत काम की है। क्योंकि वे लोग चेतना के विस्तार के लिए लालायित है।

जब तुम एल एस डी लेते हो तो तुम अपने में ही सीमित नही रहते, तब तुम सब को अपने में समेट लेते हो। इसके प्रयोग के अनेक उदाहरण है। एक लड़की सात मंजिल के मकान से कूद पड़ी, क्योंकि उसे लगा कि मैं नहीं मर सकती हूं। कि मृत्यु असंभव है। उसे लगा कि मैं उड़ सकती हूं, और उसे लगा कि इसमें कोई बाधा नहीं है। कोई भय नहीं है। वह लड़की सात मंजिल मकान से कूद पड़ी और मर गई। उसकी देह टूट फूट कर बिखर गई लेकिन उसके मन में—नशे के प्रभाव में—कोई सीमा का भाव नहीं था। मृत्यु का ख्याल नहीं था।

चेतना का विस्तार एक सनक का रूप ले चुकी है। क्योंकि जब तुम्हारी चेतना फैलती है तो तुम अपने को बहुत ऊँचाई पर अनुभव करते हो,सारा संसार धीरे-धीरे तुममें समा जाता है। तुम विराट हो जाते हो। अति विराट हो जाते हो। और तुम्हारे व्यक्तितत्व दुःख विदा हो जाते है। लेकिन एल एस डी या अन्य ऐसी चीजों से पैदा होने वाला यह भाव भ्रामक है, झूठा है।

तंत्र की इस विधि से यह भाव वास्तविक हो जाता है। यथार्थतः सारा संसार तुम्हारे भीतर आ जाता है। इसके दो कारण है। एक हमारी व्यक्तिगत चेतना दरअसल व्यक्तित्व नहीं है। बहुत गहराई में यह सामूहिक ऊपर हम द्वीपों जैसे अलग-अलग दिखते है। लेकिन गहरे में सभी द्वीप पृथ्वी से जुड़े है। हम द्वीपों जैसे दिखते है—मैं चेतन हूं तुम चेतन हो—लेकिन तुम्हारी चेतना और मेरी चेतना किसी गहराई में एक ही है। वे धरती से मूल आधार से संबद्ध है।

यही कारण है कि ऐसी बहुत सी बातें घटती है जो बेबूझ लगती है। अगर तुम अकेले ध्यान करते हो तो ध्यान में प्रवेश बहुत कठिन होता है। लेकिन अगर तुम समूह में ध्यान करते हो तो प्रवेश बहुत ही आसान हो जाता है। कारण यह है कि समूचा समूह एक इकाई की तरह काम करता है। ध्यान-शिविरों में मैंने देखा है, अनुभव किया है कि दो या तीन दिन के बाद तुम्हारी वैयक्तिकता जाती है। तुम एक वृहत चेतना के हिस्से बन जाते हो। और तब बहुत सूक्ष्म तरंगें अनुभव होने लगती है, बहुत सूक्ष्म तरंगें गति करने लगती है। और एक समूह चेतना विकसित होती है।

तो जब तुम नाचते हो तो असल में तुम नहीं नाच रहे होते हो, वरन समूह-चेतना नाच रही होती है। और तुम उसके अंग भर होते हो। नृत्य तुम्हारे ही नहीं है, तुम्हारे बाहर भी है। तुम्हारे चारों तरफ एक तरंग है। समूह में तुम नहीं होते हो, समूह ही होता है। द्वीप होने की सतही घटना भूल जाती है। और एक होने की गहरी घटना घटती है। समूह में तुम भगवता के निकटतर होते हो। अकेले में तुम उसके बहुत दूर होते हो। क्योंकि अकेले में तुम फिर अपने अहंकार पर सतही भेद पर सतही अलगाव पर केंद्रित हो जाते हो।

यह विधि सहयोगी है, क्योंकि सचाई यही है कि तुम ब्रह्मांड के साथ एक हो। प्रश्न इतना ही है कि कैसे इसे आविष्कृत किया जाए, कैसे इसमें उतरा जाए और इसे उपलब्ध हुआ जाए।

किसी मैत्री पूर्ण समूह के साथ होना तुम्हें सदा ऊर्जा से भरता है। किसी ऐसे व्यक्ति के साथ होने में, जो शत्रुतापूर्ण है, तुम्हें सदा अनुभव होता है कि मेरी ऊर्जा चूसी जा रही है। क्यों? अगर तुम मित्रों के साथ हो, परिवार के साथ हो और आनंदित हो और सुख ले रहे हो, तो तुम ऊर्जस्वी अनुभव करते हो। शक्तिशाली अनुभव करते हो। किसी मित्र के मिलने पर तुम ज्यादा जीवंत मालूम पड़ते हो—उससे ज्यादा जितना मिलने के पहले जीवंत थे। और किसी दुश्मन के पास से गुजरने पर तुम्हें लगता है कि तुम्हारी थोड़ी ऊर्जा कम हो गई, तुम थके-थके लगते हो। क्या होता है?

जब तुम किसी मैत्रीपूर्ण,सहानुभूतिपूर्ण समूह से मिलते हो तो तुम अपनी वैयक्तिकता को भूल जाते हो। तुम उस मूल आधार पर उतर आते हो जहां पर मिल सकते हो। जब किसी शत्रुतापूर्ण व्यक्ति से मिलते हो तो तुम ज्यादा वैयक्तिक, ज्यादा अहंकारी हो जाते हो। तुम अपने अहंकार से चिपक जाते हो। और इसी अहंकार से चिपकने के कारण तुम थके-थके लगते हो। सब ऊर्जा मूल स्त्रोत से आती है। सब ऊर्जा सामूहिक जीवन के भाव से आती है। यह ध्यान करते समय प्रारंभ में तुम्हें सामूहिक जीवन के भाव का अनुभव होगा, और अंत में जागतिक चेतना का अनुभव होगा। जब सब भेद गिर जाते है, सारी सीमाएं विलीन हो जाती है। और अस्तित्व एक इकाई हो जाता है। पूर्ण होता है, तब सब सम्मिलित हो जाता है। समाहित हो जाता है। यह सब को समाविष्ट करने का प्रयत्न अपने निजी अस्तित्व से शुरू होता है। सब कुछ को समाविष्ट करो।

हे प्रिय, इस क्षण में मन, ज्ञान,प्राण, रूप, को समाविष्ट होने दो।'

याद रखने की बुनियादी बात है समावेश—सब को अपने में समाविष्ट करो। किसी को अलग मत करो, बाहर मत रखो। इस सूत्र की कुंजी है: सब का समावेश। सब को समाविष्ट करो, सब को अपने भीतर समेट लो। समाविष्ट करो और बढते जाओ। समाविष्ट करो और विस्तृत होओ। पहले अपने शरीर से यह प्रयोग शुरू करो और फिर बाहरी संसार के साथ भी यही प्रयोग करो।

किसी वृक्ष के नीचे बैठकर वृक्ष को देखो। और फिर आंखें बंद कर लो और अनुभव करो कि वृक्ष मेरी भीतर है। आकाश को देखो; और फिर आंखें बंद करके महसूस करो कि आकाश मेरे भीतर है। उगते हुए सूरज को देखो;फिर आंखें बंद करके भाव करो कि सूरज मेरे भीतर उग रहा है। और-और फैलते जाओ। विराट होते जाओ।

एक अद्भुत अनुभव तुम्हें होगा। जब तुम अनुभव करते हो कि वृक्ष मेरे भीतर है तो तुम तत्क्षण ज्यादा युवा हो जाते हो। और यह कल्पना नहीं है। क्योंकि वृक्ष और तुम दोनों पृथ्वी के अंग हो। पृथ्वी से आए हो। तुम दोनों की जड़ें एक ही धरती में गड़ी है। और अंततः तुम्हारी जड़ें एक ही अस्तित्व में समाई है। तो जब तुम भाव करते हो कि वृक्ष मेरे भीतर होगा। वृक्ष की जीवंतता उसकी हरियाली उसकी ताजगी, उससे गुजरती हुई हवा, सब तुम्हारे भीतर तुम्हारे हृदय में अनुभव होगा।

तो अस्तित्व को और-और अपने भीतर समाविष्ट करो,कुछ भी बाहर मत छोड़ो।

अनेक ढंगों से अनेक जगह गुरु इसकी शिक्षा देते रहे है। जीसस कहते है: 'अपने शत्रु को वैसे ही प्रेम करो जैसे अपने को करते हो।' यह समावेश का प्रयोग है।

फ्रायड कहा करता था: 'मैं क्यों अपने शत्रु को अपने समान प्रेम करूं? वह मेरा शत्रु है; फिर क्यों मैं उसे स्वयं की भांति प्रेम करूं? और मैं उसे प्रेम कैसे कर सकता हूं?

उसका प्रश्न संगत मालूम पड़ता है। लेकिन फ्रायड को पता नहीं है कि क्यों जीसस कहते थे कि अपने शत्रु को वैसे ही प्रेम करो जैसे अपने को करते हो। यह किसी सामाजिक राजनीति की बात नहीं है। यह कोई समाज-सुधार की, एक बेहतर समाज बनाने की बात नहीं है। यह तो सिर्फ तुम्हारे जीवन और तुम्हारे चैतन्य को विस्तार देने की बात है।

अगर तुम शत्रु को अपने में समाविष्ट कर सको तो वह तुम्हें चोट नहीं पहुंचा सकता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह तुम्हारी हत्या नहीं कर सकता। वह तुम्हारी हत्या कर सकता है। लेकिन वह तुम्हें चोट नहीं पहुंचा सकता। चोट तो तब लगती है जब तुम उसे अपने से बारह रखते हो। जब तुम उसे अपने से बाहर रखते हो तो तुम अहंकारी हो जाते हो। पृथक और अकेले हो जाते हो, तुम अस्तित्व से विच्छिन्न हो जाते हो। कट जाते हो। अगर तुम को अपने भीतर समाविष्ट कर सको तो सब समाविष्ट हो जाता है। जब शत्रु समाविष्ट हो सकता है तो फिर वृक्ष और आकाश क्यों समाविष्ट नहीं हो सकते।

शत्रु पर जोर इसलिए है कि अगर तुम शत्रु को सम्मिलित कर सकते हो तो तुम सब को सम्मिलित कर सकते हो। तब किसी को बाहर छोड़ने की जरूरत नहीं रही। और अगर तुम अनुभव कर सको कि तुम्हारा शत्रु भी तुममें समाविष्ट है तो तुम्हारा शत्रु भी तुम्हें शक्ति देगा। ऊर्जा देगा,वह अब तुम्हारे लिए हानिकारक नहीं हो सकता। वह तुम्हारी हत्या कर सकता है; लेकिन तुम्हारी हत्या करते हुए भी वह तुम्हें हानि नहीं पहुंचा सकता। हानि तो तुम्हारे मन से आती है। जब तुम किसी को पृथक मानते हो, अपने से बाहर मानते हो।

लेकिन हमारे साथ तो बात पूरी तरह विपरीत है, बिलकुल उलटी है। हम तो मित्रों को भी अपने में सम्मिलित नहीं करते। शत्रु तो बाहर होते ही है; मित्र भी बाहर ही होते है। तुम अपने प्रेमी-प्रेमिकाओं को भी बाहर ही रखते हो। अपने प्रेमी के साथ होकर भी तुम उसमें डूबते नहीं, एक नहीं होते; तुम पृथक बने रहते हो। तुम अपने को नियंत्रण में रखते हो। तुम अपनी अलग पहचान गंवाना नहीं चाहते हो।

और यही कारण है कि प्रेम असंभव हो गया है। जब तक तुम अपनी अलग पहचान नहीं छोड़ते हो, अहंकार को विदा नहीं देते हो। तब तक तुम प्रेम कैसे कर सकते हो? तुम-तुम बने रहते हो, तुम्हारा प्रेमी भी अपने को बचाए रहता है। तुम दोनों में कोई भी एक दूसरे में डूबने को समाविष्ट होने को राजी नहीं है। तुम दोनो एक दूसरे को बाहर रखते हो। तुम दोनों अपने-अपने घेरे में बंद रहते हो। परिणाम यह होता है कि कोई मिलन नहीं होता है, कोई संवाद नहीं होता है। और जब प्रेमी भी समाविष्ट नहीं हो सकते है तो यह सुनिश्चित है कि तुम्हारा जीवन दरिद्रतम जीवन है। तब तुम अकेले हो, दीन-हीन हो। भिखारी हो। और जब सारा अस्तित्व तुममें समाविष्ट होता है। तो तुम सम्राट हो। इसे स्मरण रखो। समाविष्ट करने को अपनी जीवन-शैली बना लो। उसे ध्यान ही नहीं,जीवन शैली, जीने का ढंग बना लो। अधिक से अधिक को सम्मिलित करने की चेष्टा करो। तुम जितना ज्यादा सम्मिलित करोगे तुम्हारा उतना ही ज्यादा विस्तार होगा। तब तुम्हारी सीमाएं अस्तित्व के और-छोर को छूने लगेंगी। और एक दिन केवल तुम होगे। समस्त अस्तित्व तुममें समाविष्ट होगा। यही सभी धार्मिक अनुभवों का सार सूत्र है।

''हे प्रिय, इस क्षण में मन, ज्ञान,प्राण, रूप, सब को समाविष्ट होने दो।'

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 90

"आँख की पुतलियों को पंख की भांति छूने से उनके बीच का हलकापन ह्रदय में खुलता है। और वहां ब्रह्मांड व्याप जाता है।"

विधि में प्रवेश के पहले कुछ भूमिका की बातें समझ लेनी है। पहली बात कि आँख के बाबत कुछ समझना जरूरी है। क्योंकि पूरी विधि इस पर निर्भर करती है।

पहली बात यह है कि बाहर तुम जो भी हो या जो दिखाई पड़ते हो वह झूठ हो सकता है। लेकिन तुम अपनी आंखों को नहीं झुठला सकते। तुम झूठी आंखें नहीं बना सकते हो। तुम झूठा चेहरा बना सकते हो। लेकिन झूठी आंखें नहीं बना सकते। वह असंभव है। जब तक कि तुम गुरजिएफ की तरह परम निष्णात हीन हो जाओ। जब तक तुम अपनी सारी शक्तियों के मालिक न हो जाओ। तुम अपनी आंखों को नहीं झुठला सकते। सामान्य आदमी यह नहीं कर सकता है। आंखों को झुठलाना असंभव है।

यहीं कारण है कि जब कोई आदमी तुम्हारी आंखों में झाँकता है, तुम्हारी आंखों में आंखें डालकर देखता है तो तुम्हें बहुत बुरा लगाता है। क्योंकि वह आदमी तुम्हारी असलियत में झांकने की चेष्टा कर रहा है। और वहां तुम कुछ भी नहीं कर सकते; तुम्हारी आंखें असलियत को प्रकट कर देंगी,वे उसे प्रकट कर देंगी तो तुम सचमुच हो। इसीलिए किसी की आंखों में झांकना शिष्टाचार के विरूद्ध माना जाता है। किसी से बातचीत करते समय भी तुम उसकी आंखों में झांकने से बचते हो। जब तक तुम किसी के प्रेम में नहीं हो। जब तक कोई तुम्हारे साथ प्रामाणिक होने को राज़ी नहीं था। तब तक तुम उसकी आँख में नहीं देख सकते।

एक सीमा है। मनस्विदों ने बताया है कि तीस सेकेंड सीम है। किसी अजनबी की आंखों में तुम तीस सेकेंड तक देख सकते हो—उससे अधिक नहीं। अगर उससे ज्यादा देर तक देखेंगे तो तुम आक्रामक हो रहे हो और दूसरा व्यक्ति तुरंत बुरा मानेगा। हां, बहुत दूर से तुम किसी की आँख में देख सकते हो; क्योंकि तब दूसरे को उकसा बोध नहीं होता। अगर तुम सौ फीट की दूरी पर हो तो मैं तुम्हें घूरता रह सकता हूं। लेकिन अगर सिर्फ दो फीट की दूरी हो तो वैसा करना असंभव है।

किसी भीड़-भरी रेलगाड़ी में, या किसी लिफ्ट में आस-पास बैठे या खड़े होकर भी तुम एक दूसरे की आंखों में नहीं देखते हो। हो सकता है किसी का शरीर छू जाए वह उतना बुरा नहीं है; लेकिन तुम दूसरे की आंखों में कभी नहीं झाँकते हो। क्योंकि वह जरा ज्यादा हो जाएगा। इतनी निकट से तुम आदमी की असलियत में प्रवेश कर जाओगे। तो पहली बात कि आंखों का कोई संस्कारित रूप नहीं होता; आंखें शुद्ध प्रकृति है। आंखों पर मुखौटा नहीं है। और दूसरी बात याद रखने की यह है कि तुम संसार में करीब-करीब सिर्फ आँख के द्वारा गति करते हो। कहते हो कि तुम्हारी अस्सी प्रतिशत जीवन यात्रा आँख के सहारे होती है। जिन्होंने आंखों पर काम किया है उन मनोवैज्ञानिक को का कहना है कि संसार के साथ तुम्हारा अस्सी प्रतिशत संपर्क आंखों के द्वारा ही होता है। तुम्हारा अस्सी प्रतिशत जीवन आँख से चलता है।

यही कारण है कि जब तुम किसी अंधे आदमी को देखते हो तो तुम्हें दया आती है। तुम्हें उतनी दया और सहानुभूति तब नहीं होती जब कि बहरे आदमी को देखते हो। लेकिन जब तुम्हें कोई अंधा आदमी दिखाई देता है तो तुम्हें अचानक उसके प्रति सहानुभूति और करूणा अनुभव होती है। क्यों? क्योंकि यह अस्सी प्रतिशत मरा हुआ है। बहरा आदमी उतना मरा हुआ नहीं है। अगर तुम्हारे हाथ-पाँव भी कट जाएं तो भी तुम इतना मृत अनुभव नहीं करोगे। लेकिन अंधा आदमी अस्सी प्रतिशत मुर्दा है। वह केवल बीस प्रतिशत जीवित है।

तुम्हारी अस्सी प्रतिशत ऊर्जा तुम्हारी आंखों से बाहर जाती है। तुम संसार में आंखों के द्वारा गति करते हो। इसलिए जब तुम थकते हो तो सबसे पहले आंखें थकती है। और फिर शरीर के दूसरे अंग थकते है। सबसे पहले तुम्हारी आंखें ही ऊर्जा से रिक्त होती है। अगर तुम अपनी आंखें तुम्हारी अस्सी प्रतिशत ऊर्जा है। अगर तुम अपनी आंखों को पुनर्जीवित कर लो तो तुमने अपने को पुनर्जीवन दे दिया।

तुम किसी प्राकृतिक परिवेश में कभी उतना नहीं थकते हो जितना किसी अप्राकृतिक शहर में थकते हो। कारण यह है कि प्राकृतिक परिवेश में तुम्हारी आंखों को निरंतर पोषण मिलता है। वहां की हरियाली, वहां की ताजी हवा,वहां की हर चीज तुम्हारी आंखों को आराम देती है। पोषण देती है। एक आधुनिक शहर में बात उलटी है; वहां सब कुछ तुम्हारी आंखों को शोषण करता है; वहां उन्हें पोषण नहीं मिलता।

तुम किसी दूर देहात में चले जाओ। या किसी पहाड़ पर चले जाओ जहां के माहौल में कुछ भी कृत्रिम नहीं है। जहां सब कुछ प्राकृतिक है, और वहां तुम्हें भिन्न ही ढंग की आंखें देखने को मिलेंगी। उनकी झलक उनकी गुणवता और होगी। वह ताजी होंगी। पशुओं जैसी निर्मल होंगी। गहरी होंगी। जीवंत और नाचती हुई होंगी। आधुनिक शहर में आंखें मृत होती है। बुझी-बुझी होती है। उन्हें उत्सव का पता नहीं है। उन्हें मालूम नहीं है कि ताजगी क्या है। वहां आंखों में जीवन का प्रवाह नहीं है। बस उनका शोषण होता है।

भारत में हम अंधे व्यक्तियों को प्रज्ञाचक्षु कहते है। उसका विशेष कारण है। प्रत्येक दुर्भाग्य को महान अवसर में रूपांतरित किया जा सकता है। आंखों से होकर अस्सी प्रतिशत ऊर्जा काम करती है; और अंधा आदमी अस्सी प्रतिशत मुर्दा होता है, संसार के साथ अस्सी प्रतिशत संपर्क टूटा होता है। जहां तक बाहरी दुनिया का संबंध है, वह

आदमी बहुत दीन है। लेकिन अगर वह इस अवसर का, इस अंधे होने के अवसर का उपयोग करना चाहे तो वह इस अस्सी प्रतिशत ऊर्जा का उपयोग कर सकता है। वह अस्सी प्रतिशत ऊर्जा, जिसके बहने के द्वार बंद है। बिना उपयोग के रह जाती है। यदि वह उसकी कला नहीं जानता है।

तो उसके पास अस्सी प्रतिशत ऊर्जा का भंडार पडा है। और जो ऊर्जा सामान्यत: बहिर्यात्रा में लगती है वही ऊर्जा अंतर्यात्रा में लग सकती है। अगर वह उसे अंतर्यात्रा में संलग्न करना जान ले तो वह प्रज्ञाचक्षु हो जाएगा। विवेकवान हो जाएगा।

अंधा होने से कही कोई प्रज्ञाचक्षु नहीं होता है। लेकिन वह हो सकता है। उसके पास सामान्य आंखें तो नहीं है। लेकिन उसे प्रज्ञा की आंखें मिल सकती है। इसकी संभावना है। हमने उसे प्रज्ञाचक्षु नाम यह बोध देने के इरादे से दिया कि वह इसके लिए दुःख न माने कि उसे आंखें नही है। वह अंतर्चक्षु निर्मित कर सकता है। उसके पास अस्सी प्रतिशत उर्जा का भंडार अछूता पडा है। जो आँख वालों के पास नहीं है। वह उसका उपयोग कर सकता है।
यदि अंधा आदमी बोधपूर्ण नहीं है तो भी वह तुमसे ज्यादा शांत होता है। ज्यादा विश्रामपूर्ण होता है। किसी अंधे आदमी को देखो वह ज्यादा शांत है। उसका चेहरा ज्यादा विश्राम पूर्ण है। वह अपने आप में संतुष्ट है, उसमें अंसतोष नहीं है। यह बात बहरे आदमी के साथ नहीं होती है। बहरा आदमी तुमसे ज्यादा अशांत होगा और चालाक होगा। लेकिन अंधा आदमी न अशांत होता है और न चालाक और हिसाबी-किताबी होता है। यह बुनियादी तौर से श्रद्धावान होता हे। अस्तित्व के प्रति श्रद्धावान होता है।

ऐसा क्यों होता है। क्योंकि उसकी अस्सी प्रतिशत ऊर्जा, हालांकि वह उसके बारे में कुछ नहीं जानता है। भीतर की और प्रवाहित हो रही है। वह ऊर्जा सतत भीतर गिर रही है। ठीक जलप्रपात की तरह गिर रही है। उसे इसका बोध नहीं है। लेकिन यह ऊर्जा उसके ह्रदय पर बरसती रहती है। वही ऊर्जा जो बाहर जाती है, उसके ह्रदय में जा रही है। और यह चीज उसके जीवन का गुणधर्म बदल देती है। प्राचीन भारत में अंधे आदमी को बहुत आदर मिलता था—बहुत-बहुत आदर। अत्यंत आदर में हमने उसे प्रज्ञाचक्षु कहा है।

तुम यही अपनी आंखों के साथ कर सकते हो। यह विधि उसके लिए ही है। यह तुम्हारी बाहर जाने वाली ऊर्जा को वापस लाने, तुम्हारे ह्रदय केंद्र पर उतारने की विधि है। अगर वह ऊर्जा तुम्हारे ह्रदय में उतर जाए तो तुम बहुत हलके हो जाओगे। तुम्हें ऐसा लगेगा कि सारा शरीर एक पंख बन गया है, कि तुम पर अब गुरूत्वाकर्षण का कोई प्रभाव न रहा। और तुम तब तुरंत अपने अस्तित्व के गहनत्म स्त्रोत से जुड़ जाते हो। और वह तुम्हें पुनरुज्जीवित कर देता है।

तंत्र के अनुसार गाढ़ी नींद के गाद तुम्हें जो नव जीवन मिलता है, जो ताजगी मिलती है उसका कारण नींद नहीं है। उसका कारण है कि जो ऊर्जा बाहर जा रही थी, वही ऊर्जा भीतर आ जाती है। अगर तुम यह राज जान लो तो जो नींद सामान्य व्यक्ति छह या आठ घंटों में पूरी करता है। तुम कुछ मिनटों में पूरी कर सकते हो। छह या आठ घंटे की नींद में तुम खुद कुछ नहीं करते हो, प्रकृति ही कुछ करती है। और इसका तुम्हें बोध नहीं है कि यह क्या करती है। तुम्हारी नींद में एक रहस्यपूर्ण प्रक्रिया घटती है। उसकी एक बुनियादी बात यह है कि तुम्हारी ऊर्जा बाहर नहीं जाती है। वह तुम्हारी ह्रदय पर बरसती रहती है। और वहीं चीज तुम्हें नया जीवन देती है। तुम अपनी ही ऊर्जा में गहन स्नान कर लेते हो।

इस गतिशील ऊर्जा के संबंध में कुछ और बातें समझने की है। तुमने गौर किया होगा कि अगर कोई व्यक्ति तुमसे ऊपर है तो वह तुम्हारी आंखों में सीधे देखता है। और अगर वह तुमसे कमजोर है तो वह नीचे की तरफ देखता है।

नौकर गुलाम या कोई भी कम महत्व का व्यक्ति अपने से बड़े व्यक्ति की आंखों में नहीं देखेगा। लेकिन बड़ा आदमी घूर सकता है। सम्राट घूर सकता है। लेकिन सम्राट के सामने खड़े होकर तुम उसकी आंखे से आँख मिलाकर नहीं देख सकते हो। वह गुनाह समझा जाएगा। तुम्हें अपनी आंखों को झुकाएं रहना है।

असल में तुम्हारी ऊर्जा तुम्हारी आंखों से गति करती है। और वह सूक्ष्म हिंसा बन सकती है। यह बात मनुष्यों के लिए ही नहीं, पशुओं के लिए भी सही है। जब दो अजनबी मिलती है, दो जानवर मिलते है। तो वे एक-दूसरे की आँख नीची कर ली तो मामला तय हो गया; फिर वे लड़ते नहीं। बात खत्म हो गई। निशचित हो गया कि उनमें कौन श्रेष्ठ है।

बच्चे भी एक दूसरे की आँख में घूरने का खेल खेलते है; और जो भी आँख पहले हटा लेता है। वह हार गया माना जाता है। और बच्चे सही है। जब दो बच्चे एक दूसरे की आंखों में घूरते है तो उनमें जो भी पहले बेचैनी अनुभव करता है। इधर-उधर देखने लगता है। दूसरे की आँख से बचता है। वह पराजित माना जाता है। और तो घूरता ही रहता है। वह शक्तिशाली माना जाता है। अगर तुम्हारी आंखें दूसरे की आंखों को हरा दे तो वह इस बात का सूक्ष्म लक्षण है कि तुम दूसरे से शक्तिशाली हो।

जब कोई व्यक्ति भाषण देने या अभिनय करने के लिए मंच पर खड़ा होता है। तो वह बहुत भयभीत होता है। वह कांपने लगता है। जो लोग पुराने अभिनेता है, वे भी जब मंच पर आते है तो उन्हें भय पकड़ लेता है। कारण यह है कि उन्हें इतनी आंखें देख रही है। उनकी और इतनी आक्रामक ऊर्जा प्रवाहित हो रही है। उनकी और हजारों लोगों से इतनी ऊर्जा प्रवाहित होती है वे अचानक अपने भीतर कांपने लगते है।

एक सूक्ष्म ऊर्जा आंखों से प्रवाहित होती है। एक अत्यंत सूक्ष्म, अत्यंत परिष्कृत शक्ति आंखों से प्रवाहित होती है। और व्यक्ति-व्यक्ति के साथ इस ऊर्जा का गुण धर्म बदल जाती है।

बुद्ध की ऊर्जा एक तरह की आंखों से प्रवाहित होती है, हिटलर की आंखों से सर्वथा भिन्न तरह की ऊर्जा प्रवाहित होती है। अगर तुम बुद्ध की आंखों से देखो तो पाओगे कि वह आंखें तुम्हें बुला रही है। तुम्हारा स्वागत कर रही है। बुद्ध की आंखें तुम्हारे लिए द्वार बन जाती है। और अगर तुम हिटलर की आंखों से देखो तो पाओगे कि वे तुम्हें अस्वीकार कर रही है। तुम्हारी निंदा कर रही है। तुम्हें दूर हटा रही है। हिटलर की आंखें तलवार जैसी है और बुद्ध की आंखें कमल जैसी है, हिटलर कि आंखों में हिंसा है, बुद्ध की आंखों में करूणा।

आंखों का गुणधर्म अलग-अलग है। देर अबेर हम आँख की ऊर्जा को नापने की विधि खोज लेंगे। और तब मनुष्य के संबंध में जानने को बहुत नहीं बचेगा। सिर्फ आँख की ऊर्जा आँख का गुणधर्म बता देगा कि उसके पीछे किस किस्म का व्यक्ति छिपा है। देर-अबेर इसे नापना संभव हो जाएगा।

सह सूत्र यह विधि इस प्रकार है: 'आँख की पुतलियों को पंख की भांति छूने से उनके बीच का हलकापन ह्रदय में खुलता है और वहां ब्रह्मांड व्याप जाता है।'

'आँख की पुतलियों को पंख की भांति छूने से.....।'

दोनों हथेलियों का उपयोग करो, उन्हें अपनी आंखों पर रखो और हथेलियों से पुतलियों को स्पर्श करो—जैसे पंख से उन्हें छू रहे हो। पुतलियों पर जरा भी दबाव मत डालों। अगर दबाव डालते हो तो तुम पूरी बात से चूक जाते हो। तब पूरी विधि ही व्यर्थ हो गई। कोई दबाव मत डालों; बस पंख की तरह छुओ।

ऐसा स्पर्श, पंखवत स्पर्श धीरे-धीरे आएगा। आरंभ में तुम दबाव दोगे। इस दबाव को कम से कम करते जाओ–जब तक कि दबाव बिलकुल न मालूम हो, तुम्हारी हथैलियां पुतलियों को स्पर्श भर करें। मात्र स्पर्श। इस स्पर्श में जरा भी दबाव न रहे। यदि जरा भी दबाव रह गया तो विधि काम न करेगी। इसलिए इसे पंख-स्पर्श कहा गया है। क्यों? क्योंकि जहां सूई से काम चले वहां तलवार चलाने से क्या होगा। कुछ काम है जिन्हें सुई ही कर सकती है। उन्हें तलवार नहीं कर सकती। अगर तुम पुतलियों पर दबाव देते हो तो स्पर्श का गुण बदल गया; तब तुम आक्रामक हो गए। और जो ऊर्जा आंखों से बहती है वह बहुत सूक्ष्म है। बहुत बारीक है। जरा सा दबाव, और स्पर्श, एक संघर्ष, एक प्रतिरोध पैदा कर देता है। दबाव पड़ने से आंखों से बहने वाली ऊर्जा लड़ेंगी, प्रतिरोध करेगी। एक संघर्ष चलेगा।

तो बिलकुल दबाव मत डालों; आँख की ऊर्जा को हलके से दबाव का भी पता चल जाता है। वह बहुत सूक्ष्म है, कोमल है। तो दबाव बिलकुल नहीं, तुम्हारी हथैलियां पंख की तरह पुतलियों को ऐसे छुएँ जैसे न छू रही हो। आंखों को ऐसे स्पर्श करो कि वह स्पर्श पता भी न चले। किंचित भी दबाव न पड़े; बस हलका सा अहसास हो कि हथेली पुतली को छू रही है। बस।

इससे क्या होगा? जब तुम किसी दबाव के बिना स्पर्श करते हो तो ऊर्जा भीतर की और गति करने लगती है। और अगर दबाव पड़ता है तो ऊर्जा हाथ से लड़ने लगाती है। और वह बाहर चली जाती है। लेकिन अगर हलका सा स्पर्श हो, पंख-स्पर्श हो, तो ऊर्जा भीतर की और बहने लगती है। एक द्वार बंद है। और ऊर्जा पीछे की तरफ लौट पड़ती है। और जिस क्षण ऊर्जा पीछे की तरफ बहने लगेगी, तुम अनुभव करोगे कि तुम्हारे पूरे चेहरे पर और तुम्हारे सिर में एक हलकापन फैल गया। यह प्रतिक्रमण करती हुई ऊर्जा ही, पीछे लौटती है।

और इन दो आंखों में माध्य में तीसरी आँख है। प्रज्ञाचक्षु है। इन्हें दो आंखों के मध्य में शिवनेत्र कहते है। आंखों से पीछे की और बहने वाली ऊर्जा तीसरी आँख पर चोट करती है। और उसके कारण ही हल्का पन महसूस करते हो। जमीन से ऊपर उठते मालूम पड़ते हो। मानों गुरूत्वाकर्षण समाप्त हो गया। और यही ऊर्जा तीसरी आँख से चलकर ह्रदय पर बरसती है।

यह एक शारीरिक प्रक्रिया है। बूंद-बूंद ऊर्जा नीचे गिरती है। ह्रदय पर बरसती है। और तुम्हारे ह्रदय में बहुत हलकापन अनुभव होगा। ह्रदय की धड़कन बहुत धीमी हो जाएगी और श्वास की गति धीमी हो जाएगी और तुम्हारा शरीर विश्राम अनुभव करेगा।

यदि तुम इसे ध्यान की तरह नहीं भी करते हो तो भी यह प्रयोग तुम्हें शारीरिक रूप से सहयोगी होगा। दिन में कभी भी कुर्सी पर बैठे हुए, या यदि कुर्सी न हो तो रेलगाड़ी या कहीं भी बैठे हुए, आंखें बंद कर लो, पूरे शरीर को शिथिल छोड़ दो और अपनी हथेलियों को आंखों पर रखो। लेकिन आंखों पर दबाव मत डोलो–यही बात बहुत महत्व पूर्ण है–पंख की भांति छुओ भर।

जब तुम बिना दबाव के छूते हो तो तुम्हारे विचार तत्क्षण बंद हो जाते है। शांत मन में विचार नहीं चल सकते है। वह ठहर जाते है। विचारों को गति करने के लिए पागलपन जरूरी है। तनाव जरूरी है। विचार तनाव के सहारे जीते है। जब आंखें मौन, शिथिल और शांत है और ऊर्जा पीछे की तरफ गति करने लगती है तो विचार ठहर जाते है। तुम्हें एक सूक्ष्म सुख का अनुभव होगा जो रोज प्रगाढ़ होता जाता है।

दिन में यह प्रयोग कई बार करो। एक क्षण के लिए भी यह छूना अच्छा रहेगा। जब भी तुम्हारी आंखें थक जाएं, जब भी उनकी ऊर्जा चुक जाए। वे बोझिल अनुभव करें—जैसा पढ़ने, फिल्म देखने या टी वी शो देखने से होता है—तो आंखें बंद कर लो और उन्हें स्पर्श करो। उसका असर तत्क्षण होगा।

लेकिन अगर तुम इसे ध्यान बनाना चाहते हो तो कम से कम चालीस मिनट तक इसे करना चाहिए। और कुल बात इतनी है कि दबाव मत डालों, सिर्फ छुओ। क्योंकि एक क्षण के लिए तो पंख जैसा स्पर्श आसान है। लेकिन ऐसा स्पर्श चालीस मिनट रह, यह कठिन है। अनेक बार तुम भूल जाते हो, और दबाव शुरू हो जाता है।

दबाव मत डालों। चालीस मिनट तक यह बोध बना रहे कि तुम्हारे हाथों में कोई वचन नहीं है। वे सिर्फ स्पर्श कर रहे है। इसका सतत होश बना रहे कि तुम आंखों को दबाते नहीं, केवल छूते हो। फिर वह श्वास की भांति गहरा बोध बन जाएगा। जैसे बुद्‌ध कहते है कि पूरे होश से श्वास लो, वैसे ही स्पर्श भी पूरे होश से करो। तुम्हें सतत स्मरण रहे कि मैं बिलकुल दबाव न डालु। तुम्हारे हाथों को पंख जैसा हलका होना चाहिए। बिलकुल वज़न शून्य मात्र स्पर्श। तुम्हारा अवधान एकाग्र होकर वहां रहेगा। और ऊर्जा निरंतर बहती रहेगी।

आरंभ में ऊर्जा बूंद-बूंद आएगी। फिर कुछ ही महीनों में तुम देखोगें कि वह सरित प्रवाह बन गया है। और वर्ष भर के भीतर वह बाढ़ बन जाएगी। और जब वह घटित होगा—'आँख की पुतलियों को पंख की भांति छूने से उनके बीच का हलकापन'—जब तुम छूओगे तो तुम्हें हलकापन अनुभव होगा। तुम इसे अभी ही अनुभव कर सकते हो। जैसे ही तुम छूते हो, तत्काल एक हलकापन पैदा हो जाता है। और वह उनके बीच का हलकापन हृदय में खुलता है, वह हलकापन गहरे उतरता है, हृदय में खुलता है।

हृदय में केवल हल्कापन प्रवेश कर सकता है। कुछ भी जो भारी है वह हृदय में नहीं प्रवेश कर सकता है। हृदय में सिर्फ हलकी चीजें घटित हो सकती है। दो आंखों के बीच का यह हलकापन हृदय में गिरने लगेगा और हृदय उसे ग्रहण करने को खुल जाएगा।

'और वहां ब्रह्मांड व्याप जाता है।'

और जैसे-जैसे यह ऊर्जा की वर्षा पहले झरना बनती है, फिर नदी बनती है और फिर बाढ़ बनती है। तुम उसमें खो जाओगे। बह जाओगे। तुम्हें अनुभव होगा कि तुम नहीं हो। तुम्हें अनुभव होगा कि सिर्फ ब्रह्मांड है। श्वास लेते हुए, श्वास छोड़ते हुए तुम ब्रह्मांड ही हो जाओगे। तब श्वास के साथ-साथ ब्रह्मांड ही भीतर आएगा। और ब्रह्मांड ही बाहर जायेगा। तब अहंकार, जो सदा रहे हो, नहीं रहेगा। तब अहंकार गया।
यह विधि बहुत सरल है; इसमें खतरा नहीं है। तुम जैसे चाहो इसके साथ प्रयोग कर सकते हो। लेकिन इसके सरल होने के कारण ही तुम इसे करने से भूल भी सकते हो। पूरी बात इस पर निर्भर है कि दबाव के बिना छूना है। तुम्हें यह सीखना पड़ेगा। प्रयोग करते रहो। एक सप्ताह के भीतर यह सध जायेगा। अचानक किसी दिन जब तुम दबाव दिए बिना छूओगे, तुम्हें तत्क्षण वह अनुभव होगा जिसकी मैं बात कर रहा हूं। एक हलकापन, हृदय का खुलना और किसी चीज का सिर से हृदय में उतरना अनुभव होगा।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 91

"हे दयामयी, अपने रूप के बहुत ऊपर और बहुत नीचे, आकाशीय उपस्थिति में प्रवेश करो।"

यह दूसरी विधि तभी प्रयोग की जा सकती है, जब तुमने पहली विधि पूरी कर ली है। यह प्रयोग अलग से भी किया जा सकता है। लेकिन तब यह बहुत कठिन होगा। इसलिए पहली विधि पूरी करके ही इसे करना अच्छा है। और तब यह विधि बहुत सरल भी हो जायेगी।

जब भी ऐसा होता है—कि तुम हलके-फुलके अनुभव करते हो, जमीन से उठते हुए अनुभव करते हो,मानों तुम उड़ सकते हो—तभी अचानक तुम्हें बोध होगा कि तुम्हारा शरीर को चारों और एक नीली आभा मंडल घेरे है।
लेकिन यह अनुभव तभी होगा जब तुम्हें लगे कि मैं जमीन से ऊपर उठ सकता हूं, कि मेरा शरीर आकाश में उड़ सकता है। कि यह बिलकुल हलका और निर्भार हो गया है। कि वह पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण से बिलकुल मुक्त हो गया है।

ऐसा नहीं है कि तुम उड़ सकते हो; वह प्रश्न नहीं है। हालांकि कभी-कभी यह भी होता है। कभी-कभी ऐसा संतुलन बैठ जाता है। कि तुम्हारा शरीर ऊपर उठ जाता है। लेकिन यह प्रश्न ही नहीं है। उसकी सोचो ही मत। बंद आंखों से इतना महसूस करना काफी है कि तुम्हारा शरीर ऊपर उठ गया है। जब तुम आँख खोलोगे तो पाओगे कि तुम जमीन पर ही बैठे हो। उसकी चिंता मत करो। अगर तुम बंद आंखों से महसूस कर सके कि शरीर ऊपर उठ गया है, कि उसमें कोई वज़न रहा, तो इतना काफी है।

ध्यान के लिए इतना काफी है। लेकिन अगर आकाश में उड़ना सीखने की चेष्टा कर रहे हो तो यह काफी नहीं है। लेकिन मैं उसमें उत्सुक नहीं हूं,और मैं तुम्हें उसके संबंध में कुछ नहीं बताऊंगा। इतना पर्याप्त है कि तुम्हें महसूस हो कि तुम्हारे शरीर पर कोई भार नहीं है, वह निर्भार हो गया है।

और जब भी यह हलकापन महसूस हो तो आंखें बंद रखे हुए ही अपने शरीर के आकार के प्रति बोधपूर्ण होओ। आंखों को बंद रखते हुए अँगूठों को और उनके आकार को महसूस करो, पैरों को और उनके आकार को महसूस करो। अगर तुम बुद्ध की भांति सिद्धासन में बैठे हो तो बैठे ही बैठे अपने शरीर के आकार को अनुभव करो। तुम्हें अनुभव होगा, स्पष्ट अनुभव होगा। और उसके साथ ही साथ तुम्हें बोध होगा कि उस आकार के चारों और नीला सा प्रकाश फैला है।

आरंभ में यह प्रयोग आंखों को बंद रख कर करो। और जब यह प्रकाश फैलता जाए और तुम्हें आकार के चारों और नीला प्रकाश मंडल महसूस हो, तब कभी यह प्रयोग रात में, अंधेरे कमरे में करते समय आंखें खोल लो, और तुम अपने शरीर के चारों और एक नीला प्रकाश, एक नीला आभा मंडल देखोगें। अगर तुम इसे बंद आंखों से नहीं, खुली आंखों से देखना चाहते हो तो इसे सचमुच देखना चाहते हो तो यह प्रयोग अंधेरे कमरे में करो जहां कोई रोशनी न हो।
यह नीला प्रकाश, यह नीला आभा मंडल तुम्हारे आकाश शरीर की उपस्थिति है। तुम्हारे शरीर एक द्वार है। यह विधि आकाश-शरीर से संबंध रखती है। और तुम आकाश शरीर के द्वारा ऊंची से ऊंची समाधि में प्रवेश कर सकते हो।

सात शरीर है और भगवत्ता में प्रवेश के लिए प्रत्येक शरीर का उपयोग हो सकता है। प्रत्येक शरीर एक द्वार है। यह विधि आकाश शरीर का उपयोग करती है। और आकाश शरीर को प्राप्त करना सबसे सरल है। शरीर के तल पर जितनी ज्यादा गहराई होगी उतनी ही उसकी उपलब्धि कठिन होगी। लेकिन आकाश शरीर तुम्हारे बहुत निकट है, स्थूल शरीर के बहुत निकट है। आकाश शरीर तुम्हारा दूसरा शरीर है। जो तुम्हारे चारों और है—तुम्हारे स्थूल शरीर के चारों और। यह तुम्हारे शरीर के भीतर भी है और यह शरीर को चारों और से एक धुँधली आभा की तरह, नीले प्रकाश को तरह ढीले परिधार की तरह घेर हुए है।

'हे दयामयी, अपने रूप के बहुत ऊपर और बहुत नीचे, आकाशीय उपस्थिति में प्रवेश करो।'

बहुत ऊपर, बहुत नीचे—तुम्हारे चारों और सर्वत्र। यदि तुम अपने सब और उस नीले प्रकाश को देख सको तो विचार तुरंत ठहर जाएगा। क्योंकि आकाश शरीर के लिए विचार करने की जरूरत नही है। और यह नीला प्रकाश बहुत शांति दायी है। क्यों? क्योंकि वह तुम्हारे आकाश शरीर का प्रकाश है। नीला आकाश ही कितना विश्रामपूर्ण है। क्यों? क्योंकि वह तुम्हारे आकाश शरीर का रंग है। और आकाश-शरीर स्वयं बहुत विश्रामपूर्ण है।

जब भी कोई व्यक्ति तुम्हें प्रेम करता है, जब भी कोई व्यक्ति तुम्हें प्रेम से स्पर्श करता है, तब वह तुम्हारे आकाश शरीर को स्पर्श करता है। इसीलिए तुम्हें वह इतना सुखदायी मालूम पड़ता है। इसका तो फोटोग्राफ भी लिया जा चुका है। जब दो प्रेमी में संभोग में उतरते है, और यदि उनका संभोग एक खास अवधि तक चले, चालीस मिनट से ऊपर चले और स्खलन न हो, तो गहन प्रेम में डूबे उन दो शरीरों के चारों ओर एक नीला प्रकाश छा जाता है। उनका फोटो भी लिया जा सकता है।

और कभी-कभी तो बहुत अजीब घटनाएं घटती है। क्योंकि यह प्रकाश बहुत ही सूक्ष्म विद्युत शक्ति है। सारे संसार में बहुत सी ऐसी घटनाएं घटी है। नए प्रेमियों का एक जोड़ा हनीमून मनाने के लिए नए कमरे में ठहरा है; पहली रात है और वे एक दूसरे के शरीर से परिचित नहीं है, वे नहीं जानते है कि क्या संभव है। अगर दोनों के शरीर प्रेम के आकर्षण के लगाव और हार्दिकता के एक विशेष तरंग से तरंगायित है। एक दूसरे के प्रति खुले है, ग्रहणशील है कि उनके शरीर इतने विद्युत्मय हो गया है। उनके आकाश शरीर इतने आविष्ट और जीवंत हो गए है कि उनके प्रभाव से कमरे की चीजें गिरने लगी है।

बहुत अजीब घटनाएं घटी है। मेज पर एक मूर्ति रखी है। वह जमीन पर गिर जाती है। मेज का शीशा अचानक टूट जाता है। वहां कोई तीसरा व्यक्ति नही है। मात्र वह जोड़ा है वहां। उन्होंने मेज या शीशे को स्पर्श भी नहीं किया और ऐसा भी हुआ है कि अचानक कुछ जलने लगता है। दुनियाभर में ऐसे मामलों की खबरें पुलिस चौकियों में दर्ज हुई है। उन पर खोजबीन की गई है ओर पाया गया है कि गहन प्रेम में संलग्न दो व्यक्ति ऐसी विद्युत शक्ति का सृजन कर सकते है कि उससे उनके आस-पास की चीजें प्रभावित हो सकती है।

वह शक्ति भी आकाश शरीर से आती है। तुम्हारा आकाश शरीर तुम्हारा विद्युत शरीर है। जब भी तुम ऊर्जा से भरे होते हो तब तुम्हारा आकाश-शरीर बड़ा हो जाता है। और जब तुम उदास,बुझे-बुझे होते हो तो तुम्हारा आकाश शरीर सिकुड़कर शरीर के भीतर सिमट जाता है। इसीलिए उदास और दुःखी व्यक्ति के पास तुम भी उदास और दुःखी हो जाते हो। अगर कोई दुःखी व्यक्ति इस कमरे में प्रवेश करे तो तुम्हें लगेगा कि कुछ गड़बड़ हो रही है, क्योंकि उसका आकाश शरीर तुम्हें तुरंत प्रभावित करता है। वह शक्ति चूसता है; क्योंकि उसकी अपनी शक्ति इतनी बुझी-बुझी है कि वह दूसरों की शक्ति चूसने लगता है।

उदास आदमी तुम्हें उदास बना देता है। दुःखी आदमी तुम्हें दुःखी कर देता है। बीमार व्यक्ति तुम्हें बीमार कर देगा। क्यो? क्योंकि वह उतना ही नहीं है जितना तुम देखते हो, उसके भीतर कुछ छिपा है जो काम कर रहा है। हालांकि उसने कुछ नहीं कहा है। हालांकि वह बाहर से मुस्कुरा रहा है; तो भी यदि वह दुःखी है तो वह तुम्हारा शोषण करेगा, तुम्हारे आकाश शरीर की ऊर्जा क्षीण हो जाएगी। वह तुम्हारी उतनी शक्ति खींच लेगा, वह तुम्हें उतना चूस लगा। और जब कोई सुखी व्यक्ति कमरे में प्रवेश करता है तो तुम भी तत्क्षण सुख महसूस करने लगते हो। सुखी व्यक्ति इतनी आकाशीय शक्ति बिखेरता है कि वह तुम्हारे लिए भोजन बन जाता है। वह तुम्हारा पोषण बन जाता है। उसके पास अतिशय ऊर्जा उससे बह रही है।

जब कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट, कोई कृष्ण तुम्हारे पास से गुजरते है तो वह तुम्हें निरंतर एक सूक्ष्म भोजन दे रहे है। और तुम निरंतर उनके मेहमान हो। और जब तुम किसी बुद्ध के दर्शन करके लौटते हो तो तुम अत्यंत पुन जीवित, अत्यंत ताजा,अत्यंत जीवंत अनुभव करते हो। हुआ क्या? बुद्ध कुछ बोले भी न हों; मात्र दर्शन से तुम्हें लगता है कि मेरे भीतर कुछ बदल गया है। मेरे भीतर कुछ प्रविष्ट हो गया है। क्या प्रविष्ट हो गया है? बुद्ध इतने आप्तकाम है, इतने आपूरित है, इतने लबालब भरे है। कि वे ऊर्जा का सागर बन गए है। और उनकी ऊर्जा बाढ़ की भांति बहा रही है।
जो भी व्यक्ति स्वास्थ होता है, शांत होता है, वह सदा बाढ़ बन जाता है। क्योंकि अब उसकी ऊर्जा उन व्यर्थ की बातों में उन ना समझियों में व्यय नहीं होती जिनमें तुम अपनी ऊर्जा गंवा रहे हो। उसके साथ उसके चारों और सदा ऊर्जा की बाढ़ चलती है। और जो भी उसके संपर्क में आता है। वह उसका लाभ ले सकता है।

जीसस कहते है: 'मेरे पास आओ, अगर तुम बहुत बोझिल हो तो मेरे पास आओ। मैं तुम्हें निर्बोझ कर दूँगा।'

असल में जीसस कुछ नहीं करते है, बस उनकी उपस्थिति में कुछ होता है। कहते है कि जब कोई भगवता को उपलब्ध पुरूष, कोई तीर्थंकर, कोई अवतार, कोई क्राइस्ट पृथ्वी पर चलता है तो उसके चारो और एक विशेष वातावरण, एक प्रभाव-क्षेत्र निर्मित होता है। जैन योगियों ने तो इसका माप भी लिया है। वे कहते है कि यह प्रभाव-क्षेत्र चौबीस मील होता है। तीर्थंकर के चारों और चौबीस मील की परिधि होती है। चाहे उसे इसका बोध हो या न हो, चाहे वह मित्र हो या शत्रु हो, अनुयायी हो या विरोधी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

हां,यदि तुम अनुयायी हो तो तुम खूब भर जाते हो। क्योंकि तुम खुले हुए हो। विरोधी भी भरता है, लेकिन उतना नहीं। क्योंकि विरोधी बंद होता है। लेकिन ऊर्जा तो सब पर बरसती है। एक अकेला व्यक्ति यदि अनुद्विग्न है, शांत है, मौन है, आनंदित है, तो वि शक्ति का पुंज बन जाता है—ऐसा पुंज कि उसके चारों और चौबीस मील में एक विशेष वातावरण बन जाता है। और उस वातावरण में तुम्हें एक सूक्ष्म पोषण मिलता है।

यह घटना आकाश-शरीर के द्वारा घटती है। तुम्हारा आकाश शरीर विद्युत शरीर है। जो शरीर हमें दिखाई पड़ता है। वह भौतिक है, पार्थिव है। यह सच्चा जीवन नहीं है। इस शरीर में विद्युत शरीर आकाश शरीर के कारण जीवन आता है। वहीं तुम्हारा प्राण है।

तो शिव कहते है: 'हे दयामयी, आकाशीय उपस्थिति में प्रवेश करो।'

पहले तुम्हें अपने भौतिक शरीर को घेरने वाले आकाश शरीर के प्रति बोधपूर्ण होना होगा। और जब तुम्हें उसका बोध होने लगे तो उसे बढ़ाओं। बड़ा करो, फैलाओ। इसके लिए तुम क्या कर सकते हो?

बस चुपचाप बैठना है और उसे देखना है। कुछ करना नहीं है; बस अपने चारो और फैले इस नीले आकार को देखते रहना है। और देखते-देखते तुम पाओगे कि वह बढ़ रहा है। बड़ा हो रहा है। सिर्फ देखने से वह बड़ा हो रहा है। क्योंकि जब तुम कुछ नहीं करते हो तो पूरी ऊर्जा आकाश शरीर को मिलती है। इसे स्मरण रखो। और जब तुम कुछ करते हो तो आकाश शरीर से ऊर्जा बाहर जाती है।

लाओत्से कहता है: 'मैं कुछ नहीं करता हूं और मुझसे शक्तिशाली कोई नहीं है। मैं कभी कुछ नहीं करता है। और कोई मुझसे शक्तिशाली नहीं है। जो कुछ करने के कारण शक्ति शाली है, उन्हें हराया जा सकता है। लाओत्से कहता है; 'मुझे हराया नहीं जा सकता क्योंकि मेरी शक्ति कुछ न करने से आती है। तो असली बात कुछ न करना है।'' बोधिवृक्ष के नीचे बुद्ध क्या कर रहे थे? कुछ नहीं कर रहे थे। वे उस क्षण कुछ भी नहीं कर रहे थे। वे शून्य हो गया थे। और मात्र बैठे-बैठे उन्होंने परम को पा लिया। यह बात बेबूझ लगती है। यह बात बहुत हैरानी की लगती है। हम इतना प्रयत्न करते है और कुछ नहीं होता है। और बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे बैठे-बैठे बिना कुछ किये परम को उपलब्ध हो जाते है।

जब तुम कुछ नहीं करते हो तब तुम्हारी ऊर्जा बाहर गति नहीं करती है। तब वह ऊर्जा आकाश-शरीर को मिलती है। और वहां इकट्ठी होती है। फिर तुम्हारा आकाश-शरीर विद्युत शक्ति का भंडार बन जाता है। और वह भंडार जितना बढ़ता है। फिर तुम्हारी शक्ति उतनी ही बढ़ती है। और तुम जितना ज्यादा शांत होते हो उतनी ही ऊर्जा का भंडार भी बढ़ता है। और जिस क्षण तुम जान लेते हो। कि आकाश शरीर जो ऊर्जा कैसे दी जाए और कैसे ऊर्जा को व्यर्थ नष्ट न किया जाए, उसी क्षण गुप्त कुंजी तुम्हारे हाथ लग गई।

और तब तुम आनंदित हो सकते हो। वस्तुत: तभी तुम आनंदित हो सकते हो। उत्सव मना सकते हो। तुम अभी जैसे हो ऊर्जा से रिक्त, तुम कैसे उत्सवपूर्ण हो सकते हो? तुम कैसे उत्सव मना सकते हो? तुम कैसे फूल की तरह खिल सकते है। फूल तो अतिरिक्त ऊर्जा का वैभव है। वृक्ष ऊर्जा से लबालब होते हो तो उसमें फूल खिलते है। वृक्ष यदि भूखा हो तो उसमे फूल नहीं आएँगे। क्योंकि पत्तों के लिए भी पर्याप्त पोषण नहीं है। जड़ों के लिए भी पर्याप्त भोजन नहीं है।

उनमें भी एक क्रम है। पहले जड़ों को भोजन मिलेगा। क्योंकि वे बुनियादी है। अगर जड़ें ही सूख गईं तो फूल की संभावना कहां रहेगी? तो पहले जड़ों को भोजन दिया जाएगा। फिर शाखाओं को। अगर सब ठीक-ठाक चले और फिर भी ऊर्जा शेष रह जाए, तब पत्तों को पोषण दिया जाएगा। और उसके बाद भी भोजन बचे और वृक्ष समग्रत: संतुष्ट हो, जीने के लिए और भोजन की जरूरत न रहे, तब अचानक उसमें फूल लगते है। ऊर्जा का अतिरेक ही फूल बन जाता है। फूल दूसरों के लिए दान है। फूल भेंट है। फूल वृक्ष की तरफ से तुम्हें भेंट है।

और यही घटना मनुष्य में भी घटती है। बुद्ध वह वृक्ष है जिसमें फूल लगे। अब उनकी ऊर्जा इतनी अतिशय है कि उन्होंने सबको पूरे अस्तित्व को उसमे सहभागी होने के लिए आमंत्रित किया है।

पहले पहली विधि को प्रयोग करो और फिर दूसरी विधि को। तुम दोनों को अलग-अलग भी प्रयोग कर सकते हो। लेकिन तब आकाश-शरीर के नीले आभा मंडल को प्राप्त करना थोड़ा कठिन होगा।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 92

“चित को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में अपने ह्रदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो।”

तीन बातें। पहली,यदि ज्ञान महत्वपूर्ण है तो मस्तिष्क केंद्र होगा। यदि बच्चों जैसी निर्दोषिता महत्वपूर्ण है तो ह्रदय केंद्र होगा। बच्चा ह्रदय में जीता है। हम मस्तिष्क में जीते है। बच्चा अनुभव करता है। हम विचार करते है। जब हम कहते है कि हम अनुभव कर रहे है। तब भी हम विचार करते है। कि हम अनुभव कर रहे है। सोचना हमारे लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। और अनुभव गौण हो जाता है। विचार विज्ञान का ढंग है। और अनुभव धर्म का। तुम्हें फिर से अनुभव करना शुरू करना चाहिए। और दोनों ही आयाम बिलकुल अलग है। जब तुम विचार करते हो, तुम अलग बने रहते हो। जब तुम अनुभव करते हो, तुम पिघलते हो।

एक गुलाब के फूल के बारे में सोचो। जब तुम सोच रहे हो तो तुम अलग हो; दोनों के बीच एक दूरी है। सोचने के लिए दूरी की जरूरत है। विचारों को गति करने के लिए दूरी चाहिए। फूल को अनुभव करो और अलगाव समाप्त हो जाता है दूरी विदा हो जाती है। क्योंकि भाव के लिए दूरी बाधा है। जितने ही तुम किसी चीज के निकट आते हो, उतना ही अधिक उसे अनुभव कर सकते हो। एक क्षण आता है कि जब निकटता भी एक तरह की दूरी लगती है– और तब तुम पिघलते हो। तब तुम अपनी ओर फूल की सीमाओं को अनुभव नहीं कर सकते, तुम नहीं कह सकते कि तुम कहां समाप्त होते हो और फूल कहां शुरू होता है। तब सीमाएं एक दूसरे में विलीन हो जाती है। फूल एक तरह से तुम में प्रवेश कर जाता है और तुम एक तरह से फूल में प्रवेश कर जाते हो।

भाव है सीमाओं का खो जाना; विचार है सीमाओं का बनना। यही कारण है कि विचार सदा परिभाषाएं मांगता है; क्योंकि परिभाषाओं के बिना तुम सीमाएं नहीं खड़ी कर सकते। विचार कहता है पहले परिभाषा कर लो; और भाव कहता है परिभाषा मत करो। यदि तुम परिभाषा करते हो तो भाव समाप्त कर जाते हो।

बच्चा अनुभव करता है; हम विचार करते है। बच्चा अस्तित्व के निकट आता है, वह पिघलता है और अस्तित्व को स्वयं में पिघलने देता है। हम अकेले, अपने मस्तिष्क में बंद है। हम ऐसे है जैसे द्वीप।

यह सूत्र कहता है कि ह्रदय के केंद्र पर लौट आओ। चीजों को अनुभव करना शुरू करो। यदि तुम अनुभव करना शुरू करो तो अद्भुत अनुभव होगा। जो भी कुछ तूम करो अपनी थोड़ा समय और थोड़ी ऊर्जा भाव को दो। तुम यहां बैठे हो, तुम मुझे सुन सकते हो—लेकिन वह सोच-विचार का हिस्सा होगा। तुम मुझे यहां महसूस भी कर सकते हो। लेकिन वह सोच-विचार का हिस्सा नहीं होगा। यदि तुम मेरी उपस्थिति को महसूस कर सको तो परिभाषाएं खो जाती है। तब वास्तव में यदि तुम भाव की सम्यक स्थिति में पहुंच जाओ तो तुम्हें पता नहीं रहता कि कौन बोल रहा है, और कौन सुन रहा है। तब वक्ता श्रोता बन जाता है, श्रोता वक्ता बन जाता है। तब वास्तव में वे दो नहीं रहते। बल्कि एक ही घटना के दो ध्रुव है, अलग-अलग। वास्तविक चीज तो दोनों के मध्य में है—जो कि जीवन है, प्रवाह है।

जब भी तुम अनुभव करते हो तो तुम्हारे अहंकार को अतिरिक्त कुछ और महत्वपूर्ण हो जाता है। विषय और विषयी अपनी परिभाषाएं खो देते है। एक प्रवाह एक तरंग बचती है—एक और वक्ता और दूसरी और श्रोता,लेकिन मध्य में जीवन की धारा।

मस्तिष्क तुम्हें व्याख्या देता है। और इस व्याख्या के कारण बहुत भ्रांति पैदा हुई है। क्योंकि मस्तिष्क साफ-साफ परिभाषा करता है, सीमा बाँधता है। नक्शे बनाता है। तर्क से सब सुस्पष्ट हो जाता है। किसी प्रकार की अनिश्चतता, किसी रहस्य की कोई संभावना नहीं रह जाती। हर अनिश्चितता अस्वीकृत हो जाती है। केवल जो स्पष्ट है वही वास्तविक है। तर्क तुम्हें एक स्पष्टता देता है। और इस स्पष्टता के कारण भ्रम पैदा होता है।
वास्तविकता का स्पष्टता से लेना-देना नहीं है। सत्य सदा बेबूझ है। धारणाएं सुस्पष्ट होती है। सत्य रहस्यमय होता है। धारणाएं संगत होती है। सत्य असंगत होता है।

शब्द स्पष्ट होते है, तर्क स्पष्ट होता है। परंतु जीवन अनिश्चित रहता है। ह्रदय तुम्हें एक तरल अनिश्चिता देता है। ह्रदय सत्य के अधिक निकट पहुंचता है। परंतु तर्क की सुस्पष्टता नहीं होती। और क्योंकि हमने सुस्पष्टता को लक्ष्य बना लिया है। इसलिए हम सत्य को चूकते चले जाते है। सत्य में दोबारा प्रवेश करने के लिए तुम्हें आंखें चाहिए। तुम्हें तरल होना चाहिए, तुम्हें धारणा-शुन्य, अतर्क्य, विस्मयकारी और जीवंत सत्य में प्रवेश करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

सुस्पष्टता तो मृत है। उसमें बदलाहट नहीं है। जीवन एक बहाव है, उसमें कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। अगले क्षण कुछ भी वैसा नहीं रहता। तो जीवन के प्रति तुम कैसे सुस्पष्ट हो सकते हो। यदि तुम सुस्पष्टता का अधिक ही आग्रह करोगे तो जीवन में तुम्हारा संबंध टूट जाएगा। यही हुआ है।

यह सूत्र कहता है कि पहली बात है। अपने ह्रदय के केंद्र पर वापस लौट आओ। लेकिन वापस कैसे लोटे।

‘चित को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में अपने ह्रदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो।’

मन का अर्थ है मानसिक प्रक्रिया, सोच-विचार। और चित का अर्थ है वह पृष्ठभूमि जिस पर विचार तैरते है—ऐसे ही जैसे आकाश में बादल तैरते है। बादल है विचार और आकाश है वह पृष्ठभूमि जिस पर वे तैरते है। उस आकाश उस चेतना को चित कहा गया है। तुम्हारा मन विचार-शून्य हो सकता है; तब वह चित है, तब वह शुद्ध मन है। जब विचार होते है तो मन अशुद्ध होता है।
विचार शून्य मन अस्तित्व की सूक्ष्मतम घटना है। इससे अधिक सूक्ष्म संभावना की तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। चेतना अस्तित्व की सबसे सूक्ष्म घटना है। तो जब मन में कोई विचार नहीं होते तब तुम्हारा मन शुद्ध

होता है। शुद्ध मन हृदय की और गति कर सकता है। अशुद्ध मन नहीं कर सकता। अशुद्धता से मेरा अर्थ मन में अशुद्ध विचारों का होना नहीं है, अशुद्धता से मेरा अर्थ है सारे विचार—विचार मात्र ही अशुद्धि है।

यदि तुम परमात्मा के बारे में सोच रहे हो तो भी यह अशुद्धता है, क्योंकि बादल तो तैर ही रहे है। बादल बहुत शुभ्र है, लेकिन फिर भी है और आकाश निर्मल नहीं है। आकाश निरभ्र नहीं है। बादल काला हो सकता है। मन में कोई कामुक विचार गुजर जाए,या बादल सफेद हो सकता है—मन में कोई सुंदर प्रार्थना गुजर सकती है। लेकिन दोनों ही स्थितियों में मन शुद्ध नहीं है। मन अशुद्ध है, बादलों से घिरा है। और मन यदि बादलों से घिरा हो तो तुम हृदय की और नहीं बढ़ सकते।

यह समझ लेने जैसा है, क्योंकि विचारों के रहते तुम मस्तिष्क से जुड़े रहते हो। विचार जड़ें है, और जब तक तुम उन जड़ों को ही काट डोलो तुम वापस हृदय पर नहीं लौट सकते। बच्चा उस क्षण तक हृदय में रहता है जिस क्षण तक विचार उसके मन में पैदा होने शुरू नहीं होते। फिर वे जड़ें जमाते है; फिर शिक्षा; संस्कृति और सभ्यता से विचार जमते हे। फिर धीरे-धीरे चेतना हृदय से मस्तिष्क की और मुड़ने लगती है। चेतना मस्तिष्क में केवल तभी रह सकती है जब विचार हों। यही आधार है। जब विचार नहीं होते तो चेतना तत्क्षण हृदय में अपनी वास्तविक निर्दोषता पर वापस लौट आती है।

इसीलिए ध्यान पर निर्विचार अवस्था पर, विचार-शुन्य सजगता पर, चुनाव-रहित बोध पर इतना जोर दिया गया है। या बुद्ध के 'सम्यक चित' पर इतना जोर दिया गया है। जिसका अर्थ है विचार शून्य चित का होना, केवल होश पूर्ण होना। तब क्या होता है? एक अद्भुत घटना घटती है। क्योंकि जड़ें कट जाती है तो चेतना तत्क्षण हृदय पर,अपने मूल स्त्रोत पर लौट आती है। तुम फिर बच्चे बन जाते हो।

जीसस कहते है, 'केवल वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर पाएंगे जो बच्चों जैसे है।'

वह ऐसे ही लोगों की बात कर रहे है जिनकी चेतना अपने हृदय पर लौट आई है; जो निर्दोष हो गए है। बच्चों जैसे हो गए है। लेकिन पहली आवश्यकता है चित को अव्याख्य सूक्ष्मता में ले जाना।

विचारों को अभिव्यक्त किया जा सकता है। ऐसा कोई भी विचार नहीं है जिसे अभिव्यक्त न किया जा सके। यदि उसे अभिव्यक्त न किया जा सके तो तुम उसे सोच भी नहीं सकते। यदि तुम उसे सोच सकते हो तो उसे अभिव्यक्त भी कर सकते हो। ऐसा एक भी विचार नहीं है। जैसे तुम अनिर्वचनीय कह सको। जिस क्षण तुमने उसे सोचा,वह वचनीय हो गया—तुमने उसे अपने से तो कह ही दिया।

चेतना शुद्ध चैतन्य, अव्याख्य है। इसीलिए तो संत कहते है कि वे जो जानते है उसे अभिव्यक्त नही कर सकते। तार्किक सदा यह प्रश्न उठाते है कि अगर तुम जानते हो तो कह क्यों नहीं सकते। और उनके तर्क में अर्थ है, बल है। अगर तुम सच में कह सकते हो कि तुम जानते हो तुम अभिव्यक्त क्यों नही कर सकते?

तार्किक के लिए ज्ञान व्याख्या होना चाहिए—जिसे जाना जा सकता है, उसे दूसरों को जनाया भी जा सकता है। उसमें कोई समस्या नहीं है। यदि तुमने जान ही लिया है तो फिर क्या समस्या है? तुम उसे दूसरों को भी जना सकते हो। लेकिन संत का ज्ञान विचारों को नहीं होता। उसने विचार की भांति नहीं जाना है। एक अनुभूति की भांति जाना है। तो वास्तव में यह कहना ठीक नहीं है, 'मैं परमात्मा को जानता हूं।' यह कहना बेहतर है, 'मैं अनुभव करता हूं।' यह

कहना ठीक नहीं है, परमात्मा को जाना है। यह कहना अच्छा है। मैंने उसका अनुभव किया है। यह उस घटना की ज्यादा उचित अभिव्यक्ति है। क्योंकि ज्ञान ह्रदय के द्‌वारा होता है। वह अनुभूति की तरह है। जानने की तरह नहीं। 'चित को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में रखो.......।'

चित अव्याख्य है। यदि कोई विचार चल रहा हो तो वह व्याख्या है। इसलिए मन को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में रखने का अर्थ है ऐसी स्थिति में पहूंच जाना जहां तुम चैतन्य तो हो, पर किन्हीं विचारों के प्रति नहीं; तुम पूरी तरह सजग तो हो, पर तुम्हारे मन में कोई विचार नहीं चल रहे। यह बह्‌त सूक्ष्म और बह्‌त कठिन बात है—तुम आसानी से इसे चूक सकते हो।

हम मन की दो अवस्थाओं को जानते है। एक अवस्था तो वह जब विचार होते है। जब विचार होते है तो तुम ह्रदय की और नहीं जा सकते। फिर हम मन की एक दूसरी अवस्था जानते है—जब विचार नहीं होते। जब विचार नहीं होते तुम सो जाते हो। हर रात कुछ क्षणों कुछ घंटों के लिए तुम विचार से बाहर हो जाते हो। विचार खो जाते हो। पर तुम ह्रदय तक नहीं पह्‌ंचते क्योंकि तुम अचेतन हो। तो एक बड़े सूक्ष्म संतुलन की जरूरत है। विचार ऐसे ही खो जाने चाहिए जैसे वे गहरी नींद में खो जाते है। जब कोई सपने नहीं चलते—और तुम्हें उतना सजग होना चाहिए जितना तुम जागते ह्‌ए होते हो। मन उतना विचार रहित होना चाहिए जितना गहरी नींद में होता है। लेकिन तुम्हें सोया ह्‌आ नहीं होना चाहिए। तुम्हें पूरी तरह जाग्रत, होश पूर्ण होना चाहिए।

जब जागरण और इस विचार शून्यता का मिलन होता है तो ध्यान घटित होता है। इसीलिए पतंजलि कहते है कि समाधि सुषुप्ति की तरह है। परम आनंद गहनत्म नींद की तरह है, बस एक ही भेद है; इसमें तुम सोये नहीं होते। लेकिन गुण वही है—विचार शुन्य, स्वप्न शुन्य,शांत कोई तरंग नहीं। एकदम शांत और मौन, लेकिन जागरूक।
जब तुम होश में होते हो और कोई विचार नहीं होता तो तुम अपनी चेतना में अचानक एक रूपांतरण अनुभव करते हो। केंद्र बदल जाता है। तुम वापस फेंक दिए जाते हो। तुम ह्रदय पर वापस फेंक दिए जाते हो। और ह्रदय से जब तुम संसार को देखते हो तो संसार नहीं होता। बस परमात्मा होता है। बुद्‌धि से जब तुम अस्तित्व को देखते हो तो परमात्मा नहीं होता है, बस भौतिक अस्तित्व होता है।

पदार्थ, भौतिक अस्तित्व, संसार और परमात्मा दो चीजें नहीं है। देखने के दो ढंग है, दो परिप्रेक्ष्य है। वि एक ही अस्तित्व को दो अलग-अलग केंद्रों से देखी गई घटनाएं है।

'चित को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में अपने ह्रदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो।'

पूरी तरह से उसमें डूब जाओ। विलीन हो जाओ। ह्रदय के ऊपर, नीचे और भीतर एक चैतन्य मात्र रह जाए—पूरा ह्रदय बस एक चेतना से घिर जाए, किसी बारे में भी मत सोचो, बस सजग रहो। बिना किसी शब्द के, बिना किसी विचारा के बस होओ।

चित को ह्रदय के ऊपर नीचे और भीतर रखो और तुम्हारे लिए सब कुछ संभव हो जाएगा। देखने के सब द्‌वार स्वच्छ हो जाएंगे। और रहस्यों के सब द्‌वार खुल जाएंगे। अचानक कोई समस्या न रहेगी। अचानक कोई दुःख न रहेगा। जैसे अंधकार पूरी तरह मिट गया हो।

एक बार तुम इसे जान लो तो तुम वापस बुद्‌धि पर जा सकते हो, पर तुम अब वहीं नहीं होओगे। अब तुम बुद्‌धि का एक यंत्र की तरह उपयोग कर सकते हो। उससे काम ले सकते हो। पर तुम उसके साथ तादात्म्य नहीं बनाओगे।

उससे काम लेते समय भी जब तुम संसार को देखोगें तो तुम्हें पता होगा कि जो भी तुम देख रहे हो वह बुद्धि के कारण है। अब तुम एक उच्चतर अवस्था, एक गहन तर दृष्टिकोण से परिचित हो—और जिस क्षण तुम चाहो तुम वापस लौट सकते हो।

एक बार तुम्हें मार्ग का पता लग जाए और ख्याल आ जाए कि कैसे चेतना वापस लौटती है, कैसे तुम्हारी आयु, तुम्हारा अतीत, तुम्हारी स्मृति और तुम्हारा ज्ञान समाप्त हो जाता है। और तुम दोबारा एक नवजात शिशु हो जाते हो। एक बार तुम्हें इस रहस्य का पता चल जाए—तो तुम जब चाहे केंद्र की यात्रा कर सके हो और पुन: जीवंत, ताजे, प्राणवान हो सकते हो। यदि तुम्हें फिर बुद्धि में लौटना पड़े तो तुम उसका उपयोग कर सकते हो। तुम सामान्य संसार में जा सकते हो। तुम उसमे कार्य करोगे पर उससे तादात्म्य नहीं करोगे। क्योंकि गहरे में तुम जानते हो कि बुद्धि के द्वारा जो भी जाना जाता है वह आंशिक है, वह पूर्ण सत्य नहीं है। और आंशिक सत्य झूठ से भी खतरनाक होता है। क्योंकि वह सत्य जैसा प्रतीत होता है तुम उससे धोखा खा सकते हो।

कुछ और बातें। जब तुम ह्रदय पर लौटते हो तो तुम अस्तित्व को एक पूर्ण इकाई की तरह देखते हो। ह्रदय विभाजित अंग नहीं है। ह्रदय तुम्हारा एक हिस्सा नहीं है। ह्रदय का अर्थ है तुम्हारी संपूर्ण समग्रता। मन एक हिस्सा है, पाँव एक हिस्सा है, पेट एक हिस्सा है। पूरे शरीर को अगर हम अलग-अलग लें तो वह हिस्सों में बंट जाता है। पर ह्रदय एक हिस्सा एक नहीं है। यही कारण है कि अगर मेरा हाथ काट दिया जाए तो भी मैं जीवित रहूंगा। मेरा मस्तिष्क भी निकाल दिया जाए भी में जीवित रहूंगा। लेकिन मेरा ह्रदय गया कि मैं गया।
वास्तवमें मेरा पूरा शरीर अलग किया जा सकता है। लेकिन अगर मेरा ह्रदय धड़क रहा है तो मैं जीवित हूं। ह्रदय का अर्थ है। तुम्हारी पूर्णता। तो जब तुम्हारा ह्रदय बंद होता है, तुम नहीं रहते। और दूसरी सब चीजें हिस्से है। दूसरी लगाई जा सकती है। यदि ह्रदय धड़क रहा तो तुम सुरक्षित होगे। ह्रदय का केंद्र तुम्हारे अस्तित्व का अंतरतम केंद्र बिंदु है।

मैं अपने हाथ से तुम्हें छू सकता हूं। वह स्पर्श मुझे तुम्हारे बारे में एक जानकारी देगा। तुम्हारी त्वचा के बारे में जानकारी देगा कि वह चिकनी है या नहीं। हाथ मुझे कुछ जानकारी देगा। लेकिन वह जानकारी बस आंशिक होगा क्योंकि हाथ मेरी समग्रता नहीं है। मैं तुम्हें देख सकता हूं। मेरी आंखें तुम्हारे बारे में एक अलग जानकारी देंगी। लेकिन वह भी पूरी नहीं होगा। मैं तुम्हारे बारे में सोच सकता हूं—फिर वह बात। लेकिन मैं तुम्हें हिस्सों में महसूस नहीं कर सकता। यदि मैं तुम्हें महसूस करता हूं तो तुम्हारी पूरी समग्रता में ही महसूस करता हूं। यही कारण है कि जब तक तुम प्रेम के द्वारा न जानो,तुम किसी व्यक्ति को उसकी संपूर्णता में नहीं जान सकते। केवल प्रेम से ही पूर्ण व्यक्तित्व,समग्र अस्तित्व तुम्हारे सामने प्रकट होता है। क्योंकि प्रेम का अर्थ है ह्रदय से जानना। ह्रदय से अनुभव करना। तो मेरे देखे अनुभव करना और जानना, तुम्हारे अस्तित्व के दो हिस्से नहीं है। अनुभव है तुम्हारी पूर्णता और जानकारी बस उसका एक हिस्सा है।

धर्म के लिए प्रेम परम ज्ञान है। इसीलिए धर्म की अभिव्यक्ति वैज्ञानिक ढंग के बजाय काव्यात्मक शैली में अधिक हुई है। वैज्ञानिक भाषा का उपयोग नहीं हो सकता,क्योंकि उसका संबंध जानकारी के जगत से है। काव्य का उपयोग हो सकता है। काव्य का उपयोग हो सकता है। और जो प्रेम के द्वार सत्य तक पहुंचे है। वे जो भी कहते है काव्य हो जाता है। उपनिषद, वेद, जीसस या बुद्ध या कृष्ण के वचन से सब काव्यात्मक वक्तव्य है।

यह संयोग ही नहीं है कि पुराने सभी धर्म-ग्रंर्थ काव्य में लिखे गए है। इसमें बड़ा अर्थ है। इससे पता चलता है कि कवि के जगत में और ऋषि के जगत में एक तरह की समानुभूति है। ऋषि भी ह्रदय का भाषा का उपयोग करता है।

कवि केवल कुछ क्षणों की उड़ान में ऋषि बन जाता है। ऐसे ही जैसे जब तुम कूदते हो तो पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण से दूर हो जाते हो। लेकिन फिर वापस लौट आते हो। कवि का अर्थ है जो कुछ क्षणों के लिए संतों के जगत में उड़ान भर आया हो। उसे कुछ झलकें मिली है। संत वह है जो गुरूत्वाकर्षण के बिलकुल पार चला गया है। जो प्रेम के संसार में जीता है, जो ह्रदय से जीता है। ह्रदय जिसका निवास बन गया है। कवि के लिए तो यह बस एक झलक भर है। कभी-कभी वह बुद्धि से ह्रदय में उतर आता है। लेकिन ऐसा बस कुछ क्षणों के लिए घटता है—वह फिर बुद्धि में वापस लौट जाता है।

तो अगर तुम कोई सुंदर कविता देखो तो उस कवि से मिलने मत चले जाना जिसने उसे लिखा हे। क्योंकि तुम उसी व्यक्ति से नहीं मिलोंगे। तुम बहुत निराश होओगे। क्योंकि तुम्हारा एक बहुत साधारण आदमी से मिलना होगा। उसे एक झलक मिली है। कुछ क्षणों के लिए सत्य उस पर प्रकट नहीं हुआ है। वह ह्रदय पर उतर आया जरूर है। लेकिन उसे मार्ग का पता नहीं है। वह उसका मालिक नहीं है। यह तो बस एक आकस्मिक घटना है। और वह अपनी मर्जी से इस आयाम में गति नहीं कर सकता।

जब कूलरिज मरा तो चालीस हजार अधूरी कविताएं छोड़कर मरा। उसने अपने पूरे जीवन में बस सात ही कविताएं पूरी की। वह महान कवि था। संसार के महानतम कवियों में से एक था। लेकिन कई बार उससे पूछा गया, ''तुम अधूरी कविताओं को ढेर क्यों लगाये जा रहे हो। और तुम उन्हें कब पूरा करोगे?' वह कहता है, मैं कुछ नहीं कर सकता। कभी-कभी कुछ पंक्तियां मुझे उतरती है और फिर वह रूक जाती है। तो मैं उन्हें कैसे पूरा कर सकता हूं। मैं प्रतीक्षा करूंगा। मुझे प्रतीक्षा करनी ही होगी। यदि दोबारा मुझे झलक मिलती है और दोबारा अस्तित्व मुझ पर सत्य को प्रकट करना है, तो फिर मैं उसे पूरा करूंगा। लेकिन अपने आप तो मैं कुछ नहीं कर सकता।

वह बड़ा ईमानदार कवि था। इतने ईमानदार कवि खोज पाना कठिन है। क्योंकि मन की प्रवृति है पूर्ति करना। यदि तीन पंक्तियां उतरती है तो तुम चौथी जोड़ लोगे। और बस चौथी बाकी तीन की भी हत्या कर देगी। क्योंकि वह मन की बड़ी निम्न अवस्था से आएगी। जब तुम पृथ्वी पर वापस लौट चुके होओगे।

जब तुम उछले तो कुछ क्षणों के लिए तुम गुरूत्वाकर्षण से मुक्त हो गए। तुम अस्तित्व के एक अलग ही आयाम में चले गये। कवि धरती पर रहता है पर कभी-कभी ऊंची छलांग लेता है। उस छलांग में उसे झलकें मिलती है। संत ह्रदय में रहता है। वह धरती पर नहीं चलता, ह्रदय उसका निवास बन गया होता है। तो वास्तव में वह कविता रचता नहीं, लेकिन वह जा भी कहता है, कविता बन जाता है। वास्तव में संत गद्य का प्रयोग ही नहीं करता, क्योंकि उसका गद्य भी कविता है। वह उसके ह्रदय से आ रहा है। उसके प्रेम से आ रहा है।

'चित को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में ह्रदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो।'

ह्रदय तुम्हारा संपूर्ण अस्तित्व है। और जब तुम समग्र को केवल तभी तुम समग्र को जान सकते हो—इसे याद रखना। केवल समान ही समान को जान सकता है। जब तुम आंशिक हो तो समग्र को नहीं जान सकते। जैसा भीतर होता है वैसा ही बाहर होता है। यदि भीतर तुम समग्र हो तो बाहर की समग्र वास्तविकता तुम पर प्रकट होगी, तुम उसे जानने में सक्षम हो गए, तुमने उसे जानने की पात्रता अर्जित कर ली। जब तुम भीतर बंटे होते हो तो बाहर सत्य भी बंटा दिखता है। जो भी तुम भीतर हो वही तुम्हारे लिए बाहर का जगत होगा।

ह्रदय की गहराइयों में पूरा संसार भिन्न है, एक अलग ही गेस्टाल्ट है। मैं तुम्हें देख रहा हूं। यदि मैं तुम्हें मस्तिष्क से देखू, बुद्धि से देखू, जानने के अपने एक हिस्से से देखू, तो यहां कुछ मित्र है, व्यक्ति है, अहंकार है—अलग-अलग।

लेकिन यदि मैं तुम्हें हृदय से देखू तो यहां व्यक्ति नहीं होंगे। फिर बस यहां एक सागरीय चेतना है और व्यक्ति बस उसकी लहरें है। यदि मैं तुम्हें हृदय से देखू तो तुम और तुम्हारा पड़ोसी दो नहीं होंगे; तब तुम्हारे और तुम्हारे पड़ोसी के बीच सत्य है। तुम बस दो ध्रुव हो और बीच में सत्य है। तो फिर यहां चेतना का एक सागर है। जिसमें तुम लहरों की तरह हो। लेकिन लहरें अलग-अलग नहीं है। वे एक साथ जुड़ी हुई है। और तुम हर क्षण एक दूसरे में मिल रहे हो। चाहे तुम्हें इसका पता हो या न हो।

जो श्वास कुछ क्षण पहले तुममें थी अब तुमसे निकल चुकी थी—अब तुम्हारे पड़ोसी में प्रवेश कर रही है। कुछ ही क्षण पहले यह तुम्हारा जीवन थी और इसके बिना तुम मर गए होते,और अब यह तुम्हारे पड़ोसी में जा रही है। अब यह उसका जीवन है। तुम्हारा शरीर लगातार कंपन विकीरित कर रहा है। तुम एक रेडिएटर हो, तुम्हारी जीवन-ऊर्जा सतत तुम्हारे पड़ोसी में प्रवेश कर रही है और उसकी जीवन ऊर्जा तुममें प्रवेश कर रही है।

यदि मैं तुम्हें अपने हृदय से देखू यदि मैं तुम्हें प्रेमपूर्ण आंखों से देखू, यदि मैं तुम्हें समग्रता से देखू, तो तुम सब ऊर्जा के पुंज हो, ऊर्जा के सघन बिंदू हो और जीवन सतत तुमसे दूसरों में और दूसरों से तुममें गति कर रहा है। और इस कमरे में ही नहीं, यह पूरा जगत जीवन-ऊर्जा का सतत प्रवाह है। यह सतत गतिमान है। यहां कोई वैयक्तिक इकाइयां नहीं है। यह एक ब्रह्मांडीय समग्रता है। लेकिन बुद्धि के द्वारा अखंड ब्रह्मांड कभी प्रकट नहीं होता, केवल हिस्से, आणविक हिस्से ही दिखाई पड़ते है। और यह कोई प्रश्न नहीं है। जिसे बुद्धि से समझा जा सके। यदि तुम इसे बुद्धि से समझने का प्रयास करते हो तो इसे समझना असंभव ही होगा। यह अस्तित्व के एक बिलकुल अलग बिंदु से देखा गया, एक बिलकुल भिन्न दृष्टिकोण है।

अगर तुम भीतर समग्र हो तो बाहर की समग्रता तुम पर प्रकट हो जाती है। किसी ने उसे परमात्मा का साक्षात्कार कहा है। किसी ने उसे मोक्ष कहा है, किसी ने उसे निर्वाण कहा है। अलग-अलग शब्द है, बिलकुल भिन्न शब्द है, लेकिन वे एक ही अनुभव एक ही सत्य को दर्शाते है। एक बात उन सभी अभिव्यक्तियों में आधारभूत है—कि व्यक्ति मिट जाता है। तुम इसे परमात्मा का साक्षात्कार कह सकते हो, तब तुम व्यक्ति की तरह न रह जाओगे; तुम इसे मोक्ष कह सकते हो, फिर तुम एक स्व की भांति नहीं रह जाओगे; तुम इसे निर्वाण कि सकते हो—जैसे बुद्ध ने कहा है—कि जैसे दीए की ज्योति बुझ जाती है। खो जाती है। तुम दोबारा उसे कहीं खोज नहीं सकते, पा नहीं सकते, वह अनस्तित्व में चली गई, ऐसे ही व्यक्ति समाप्ति हो जाता है।

लेकिन यह बात सोचने जैसी है। सभी धर्म यह क्यों करते है कि जब तुम सत्य को साक्षात्कार करते हो तो व्यक्ति, स्वय, अहंकार मिट जाता है। यदि सभी धर्म इस पर जोर देते है तो इसका अर्थ है कि यह स्व जरूर मिथ्या होगा—बरना तो वह मिट कैसे सकता है। यह विरोधाभासी लग सकता है लेकिन ऐसा ही है, जो नहीं है केवल वही मिट सकता है; जो है वह तो अस्तित्व में रहेगा ही, वह मिट नहीं सकता।

मस्तिष्क के कारण एक झूठी इकाई का आभास होता है—व्यक्ति। यदि तुम हृदय में उतर जाओ तो झूठी इकाई खो जाती है। वह बुद्धि की रचना थी। हृदय में तो बस ब्रह्मांड रह जाता है। व्यक्ति नहीं; पूर्ण रह जाता है। अंश नहीं। और स्मरण रहे। जब तुम नहीं हो तो तुम नर्क निर्मित नहीं कर सकते। जब तुम नहीं हो तो तुम दुःख नें नहीं हो सकते। जब तुम नहीं हो तो कोई पीड़ा नहीं हो सकती। सब संताप, सब पीड़ाएं तुम्हारे कारण है। छाया की भी छाया। स्व झूठ है और उस झूठे स्व के कारण बहुत सी झूठी छायाएं निर्मित हो गई है। वे तुम्हारा पीछा करती है। तुम उनके साथ लड़ते रहते हो। लेकिन तुम कभी जीत न पाओगे। क्योंकि उनका आधार तो तुम्हीं में छिपा रहता है।

स्वामी रामतीर्थ ने कहीं कहा है कि वह एक गरीब ग्रामीण के घर ठहरे हुए थे। उस ग्रामीण को छोटा बच्चा झोंपड़े के सामने खेल रहा था। और सूरज उग रहा था और बच्चे को अपनी छाया दिखाई दी। वह उसे पकड़ने की कोशिश करने लगा। लेकिन जितना वह बढ़ता, छाया उतनी ही आगे बढ़ जाती। बच्चा रोने लगा। असफलता उसके हाथ लगी थी। उसने हर तरह से पकड़ने की कोशिश की, पर पकड़ पाना असंभव था।

छाया को पकड़ना असंभव है—इसलिए नहीं कि छाया को पकड़ना बड़ा कठिन है। यह असंभव इसलिए है क्योंकि बच्चा उसे पकड़ने के लिए दौड़ रहा था। जब वह दौड़ रहा था तो छाया भी दौड़ रही थी। तुम छाया को नहीं पकड़ सकते। क्योंकि छाया में कोई सार नहीं है। और सार को ही पकड़ा जा सकता है।

रामतीर्थ वहां बैठे हुए थे। वह हंस रहे थे और बच्चा रो रहा था। और मां हैरान थी कि क्या करे। बच्चे को कैसे सांत्वना दे। तो उसने रामतीर्थ से पूछा, 'स्वामी जी, क्या आप कुछ मदद कर सकते है?' रामतीर्थ बच्चे के पास गए, बच्चे का हाथ पकड़ा और उसके सिर पर रख दिया। छाया पकड़ी गई। अब जब बच्चे ने अपने ही सिर पर हाथ रख दिया तो छाया पकड़ में आ गई। बच्चा हंसने लगा। अब वह देख सकता था कि उसके हाथ ने छाया को पकड़ लिया है।

तुम छाया को तो नहीं पकड़ सकते पर स्वयं को पकड़ सकते हो। और जिस क्षण तुम स्वयं को पकड़ लेते हो छाया पकड़ में आ जाती है।

पीड़ा अहंकार की ही छाया है। हम सब उसे बच्चे की तरह पीड़ा संताप और विषाद के साथ लड़ रहे है। और उन्हें मिटाने का प्रयास कर रहे है। हम इसमे कभी जीत नहीं सकते। यह तो कोई ताकत का प्रश्न नही है। सारा प्रयास ही व्यर्थ है। असंभव है। तुम्हें स्वयं को, अहंकार को पकड़ना चाहिए। और जैसे ही तुम इसे पकड़ लेते हो, सारी पीड़ा मिट जाती है। वह बस छाया थी।

ऐसे लोग है जो स्वयं से लड़ने लगते है। यह सिखाया गया है, 'स्व को मिटा दो, अहंकार-शून्य हो जाओ। और तुम आनंदित हो जाओगे।' तो वह स्व से, अहंकार से लड़ने लगते है। लेकिन यदि तुम लड़ रहे हो तो इतना तो तुम मान ही रहे हो कि स्व हे। तुम्हारी लड़ाई उसके लिए भोजन बन जाएगी। उसके लिए ऊर्जा का एक स्त्रोत बन जाएंगी, तुम उसका पोषण करने लगोगे।

यह विधि कहती है कि अहंकार के बारे में सोचो मत, बस बुद्धि पर उतर आओ। और अहंकार मिट जाएगा। अहंकार बुद्धि का प्रक्षेपण है। उससे लड़ो मत। तुम जन्मों-जन्मों तब उससे लड़ते रहे सकते हो। पर यदि बुद्धि में ही बने रहे तो उसे जीत नहीं सकते।

अपने दृष्टिकोण का बदल डालों। बुद्धि से उतर कर एक दूसरे तल पर, अस्तित्व के एक गहरे पर उतर आओ। और सब कुछ बदल जाता है। क्योंकि अब तुम एक अलग दृष्टि कोण से देख सकते हो। ह्रदय से कोई अहंकार नहीं पैदा कर सकता। इसी कारण हम ह्रदय से भयभीत हो गए है। हम कभी उसे अपने आप नहीं चलने देते, उसमें सदा हस्तक्षेप करते रहते है। सदा मन को बीच में ले आते है। हम ह्रदय को मन से नियंत्रित करने का प्रयास करते है। क्योंकि हम भयभीत हो गए है—यदि तुम ह्रदय की और गए तो स्वयं को खो दोगे। और यह खोना बिलकुल मृत्यु जैसा लगता है।

इसीलिए प्रेम कठिन लगता है। इसीलिए प्रेम में पड़ने में भय लगाता है। क्योंकि तुम स्वयं को खो देते हो। तुम नियंत्रण में नहीं रहते। कोई तुमसे बड़ी चीज तुम्हें अपने प्रभाव पकड़ में ले लेती है। और तुम्हें वशीभूत कर लेती है। फिर तुम्हें कुछ निश्चित नहीं रहता और कुछ पता नहीं होता कि तुम कहां जा रहे हो। तो बुद्धि कहती है, 'मुर्ख मत बनो, समझ से काम लो। पागल मत बनो।'

जब भी कोई प्रेम में होता है तो सब सोचते है वह पागल हो गया है। वह स्वयं ही समझता है कि वह पागल हो गया है। 'मैं अपने होश में नहीं हूं,' ऐसा क्या होता है? क्योंकि अब कोई नियंत्रण न रहा। कुछ ऐसा हो रहा है जिसे वह नियंत्रण नहीं कर सकता। जिसे वह चला नहीं सकता। वश में नहीं कर सकता है। बल्कि कुछ और उसे चला रहा है। एक बड़ी शक्ति ने उसे बस में कर लिया है। वह वशीभूत है......।

लेकिन जब तक तुम वशीभूत होने के लिए तैयार नहीं हो, तब तक तुम्हारे लिए कोई परमात्मा नहीं है। जब तक तुम वशीभूत होने के लिए राज़ी नहीं हो, तब तक तुम्हारे लिए कोई रहस्य, कोई आनंद कोई अहोभाव नहीं है। जो प्रेम से, प्रार्थना से विराट से वशीभूत होने को राज़ी है, उसका मतलब है कि वह अहंकार की तरह मरने के लिए राज़ी है। केवल वही जान सकता है कि वास्तव में जीवन क्या है। कि जीवन के पास देने के लिए क्या संपदा है। जो संभव है वह तत्क्षण साकार हो जाता है। लेकिन तुम्हें स्वयं को दांव पर लगाना होगा।

यह विधि सुंदर है। यह तुम्हारे अहंकार के बारे में कुछ नहीं कहती है। यह उस संबंध में कुछ कहती ही नहीं। यह बस तुम्हें एक विधि देती है। और यदि तुम विधि का अनुसरण करो अहंकार समाप्त हो जाएगा।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 93

अपने वर्तमान रूप का कोई भी अंग असीमित रूप से विस्तृत जानो।

एक दूसरे द्वारा से यह वही विधि है। मौलिक सार तो वहीं है कि सीमाओं को गिरा दो, मन सीमाएं खड़ी करता है। यदि तुम सोचो मत तो तुम असीम में गति कर जाते हो। या, एक दूसरे द्वार से, तुम असीम के साथ प्रयोग कर सकते हो और मन के पार हो जाओगे। मन असीम के साथ, अपरिभाषित, अनादि,अनंत के साथ नहीं रहा सकता। इसलिए यदि तुम सीमा-रहित के साथ कोई प्रयोग करो तो मन मिट जाएगा।

यह विधि कहती है। 'अपने वर्तमान रूप का कोई भी अंग असीमित रूप से विस्तृत जानो।'

कोई भी अंग। तुम बस अपनी आंखें बंद कर ले सकते हो और सोच सकते हो कि तुम्हारा सिर असीम हो गया है। अब उसकी कोई सीमा न रही। वह बढ़ता चला जा रहा है। और उसकी कोई सीमाएं न रहीं। तुम्हारा सिर पूरा ब्रह्मांड बन गया है, सीमाहीन।

यदि तुम इसकी कल्पना कर सको तो विचार नहीं रहेंगे। यदि तुम अपने सिर की असीम रूप में कल्पना कर सको तो विचार नहीं रहेंगे। विचार केवल एक बहुत संकीर्ण मन में हो सकते है। मन जितना संकीर्ण हो, उतना ही विचार करने के लिए बेहतर है। जितना ही विशाल मन हो, उतने ही कम विचार होते है। जब मन पूर्ण आकाश बन जाता है। तो विचार बिलकुल नहीं रहते।

बुद्ध अपने बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए है। क्या तुम कल्पना कर सकते हो कि वे क्या सोच रहे है। वे कुछ भी सोच नहीं रहे। उनका सिर पूरा ब्रह्मांड है1 वे विस्तृत हो गए है। अनंत रूप से विस्तृत हो गए है।

यह विधि उन्हीं के लिए अच्छी है जो कल्पना कर सकते है। सब के लिए यह ठीक नहीं रहेगी। जो कल्पना कर सकते है और जिनकी कल्पना इतनी वास्तविक हो जाती है। कि यह भी नहीं कह सकते कि यह कल्पना है या वास्तविकता है, उनके लिए यह विधि बहुत उपयोगी होगी। वरना यह अधिक उपयोगी नहीं होगी। लेकिन डरो मत, क्योंकि कम से कम तीस प्रतिशत लोग इस तरह की कल्पना करने में सक्षम है। ऐसे लोगे बहुत शक्तिशाली होते है।

यदि तुम्हारा मन बहुत शिक्षित नहीं है तो तुम्हारे लिए कल्पना करना बहुत सरल होगा। यदि मन शिक्षित है तो सृजनात्मकता खो जाती है, तब तुम्हारा मन एक तिजोरी, एक बैंक बन जाता है। और पूरी शिक्षा व्यवस्था एक बैंकिंग व्यवस्था है। वे तुममें चीजें डालते जाते है ठूँसते जाते है। उन्हें जो भी तुममें ठूंसने जैसा लगता है, ठूंस देते है। वे तुम्हारे मन का उपयोग स्टोर की तरह करते है। फिर तुम कल्पना नहीं कर सकते। फिर तुम जो भी करते हो वह बस उसकी पुनरावृति होती है। जो तुम्हें सिखाया गया है।

तो जो लोग अशिक्षित है, वे इस विधि का बड़ा सरलता से उपयोग कर सकते है, और जो लोग युनिवर्सिटी से बिना विकृत हुए वापस आ गए है, वे भी इसे कर सकते है। जो वास्तव में अभी भी जीवित है, इतनी शिखा के बाद भी जीवित है, वे इसे कर सकते है। स्त्रियां इसे पुरूषों की अपेक्षा अधिक सरलता से कर सकती है। जो लोग भी कल्पनाशील है, स्वप्न-द्रष्टा है, वे लोग इसे बहुत आसानी से कर सकते है।

लेकिन यह कैसे पता चले कि तुम इसे कर सकते हो या नहीं?

तो इसमें प्रवेश करने से पहले तुम एक छोटा सा प्रयोग कर सकते हो। अपने दोनों हाथों को एक दूसरे में फंसा लो और आंखें बंद कर लो। किसी भी समय, पाँच मिनट के लिए किसी कुर्सी पर आराम से बैठ जाओ। दोनों हाथों को आपस में फंसा लो और कल्पना करो कि हाथ इतने जुड़ गए है कि तुम कोशिश भी करो तो उन्हें नहीं खोल सकते। यह बड़ी बेतुकी बात लगेगी क्योंकि वे जुड़े हुए नहीं है, लेकिन तुम सोचते रहो कि वे जुड़े हुए है। पाँच मिनट तक ऐसे सोचते रहो और फिर तीन बार अपने मन से कहो, 'अब मैं अपने हाथ खोलने की कोशिश करूंगा। लेकिन मैं जानता हूं कि यह असंभव है। ये जुड़ गए है और मैं इन्हें खोल नहीं सकता।'

फिर उन्हें खोलने की कोशिश करो। तुममें से तीस प्रतिशत लोग उन्हें नहीं खोल पाएंगे। वे सच में जुड़ जाएंगे और जितनी तुम खोलने की कोशिश करोगे उतना ही तुम्हें लगेगा कि यह असंभव है। तुम्हें पसीना आने लगेगा—फिर भी अपने हाथ नहीं खोल पाओगे। तो यह विधि तुम्हारे लिए है। तब तुम इस विधि का उपयोग कर सकते हो।
यदि तुम आसानी से अपने हाथ खोल सको और कुछ भी न हो तो यह विधि तुम्हारे लिए नहीं है। तुम इसे न कर पाओगे। लेकिन अगर तुम्हारे हाथ न खुले तो डरो मत और ज्यादा प्रयास मत करो, क्योंकि जितना ही तुम प्रयास करोगे उतना ही कठिन होता जायेगा। बस फिर से अपनी आंखें बंद कर लो और सोचो कि तुम्हारे हाथ अब खुल गए है। तुम्हें फिर से सोचने के लिए पाँच मिनट लगेंगे कि अब जब तुम हाथों को खोलोगे तो वे खुल जाएंगे। और वे एकदम से खुल जाएंगे।

जैसे तुमने उन्हें कल्पना द्वारा बंद किया था, वैसे ही खोलों। यदि यह संभव है कि तुम्हारे हाथ बस कल्पना द्वारा जुड़ जाते है और तुम उन्हें खोल नहीं सकते तो यह विधि तुम पर चमत्कारिक रूप से कार्य करेगी। और इन एक

सौ बारह विधियों में कई विधियां है जो कल्पना पर कार्य करती है। उन सब विधियों के लिए यह हाथ बांधने वाली विधि अच्छी रहेगी। बस इतना याद रखो, पहले प्रयोग करके देख लो कि यह विधि तुम्हारे लिए है या नहीं।

'अपने वर्तमान रूप का कोई भी अंग असीमित रूप से विस्तृत जानो।'

कोई भी अंग....तुम पूरे शरीर की कल्पना भी कर सकते हो। अपनी आंखें बंद कर लो और कल्पना करो कि तुम्हारा पूरा शरीर फैल रहा है, फैल रहा है, फैल रहा है। और सब सीमाएं खो गई है। शरीर असीमित हो गया है। तो क्या होगा? क्या होगा इसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते हो। यदि तुम इसकी कल्पना कर सको कि तुम ब्रह्मांड हो गए हो—असीमित का यही अर्थ है—तो जो कुछ भी तुम्हारे अहंकार के साथ जुड़ा है, खो जाएगा। तुम्हारा नाम, तुम्हारा परिचय। सब खो जाएंगे। तुम्हारी अमीरी या गरीबी, तुम्हारा स्वास्थ या बीमारी, तुम्हारे दुःख—सब खो सकते है। क्योंकि वे तुम्हारे सीमित शरीर के अंग है। असीमित शरीर के साथ वे नहीं रह सकते। और एक बार तुम्हें यह पता लग जाए तो अपने सीमित शरीर में लौट आओ। लेकिन अब तुम हंस सकते हो। और सीमित में भी तुम असीमित का स्वाद ले सकते हो। तब तुम इस झलक का साथ लिए चल सकते हो।

इसे अनुभव करके देखो। और अच्छा होगा कि पहले तुम सिर से शुरू करके देखो;क्योंकि वहीं सब बीमारियों की जड़ है। अपनी आंखें बंद कर लो, जमीन पर लेट जाओ या किसी कुर्सी पर आराम से बैठ जाओ। और सिर के भीतर देखो। सिर की दीवारों को फैलते, विस्तृत होते अनुभव करो। यदि घबराहट मालूम हो तो धीरे-धीरे करो। पहले सोचो कि तुम्हारा सिर पूरे कमरे में फैल गया है। तुम्हें सच में लगेगा की तुम्हारा सर दीवारों को छू रहा है। अगर तुम अपने हाथों को बाँध सकते हो तो ऐसा स्पष्ट अनुभव होगा। तुम्हें दीवारों की शीतलता महसूस होगी। जिन्हें तुम्हारी त्वचा छू रही है। तुम्हें दबाव महसूस होगा।

बढ़ते जाओ। तुम्हारा सिर पार चला गया है—अब घर सिर के भीतर समा गया है, फिर पूरा शहर सिर में समा गया है। फैलते चले जाओ। तीन महीने के भीतर-भीतर धीरे-धीर तुम ऐसी स्थिति पर पहुंच जाओगे। जहां सूर्य तुम्हारे सिर में उदित होगा। तुम्हारे भीतर ही चक्कर लगाएगा। तुम्हारा सिर अनंत हो गया। इससे तुम्हें इतनी स्वतंत्रता मिलेगी जितनी तुमने पहले कभी नहीं जानी। और सब दुःख जो इस संकीर्ण मन से संबंधित है, समाप्त हो जाएंगे। ऐसी स्थिति में ही उपनिषद के ऋषियों ने कहा होगा, 'अहं ब्रह्मास्मि—मैं ब्रह्म हूं।' ऐसे ही आनंद के क्षण ने अनलहक़ की उदधोषणा हुई होगी।

मंसूर परम आनंद से चिल्लाया, 'अनलहक़, अनलहक़—मैं परमात्मा हूं।' मुसलमान उसे समझ नहीं पाये। असल में कोई भी परंपरावादी ऐसी चीजें नहीं समझ पाएगा। उन्होंने सोचा कि वह पागल हो गया है। लेकिन वह पागल नहीं था। वह तो परम स्वस्थ आदमी था। उन्होंने सोचा कि वह अहंकारी हो गया। वह कहता है, 'मैं परमात्मा हूं।' उन्होंने उसे मार डाला। जब उसे मारा जा रहा था और उसके हाथ पाँव काटे जा रहे थे। तब वह हंस रहा था। और कह रहा था, 'अनलहक़', अहं ब्रह्मास्मि—मैं परमात्मा हूं। किसी ने पूछा, 'मंसूर, तू हंस रहा क्यों रहा है? तेरी तो हत्या हो रही है।' वह बोला, 'तुम मुझे नहीं मार सकते। मैं तो संपूर्ण हूं।'

तुम बस एक हिस्से को मार सकते हो। संपूर्ण को तो तुम कैसे मार सकते हो। तुम उसके साथ कुछ भी करो, उसके कोई अंतर नहीं पड़ने वाला।

कहते है कि मंसूर ने कहा, 'यदि तुम मुझे मारना चाहते थे तो तुम्हें कम से कम दस साल पहले आना चाहिए था। तब मैं था। तब तुम मुझे मार सकते थे। लेकिन अब तुम मुझे नहीं मार सकते हो। क्योंकि अब मैं नहीं हूं। मैंने स्वयं ही उस अहंकार को मार दिया है। जिसे तुम मार सकते थे।'

मंसूर कुछ इसी तरह की सूफी विधियों का अभ्यास कर रहा था। जिसमें व्यक्ति तब तक फैलता चला जाता है जब तक कि विस्तार इतना असीम न हो जाए कि व्यक्ति रह ही न। फिर बस पूर्ण ही रहता है। व्यक्ति नहीं।
इन पिछले दो तीन दशकों में पश्चिम में नशीली दवाएं बहुत प्रचलित हो गई है। और उनका आकर्षण विस्तार का आकर्षण ही है, क्योंकि उन दवाओं के असर में तुम्हारी संकीर्णता, तुम्हारी सीमाएं खो जाती है। लेकिन यह बस एक रासायनिक परिवर्तन है, इससे कुछ आध्यात्मिक रूपांतरण नही हो पाता। यह व्यवस्था पर लादी गई एक हिंसा है—तुम व्यवस्था को टूटने के लिए बाध्य करते हो।

इससे तुम्हें शायद एक झलक मिले कि तुम अब सीमित न रहे। कि तुम असीम हो गए मुक्त हो गए। लेकिन यह रासायनिक दबाव के कारण है। एक बार वापस लौटे कि फिर से तुम संकीर्ण शरीर में पहुंच जायेगे। और अब शरीर पहले से भी ज्यादा संकीर्ण लगेगा। तुम फिर से उसी कारागृह में कैद हो जाओगे। लेकिन अब कारागृह और असह्य हो जाएगा। क्योंकि तुम उसके मालिक नहीं हो। तुम एक झलक उस रसायन के द्वारा प्राप्त हुई थी। इसलिए तुम उसके गुलाम ही हो। तुम आदी हो जाओगे उस रसायन के। अब तुम्हें और भी अधिक जरूरत महसूस होगी।
यह विधि एक अध्यात्मिक मस्ती है। यदि तुम इसका अभ्यास करो तो एक आध्यात्मिक रूपांतरण होगा जो रासायनिक नहीं होगा। और जिसके तुम मालिक होओगे।

इसे कसौटी समझो। यदि तुम मालिक हो तो वह चीज आध्यात्मिक है। अगर तुम गुलाम हो तो सावधान—भले ही वह दिखाई आध्यात्मिक पड़े। लेकिन हो नहीं सकती। जो भी चीज तुम्हें आदी करने वाली, शक्तिशाली, गुलाम बनने वाली,बंधन बन जाए,वह तुम्हें और गुलामी ओर परतंत्रता की और ले जा रही है।

तो इसे एक कसौटी समझना कि तुम जो भी करो। उससे तुम्हारी मलकियत बढ़नी चाहिए। तुम्हें और-और उसका मालिक बनना चाहिए। ऐसा कहा गया है और में इसे जोर-जोर से बार-बार दोहराता हूं। कि जब ध्यान तुम्हें वास्तव में घटित होगा तो तुम्हें उसे करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। यदि अभी भी तुम्हें करना पड़ता है तो ध्यान अभी हुआ ही नहीं है। क्योंकि वह भी एक गुलामी बन गई है। ध्यान को भी जाना चाहिए। एक ऐसा क्षण आना चाहिए जब तुम्हें कुछ भी करना न पड़े। जब तुम जैसे ही दिव्य हो; तुम जैसे हो, तुम आनंद हो, परमानंद हो।

लेकिन यह विधि विस्तार के लिए, चेतना के विस्तार के लिए अच्छी है। लेकिन इसे करने से पहले हाथ बांधने वाला प्रयोग करो। ताकि तुम अनुभव कर सको। यदि तुम्हारे हाथ बंध जाते है तो तुम्हारी कल्पना बहुत सृजनात्मक है, नपुंसक नहीं है। फिर तुम इस विधि से चमत्कार घटा सकते हो।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि - 94

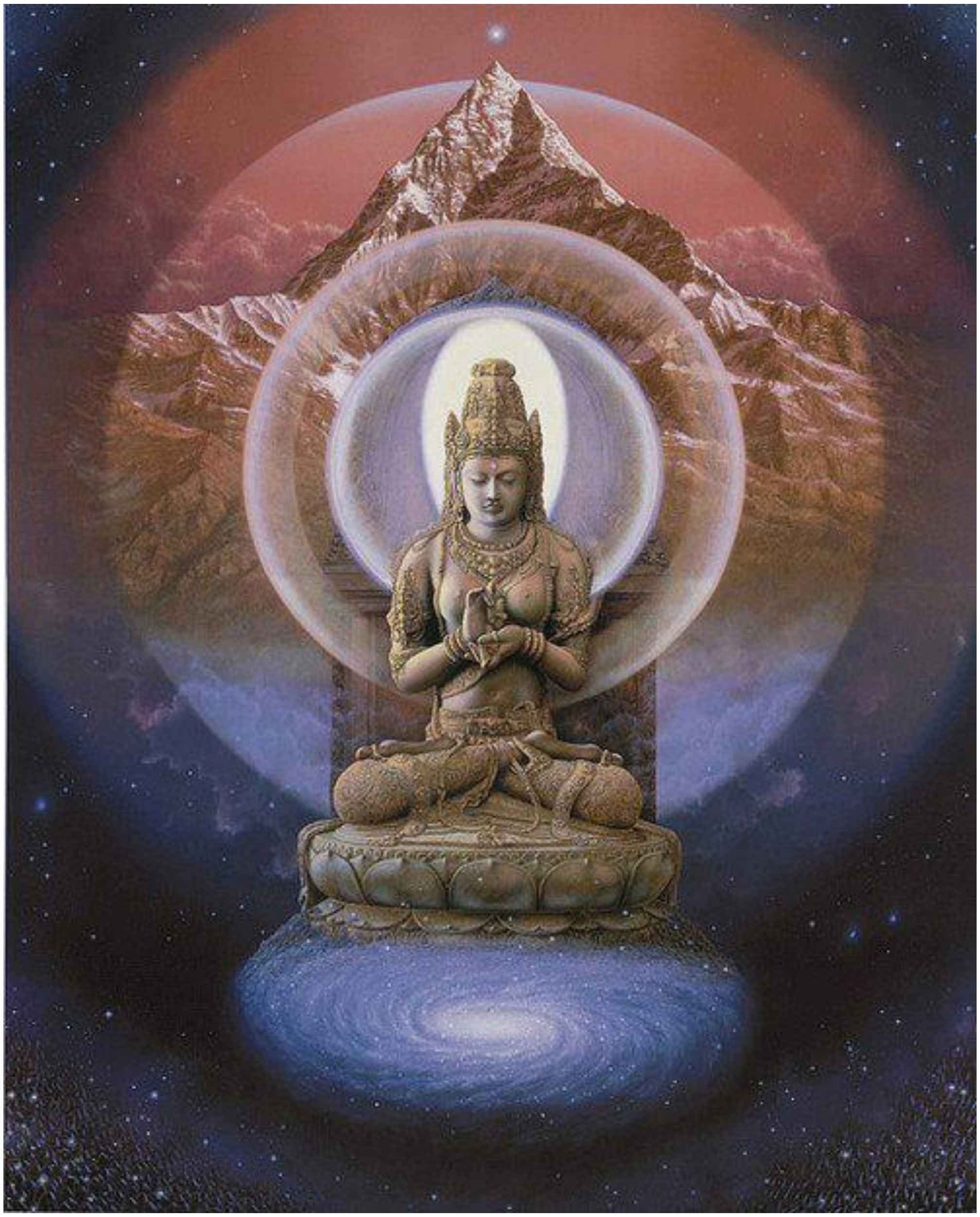

"अपने शरीर, अस्थियों मांस और रक्त को ब्रह्मांडीय सार से भरा हुआ अनुभव करो।"

सरल प्रयोगों से शुरू करो, सात दिन के लिए एक सरल सा प्रयोग करो।

अपने खून अपनी हड्डी, अपने मांस, अपने शरीर को उदासी से भरा अनुभव करो। तुम्हारे शरीर का रोआं-रोआं उदास हो जाए। एक काली रात तुम्हारे चारों और छा जाए, बोझिल और विषादयुक्त हो जाओ। जैसे की प्रकाश की एक किरण भी दिखाई न पड़ती हो कोई आशा न बचे, घनी उदासी हो, जैसे कि तुम मरने वाले हो। तुममें जीवन नहीं है। तुम बस मरने की प्रतीक्षा कर रहे हो। जैसे कि मृत्यु आ गई हो। या धीरे-धीरे आ रही है।

सात दिन तक भार करते रहो कि मृत्यु पूरे शरीर से हड्डी-मांस मज्जा तक प्रवेश कर गई हो। बिना इस भाव को तोड़े, इसी तरह सोचते रहो। फिर सात दिन के बाद देखो कि तुम कैसे अनुभव करते हो।

तुम केवल एक मृत बोझ रह जाओगे। सब संवेदनाएं समाप्त हो जाएंगी, शरीर में कोई जीवन अनुभव नहीं होगा। और तुमने किया क्या है? तुमने खाना भी खाया और तुमने सब भी किया जो तुम हमेशा से करते रहे हो। एकमात्र अंतर वह कल्पना ही थी—तुम्हारे चारो और कल्पना की एक नई शैली खड़ी हो गई है।

यदि तुम इसमें सफल हो जाओ..... ओर तुम सफल हो जाओगे, असल में तुम इसमे सफल हो ही चुके हो। तुम ऐसा कर ही रहे हो, अनजाने ही तुम इसे करने में निष्णात हो। इसीलिए मैं कहता हूं कि निराशा से शुरू करो। यदि मैं कहूं कि आनंद से भर जाओ तो वह बहुत कठिन हो जाएगा। तुम ऐसा सोच भी नहीं सकते। लेकिन यदि निराशा के साथ तुम यह बहुत कठिन हो जाएगा। तुम ऐसा सोच भी नहीं सकते। लेकिन यदि निराशा के साथ तुम यह प्रयोग करते हो तुम्हें पता चलेगा। कि इस तरह यदि निराशा आ सकती है। तो सुख क्यों नहीं आ सकता। यदि तुम अपने चारों और एक निराशापूर्ण मंडल तैयार करक एक मृत वस्तु हो सकते हो तो तुम जीवित मंडल तैयार करके जीवंत मंडल तैयार करके जीवंत और नृत्य पूर्ण क्यों नहीं हो सकते।

दूसरे तुम्हें इस बात का पता चलेगा कि जो दुःख तुम भोग रहे थे वह वास्तविक नहीं था। तुमने उसे पैदा किया था। अनजाने में तुम उसे पैदा कर रहे थे। रचा था, अनजाने में तुम उसे पैदा कर रहे थे। इस पर विश्वास करना बड़ा कठिन है। कि तुम दुःख तुम्हारी ही कल्पना है, क्योंकि उससे सारा उतरदायित्व तुम पर ही आ जाता है। तब दूसरा कोई उतरदायी नहीं रह जाता। और तुम कोई उतरदायित्व किसी परमात्मा पर भाग्य पर, लोगों पर, समाज पर, पत्नी पर या पति पर नहीं फेंक सकते; किसी अन्य पर उत्तर दायित्व नहीं लाद सकते। तुम ही निर्माता हो, जो कुछ भी तुम्हारे साथ हो रहा है वह तुम्हारा ही निर्माण है।

तो सात दिन के लिए सजगता से इसका प्रयोग करो। ओर कहता हूं उसके बाद तुम कभी भी दुःखी नहीं होओगे। क्योंकि तुम्हें तरकीब कापता लग जाएगा।

फिर सात दिन के लिए आनंद की धारा में होने का प्रयास करो, उसमे बहो, अनुभव करो कि हर श्वास तुम्हें आनंद विभोर कर रही है। सात दिन के लिए दुःख से शुरू करो और फिर सात दिन के लिए उसके विपरीत चले जाओ। और जब तुम बिलकुल विपरीत ध्रुव पर प्रयोग करोगे तो तुम उसे बेहतर अनुभव करोगे। क्योंकि उसमें स्पष्ट अंतर नजर आएगा। उसके बाद ही तुम यह प्रयोग कर सकते हो। **क्योंकि यह सुख से भी गहन है। दुःख परिधि है, सुख मध्य में है। और यह अंतिम तत्व है, अंतरतम बिंदु है—ब्रह्मांडीय सार।**

'अपने शरीर, अस्थियों, मांस आर रक्त को ब्रह्मांडीय सार से भरा हुआ अनुभव करो।'

शाश्वत जीवन दिव्य ऊर्जा ब्रह्मांडीय सार से भरा हुआ अनुभव करो। लेकिन इसे सीधे ही मत शुरू करो, नहीं तो तुम इतने गहरे स्पर्श न कर पाओगे। दुःख से शुरू करो, फिर सुख पर आओ, उसके बाद ही जीवन के स्त्रोत, ब्रह्मांडीय सार, पर जाओ। और स्वयं को उससे भरा हुआ अनुभव करो।

शुरू में तो बार-बार तुम्हें लगेगा कि तुम केवल कल्पना कर रहे हो, लेकिन रुको नहीं। कल्पना करना भी अच्छा है। यदि तुम किसी मूल्यवान बात की कल्पना भी कर सको ता अच्छा है। तुम कल्पना कर रहे हो। और कल्पना करने से ही तुम बदलने लगते हो। तुम ही तो कल्पना कर रहे हो। कल्पना करते रहो; और धीरे-धीरे तुम भूल जाओगे कि तुम इसकी कल्पना कर रहे हो। यह एक वास्तविकता बन जाएगी।

बौद्ध ग्रंथ लंकावतार सूत्र महानतम ग्रंथों में एक है। बार-बार बुद्ध अपने शिष्य महापती से कहते है कि वे कहे चले जाते है। 'महामति यह केवल मन है। नर्क भी मन है और स्वर्ग भी मन है। संसार मन है, बुद्धत्व मन है। महापती बार-बार पूछते है, 'मन है? केवल मन है? यहां तक कि निर्वाण, जागरण, केवल मन? और बुद्ध कहते है, केवल मन, महामति।'

और जब तुम समझते हो कि सब कुछ मन ही है। तुम मुक्त हो जाते हो। तब कोई बंधन नहीं। तब कोई कामना नहीं। लंकावतार सूत्र में बुद्ध कहते है कि पूरा संसार गंधर्व-नगरी है, जादू-नगरी है। जैसे किसी जादूगर ने एक संसार रचा हो। हर चीज ऐसे भासती है। लेकिन वह विचार के कारण ही है।

लेकिन बाह्म सत्य से प्रारंभ मत करो, वह बहुत दूर है। वह भी मन है। लेकिन बहुत दूर है। बहुत पास से, अपनी ही भाव दशा से शुरू करो। और यदि तुम देख लो, जान लो कि वे तुम्हारा ही निर्माण है तो तुम उनके मालिक हो गए। जब भी तुम दुःख की भाषा में सोचने लगते हो तुम दुःखी हो जाते हो और चारों और के दुःख के प्रति ग्रहणशील हो जाते हो। फिर हर कोई तुम्हें दुःखी होने में सहयोग देने लगता है। हर कोई सहयोग देता है, पूरा संसार तुम्हें सहयोग देने को तैयार रहता है। तुम चाहे जो भी करो। जब तुम दुःखी होना चाहते हो तो पूरा संसार तुम्हें सहयोग देने को तैयार रहता है। तुम चाहे जो भी करो। जब तुम दुःखी होना चाहते हो तो पूरा संसार दुःखी होने में तुम्हारी मदद करता है। सहयोग करता है। तुम सब और से दुःख ग्रहण करने लगते हो। असल में तुम ऐसी भाव दशा में पहूंच जात हो जहां केवल दुःख ही ग्रहण किया जा सकता है।

तो यदि कोई तुम्हें प्रसन्न करने के लिए भी आता है, वह तुम्हें और दुःखी कर जाएगा। वह तुम्हें मित्रवत नहीं दिखाई पड़ेगा। समझदार नहीं लगेगा। तुम्हें लगेगा कि वह तुम्हारा अपमान कर रहा है। क्योंकि तुम दुःखी हो और वह तुम्हें प्रसन्न करने की कोशिश कर रहा है। वह सोच रहा है कि तुम्हारा दुःख व्यर्थ है। वह तुम्हें गंभीरता से नहीं ले रहा है।

और जब तुम सुखी होने को तैयार होते हो तो तुम एक अलग भाव दशा में पहूंच जाते हो। अब तुम सारे सुख के प्रति खुल जाते हो जो संसार दे सकता है। हर और फूल खिलनें लगते है। हर ध्वनि हर कोलाहल संगीतमय हो जाता है। और हुआ कुछ भी नहीं है। पूरा संसार वही का वही है। पर तुम बदल गये हो। तुम्हारा देखने का ढंग, तुम्हारा दृष्टिकोण, तुम्हारा नजरिया अलग हो गया; उस दृष्टि कोण से एक अलग ही संसार तुम्हारे सामने प्रकट होता है।

लेकिन दुःख से शुरू करो, क्योंकि उसमे तुम निष्णात हो। मैं एक प्राचीन हसीद संत का एक वाक्य पढ रहा था। मुझे वह बहुत अच्छा लगा।

वह कहता है कि ऐसे लोग होते है। जिनका पूरा जीवन भी अगर फूलों की सेज हो जाए तो वह तब तक खुश नहीं होंगे। जब तक कि उन्हें फूलों से कोई पीड़ा न होने लगे। गुलाब उन्हें खुश नहीं कर सकता, जब तक उन्हें उनसे एलर्जी न हो जाए। अगर उनसे कोई पीड़ा होने लगे केवल तभी वे जीवित अनुभव करेंगे। वे केवल दुःख पीड़ा और रोग ही ग्रहण कर सकते है। कुछ और नहीं। वे दुःख ही खोजते रहते है। वे कोई गलती, कोई दुख, कोई विशाद या अंधकार ही खोजने में लगे रहते है। वे मृत्यु उन्मुख होते है।

मैं सैकड़ों-सैंकड़ो लोगो से बहुत गहराई से, बहुत आत्मीयता से, बहुत निकट से मिला हूं, जब वे अपने दुःख के बारे में बताने लगते है तो मुझे गंभीर होना पड़ता है। नहीं तो उन्हें लगेगा कि मैं सहानुभूतिपूर्ण नहीं हूं। यह उन्हें अच्छा

नहीं लगता। फिर वे लौटकर मेरे पास न आएँगे। मुझे उनके दुःख के साथ दुःखी और उनकी गंभीरता के साथ गंभीर होना पड़ता है। ताकि वे उससे बाहर निकल सकें। और यह सब उनका ही निर्माण है, उसे निर्मित करने के लिए वे हर संभव प्रयास कर रह है। और जब मैं उन्हें दुःख से बाहर निकालने की कोशिश करता हूं तो वे हर तरह की बाधा खड़ी करते है। निश्चित ही, वे जानते है कि बाधा खड़ी कर रहे है। जान-बूझकर तो कोई भी ऐसा नहीं करेगा।

इसे ही उपनिषाद अज्ञान कहते है। अनजाने ही तुम अपने जीवन को अस्तव्यस्त किए जाते हो। समस्याएं और संताप खड़े करते हो, चाहे कुछ भी हो जाए उससे तुममें कोई अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि तुम्हारा एक ढर्रा बन गया है। मेरे पास लोग आत है, कहते है, हम अकेले है। इसलिए वे दुःखी है। अगले ही क्षण कोई और आता है। और कहता ह कि उसे ऐसी जगह नहीं मिल रही जहां वह अकेले हो सके। इसलिए वह दुःखी है। फिर कुछ ऐसे लोग है जो इस बात से दुःखी है कि उनके पास करने को कुछ नहीं है। कोई विवाह करके दुःखी है। तो कोई विवाह न होने से दुःखी है। ऐसा लगता है कि तुम दुःखी होने के उपाय खोजने में माहरथ है, मनुष्य को सुखी होना असंभव है।

इसीलिए मैं कहता हूं कि तुम दुःखी होने के उपाय खोजने में निष्णात हो। और हमेशा तुम सफल होते हो। तो दुःख से शुरू करो और सात दिन के लिए पहली बार पूरी सजगता से दुःखी हो जाओ। यह प्रयोग तुम्हें पूर्णतया रूपांतरित कर देगा। एक बार तुम जान जाओ कि होश पूर्णाक तुम दुःखी हो सकते हो। और जब तुम दुःखी होओगे तभी तुम जाग पाओगे। फिर तुम्हें पता होगा कि तुम क्या कर रहे हो। यह तुम्हारा ही कृत्य है। और यदि तुम अपनी मर्जी से दुःखी हो सकते हो तो सुखी क्यों नहीं हो सकते। उसमें कोई अंतर नहीं है। विधि तो वहीं है। फिर तुम इस विधि का प्रयोग करो।

'अपने शरीर, अस्थियों मांस और रक्त को ब्रह्मांडीय सार से भरा हुआ अनुभव करो।'

ऐसे अनुभव करो जैसे कि परमात्मा तुम में बह रहा हो: तुम नहीं हो, बल्कि ब्रह्मांडीय तत्व तुममें भरा हुआ है। परमात्मा तुममें विराजमान है। जब तुम्हें भूख लगती है तो उसे भूख लगती है—फिर शरीर को भोजन देना पूजा बन जाता है। जब तुम्हें प्यास लगती है तो तुममें विराजमान ब्रह्मांडीय तत्व को प्यास लगती है। जब तुम्हें नींद आती है। तो उसे नींद आती है। वह सोना, आराम करना चाहता है। जब तुम युवा हो तो तुममें वही युवा है। जब तुम प्रेम में पड़ते हो तो वही प्रेम में पड़ता है।

उससे भरा और पूरी तरह उससे भर जाओ। कोई भेद न करो। अच्छा या बुरा जो भी हो रहा है वह उसे ही हो रहा है। तुम तो बस एक और हट जाओ। अब तुम नहीं हो, वही है। तो अच्छा या बुरा स्वर्ग या नर्क, जो भी होता है। उसको ही होता है। सारा उतरदायित्व उस पर आ गया है। तुम तो रहे ही नहीं। यह तुम्हारा न होना, धर्म की परम अनुभूति है।

यह विधि तुम्हें पहुंचा सकती है। लेकिन तुम्हें उससे बिलकुल भर जाना होगा। और तुम्हें तो किसी प्रकार भरने का पता ही नहीं है। तुम्हें लगता है तुम्हारे शरीर में खुले हुए श्वास छिद्र है और महान जीवन-ऊर्जा तुम्हारे शरीर में बह रही है। तुम्हें तो लगता है कि तुम ठोस हो, बंद हो।

जीवन केवल तभी घटित हो सकता है जब तुम बंद नहीं हो, बल्कि खुले और संवेदनशील हो। जीवन-ऊर्जा तुमसे बहती है। और जो भी होता है वह जीवन ऊर्जा के साथ ही होता है। तुम्हारे साथ नहीं होता—तुम तो बस एक अंश हो। और जात भी सीमाएं तुमने अपने चारों और बना ली है वे वास्तविक नहीं है, झूठी है।

तुम अकेले जीवित नहीं रह सकते। यदि तुम पृथ्वी पर अकेले हो जाओ तो क्या तुम जी सकोगे। तुम अकेले नहीं जी सकते। तुम तारों के बिना नहीं जी सकते। एडिंगटन ने कहीं कहा है कि **पूरा अस्तित्व मकड़ी के जाले की तरह है। मकड़ी के जाले को तुम कहीं से भी छुओ तो सारा जाला हिलता है। अस्तित्व को तुम कहीं से भी छुओ, पूरा अस्तित्व तरंगायित होता है। पूरा अस्तित्व एक है।** अगर तुम एक फूल को छुओ तो तुमने सारे ब्रह्मांड को छू लिया। तुमने अपने पड़ोसी की आंखों में झाँका तो तुमने ब्रह्मांड में झांक लिया, क्योंकि पूरा अस्तित्व एक है। तुम पूर्ण को छुए बिना अंश को नहीं छू सकते और अंश पूर्ण के बिना नहीं हो सकता।

जब तुम्हें यह अनुभव होने लगेगा तो अहंकार समाप्त हो जाएगा। अहंकार तभी पैदा होता है। जब तुम अंश को पूर्ण की तरह लेते हो। जब तुम्हें ठीक-ठीक पता लगना शुरू होता है। कि अंश-अंश है और पूर्ण-पूर्ण है। तो अहंकार गिर जाता है। अहंकार केवल एक नासमझी है।

और स्वयं को ब्रह्मांडीय तत्व से भरा हुआ है। **यह विधि तो बहुत अद्भुत है। सुबह से ही जब तुम्हें लगे कि जीवन जाग रहा है, नींद समाप्त हो चुकी है, तो यह पहला विचार होना चाहिए कि तुम नहीं परमात्मा जाग रहा है। परमात्मा नींद से वापस आ रहा है।**

इसीलिए तो हिंदू जो कि संसार में धर्म के आयाम में सर्वाधिक गहरे उतरने वाली जाती है, सुबह अपनी पहली श्वास परमात्मा के नाम के साथ लेते है। अब तो यह मात्र एक औपचारिकता रह गई है। और असली बात खो गई है। लेकिन इसका मूल भाव यही था कि सुबह जिस क्षण तुम जागों तो स्वयं को नहीं परमात्मा को स्मरण करो। परमात्मा तुम्हारा पहला स्मरण बन जाए। और रात जब सोने लगो तो तुम्हारा अंतिम स्मरण भी वही हो। परमात्मा का स्मरण बना रहे: वही पहला हो ओर वही अंतिम हो। और यदि सच में ही यह सुबह सबसे पहले और रात सबसे अंतिम स्मरण हो तो दिन भर भी वह तुम्हारे साथ रहेगा।

रात सोते समय तुम्हें उसी से भरे हुए सोना चाहिए। तुम हैरान होओगे कि तुम्हारी नींद का गुणधर्म ही बदल गया। आज रात सोते हुए कृपया स्वयं मत सोओ, **परमात्मा को ही सोने दो।** जब बिस्तर बिछाओ तो परमात्मा के लिए ही बिछाओ, अतिथि की तरह सत्कार करो। ओर नींद आते-आते यही अनुभव करते रहो कि परमात्मा ही है। हर श्वास उससे भरी हुई है। वहीं ह्रदय में धडक रहा है। अब वह पूरे दिन काम करके थक गया है। और सोना चाहता है। और सुबह तुम अनुभव करोगे। कि रात तुम अलग ही ढंग से सोए हो। नींद का पूरा गुणधर्म ही ब्रह्मांडीय हो जाएगा। क्योंकि उससे गहरे तल पर मिलन होगा।

जब तुम स्वयं को दिव्य अनुभव करते हो। तो तुम अतल गहराइयों में डूब जाते हो, क्योंकि तब कोई भय नहीं रहता। वरना तो रात जब तुम सो भी रहे होते हो तब भी गहरे जाने से डरते हो। कई लोग अनिद्रा से पीडित है। इसलिए नहीं कि उन्हें कोई तनाव है, बल्कि इसलिए कि वे सोने से भयभीत है। क्योंकि नींद उन्हें गहरी खाई की तरह प्रतीत होती है। जिसकी कोई थाह नहीं दिखती है। मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, जो सोने से डरते है।
एक वृद्ध मेरे पास आए और कहने लगे कि वे भय के कारण सो नहीं सकते। मैंने पूछा, आप डरते क्यों है। तो वे बोले, मुझे डर है कि कहीं मैं सोते हुए ही मर गया तो मुझे तो पता ही नहीं चलेगा। और मैं नींद में मरना नहीं चाहता। कम से कम मुझे होश तो रहे कि मुझे क्या हो रहा है।

तुम कुछ पकड़े रहते हो जिससे तो तुम सो नहीं सकते, लेकिन जब तुम्हें लगता है कि अब तो परमात्मा ही है तो तुम स्वीकार कर लेते हो। फिर तो अतल गहराइयां भी दिव्य है, फिर तुम अपनी आत्मा के मूल स्त्रोत में गहरे उतर

जाते हो। और सारा गुणधर्म बदल जाता है। और जब तुम सुबह उठते हो और तुम्हें लगता है कि नींद जा रही है तो स्मरण रखो कि परमात्मा ही उठ रहा है। तुम्हारा पूरा दिन भी बदल जाएगा।

और पूरी तरह उसी से भरे रहो। जो भी तुम करो, या न करो। परमात्मा को ही करने दो। जो हो बस उसे होने दो। खाओ,सोओ, काम करो, लेकिन सब परमात्मा को ही करने दो। केवल तभी तुम पूरी तरह उससे भर सकते हो, उससे एक हो सकते हो। और एकबार तुम्हें अनुभव हो जाए एक क्षण के लिए भी—मैं कहता हूं एक क्षण के लिए भी—कि ऐसा शिखर का क्षण आ गया कि तुम न बचे। दिव्य ने तुम्हें पूरी तरह से भर दिया। तभी तुम बुद्ध हो जाते हो। उस एक समयातित क्षण में तुम्हें जीवन के रहस्य का ज्ञान होता है। फिर न तो कोई भय है, न कोई मृतयु। जब तुम स्वयं जीवन ही हो गए। फिर यह एक अनंत प्रवाह है, न इसका कोई अंत है, न आदि। तब जीवन परम आनंद हो जाता है।

मोक्ष और स्वर्ग की धारणाएं तो एकदम बचकानी है। क्योंकि वे कोई भौगोलिक स्थान नहीं है। वे तो उस अवस्था के लिए प्रतीक है जब व्यक्ति ब्रह्मांड में डूब जाता है। अथवा ब्रह्मांड को स्वयं में डूब जाने देता ह। जब दो एक हो जात है, जब मन और पदार्थ दोनों ही अभिव्यक्तियां तीसरे पर मूल स्त्रोत पर लौट आती है। सारी खोज ही उसके लिए है। यही एकमात्र खोज है, और जब तक तुम इसको न पा लो, तृप्त नहीं होओगे। इसका कोई विकल्प नहीं हो सकता। चाहे जन्मों-जन्मों तक तुम भटकते रहो। पर जब तक यह न पा लो, तुम्हारी खोज पूरी नहीं होगी। तुम विश्राम नहीं कर सकते।

यह विधि बहुत सहयोगी हो सकती है। और इसमें कोई खतरा नहीं है। इसको तुम बिना किसी गुरु के कर सकते है। इस स्मरण रखो। वे सब विधियां जो शरीर से शुरू होती है। बिना गुरु के खतरनाक हो सकती है। क्योंकि शरीर बहुत-बहुत जटिल संरचना है। शरीर एक जटिल यंत्र है और इसके साथ कुछ भी शुरू करना खतरनाक हो सकता है। जब तक कि कोई ऐसा व्यक्ति न हो जा कि जानता है कि क्या हो रहा है। हो सकता है तुम यंत्र का खराब कर दो और उसे ठीक करना कठिन हो जाए।

वे सब विधियां जो सीधे मन से शुरू होती है, कल्पना पर आधारित होती है। और खतरनाक नहीं होती। क्योंकि उनमें शरीर का बिलकुल भी सहयोग नहीं होता। वे बिना किसी सदगुरू के भी कि जा सकती है। निश्चित ही, यह थोड़ा कठिन होगा, क्योंकि तुममें आत्म विश्वास नहीं है। सदगुरू कुछ करता नहीं है। लेकिन एक उत्प्रेरक माध्यम, कैटालिस्ट बन जाता है। वह कुछ भी नहीं करता—और सच में तो कुछ किया भी नहीं जा सकता—लेकिन मात्र उसकी उपस्थिति स ही तुम्हारा आत्मविश्वास और श्रद्धा जग जाती है। और इससे मदद मिलती है। केवल इस भाव से ही कि गुरु साथ है। तुममें भरोसा आ जाता है। क्योंकि वह साथ है तो तुम अज्ञात में प्रवेश कर सकते हो।

लेकिन शारीरिक विधियों में गुरु नितांत आवश्यक है, क्योंकि शरीर एक यंत्र है और उसके साथ तुम ऐसा कुछ कर ले सकते हो जिसे अनकिया नहीं किया जा सकता है। तुम स्वयं को नुकसान पहुंचा सकते हो।

मेरे पास एक युवक आया, वह शीर्षासन कर रहा था। घंटों अपने सिर के बल खड़ा रहता था। शुरू-शुरू में तो सब बिलकुल ठीक था और सारे दिन वह विश्रांति और शांति और शीतलता अनुभव करता रहा। लेकिन फिर मुसीबत होने लगी। क्योंकि जब शीतलता समाप्त होती ता सारे शरीर में गर्मी लगने लगती। जो उसे बेचैन कर देती। वह करीब-करीब पागल सा हो गया। और फिर उसने सोचा कि शीर्षासन से शुरू-शुरू में उसे इतनी शीतलता, इतनी शांति, इतना आराम मिला था तो वह और शीर्षासन करने लगा। उसने सोचा कि और शीर्षासन से उसे मदद मिलेगी। जब कि शीर्षासन ही उसे बीमार किया जा रहा था।

मस्तिष्क के यंत्र में केवल एक निश्चित मात्रा में ही रक्त संचार की जरूरत होती है। यदि रक्त संचार कम हो तो तुम्हें कठिनाई होगी। यदि रक्त संचार अधिक हो तो कठिनाई होगी। और हर एक व्यक्ति के लिए यह मात्रा अलग होती है। वह व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करती है। इसीलिए तो तुम तकिए के बिना नहीं सो पाते हो। यदि तुम तकिए के बिना सोने की कोशिश करो तो यह तो सो ही नहीं पाओगे या कम सो पाओगे। क्योंकि सिर की और अधिक रक्त दौड़ेगा। तकिए मदद देते है। तुम्हारा सिर ऊँचा हाँ जाता है। इसलिए कम रक्त सिर की और दौड़ता है। इससे नींद आ जाती है। यदि अधिक रक्त दौड़ता रहे तो मस्तिष्क जागा रहेगा। विश्राम नहीं कर पाता।

यदि तुम बहुत अधिक शीर्षासन करो तो हो सकता है कि तुम्हारी नींद पूरी तरह से उड़ जाये। हो सकता है कि तुम बिलकुल भी सो नहीं सको। फिर और भी खतरे है। अभी खोजों से पता चला है कि अधिक से अधिक सात दिन तक तुम बिना सोए रह सकते हो। सात दिन के बाद तुम पागल हो जाओगे। क्योंकि मस्तिष्क की बहुत सूक्ष्म कोशिकाएं है, जो कि टूट जाएंगी। फिर आसानी से वे जुड़ नहीं सकती। जब तुम शीर्षासन में सिर के बल खड़े होते हो तो सारा रक्त सिर की और दौड़ने लगता है। मैंने ऐसा एक भी शीर्षासन करने वाला नहीं देखा जो किसी भी तरह से प्रतिभाशाली हो। यदि कोई व्यक्ति बहुत शीर्षासन करता है तो वह जड़बुद्धि हो जाएगा। क्योंकि मस्तिष्क की सूक्ष्म कोशिकाएं नष्ट हो जाएंगी। अत्यधिक रक्त-संचार के कारण वे को मन कोशिकाएं नही बच सकती है।

तो यह सब एक गुरु ही निर्धारित कर सकता है, जो जानता है कि कौन सी विधि कितना समय तुम्हारे लिए सहयोगी होगी। कुछ सेकेंड या कुछ मिनट। और यह तो केवल एक उदाहरण हे। सारी शारीरिक मुद्राएं, आसन विधियां, गुरु की देख-रेख में ही करनी चाहिए। कभी भी उन्हें अकेले नहीं करना चाहिए। क्योंकि तुम अपने शरीर को नहीं जानते। तुम्हारा शरीर इतनी बड़ी घटना है कि तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। तुम्हारे छोटे से मस्तिष्क में सात करोड़ तंतु आपस में एक दूसरे से संबंधित है। जुड़े हुए है। वैज्ञानिक कहते है कि उनका आपसी संबंध इस ब्रह्मांड जितना ही जटिल है।

प्राचीन हिंदू ऋषियों ने कहा है कि पूरा ब्रह्मांड लधु रूप से मस्तिष्क में विराजमान है। जगत की सारी जटिलता लधु रूप से मस्तिष्क में है। यदि इन सारे तंतुओं का संबंध तुम्हें समझ आ जाए तो पूरे जगत की जटिलता समझ में आ जाए। न तो तुम्हें किन्हीं तंतुओं का पता है, न ही उनके किसी आपसी संबंधों का। और अच्छा है कि तुम्हें पता नहीं है, नहीं तो इतने महत कार्य को चलते देख तुम तो पागल ही हो जाओ। यह सब केवल बिना पता लगे ही हो सकता है।

रक्त दौड़ता रहता है, लेकिन तुम्हें पता नहीं लगता। केवल तीन शताब्दी पहले ही यह पता चल पाया कि शरीर में रक्त दौड़ता है। इससे पहले ऐसा माना जाता था कि रक्त दौड़ता नहीं,भरा हुआ है। रक्त संचार तो बहुत नई धारणा है। और लाखों वर्षों से मनुष्य है, लेकिन किसी को नहीं लगा कि रक्त दौड़ता है। तुम इसे महसूस नहीं कर सकते। भीतर बहुत गति से बहुत सा काम चल रहा है। तुम्हारा शरीर एक बहुत बड़ी और बहुत नाजुक फैक्टरी है। शरीर हर समय स्वयं को ताजा और नया करने में लगा है। यदि तुम कोई उपद्रव न खड़ा करो तो सत्तर वर्ष तक यह आराम से चलेगा। अभी तक हम कोई ऐसा यंत्र नहीं बना पाए है जो सत्तर वर्ष तक अपनी देख-भाल कर सके। तो जब भी तुम अपने शरीर पर कोई कार्य शुरू करो तो इस बात का स्मरण रखो कि ऐसे गुरु के पास होना जरूरी है जो जानता हो कि वह तुम्हें क्या करवा रहा है। वरना कुछ मत करो। लेकिन कल्पना में तो कोई कठिनाई नहीं है। यह बड़ी सरल बात है। इसे तुम शुरू कर सकते हो।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 95

‘अनुभव करो कि सृजन के शुद्‌ध गुण तुम्हारे स्तनों में प्रवेश करके सूक्ष्म रूप धारण कर रहे है।’

इससे पहले कि इस विधि में प्रवेश करूं, कुछ महत्वपूर्ण बातें।

शिव पार्वती से, देवी से, अपनी संगिनी से बात कर रहे है। इसलिए यह विधि विशेषत: स्त्रियों के लिए है। कुछ बातें समझने जैसी है। एक: पुरूष देह और स्त्री देह एक जैसी है; लेकिन फिर भी उनमें कई भेद है। और उनका भेद है। और उनका भेद एक दूसरे का परिपूरक है। पुरूष देह में जो नकारात्मक है, स्त्री देह में वही सकारात्मक होगा; और स्त्री देह जो सकारात्मक है, वह पुरूष देह में नकारात्मक होगा।

यही कारण है कि जब वे दोनों गहन संभोग में मिलते है तो एक इकाई बन जाते है। ऋणात्मक धनात्मक से मिलता है। धनात्मक ऋणात्मक से मिलता है। और दोनों एक हो जाते है। एक विद्युत वर्तुल बन जाते है। इसीलिए तो यौन में इतना आकर्षण है। यह आकर्षण इसीलिए है। आधुनिक मनुष्य बहुत स्वच्छंद हो गया है। कि अश्लील फिल्में और साहित्य इसका कारण है। इसका कारण बहुत गहरा है जागतिक है।

यह आकर्षण इसलिए है क्योंकि पुरूष और स्त्री दोनों ही अधूरे है। और जो भी अधूरा है उसके पार जाना, पूर्ण होना अस्तित्व की स्वाभाविक प्रवृति है। पूर्णता की और गति करने की प्रवृति परम नियमों में से एक है। जहां भी तुम्हें लगता है कि कुछ कमी है, तुम उसे भरना चाहते हो, पूरा करना चाहते हो। प्रकृति किसी भी तरह के अधूरे पन को नहीं पसंद करती। पुरूष भी अधूरा है, स्त्री भी अधूरी है। और वे पूर्णता का केवल एक ही क्षण पा सकते है। जब उनका विद्युत वर्तुल एक हो जाए, जब दोनों विलीन हो जाएं।

इसीलिए तो सभी भाषाओं में प्रेम और प्रार्थना दोनों बड़े महत्वपूर्ण है। प्रेम में तुम किसी व्यक्ति के साथ एक हो जाते हो। और प्रार्थना में तुम समष्टि के साथ एक हो जाते हो। जहां तक आंतरिक प्रक्रिया का सवाल है, प्रेम और प्रार्थना समान है।

पुरूष और स्त्री देह समान है। लेकिन उनके ऋणात्मक और धनात्मक ध्रुव भिन्न है। जब बच्चा मां के गर्भ में होता है तो मैं सोचता हूं कम से कम छ: सप्ताह के लिए वह मध्य स्थिति में रहता है। न तो वह पुरूष होता है न स्त्री ही, उसका एक और झुकाव जरूर होता है, लेकिन फिर भी शरीर अभी मध्य में ही होता है। फिर छ: सप्ताह बाद शरीर या तो स्त्री का हो जाता है। या पुरूष का। यदि शरीर स्त्री का है तो काम ऊर्जा का ध्रुवस्तनों के निकल होगा। यह उसका धनात्मक ध्रुव होगा क्योंकि स्त्री की योनि ऋणात्मक ध्रुव है। यदि बच्चा नर है तो काम केंद्र, शिश्न उसका धनात्मक ध्रुव होगा और स्तन ऋणात्मक होते हे। स्त्री के शरीर में शिश्न का प्रतिरूप क्लाइटोरिस होता है। लेकिन यह निष्क्रय है। पुरूष के स्तनों की भांति ही स्त्री का क्लाइटोरिस भी निष्क्रय है।

शरीर शास्त्री ये प्रश्न उठाते रहते है। कि पुरूष के शरीर में स्तन क्यों होते है। जब कि उनकी कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती है। क्योंकि पुरूष को बच्चे को दूध तो पिलाना नहीं है। फिर उनकी क्या आवश्यकता है। वे ऋणात्मक ध्रुव है। इसलिए तो पुरूष के मन में स्त्री के स्तनों की और इतना आकर्षण है। वे धनात्मक ध्रुव है। इतने काव्य, साहित्य, चित्र, मूर्तियां सब कुछ स्त्री के स्तनों से जुड़े है। ऐसा लगता है जैस पुरूष को स्त्री के पूरे शरीर की अपेक्षा उसके स्तनों में अधिक रस है। और यह कोई नई बात नहीं है। गुफाओं में मिले प्राचीनतम चित्र भी स्तनों के ही है। स्तन उनमें महत्वपूर्ण है। बाकी का सारा शरीर ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे स्तनों के चारों और बनाया गया हो। स्तन आधार भूत है।

यह विधि स्त्रियों के लिए है। क्योंकि स्तन उनके धनात्मक ध्रुव है। और जहां तक योनि का प्रश्न है वह करीब-करीब संवेदन रहित है। स्तन उसके सबसे संवेदनशील अंग है। और स्त्री देह की सारी सृजन क्षमता स्तनों के आस-पास है।

यही कारण है कि हिंदू कहते है कि जबतक स्त्री मां नहीं बन जाती, वह तृप्त नहीं होती। पुरूष के लिए यह बात सत्य नहीं है। कोई नहीं कहेगा कि पुरूष जब तक पिता न बन जाए तृप्त नहीं होगा। पिता होना तो मात्र एक संयोग है। कोई पिता हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है। यह कोई बहुत आधारभूत सवाल नहीं है। एक पुरूष बिना पिता बने रह सकता है। और उसका कुछ न खोये। लेकिन बिना मां बने स्त्री कुछ खो देती है। क्योंकि उसकी पूरी सृजनात्मकता, उसकी पूरी प्रक्रिया तभी जागती है। जब वह मां बन जाती है। जब उसके स्तन उसके अस्तित्व के केंद्र बन जाते है। तब वह पूर्ण होती है। और वह स्तनों तक नहीं पहुंच सकती यदि उसे पुकारने वाला कोई बच्चा न हो।

तो पुरूष स्त्रियों से विवाह करते है ताकि उन्हें पत्नियाँ मिल सके, और स्त्रियां पुरूषों से विवाह करती है ताकि वे मां बन सकें। इसलिए नहीं कि उन्हें पति मिल सके। उनका पूरा का पूरा मौलिक रुझान ही एक बच्चा पाने में है जो उनके स्त्रीत्व को पुकारें।

तो वास्तव में सभी पति भयभीत रहते है, क्योंकि जैसे ही बच्चा पैदा होता है वे स्त्री के आकर्षण की परिधि पर आ जाते है। बच्चा केंद्र हो जाता है। इसलिए पिता हमेशा ईर्ष्या करते है, क्योंकि बच्चा बीच में आ जाता है। और स्त्री अब बच्चे के पिता की उपेक्षा बच्चे में अधिक उत्सुक हो जाती है। पुरूष गौण हो जाता है। जीने के लिए उपयोगी, परंतु अनावश्यक। अब मूलभूत आवश्यकता पूर्ण हो गई।

पश्चिम में बच्चों को सीधे स्तन से दूध न पिलाने का फैशन हो गया है। यह बहुत खतरनाक है। क्योंकि इसका अर्थ यह हुआ कि स्त्री कभी अपनी सृजनात्मकता के केंद्र पर नहीं पहुंच सकेगी। जब एक पुरूष किसी स्त्री से प्रेम करता है तो वह उसके स्तनों को प्रेम कर सकता है। लेकिन उन्हें मां नहीं कह सकता। केवल एक छोटा बच्चा ही उन्हें मां कह सकता है। या फिर प्रेम इतना गहन हो कि पति भी बच्चे की तरह हो जाए। तो यह संभव हो सकता है। तब स्त्री पूरी तरह भूल जाती है कि वह केवल एक संगिनी है, वह अपनी प्रेमी की मां बन जाती है। तब बच्चे की आवश्यकता नहीं रह जाती, तब वह मां बन सकती है। और स्तनों के निकट उसके अस्तित्व का केंद्र सक्रिय हो सकता है।

यह विधि कहती है: 'अनुभव करो कि सृजन के शुद्ध गुण तुम्हारे स्तनों मे प्रवेश करके सूक्ष्म रूप धारण कर रहे है।'

स्त्रैण अस्तित्व की पूरी सृजनात्मकता मातृत्व पर ही आधारित है। इसीलिए तो स्त्रियां अन्य किसी तरह के सृजन में इतनी उत्सुक नहीं होती। पुरूष सर्जक है। स्त्रियां सर्जक नहीं है। न उनके चित्र बनाए है। न महान काव्य रचे है। न कोई बड़ा ग्रंथ लिखा है। न कोई बड़े धर्म बनाए है। वास्तव में उसने कुछ नहीं किया हे। लेकिन पुरूष सृजन किए चला जाता है। वह पागल है। वह आविष्कार कर रहा है, सृजन कर रहा है। भवन निर्माण कर रहा है।
तंत्र कहता है, ऐसा इसलिए है क्योंकि पुरूष नैसर्गिक रूप से सर्जक नहीं है। इसलिए वह अतृप्त और तनाव में रहता है। वह मां बनना चाहता है। वह सर्जक बनना चाहता है। तो वह काव्य का सृजन करता है। वह कई चीजों का सृजन करता है। एक तरह से हव उसकी मां हो जाये। लेकिन स्त्री तनाव रहित होती है। यदि वह मां बन सके तो तृप्त हो जाती है। फिर किसी और चीज में उत्सुक नहीं रहती।

स्त्री कुछ और करने की तभी सोचती है यदि वह मां न बन सके। प्रेम न कर सके, अपनी सृजनात्मकता के शिखर पर न पहूंच सके। तो वास्तव में असृजनात्मक स्त्रियां बन जाती है। कवि, चित्रकार, लेकिन वे सदा दूसरे दर्जे की रहेगी। कभी प्रथम कोटी की नहीं हो सकती। स्त्री के लिए काव्य और चित्रों का सृजन उतना ही असंभव है, जितना

पुरूष को बच्चे का सृजन करना। वह मां नहीं बन सकता। वह जैविकीय तल पर असंभव है। और इस कमी को वक अनुभव करता है। इस कमी को पूरा करने के लिए वह कई कार्य करता है। लेकिन कभी भी कोई महान से महान सर्जक भी इतना तृप्त नहीं हो पाया, या कभी कोई विरला ही इतना परितृप्त हो सकता है। जितना कि एक स्त्री मां बनकर हो जाती है।

एक बुद्ध अधिक परितृप्त होता है। क्योंकि वह अपना ही सृजन कर लेता है। वह द्विज हो जाता है। वह स्वयं को दूसरा जन्म दे देता है। नया मनुष्य हो जाता है। अब वह अपनी मां भी हो जाता है, पिता भी हो जाता है। वह पूर्णतया परितृप्त अनुभव करता है।

एक स्त्री अधिक सरलता से तृप्ति अनुभव कर सकती है। उसका सृजनात्मकता स्तनों के आस-पास ही होती है। इसीलिए तो विश्व भर में स्त्रियां अपने स्तनों के बारे में इतनी चिंतित रहती है। जैसे कि उनका पूरा अस्तित्व ही वही केंद्रित हो। वे सदा अपने स्तनों के बारे में इतनी सजग होती है। दिखाए चाहे उघाड़े पर उनके विषय में चिंतित रहती है। स्तन उनके सबसे गुप्त अंग है, उनका खजाना है, उनके अस्तित्व के मातृत्व के सृजनात्मकता के केंद्र है। शिव कहते है: 'अनुभव करो कि सृजन के शुद्ध गुण तुम्हारे स्तनों में प्रवेश करके सूक्ष्म रूप धारण कर रहे हो।' स्तनों पर अवधान को एकाग्र करो, उन्ही के साथ एक हो जाओ। बाकी सारे शरीर को भूल जाओ। अपनी पूरी चेतना को स्तनों पर ले जाओ। और कई घटनाएं तुम्हारे साथ घटेगी। यदि तुम ऐसा कर सको। यदि पूरी तरह से स्तनों पर अपने अवधान को केंद्रित कर सको, तो सारा शरीर भार-मुक्त हो जाएगा। और एक गहन माधुर्य तुम्हें घेर लेगा। माधुर्य की एक गहन अनुभूति तुम्हारे भीतर बारह चारों और धड़केगी।

जो भी विधियां विकसित की गई है वे करीब-करीब सब पुरूष द्वारा ही विकसित की गई है। तो उनमें ऐसे केंद्रों का उल्लेख होता है जो पुरूष के लिए सरल होते है। जहां ते मैं जानता हूं केवल शिव ने ही कुछ ऐसी विधियां दी है जो मौलिक रूप से स्त्रियों के लिए है। कोई पुरूष इस विधि को नहीं कर सकता। वास्तव में यदि कोई पुरूष अपने स्तनों पर अवधान को केंद्रित करने लगे तो उलझन में पड़ जायेगा।

करके देखो, पाँच मिनट में ही तुम्हारा पसीना बहने लगेगा। और तुम तनाव से भर जाओगे। क्योंकि पुरूष के स्तन ऋणात्मक है, वे तुम्हें नकारात्मकता ही देंगे। तुम्हें कुछ गड़बड़, कुछ अटपटापन महसूस होगा। जैसे शरीर में कोई गड़बड़ हो गई हो।

लेकिन स्त्री के स्तन धनात्मक है। यदि स्त्रियां स्तनों के पास अवधान केंद्रित करें तो बहुत आनंदित अनुभव करेंगी। एक माधुर्य उनके प्राणों में छा जाएगा और उनका शरीर गुरूत्वाकर्षण से मुक्त हो जाएगा। उन्हें इतना हलकापन महसूस होगा जैसे कि वे उड़ सकती है। और इस एकाग्रता से बहुत से परिवर्तन होंगे। तुम अधिक मातृत्व भाव अनुभव करोगी। चाहे तुम मां न बनो

लेकिन स्तनों पर अवधान की यह एकाग्रता बहुत विश्रांत होकर करनी चाहिए, तनाव से भरकर नहीं। यदि तुम तनाव से भर गई तो तुम्हारे और स्तनों के बीच एक विभाजन हो जाएगा। तो विश्रांत होकर उन्हीं में धुल जाओ ओर अनुभव करो कि तुम नहीं केवल स्तन ही बचे है।

यदि पुरुष को यही करना हो तो स्तनों के साथ नहीं काम केंद्र के साथ करना होगा। इसीलिए हर कुंडलिनी योग में पहले चक्र का महत्व है। पुरूष को अपना अवधान जननेंद्रिय की जड़ पर केंद्रित करना होता है। उसकी सृजनात्मकता, उसकी विधायकता वहां पर है। और इसे सदा स्मरण रखो: कभी भी किसी नकारात्मक चीज पर

अवधान को केंद्रित मत करो, क्योंकि सभी नकारात्मक चीजें उसके साथ चली आती है। ऐसे ही विधायक के साथ सभी कुछ विधायक चला आता है।

जब स्त्री और पुरूष के दो ध्रुव मिलते है तो पुरूष का ऊपर का भाग ऋणात्मक और नीचे का भाग धनात्मक होता है। जब कि स्त्री में नीचे का भाग ऋणात्मक और ऊपर का भाग धनात्मक होता है। ऋणात्मक और धनात्मक के ये दो ध्रुव मिलते है। तो एक वर्तुल निर्मित हो जाता है। वह वर्तुल बहुत आनंदपूर्ण है, परंतु यह कोई साधारण घटना नहीं है। साधारणतया काम-कृत्य में ये वर्तुल नही बनता। इसीलिए तो तुम काम के प्रति जितने आकर्षित होते हो, उतने ही उस से विकर्षित भी होते हो। उसके लिए तुम कितनी कामना करते हो, कितनी तुम्हें उसकी तलाश होती है। पर जब तुम्हें मिलता है तो तुम निराश हो जाते हो। कुछ भी होता नहीं।

यह वर्तुल केवल तभी संभव है, जब की दोनों शरीर शांति हो। और बिना किसी भय या प्रतिरोध के एक दूसरे के लिए खुले हो। तब मिलन होता है। वह पूर्ण मिलन विद्युत धाराओं का एक मिल कर वर्तुल बन जाता है। जो आनंद का उच्चतम शिखर है।

फिर एक बड़ी अद्भुत घटना घटती है। तंत्र में इसका उल्लेख है, लेकिन तुमने शायद इसके बारे में सुना भी न हो— यह घटना बड़ी अद्भुत है। जब दो प्रेमी वास्तव में मिलते है और एक वर्तुल बन जाते है तो एक बिजली की कौंध जैसी घटना घटती है। एक क्षण के लिए प्रेमी प्रेयसी बन जाता है और प्रेयसी प्रेमी बन जाती है—और अगले ही क्षण प्रेमी फिर प्रेमी बन जाता है। और प्रेयसी फिर प्रेयसी बन जाती है। एक क्षण के लिए पुरूष स्त्री हो जाता है और स्त्री पुरूष हो जाती है। क्योंकि ऊर्जा गति कर रही है। और एक वर्तुल बन गया है।

तो ऐसा होगा कि कुछ मिनट के लिए पुरूष सक्रिय होगा। और फिर वह विश्राम करेगा। और स्त्री सक्रिय हो जाएगी। इसका अर्थ है कि अब पुरूष ऊर्जा स्त्री के शरीर में चली गई है। जब स्त्री सक्रिय होगी तो पुरूष निष्कृय रहेगा। और ऐस चलता रहेगा। साधारण तय तुम स्त्री और पुरूष हो। गहन प्रेम में, गहन संभोग में कुछ क्षण के लिए पुरूष स्त्री हो जाएगा और स्त्री पुरूष हो जाएगी। और यह अनुभव होगा, निश्चित ही अनुभव होगा कि निष्क्रियता बदल रही है।

जीवन में एक लय है, हर चीज में एक लय है। जब तुम श्वास लेते हो श्वास भीतर जाती है, फिर क्षणों के लिए रूक जाती है। उसमें कोई गति नहीं होती। फिर चलती है, बाहर आती है। और फिर रूक जाती है। एक अंतराल पैदा होता है। गति, रुकाव, गति। जब तुम्हारा ह्रदय धड़कता है तो एक धडकन होती है। फिर अंतराल है, फिर धड़कता है, फिर अंतराल है। धड़कन का अर्थ है सक्रियता, अंतराल का अर्थ है निष्क्रियता। धड़कन का अर्थ है पुरूष अंतराल का अर्थ है स्त्री।

जीवन एक लय है। जब पुरूष और स्त्री मिलते है तो एक वर्तुल बन जाता है: दोनों के लिए ही अंतराल होंगे। तुम एक स्त्री हो तो अचानक एक अंतराल होगा और तुम स्त्री नहीं रहोगी पुरूष बन जाओगी। तुम स्त्री से पुरूष से स्त्री बनती रहोगी।

जब यह अंतराल तुम्हें महसूस होगा तो तुम्हें पता चलेगा कि तुम एक वर्तुल बन गए हो। शिव के प्रतीक शिवलिंग में इसी वर्तुल को दिखाया गया है। यह वर्तुल देवी की योनि और शिव के लिंग से दिखाया गया है। यह एक वर्तुल है। यह दो उच्च तल पर ऊर्जा के मिलन की शिखर घटना है।

यह विधि अच्छी रहेगी: 'अनुभव करो कि सृजन के शुद्ध गुण तुम्हारे स्तनों में प्रवेश करके सूक्ष्म धारण कर रहे हे।' विश्राम हो जाओ। स्तनों में प्रवेश करो और अपने स्तनों को ही अपना पूरा अस्तित्व हो जाने दो। पूरे शरीर को स्तनों के होने के लिए मात्र एक परिस्थिति बन जाने दो, तुम्हारा पूरा शरीर गौण हो जाए, स्तन महत्वपूर्ण हो जाएं। और तुम उनमें ही विश्राम करो, प्रवेश करो। तब तुम्हारी सृजनात्मकता जगेगी। स्त्रैण सृजनात्मकता तभी जगती है जब स्तन सक्रिय हो जाते है। स्तनों में डूब जाओ। और तुम्हें अनुभव होगा कि तुम्हारी सृजनात्मकता जाग रही है। सृजनात्मकता के जागने का अर्थ है? तुम्हें बहुत कुछ दिखने लगेगा। बुद्ध और महावीर ने अपने पूर्व जन्मों में कहा था कि जब वे पैदा होंगे तो उनकी माताओं को कुछ विशेष दृश्य, कुछ विशेष स्वप्न दिखाई पड़ेंगे। उन कुछ विशेष स्वप्नों के कारण ही बताया जा सकता था कि बुद्ध पैदा होने वाले है। सोलह स्वप्न एक दूसरे का अनुसरण करते हुए आएँगे।

इस पर मैं प्रयोग करता रहा हूं। यदि कोई स्त्री वास्तव में ही अपने स्तनों में विलीन हो जाती है तो एक विशेष क्रम में कुछ विशेष दृश्य दिखाई देंगे। कुछ चीजें उसे दिखाई पड़ने लगेंगी। अलग-अलग स्त्रियों के लिए अलग-अलग चीजें होंगी, लेकिन कुछ मैं तुम्हें बताता हूं।

एक तो कोई आकृति, मानव आकृति दिखाई पड़ेगी। और यदि स्त्री बच्चे को जन्म देने वाली है तो बच्चे की आकृति नजर आएगी। यदि स्तनों में स्त्री पूरी तरह विलीन हो गई है तो उसे यह भी दिखाई देगा कि किसी तरह से बच्चे को वह जन्म देने वाली है। उसकी आकृति नजर आएगी। यदि वह गर्भवती है तो आकृति और भी स्पष्ट होगी। यदि अभी वह मां नहीं बनने वली है और गर्भवती नहीं है, तो उसके आस-पास कोई अज्ञात सुगंध छानें लगेगी। स्तन ऐसी मधुर सुगंधों के स्त्रोत बन सकते है। जो कि इस संसार की नहीं है। जो रसायन से नहीं बनाई जा सकती। मधुर स्वर, लयबद्ध ध्वनियां। सुनाई देंगी। सृजन के सारे आयाम बहुत से नए रूपों में प्रकट हो सके है। महान कवियों और चित्रकारों को जो घटित हुआ है वह उस स्त्री को हो सकता है। यदि वह अपने स्तनों में डूब जाए। और यह इतना वास्तविक होगा कि उसके पूरे व्यक्तित्व को बदल देगा। वह स्त्री और ही हो जाएगी। और यदि ये अनुभव उसे होते रहते है तो धीरे-धीरे वे खो जाएंगे और एक क्षण आएगा जब शून्यता घटित होगी। वह शून्यता ध्यान की परम स्थिति है।

तो इसको स्मरण रखो; यदि तुम स्त्री हो तो अपने शिव नेत्र पर एकाग्रता मत करो। तुम्हारे लिए स्तनों पर, ठीक दोनों स्तनों के चुचुओं पर अवधान को केंद्रित करना बेहतर रहेगा। और दूसरी बात: एक ही स्तन पर अवधान केंद्रित मत करो। एक साथ दोनों स्तनों पर करो। यदि तुम एक स्तन पर अवधान को केंद्रित करोगी तो तत्क्षण तुम्हारा शरीर व्यथित हो जाएगा। एक ही स्तन पर एकाग्रता होने पर पक्षाघात भी हो सकता है।

तो दोनों पर एक साथ ही अवधान को केंद्रित करो, उसमे विलीन हो जाओ, और जा हो, उसे होने दो। बस साक्षी बनी रहो ओर किसी भी लय से मत जुड़ों,क्योंकि हर लय बड़ी सुंदर, स्वर्ग तुल्य मालूम होगी। उनसे मत जुड़ों। उनको देखती रहो और साक्षी बनी रहो। एक क्षण आएगा जब वह समाप्त होने लगेंगी। और एक शून्यता घटित होती हे। कुछ नहीं बचता। बस खुला आकाश रह जाता है। और स्तन खो जाते है। तब तुम बोधिवृक्ष के नीचे हो।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 96

यह विधि एकांत से संबंधित है:

‘किसी ऐसे स्थान पर वास करों जो अंतहीन रूप से विस्तीर्ण हो वृक्षों पहाड़ियों प्राणियों से रहित हो। तब मन के भारों का अंत हो जाता है।“

इससे पहले कि हम इस विधि में प्रवेश करे, एकांत के विषय में कुछ बातें समझ लेने जैसी है। एक: अकेले होना मौलिक है। आधारभूत है। तुम्हारे अस्तित्व का यही स्वभाव है। मां के गर्भ में तुम अकेले थे, पूरी तरह अकेले थे। और मनोवैज्ञानिक कहते है कि निर्वाण की, बुद्धत्व की, मुक्ति की यह स्वर्ग की आकांशा मां के गर्भ की गहन स्मृति है। पूर्ण एकांत को और उसके आनंद को तुमने जाना है। तुम अकेले थे, तुम परमात्मा थे वहां और कोई न था। जीवन सुंदर था। हिंदू उसे सतयुग कहते है। तुम्हें कोई परेशान करने वाला नहीं था। न ही कोई बाधा डाल रहा था। अकेले तुम ही मालिक थे। कोई संघर्ष नहीं था, पूर्ण शांति थे, मौन था, कोई भाषा नहीं थी। तुम अपने अंतरात्मा में थे। तुम्हें पता नहीं था। लेकिन वह स्मृति तुम्हारे गहन में, तुम्हारे अचेतन में अंकित है।

मनोवैज्ञानिक कहते है, इसलिए सब सोचते है कि बचपन बहुत सुंदर था। हर देश हर जाति यह सोचती है कि अतीत में कभी स्वर्ग था। जीवन सुंदर था। हिंदू उसे सतयुग कहते है। अतीत में, बहुत पहले इतिहास के भी शुरू होने से पूर्व सब कुछ सुंदर और आनंदपूर्ण था। न कोई झगडा था, न कोई फसाद,न कोई हिंसा। केवल प्रेम ही प्रेम था। वह स्वर्ण युग था। ईसाई कहते है, ‘आदम और ईव अदन के बग़ीचे में बड़ी निर्दोषता और आनंद से रहते थे। फिर पतन हुआ।’ तो स्वर्ण युग उस पतन से पहले था। हर देश हर जाति, हर धर्म यह सोचता है कि स्वर्ण युग कहीं अतीत में था। और बड़ी अजीब बात यह है कि तुम अतीत में कितने ही पीछे चले जाओ, हमेशा ऐसा ही सोचा जाता रहा है।

मैसोपोटामिया में एक शिला मिली है जो छ: हजार वर्ष पुरानी है। उस पर एक लेख खुदा हुआ है। उसे यदि तुम पढ़ो तो तुम्हें तो तुम्हें लगेगा कि तुम आज के किसी अख़बार का संपादकीय पढ़ रहे हो। वह शिलालेख कहता है कि यह युग पाप युग है। सब कुछ गलत हो गया है। बेटे बाप की नहीं मानते, पत्नी पति का विश्वास नहीं करती। अंधकार छा गया है। अतीत के वे स्वर्णिम दिन कहां गए? यह शिलालेख छ: हजार साल पुराना है।

लाओत्से कहता है कि अतीत में, पूर्वजों के जमाने में सब ठीक था, तब ताओ का साम्राज्य था, तब कोई गलती नही थी। और क्योंकि कोई कम नहीं थी इसलिए कोई सिखाने वाला न था; कोई कमी न थी जिसे सुधारना पड़े। इसलिए कोई पंडित नहीं था। कोई शिक्षक नहीं था। कोई धर्म गुरु नहीं था। क्योंकि ताओ का साम्राज्य था और सभी इतने धार्मिक थे कि किसी धर्म की जरूरत न थी। उस समय कोई संत न था, कोई पापी नहीं थे। हर कोई इतना संत था कि किसी को खबर ही नहीं थी कि कौन संत है और कौन पापी।

मनोवैज्ञानिक कहते है कि यह अतीत कभी नहीं था। यह अतीत तो हर व्यक्ति के गहन में छिपी गर्भ की स्मृति है। वह अतीत असल में गर्भ में था। ताओ गर्भ में था, वहां सब कुछ ठीक था, सुंदर था। संसार से पूर्णतया अंजान, बच्चा आनंद में तैर रहा था।

गर्भ में बच्चा ऐसे ही था जैसे शेषनाग पर लेटे विष्णु। हिन्दू मानते है कि विष्णु अपनी नाग-शय्या पर लेटे हुए आनंद के सागर में तैर रहे है। गर्भ में बच्चा ऐसे ही होता है। बच्चा भी तैरता है। मां का गर्भ भी सागर के जैसा है। और तुम हैरान होओगे। कि मां के गर्भ में बच्चा जिस जल में तैरता है उसके सभी लवण वही होते है। जो सागर के जल में होते है—वही लवण, वही अनुपात। वह सागर का ही सुखद जल होता है।

और गर्भ में सदा बच्चे के लिए उचित तापमान रहता है। मां चाहे सर्दी से कंप रही हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, बच्चे के लिए गर्भ में सदा एक सा तापमान रहता है। वह ऊषण रहता है। आनंद से तैरता रहता है। कोई चिंता, कोई दुःख उसे नहीं होता। मां उसके लिए जैसे होती ही नहीं। वह अकेला होता है। उसे मां का भी पता नहीं होता। मां उसके लिए जैसे होती ही नहीं।

यह संस्कार, यह छाप तुम्हारे साथ रहती है। यही मूल सत्य है। समाज में प्रवेश करने से पहले तुम ऐसे ही थे। और मरकर जब तुम समाज से बाहर जाओगे तब भी यही सत्य होगा। तुम फिर अकेले हो जाओगे। और एकाकीपन के इन दो छोरों के बीच तुम्हारा जीवन तमाम घटनाओं से भरा होता है। लेकिन वे सब घटनाएं सांयोगिक है। गहरे में तुम अकेले ही रहते हो। क्योंकि वहीं मूल सत्य है। उस एकांत के चारों तरफ बहुत कुछ घटता है। तुम्हारा विवाह होता है। तुम दो हो जाते हो,फिर तुम्हारे बच्चे हो जाते है। और तुम कई हो जाते हो। सब कुछ होता रहता है। लेकिन केवल परिधि पर, गहन अंतरतम अकेला ही रहता है। वह तुम्हारी वास्तविकता है। तुम उसे अपनी आत्मा कह सकते हो। अपना सार कह सकते हो।

गहन एकांत में इस सार को दोबारा प्राप्त कर लेना है। तो जब बुद्ध कहते है कि उन्हें निर्वाण उपलब्ध हो गया है तो असल में उन्हें यह एकांत,यह आधारभूत सत्य उपलब्ध हो गया है। महावीर कहते है कि उन्हें कैवल्य उपलब्ध हो गया है। कैवल्य का अर्थ ही है एकांत, एकाकीपन। घटनाओं के झंझावात के नीचे ही यह एकांत मौजूद है। यह एकांत तुम में ऐसे ही है जैसे माला में धागा। मनके दिखाई पड़ते है, धागा नहीं दिखाई पड़ता है। लेकिन मनके धागे से ही सम्हाले हुए है। मनके तो अनेक है लेकिन धागा एक ही है। वास्तव में माला इस सत्य का प्रतीक है। धागा है सत्य और मनके है घटनाएं जो उसमें पिरोई गई है। और जब तक तुम भीतर प्रवेश करके इस मूलभूत सूत्र तक नहीं पहुंच जाओ, तुम संताप में रहोगे, विषाद में ही रहोगे।

तुम्हारा एक इतिहास है, संयोगों का इतिहास, और तुम्हारा एक स्वभाव है जो गैर-ऐतिहासिक है। तुम किसी तारीख को, किसी स्थान पर, किसी समाज में,किसी युग में पैदा हुए। तुम्हें एक ढंग से पढ़ाया गया, तुमने कोई व्यवसाय किया, किसी स्त्री के प्रेम में पड़े, बच्चे हुए—ये सब नाटक के मनके है, इतिहास है। लेकिन गहरे में तुम हमेशा अकेले ही हो। और यदि तुम इन घटनाओं में स्वयं को भूल गए तो तुम यहां होने के अपने लक्ष्य से ही चूक गए। तब

तुमने स्वयं को इस नाटक में खो दिया और उस अभिनेता को भूल गए जो इस नाटक का हिस्सा नहीं था। केवल अभिनय कर रहा था—यह सब अभिनय है।

इसी कारण हमने इतिहास नहीं लिखा। असल में यह निश्चित कर पाना बड़ा कठिन है। कि कृष्ण कब पैदा हुए और कब राम पैदा हुए, कब मरे; या वे कभी पैदा हुए भी कि नहीं, कि केवल काल्पनिक कथाएं है। हमने इतिहास नहीं लिखा, और कारण यह है कि हम धागे में उत्सुक है, मनकों में नहीं, वास्तव में, धर्म के जगत में जीसस पहले ऐतिहासिक व्यक्ति है। लेकिन वह अगर भारत में पैदा हुए होते तो ऐतिहासिक न होते। भारत में हम सदा धागे की खोज करते है। मनकों को हमने कोई खास महत्व नहीं दिया। लेकिन पश्चिम शाश्वत की अपेक्षा घटनाओं में, तथ्यों में, क्षण भंगुर मे अधिक उत्सुक है।

इतिहास तो नाटक है। भारत में हम कहते है कि हम राम और कृष्ण हर युग में होते है। बहुत बार वे हो चुके है और आगे भी बहुत बार वे होंगे। इसलिए उनके इतिहास को ढोने की कोई जरूरत नहीं है। वे कब पैदा हुए इसका कोई महत्व नहीं है। यह अप्रासंगिक है। उनका अंतरतम केंद्र क्या है। वह धागा क्या है। यह बात अर्थपूर्ण है। तो हमें इस बात में रस नहीं है। कि वे ऐतिहासिक थे या नहीं। कि उनके साथ क्या-क्या घटनाएं घटी। हमारा रस तो उनके प्राणों के केंद्र में है कि वहां क्या घटा।

जब तुम एकांत में जाते हो तो तुम धागे की और जा रहे हो। जब तुम एकांत में जाते हो तो तुम प्रकृति में जा रहे हो। जब तुम वास्तव में ही अकेले हो, दूसरों के बारे में सोच भी नहीं रहे,तो पहली बार तुम्हें अपने चारों और प्रकृति के जगत का बोध होता है, तुम उसके साथ जुड़ जाते हो। अभी तो तुम समाज से जुड़े हुए हो। यदि तुम समाज के बंधन से छूट जाओ तो प्रकृति से जुड़ जाओगे। जब वर्षा होती है—वर्षा तो सदा से हो रही है, लेकिन तुम उसकी भाषा नहीं समझ सकते हो। तुम उसे नहीं सुन सकते, तुम्हारे लिए उसका कोई अर्थ नहीं है। अधिक से अधिक तुम केवल उसके जल के उपयोग के बारे में सोच पाते हो। तो उपयोग तो हो जाता है, लेकिन कोई संवाद नहीं हो पाता। तुम वर्षा की भाषा को नहीं समझ पाते, तुम्हारे लिए वर्षा का कोई व्यक्तित्व नहीं है।

लेकिन कुछ समय के लिए यदि तुम समाज को छोड़ दो और अकेले हो जाओ तो तुम्हें नई अनुभूति होने लगेगी। वर्षा आएगी तो तुम से गुनगुनाएगी, तब तुम उसके भावों को समझने लगोगे। किसी दिन वर्षा बहुत गुस्से में होगी। किसी दिन बहुत सुखद होगी। किसी दिन प्रेम बरसा रही होगी। किसी दिन पूरा आकाश उदास होगा। किसी दिन नाच रहा होगा। किसी दिन सूर्य ऐसे उगता है जैसे बिना इच्छा के, जबरदस्ती उग रहा हो। और किसी दिन सूर्य ऐसे उगता है जैसे खेल रहा हो। तुम अपने चारों और सभी भाव दशाएं अनुभव करोगे। प्रकृति की अपनी भाषा है, लेकि नवह मौन है और जब तक तुम मौन नहीं हो जाते, तुम उसे नहीं समझ सकते।

लयबद्धता की पहली सतह समाज से जूड़ी है। दूसरी प्रकृति के साथ, और तीसरी गहनत्म सतह ताओ या धर्म के साथ। वह शुद्ध अस्तित्व है। फिर वृक्ष ओर वर्षा और मेध भी पीछे छूट जाते है। तब केवल अस्तित्व बचता है। अस्तित्व में भाव कि कोई तरंगें नहीं है। अस्तित्व सदा एक सा रहता है—सदा उत्सव में लीन,उर्जा से प्रस्फुटित। लेकिन पहले समाज से प्रकृति की और मुड़ना होगा। फिर प्रकृति से अस्तित्व की और। जब तुम अस्तित्व से जुड़ जाते हो तो बिलकुल अकेले होते हो। लेकिन वह एकांत गर्भ के बच्चे के एकांत से भिन्न होता है। बच्चा अकेला होता है, लेकिन वास्तव में वह अकेला नहीं होता, उसे तो किसी और की खबर ही नहीं होती। वह अंधकार से ढंका होता है। इसलिए अकेला अनुभव करता है। सारा संसार उसके चारों और होता है। लेकिन उसे खबर नहीं होती।

उसका एकांत तो अज्ञान के कारण है। जब तुम चैतन्य होकर मौन होते हो, अस्तित्व के साथ एक होते हो, तो तुम्हारा एकांत अंधकार से नहीं प्रकाश से घिरा होता है।

गर्भ में बच्चे के लिए संसार नहीं होता, क्योंकि उसे उसकी खबर नहीं होती। और तुम्हारे लिए संसार नहीं होगा, क्योंकि तुम संसार के साथ एक हो जाओगे। जब तुम गहनतम अस्तित्व में प्रवेश करते हो तो अकेले हो जाते हो, क्योंकि अहंकार समाप्त हो जाता है। अहंकार समाज द्वारा दिया गया है। जब तुम प्रकृति से जुड़ते हो तो भी अहंकार थोड़ा-बहुत रह सकता है। लेकिन उतना नहीं जितना समाज में होता है। जब तुम अकेले होते हो तो अहंकार मिटने लगता है। क्योंकि वह सदा संबंधों से ही पैदा होता है।

इसे थोड़ा विचार करो, हर व्यक्ति के साथ तुम्हारा अहंकार बदल जाता है। जब तुम अपने नौकर से बात कर रहे हो तो भीतर अपने अहंकार को देखो कि कैसे काम कर रहा है। यदि अपने मित्र से बात कर रहे हो तो भीतर देखो कि अहंकार कैसा है, जब अपनी प्रेमिका से बात कर रहे हो तो देखो कि अहंकार है भी या नहीं। और जब तुम एक मासूम बच्चे से बात कर रहे हो तो भीतर झांको, तब अहंकार है भी या नहीं। क्योंकि छोटे बच्चे के सामने अहंकार दिखाना मूढ़ता होगी। तुम्हें पता है कि यह बात मूढ़ता की हो जाएगी। छोटे बच्चे के साथ खेलते हुए तुम बच्चे ही बन जाते हो। बच्चा अहंकार की भाषा नहीं जानता। और बच्चे के सामने अहंकार दिखाकर तुम बिलकुल मूढ़ लगोगे।

तो जब तुम बच्चों के साथ खेलते हो, वे तुम्हें तुम्हारे बचपन में लौटा लाते है। जब तुम एक कुत्ते से बात करते हो, खेलते हो, तो समाज ने जो अहंकार तुम्हें दिया है वह विदा हो जाता है। क्योंकि कुत्ते के साथ अहंकार का प्रश्न ही नहीं उठता।

लेकिन अगर तुम बड़े सुंदर और कीमती कुत्ते के साथ टहल रहे हो और कोई तुम्हारे पास से सड़क पार कर जाता है तो कुत्ता भी तुम्हारा अहंकार जगा देता है। लेकिन तुम्हारा अहंकार कुत्ते ने नहीं उस आदमी ने जगाया है। तुम तनकर चलने लगते हो, तुम्हें गर्व महसूस होता है। तुम्हारे पास इतना सुंदर कुत्ता है। और वह आदमी ईर्ष्या करता दिखाई पड़ता है। तो अहंकार है। परंतु जब तुम बन में चले जाते हो तो अहंकार मिटने लगता है। इसीलिए तो सभी धर्मों का जोर है कि चाहे थोड़े समय के लिए ही सही, प्रकृति के जगत में चले जाओ।

यह सूत्र सरल है: 'किसी ऐसे स्थान पर वास करो जो अंतहीन रूप से विस्तीर्ण हो।'

किसी पहाड़ी पर चले जाओ जहां से तुम अंतहीन दूरी तक देख सको। यदि तुम अंतहीन रूप से देख सको, तुम्हारी दृष्टि कहीं रूक नहीं, तो अहंकार मिट जाता है। अहंकार के लिए सीमा चाहिए। सीमाएं जितनी सुनिश्चित हो। अहंकार के लिए उतना ही सरल हो जाता है।

किसी ऐसे स्थान पर वास करो जो अंतहीन रूप से विस्तीर्ण हो, वृक्षों, पहाड़ियों, प्राणियों से रहित हो। तब मन के भारों का अंत हो जाता है।

मन बहुत सूक्ष्म है। तुम एक पहाड़ी पर हो जहां और कोई नहीं है। लेकिन नीचे कहीं, तुम्हें कोई झोपड़ी दिखाई दे जाए तो तुम उस झोपड़ी से बातें करने लगोंगे, उससे संबंध जोड़ लोगे—समाज आ गया। तुम नहीं जानते कि वहां कौन रहता है। लेकिन कोई रहता है, और वही सीमा बन जाती है। तुम सोचने लगते हो, वहां कोन रहता है। रोज तुम्हारी नजरें उसे खोजने लगती है। झोंपड़ी मनुष्यों की प्रतीक बन जाएगी।

तो सूत्र कहता है: 'प्राणियों से रहित हो।'

वृक्ष भी न हों, क्योंकि जो लोगे अकेले होते हो वे वृक्षों से बोलना शुरू कर देते है। उनसे मित्रता कर लेते है, बात-चीत करने लगते है। तुम उस व्यक्ति की कठिनाई को नहीं समझ सकते जो अकेला होने के लिए चला गया है वह चाहता है कि कोई उसके पास हो। तो वह वृक्षों को ही नमस्कार करना शुरू कर देगा। और वृक्ष भी प्राणी है, यदि तुम ईमानदार हो तो वे भी जवाब देना शुरू कर देंगे। वहां प्रति संवेदन होगा। तो तुम समाज खड़ा कर सकते हो। तो इस सूत्र का अर्थ यह हुआ कि किसी स्थान पर रहो और सचेत रहो कि कोई दोबारा समाज न खड़ा कर लो। तुम एक वृक्ष से भी प्रेम करना शुरू कर सकते हो। तुम्हें लग सकता है कि वृक्ष प्यासा है तो कुछ पानी ले आऊं, तुमने संबंध बनाना शुरू कर दिया। और संबंध बनाते ही तुम अकेले नहीं रह जाते। इसीलिए इस बात पर जोर है कि ऐसे स्थान पर चले जाओ लेकिन यह बात याद रखो कि तुम कोई संबंध नहीं बनाओगे। संबंध और संबंधों के संसार को पीछे छोड़ जाओ और अकेले ही वहां जाओ।

शुरू-शुरू में तो यह बहुत कठिन होगा। क्योंकि तुम्हारा मन समाज द्वारा निर्मित है। तुम समाज को तो छोड़ सकते हो लेकिन मन को कहां छोड़ोगे। मन छाया की तरह तुम्हारा पीछा करेगा। मन तुम्हें डराएगा, मन तुम्हें सताएगा। तुम्हारे सपनों में ऐसे चेहरे आएँगे, जो तुम्हें खींचने का प्रयास करेंगे। तुम ध्यान करने का प्रयास करोगे। लेकिन विचार बंद नहीं होंगे। तुम अपने घर की, अपनी पत्नी की अपने बच्चों की सोचने लगोंगे।

यह मानवीय है। और ऐसा केवल तुम्हें ही नहीं होता, ऐसा बुद्ध और महावीर को भी हुआ। ऐसा हर किसी को हुआ है। एकांत के छः लंबे वर्षों में बुद्ध भी यशोधरा के बारे में सोचेंगे ही। शुरू-शुरू में जब मन उनका पीछा कर रहा था, तब वह यदि किसी वृक्ष के नीचे ध्यान करने बैठते होंगे तो यशोधरा पीछा करती होगी। उस स्त्री से वह प्रेम करते थे, और उन्हें जरूर ग्लानि हुई होगी कि बिना कुछ बताए उसे वे पीछे छोड़ आए थे।

इसका कही उल्लेख नहीं है, कि कभी यशोधरा के बारे में उन्होने सोचा, लेकिन मैं कहता हूं, कि उसके बारे में उन्होंने निश्चित ही सोचा होगा। यह तो बिलकुल मानवीय, बिलकुल स्वाभाविक बात है। यह सोचना बहुत अमानवीय हो गया कि यशोधरा की याद उन्हें फिर कभी नहीं आई, और यह बुद्ध के लिए उचित भी न होगा। धीरे-धीरे, बड़े संघर्ष के बाद ही वह मन को समाप्त कर पाए होंगे।

लेकिन मन चलता ही रहता है, क्योंकि मन और कुछ नहीं समाज ही है। आंतरिक समाज है। समाज जो तुम में प्रवेश कर गया है, तुम्हारा मन है। तुम बाह्य समाज, बाह्य वास्तविकता से भाग सकते हो, लेकिन आंतरिक समाज तुम्हारा पीछा करेगा।

तो कई बार बुद्ध यशोधरा से बात किए होंगे, अपने पिता से बात किए होंगे, अपने बच्चे से बात किए होंगे पीछे छोड़ आये थे। उस बच्चे का चेहरा उनका पीछा करता होगा जब वे घर छोड़कर आए थे। तो वह उनके मन में ही था। जिस रात उन्होंने घर छोड़ा, वे उस बच्चे को देखने के लिए ही यशोधरा के कमरे में गए थे। बच्चा केवल एक ही दिन का था। यशोधरा सो रही थी और बच्चा उसकी छाती से लगा हुआ था, उन्होंने बच्चे की और देखा, वह बच्चे को गोद में लेना चाहते थे, क्योंकि यह अंतिम अवसर था। अभी तक उस बच्चे को उन्होंने छुआ भी नहीं था। और हो सकता था, कि वह कभी वापस न लौटे और कभी उससे मिलना न हो। वह संसार छोड़ रहे थे।

तो वह बच्चे को छूना और चूमना चाहते थे। लेकिन फिर डर गए, क्यों कि यदि उसे गोद में लेते तो यशोधरा जाग सकती थी। और तब उनके लिए जाना बहुत कठिन हो जाता। क्योंकि पता नहीं वह रोना-चिल्लाना शुरू कर दे।

उनके पास एक मानवीय ह्रदय था। यह बहुत सुंदर है कि उन्होंने यह बात सोची कि यदि वह रोने लगी तो उनके लिए जाना कठिन हो जाएगा। तब जो भी उनके मन में था कि संसार व्यर्थ है। सब समाप्त हो जाता। वह यशोधरा को रोते हुए न देख पाते, वह उस स्त्री को प्रेम करते थे। तो यह बिना कोई आवाज किए कमरे से बाहर आ गए। अब यह व्यक्ति सरलता से यशोधरा और बच्चे को नहीं छोड़ सका था, कोई भी न छोड़ पाता। तो जब वह भिक्षा मांगते थे तो उनके मन में अपने महल और साम्राज्य का विचार उठता होगा। वह अपनी मर्जी से भिखारी हुए थे। अतीत जोर मारता होगा, चोट करता होगा, वापस आ जाओ। कई बार वह सोचते होंगे। मैंने भूल की है। ऐसा होना निश्चित ही है। कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है। और कई बार मैं सोचता हू कि एक डायरी बनाई जाए कि उन छः वर्षों में बुद्ध के मन को क्या हुआ। उनके मन में क्या चलता रहा।

तुम कहीं भी जाओ, मन छाया की तरह पीछा करेगा। तो यह सरल नहीं होगा, यह किसी के लिए सरल नहीं रहा। अपने को सचेत रखने के लिए बड़ा संघर्ष करना पड़ेगा। बार-बार संघर्ष करना पड़ेगा। ताकि मन के शिकार न हो जाओ। और मन अंत तक पीछा करता है, जब तक तुम हार ही न जाओ। तुम्हारे लिए कोई उपाय नहीं बचा। कुछ भी कर न सको। मन तुम्हारा पीछा करता ही रहेगा। मन रोज प्रयास करेगा, कल्पनाएं और स्वप्न खड़े करेगा। सब तरह के लोभ और भ्रम पैदा करेगा।

सब संतों का कथाओं में उल्लेख है कि शैतान उन्हें भर माने के लिए आया। कोई और नहीं आता। केवल तुम्हारा मन ही आता है। तुम्हारा मन ही शैतान है। और कोई नहीं। वह रोज प्रयास करेगा। वह तुमसे कहेगा, 'मैं तुम्हें सारा संसार दे दूँगा। तुम वापस आ जाओ।' तुम्हें निराश करेगा। 'तुम मूर्ख हो, सारा संसार मजा ले रहा है। और तुम यहां इस पहाड़ी पर आ गए। हो पागल हो तुम। यह धर्म-वर्म सब बेकार की बातें है। वापस लौट आओ। देखो, सारा संसार पागल नहीं है। जो मजा कर रहा है।' और तुम्हारा मन उन लोगों के सुंदर-सुंदर चित्र बनाएगा जा मजा, कर रहे है। और सारे संसार पहलेसे ही अधिक आकर्षक लगने लगेगा। जो भी तुम पीछे छोड़ आए हो तुम्हें खींचेगा।

यही मूल संघर्ष है। यह संघर्ष इसलिए है कि तुम्हारा मन आदतों का और पुनरावृति का यंत्र है। पहाड़ी पर तुम्हारे मन को नर्क जैसा लगेगा। कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा। सब गलत ही लगेगा। मन तुम्हारे चारों और नकारात्मकता पैदा कर देगा। तुम यहां कर क्या रहे हो। पागल हो गए हो? जिस संसार को तुम छोड़ आए हो वह तुम्हारे लिए और सुंदर हो उठेगा और जिस स्थान पर तुम हो एक दम बेकार लगने लगेगा।

लेकिन यदि तुम दृढ़ रहो और सचेत रहो कि मन यह सब कर रहा है। मन यह सब करेगा। और यदि तुम मन के साथ तादात्म्य न बनाओ तो एक क्षण आता है कि मन तुम्हें छोड़ देगा। और उसके साथ ही सारे भर खो जाते है। जब मन तुम्हें छोड़ देता है तुम बोझ से मुक्त हो जाते हो। क्योंकि मन ही एकमात्र बोझ है। तब कोई चिंता कोई विचार कोई संताप नहीं रहता, तुम आस्तित्व के गर्भ में प्रवेश कर जाते हो। निशिंचत होकर तुम बहते हो। तुम्हारे भीतर एक गहन मौन प्रस्फुटित होता हे।

यह सूत्र कहता है: 'तब मन के भारों का अंत हो जाता है।'

उस निर्जन में, उस एकांत में एक बात और स्मरण रखने जैसी है। भीड़ तुम पर एक गहरा दबाव डालती है। चाहे तुम्हें पता हो या न पता हो।

अब पशुओं पर कार्य करते हुए वैज्ञानिकों ने एक बड़े आधारभूत नियम की खोज की है। वे कहते है कि हर पशु का अपना एक निश्चित क्षेत्र होता है। यदि तुम उस क्षेत्र में प्रवेश करो तो वह पशु तनाव से भर जाएगा। और तुम पर

आक्रमण करेगा। हर पशु का अपना-अपना क्षेत्र होता है। वह किसी और को उसमें प्रवेश नहीं करने नहीं देता। क्योंकि जब कोई दूसरा उसके क्षेत्र में प्रवेश करता है, वह बेचैनी महसूस करने लगता है।

वृक्षों पर तुम कई पक्षियों को गीत गाते हुए सुनते हो। तुम नहीं जानते वे क्या कर रहे है। वर्षों के अध्यन के बाद वैज्ञानिक अब कहते है कि जब वृक्ष पर बैठकर कोई पक्षी गीत गाता है, तो वह कई चीजें कर रहा है। एक तो वह अपनी मादा को बुला रहा है। दूसरे, वह बाकी सब नर प्रतियोगियों को सावधान कर रहा है कि यह मेरा क्षेत्र है। इसमें प्रवेश मत करना। और यदि फिर भी कोई उस क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है तो लड़ाई शुरू हो जाती है। और मादा आराम से बैठकर देखती रहती है कि कौन जीत रहा है। क्योंकि जो भ उस क्षेत्र को जीत लेगा, वहीं उसे पा लेगा। वह प्रतीक्षा करती है। जो जीत जाएगा वह वहां ठहरेगा और जा हार जायेगा वह चला जायेगा।

हर पशु किसी न किसी तरह से अपना क्षेत्र बना लेता है—आवाज से, गाने से, शरीर की गंध से, उसे क्षेत्र में कोई और प्रतियोगी प्रवेश नहीं कर सकता।

तुम ने कुत्तों को हर जगह पेशाब करते देखा होगा। वैज्ञानिक कहते है कि कुत्ता पेशाब करके अपना क्षेत्र बना रहा है। कुत्ता एक खंभे पर पेशाब करेगा। दूसरे खंभे पर पेशाब करेगा। वह किसी एक जगह पर पेशाब नहीं करता। क्यो? जब एक जगह पर कर सकते हो तो बेकार में क्यों घूमना? लेकिन वह अपना क्षेत्र बना रहा है। उसके पेशाब में एक गंध होती है जिससे उसका क्षेत्र निर्मित हो जाता है। अब उसमे कोई प्रवेश न करे। यह खतरनाक है। अपने क्षेत्र में वह अकेला मालिक है।

इस संबंध में कई अध्ययन चल रहे है। उन्होंने कई पशुओं को एक ही पिंजरे में रखकर देखा, जहां सब जरूरतें पूरी की गई—और जंगलों में वे जैसे अपनी जरूरतें पूरी कर सकत थे, उससे बेहतर ढंग से पूरी की गई—लेकिन वे पागल हो जाते है। क्योंकि उनके पास अपना क्षेत्र नहीं होता। जब हमेशा ही कोई न कोई पास होता है तो वे तनाव से भर जाते हे। भयभीत लड़ने को तैयार हो जाते है। हर समय लड़ने की तत्परता उन्हें इतना तनाव से भर देती है कि या तो उनकी ह्रदय गति रूक जाती है या वे पागल हो जाते है। कई बार तो पशु आत्महत्या भी कर लेते है। क्योंकि उनके मन पर दबाब बहुत बढ़ जाता है। और कई तरह की विकृतियां उनमें पैदा हो जाती है। जो जंगल में रहने पर नहीं होती। जंगल मे बंदर बिलकुल भिन्न होते है। जब वे चिड़ियाघर के पिंजरे में बंद होते हो तो बड़ा असामान्य व्यवहार करने लगते है।

पहले ऐसा सोचा जाता था कि बंधन के कारण यह समस्या पैदा हो रही है। पर अब पता लगा है कि इसका कारण बंधन नहीं है। यदि तुम पिंजरे में उन्हें उतनी जगह दे दो जितनी उन्हें चाहिए तो वे प्रसन्न रहेंगे। फिर कोई समस्या न होगी। लेकिन खुली जगह उनकी आंतरिक जरूरत है। जब कोई उसमें प्रवेश करता है तो उसके मन पर दबाव पड़ने लगता है। उनका मन तनाव से भर जाता है। न वे ठीक से सो सेते है, न खा सकते है, न प्रेम कर सकते है।

इन सब अध्ययनों के कारण अब वैज्ञानिक कहते है कि जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि के कारण मनुष्य विक्षिप्त होता जा रहा है। दबाव बहुत अधिक हो गया है। तुम कहीं भी अकेले नहीं हो पा रहे। ट्रेन में, बस में, दफ्तर में, हर जगह भीड़ ही भीड़ है। मनुष्य को भी खुली जगह की जरूरत है, अकेले होने की जरूरत है। लेकिन कहीं कोई जगह ही नहीं है। तुम कभी भी अकेले नहीं हो। जब तुम घर आते हो तो वहां पत्नी है, बच्चे है, सगे-संबंधी है। और अभी भी वे समझते है की अतिथि भगवान का रूप है। पहले ही इतने दबाव के कारण तुम विक्षिप्त हो रहे हो। तुम पत्नी

को यह नहीं कह सकते, 'मुझे अकेला छोड़ दो।' वह गुस्से से कहेगी,क्या मतलब है? वह सारे दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।

मन को विश्रांत होने के लिए अवकाश चाहिए।

यह सूत्र बहुत ही सुंदर है, और वैज्ञानिक भी। 'तब मन के भारों का अंत हो जाता है।'

जब तुम अकेले किसी निर्जन पहाड़ी पर चले जाते हो, तो तुम्हारे चारों और एक खुलापन अनंत विस्तार होता है। भीड़ का, दूसरों का भार तुम नहीं होता। तुम्हें अधिक गहरी नींद आएगी। सुबह तुम्हारे जागने में और ही बात होगी। तुम मुक्त अनुभव करोगे। भीतर से कोई दबाव नहीं होगा। तुम्हें लगेगा जैसे तुम किसी कारागृह से बाहर आ गए, किन्हीं ज़ंजीरों से मुक्त हो गए।

यह अच्छा है। लेकिन हम भीड़ के इतने आदी हो गए है कि कुछ ही दिन, तीन या चार दिन तुम्हें अच्छा लगेगा। फिर भीड़ में वापस जाने का मन होने लगेगा। हर छुटियों में तुम कहीं जाते हो। और तीन दिन बाद लौटने का मन होने लगता है। आदत के कारण तुम अपने को ही बेकार लगने लगते हो। अकेले तुम्हें बेकार लगाता हे। तुम कुछ कर नहीं सकते। और यदि तुम कुछ करते भी हो तो किसी को पता नहीं चलेगा कोई उसकी सराहना नहीं करेगा। अकेले तुम कुछ भी नहीं कर सकते, क्योंकि जीवन भर तुम दूसरों के लिए ही कुछ करते रहे हो। तुम बेकार अनुभव करते हो।

याद रखो, यदि तुम कभी भी इस एकाकी पागलपन का प्रयास करो तो उपयोगिता का विचार छोड़ दो। अनुपयोगी हो जाओ। तभी तुम अकेले हो सकते हो। क्योंकि असल में उपयोगिता तो समाज द्वारा तुम्हारे मन पर थोपी गई है। समाज कहता है: 'उपयोगी बनो।' अनुपयोगी नहीं। समाज चाहता है कि तुम एक निपुण आर्थिक इकाई,एक कुशल और उपयोगी वस्तु बनो। समाज नहीं चाहता कि तुम बस एक फूल बनो। नहीं, तुम अगर एक फूल भी बनते हो तो तुम्हें बिकने योग्य होना चाहिए। संसार तुम्हें बाजार में रखना चाहता है। ताकि कुछ उपयोग हो सके। केवल बाजार में ही तुम उपयोगी हो सकते हो। अन्यथा नहीं, समाज सिखाता है कि उपयोगिता ही जीवन का लक्ष्य है। जीवन का उद्देश्य है। यह व्यर्थ की बात हे।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम अनुपयोगी हो जाओ। मैं यह कह रहा हूं कि उपयोगी होना लक्ष्य नहीं है। तुम्हें समाज में रहना है, उसके लिए उपयोगी रहना है,लेकिन साथ ही कभी-कभी अनुपयोगी होने के लिए भी तैयार रहना है यह क्षमता बचाकर रखनी चाहिए, वरना तुम व्यक्ति नहीं वस्तु बन जाते हो। जब तुम एकांत में निर्जन में जाओगे तो यह समस्या आएगी, तुम बेकार अनुभव करोगे।

मैं कई लोगों के साथ प्रयोग करता रहा हूं। कभी-कभी मैं उन्हें सुझाव देता हूं कि वे तीन सप्ताह के लिए या तीन महीने के लिए एकांत और मौन में चले जाए। और मैं उन्हें कहता हूं कि सात दिन के बाद वे वापस लौटना चाहेंगे और उनका मन वहां न रहने के सभी कारण खोजेगा ताकि वे वापस आ सके। मैं उन्हें कहता हूं कि वे उन तर्कों को न सुनें और वह दृढ़ संकल्प कर लें कि जितने दिनो का निर्णय लिया है उससे पहले वापस नहीं आएँगे।
वे मुझसे कहते है कि हम अपनी मर्जी से जा रहे है तो भला वापस क्यों आएँगे। मैं उनसे कहता हूं कि वे स्वयं को नहीं जानते। तीन से सात दिन के भीतर-भीतर यह मर्जी समाप्त हो जाएगी। उसके बाद वापस आने की इच्छा होगी। क्योंकि समाज तुम्हारा नशा बन गया है। शांत क्षणों में तुम अकेले होने की बात सोच सकते हो, लेकिन जब

तुम अकेले होओगे तो सोचने लगोगे, मैं क्या कर रहा हूं, यह सब तो व्यर्थ है। तो मैं उनसे कहता हूं कि अनुपयोगी हो जाओ और उपयोगिता की भाषा भूल जाओ।

कभी-कभी ऐसा होता है कि वे तीन सप्ताह या तीन महीने तक वहां रह जाते है तो वे आकर मुझसे कहते है, 'बहुत सुंदर अनुभव हुआ। मैं बहुत खुश था, लेकिन यह विचार सतत तंग करता रहा कि इसका उपयोग क्या है? मैं सुखी था, शांत था, आनंदित था, लेकिन भीतर ही भीतर यह विचार भी चल रहा था कि इसका उपयोग क्या है? मैं कर क्या रहा हूं?'

स्मरण रखो, उपयोग समाज के लिए है। समाज तुम्हारा उपयोग करता है। और तुम समाज का उपयोग करते हो। यह पारस्परिक संबंध है। लेकिन जीवन किसी उपयोग के लिए नहीं है। जीवन निष्प्रयोजन है, उद्देश्य विहीन है। यह तो एक लीला है। उत्सव है। तो जब इस विधि को करने के लिए तुम एकांत में जाओ तो शुरू से ही अनुपयोगी होने की तैयारी रखो उसका आनंद लो, उससे दुःखी मत होओ।

तुम सोच भी नहीं सकते कि मन कैसे-कैसे तर्क जुटाएगा। मन कहेगा, 'संसार इतनी समस्याओं से घिरा है। और तुम यहां मौन बैठे हो। देखो वियतनाम में क्या हो रहा है, और पाकिस्तान में, चीन में क्या हो रहा है। तुम्हारा देश मरा जा रहा है। न भोजन है, न पानी है, यहां बैठे ध्यान करके तुम क्या कर रहे हो। इसका क्या उपयोग है। क्या इससे देश में समाजवाद आ जाएगा।'

मन सुंदर तर्क जुटाएगा, मन बहुत तार्किक है। मन शैतान है; तुम्हें फुसलाने का, विश्वास दिलाने का प्रयास करेगा कि तुम समय नष्ट कर रहे हो। लेकिन मन की मत सुनो, शुरू से ही तैयार रहो कि मैं समय नष्ट करूंगा। मैं तो बस यहां होने का आनंद लूँगा।

और संसार की चिंता न लो, संसार चलता रहता है। यहां सदा ही समस्याएं रहेंगी। यह संसार का ढंग है, तुम कुछ नहीं कर सकते हो। इसलिए कोई महान विश्व प्रवर्तक क्रांतिकारी या मसीह बनने का प्रयास मत करो। तुम बस स्वयं ही बनो और किसी पत्थर, या नदी, या वृक्ष की तरह अपने एकांत में आनंद लो। अनुपयोगी। अब एक पत्थर का क्या उपयोग है। जो वर्षा में, सुर्य की रोशनी में, तारों की छांव में पडा है। इस पत्थर का क्या प्रयोजन है। काई भी उपयोग नहीं। उसे कोई चिंता नहीं वह सदा ध्यान मग्न है।

जब तक तुम सच में अनुपयोगी होने को तैयार न हो जाओ, तुम अकेले नहीं हो सकते, तुम एकांत में नहीं रह सकते। और एक बार तुम इसकी गहराई को जान लो तो तुम वापस समाज में आ सकते हो। फिर तुम्हें लौटना ही चाहिए। क्योंकि एकाकीपन जीवन का ढंग नहीं है। बस एक प्रशिक्षण है। यह जीवन जीने का ढंग नहीं बल्कि परिप्रेक्ष्य बदलने के लिए लिया गया एक गहन विश्राम हे। एकांत तो बस समाज से हटने के लिए है, ताकि तुम स्वयं को देख सको कि तुम कौन हो।

तो ऐसा मत सोचो कि यह जीवन शैली है। कई लोगों ने इसे जीने का ढंग ही बना लिया है। वे गलती कर रहे है। उन्होंने औषधि को भोजन बना लिया है। यह जीवन का ढंग नहीं, बस एक औषधि है। कुछ समय के लिए थोड़ा अलग हट जाओ, ताकि एक दूरी से देख सको कि तुम क्या हो, और समाज तुम्हारे साथ क्या कर रहा है। समाज से बाहर होकर तुम बेहतर ढंग से देख सकते हो। तुम द्रष्टा हो सकते हो। समाज से बिना जुड़े बिना उसमें हुए, तुम पर्वत शिखर पर बैठे एक द्रष्टा एक साक्षी हो सकते हो। तुम इतनी दूर हो—बिना विचलित हुए, पक्षपात रहित तुम देख सकते हो।

तो यह बात समझ लो कि यह जीवन का ढंग नहीं है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम संसार छोड़ दो और हिमालय में कहीं साधु बनकर बैठ जाओ। नहीं। लेकिन कभी-कभी वहां जाओ, विश्राम करो, पत्थर की तरह निष्प्रयोजन, अकेले हो जाओ। संसार से स्वतंत्र, मुक्त होकर प्रकृति के हिस्से बन जाओ। तुम्हारा कायाकल्प हो जाएगा। तुम पुनरुज्जीवित हो जाओगे। फिर समाज में और भीड़ में वापस लौट आओ और उस सौंदर्य, उस मौन को अपने साथ लाने का प्रयास करो, जो तुम्हें एकांत में घटित हुआ था। अब उसे अपने साथ ले लाओ। उससे संबंध मत तोड़ो। भीड़ में गहरे जाओ। लेकिन उसका हिस्सा मत बनो। भीड़ को अपने बाहर ही रहने दो, तुम अकेले रहो। और जब तुम भीड़ में भी अकेले होने में सक्षम हो जाते हो, तब तुम अपने वास्तविक एकांत को उपलब्ध हो जाते हो। पहाड़ पर अकेले होना तो सरल है, कोई बाधा नहीं होती। सारी प्रकृति तुम्हारी मदद करती है। बाजार में वापस आकर दुकान में, दफ्तर में, घर में रहकर अकेले होना, यह एक उपलब्धि है। फिर तुमने उसे उपलब्ध किया, वह मात्र पहाड़ पर होने का संयोग भर न रहा। अब चेतना का गुणधर्म ही बदल गया है।

तो भीड़ में अकेले हो रहो। भीड़ तो बाहर रहेगी ही, उसे भीतर मत आने दो। जो भी तुमने उपलब्ध किया है उसे बचाओ। उसकी रक्षा करो। उसे डांवाडोल मत होने दो। और जब भी तुम्हें लगे कि यह अनुभूति थोड़ी क्षीण हो रही है। अब तुम चूक रहे हो। कि समाज ने उसे विचलित कर दिया है। तो दोबारा चले जाओ। उस अनुभव को नया करने के लिए, जीवंत करने के लिए समाज से बाहर हो जाओ।

फिर एक क्षण आएगा कि यह वसंत सदा ताजा रहेगा। और कोई भी उसे प्रदूषित नहीं कर पायेगा। संदूषित नहीं कर पाएगा। फिर कहीं जाने की जरूरत नहीं है।

तो यह बा एक विधि है। जीने के लिए रहने चले जाओ। जीने की शैली नहीं है। न तो साधु बन जाओ। न साध्वी बन जाओ। न ही किसी मठ में सदा-सदा के लिए रहने चले जाओ। क्योंकि तुम सदा-सदा के लिए मठ में रहने चले गये तो तुम कभी नहीं जान पाओगे कि जो तुम्हें मिला हुआ है, वह तुम्हारी उपलब्धि है या मठ ने तुम्हें दिया है। हो सकता है वह उपलब्धि वास्तविक न हो, सांयोगिक हो। वास्तविक को कसौटी पर सकना होता है। वास्तविक अनुभव को समाज की कसौटी पर परखना पड़ता है1 और जब यह अनुभव कभी न टूटे, तुम उस पर भरोसा कर सको। कुछ भी उसे डांवाडोल न कर सके, तो यह सच्चा है, प्रामाणिक है।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 97

“अंतरिक्ष को अपना ही आनंद-शरीर मानो। “

यह दूसरी विधि पहली विधि से ही संबंधित है। आकाश को अपना ही आनंद-शरीर समझो। एक पहाड़ी पर बैठकर, जब तुम्हारे चारों और अनंत आकाश हो, तुम इसे कर सकते हो। अनुभव करो कि समस्त आकाश तुम्हारे आनंद-शरीर से भर गया है।

सात शरीर होते है। आनंद-शरीर तुम्हारी आत्मा के चारों और है। इसलिए तो जैसे-जैसे तुम भीतर जाते हो तुम आनंदित अनुभव करते हो। क्योंकि तुम आनंद-शरीर के निकट पहुंच रहे हो। आनंद की पर्त पर पहूंच रहे हो। आनंद-शरीर तुम्हारी आत्मा के चारों और है। भीतर से बाहर की तरफ जाते हुए यह पहला और बाहर से भीतर की और जाते हुए यह अंतिम शरीर है। तुम्हारी मूल सत्ता, तुम्हारी आत्मा के चारों और आनंद की एक पर्त है, इसे आनंद शरीर कहते है।

पर्वत शिखर पर बैठे हुए अनंत आकाश को देखो। अनुभव करो कि सारा आकाश, सारा अंतरिक तुम्हारे आनंद-शरीर से भर रहा है। अनुभव करो कि तुम्हारा शरीर आनंद से भर गया है। अनुभव करो कि तुम्हारा आनंद शरीर फैल गया है और पूरा आकाश उसमे समा गया है।

लेकिन यह तुम कैसे महसूस करोगे? तुम्हें तो पता ही नहीं है कि आनंद क्या है तो तुम उसकी कल्पना कैसे करोगे? यह बेहतर होगा कि तुम पहले यह अनुभव करो कि पूरा आकाश मौन से भर गया है। आनंद से नहीं। आकाश को मौन से भरा हुआ अनुभव करो।

और प्रकृति इसमें सहयोग देगी। क्योंकि प्रकृति में ध्वनियां भी मौन ही होती है। शहरों में जो मौन भी शोर से भरा होता है। प्राकृतिक ध्वनियां मौन होती है। क्योंकि वे विध्न नहीं डालती, वे लयबद्ध होती है। तो ऐसा मत सोचो कि

मौन अनिवार्य रूप से ध्वनि का अभाव है। नहीं, एक संगीतमय ध्वनि मौन हो सकती है। क्योंकि वह इतनी लयबद्ध है कि वह तुम्हें विचलित नहीं करती बल्कि वह तुम्हारे मौन को गहराती है।

तो जब तुम प्रकृति में जाते हो तो बहती हुई हवा के झोंके झरने, नदी या और भी जो ध्वनियां है वे लयबद्ध होती है, वे एक पूर्ण का निर्माण करती है, वे बाधा नहीं डालती है। उन्हें सुनने से तुम्हारा मौन और गहरा हो सकता है। तो पहले महसूस करो कि सारा आकाश मौन से भर गया है। गहरे से गहरे अनुभव करो कि आकाश और शांत होता जा रहा है। कि आकाश ने मौन बनकर तुम्हें घेर लिया है।

और जब तुम्हें लगे कि आकाश मौन से भर गया है। केवल तभी आनंद से भरने का प्रयास करना चाहिए। जैसे-जैसे मौन गहराएगा, तुम्हें आनंद की पहल झलक मिलेगी। जैसे जब तनाव बढ़ता है तो तुम्हें दुःख की पहली झलक मिलती है। ऐसे ही जब मौन गहराएगा तो तुम अधिक शांत, विश्रांत और आनंदित अनुभव करोगे। और जब वह झलक मिलती है तो तुम कल्पना कर सकते हो कि अब पूरा आकाश आनंद से भरा हुआ है।

'अंतरिक्ष को अपना ही आनंद-शरीर मानो।'

सारा आकाश तुम्हारा आनंद-शरीर बन जाता है।

तुम इसे अलग से भी कर सकते हो। इसे पहली विधि के जोड़ने की जरूरत नहीं है। लेकिन परिस्थिति वही जरूरी है—अनंत विस्तार, मौन, आस-पास किसी मनुष्य का न होना।

आस-पास किसी मनुष्य के न होने पर इतना जोर क्यो? क्योंकि जैसे ही तुम किसी मनुष्य को देखोगें तुम पुराने ढंग से प्रतिक्रिया करने लगोगे। तुम बिना प्रतिक्रिया किए किसी मनुष्य को नहीं देख सकते। तत्क्षण तुम्हें कुछ नक कुछ होने लगेगा। यह तुम्हें तुम्हारे पुराने ढर्रे पर लौटा लाएगा। यदि तुम्हें आस-पास कोई मनुष्य नजर न आए तो तुम भूल जाते हो कि तुम मनुष्य हो। और यह भूल जाना अच्छा ही है। कि तुम मनुष्य हो। समाज के अंग हो। और केवल इतना स्मरण रखना अच्छा है कि तुम बस हो। चाहे यह न भी पता हो कि तुम क्या हो। तुम किसी व्यक्ति से, किसी समाज से, किसी दल से, किसी धर्म से जुड़े हुए नहीं हो। यह न जुड़ना सहयोगी होगा।

तो यह अच्छा होगा कि तुम अकेले कहीं चले जाओ। और इस विधि को करो। अकेले इस विधि को करना सहयोगी होगा। लेकिन किसी ऐसी चीज से शुरू करो जो तुम अनुभव कर सकते हो। मैंने लोगों को ऐसी विधि करते हुए देखा है जिनका वे अनुभव ही नहीं कर सकते। यदि तुम अनुभव की न कर सको, यदि एक झलक का भी अनुभव न हो, तो सारी बात ही झूठ हो जाती है।

एक मित्र मेरे पास आए और कहने लगे, 'मैं इस बात की साधना कर रहा हूं कि परमात्मा सर्वव्यापी है।'
तो मैंने उनसे पूछा, 'साधना कर कैसे सकते हो? तुम कल्पना क्या करते हो? क्या तुम्हें परमात्मा का कोई स्वाद, कोई अनुभव है। क्योंकि केवल तभी उसकी कल्पना कर पान संभव होगा। वरना तो तुम बस सोचते रहोगे कि कल्पना कर रहे हो और कुछ भी नहीं होगा।'

तो तुम कोई भी विधि करो, इस बात को स्मरण रखो कि पहले तुम्हें उसी से शुरू करना चाहिए जिससे तुम परिचित हो; हो सकता है कि तुम्हारा उससे पूरा परिचय न हो। परंतु थोड़ी सी झलक जरूर होगी। केवल तभी तुम एक-एक कदम बढ़ सकते हो। लेकिन बिलकुल अनजानी चीज पर मत कूद पड़ो। क्योंकि तब न तो तुम उसको अनुभव कर पाओगे, न उसकी कल्पना कर पाओगे।

इस लिए बहुत से गुरूओं ने, विशेषकर बुद्ध ने , परमात्मा शब्द को ही छोड़ दिया। बुद्ध ने कहा, 'उसके साथ तुम साधना शुरू नहीं कर सकते। वह तो परिणाम है और परिणाम को तुम शुरू में नहीं ला सकते। तो आरंभ से ही शुरू करो, उन्होंने कहा, 'परिणाम को भूल जाओ, परिणाम स्वयं ही आ जाएगा।' और अपने शिष्यों को उन्होंने कहा, 'परमात्मा के बारे में मत सोचो, करूणा के बारे में सोचो,प्रेम के बारे में सोचो।'

तो वे यह नहीं कहते कि तुम परमात्मा को हर जगह देखने की कोशिश करो, 'तुम तो बस सबके प्रति करूणा से भर जाओ—वृक्षों के प्रति, मनुष्य के प्रति,पशुओं के प्रति। बस करूणा को अनुभव करो। सहानुभूति से भर जाओ। प्रेम को जन्म दो। क्योंकि चाहे थोड़ा सा सही, फिर भी प्रेम को तुम जानते हो। हर किसी के जीवन में प्रेम जैसा कुछ होता है। तुमने किसी से चाहे प्रेम न किया हो। पर तुम से तो किसी ने प्रेम किया होगा। कम से कम तुम्हारी मां ने तो किया ही होगा। उसकी आंखों में तुमने पाया होगा कि वह तुम्हें प्रेम करती है।'

बुद्ध कहते है, **'अस्तित्व के प्रति मातृत्व से भर जाओ और गहन करूण अनुभव करो। अनुभव करो कि पूरा जगत करूणा से भर गया है। फिर सब कुछ अपने आप हो जाएगा।'**

तो इसे आधारभूत नियम की भांति स्मरण रखो: 'सदा ऐसी ही चीज से शुरू करो जिसे तुम महसूस कर सकते हो। क्योंकि उसके माध्यम से ही अज्ञात प्रवेश कर सकता है।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 98

"किसी सरल मुद्रा में दोनों कांखों के मध्य-क्षेत्र (वक्षस्थल) में धीरे-धीरे शांति व्याप्त होने दो।"

यह बड़ी सरल विधि है। परंतु चमत्कारिक ढंग से कार्य करती है। इसे करके देखो। और कोई भी कर सकता है। इसमे कोई खतरा नहीं है। पहली बात तो यह है कि किसी भी आरामदेह मुद्रा में बैठ जाओ, जो भी मुद्रा तुम्हारे लिए आसान हो। किसी विशेष मुद्रा या आसन में बैठने की कोशिश मत करो। बुद्ध एक विशेष मुद्रा में बैठते है। वह उनके लिए आसान है। वह तुम्हारे लिए भी आसान बन सकती है। अगर कुछ समय तुम उसका अभ्यास करो, लेकिन शुरू-शुरू में यक तुम्हारे लिए आसान न होगी। पर इसका अभ्यास करने की कोई जरूरत नहीं है। किसी भी ऐसी मुद्रा से शुरू करो जो अभी तुम्हारे लिए आसान हो। मुद्रा के लिए संघर्ष मत करो। तुम आराम से एक कुर्सी पर बैठ सकते हो। बस एक ही बात का ध्यान रखना है कि तुम्हारा शरीर एक विश्रांत अवस्था में होना चाहिए।

तो बस अपनी आंखें बंद कर लो और सारे शरीर को अनुभव करो। पैरों से शुरू करो, महसूस करो कि उनमें कहीं तनाव तो नहीं है। यदि तुम्हें लगे कि तनाव है तो एक काम करो: उसे और तनाव से भर दो। यदि तुम्हें लगे कि दाहिने पाँव में तनाव है तो उस तनाव को जितना सघन कर सको,उतना सघन करो। उसे एक शिखर तक ले आओ, फिर अचानक उसे जितना सघन कर सको उतना सघन करो। उसे एक शिखर तक ले आओ। फिर अचानक उसे ढीला छोड़ दो। ताकि तुम यह महसूस कर सको कि कैसे वहां विश्राम उतर रहा है। फिर पूरे शरीर में देखते जाओ कि कहां-कहां तनाव है। जहां भी तुम्हें लगे कि तनाव है उसे और गहराओ, क्योंकि तनाव सघन हो तो विश्राम में

जाना सरल है। आधे-अधूरे तो यह बड़ा कठिन है, क्योंकि तुम उसे महसूस ही नहीं कर सकते। एक अति से दूसरी अति पर जाना बहुत सरल है। क्योंकि एक अति स्वयं ही दूसरी अति पर जाने के लिए परिस्थिति पैदा कर देती है। तो चेहरे पर अगर तुम कोई तनाव महसूस करो तो चेहरे की मांस पेशियों को जितना खींच सको खीचों। तनाव को एक शिखर पर पहुंचा दो। उसे ऐसे बिंदु तक ले आओ जहां और तनाव संभव ही न हो। फिर अचानक ढीला छोड़ दो। इस तरह से देखो कि शरीर के साथ अंग विश्रांत हो जाएं।

और चेहरे की मांस-पेशियों पर विशेष ध्यान दो, क्योंकि वे तुम्हारे नब्बे प्रतिशत तनावों को ढोती है। बाकी शरीर में केवल दस प्रतिशत तनाव है। सब तनाव तुम्हारे मस्तिष्क में होता है। इसलिए तुम्हारा चेहरा उनका भंडार बन जाता हे। तो अपने चेहरे पर जितना तनाव डाल सको डालों, शर्माओ मत। चेहरे को पूरी तरह से संताप युक्त, विषादयुक्त बना डालों। और फिर अचानक ढीला छोड़ दो। पाँच मिनट के लिए ऐसा करो। ताकि तुम्हारे शरीर का हर अंग विश्रांत हो जाए। यह तुम्हारे लिए बड़ी सरल मुद्रा है। तुम इसे बैठकर, या बिस्तार में लेटे हुए या जैसे भी तुम्हें आसान लगे कर सकते हो।

‘किसी सरल मुद्रा में दोनों कांखों के मध्य-क्षेत्र (वक्षस्थल) में धीरे-धीरे शांति व्याप्त होने दो।’

दूसरी बात: ‘जब तुम्हें लगे कि शरीर किसी सुखद मुद्रा में पहुंच गया है–इस बात को अधिक तूल मत दो–जब महसूस करो कि शरीर विश्रांत है। फिर शरीर को भूल जाओ। क्योंकि असल में, शरीर को स्मरण रखना एक प्रकार का तनाव है।’

इसीलिए मैं कहता हूं, **कि इस विषय में बहुत झंझट मत करो। शरीर को विश्रांत हो जाने दो और भूल जाओ। भूल जाना ही विश्राम है। जब भी तुम बहुत याद रखते हो तो वह स्मरण ही शरीर को तनाव से भर देता है।**

शायद तुमने कभी इस और ध्यान न दिया हो। लेकिन इसके लिए एक बड़ा सरल प्रयोग है। अपना हाथ अपनी नाड़ी पर रखो और उसकी धड़कनों को गिनो। फिर अपनी आंखों को बंद कर लो और सारे ध्यान को पाँच मिनट के लिए नाड़ी पर ले आओ, फिर उसे गिनो। नाड़ी अब तेज धड़केगी, क्योंकि पांच मिनट के ध्यान ने उसे तनाव दे दिया है।

तो वास्तव में जब भी कोई डाक्टर तुम्हारी धड़कन को मापता है। तो वह माप कभी असली नहीं होता। वह माप हमेशा डाक्टर के माप शुरू करने से पहले के माप से अधिक होता है। जब भी डाक्टर तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेता है तो तुम उसके प्रति सजग हो जाते हो। और यदि डाक्टर महिला हो तो तुम और भी सजग हो जाते हो। धड़कन और तेज चलने लगेगी। तो जब भी कोई महिला डाक्टर तुम्हारी धड़कन गिने तो उसमें से दस घटा लेना। तब वह तुम्हारी असली धड़कन होगी। नहीं तो दस धड़कने प्रति मिनट अधिक रहेंगी।

तो जब भी तुम अपनी चेतना को शरीर के किसी अंग पर ले जाते हो। वह अंग तनाव से भर जाता है। जब कोई तुम्हें घूरता है तो तुम तनाव से भर उठते हो। तुम्हारा सारा शरीर तनाव युक्त हो जाता है। जब तुम अकेले होते हो तब भिन्न होते हो। जब कोई कमरे में आ जाता है तब तुम वही नहीं रहते। पूरे शरीर की गति तेज हो जाती है। तुम तनाव से भर जाते हो। तो विश्राम को कोई बहुत अधिक महत्व न दो। वरना उसी के साथ अटक जाओगे। पाँच मिनट के लिए बस आराम करो और भूल जाओ। तुम्हारा भूलना सहयोगी होगा और शरीर को और गहन विश्राम में ले जाएगा।

'दोनों कांखों के मध्य क्षेत्र (वक्षस्थल) में धीरे-धीरे शांति व्याप्त होने दो।'

अपनी आंखें बंद कर लो और दोनों कांखों के बीच के स्थान को महसूस करो; हृदय क्षेत्र को, अपने वक्षस्थल को महसूस करो। पहले केवल दोनों कांखों के बीच अपना पूरा अवधान लाओ,पूरे होश से महसूस करो। पूरे शरीर को भूल जाओ और बस दोनों कांखों के बीच हृदय-क्षेत्र और वक्षस्थल को देखो। और उसे अपार शांति से भरा हुआ महसूस करो।

जिस क्षण तुम्हारा शरीर विश्रांत होता है तुम्हारा हृदय में स्वत: ही शांति उतर आती है। हृदय मौन, विश्रांत और लयबद्ध हो जाता है। और जब तुम अपने सारे शरीर को भूल जाते हो और अवधान को बस वक्षस्थल पर ले आते हो और उसे शांति से भरा हुआ महसूस करते हो तो तत्क्षण अपार शांति घटित होगी।

शरीर में दो ऐसे स्थान है, विशेष केंद्र है, जहां होश पूर्वक कुछ विशेष अनुभूतियां पैदा की जा सकती है। दोनों कांखों के बीच हृदय का केंद्र है। और हृदय का केंद्र तुममें घटित होने वाली सारी शांति का केंद्र है। जब भी तुम शांत हो, वह शांति हृद से आती है। हृदय शांति विकीरित करता है।

इसीलिए तो संसार भर में हर जाति ने, हर वर्ग, धर्म, देश और सभ्यता ने महसूस किया है कि प्रेम कहीं हृदय के पास से उठता है। इसके लिए कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं है। जब भी तुम प्रेम के संबंध में सोचते हो तुम हृदय के संबंध में सोचते हो। असल में जब भी तुम प्रेम में होते हो तुम विश्रांत होते हो। और क्योंकि तुम विश्रांत होते हो, तुम एक विशेष शांति से भर जाते हो। वह शांति हृदय से उठती है। इसलिए प्रेम और शांति आपस में जुड़ गए है। जब भी तुम प्रेम में होते हो तुम शांत होते हो। जब भी तुम प्रेम में नहीं होते तो परेशान होते हो। शांति के कारण हृदय प्रेम से जुड़ गया है।

तो तुम दो काम कर सकते हो, तुम प्रेम की खोज कर सकते हो: फिर कभी-कभी तुम शांत अनुभव करोगे। लेकिन यह मार्ग खतरनाक है, क्योंकि जिस व्यक्ति को तुम प्रेम करते हो वह तुमसे अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। और दूसरा तो दूसरा ही है। तुम एक तरह से पराधीन हो गए। तो प्रेम तुम्हें कभी-कभी शांति देगा, पर सदा नहीं। कई व्यवधान आएँगे, संताप और विषाद के कई क्षण आएँगे। क्योंकि दूसरे से तुम केवल परिधि पर ही मिल सकते हो। परिधि विक्षुब्ध हो जाएगी। केवल कभी-कभी,जब तुम दोनों बिना किसी संघर्ष के गहन प्रेम में होओगे, केवल तभी तुम विश्रांत होओगे। और तुम्हारा हृदय शांति से भर सकेगा।

तो प्रेम तुम्हें केवल शांति की झलकें दे सकता है। लेकिन कोई स्थाई गहरी शांति नहीं दे सकता है। इससे किसी शाश्वत शांति की संभावना न ही है। बस झलकों की संभावना है। और दो झलकों के बीच कलह की, हिंसा की, घृणा और क्रोध की गहरी घाटियाँ होगी।

शांति को खोजने का दूसरा उपाय है—उसे प्रेम के द्वारा नहीं, सीधे ही खोजना। यदि तुम शांति को सीधे ही पा सको—और उसी की यह विधि है। तो तुम्हारा जीवन प्रेम से भर जाएगा। लेकिन अब प्रेम का गुणधर्म अलग-अलग होगा। उसमें मालकियत नहीं होगी। वह किसी एक पर केंद्रित नहीं होगा। न तो वह स्वयं पराधीन होगा, न किसी को अपने आधीन बनाएगा। तुम्हारा प्रेम बस एक भाव, एक करूणा, एक गहन समानुभूति बन जाएगा। और अब कोई भी, कोई भी प्रेमी भी, तुम्हें अशांत नहीं कर पाएगा। क्योंकि शांति की जड़ें गहरी है और तुम्हारा प्रेम आंतरिक शांति की छाया की भांति है। पूरी बात उलटी हो गई है।

तो बुद्ध भी प्रेमपूर्ण है, पर उनका प्रेम एक विषाद नहीं है। यदि तुम प्रेम करो तो कष्ट भोगोगे और प्रेम न करो तो भी कष्ट भोगोगे। यदि तुम प्रेम न करो तो प्रेम की अनुपस्थिति से कष्ट होगा। और प्रेम करो तो प्रेम की उपस्थिति से कष्ट होगा। क्योंकि तुम परिधि पर हो। इसलिए तुम कुछ भी करो,वह तुम्हें क्षणिक तृप्ति देगा, फिर अंधेरी घाटियाँ आ जाएंगी।

पहले अपनी स्वयं की शांति में स्थिर हो जाओ, फिर तुम स्वतंत्र हो। फिर प्रेम तुम्हारी जरूरत नहीं है। फिर तुम जब भी प्रेम में होओगे तो बंधन अनुभव करोगे। तुम्हें कभी यह नहीं लगेगा कि प्रेम एक तरह की परतंत्रता है। एक गुलामी है, एक बंधन बन गया है। तब प्रेम बस एक दान होगा। तुम्हारे पास इतनी शांति है कि तुम उसे बांटना चाहते हो। फिर वह बस देना मात्र होगा,जिसमे वापस पाने का कोई विचार नहीं होगा; वह बेशर्त होगा। और यह एक राज है कि जितना तुम देते हो उतना ही तुम्हें मिलता हे। जितना ही तुम देते हो और बांटते हो उतना ही तुम पर बरस जाता है। जितना तुम इस खजानें में गहरे प्रवेश करते हो, जो कि अनंत है,उतना ही तुम सबको लुटा सकते हो। यह कभी समाप्त नहीं हो सकता।

लेकिन प्रेम आंतरिक शांति की छाया की भांति घटित होना चाहिए। साधारणत: इससे उलटा होता है, शांति तुम्हारे प्रेम की छाया की भांति आती है। प्रेम शांति की छाया होना चाहिए, तब प्रेम सुंदर होता है। वरना तो प्रेम भी कुरूपता निर्मित करता है, एक रोग, एक ज्वर बन जाता है।

'दोनों कांखों के मध्य-क्षेत्र (वक्षस्थल) में धीरे-धीरे शांति व्याप्त होने दो।'

कांखों के मध्य क्षेत्र के प्रति जागरूक हो जाओ और महसूस करो कि वह अपार शांति से भर रहे है। बस शांति को अनुभव करो। और तुम पाओगे कि वह भरी जा रही है। शांति तो सदा से भरी है। पर इस का तुम्हें कभी पता नहीं चलता। यह केवल तुम्हारे होश को बढ़ाने के लिए,तुम्हें घर की और लौटा लाने के लिए है। और जब तुम्हें यह शांति अनुभव होगी, तुम परिधि से हट जाओगे। ऐसा नहीं कि वहां कुछ नहीं होगा, लेकिन जब तुम इस प्रयोग को करोगे और शांति से भरोंगे तो तुम्हें एक दूरी महसूस होगी। सड़क से शोर आ रहा है, पर बीच में अब बहुत दूरी है। सब चलता रहता है, पर इससे कोई परेशानी नहीं होती; बल्कि इससे मौन और गहरा होता है।

यह चमत्कार है। बच्चे खेल रहे होंगे। कोई रेडियों सुन रहा होगा। कोई लड़ रहा होगा, और पूरा संसार चलता रहेगा। लेकिन तुम्हें लगेगा कि तुम्हारे और सब चीजों के बीच में एक दूरी आ गई है। यह दूरी इसलिए पैदा हुई है कि तुम परिधि से अलग हो गए हो। परिधि पर घटनाएं होंगी और तुम्हें लगेगा कि वे किसी और के साथ हो रही है। तुम सम्मिलित नहीं हो। तुम्हें कुछ परेशान नहीं करता इसलिए तुम सम्मिलित नहीं हो। तुम अतिक्रमण कर गए हो। यह अतिक्रमण है।

और ह्रदय स्वभावत: शांति का स्त्रोत है। तुम कुछ भी पैदा नहीं कर रहे। तुम तो बस उस स्त्रोत पर लौट रहे हो जो सदा से था। यह कल्पना तुम्हें इस बात के प्रति जागने में सहयोगी होगी कि ह्रदय शांति से भरा हुआ है। ऐसा नहीं है कि यह कल्पना शांति पैदा करेगी।

तंत्र और पाश्चात्य सम्मोह न के दृष्टिकोण से यही अंतर है। सम्मोहनविद सोचते है कि वे कल्पना के द्वारा कुछ पैदा कर रहे हे। पर तंत्र का मानना है कि कल्पना के द्वारा तुम कुछ पैदा नहीं करते। तुम तो बस उस चीज के साथ लयवद्ध हो जाते हाँ जो पहले से ही है। क्योंकि कल्पना से तुम जो भी पैदा कर सकते हाँ वह स्थाई नहीं हो सकता: यदि कोई चीज वास्तविक नहीं है तो वह झूठी है, नकली है, तुम एक भ्रम निर्मित कर रहे हो।

तो शांति के भ्रम में पड़ने से तो वास्तविक रूप से परेशान होना बेहतर हे। क्योंकि वह कोई विकास नहीं है। बस तुमने अपने को उसमें भुला दिया है। देर अबेर तुम्हें उससे बाहर निकलना होगा। क्योंकि जल्दी ही वास्तविकता भ्रम को तोड़ देगी। सच्चाई भ्रमों को नष्ट करेगी ही। केवल उच्चतर वास्तविकता को नष्ट नहीं किया जा सकता। उच्चतर वास्तविकता उस यथार्थ को नष्ट कर देगी जो कि परिधि पर है।

इसीलिए शंकर तथा दूसरे कई बुद्ध पुरूष कहते है कि संसार माया है। ऐसा नहीं है कि संसार माया है। लेकिन उन्हें एक उच्चतर वास्तविकता का बोध हो गया है। उस ऊँचाई से संसार स्वप्नवत प्रतीत होता है। वह शिखर इतनी दूर है, इतनी दूर है कि यह संसार वास्तविक नहीं लग सकता।

तो सड़क पर आता हुआ शोर ऐसे लगेगा जैसे तुम अपना सपना देख रहे हो, वह वास्तविकता नहीं है। वह कुछ नहीं कर सकता बस आता है और गूजर जाता है। और तुम अस्पर्शित रह जाते हो। और जब तुम वास्तविक से अस्पर्शित रह जाओ तो तुम्हें कैसे लगेगा। कि यह वास्तविक है, वास्तविकता तुम्हें केवल तभी महसूस होती है जब वह तुममें गहरी प्रवेश कर जाए। जितनी गहरी वह प्रविष्ट होगी उतनी ही वास्तविक लगेगी।

शंकर कहते है, पुरा संसार मिथ्या है। वह ऐसे बिंदु पर पहुंच गए होंगे जहां से दूरी इतनी बढ़ जाती है कि संसार में जो भी हो रहा है। सपना सा ही प्रतीत होता हे। उसकी प्रतीति होती है। लेकिन उसके साथ कोई वास्तविकता की प्रतीति नहीं होती। क्योंकि वह भीतर प्रवेश नहीं कर पाती। प्रवेश ही वास्तविकता का अनुपात है। यदि मैं तुम्हें पत्थर मारू और तुम्हें चोट लगे तो उसकी चोट तुम्हारे भीतर प्रवेश करती है। और चोट का प्रवेश करना ही पत्थर को वास्तविक बनाता है। यदि मैं एक पत्थर फेंकू और वह तुम्हें छुए, पर चोट भीतर प्रवेश न करे। तो गहरे में कही तुम्हें अपने पर पत्थर गिरने की आवाज सुनाई देगी। पर उससे कोई व्यवधान पैदा नहीं होगा। तुम्हें वह झूठ लगेगी। मिथ्या लगेगी। माया लगेगी।

लेकिन तुम परिधि से इतने करीब हो कि यदि मैं तुम्हें पत्थर मारू तो तुम्हें चोट लगेगी। अगर मैं बुद्ध पर पत्थर फेंकू तो उनके शरीर को भी उतनी ही चोट लगेगी जितनी तुम्हारे शरी को लगेगी। लेकिन बुद्ध परिधि पर नहीं है। केंद्र में स्थित है। और दूरी इतनी अधिक है कि उन्हें पत्थर की आवाज तो सुनाई देगी पर चोट नहीं लगेगी। अंतस अस्पर्शित रह जाएगा। उस पर खरोंच भी न आएगी। इस निर्विचार अंतस को लगेगा कि जैसे सपने में कुछ फेंका गया। यह माया है। तो बुद्ध कहते है, किसी चीज में कोई सार नहीं है। सब कुछ असार है। संसार असार है। यह बही बात है जैसे शंकर कहते है कि संसार माया है।

इसे करके देखो। जब भी तुम्हें अनुभव होगा कि तुम्हारी दोनों कांखों के बीच, तुम्हारे ह्रदय के केंद्र पर शांति व्याप्त हो रही है तो संसार तुम्हें भ्रामक प्रतीत होगा। यह इस बात का संकेत है कि तुम ध्यान में प्रवेश कर गए—जब संसार माया लगने लगे। ऐसा सोचो मत कि संसार माया है। ऐसा सोचने की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें ऐसा महसूस होगा। अचानक तुम्हारे मन में आएगा, संसार को क्या हो गया है? अचानक संसार स्वप्नवत हो गया है। एक स्वप्न की तरह से सारहीन हो गया है। बस इतना ही वास्तविक प्रतीत होता है। जैसे पर्दे पर फिल्म। भले ही थ्री-डायमेंशनल हो, पर ऐसा लगता है जैसे कोई प्रक्षेपण हो। हालांकि संसार प्रक्षेपण नहीं है। संसार वास्तव में माया नहीं है। नहीं,संसार तो वास्तविक है, लेकिन तुम दूरी पैदा कर लेते हो। और दूरी बढ़ती ही जाती है। और दूरी बढ़ रही है। या नहीं, यह तुम इस बात से पता लगा सकते हो कि संसार अब तुम्हें कैसा लगता है।

यही कसौटी है। यह एक ध्यान की कसौटी है। यह सच नहीं है। कि संसार मिथ्या है। पर साथ तो कई बार ऐसा होता है कि पहले ही प्रयास में तुम इसके सौंदर्य और चमत्कार को अनुभव करोगे। तो इसे करके देखो। लेकिन

पहले प्रयास में अगर तुम्हें कुछ अनुभव न हो तो निराश मत होना। प्रतीक्षा करो, और करते रहो। और यह इतनी सरल विधि है कि तुम किसी भी समय इसे कर सकते हो। रात अपने विस्तर पर लेटे-लेटे कर कसते हो। सुबह जब तुम्हें लगे कि तुम्हारी नींद खुल गई है। उस समय तुम इसे कर सकते हो। पहले इसे करो फिर उठो। दस मिनट भी पर्याप्त होंगे।

रात सोने से पहले दस मिनट इसे करो। संसार को मिथ्या बना दो। और तुम्हारी नींद इतनी गहरी हो जाएगी जितनी पहले कभी नहीं थी। यदि सोने से ठीक पहले संसार मिथ्या हो जाए तो सपने कम आएँगे। क्योंकि यदि संसार ही कल्पना बन जाए तो सपने नहीं चल सकते। और यदि संसार मिथ्या हो जाए तो तुम बिलकुल विश्रांत हो जाओगे। क्योंकि संसार की वास्तविकता तुम पर चोट नहीं करेगी। असर नहीं करेगी।

यह विधि में उन लोगों को सुझाता हूं जो अनिद्रा से पीड़ित है। इससे बड़ी मदद मिलेगी। यदि संसार मिथ्या है तो तनाव समाप्त हो जाते है। और यदि तुम परिधि पर हट सको तो तुम स्वयं ही नींद की गहरी अवस्था में चले गए। इससे पहले कि नींद आए तुम उसमें गहरे चले गए। और फिर सुबह बहुत अच्छा लगेगा। क्योंकि तुम बहुत ताजा हो गए हो और युवा हो गए हो। तुम्हारी ऊर्जा तरंगायित है, क्योंकि तुम केंद्र से परिधि पर लौट रहे हो।

और जिस क्षण तुम्हें लगे कि नींद जा चुकी है तो आंखें मत खोलों। पहले इस प्रयोग को दस मिनट करो, फिर अपनी आंखें खोलों। शरीर पूरी रात के बाद विश्राम में है। और ताजा तथा जीवंत अनुभव कर रहा है। तुम पहले ही विश्रांत हो तो अब अधिक समय नहीं लगेगा। बस विश्राम करो। अपने चेतना को दोनों कांखों के बीच ह्रदय पर ले आओ। उसे गहन शांति से भरा हुआ अनुभव करो। दस मिनट तक उस शांति में रहो। फिर आंखें खोल लो।

संसार अलग ही नजर आयेगा। क्योंकि शांति तुम्हारी आंखों में भी झलकेगी। और सारा दिन तुम्हें अलग ही अनुभव होगा। न केवल तुम्हें अलग अनुभव होगा। बल्कि तुम्हें लगेगा कि लोग भी तुमसे अलग तरह से व्यवहार कर रहे है। हर संबंध में तुम कुछ सहयोग देते हो। यदि तुम्हारा सहयोग न हो तो लो तुमसे अलग तरह से व्यवहार करेंगे। क्योंकि उन्हें लगेगा कि अब तुम भिन्न व्यक्ति हो गए हो। हो सकता है उन्हें इसका पता भी न हो, पर जब तुम शांति से भर जाओगे तो हर कोई तुमसे अलग तरह से व्यवहार करेगा। लोग अधिक प्रेमपूर्ण और अधिक विनम्र होंगे। कम बाधा डालेंगे। खुले होंगे, समीप होंगे। एक चुंबकत्व पैदा हो गया।

शांति एक चुंबक है। जब तुम शांत होते हो तो लोग तुम्हारे अधिक निकट आते है। जब तुम परेशान होते हो तो सब पीछे हटते है। और यह इतनी भौतिक घटना है कि तुम इसे सरलता से देख सकते हो। जब भी तुम शांत हो, तुम्हें लगेगा सब तुम्हारे करीब आना चाहते है। क्योंकि शांति विकीरित होने लगती है। चारों और एक तरंग बन जाती है। तुम्हारे चारों और शांति के स्पंदन होते है और जो आता है तुम्हारे करीब होना चाहता है। जैसे तुम किसी वृक्ष की छाया के नीचे जाकर विश्राम करना चाहते हो।

शांति व्यक्ति के चारों और एक छाया होती है। वह जहां भी जाएगा सब उसके पास जाना चाहेंगे। खुले होंगे। जिस व्यक्ति के भीतर संघर्ष है, विषाद है,संताप है, तनाव है, वह लोगों को दूर हटाता है। जो भी उसके पास जाता है घबड़ाता है। तुम खतरनाक हो। तुम्हारे करीब होना खतरनाक है। क्योंकि तुम वहीं दोगे जो तुम्हारे पास है। लगातार तुम वही दे रहे हो।

तो हो सकता है तुम किसी को प्रेम करना चाहो;पर यदि तुम भीतर से परेशान हो तो तुम्हारा प्रेम भी तुमसे दूर हटेगा। तुमसे भागना चाहेगा। क्योंकि तुम उसकी ऊर्जा को चूस लोगे। और वह तुम्हारे साथ सुखी नहीं होगा। और

जब तुम उसे छोड़ोगे बिलकुल थका हुआ हारा छोड़ोगे। क्योंकि तुम्हारे पास कोई जीवनदायी स्त्रोत नहीं है। तुम्हारे भीतर विध्वंसात्मक ऊर्जा है।

तो न केवल तुम्हें लगेगा कि तुम भिन्न हो गए हो। दूसरों को भी लगेगा कि तुम बदल गये हो। यदि तुम थोड़ा सा केंद्र के करीब सरक जाओ तो तुम्हारी पूरी जीवन शैली बदल जाती है। सारा दृष्टिकोण सारा प्रतिफलन भिन्न हो जाता है। यदि तुम शांत हो तो तुम्हारे लिए सारा संसार शांत हो जाता है। यह केवल एक प्रतिबिंब है। तुम जो हो वही चारों और प्रतिबिंबित होता है। हर कोई एक दर्पण बन जाता है।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 99

'स्वयं को सभी दिशाओं में परिव्याप्त होता हुआ महसूस करो—सुदूर, समीप।'

तंत्र और योग दोनों मानते है कि संकीर्णता ही समस्या है। क्योंकि तुमने स्वयं को इतना संकीर्ण कर लिया है इसीलिए तुम सदा ही बंधन अनुभव करते हो। बंधन कही और से नहीं आ रहा है। बंधन तुम्हारे संकीर्ण मन से आ रहा है। और वह संकीर्ण से संकीर्णतर होता चला जाता है। और तुम सीमित होते चले जाते हो।

वह सीमित होना तुम्हें बंधन की अनुभूति देता है। तुम्हारे पास अनंत आत्मा है। और अंनत अस्तित्व है, पर वह अनंत आत्मा बंदी अनुभव करती है। तो तुम कुछ भी करो, तुम्हें सब और सीमाएं नजर आती है। तुम कहीं भी जाओ एक बिंदु पर पहुंच जाते हो जहां से आगे नहीं जाया जा सकता। सब आरे एक सीमा-रेखा है। उड़ने के लिए कोई खुला आकाश नहीं है।

लेकिन यह सीमा तुमने खड़ी की है, यह सीमा तुम्हारा निर्माण है। तुमने कई कारणों से यह सीमा निर्मित की है: सुरक्षा के लिए, बचाव के लिए। तुमने एक सीमा बना ली है। और जितनी संकीर्ण सीमा होती है उतने सुरक्षित तुम महसूस करते हो। यदि तुम्हारी सीमा बहुत बड़ी हो तो तुम पूरी सीमा पर पहरा नहीं दे सकते हो, तुम सब और से सावधान नहीं हो सकते। बड़ी सीमा असुरक्षित हो जाती है। सीमा के संकीर्ण करो तो तुम उस पर पहरा दे सकते हो, बंद रह सकते हो। फिर तुम संवेदनशील न रहे, सुरक्षित हो गए। इस सुरक्षा के लिए ही तुमने सीमा खड़ी की है। लेकिन फिर तुम्हें बंधन लगता है।

मन ऐसा ही विरोधाभासी है। तुम सुरक्षा भी मांगते हो और साथ ही साथ स्वतंत्रता भी। दोनों एक साथ नहीं मिल सकती। यदि तुम्हें स्वतंत्रता चाहिए तो सुरक्षा खोनी पड़ेगी। कुछ भी हो, सुरक्षा बस भ्रम मात्र है। वास्तविक नहीं है। क्योंकि मृत्यु तो होगी ही। तुम चाहे कुछ भी करो, तुम मरोगे ही। तुम्हारी सारी सुरक्षा ऊपर-ऊपर है। कुछ भी मदद न देगा। लेकिन असुरक्षा से डरकर तुम सीमाएं खड़ी करते हो। अपने चारो और बड़ी-बड़ी दीवारें खींच लेते हो। और फिर खुला आकाश कहां है? और कहते हो, 'मैं स्वतंत्रता चाहता हूं और मैं बढ़ना चाहता हूं।' लेकिन तुमने ही ये सीमाएं खड़ी की है।

तो इससे पहले कि तुम यह विधि करो, यह पहली बात याद रख लेने जैसी है। वरना इसे कर पाना संभव नहीं होगा। अपनी सीमाओं को बचाकर तुम इसे नहीं कर सकते। जब तक तुम सीमाएं बनाना बंद न कर दो, तब तक तुम न तो इसे कर पाओगे, न ही महसूस कर पाओगे।

'सभी दिशाओं में परिव्याप्त होता हुआ महसूस करो—सुदूर, समीप।'

कोई सीमाएं नहीं, अनंत हो रहे हो। अनंत आकाश के साथ एक हो रहे हो.......।

तुम्हारे मन के साथ तो यह असंभव होगा। तुम इसे कैसे अनुभव कर सकते हो। इसे कैसे कर सकते हो। पहले तुम्हें कुछ चीजें करना बंद करना पड़ेगा।

पहली बात यह है कि यदि तुम सुरक्षा के बारे में ज्यादा ही चिंतित हो तो बंधन में ही रहो। असल में, कारागृह सबसे सुरक्षित स्थान है। वहां तुम्हें नुकसान नहीं पहुंचा सकता। कैदियों से अधिक सुरक्षित, अधिक पहरे में और कोई नहीं रहता। तुम किसी कैदी को मार नहीं सकते। उसकी हत्या नहीं कर सकते। बहुत कठिन है। वह राजा से भी अधिक पहरे में है। तुम किसी राष्ट्रपति या राजा की हत्या कर सकते हो। यह कठिन नहीं है। रोज लोग उनकी हत्या करते रहते है। लेकिन तुम किसी कैदी को नहीं मार सकते। वह इना सुरक्षित है कि यदि किसी को इतनी ही सुरक्षा पानी हो तो उसे कारागृह में ही रहना पड़ेगा। बाहर नहीं। कारागृह से बाहर रहना खतरनाक है। मुसीबतों से भरा है। कुछ भी हो सकता है।

तो हमने अपने चारों और मानसिक कारागृह, मनोवैज्ञानिक कारागृह बना लिया है। और हम उन कारागृहों को अपने साथ ढोते है। तुम्हें उनमें रहने की जरूरत नहीं है। वे तुम्हारे साथ चलते है। जहां भी तुम जाते हो तुम्हारा कारागृह तुम्हारे साथ चलता है। तुम सदा एक दीवार के पीछे रहते हो। बस कभी-कभी किसी को छूने के लिए तुम अपना हाथ उससे बाहर निकालते हो। लेकिन बस एक हाथ तुम अपने कारागृह से कभी बाहर नहीं आते।

तो जब भी लोग आपस में मिलते है, वह केवल कारागृहों से निकले हुए हाथों का मिलन होता है। डरे-डरे हम खिड़कियों से हाथ बाहर निकलते है। और किसी भी क्षण हाथ वापस खींच लेने को तैयार रहते है। दोनों लोग एक ही काम कर रहे है। बस एक हाथ से छू रहे है।

और अब तो मनोवैज्ञानिक कहते है कि यह भी एक दिखावा ही है। क्योंकि हाथों के चारों और अपना एक कवच होता है। कोई भी हाथ दस्ताने के बिना नहीं है। सिर्फ क्वीन एलिज़ाबेथ ही दस्ताने नहीं पहनती, तुम भी दस्ताने पहनते हो ताकि तुम्हें छू न सके। और यदि कोई छूता भी है तो बस एक हाथ, मुर्दा हाथ। तुम पहले से ही पीछे हटे हुए हो। भयभीत होकर। क्योंकि दूसरा व्यक्ति भय पैदा करता है।

जैसा सार्त्र ने कहा है, 'दूसरा दुश्मन है।' यदि तुम इतने बंद हो तो दूसरा तुम्हें दुश्मन की तरह ही दिखाई देगा। बंद व्यक्ति से किसी तरह की मित्रता नहीं हो सकती। उससे मित्रता असंभव है। प्रेम असंभव है, किसी तरह का संवाद असंभव है।

तुम भयभीत हो। कोई तुम पर मालकियत कर सकता है। तुम पर हावी हो सकता है। तुम्हें गुलाम बना सकता है। इससे भयभीत होकर तुमने एक कारागृह, एक सुरक्षा कवच का निर्माण अपने चारों और कर लिया है। तुम संभलकर चलते हो, फूंक-फूंक कर कदम रखते हो। जीवन एक ऊब हो जाता है। यदि तुम बहुत ज्यादा ही सावधान हो तो जीवन एक अभियान नही हो सकता। यदि तुम अपने को बहुत ज्यादा ही बचा रहे हो, सुरक्षा के पीछे भीग रहे हो, तो तुम पहले ही मर चुके।

तो एक आधारभूत नियम याद रखो: जीवन असुरक्षा है। और यदि तुम असुरक्षा में जीने को राज़ी होत भी तुम जीवंत रह पाओगे। असुरक्षा स्वतंत्रता है। यदि तुम असुरक्षित होने को सतत असुरक्षित होने को तैयार हो तो तुम स्वतंत्र रहोगे। और स्वतंत्रता परमात्मा का द्वार है।

भयभीत, तुम एक कारागृह बना लेते हो, मुर्दा हो जाते हो। फिर तुम पुकारते हो। 'परमात्मा कहां है?' और फिर तुम पूछते हो, 'जीवन कहां है?' जीवन का अर्थ क्या है? आनंद कहां है? जीवन तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, लेकिन उसी की शर्तों के अनुसार तुम्हें उससे मिलना होगा। तुम अपनी शर्तें नहीं लगा सकते हो। जीवन की अपनी शर्तें है। और मूल शर्त है: असुरक्षित रहो। इसके बाबत कुछ नहीं किया जा सकता। तुम जो भी करोगे एक धोखा ही होगा।

अगर तुम प्रेम में पड़ते हो तो तुम्हें भय पकड़ लेता है। कि यह स्त्री तुम्हें छोड़ देगी या यह किसी पुरूष के पास चली जायेगी। भय तत्क्षण प्रवेश कर जाता है। जब तुम प्रेम में नहीं थे तो कभी भयभीत नहीं थे। अब तुम प्रेम में हो: जीवन का प्रवेश हुआ और उसके साथ ही असुरक्षा का भी। जो किसी से प्रेम नहीं करता उसे कोई भय नहीं होता है। पूरा संसार उसे छोड़ सकता है उसे कोई भय नहीं है। तुम उसे नुकसान नहीं पहुंचा सकते। वह सुरक्षित है। जिस क्षण तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो, असुरक्षा शुरू हो जाती है। क्योंकि जीवन प्रवेश कर गया। और जीवन के साथ-साथ मृत्यु प्रवेश कर गई। जिस क्षण तुम प्रेम में पड़ते हो तुम्हें भय पकड़ लेता है। यह व्यक्ति मर सकता है। छोड़कर जा सकता है, किसी और से प्रेम कर सकता है।

अब सब कुछ सुरक्षित करने के लिए तुम्हें कुछ करना पड़ेगा,तुम्हें विवाह करना पड़ेगा। फिर एक कानूनी बंधन बनाना पड़ेगा ताकि वह व्यक्ति तुम्हें छोड़ न सके। अब समाज तुम्हारी रक्षा करेगा। कानून तुम्हारी रक्षा करेगा। पुलिस जज, सब तुम्हारी रक्षा करेंगे। अब यदि वह व्यक्ति तुम्हें छोड़ना चाहे तो तुम उसे कोर्ट में घसीट सकते हो। और यदि वह तलाक लेना चाहे तो उसे तुम्हारे विरूद्ध कुछ सिद्ध करना पड़ेगा। तब भी इसमे तीन से पाँच साल तक लगेंगे। अब तुमने अपने चारों और एक सुरक्षा खड़ी कर ली।

लेकिन जिस क्षण तुमने विवाह किया तुम मर गए। संबंध जीवित नहीं रहा। अब वह संबंध नहीं रहा,एक कानून बन गया। अब यह कोई जीवंत चीज नहीं रही,कानूनी घटना हो गई। कोर्ट जीवन को नहीं बचा सकता। बस सौदों को बचा सकता है। कानून जीवन को नहीं बचा सकता, बस नियमों को ही बचा सकता है। अब विवाह एक मरी हुई चीज है। प्रेम अपरिभाष्य है।

विवाह के साथ तुम परिभाषाओं के जगत में आ गए। पर पूरी बात ही समाप्त हो गई। जिस क्षण तुमने सुरक्षित होना चाहा, जिस क्षण तुमने जीवन को बंद कर लेना चाहा ताकि इसमें कुछ भी नया न हो सके। तुम उसमें कैद हो गए। फिर तुम कष्ट भोगोगे। फिर तुम कहोगे कि यह पत्नी तुम्हारे लिए बंधन बन गई है। पति कहेगा कि पत्नी

ने उसे बाँध लिया है। फिर तुम लड़ोगे, क्योंकि दोनों एक दूसरे के लिए कारागृह बन गए हो। अब तुम लड़ते हो। अब प्रेम समाप्त हो गया है। बस एक कलह बची है। सुरक्षा के पीछे दौड़ने से यही होता है।

और ऐसा बस चीजों में हुआ है। इसे मूल नियम की तरह याद रखो; जीवन असुरक्षित है। यह जीवन का स्वभाव है। तो जब तुम प्रेम में पड़ो इस भय को भले ही झेल लो कि प्रेमिका तुम्हें छोड़कर जा सकती है। पर कभी सुरक्षा मत खड़ी करो। फिर प्रेम विकसित होगा। हो सकता है प्रेमिका मर जाए और तुम कुछ भी न कर पाओ। लेकिन उससे प्रेम नहीं मरेगा। प्रेम तो और बढ़ेगा।

सुरक्षा मार सकती है। असली में यदि आदमी अमर होता तो मैं कहता हूं कि प्रेम असंभव हो जाता। यदि आदमी अमर होता तो किसी को भी प्रेम करना असंभव हो जाता। प्रेम में पड़ना बहुत खतरनाक हो जाता। मृत्यु है तो जीवन ऐसे है जैसे किसी कंपते हुए पत्ते पर पड़ी ओस की बूंद। किसी भी क्षण हवा आयेगी और ओस की बूंद गिरकर खो जायेगी। जीवन बस एक स्पंदन है। उस स्पंदन के कारण, उस गति के कारण, मृत्यु सदा बनी रहती हे। इससे प्रेम को त्वरा मिलती है। प्रेम इसीलिए संभव है। क्योंकि मृत्यु के कारण ही प्रेम सघन हो पाता है।

सोचो, यदि तुम्हें पता हो तुम्हारी प्रेमिका अगले ही क्षण मरने वाली है तो सब चालाकियां, सब कलह समाप्त हो जाएगी। और यही एक क्षण शाश्वत हो जाएगा। ओर इतना प्रेम उमगेगा कि तुम्हारा पूरा अस्तित्व उसमें प्रवाहित हो जाएगा। लेकिन अगर तुम्हें पता हो कि अभी तुम्हारी प्रेमिका जीवित रहेगी तो फिर कोई जल्दी नहीं है। फिर अभी तुम झगड़ सकते हो। प्रेम को और आगे के लिए टाल सकते हो। यदि जीवन शाश्वत हो, शरीर अमर हो, तो तुम प्रेम नहीं कर सकते।

हिंदुओं की एक बड़ी सुंदर कथा है। वे कहते है कि स्वर्ग में जहां इंद्र राज्य करता है—इंद्र स्वर्ग का राजा है—वहां कोई प्रेम नहीं है। वहां सुंदर युवतियां है, पृथ्वी से अधिक सुंदर युवतियां है। वहां संभोग तो होता ह पर प्रेम नहीं होता,क्योंकि वे अमर हे।

हिंदुओं की कथा में कहा गया है कि मुख्य अप्सरा उर्वशी ने एक पुरूष से प्रेम करने के लिए एक दिन पृथ्वी पर जाने की अनुमति मांगी। इंद्र ने कहा, 'क्या मूर्खता है, तुम यहां प्रेम कर सकती हो। और इतने सुंदर लोग तुम्हें पृथ्वी पर नहीं मिलेंगे। वे भले ही सुंदर हो पर, अमर है। इसमें कोई मजा नहीं आता, उनका प्रेम एक मुर्दा प्रेम है। सच में वे सब मरे हुए है।'

वास्तव में वे मुर्दा ही है। क्योंकि उन्हें जीवंत बनाने के लिए प्रेम जगाने के लिए मृत्यु चाहिए। जो वहां पर नहीं है। वे सदा-सदा रहेंगे। वे कभी मर नहीं सकते। इसलिए वे जीवित भी कैसे हो सकते है? वह जीवंतता मृत्यु के विपरीत ही होती है। आदमी जीवित है, क्योंकि मृत्यु सतत संघर्ष कर रही है। मृत्यु की भूमिका में जीवन है।

तो उर्वशी ने कहां, मुझे पृथ्वी पर जाने की आज्ञा दो। मैं किसी को प्रेम करना चाहती हूं। उसे आज्ञा मिल गई। तो वह नीचे पृथ्वी पर आ गई और एक युवक पुरुरवा के प्रेम में पड़ गई। लेकिन इंद्र की और से एक शर्त थी। इंद्र ने शर्त रखी थी कि वह पृथ्वी पर जा सकती है, किसी से प्रेम कर सकती है, पर जो पुरूष उसे प्रेम करे उसे यह पहले ही पता देना होगा कि वह उस से यह कभी न पूछे कि वह कौन है।

प्रेम के लिए यह कठिन है, क्योंकि प्रेम जानना चाहता है। प्रेम प्रेमी के विषय में सब कुछ जानना चाहता है। हर अज्ञात चीज को ज्ञात करना चाहता है। हर रहस्य में प्रवेश करना चाहता है। तो इंद्र ने बड़ी चालाकी से यह शर्त रखी, जिसकी चालबाजी को उर्वशी नहीं समझ पाई। वह बोली, 'ठीक है, मैं अपने प्रेमी को कह दूंगी कि वह मेरे बारे में कभी कुछ न जानना चाहे। कभी यह न पूछे कि मैं कौन हूं। और यदि वह पूछता है तो तत्क्षण उसे छोड़कर मैं वापस आ जाऊंगी।' और उसे पुरुरवा से कहा, 'कभी मुझ से यह मत पूछना कि मैं कौन हूं। जि क्षण तुम पूछोगे, मुझे पृथ्वी को छोड़ना पड़ेगा।'

लेकिन प्रेम तो जानना चाहता है। और इस बात के कारण पुरुरवा और भी उत्सुक हो गया होगा कि वह कौन हे। वह सो नहीं भी सका। वह उर्वशी की और देखता रहा। वह है कौन? इतनी सुंदर स्त्री, किसी स्वप्निल पदार्थ की बनी लगती है। पार्थिव, भौतिक नहीं लगती। शायद वह कहीं और से, किसी अज्ञात आयाम से आई है। वह और-और उत्सुक होता गया। लेकिन सह और भयभीत भी होता गया। कि वह जा सकती है। वह इना भयभीत हो गया कि जब रात वह सोती,उसकी साड़ी का पल्लू वह अपने हाथ में ले लेता। क्योंकि उसे अपने पर भी भरोसा नहीं था। कभी भी वह पूछ सकता था, प्रश्न सदा उसके मन में रहता था। अपनी नींद में भी वह पूछ सकता था। और उर्वशी ने कहा था कि नींद में भी उसके बाबत नहीं पूछना है। तो वह उसकी साड़ी का कोना अपने हाथ में लेकर सोता।

लेकिन एक रात वह अपने को वश में नहीं रख पाया और उसने सोचा कि अब वह उससे इतना प्रेम करती है कि छोड़कर नहीं जाएगी। तो उसने पूछ लिया। उर्वशी को अदृश्य होना पड़ा, बस उसकी साड़ी का एक टुकड़ा पुरुरवा के हाथ में रह गया। और कहा जाता है कि वह अभी भी उसे खोज रहा है।

स्वर्ग में प्रेम नहीं हो सकता। क्योंकि असल में वहां कोई जीवन ही नहीं है। जीवन यहां इस पृथ्वी पर है, जहां मृत्यु है। जब भी तुम कुछ सुरक्षित कर लेते हो,जीवन खो जाता है। असुरक्षित रहो। यह जीवन का ही गुण है। इसके बारे में कुछ किया नहीं जा सकता। और यह सुंदर है।

जरा सोचो, यदि तुम्हारा शरीर अमर होता तो कितना कुरूप होता। तुम आत्मघात करने के उपाय खोजते फिरते। और यदि यह असंभव है, कानून के विरूद्ध है,तो तुम्हें इतना कष्ट होगा कि कल्पना भी नहीं कर सकते। अमरत्व एक बहुत लंबी बात है। अब पश्चिम में लोग स्वेच्छा मरण की बात सोच रहे है। क्योंकि लोग अब लंबे समय तक जी रहे है1 तो जो व्यक्ति सौ वर्ष तक पहुंच जाता है वह स्वयं को मारने का अधिकार चाहता है।

और वास्तव में,यह अधिकार देना ही पड़ेगा। जब जीवन बहुत छोटा था तो हमने आत्महत्या न करने का कानून बनाया था। बुद्ध के समय में चालीस या पचास साल का हो जाना बहुत था। औसत आयु कोई बीस साल के करीब थी। भारत में अभी बीस साल पहले तक औसत आयु तेईस साल थी। अब स्वीडन में औसत आयु तिरासी साल है। तो लोग बड़ी आसानी से डेढ़ सौ साल तक जी सकते है। रूप में कोई पंद्रह सौ लोग है जो डेढ़ सौ तक पहुंच गए है। अब यदि वे कहते है कि उन्हें स्वयं को मारने का अधिकार है। क्योंकि अब बहुत हो चुका, तो हमें यह अधिकार उन्हें देना होगा। इससे उन्हें वंचित नहीं किया जा सकता।

देर-अबेर आत्महत्या हमारा जन्मसिद्ध अधिकार होगा। अगर कोई मरना चाहता है तो तुम उसे मना नहीं कर सकते–किसी भी कारण से नहीं। क्योंकि अब जीवन का कोई अर्थ नहीं रह गया। पहले ही बहुत हो चुका। सौ साल

के व्यक्ति को जीने जैसा नहीं लगता। ऐसा नहीं है कि यह परेशान हो गया है। कि उसके पास भोजन नहीं है। सब कुछ है, पर जीवन का कोई अर्थ नहीं रह गया।

तो अमरत्व की सोचो, जीवन बिलकुल अर्थहीन हो जाएगा। अर्थ मृत्यु के कारण होता है। प्रेम का अर्थ हे, क्योंकि प्रेम खोया जा सकता है। तब प्रेम धड़कता है, स्पंदित होता है। प्रेम खो सकता हे। तुम उसके बारे में निश्चित नहीं हो सकते। तुम उसे कल पर नहीं टाल सकते। क्योंकि हो सकता है कल प्रेम रहे ही न। तुम्हें प्रेमी या प्रेमी का को इस तरह से प्रेम करना होगा कि हो सकता है कल आए ही न। फिर प्रेम सधन होता हे।

तो पहली बात, सुरक्षित जीवन पैदा करने के अपने सारे प्रयास हटा लो। बस यह प्रयास हटाने से ही तुम्हारे आस-पास की दीवारें गिरने लगेंगी। पहली बार तुम्हें लगेगा कि वर्षा तुम पर सीधी पड़ रही है। हवाएँ सीधी तुम तक बह रही है। सूर्य सीधा तुम तक पहुंच रहा है। तुम खुले आकाश के नीचे आ जाओगे। सुंदर है यह। लेकिन तुम्हें अगर यह विचित्र लगता है तो इसलिए क्योंकि तुम कारागृह में रहने के आदी हो गए हो। रहा है। तुम्हें इस नई स्वतंत्रता से परिचित होना पड़ेगा। यह स्वतंत्रता तुम्हें अधिक जीवंत,अधिक तरल, अधिक खुला अधिक समृद्ध, अधिक जीवित बनाएगी। लेकिन तुम्हारी जीवंतता तुम्हारे जीवन का शिखर जितना ऊँचा होगा। उतनी ही गहन मृत्यु तुम्हारे निकट होगी। एक दम करीब होगी। तुम केवल मृत्यु के,मृत्यु की घाटी के विरूद्ध ही उठ सकते हो। जीवन का शिखर और मृत्यु की घाटी सदा पास-पास होते है। और एक ही अनुपात में होते है।

इसलिए में कहता हूं कि नीत्शे के सूत्र का पालन करना चाहिए। यह बड़ा आध्यात्मिक सूत्र है। नीत्शे कहता है, 'खतरे में जीओं।' ऐसा नहीं कि खतरा तुम्हें खोजना है। खतरे को अनी और से खोजने की कोई जरूरत नहीं है। बस सुरक्षा मत खड़ी करो। अपने चारों और दीवारें मत खीचों स्वाभाविक रूप से जीओं और यही बहुत खतरनाक होगा। खतरे को खोजने की जरूरत नहीं है।

फिर तुम यह विधि कर सकते हो, 'स्वयं को सभी दिशाओं में परिव्याप्त होता हुआ महसूस करो—सुदूर,समीप।'

फिर यह बहुत आसान है। यदि दीवारें न हों तो तुम स्वयं को सब और व्याप्त होता हुआ अनुभव करने ही लगोगे। फिर तुम कहां समाप्त होते हो। इसकी कोई सीमा नहीं होगी। तुम बस ह्रदय से शुरू होते हो। और कहीं भी समाप्त नहीं होते। बस तुम्हारे पास एक केंद्र है और कोई परिधि नहीं है। परिधि बढ़ती चली जाती है—आगे और आगे। पूरा आकाश उसमे समा जाता है1 सितारे उसमें घूमते है। पृथ्वीयां उसी में बनती है और मिटती है। ग्रह उगते है। और अस्त होते है। पूरा ब्रह्मांड तुम्हारी परिधि बन जाता है।

इस विस्तार में तुम्हारा अहंकार कहां होगा? इस विस्तार में तुम्हारे कष्ट कहां होंगे। इस विस्तार में तुम्हारा चालाक मन कहां होगा। इतनी विस्तार में मन नहीं बच सकता, विलीन हो जाता है। बस एक संकीर्ण स्थान पर ही मन बच सकता है। मन तो केवल तभी चल सकता है जब दीवारों में बंद हो। कैद हो। यह बंद होना ही समस्या है। खतरे में जीओं और असुरक्षा में जीवन के लिए तैयार रहो। और मजा यह है। कि अगर तुम असुरक्षा मे न भी रहना चाहो तो भी असुरक्षित ही हो। तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो।

मैंने एक राजा के बारे में सुना था। वह अधिक डरपोक था, सभी राजा डरपोक होते है। क्योंकि उन्होंने इतने लोगों को शोषण किया होता है। उन्होंने इतने लोगों को दबाया कुचला हाता है। इतने लोगों पर उन्होंने राजनीतिज्ञ खेल खेले है। उनके कई शत्रु बन जाते है। असली राजा का कोई मित्र नहीं होता हे। हो ही नहीं सकता। क्योंकि घनिष्ठत्म मित्र भी उसका शत्रु होता है। बस अवसर की तलाश होती है। कब उसे मार कर उसकी जगह बैठा जाये1 सता में जो व्यक्ति होता है उसका कोई मित्र नहीं हो सकता। किसी हिटलर, किसी स्टैलिन, किसी निकसन, किसी चंगेज खां, किसी नादिर शाह.....का कोई मित्र नहीं था। उसके बस शत्रु होते है कि कब मौका मिलते ही उसको धक्का देकर वे स्वयं सिंहासन पर बैठ सकें। जब भी उन्हें मिलें वह कुछ भी कर सकते है। एक ही क्षण पहले वे मित्र थे,लेकिन उनकी मित्रता एक छलावा है। उनकी मित्रता एक दांव-पेंच है। सत्ता में जो है उसका कोई मित्र नहीं हो सकता।

इसीलिए लाओत्से कहता है: 'यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे मित्र हों तो सत्ता में मत आओ। फिर सारा संसार तुम्हारा मित्र है। यदि तुम सत्ता में हो तो बस तुम ही अकेले मित्र हो। बाकी सब शत्रु है।'

तो वह राजा बहुत डरा हुआ था। उसे मृत्यु का बड़ा भय था। चारों और मृत्यु ही मृत्यु थी। उसे यही भय लगा रहता था कि उसके आस पास सभी उसे मारना चाहते है। वह सो भी नहीं सकता था। उसने अपने सलाहकारों से पूछा कि क्या करना चाहिए। उन्होंने कहा कि वह एक ऐसा महल बनवाए जिसमे केवल एक ही द्वार हो। द्वार पर सैनिकों की सात टुकड़ियों खड़ी की जाएं। पहली टुकड़ी महल पर नजर रखे, दुसरी टुकड़ी पहली पर। तीसरी दूसरी पर एक ही द्वार होने से कोई और नहीं भीतर आ सकता। और आप सुरक्षित रहेंगे।

राजा ने एक ही द्वार वाला महल बनवाया और उस पर सैनिकों की सात टुकड़ियां तैनात करवा दी जो एक दूसरे पर नजर रखती थी। यह खबर चारों और फैल गई पड़ोसी राज्य का राज उसे देखने आया। वह भी भयभीत था। उसे खबर मिली थी कि पड़ोसी राजा ने ऐसा सुरक्षित महल बनवाया है। जहां उसे मार पाना असंभव है। तो वह देखने आया और दोनों ने मिलकर इस एक ही द्वार वाले महल और सुरक्षा व्यवस्था की बड़ी प्रशंसा की—कोई खतरा नहीं हे।

जब वे द्वार की और देख रहे थे तो सड़क के किनारे बैठा एक भिखारी हंसने लगा। तो राजा ने उससे पूछा:'तुम हंस क्यों रहा है?' भिखारी ने उत्तर दिया, 'मैं इसलिए हंस रहा हूं कि तुमसे एक गलती हो गई हे। तुम्हें अंदर जाकर एक द्वार को भी बंद कर लेना चाहिए। यह द्वारा खतरनाक है। कोई इससे भीतर धूस सकता है। द्वार का अर्थ ही है कि कोई भीतर आ सकता है। यदि और कोई न भी आए तो कम से कम मृत्यु तो आएगी ही। तो तुम एक काम करो: अंदर चले जाओ और इस द्वार को भी बंद कर लो। तब तुम सच में सुरक्षित हो जाओगे। क्योंकि मृत्यु भी नहीं घुस सकेगी।'

लेकिन राजा ने कहा, 'अगर मैं यह द्वार भी बंद कर लूं तो मैं वैसे ही मर जाऊँगा।' उस भिखारी ने कहा, निन्यानवे प्रतिशत तो तुम मर ही चूके हो। तुम उतने ही जीवित हो जितना यह द्वार। बस इतना ही खतरा है, इतने ही तुम जीवित हो। यह जीवंतता भी छोड़ दो।

सभी अपनी-अपनी तरह से अपने आस-पास महल बना रहे है। ताकि भीतर कोई न आ सके। और वे शांति से रह सकें। लेकिन फिर तुम पहल ही मर गए। और शांति बस उन्हें ही घटती है जो जीवित है। शांति कोई मुर्दा चीज नहीं है। जीवंत रहो। खतरे में जीओं। एक संवेदनशील, मुक्त जीवन जीओं। ताकि तुम्हें सब कुछ स्पर्श कर सके। और अपने साथ सब कुछ होने दो। जितना तुम्हारे साथ कुछ घटेगा। उतने ही तुम समृद्ध होओगे।

फिर तुम इस विधि का अभ्यास कर सकते हो। फिर यह विधि बड़ी सरल है। तुम्हें इसका अभ्यास करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। बस भाव करो, और तुम पूरे आकाश में परिव्याप्त हो जाओगे।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 100

'वस्तुओं और विषयों का गुणधर्म ज्ञानी वे अज्ञानी के लिए समान ही होता है। ज्ञानी की महानता यह है कि वह आत्मगत भाव में बना रहता है। वस्तुओं में नहीं खोता।'

यह बड़ी प्यारी विधि है। तुम इसे वैसे ही शुरू कर सकते हो जैसे तुम हो; पहले कोई शर्त पूरी नहीं करनी है। बहुत सरल विधि है: तुम व्यक्तियों से, वस्तुओं से, घटनाओं से घिरे हो—हर क्षण तुम्हारे चारों और कुछ न कुछ है। वस्तुएं है, घटनाएं है, व्यक्ति है—लेकिन क्योंकि तुम सचेत नही हो, इसलिए तुम भर नहीं हो। सब कुछ मौजूद है लेकिन तुम गहरी नींद में सोए हो। वस्तुएं तुम्हारे चारों तरफ मौजूद है, लोग तुम्हारे चारों तरफ घूम रहे है। घटनाएं तुम्हारे चारों तरफ घट रही है। लेकिन तुम वहां नहीं हो। या, तुम सोए हुए हो।

तो तुम्हारे आस-पास जो कुछ भी होता है वहीं मालिक बन जाता है, तुम्हारे ऊपर हावी हो जाती है। तुम उसके द्वारा खींच लिए जाते हो। तुम केवल उससे प्रभावित ही नहीं होते। संस्कारित भी हो जाते हो। खींच लिए जाते हो। कुछ भी चीज तुम्हें पकड़ ले सकती है। और तुम उसके पीछे चलने लगोंगे। कोई पास से गुजरा, तुमने देखा चेहरा सुंदर है—और तुम प्रभावित हो गए। कोई सुंदर पोशाक देखो, उसका रंग, उसका कपड़ा सुंदर है—तुम प्रभावित हो गए। कोई कार गुजरी—तुम प्रभावित हो गए। तुम्हारे आस-पास जो कुछ भी चलता है। तुम्हें पकड़ लेता है। तुम बलशाली नहीं हो। बाकी सब कुछ तुमसे ज्यादा बलशाली है। कुछ भी तुम्हें बदल देता है। तुम्हारी भाव-दशा, तुम्हारा चित, तुम्हारा मन, सब दूसरी चीजों पर निर्भर है। विषय तुम्हें प्रभावित कर देते है।

यह सूत्र कहता है कि ज्ञानी और आज्ञानी एक ही जगत में जीते है। एक बुद्ध पुरूष और तुम एक ही जगत में जीते हो—जगत वही रहता है। अंतर जगत में नहीं पड़ता,अंतर बुद्ध पुरूष के भीतर घटित हाता है: वह अलग ढंग से जीता है। वह उन्हीं वस्तुओं के बीच जीती है। लेकिन अलग ढंग से। वह अपना मालिक है। उसकी आत्मा असंग और अस्पर्शित बनी रहती है। वही राज है। उसको कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकता है। बाहर से कुछ भी उसको संस्कारित नहीं कर सकता; कुछ भी उस पर हावी नहीं हो सकता। वह निर्लिप्त बना रहता है। स्वयं बना रहता है। यदि वह कहीं जाना चाहेगा। लेकिन मालिक बना रहेगा। यदि वह किसी छाया के पीछे जाना चाहेगा तो जाएगा, लेकिन यह उसका अपना निर्णय होगा।

इस भेद को समझ लेना जरूरी है। निर्लिप्त से मरा अर्थ उस व्यक्ति से नहीं है जिसने संसार का त्याग कर दिया—फिर तो निर्लिप्त होने में कोई सार न रहा, कोई अर्थ न रहा। **निर्लिप्त वह व्यक्ति है जो उसी जगत में जी रहा है जिसमें कि तुम—जगत में कोई भेद नहीं है।** जो व्यक्ति संसार का त्याग करता है। वह केवल परिस्थिति को बदल रहा है, स्वयं को नहीं। **और यदि तुम स्वयं को नहीं बदल सकते तो परिस्थिति को बदलने पर ही जोर दोगे। यह कमजोर व्यक्तित्व का लक्षण है।**

एक शक्तिशाली व्यक्ति है, जो सतर्क और सचेत है। स्वयं को बदलना शुरू करेगा। उस परिस्थिति को नहीं जिसमें वह है। क्योंकि वास्तव में परिस्थिति को तो बदला ही नहीं जा सकता; अगर तुम एक परिस्थिति को बदल दो तो फिर दूसरी परिस्थितियां होगीं। हर क्षण परिस्थिति बदलती रहती है। तो हर क्षण समस्या तो बनी ही रहने वाली है। धार्मिक और अधार्मिक दृष्टिकोण के बीच यही अंतर है। अधार्मिक दृष्टिकोण है परिस्थिति को , परिवेश को बदलने का। वह दृष्टिकोण तुममें भरोसा नहीं करता, परिस्थितियों में भरोसा करता हे। जब परिस्थिति ठीक हो जाती है। तुम परिस्थिति पर निर्भर हो: अगर परिस्थिति ठीक न हुई तो तुम स्वतंत्र इकाई नहीं हो। कम्युनिस्टों, मार्क्स वादियों, समाज वादियों, और उन सबके लिए जो परिस्थितियों के बदलने में भरोसा करते है। तुम महत्वपूर्ण नहीं हो। असल में तुम्हारा अस्तित्व ही नहीं है। केवल परिस्थिति है और तुम बस एक दर्पण हो, लेकिन यह तुम्हारी नियति नहीं है—**तुम कुछ और हो सकते हो, वह हो सकते हो जो किसी पर निर्भर नहीं है।**

विकास के तीन चरण है।

पहला: परिस्थिति मालिक है और तुम बस पीछे-पीछे घिसटते हो। तुम मानते हो कि तुम हो, लेकिन तुम हो नहीं।
दूसरा: तुम होते हो, और परिस्थिति तुम्हें घसीट नहीं सकती, परिस्थिति तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकती। क्योंकि तुम एक संकल्प बन गए हो। तुम केंद्रित और क्रिस्टलाइजेशन हो गए हो।

तीसरा: तुम परिस्थिति को प्रभावित करने लगते हो—तुम्हारे होने मात्र से ही परिस्थिति बदलने लगती है।

पहली अवस्था अज्ञानी की है; दूसरी अवस्था उस व्यक्ति कि है जो सतत सजग है। लेकिन अभी है अज्ञानी ही—उसे सजग रहना पड़ता है। सजग रहने के लिए कुछ करना पड़ता है। उसका जागरण अभी स्वाभाविक नहीं हुआ है।

इसलिए उसे संघर्ष करना पड़ता है। यदि वह एक क्षण के लिए भी होश या जागरण खोता है तो वह वस्तु के प्रभाव में आ जाएगा। तो उसे सतत होश रखना पड़ता है। वह साधक है, जो साधना कर रहा है।

शक्ति स्मरण रखने जैसी चीज है। तुम कमजोर हो इसीलिए कोई भी चीज तुम पर हावी हो सकती हे। और शक्ति आती है सजगता से, होश से। जितने ज्यादा सजग, उतने ही शक्तिशाली; जितने कम सजग उतने कम शक्तिशाली। देखो: जब तुम सोए होते हो तो एक सपना भी शक्तिशाली हो जाता है। क्योंकि तुम गहरी नींद में खोए हो, तुमने सारा होश खो दिया है। एक सपना भी शक्तिशाली हो गया। और तुम इतने कमजोर हो कि तुम उस पर संदेह नहीं कर सकते।

बेतुके से बेतुके स्वप्न में भी तुम संदेह नहीं कर सकते, तुम्हें उसे मानना ही होगा। और जब तक वह चलता है, तब तक वास्तविक लगता है। सपने में भले ही तुम बेतुकी चीजें देखो, लेकिन सपना देखते समय तुम उस पर संदेह नहीं कर सकते। तुम ऐसा नहीं कह सकते कि यह वास्तविक नहीं है; तुम ऐसा नहीं कह सकते कि बस एक सपना है, कि यह असंभव है। तुम ऐसा कह ही नहीं सकते हो, क्योंकि तुम गहरी नींद में हो।

जब होश नहीं होता तो एक सपना भी तुम्हें कितना प्रभावित करता हे। जाग कर तुम हंसोगे और कहोगे, 'वह सपना बेतुका था, असंभव था, ऐसा हो ही नहीं सकता। वह केवल भ्रम था।' लेकिन जब वह चल रहा था तो यह बात तुम्हारे ख्याल में नहीं आई थी और तुम उसमें उलझे ही रहे। उससे प्रभावित हो गये। उसमें खो गये। सपना इतना शक्ति शाली क्यों था? सपना शक्तिशाली नहीं था, तुम शक्तिहीन थे।

इसे स्मरण रखो: जब तुम शक्तिहीन होते हो तो एक सपना भी शक्तिशाली हो जाता है। जब तुम जागे होते हो तो कोई सपना तुम पर प्रभावी नहीं हो सकता, लेकिन यथार्थ, तथाकथित यथार्थ प्रभावी हो जाता है। जागा हुआ व्यक्ति बुद्‌ध पुरूष इतना सजग होता है कि तुम्हारा यथार्थ भी उसे प्रभावित नहीं कर सकता। यदि कोई स्त्री कोई सुंदर सत्री पास से गुजर जाए तो तुम्हारा मन उसके पीछे हो लेता है। एक कामना उठ गई, उसे पाने की कामना। तुम अगर सजग हो तो स्त्री गुजर जाएगी लेकिन कोई कामना नहीं उठेगी। तुम प्रभावित नहीं हुए, तुम प्रभावित नहीं होओगे। तो तुम प्राणों में एक सूक्ष्म आनंद का अनुभव करोगे। पहली बार तुम्हें लगेगा कि तुम हो; कुछ भी तुम्हें तुमसे बाहर नहीं घसीट सकता। तुम यदि पीछे जाना चाहो तो वह दूसरी बात है, वह तुम्हारा निर्णय है।

लेकिन स्वयं को धोखा मत दो। तुम धोखा दे सकते हो। तुम कह सकते हो, 'हां, स्त्री शक्तिशाली नहीं है। लेकिन मैं उसके पीछे जाना चाहता हूं। मैं उसे पाना चाहता हूं, तुम धोखा दे सकते हो। बहुत से लोग धोखा दिए चले जाते हो। लेकिन तुम किसी और को नहीं स्वयं को ही धोखा दे रहे हो। फिर यह व्यर्थ है। जरा गौर से देखा: तुम कामना को वहां पाओगे। कामना पहले आती है। फिर तुम उसी व्याख्या करते हो।'

ज्ञानी व्यक्ति के लिए चीजें भी है और वह भी है। लेकिन उसके और चीजों के बीच कोई सेतु नहीं है। सेतु टूट गया है। वह अकेला चलता है। अकेला जीता है। वह अपना ही अनुसरण करता है। कुछ और उसे आविष्ट नहीं कर सकता। इस अनुभव के कारण ही हमने इस उपलब्धि को मोक्ष कहा है। मुक्ति कहा है। वह परम मुक्त है।

संसार में हर जगह मनुष्य ने मुक्ति की खोज की है। तुम ऐसा एक भी मनुष्य नहीं खोज सकते जो अपने ढंग से मुक्ति न खोज रहा हो। अगल-अलग रास्तों से मनुष्य सह अवस्था खोजने की कोशिश करता है। जहां वह मुक्त हो सके। और ऐसी किसी भी चीज को वह घृणा करता है जो उसे बंधन में बांधे। कोई भी चीज जो उसे रोकती है, बाँधती है, उससे वह लड़ता है। उससे संघर्ष करता है।

इसीलिए तो इतने राजनीतिज्ञ संघर्ष है, इतने युद्ध है, इतनी क्रांतियां है। इसीलिए तो इतने पारिवारिक संघर्ष है–पति और पत्नी, बाप और बेटा,सभी एक दूसरे से लड़ रहे हे। लड़ाई बुनियादी है। लड़ाई है मुक्ति के लिए। पति बंधन अनुभव करता है। पत्नी ने उसे बाँध लिया है–अब उसकी स्वतंत्रता कट गई। और पत्नी को भी ऐसा ही लगता है। दोनों एक दूसरे से खिन्न है। दानों बंधन को तोड़ने की कोशिश करते है। बाप बेटे से लड़ता है। क्योंकि बेटे के विकास के हर कदम का अर्थ है उसके लिए और स्वतंत्रता। और बाप को लगता है कि वह कुछ खो रहा है। अपनी शक्ति, अपना अधिकार। तो परिवारों में, देशों में, सभ्यताओं में मनुष्य केवल एक ही चीज के पीछे भाग रहा है–मुक्ति।

लेकिन राजनीतिक लड़ाइयों से, क्रांतियों से, युद्धों से कुछ भी नहीं मिलता, कुछ भी हाथ नहीं आता। क्योंकि अगर तुम स्वतंत्रता पा भी लो, तो वह ऊपर-ऊपर है–भीतर गहरे में तुम बंधन में ही रहते हो। तो हर स्वतंत्रता एक मोह भंग सिद्ध होती हे।

मनुष्य धन की इतनी कामना करता है, लेकिन जहां तक मैं समझता हूं, यह धन की कामना नहीं है। मुक्ति की कामना है। धन तुम्हें स्वतंत्रता का एक भाव देता है। अगर तुम गरीब हो तो तुम सीमित हो, तुम्हारे साधन सीमित हो। तुम यह नहीं कर सकते, वह नहीं कर सकते। वह सब करने के लिए तुम्हारे पास धन ही नहीं है। जितना धन तुम्हारे पास हो उतना ही तुम्हें लगता है कि तुम्हारे पास स्वतंत्रता हे। तुम जो करना चाहो कर सकते हो।

लेकिन जब धन खूब तुम्हारे पास इकट्ठा हो जाता हे और तुम वह सब कर सकते हो जो तुम करना चाहते थे,जिसकी कल्पना करते थे। या जिसका सपना लेते थे–तो अचानक तुम पाते हो कि यह स्वतंत्रता ऊपर-ऊपर है। क्योंकि भीतर से तुम्हारे प्राण अच्छी तरह जानते है कि तुम शक्तिहीन हो और कुछ भी तुम्हें प्रभावित कर सकता है। तुम वस्तुओं और व्यक्तियों द्वारा प्रभावित हो जाते हो, सम्मोहित हो जाते हो।

यह सूत्र कहता है कि तुम्हें चेतना की ऐसी अवस्था पर आना है जहां कुछ भी तुम्हें प्रभावित न करे। तुम निर्लिप्त बने रह सको। यह कैसे हो? दिन भर इसके लिए अवसर है। इसीलिए मैं कहता हूं कि यह विधि तुम्हारे लिए अच्छी है। किसी भी क्षण तुम सजग हो सकते हो। कुछ तुम्हें आविष्ट कर रहा है। तब एक गहरी श्वास लो, गहरी श्वास भीतर खींचो, गहरी श्वास बाहर छोड़ो, और उस चीज को फिर से देखो। जब तुम श्वास को बाहर छोड़ रहे हो तो उस चीज को फिर से देखो, लेकिन देखो एक साक्षी की तरह। एक द्रष्टा की तरह।

यदि तुम एक क्षण के लिए भी मन की साक्षी-दशा को पा सको तो अचानक तुम पाओगे कि तुम अकेले हो, कुछ भी तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकता। कम से कम उस क्षण में तो कुछ भी तुममें कामना पैदा नहीं कर सकता। जब भी तुम्हें लगे कि कोई चीज तुम्हें प्रभावित कर रही है। तुम पर हावी हो रही है। तुम्हें तुमसे दूर ले जा रही है। तुमसे ज्यादा महत्वपूर्ण हो रही है--तो गहरी श्वास लो और छोड़ा। और श्वास बाहर छोड़ने से पैदा हुए उस छोटे से अंतराल में उस चीज की और देखो--कोई सुंदर चेहरा, कोई सुंदर शरीर,कोई सुंदर मकान या कुछ भी। यदि तुम्हें यह कठिन लगे, अगर श्वास बाहर छोड़ने भर से ही तुम अंतराल पैदा न कर पाओ। तो एक कदम और करो। श्वास बाहर छोड़ो। और एक क्षण का भीतर लेना रोक लो। ताकि पूरी वायु बाहर निकल जाए। रूक जाए। श्वास भीतर मत लो। फिर उस चीज की और देखो। जब पूरी वायु बाहर है। या भीतर है। जब तुमने श्वास लेना बंद कर दिया है तो कुछ भी तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकता। उस क्षण में तुम सेतु हीन हो जाते हो। सेतु टूट जाता है। श्वास ही सेतु है।

इसे करके देखो। केवल एक क्षण के लिए ऐसा होगा कि तुम साक्षी को महसूस करोगे। लेकिन उससे तुम्हें स्वाद मिल जाएगा। उससे तुम्हें यह अनुभव हो जाएगा कि साक्षित्व क्या है। फिर तुम उसकी खोज में बढ़ सकते हो। दिन भर में जब भी कभी कोई चीज तुम्हें प्रभावित करती है और कोई कामना उठती है, श्वास बाहर छोड़ो, उस अंतराल में रुको, और फिर उस चीज की और देखो। चीज की और देखो। चीज वहीं होगी, तुम वहां होओगे, लेकिन बीच में कोई सेतु नहीं होगा। श्वास ही सेतु है। अचानक तुम्हें लगेगा कि तुम शक्तिशाली हो, प्राणवान हो। और जितने शक्तिशाली तुम अनुभव करोगे उतने ही तुम केंद्रित होओगे। जितनी चीजें गिरती जाएंगी, जितनी चीजों की शक्ति तुम पर से हटती जाएगी, उतने ही अधिक केंद्रित तुम होते जाओगे। अब तुम्हारा व्यक्तित्व शुरू हुआ। अब तुम्हारे पास एक केंद्र है और किसी भी क्षण तुम केंद्र पर सरक सकते हो। और वहां संसार मिट जाता है। किसी भी क्षण तुम अपने केंद्र में स्थिर हो सकते हो। और तब संसार शक्तिहीन हो जाता है।

यह सूत्र कहता है, 'वस्तुओं और विषयों का गुणधर्म ज्ञानी और अज्ञानी के लिए समान ही होता है। ज्ञानी की महानता यह है कि वह आत्मगत भाव में बना रहता है। वस्तुओं में नहीं खोता।'

यह आत्मगत भाव में बना रहता है। वह स्वयं में बना रहता है। वह चेतना में केंद्रित रहता है। इस आत्मगत भाव में बने रहने को साधना पड़ेगा। जितने भी अवसर तुम्हें मिले सकें, इसे करके देखो। और हर क्षण अवसर है। एक-एक क्षण अवसर है। कुछ न कुछ तुम्हें प्रभावित कर रहा है। बुला रहा है। बाहर खींच रहा है। भीतर धकेल रहा है।

मुझे एक पुरानी कहानी याद आती है। एक महान राजा, भर्तृहरि ने संसार का त्याग कर दिया। उसने संसार का त्याग कर दिया। क्योंकि उसने पूरी तरह उसे जीया था और पाया था कि वह व्यर्थ है। यह उसके लिए कोई सिद्धांत नहीं था। यह उसकी जीया हुआ सत्य था। अपने स्वयं के जीवन से वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा था। वह शक्तिशाली आदमी था। जीवन में जितना हो सकता था गहरे गया था। फिर अचानक उसने पाया कि यह व्यर्थ है, बेकार है। तो उसने संसार को त्याग दिया। सब त्याग दिया और जंगल में चला गया।

एक दिन वह एक वृक्ष के नीचे बैठा ध्यान कर रहा था। सूर्य उग रहा था। अचानक उसने देखा कि वृक्ष के पास से जो छोटी सी पगडंडी गुजरती थी उस पर एक बहुत बड़ा हीरा पडा है। उगते हुए सूरज की किरणें उससे टकरा कर वापस लौट रही थी। भर्तृहरि ने भी ऐसा हीरा पहले नहीं देखा था। अचानक, बेहोशी के एक क्षण में, उसे उठा लेने

की एक कामना मन में जगी। शरीर तो अचल बना रहा। लेकिन मन चल पडा। शरीर ध्यान की मुद्रा में,सिद्धासन में था। लेकिन ध्यान अब वहां नहीं था। केवल मृत शरीर ही वहां था। मन जा चुका था—वह हीरे की और चला गया था।

लेकिन इससे पहले कि राजा हिल भी पाता, दो आदमी आने-अपने घोड़ों पर सवार अलग-अलग दिशाओं से आए और एक साथ ही दोनों की नजर राह पर पड़े हीरे पर पड़ी। दोनों ने हीरे को पहले देखने का दावा करते हुए तलवार निकाल ली। निर्णय का और तो कोई उपाय नहीं था। वे दोनों जूझ पड़े और एक दूसरे को समाप्त कर डाला। कुछ ही क्षणों में हीरे के निकट ही दो लाशें पड़ी थी। भर्तृहरि हंसा, अपनी आंखें बद कर ली। और फिर ध्यान में डूब गया।

क्या हुआ? उसे फिर से व्यर्थता का बोध हुआ। और उन दो आदमियों को क्या हुआ। हीरा उनके जीवन से भी ज्यादा मूल्यवान हो गया। मालकियत का यह अर्थ है: एक पत्थर को पाने के लिए उन्होंने अपनी जान गंवा दी। जब कामना होती है तो तुम नहीं होते। कामना तुम्हें आत्मघात तक ले जा सकती है। असल में हर कामना तुम्हें आत्मघात की और ले जा रही है। जब तुम किसी कामना के वश में होते हो तो अपनी सुध-बुध खो देते हो। पागल हो जाते हो।

मालकियत की कामना भर्तृहरि के मन में भी उठी, एक क्षणांग के लिए कामना उठी। और वह उसे लेने के लिए उठ भी गया होता। लेकिन इससे पहले कि वह हिलता भी, दो दूसरे व्यक्ति वहां आए, आपस में लड़े और अगले ही क्षण सड़क पर दो लाशें उस पत्थर के पास पड़ी थी। जो अपनी जगह पर वैसा का वैसा पडा था। भर्तृहरि हंसा, और उसने अपने आंखें बंद कर ली। और ध्यान में डूब गया। एक क्षण के लिए उसका केंद्र खो गया था। एक पत्थर एक हीरा, एक वस्तु ज्यादा शक्तिशाली हो गई थी। लेकिन केंद्र फिर लौट आया। हीरे के खोते ही पूरा संसार मिट गया। और उसने अपने आंखें बंद कर ली।

सदियों से ध्यानी अपनी आंखें बंद करते रहे है। क्यों? यह केवल प्रतीकात्मक है कि संसार मिट गया, कि देखने को कुछ न रहा। कि किसी चीज का कोई मुल्य नहीं है—देखने योग्य भी नहीं। तुम्हें यह सतत स्मरण रखना पड़ेगा कि जब भी कामना उठती है। तुम अपने केंद्र से बाहर निकल जाते हो। यह बाहर जाना ही संसार है। फिर वापस लौट आओ, फिर से केंद्रित हो जाओ।

यह तुम कर पाओगे, इसकी क्षमता हर किसी के पास हे। आंतरिक संभावना तो कोई भी कभी नहीं खोता। वह हमेशा रहती है। तुम वापस लौट सकत हो। अगर तुम बाहर जा सकते हो तो भीतर भी जा सकते हो। अगर मैं अपने घर से बाहर जा सकता हूं तो वापस भीतर क्यों नहीं लौट सकता? वहीं रास्ता तय करना है; वही पैर काम में लाने है। अगर मैं बाहर जा सकता हूं तो भीतर भी आ सकता हूं।

हर क्षण तुम बाहर जा रहे हो। लेकिन जब भी तुम बाहर जाओ। स्मरण करो—और अचानक वापस लौट आओ। केंद्रित हो जाओ। अगर शुरू में थोड़ा कठिन लगे तो एक गहरी श्वास लो। श्वास बाहर छोड़ो। और रूक जाओ। इस क्षण में उस चीज की और देखो जो तुम्हें आकर्षित कर रही है।

असल में तुम्हें कुछ आकर्षित नहीं कर रहा था। तुम आकर्षित हो रहे थे। उस निर्जन वन में रहा पर पडा हीरा किसी को आकर्षित नहीं कर रहा था, वह तो बस वहां पडा हुआ था। हीरे को पता भी नहीं था कि भर्तृहरि आकर्षित हो रहा है। कि कोई अपने ध्यान से, अपने केंद्र से विचलित हो गया। हीरे को पता भी नहीं था कि दो लोग उसके लिए लड़े और अपनी जान गांव बैठे।

तो कुछ भी तुम्हें आकर्षित नहीं कर रहा—तुम आकर्षित हो रहे हो। जाग जाओ और सेतु टूट जाएगा। और तुम भीतर का संतुलन वापस पा लोगे। इसे जब भी ख्याल आ जाए करते रहो। जितना करो उतना अच्छा। और एक क्षण आएगा जब तुम्हें इसे करना ही जरूरत नहीं पड़ेगी। क्योंकि तुम्हारी आंतरिक शक्ति तुम्हें इतना बल देगी कि चीजों का आकर्षण खो जाएगा। यह तुम्हारी कमजोरी ही है जो आकर्षित होती है। अधिक शक्ति शाली बनो। और कुछ भी तुम्हें आकर्षित नहीं करेगा। केवल तभी तुम पहली बार अपने प्राणों के मालिक होते हो।

और उससे तुम्हें वास्तविक मुक्ति मिलेगी। कोई राजनैतिक स्वतंत्रता, कोई आर्थिक स्वतंत्रता, कोई सामाजिक स्वतंत्रता बहुत सहयोगी नहीं होगी। ऐसा नहीं कि उनमें कुछ खराबी है। वे अच्छी है। अपने आप में अच्छी है। लेकिन वे स्वतंत्रताएं तुम्हें यह सब न दे पाएंगी जिसके लिए तुम्हारा अंतरतम अभीप्सा कर रहा हे। चीजों से, वस्तुओं से स्वतंत्रता, किसी वस्तु या व्यक्ति से मोहित होने की किसी भी संभावना से मुक्त स्वयं होने की स्वतंत्रता।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 101

‘सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी मानो।’

यह भी आंतरिक शक्ति पर, आंतरिक बल पर आधारित है। बड़ी बीज रूप विधि है। मानों कि तुम सर्वज्ञा हो, माना कि तुम सर्वशक्तिमान हो। मानो कि तुम सर्वव्यापी हो।

यह तुम कैसे मान सकते हो? यह असंभव है। तुम जानते हो कि तुम सर्वज्ञ नहीं हो, तुम अज्ञानी हो। तुम जानते हो कि तुम सर्वशक्तिमान नहीं हो। तुम बिलकुल अशक्ति और असहाय हो। तुम जानते हो कि तुम स्र्वव्यापी नहीं हो, तुम छोटी सी देह में सीमित हो। तो इस पर तुम कैसे विश्वास कर सकते हो।

और यदि भली भांति जानते हुए कि ऐसा नहीं है तुम इस पर विश्वास करोगे तो वह विश्वास निरर्थक होगा। अपने ही विपरीत तुम विश्वास नहीं कर सकते। किसी विश्वास को तुम जबरदस्ती थोप नहीं सकते हो। लेकिन वह व्यर्थ होगा, निरर्थक होगा। तुम जानते हो कि ऐसा नहीं है। कोई विश्वास तभी उपयोगी हो सकता है, जब तुम जानते हो कि ऐसा ही है।

यह समझना जरूरी है। **कोई विश्वास तभी शक्तिशाली होता है। जब तुम जानते हो कि ऐसा ही है। सच या झूठ का सवाल नहीं है। अगर तुम जानते हो कि ऐसा ही है तो विश्वास सत्य हो जाता है। अगर तुम जानते हो कि ऐसा नहीं है तो सत्य भी विश्वास नहीं बन सकता। क्यों? कई चीजें समझनी पड़ेगी।**

पहली बात तो, तुम जो भी हो वह तुम्हारा विश्वास है: तुम उस ढंग से विश्वास करते हो, उस ढंग में तुम्हारा पालन-पोषण हुआ है। उस ढंग में तुम्हें संस्कारित किया गया है। तो उसी में तुम विश्वास करते हो। और तुम्हारा विश्वास तुम्हें प्रभावित करता है। यह एक दुस्चक्र बन जाता है।

उदाहरण के लिए ऐसी जातियां हे जहां पुरूष स्त्री से कमजोर है, क्योंकि उन जातियों का विश्वास है कि स्त्री पुरूष से अधिक मजबूत हे। अधिक शक्तिशाली है। उनका विश्वास एक तथ्य बन गया है। उन जातियों में पुरूष कमजोर है और स्त्रीयां ताकतवर। स्त्रियां वे सब काम करती है जो साधारणतया दूसरे देशों पुरूष करते है। और पुरूष वह सब काम करते है जो दूसरे देशों में स्त्रियां करती है। इतना ही नहीं,उनकी शरीर भी कमजोर है, उनकी बनावट कमजोर है। वे यह मानने लगे है कि ऐसा ही है।

विश्वास ही स्थिति का सृजन करता है। विश्वास सृजनात्मक है।

ऐसा क्यों होता है? क्योंकि मन पदार्थ से ज्यादा शक्तिशाली हे। यदि मन सच में ही कुछ मान लेता है तो पदार्थ को उसका अनुसरण करना पड़ेगा। पदार्थ मन के विपरीत कुछ भी नहीं कर सकता, क्योंकि पदार्थ तो जड़ है। तो असंभव भी घटता हे।

जीसस कहते है, 'श्रद्धा पहाड़ों को भी हिला सकती है।'

श्रद्धा पहाड़ों को हिला सकती है। और यदि न हिला सके तो उसका अर्थ है कि तुम्हें श्रद्धा नहीं है—ऐसा नहीं कि श्रद्धा पहाड़ों को नहीं हिला सकती। तुम्हारी श्रद्धा पहाड़ों को नहीं हिला सकती, क्योंकि तुम्हें श्रद्धा ही नहीं है। विश्वास की घटना पर बड़ी शोध चली है। और विज्ञान बहुत से अविश्वसनीय निष्कर्षो पर पहुंच रहा हे। धर्म ने तो सदा से ही उन्हें माना है। लेकिन विज्ञान भी अंतत: उन्हीं निष्कर्षों पर पहुंच रहा है। और उन निष्कर्षों पर उसे पहुंचना ही होगा, क्योंकि बहुत सी घटनाओं पर पहली बार खोज हो रही है।

जैसे, तुमने प्लैसिबो दवाइयों के बारे में सुना होगा। सैकड़ों 'पैथियां' संसार में चलती है—एलोपैथी, आयुर्वेदिक, युनानी, होम्योपैथी, नेचरोपैथी—सैकड़ों। और सभी का दावा है कि वे रोग को ठीक कर सकते है। और वह ठीक करते भी है। उनके दावे गलत नहीं है। यह बड़ी अद्भुत बात है—उनके निदान अलग-अलग है, उनके विचार अलग-अलग हे। एक ही रोग है और उसके सैकड़ों निदान है और सैकड़ों उपचार है, और हर उपचार काम देता है। वि यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि वास्तव में उपचार काम करता है या फिर रोगी का विश्वास काम करता है। और यह संभव है।

कई देशों में, कई विश्वविद्यालयों में, कई अस्पतालों में बहुत ढंगों से वे काम कर रह है। वे रोगी को पानी या कुछ और दे देते है। और रोगी यह मानता है कि उसे दवा दी गई हे। और केवल रोगी ही नहीं डाक्टर भी यह मानता है, क्योंकि उसे भी पता नहीं है। अगर डाक्टर को पता हो कि यह दवा है या नहीं तो उसका प्रभाव पड़ेगा। क्योंकि दवा से ज्यादा वह रोगी को विश्वास देता है।

तो जब तुम बड़े डाक्टर के पास जाते हो और ज्यादा पैसे देते हो तो जल्दी ठीक हो जाते हो। यह प्रश्न विश्वास का है। डाक्टर अगर तुम्हें चार पैसे की,सिर्फ चार पैसे की दवाई दे तो तुम्हें पूरा विश्वास होता हे। कि उसके कुछ होने वाला नहीं है। इतनी बड़ी बीमारी वाला इतना बड़ा रोग चार पैसे से कैसे ठीक हो सकता है। असंभव, इसके लिए विश्वास पैदा नहीं किया जा सकता। तो हर डाक्टर को अपने आस-पास विश्वास का एक वातावरण बनाना पड़ता है। वह वातावरण सहयोगी होता है।

तो अगर डाक्टर को पता हो कि वह जो दे रहा है वह सिर्फ पानी ही है तो वह भरोसे के साथ आश्वासन नही दे पाएगा। उसके चेहरे से पता चल जायेगा। उसके हाथों से पता चल जायेगा। उसके पूरे आचार-व्यवहार से पता चल जायेगा। और रोगी का अचेतन उससे प्रभावित होगा। डाक्टर का विश्वास जरूरी है। वह जितना आश्वस्त होगा उतना ही अच्छा है। क्योंकि उसका विश्वास संक्रामक होता है।

अब वे कहते है कि तुम कुछ दवा उपयोग करो तीस प्रतिशत रोगी तो करीब-करीब तत्क्षण ठीक हो जाएंगे। कुछ भी उपयोग करो। एलोपैथी, नेचरोपैथी, होम्योपैथी, या कोई भी पैथी—कुछ भी उपयोग करो, तीस प्रतिशत रोगी तत्क्षण ठीक हो जाएंगे।

वे तीस प्रतिशत विश्वास करने वाले लोग है। यही अनुपात हर जगह है। अगर मैं तुम्हारी और देखू तो तुममें से तीस प्रतिशत लोग ऐसे होंगे जो तत्क्षण रूपांतरित हो जाएंगे। एक बार विश्वास उनमें बैठ जाए तो वह उसी समय काम करना शुरू कर देता है। तीस प्रतिशत मनुष्यता को बिना किसी कठिनाई के तत्क्षण चेतना के नए तलों पर रूपांतरित किया जा सकता है। बदला जा सकता है। सवाल सिर्फ इतना है कि उनमें विश्वास कैसे जगाया जाये।

एक बार विश्वास जग जाए तो कुछ भी उन्हें नहीं रोग सकता। हो सकता है कि तुम भी उन सौभाग्यशालियों में से, उन तीस प्रतिशत में से ही होओ। लेकिन मनुष्यता के साथ एक बड़ा दुर्भाग्य घटा है। और वह यह कि तीस प्रतिशत लोग निंदित हो गए है। समाज, शिक्षा,संस्कृति, सब उनकी निंदा करते है। उनको मूर्ख समझा जाता है। नहीं, वे बड़ी संभावना वाले लोग है। उनके पास एक बड़ी ताकत है। लेकिन वे निंदित है। और थोथे बुद्धिजीवियों की प्रशंसा होती है। क्योंकि वे भाषा, शब्दों और तर्क के साथ खेल सकते है। इसलिए उनकी प्रशंसा की जाती है। वास्तव में वे नपुंसक है। अंतस के वास्तविक जगत में वे कुछ नहीं कर सकते। वे बस अपना दिमाग चला सकते हे। लेकिन युनिवर्सिटी उनके पास है। न्यूज मीडिया उनके पास है। एक तरह से वे लोग मालिक है। और निंदा करने में वे कुशल है। वे किसी भी चीज की निंदा कर सकते है। और मनुष्यता का यह तीस प्रतिशत हिस्सा जिसमें संभावना है, वे लोग जो विश्वास कर सकते है और रूपांतरित हो सकते है, वे शब्दों में इतने कुशल नहीं होते—वे हो भी नहीं सकते। वे तर्क नहीं कर सकते,विवाद नहीं कर सकते। इसी कारण तो वह विश्वास कर सकते है।

लेकिन क्योंकि वे स्वयं के लिए तर्क नहीं दे सकते इसलिए वे खुद ही आत्म-निंदक बन गए है। वे सोचते है कि उनमें कुछ गलत है। अगर तुम विश्वास कर सको तो तुम्हें लगता है कि तुम्हारे साथ कुछ गलत है; अगर तुम संदेह कर सको तो तुम सोचते हो कि तुम महान हो। लेकिन संदेह की कोई ताकत नहीं है। संदेह के द्वारा कभी भी कोई अंतरतम तक, परम आनंद तक नहीं पहुंच सकता।

अगर तुम विश्वास कर सकते हो तो यह सूत्र तुम्हारे लिए उपयोगी होगा।

'सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी मानों।'

तुम वह हो ही, इसलिए तुम्हारे मान लेने मात्र से वह सब जो तुम्हें छिपाए हुए है, वह सब जो तुम्हें ढँके हुए है, तत्क्षण गिर जाएगा।

लेकिन उन तीस प्रतिशत के लिए भी यह कठिन होगा। क्योंकि वे भी वही सब मानने के लिए संस्कारित है जो कि सच में नहीं है। उन्हें भी संदेह के लिए संस्कारित किया गया है। उनका भी शिक्षण संदेह का है; और वे अपनी सीमाएं जानते है, तो वे कैसे विश्वास कर सकते है? या, फिर अगर वे यह मान लेते है तो लोग उन्हें पागल समझेंगे। अगर तुम कहो **कि तुम मानते हो कि तुम्हारे भीतर सर्वव्यापी है, सर्वशक्तिमान है, दिव्य है, तो लोग तुम्हारी और आश्चर्य से देखेंगे और सोचेंगे। कि तुम पागल हो गए हो। जब तक तुम पागल ही न होओ। यह सब कैसे मान सकते हो?**

लेकिन कुछ करके देखो। प्रारंभ से शुरू करो। इस घटना का थोड़ा स्वाद लो, फिर विश्वास पीछे-पीछे चला आएगा। अगर यह विधि तुम करना चाहो तो फिर पहले यह करो। अपनी आंखें बंद कर लो और भाव करो कि तुम्हारा कोई शरीर नहीं है। भाव करो कि जैसे मिट गया है, खो गया है। तब तुम अपनी सर्वव्यापकता का अनुभव कर सकते हो। **शरीर के साथ तो यह भाव कठिन है।** इसी कारण कई परंपराएं कहती है कि तुम शरीर नहीं हो, क्योंकि शरीर के साथ सीमा आ जाती है। तुम शरीर नहीं हो यह अनुभव करना बहुत कठिन नहीं है। क्योंकि सच में तुम शरीर नहीं हो। यह केवल एक संस्कार है, यह केवल एक विचार है जो तुम्हारे मन पर थोप दिया गया है। तुम्हारे मन में यह विचार डाल दिया गया है कि तुम शरीर हो। बहुत सी घटनाएं है जो इस बात को स्पष्ट करती है। सीलोन में बौद्ध भिक्षु आग पर चलते है। भारत में भी चलते है, लेकिन सीलोन की घटना अद्‌भुत है। वे घंटों आग पर चलते है। और जलते नहीं है।

कुछ वर्ष पहले ऐसा हुआ की एक ईसाई मिशनरी या फायर-वॉक देखने गया। यह वे पूर्णिमा की उस रात करते है जब बुद्‌ध ज्ञान को उपलब्ध हुए। क्योंकि उनका कहना है कि उस रात जगत को पता चला कि शरीर कुछ भी नहीं है। पदार्थ कुछ भी नहीं है। कि अंतरात्मा सर्वव्यापक है और आग उसे जला नहीं सकती।

लेकिन जिन भिक्षुओं को आग पर चलना होता है वे उससे पहले एक वर्ष तक प्राणायाम और उपवास द्‌वारा अपने शरीर को शुद्‌ध करते हे। और अपने मन को शुद्‌ध करने के लिए खाली करने के लिए वे ध्यान करते है। कि वे शरीर नहीं है। एक वर्ष वे लगातार तैयारी करते है। एक वर्ष तक पचास-साठ भिक्षुओं का समूह यह भाव करता रहता है, कि वे अपने शरीरों में नहीं है।

एक वर्ष लंबा समय है। हर क्षण केवल एक ही बात सोचते हुए कि वे अपने शरीरों में नहीं है। लगातार एक ही बात दोहराते हुए कि शरीर एक भ्रम है। वे ऐसा ही मानने लगते है। तब भी उन्हें आग पर चलने के लिए वाद्‌य नहीं किया जाता। उन्हें आग के पास लाया जाता है। और जो भी सोचता है कि वह नहीं जलेगा, वह आग में कूद पड़ता है। कुछ संदेह करते रह जाते है झिझकते है। उन्हें आग में नहीं कूदने दिया जाता; क्योंकि यह सवाल आग के जलाने या जलने का नहीं है। यह उनके संदेह का सवाल है। अगर वे जरा सा भी झिझकते है तो उन्हें रोक दिया जाता है। तो साठ लोग तैयार किए जाते है। और कभी बीस, कभी तीस लोग आग में कूदते है। और बिना जले घंटो-घंटों उसमें नाचते रहते है।

उन्नीस सौ पचास में एक ईसाई मिशनरी यह देखने के लिए आया था। वह बड़ा चकित हुआ। लेकिन उसने सोचा कि यदि बुद्‌ध में भरोसा करने से यह चमत्कार हो सकता है तो जीसस में भरोसा करने से क्यों नहीं हो सकता। तो वह कुछ देर सोचता रहा। थोड़ा झिझका, लेकिन फिर इस विचार के साथ कि यदि बुद्‌ध मदद करते है तो जीसस भी

करेंगे। वह आग में कूद गया। वह जल गया बुरी तरह जल गया; छः महीने के लिए उसे अस्पताल में भरती करवाना पडा। और वह इस घटना को समझ ही नहीं पाया।

यह जीसस या बुद्ध में विश्वास का सवाल नहीं था। यह किसी में विश्वास का सवाल नहीं था। **यह विश्वास मात्र का सवाल था। और यह विश्वास गहन होना चाहिए। जब तक सह तुम्हारे प्राणों के केंद्र पर न पहुंच जाए वह काम नहीं करेगा।**

वह ईसाई मिशनरी, सम्मोहन व उससे जुड़ी घटनाओं का अध्ययन करने के लिए और यह जानने के लिए कि फायर-वॉकिंग के समय क्या होता है। वापस इंग्लैंड गया। फिर उन्होंने दो भिक्षुओं को प्रदर्शन के लिए ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी बुलवाया। वे आग पर भी चले। इस प्रयोग को कई बार दोहराया गया। फिर उन दो भिक्षुओं को देखा कि एक प्रोफेसर उनकी और देख रहा है। और वह इतना गहरा डूब कर देख रहा है कि उनकी आंखों में और उसके चेहरे पर एक मस्ती थी। वे दोनों भिक्षु उस प्रोफेसर के पास गए और उससे बोले, 'तुम भी हमारे साथ आ सकते हो।' तत्क्षण वह दौड़ता हुआ उनके साथ गया। आग में कूदा और उसे कुछ भी नहीं हुआ। वह बिलकुल नहीं जला।

वह ईसाई मिशनरी भी मौजूद था और भली भांति जानता था कि वह प्रोफेसर तर्क का प्रोफेसर था। जिसका काम ही संदेह करना है। जिसका व्यवसाय ही संदेह पर टिका है। तो वह उस आदमी से बोला, यह क्या। तुमने तो चमत्कार कर दिया। मैं यह नहीं कर सका जब कि मैं श्रद्धालु व्यक्ति हूं। प्रोफेसर बोला, 'उस क्षण में मैं श्रद्धालु था। यह घटना इतनी वास्तविक थी, इतने आश्चर्यजनक रूप से वास्तविक थी कि उसने मुझे वशी भूत कर लिया। यह इतना स्पष्ट था कि शरीर कुछ भी नहीं है। और मन सब कुछ है। और उन भिक्षुओं के साथ मेरी ऐसी तारतम्यता बैठ गई कि जिस क्षण उन्होंने मुझे आमंत्रित किया तो मुझे जरा भी झिझक नहीं हुई। आग पर चलना इतना आसान था जैसे आग हो ही नहीं।'

उसमें उस क्षण कोई झिझक नहीं थी। कोई संदेह नहीं था—यहीं है कुंजी।

तो पहले इस प्रयोग को करके देखो। कुछ दिन के लिए आंखें बंद करके बैठो और बस यही सोचो कि तुम शरीर नहीं हो। केवल सोचो ही नहीं बल्कि भाव भी करो कि तुम शरीर नहीं हो। और अगर तुम आंखें बंद करके बैठो तो एक दूरी निर्मित हो जाती है। तुम्हारा शरीर दूर हो जाता है। तुम भीतर की और सरक जाते हो। एक दूरी बन गई। जल्दी ही तुम यह महसूस कर सकते हो कि तुम शरीर नहीं हो।

अगर तुम्हें स्पष्ट अनुभव हो कि तुम शरीर नहीं हो तो तुम मान सकते हो कि तुम सर्वव्यापक हो, सर्वशक्तिमान हो, सर्वज्ञा हो। इस सर्वशक्तिमान का यह सर्वज्ञता का तथाकथित जानकारी से कोई लेना देना नहीं है। यह एक अनुभव है। एक अनुभव का विस्फोट है—कि तुम जानते हो।

यह समझ लेने जैसा है, खासकर पश्चिम में,क्योंकि जब भी तुम कहते हो कि तुम जानते हो, वे कहेंगे, 'क्या?' तुम क्या जानते हो? जानकारी किसी चीज की होनी चाहिए। कुछ होना चाहिए जिसे तुम जानते हो। और अगर सवाल कुछ जानने का है तो तुम सर्वज्ञ नहीं हो सकते, क्योंकि जानने के लिए फिर अनंत तथ्य है। उन अर्थों में तो कोई भी सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

यही कारण है कि जब जैन कहते है कि महावीर सर्वज्ञ थे। तो पश्चिम में वे हंसते है। वे हंसते है। क्योंकि यदि महावीर सर्वज्ञ थे तो उन्हें जरूर यह सब पता होगा जो विज्ञान अब खोज रहा है। और भविष्य में खोजेगा। लेकिन

ऐसा लगता नहीं। वह ऐसी कई चीजें कहते है जो विज्ञान के विपरीत है। जो सत्य नहीं हो सकती। तो तथ्य गत नहीं है। उनकी जानकारी यदि सर्वव्यापक है तो उसमे कोई गलती नहीं होनी चाहिए। लेकिन उसमें गलतियां है। ईसाई मानते है कि जीसस सर्वज्ञ है। लेकिन आधुनिक मन हंसेगा। क्योंकि वह सर्वज्ञ नहीं थे—संसार के तथ्यों को जानने के अर्थ में वह सर्वज्ञ नहीं थे। वह नहीं जानते थे कि पृथ्वी गोल है—वह नहीं जानते थे। वह तो यही मानते थे कि पृथ्वी चपटी है। सह नहीं जानते थे कि पृथ्वी लाखों वर्षों से अस्तित्व में है। वह तो यही मानते थे कि परमात्मा ने पृथ्वी को उनसे केवल चार हजार वर्ष पहले निर्मित किया है। जहां तक तथ्यों का, विषयगत तथ्यों का संबंध है, वह सर्वज्ञ नहीं थे।

लेकिन यह शब्द '**सर्वज्ञ**' बिलकुल भिन्न है। जब पूरब के ऋषि 'सर्वज्ञ' कहते है तो उनका अर्थ तथ्यों को जानने से नहीं है—**उनका अर्थ है परिपूर्ण चेतन, परिपूर्ण जाग्रत, पूर्णत: अंतरस्थ, पूर्णत: संबुद्ध। तथ्यात्मक जानकारी से उनका कुछ लेना-देना नहीं है। उनका रस जानने की विशुद्ध घटना में है—जानकरी में नहीं, जानने की गुणवत्ता में।** जब हम कहते है कि बुद्ध ज्ञानी है। तो हमारा अर्थ यह नहीं होता कि वे सब भी जानते है जो आईस्टीन जानता है। यह तो वे नहीं जानते। लेकिन फिर भी वे ज्ञानी है। वे अपनी अंतस चेतना को जानते है। और अंतस चेतना सर्वव्यापी है। तथाता का वह भाव सर्वव्यापी है। और उस जानने में फिर कुछ भी जानने को नहीं बचता—असली बता यह है। अब कुछ जानने की उत्सुकता नहीं रहती है। सब प्रश्न गिर जाते है। ऐसा नहीं कि सब उत्तर मिल गये। सब प्रश्न गिर जाते है। अब पूछने के लिए कोई प्रश्न न रहा। सारी उत्सुकता जाती रही है। **सर्वज्ञता है। सर्वज्ञा का यही अर्थ है। यह आत्मगत जागरण है।**

यह तुम कर सकते हो। लेकिन अगर तुम अपनी खोपड़ी में और जानकारी इकट्ठी करते चले जाओ। तो फिर यह नहीं होगा। तुम जन्मों-जन्मों तक जानकारी इकट्ठी करते चले जा सकते है। तुम बहुत कुछ जान लोगे। लेकिन सर्व को नहीं जानोंगे। सर्व तो अनंत है; वह इस प्रकार नहीं जाना जा सकता। विज्ञान हमेशा अधूरा रहेगा। वह कभी पूरा नहीं हो सकता। वह असंभव है। यह अकल्पनीय है कि विज्ञान कभी पूरा हो जाएगा। वास्तव में, जितना अधिक विज्ञान जानता जाता है। उतना ही पाता है कि जानने को अभी बहुत शेष है।

तो यह सर्वज्ञता जागरण का एक आंतरिक गुण है। ध्यान करो,और अपने विचारों को गिरा दो। जब तुममें कोई विचार नहीं होंगे। तब तुम महसूस करोगे। कि यह सर्वज्ञता क्या है, यह सब जान लेना क्या है। जब कोई विचार नहीं होते तो चेतना शुद्ध हो जाती है। विशुद्ध हो जाती है। उस विशुद्ध चेतना में तुम्हें कोई समस्या नहीं रहती। सब प्रश्न गिर गये। तुम स्वयं को जानते हो, अपनी आत्मा को जानते हो। और जब तुमने अपनी आत्मा को जान लिया तो सब जान लिया। क्योंकि तुम्हारी आत्मा हर किसी की आत्मा का केंद्र है। वास्तव में तुम्हारी आत्मा ही सबकी आत्मा है। तुम्हारा केंद्र पूरे जगत का केंद्र है। इन्हीं अर्थों में उपनिषदों ने अहं ब्रहमास्मिः की घोषणा की है कि 'मैं ब्रहम हूं,मैं पूर्ण हूं।' एक बार तुमने अपनी आत्मा की यह छोटी सी घटना जान ली तो तुमने अनंत को जान लिया। तुम बिलकुल सागर की बूंद जैसे हो: अगर एक बूंद को भी जान लिया तो पूरे सागर के राज खुल गए। 'सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी मानो।'

लेकिन यह मानना भरोसे से ही आएगा। यह तुम अपने साथ विवाद करके नहीं मान सकते। तुम किसी तर्क से अपने आप को नहीं समझा सकते। ऐसे भावों के लिए ऐसे भावों के स्त्रोत के लिए तुम्हें अपने भीतर गहरी खुदाई करनी होगी।

यह '**मानना**' शब्द बड़ा अर्थपूर्ण है। इसका यह अर्थ नहीं है। कि तुमने कुछ स्वीकार कर लिया है। क्योंकि स्वीकार कर लेना तो बड़ी तर्कसंगत बात है। तुम्हारे सोच-विचार किया, तुमने उसके लिए तर्क किए, तुम्हारे पास प्रमाण है उसके लिए। मानने का अर्थ है कि तुम्हें उस चीज के प्रति कोई संदेह नहीं है—ऐसा नही कि कोई प्रमाण है तुम्हारे पास। स्वीकार करने का अर्थ है कि तुम्हारे पास प्रमाण है: तुम सिद्ध कर सकते हो। तर्क दे सकते हो। तुम कह सकते हो कि 'यह ऐसा ही है।' तुम उसके लिए तर्कसंगत प्रमाण दे सकते हो। **मानने का अर्थ है कि तुम्हें कोई संदेह ही नहीं है। तुम उसके लिए विवाद नहीं कर सकते, तर्क नहीं दे सकते,तुम से अगर पूछा जाए तो तुम हार जाओगे। लेकिन तुम्हारे पास एक भीतरी आधार है। तुम जानते हो कि ऐसा ही है। यह एक अनुभव है, कोई बौद्धिक तर्क नहीं।**

लेकिन याद रखो कि ऐसी विधियां तभी काम दे सकती है। **जब तुम अपने भावों के साथ काम करो, बुद्धि के साथ नहीं।** तो ऐसा कई बार हुआ है कि बड़े अज्ञानी लोग—अनपढ़ और असंस्कृत—मानवीय चेतना की ऊँचाइयों पर पहुंच जाते है और जो बड़े सुसंस्कृत है, शिक्षित है, बौद्धिक है और तर्क में कुशल है, वे चूक जाते हो।

जीसस केवल एक बढ़ई थे। फ्रेडरिक नीत्शे ने कहीं लिखा है कि पूरे नए टेस्टामेंट में केवल एक आदमी था। जिसकी सच में कोई कीमत थी। जो सुसंस्कृत था। शिक्षित था, दर्शनशास्त्र का जानकार था, बुद्धिमान था—वह आदमी था पाइलेट, रोमन गवर्नर, जिसने जीसस से सूली पर चढ़ाने की आज्ञा जारी की थी। वास्तव में वह सबसे ज्यादा सुसंस्कृत आदमी था—गवर्नर जनरल,वाइसरॉय। और वह जानता था कि दर्शनशास्त्र क्या है। अंतिम क्षण में जब जीसस सूली पर चढ़ाये जाने को थे। तो उसने पूछा था, 'सत्य क्या है?' यह बड़ा दार्शनिक प्रश्न था। जीसस चुप रहे—इसलिए नहीं कि यह प्रश्न जवाब देने जैसा नहीं था। पाइलेट अकेला व्यक्ति था जो गहरे दर्शन को समझ सकता था—जीसस चुप रहे, क्योंकि वे सिर्फ ऐसे लोगों से बोल सकते थे जो अनुभव कर सके। सोच-विचार किसी काम का न था। सह एक दार्शनिक प्रश्न पूछ रहा था। अच्छा होता यदि यह प्रश्न उसने किसी यूनिवर्सिटी, किसी अकादमी में पूछा होता। लेकिन जीसस से कोई दार्शनिक प्रश्न पूछना अर्थहीन था। **वे चुप रहे क्योंकि उत्तर देना व्यर्थ था। कोई संवाद संभव नहीं था।**

लेकिन नीत्शे,जो स्वयं एक तार्किक व्यक्ति था, जीसस की आलोचना करता है। उसने कहा है कि वे अशिक्षित थे। असंस्कृत थे, दर्शनशास्त्र में कुशल नहीं थे—और वे उत्तर नहीं दे पाए इसलिए चुप रहे गए।

पाईलेट ने बड़ा प्यारा प्रश्न पूछा। यदि उसने यह प्रश्न नीत्शे से पूछा होता, तो नीत्शे वर्षों तक इस पर बोलता चला जाता। 'सत्य क्या है?' यह एक प्रश्न ही वर्षों तक बोलने और चर्चा करने के लिए पर्याप्त है। पूरा दर्शनशास्त्र इसी बात का विस्तार है। सत्य क्या है। एक प्रश्न और सारे दार्शनिक इसी में जुटे हुए है।

नीत्शे की आलोचना **तर्क द्वारा की गई आलोचना है, तर्क द्वारा की गई निंदा है। तर्क ने सदा ही भाव के आयाम की आलोचना की है। क्योंकि भाव बड़ा अस्पष्ट है, रहस्यमय है। वह है और फिर भी तुम उसके बारे में कुछ नहीं कह सकते। भाव या तो तुम्हारे पास है, या नहीं है—उसके संबंध में तुम कुछ भी नहीं कर सकते, न ही कोई चर्चा कर सकत है।**

तुम्हारे भी कई विश्वास है, लेकिन वे विश्वास स्वीकार कर ली गई धारणाएं भर है; वे विश्वास नहीं है। क्योंकि तुम्हें उनके प्रति संदेह है। तुमने उन संदेहों को अपने तर्कों से कुचल डाला है। लेकिन वे अभी भी जिंदा है। तुम उनके ऊपर बैठे हुए हो, लेकिन वे वहीं के वहीं है। तुम उनसे लड़ते रहते हो, लेकिन वे अभी मरे नहीं है। वे मर नहीं सकते।

यही कारण है कि तुम्हारा जीवन भले ही एक हिंदू का जीवन हो, या मुसलमान का, या ईसाई का, या जैन का, लेकिन वह एक धारणा ही है। श्रद्धा तुम्हें नहीं है।

मैं तुम्हें एक कहानी कहता हूं। जीसस ने अपने शिष्यों को कहा कि वे नाव से उस झील के दूसरे किनारे चले जाएं जहां वे सब ठहरे हुए थे। और वे बोले,'मैं बाद में आऊँगा।' वे लोग चले गये। और दूसरे किनारे की और जा रहे थे तो बड़ा तेज तूफान आया। उथल-पुथल मच गई और लोग भय के मारे घबरा गये। नाव थपेड़े खा रही थी और वे सब रो रहे थे, चीखने-पुकारने लगे, चिल्लाने लगे। 'जीसस हमें बचाओ।'

वह किनारा जहां जीसस खड़े थे काफी दूर था। लेकिन जीसस आए। कहते है कि वे पानी पर दौड़ते हुए आये। और पहली बात उन्होंने शिष्यों को यह कहीं कि, 'कम भरोसे के लोगो, क्यों रोते हो।' क्या तुम्हें भरोसा नहीं है?' वे तो भयभीत थे। जीसस बोले, 'अगर तुम्हें भरोसा है तो नाव से उतरो और चलकर मेरी और आओ।' वह पानी पर खड़े हुए थे। शिष्यों ने अपनी आंखों से देखा कि वे पानी पर खड़े है। लेकिन फिर भी यह मानना कठिन था। जरूर अपने मन में उन्होंने सोचा होगा कि ये कोई चाल है। या हो सकता है कोई भ्रम है। या यह जीसस ही न हो। शायद यह शैतान है जो उन्हें कोई प्रलोभन दे रहा है। तो वे एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। कि कौन चलकर जाएगा।

फिर एक शिष्य नाव से उतर कर चला। और सच में वह चल पाया। वह तो अपनी आंखों पर विश्वास न कर सका। वह पानी पर चल रहा था। जब वह जीसस के करीब आया तो बोला, 'कैसे? यह कैसे हो गया?' तत्क्षण पूरा चमत्कार खो गया। 'कैसे?'—और वह डूबने लगा। जीसस ने उसे बाहर निकाला और बोले, 'कम भरोसे के आदमी,तू यह कैसे का सवाल क्यों पूछता है।'

लेकिन बुद्धि 'क्यों?' और 'कैसे?' पूछती है। बुद्धि पूछती है। बुद्धि प्रश्न उठाती है। भरोसा है सब प्रश्नों को गिरा देना। अगर तुम सब प्रश्नों को गिरा सको और भरोसा कर सको तो यह विधि तुम्हारे लिए चमत्कार है।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 102

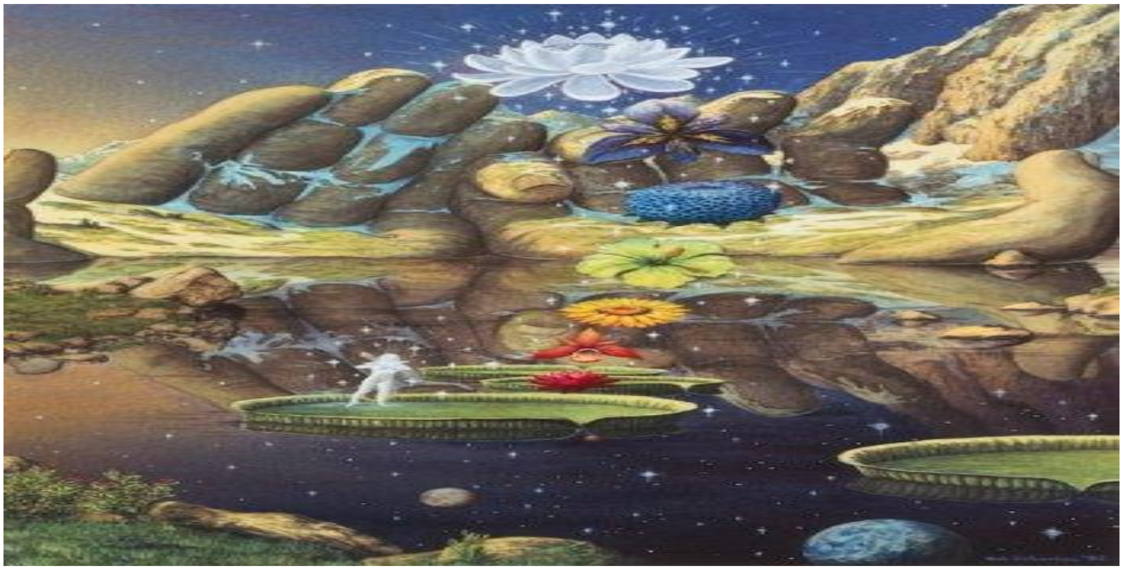

'अपने भीतर तथा बाहर एक साथ आत्मा की कल्पना करो। जब तक कि संपूर्ण अस्तित्व आत्मवान न हो जाए।'

पहले तो तुम्हें समझना है कि कल्पना क्या है। आजकल बहुत ही निंदित शब्द है यह। जैसे ही 'कल्पना' शब्द सुनते हो, तुम कहते हो यह तो व्यर्थ है। हम कुछ वास्तविकता चाहते है। काल्पनिक नहीं। लेकिन कल्पना तुम्हारे भीतर की एक वास्तविकता है। एक क्षमता है, एक संभावना है। तुम क्षमता एक वास्तविकता है। इस कल्पना के द्वारा तुम स्वयं को नष्ट कर सकते हो। और स्वयं को निर्मित भी कर सकते हो। यह तुम पर निर्भर करता है। कल्पना बहुत शक्तिशाली क्षमता है। यह छिपी हुई शक्ति है।

कल्पना क्या है? यह किसी धारणा में इतना गहरे चले जाना है कि वह धारणा ही वास्तविकता बन जाए। उदाहरण के लिए, तुमने एक विधि के बारे में सुना होगा। जो तिब्बत में प्रयोग की जाती है1 वे उसे ऊष्मा योग कहते है। सर्द रात है, बर्फ गिर रही है। और तिब्बतन लामा खुले आकाश के नीचे नग्न खड़ा हो जाता हे। तापमान शून्य से नीचे है। तुम तो मरने ही लगोगे, जम जाओगे। लेकिन लामा एक विधि का अभ्यास कर रहा है। विधि यह है कि वह कल्पना कर रहा है कि उसका शरीर एक लपट है। और उसके शरीर से पसीना निकल रहा है। और सच ही उसका पसीना बहने लगता है जब कि तापमान शून्य से नीचे है। और खून तक जम जाना चाहिए। उसका पसीना बहने लगता है। क्या हो रहा है? यह पसीना वास्तविक है, उसका शरीर वास्तव में गर्म है, लेकिन यह वास्तविकता कल्पना से पैदा की गई है।

तुम कोई सरल सी विधि करके देखो। ताकि तुम महसूस कर सको कि कल्पना से वास्तविकता कैसे पैदा की जा सकती है। जब तक तुम यह महसूस न कर लो, तुम इस विधि का उपयोग नहीं कर सकते। जरा अपनी धड़कन को गिनो। बंद कमरे में बैठ जाओ और अपनी धड़कन को गिनो। और फिर पाँच मिनट के लिए कल्पना करो कि तुम दौड़ रहे हो। कल्पना करो कि तुम दौड़ रहे हो, गर्मी लग रही है, तुम गहरी श्वास ले रहे हो, तुम्हारा पसीना निकल रहा है। और तुम्हारी धड़कन बढ़ रही है, पाँच मिनट यह कल्पना करने के बाद फिर अपनी धड़कन गिनो। तुम्हें अंतर पता चल जायेगा। तुम्हारी धड़कन बढ़ जाएगी। यह तुमने कल्पना करके ही कर लिया, तुम वास्तव में दौड़ नहीं रहे थे।

प्राचीन तिब्बत में बौद्ध भिक्षु कल्पना द्वारा ही शारीरिक अभ्यास किया करते थे। और वे विधियां आधुनिक मनुष्य के लिए बड़ी सहयोगी हो सकती है। क्योंकि सड़कों पर दौड़ना अब कठिन है, दूर तक घूमने जाना कठिन है। कोई निर्जन जगह खोज पाना कठिन है। तुम बस अपने कमरे में फर्श पर लेट कर एक घंटे के लिए यह कल्पना कर सकते हो कि तुम तेजी से चल रहे हो। कल्पना में ही चलते रहो। और अब तो चिकित्सा विशेषज्ञ कहते है कि उसका प्रभाव सच में चलने के समान ही होगा। एक बार तुम अपनी कल्पना से लयवद्ध हो जाओ तो शरीर काम करने लगता है।

तुम पहले ही कितने ऐसे काम कर रहे हो जो तुम्हें पता नहीं तुम्हारी कल्पना कर रही है। कई बार तुम कल्पना से ही कई बीमारियां पैदा कर लेते हो। तुम कल्पना करते हो कि फलां बीमारी,जो संक्रामक है, सब और फैली हुई है। तुम ग्रहणशील हो गए, अब पूरी संभावना है कि तुम बीमारी पकड़ लोगे। और वह बीमारी वास्तविक होगी। लेकिन

यह कल्पना से निर्मित हुई थी। कल्पना एक शक्ति है। एक ऊर्जा है और मन उससे चलता है। और जब मन उससे चलता है तो शरीर अनुसरण करता है।

अमेरिका के एक यूनिवर्सिटी होस्टल में एक बार ऐसा हुआ कि चार विद्यार्थी सम्मोहन का प्रयोग कर रहे थे। सम्मोहन और कुछ नहीं कल्पना शक्ति ही है। जब तुम किसी व्यक्ति को सम्मोहित करते हो तो वास्तव में वह गहन कल्पना में चला जाता है। और तुम जो भी सुझाव देते हो, वह होने लगता है। तो जिस लड़के को उन्होंने सम्मोहन किया हुआ था, उसे कई सुझाव दिए। चार लड़कों ने एक लड़के पर सम्मोहन का प्रयोग किया। उन्होंने कई बातें करके देखी। वे जो भी कहते, लड़का तत्क्षण अनुसरण करता। जब वे कहते, 'कुदो' तो लड़का कूदने लगता। जब वे कहते 'रोओ' लड़का रोने लगता। जब उन्होंने कहा, 'तुम्हारी आंखों से आंसू गिर रहे है।' तो उसकी आंखों से आंसू बहने लगते। फिर बस एक मजाक की तरह उन्होंने कहा, 'अब तुम लेट जाओ, तुम मर गये।' लड़का लेटा और मर गया।

यह उन्नीस सौ बावन में हुआ। इसके बाद अमेरिका में उन्होंने सम्मोहन के विरूद्ध कानून बना दिया। जब तक कोई शोध-कार्य न चलता हो कोई सम्मोहन का प्रयोग न करे; जब तक कोई मेडिकल इंस्टीट्यूट, या किसी यूनिवर्सिटी का मनोविज्ञान विभाग तुम्हें अधिकृत न करे, तुम कोई प्रयोग नहीं कर सकते। वरना तो यह बड़ा खतरनाक है, उस लड़के ने तो बस विश्वास किया, कल्पना की कि वह मर गया है और वह मर गया।

यदि कल्पना में मृत्यु हो सकती है तो जीवन, अधिक जीवन क्यों नहीं मिल सकता।
यह विधि कल्पना - शक्ति पर आधारित है: 'अपने भीतर तथा बाहर एक साथ आत्मा की कल्पना करो, जब तक कि संपूर्ण अस्तित्व आत्म वान न हो जाए।'

बस किसी निर्जन स्थान पर बैठ जाओ जहां तुम्हें कोई परेशान न करे। किसी एकांत कमरे से काम चलेगा। और यदि तुम कहीं बाहर जा सको तो बेहतर होगा। क्योंकि जब तुम प्रकृति के समीप होते हो तो अधिक कल्पनाशील होते हो। जब तुम्हारे आस-पास बस मनुष्य निर्मित चीजें होती है तो तुम कम कल्पनाशील होते हो। प्रकृति स्वप्न देख रही है और तुम्हें स्वप्न देखने की शक्ति देती है। अकेले तुम अधिक कल्पनाशील हो जाते हो।

इसीलिए तो तुम जब अकेले होते हो तो डरते हो। ऐसा नहीं है कि कोई भूत तुम्हें परेशान करेंगे, लेकिन तुम्हारी कल्पना काम कर सकती है। और तुम्हारी कल्पना भूत या जो भी तुम चाहो, पैदा कर सकती है। जब तुम अकेले होते हो तो तुम्हारी कल्पना की संभावना ज्यादा होती है। जब कोई और साथ होता है तो तुम्हारी बुद्धि नियंत्रण में होती है। क्योंकि बुद्धि के बिना तुम दूसरों से नहीं जुड़ सकते। जब कोई दूसरा साथ होता है तो तुम प्राणों के गहरे कल्पनाशील तलों की और लौट जाते हो। जब तुम अकेले होते हो, कल्पना काम करने लगती है।

इंद्रियगत संवेदनाओं के अभाव पर बहुत प्रयोग किए गए है। यदि किसी व्यक्ति को सभी संवेदनात्मक उत्तेजनाओ से वंचित कर दिया जाए—तुम्हें किसी साउंड-प्रूफ कमरे में बंद दिया जाए जिसमें कोई प्रकाश न आता हो, जिसमें दूसरें मनुष्यों से जुड़ने की कोई संभावना न हो, दीवारों पर कोई तस्वीर न हो, कुछ न हो जिससे तुम जुड़ सको—तो एक,दो या तीन घंटे बाद तुम स्वयं से जुड़ने लगोगे। तुम कल्पनाशील हो जाओगे। तुम स्वयं से बातें करने लगोगे। तुम्हीं प्रश्न पूछोगे और तुम्हीं उत्तर दोगे। एकल-संवाद शुरू हो जाएगा। जिसमें तुम बंट जाओगे।

फिर तुम अचानक कई चीजें अनुभव करने लगोंगे जो तुम समझ नहीं पाओगे। तुम्हें ध्वनियां सुनाई पड़ने लगेंगी, जब कि कमरा साउंड-प्रूफ है, कोई ध्वनि भीतर नहीं आ सकती। अब तुम कल्पना कर रहे हो। हो सकता है तुम्हें सुगंध आने लगे। जबकि वहां कोई सुगंध नहीं है। अब तुम कल्पना कर रहे हो। संवेदनाओं के परिपूर्ण आभाव के छत्तीस घंटे बाद कल्पना वास्तविक बन जातीहै1 वास्तविकता कल्पना लगने लगती है।

यही कारण है कि पुराने दिनों में साधक पर्वतों पर निर्जन स्थानों पर चले जाते थे। जहां वे वास्तविक और अवास्तविक के बीच के भेद को गिरा सकते थे। एक बार भेद गिर जाए तो तुम्हारी कल्पना प्रबल हो जाती है। अब तुम इसका उपयोग कर सकते हो और इसके द्वारा कुछ भी निर्मित कर सकते हो।

इस विधि के लिए किसी एकांत स्थान पर बैठ जाओ; यदि आस-पास प्राकृतिक स्थान हो तो अच्छा है, नहीं तो कमरे से भी काम चलेगा। फिर आंखें बंद कर लो और कल्पना करो कि तुम्हारे भीतर और बहार एक आत्मिक शक्ति का आभास हो रहा है। तुम्हारे भीतर चेतना की एक नदी बह रही है और वह सारे कमरे में भर रही है। फैल रही है। भीतर और बाहर तुम्हारे आस-पास सब जगह शक्ति उपस्थित है, ऊर्जा उपस्थित है। और केवल मन में ही इसकी कल्पना मत करो, शरीर में भी अनुभव करना शुरू करो।

तुम्हारा शरीर आंदोलित होने लगेगा। जब तुम्हें लगे कि शरीर आन्दोलित होने लगा तो उससे पता चलता है कि कल्पना ने काम करना शुरू कर दिया। अनुभव करो कि पूरा जगत धीरे-धीर आत्मवान होता जा रहा है। सब कुछ कमरे की दीवारें, तुम्हारे आस-पास के वृक्ष—सब कुछ अभौतिक ऊर्जा रह जाती है। जिसमें कोई सीमाएं नहीं होती।

कल्पना के द्वारा तुम इस बिंदु पर पहुंच रहे हो जहां अपने चेतन प्रयास से तुम बुद्धि के ढांचे, बुद्धि के ढर्रे को नष्ट कर रहे हो। तुम अनुभव करते हो कि पदार्थ नहीं है। केवल ऊर्जा है, केवल आत्मा है—भीतर भी, बाहर भी। जल्दी ही तुम अनुभव करोगे कि भीतर तथा बाहर समाप्त हो गए है। जब तुम्हारा शरीर आत्ममय हो जाता है और तुम्हें लगता है कि यह ऊर्जा ही है, तो भीतर तथा बाहर में कोई भेद नहीं रहता। सीमाएं खो जाती है। केवल तरंगायित, आंदोलित ऊर्जा का एक महासागर बचता है। यही सत्य भी है। तुम कल्पना के द्वारा सत्य तक पहुंच रहे हो।

कल्पना क्या कर ही हो? कल्पना केवल पुरानी धारणाओं को, पदार्थ को मन के पुराने ढंगों को नष्ट कर रही है जो चीजों को एक खास दृष्टि कोण से देखते है। कल्पना उनको नष्ट कर रही है। और तब सत्य प्रकट होगा।

'अपने भीतर तथा बाहर एक साथ आत्मा की कल्पना करो, जब तक कि संपूर्ण अस्तित्व आत्मवान न हो जाए।' जब तक तुम्हें यह न लगने लगे कि सब भेद समाप्त हो गए। सब सीमाएं विलीन हो गई और जगत केवल ऊर्जा का एक महासागर रह गया है। यही वास्तविकता भी है। लेकिन विधि में तुम जितने गहरे उतरोगे, उतने ही भयभीत हो जाओगे। तुम्हें लगेगा कि तुम पागल हो रहे हो। क्योंकि तुम्हारी बुद्धि भेदों में बनी है। तुम्हारी बुद्धि इस तथाकथित से बनी है, और जब यह वास्तविकता समाप्त होने लगती है तो साथ ही तुम्हें लगता है कि तुम्हारी बुद्धि भी नष्ट हो रही है।

संत और पागल दोनों ऐसे जगत में जीते है जो हमारी तथाकथित वास्तविकता के पार होता है। दोनों ही पार के जगत में जीते है, लेकिन पागल नीचे गिर जाता है, और संत ऊपर उठ जाते है। भेद छोटा सा है। लेकिन बहुत बड़ा

है। यदि बिना किसी प्रयास के तुम मन और वास्तविक तथा अवास्तविक के भेद खो दो तो तुम विक्षिप्त हो जाओगे। लेकिन यदि चेतन प्रयास से तुम धारणाओं को नष्ट कर दो तो तुम विमुक्त हो जाओगे। विक्षिप्त नहीं। यह वियुक्तता ही धर्म का आयाम है। यह बुद्धि के पार है। लेकिन चेतन प्रयास चाहिए। तुम शिकार न बनो,मालिक ही बने रहो। जब तुम्हारा प्रयास मन के सारे आकारों को नष्ट करता है तो तुम निराकार सत्य का साक्षात्कार करते हो।

उदाहरण के लिए, बौद्ध कहते है कि संसार में कोई पदार्थ नहीं है। संसार केवल एक प्रक्रिया है। कुछ भी वास्तविक नहीं है। सब कुछ गतिमान है। या गतिमान कहना भी ठीक नहीं है, मात्र गति है। जब हम कहते है कि सब कुछ गतिमान है तो वही पुरानी भूल हो जाती है। ऐसा लगता है जैसे कि कुछ है जो गतिमान है। बुद्ध कहते है, कुछ भी गतिमान नहीं है। केवल गति ही है। केवल गति है, इसके अलावा कुछ नहीं है।

तो थाईलैंड या बर्मा जैसे बौद्ध देशों में, उनकी भाषा में 'है' के लिए कोई शब्द नहीं है। जब बाइबिल पहली बार थाई में अनुवादित हुई तो उसे अनुवादित करना बड़ा कठिन हो गया, क्योंकि बाइबिल में तो कहा गया है 'परमात्मा है'। बर्मीज या थाई में तुम यह नहीं कह सकते कि 'परमात्मा है'। तुम ऐसा कह ही नहीं सकते। तुम जो भी कहोगे उसका अर्थ होगा, 'परमात्मा हो रहा है।' सब कुछ हो रहा है। कुछ भी है नहीं है। जब एक बर्मा निवासी संसार की और देखता है तो गति की और देखता है। जब हम देखते है, विशेषत: जब ग्रीक उन्मुख पाश्चात्य मन देखता है, तो कोई प्रक्रिया नहीं होती। केवल वस्तु होती है। केवल मृत वस्तुएं है, गति नहीं है।

जब तुम नदी की और देखते हो तो नदी को 'है' की तरह देखते हो। नदी है नहीं नदी का अर्थ तो बस एक गति है। कुछ जो सतत हो रहा है। और कोई बिंदू नहीं आता जहां तुम कहो कि यह होना पूरा हो गया। यह एक अंतहीन प्रक्रिया है। जब हम एक वृक्ष की और देखते है तो कहते है कि वृक्ष है। बर्मी भाषा में कहते है कि वृक्ष हो रहा है। वृक्ष बह रहा है। वृक्ष बढ़ रहा है। वृक्ष प्रक्रिया है। तो संसार और यथार्थ बिलकुल भिन्न होंगे। तुम्हारे लिए यह भिन्न है। और यथार्थ तो एक ही है। लेकिन इसकी व्याख्या किसी तरह करते हो। उससे सब बदल जाता है।

एक मूल बात ध्यान रखो: जब तक तुम्हारे मन के ढांचे को मिटा न दिया जाए, जब तक तुम उस ढाँचे से मुक्त न हो जाओ, जब तक तुम्हारे संस्कार न पोंछ दिए जाएं और तुम निर्संस्कार न हो जाओ। तब तक तुम्हें पता नहीं चलेगा कि वास्तविकता क्या है। तुम केवल व्याख्याएं ही जानते हो। वे व्याख्याएं तुम्हारे मन के ही खेल है। निराकार सत्य ही एकमात्र वास्तविकता है। और यह विधि तुम्हें निर्धारण होने में,निर्संस्कार होने में तुम्हारे मन पर इकट्ठे हो गए शब्दों को हटाने में मदद देने के लिए है। उनके कारण तुम देख नहीं पाते। जो भी तुम्हें सत्य जैसा लगता है उसे मिट जाने दो।

ऊर्जा की कल्पना करो—पदार्थ की नहीं । वरन प्रक्रिया की, गति की, लय कि, नृत्य की। और कल्पना करते रहा जब तक कि पूरा जगत आत्मवान न हो जाए। यदि तुम धैर्यपूर्वक लगे रहे तो तीन महीने के एक घंटा प्रतिदिन सधन प्रयास के बाद, तुम इस आभास को पा सकते हो। तीन महीने के भीतर अपने आस-पास के सारे अस्तित्व का तुम एक दूसरा ही अनुभव कले सकते हो। पदार्थ नहीं बचा, मात्र अभौतिक, महासागरीय अस्तित्व बचा—केवल लहरें केवल कंपन।

जब यह अनुभव होता है तभी तुम जानते हो कि परमात्मा क्या है। ऊर्जा का यह महासागर ही परमात्मा है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा कहीं स्वर्ग में किसी सिंहासन पर नहीं बैठा है। वहां कोई भी नहीं बैठा है। लेकिन हमारे सोचने का एक ढंग है। हम कहते है कि परमात्मा स्त्रष्टा है। परमात्मा स्त्रष्टा नहीं है। बल्कि, परमात्मा सृजनात्मक शक्ति है, स्वयं सृजन ही है।

हमारे मन पर बार-बार थोपा गया है कि कहीं अतीत में परमात्मा ने संसार की रचना की। और फिर वहीं सृजन समाप्त हो गया। ईसाइयों की कहानी है कि परमात्मा ने छः दिन में संसार बनाया और सातवें दिन विश्राम किया। इसीलिए तो सातवां दिन, रविवार, छुट्टी का दिन है। परमात्मा ने उस दिन छूटी ली। छः दिन में उसने संसार को बनाया, हमेशा-हमेशा के लिए, और तब से कोई सृजन नहीं हुआ। छठे दिन के बाद कोई सृजन ही नहीं हुआ है।

यह बड़ी मुर्दा धारणा है। तंत्र कहता है परमात्मा सृजनात्मकता ही है। सृष्टि कोई ऐतिहासिक घटना नहीं है। जो कि अतीत में कभी घटी, यह हर क्षण घट रही है। परमात्मा हर क्षण सृजन कर रहा है। इससे ऐसा लगता है कि परमात्मा कोई व्यक्ति है जो सृजन करता रहा है। नहीं वह सृजनात्मकता जो हर क्षण घटती है। वह सृजनात्मकता ही परमात्मा है। तो तुम हर क्षण सृजन में हो।

यह बड़ी जीवंत धारणा है। ऐसा नही है कि परमात्मा न कहीं कुछ बनाया और तबसे परमात्मा और मनुष्य के बीच कोई संवाद नहीं रहा, कोई संपर्क, कोई संबंध नहीं रहा; उसने सृजन किया और बात समाप्त हो गई। तंत्र कहता है कि तुम हर क्षण निर्मित हो रहे हो। हर क्षण तुम दिव्य के साथ, सृजनात्मकता के स्त्रोत के साथ गहन संबंध में हो। यह बहुत ही जीवंत धारणा है।

इस विधि के द्वारा तुम भीतर ओर बाहर सृजनात्मक शक्ति की झलक पाओगे। एक बार तुम सृजनात्मक शक्ति और उसके स्पर्श, उसके प्रभाव को महसूस कर लो तो तुम बिलकुल भिन्न हो जाओगे। तुम फिर वही नहीं रह जाओगे। परमात्मा तुममें प्रवेश कर गया। तुम उसके निवास बन गए।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 103

‘अपनी संपूर्ण चेतना से कामना के, जानने के आरंभ में ही जानो।’

इस विधि के संबंध में मूल बात है ‘संपूर्ण चेतना’। यदि तुम किसी भी चीज पर अपनी संपूर्ण चेतना लगा दो तो वह एक रूपांतरणकारी शक्ति बन जाएगी। जब भी तुम संपूर्ण होते हो, किसी चीज में भी, तभी रूपांतरण होता है। लेकिन यह कठिन है। क्योंकि हम जहां भी है, बस आंशिक ही है। समग्रता में नहीं है।

यहां तुम मुझे सुन रहे हो। यह सुनना ही रूपांतरण हो सकता है। यदि तुम समग्रता से सुनो, इस क्षण में अभी और यहीं, यदि सुनना तुम्हारी समग्रता हो, तो वह सुनना एक ध्यान बन जाएगा। तुम आनंद के अलग ही आयाम में, एक दूसरी ही वास्तविकता में प्रवेश कर जाओगे।

लेकिन तुम समग्र नहीं हो। मनुष्य के मन के साथ यही मुश्किल है, वह सदैव आंशिक ही होता है। एक हिस्सा सुन रहा है। बाकी हिस्से शायद कहीं और हो, या शायद सोए ही हुए हों, या सोच रहे हो कि क्या कहा जा रहा है। या भीतर विवाद कर रहे हो। उसमें एक विभाजन पैदा होता है और विभाजन से ऊर्जा का अपव्यय होता है।

तो जब भी कुछ करो, उसमे अपने पूरे प्राण डाल दो। जब तुम कुछ भी नहीं बचाते, छोटा सा हिस्सा भी अलग नहीं रहता, जब तुम एक समग्र, संपूर्ण छलांग ले लेते हो। तुम्हारे पूरे प्राण उसमें लग जाते है। तभी कोई कृत्य ध्यान पूर्ण होता है।

कहते है एक बार रिंझाई अपने बग़ीचे में काम कर रहा था—रिंझाई एक झेन गुरु था—और कोई आया। वह आदमी कुछ दार्शनिक प्रश्न पूछने आया था। वह एक दार्शनिक खोजी था। उसे नहीं पता था कि जो आदमी बग़ीचे में काम कर रहा है वही रिंझाई है। उसने सोचा कि यह कोई माली है। कोई नौकर होगा। तो उसने पूछा, 'रिंझाई कहां है?' रिंझाई ने कहां, 'रिंझाई तो हमेशा यहीं है।' स्वभावत: उस आदमी ने सोचा कि माली कुछ पागल लगता है। क्योंकि उसने कहा रिंझाई तो हमेशा यही है। तो उसने सोचा कि इस आदमी से और कुछ पूछना ठीक नहीं होगा। और वह किसी से पूछने के लिए जाने लगा। रिंझाई ने कहा, 'कहीं मत जाओं क्योंकि तुम उसे कहीं भी नहीं पाओगे।' लेकिन वह तो उस पागल आदमी से बच कर भाग गया।

फिर उसने औरों से पूछा तो वे बोले, 'जिस पहले व्यक्ति से तुम मिले थे वहीं तो रिंझाई है।' तो वह वापस आया और बोला, 'मुझे क्षमा करे, बहुत खेद है मुझे, मैंने सोचा कि आप पागल है। मैं कुछ पूछने आया हूं। मैं जानता चाहता हूं कि सत्य क्या है। उसे जानने के लिए मैं क्या करूं?' **रिंझाई ने कहा, 'तुम जो करना चाहो वहीं करो, लेकिन समग्रता में रहो'**

सवाल यही नहीं है कि तुम क्या करते हो। वह बात ही असंगत है। सवाल यह है कि तुम उसे समग्रता से करो। 'उदाहरण के लिए', रिंझाई बोला, जब मैं यह गड्ढा खोद रहा था। तो मेरी समग्रता गड्ढा खोदना हो गई थी। पीछे कोई रिंझाई नहीं था। पूरा का पूरा खोदने में लग गया है। असल में कोई खोदने वाला नहीं बचा। बस खोदने की क्रिया ही बची है। यदि खोदने वाला बचे तो तुम बंट गए।'

तुम मुझे सून रहे हो, यदि सुनने वाला बचे तो तुम समग्र नहीं हुए। यदि केवल सुनना ही हो और पीछे कोई सुनने वाला न बचे तो तुम समग्र हो गए। अभी और यही। फिर यह क्षण ही ध्यान बन जाता है।
इस सूत्र में शिव कहते है, 'अपनी संपूर्ण चेतना से कामना के, जानने के आरंभ में ही जानो।'
यदि तुम्हारे भीतर कोई कामना उठे तो तंत्र उससे लड़ने को नहीं कहता। वह व्यर्थ है। कामना से कोई भी नहीं लड़ सकता। वह मूर्खता भी है, क्योंकि जब भी अपने भीतर तुम किसी चीज से लड़ने लगते हो तो तुम स्वयं से ही लड़ रहे हो। तुम विक्षिप्त हो जाओगे, तुम्हारा व्यक्तित्व खंडित हो जाएगा।

और इन सारे तथाकथित धर्मो ने मनुष्यता को धीरे-धीरे विक्षिप्त होने में सहयोग दिया है। हर कोई बंटा हुआ है। हर कोई खंडित है और स्वयं से लड़ रहा है। क्योंकि तथाकथित धर्मों ने तुम्हें बताया है। कि यह बुरा है, यह मत करो। लेकिन यदि कामना उठती है तो तुम क्या कर रहे हो। तुम कामना से लड़ रहे हो। **तंत्र कहता है कि कामना से मत लड़ो।**

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम उसके शिकार हो जाओ। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम उसमें लिप्त हो जाओ। तंत्र तुम्हें बड़ी सूक्ष्म विधि देता है। **जब कामना उठे तो आरंभ में ही अपनी समग्रता से जागरूक हो जाओ। अपनी समग्रता से उसको देखो। बस दृष्टि बन जाओ। द्रष्टा को पीछे मत छोड़ो। अपनी समग्रता से उसका देखो। बस दृष्टि बन जाओ। द्रष्टा को पीछे मत छोड़ो। अपनी पूरी चेतना को इस उठती हुई कामना पर लगा दो। यह बड़ा सूक्ष्म उपाय है। लेकिन बहुत अद्‌भुत है। इसके प्रभाव चमत्कारिक है।**

तीन बातें समझने जैसी है। पहली, जब कामना उठ ही रही है तो कुछ तुम कर नहीं सकते। तब वह अपना रास्ता पूरा करेगी। अपना वर्तुल पूरा करेगी। और तुम कुछ भी नहीं कर सकते। **आरंभ में ही कुछ किया जा सकता है।** बीज को तभी और वही जला देना चाहिए। एक बार बीज अंकुरित हो जाए और वृक्ष विकसित होने लगे तो कुछ करना कठिन होगा, लगभग असंभव ही होगा। तुम जो भी करोगे उससे और संताप ही पैदा होगा। ऊर्जा ही नष्ट होगी। विक्षिप्तता, निर्बलता ही पैदा होगी। **तो जब कामना उठे आरंभ ही हो। पहली झलक में ही पहले आभास में ही कि कामना उठ रही है। अपनी संपूर्ण चेतना को, अपने प्राणों की समग्रता को उसे देखने में लगा दो। कुछ भी मत करो।** और कुछ करने की जरूरत भी नहीं। समग्र प्राणों से देखने पर दृष्टि इतनी आग्नेय हो जाती है कि बिना किसी संघर्ष के, बिना किसी विवाद के, बिना किसी विरोध के, बीज जल जाता है। समग्र प्राणों से गहरे देखने की बात है। और उठती हुई कामना पूरी तरह दग्ध हो जाती है।

और जब कामना बिना किसी संघर्ष के समाप्त हो जाती है तो वह तुम्हें इतना शक्ति शाली कर जाती है। इतनी उर्जा से, इतने गहन होश से भर देती है कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि तुम लड़ोगे तो हारोगे। यदि तुम न भी हारों ओर कामना ही हार जाए तब भी बात वही होगी। कोई ऊर्जा नहीं बचेगी। चाहे तुम जीतों चाहे हारों। तुम थके हारे ही अनुभव करोगे। **दोनों ही बातों में तुम अंत में कमजोर रहो जाओगे। क्योंकि कामना तुम्हारी उर्जा से लड़ रही थी। और तुम भी उसी ऊर्जा से लड़ रहे थे। ऊर्जा एक ही स्त्रोत से आ रही थी। तुम एक ही स्त्रोत से उलीच रहे थे। तो कुछ भी परिणाम हो, स्त्रोत निर्बल ही होगा।**

लेकिन यदि कामना आरंभ में ही समाप्त हो जाए, बिना विरोध के—याद रखो,यह मूल बात है–बिना किसी संघर्ष के,बस देखने भर से विरोध भरी दृष्टि से नहीं,नष्ट करने वाले मन से नहीं। शत्रुता से नहीं। **बस देखने भर से: उस समग्र दृष्टि की सघनता से ही बीज जल जाता है। और जब कामना उठती हुई कामना, आकाश में धुएँ की तरह विलीन हो जाती है तो तुम एक अद्‌भुत ऊर्जा से भर जाते हो। वह ऊर्जा ही आनंद है। वह तुम्हें एक सौंदर्य,एक गरिमा देगी।**

तथाकथित संत जो अपनी कामनाओं से लड़ रहे है, कुरूप है। जब मैं कहता हूं कुरूप तो मेरा अर्थ है वे सदैव क्षुद्र से उलझे है, संघर्ष कर रहे है। उनका पूरा व्यक्तित्व गरिमाहीन हो जाता है। ओर वे हमेशा कमजोर होते है। हमेशा ऊर्जा की कमी होती है। क्योंकि उनकी सारी **ऊर्जा अंतर्युद्‌ध में नष्ट हो जाती है।**

बुद्‌ध पुरूष बिलकुल भिन्न होता है। और बुद्‌ध के व्यक्तित्व में जो गरिमा प्रकट हूं कुरूप तो मेरा अर्थ है वे सदैव क्षुद्र से उलझे है, संघर्ष या युद्‌ध के, बिना किसी अंतर्हिंसा के नष्ट हो गई कामनाओं के कारण है।

'अपनी संपूर्ण चेतना से कामना है, जानने के आरंभ में ही जानो।'

उसी क्षण में बस जानो, अवलोकन करो, देखो। कुछ भी मत करो। और कुछ भी नहीं चाहिए। बस इतना ही चाहिए कि तुम्हारे समग्र प्राण वहां उपस्थित हो। तुम्हारी पूर्ण उपस्थिति चाहिए। बिना किसी हिंसा के परम बुद्‌धत्व उपलब्ध करने का यक एक राज है।

और याद रखो, परमात्मा के राज्य में तुम हिंसा से प्रवेश नहीं कर सकते। नहीं,वे द्‌वार तुम्हारे लिए कभी नहीं खुलेंगे, भले तुम कितनी ही दस्तक दो। खटखटाओं और खटखटाते ही जाओ। तुम अपना सिर फोड़ ले सकते हो लेकिन वे द्‌वार कभी नहीं खुलेंगे। लेकिन जो भीतर गहरे में अहिंसक है और किसी चीज से नहीं लड़ रहे। उनके लिए वे द्‌वार सदा खुले है, कभी बंद ही नहीं थे।

जीसस कहते है, **दस्तक दो और तुम्हारे लिए द्वार खुल जाएंगे। मैं तुमसे कहता हूं कि दस्तक देने की भी जरूरत नहीं है। देखो द्वार खुले ही हुए है। वे सदा से ही खुले हुए है। वे कभी बंद नहीं थे। बस एक गहन समग्र संपूर्ण, अखंड दृष्टि से देखो।**

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 104

'हे शक्ति, प्रत्येक आभास सीमित है, सर्वशक्तिमान में विलीन हो रहा है।'

जो कुछ भी हम देखते है सीमित है, जो कुछ भी हम अनुभव करते है सीमित है। सभी आभास सीमित है। लेकिन यदि तुम जाग जाओ तो हर सीमित चीज असीम में विलीन हो रही है। आकाश की और देखो। तुम केवल उसका सीमित भाग देख पाओगे। इसलिए नहीं कि आकाश सीमित है, बल्कि इसलिए कि तुम्हारी आंखें सीमित है। तुम्हारा अवधान सीमित है। लेकिन यदि तुम पहचान सको कि यह सीमा अवधान के कारण है, आंखों के कारण है, आकाश के सीमित होने के कारण नहीं है तो फिर तुम देखोगें कि सीमाएं असीम में विलीन हो रही है। जो कुछ भी हम देखते है वह हमारी दृष्टि के कारण ही सीमित हो जाता है। वरना तो अस्तित्व असीम है। वरना तो सब चीजें एक दूसरे में विलीन हो रही है। हर चीज अपनी सीमाएं खो रही है। हर क्षण लहरें महासागर में विलीन हो रही है। और न किसी को कोई अंत है, न आदि। सभी कुछ शेष सब कुछ भी है।

सीमा हमारे द्वारा आरोपित की गई है। यह हमारे कारण है, क्योंकि हम अनंत को देख नहीं पाते, इसलिए उसको विभाजित कर देते है। ऐसा हमने हर चीज के साथ किया है। तुम अपने घर के आस-पास बाड़ लगा लेते हो। और कहते हो कि 'यह जमीन मेरी है, और दूसरी और किसी और की जमीन है।' लेकिन गहरे में तुम्हारी और तुम्हारे पड़ोसी की जमीन एक ही है। वह बाड़ केवल तुम्हारे ही कारण है। जमीन बंटी हुई नहीं है। पड़ोसी और तुम बंटे हुए हो अपने-अपने मन के कारण।

देश बंटे हुए है तुम्हारे मन के कारण। कहीं भारत समाप्त होता है और पाकिस्तान शुरू होता है। लेकिन जहां अब पाकिस्तान है कुछ वर्ष पहले वहां भारत था। उस समय भारत पाकिस्तान की आज की सीमाओं तक फैला हुआ था। लेकिन अब पाकिस्तान बंट गया, सीमा आ गई लेकिन जमीन वही है।

मैंने एक कहानी सुनी है जो तब घटी जब भारत और पाकिस्तान में बंटवारा हुआ। भारत और पाकिस्तान की सीमा पर ही एक पागलखाना था। राजनीतिज्ञों को कोई बहुत चिंता नहीं थी कि पागलखाना कहां जाए। भारत में कि पाकिस्तान में। लेकिन सुपरिनटैंडैंट को चिंता थी। तो उसने पूछा कि पागलखाना कहां रहेगा। भारत में या पाकिस्तान में। दिल्ली से किसी ने उसे सूचना भेजी कि वह वहां रहने वाले पागलों से ही पूछ ले और मतदान ले-ले कि वे कहां जाना चाहते है।

सुपरिन्टेंडेंट अकेला आदमी था जो पागल नहीं था और उसने उनको समझाने की कोशिश कि। उसने सब पागलों को इकट्ठा किया और उन्हें कहां, 'अब यह तुम्हारे ऊपर है, यदि तुम पाकिस्तान में जाना चाहते हो तो पाकिस्तान में जा सकते हो।'

लेकिन पागलों ने कहां, 'हम यही रहना चाहते है। हम कहीं भी नहीं जाना चाहते।' उसने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की। उसने कहां, 'तुम यहीं रहोगे। उसकी चिंता मत करो। तुम यहीं रहोगे लेकिन तुम जाना कहां चाहते हो।' वे पागल बोले, 'लोग कहते है कि हम पागल है, पर तुम तो और भी पागल लगते हो। तुम कहते हो कि तुम भी यहीं रहोगे और हम भी यहीं रहेंगे। कहीं जाने की चिता नहीं है।'

सुपरिन्टेंडेंट तो मुश्किल में पड़ गया कि इन्हें पूरी बात किस तरह समझाई जाए। एक ही उपाय था। उसने एक दीवार खड़ी कर दी और पागल खाने के दो बराबर हिस्सों में बांट दिया। एक हिस्सा पाकिस्तान हो गया एक हिस्सा भारत बन गया। और कहते है कि कई बार पाकिस्तान वाले पागल खाने के कुछ पागल दीवार पर चढ़ आते है। और भारत वाले पागल भी दीवार कूद जाते है और वे अभी भी हैरान है कि क्या हो गया है। हम है उसी जगह पर और तुम पाकिस्तान चले गए हो हम भारत चले गए है। और गया कोई कहीं भी नहीं।

वे पागल समझ ही नहीं सकते, वे कभी भी नहीं समझ पाएंगे, क्योंकि दिल्ली और कराची में और भी बड़े पागल है।

हम बांटते चले जाते है। जीवन अस्तित्व बंटा हुआ नहीं है। सभी सीमाएं मनुष्य की बनाई हुई है। वे उपयोगी है यदि तुम उसके पीछे पागल न हो जाओ और यदि तुम्हें पता हो कि वे बस कामचलाऊ है, मनुष्य की बनाई हुई है। मात्र उपयोगिता के लिए है; असली नहीं है, यथार्थ नहीं है, बस मान्यता मात्र है, कि वे उपयोगी तो है, लेकिन उसमें कोई सच्चाई नहीं है।

'हे शक्ति, प्रत्येक आभास सीमित है, सर्वशक्तिमान में विलीन हो रहा है।'
तो तुम जब भी कुछ सीमित देखो तो हमेशा याद रखो कि सीमा के पार वह विलीन हो रहा है, सीमा तिरोहित हो रही है। हमेशा पार और पार देखो।

इसे तुम एक ध्यान बना सकते हो। किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाओ और देखो, और जो भी तुम्हारी दृष्टि में आए, उसके पार जाओ, पार जाओ, कहीं भी रूको मत। बस यह खोजों कि यह वृक्ष कहां समाप्त हो रहा है। यह वृक्ष तुम्हारे बग़ीचे में यह छोटा सा वृक्ष पूरा अस्तित्व अपने में समाहित किए हुए है। हर क्षण यह अस्तित्व में विलीन हो रहा है।

यदि कल सूर्य न निकले तो यह वृक्ष मर जाएगा। क्योंकि इस वृक्ष का जीवन सूर्य के जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। उनके बीच दूरी बड़ी है। सूर्य की किरणें पृथ्वी तक पहुंचने में समय लगता है। दस मिनट लगते है। दस मिनट बहुत लंबा समय है। क्योंकि प्रकाश बहुत तेज गति से चलता है। प्रकाश एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील चलता है। और सूर्य से इस वृक्ष तक प्रकाश पहुंचने में दस मिनट लगते है। दूरी बड़ी है, विशाल है। लेकिन यदि सूर्य न रहे तो वृक्ष तत्क्षण मर जायेगा। वे दोनों एक साथ है। वृक्ष हर क्षण सूर्य में विलीन हो रहा है। और सूर्य हर क्षण वृक्ष में विलीन हो रहा है। हर क्षण सूर्य वृक्ष में प्रवेश कर रहा है। उसे जीवंत कर रहा है।

दूसरी बात, जो अभी विज्ञान को ज्ञान नहीं है, लेकिन धर्म कहता है कि एक और घटना घट रही है। क्योंकि प्रति संवेदन के बिना जीवन में कुछ भी नहीं रह सकता। जीवन में सदा एक प्रति संवेदन होता है। और ऊर्जा बराबर हो जाती है। वृक्ष भी सूर्य को जीवन दे रहा होगा। वे एक ही है। फिर वृक्ष समाप्त हो जाता है सीमा समाप्त हो जाती है।

जहां भी तुम देखो, उसके पार देखो, और कहीं भी रूको मत। देखते जाओ। देखते जाओ, जब तक कि तुम्हारा मन न खो जाए। जब तक तुम अपने सारे सीमित आकार न खो बैठो। अचानक तुम प्रकाशमान हो जाओगे।
पूरा अस्तित्व एक है, वह एकता ही लक्ष्य है। और अचानक मन आकार से सीमा से परिधि से थक जाता है। और जैसे-जैसे तुम पार जाने के प्रयत्न में लगे रहते हो, पार और पार जाते चले जाते हो। मन छूट जाता है। अचानक मन गिर जाता है। और तुम अस्तित्व को विराट अद्वैत की तरह देखते हो। सब कुछ एक दूसरे में समाहित हो रहा है। सब कुछ एक दूसरे में परिवर्तित हो रहा है।

'हे शक्ति, प्रत्येक आभास सीमित है, सर्वशक्तिमान में विलीन हो रहा है।'

इसे तुम एक ध्यान बना ले सकते हो। एक घंटे के लिए बैठ जाओ और इसे करके देखो। कहीं कोई सीमा मत बनाओ। जो भी सीमा हो उसके पार खोजने का प्रयास करो और चले जाओ। जल्दी ही मन थक जाता है। क्योंकि मन असीम के साथ नहीं चल सकता। मन केवल सीमित से ही जुड़ सकता है। असीम के साथ मन नहीं जुड़ सकता; मन ऊब जाता है। थक जाता है। कहता है, 'बहुत हुआ, अब बस करो।' लेकिन रूको मत, चलते जाओ। एक क्षण आएगा जब मन पीछे छूट जाता है। और केवल चेतना ही बचती है। उस क्षण में तुम्हें अखंडता का अद्वैत का ज्ञान होगा। यही लक्ष्य है। यह चेतना का सर्वोच्च शिखर है। और मनुष्य के मन के लिए यह परम आनंद है, गहनत्म समाधि है।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 105

‘सत्य में रूप अविभक्त है। सर्वव्यापी आत्मा तथा तुम्हारा अपना रूप अविभक्त है। दोनों को इसी चेतना से निर्मितजानो।’

‘सत्य में रूप अविभक्त है।’

वे विभक्ति दिखाई पड़ते है, लेकिन हर रूप दूसरे रूपों के साथ संबंधित है। वह दूसरों के साथ अस्तित्व में है—बल्कि यह कहना अधिक सही होगा कि वह दूसरे रूपों के साथ सह-अस्तित्व में है—बल्कि यह कहना अधिक सही होगा कि वह दूसरे रूपों के साथ सह-अस्तित्व में है। हमारी वास्तविकता एक सह सही अस्तित्व है। वास्तव में यह एक पारस्परिक वास्तविकता है। पारस्परिक आत्मीयता है।

उदाहरण के लिए, **जरा सोचो कि तुम इस पृथ्वी पर अकेले हो। तुम क्या होओगे? पूरी मनुष्यता समाप्त हो गई हो, तीसरे विश्वयुद्ध के बाद तुम्हीं अकेले बचे हो—संसार में अकेले, इस विशाल पृथ्वी पर अकेले। तुम कौन होओगे?**

पहली बात तो यह है कि अपने अकेले होने की कल्पना करना ही असंभव है। मैं कहता हूं, अपने अकेले होने की कल्पना करना ही असंभव है। तुम बार-बार कोशिश करोगे और पाओगे कि कोई साथ ही खड़ा है--तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे बच्चे, तुम्हारे मित्र--क्योंकि तुम कल्पना में भी अकेले नहीं रह सकते। तुम दूसरों के साथ ही हो। वे तुम्हें अस्तित्व देते है। वे तुम्हें सहयोग देते है। तुम उन्हें सहयोग देते हो और वे तुम्हें सहयोग देते है।

तुम कौन होओगे। तुम अच्छे आदमी होओगे या बुरे आदमी होओगे? कुछ भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अच्छाई और बुराई सापेक्ष होती है। तुम सुंदर होओगे। कि कुरूप होओगे? कुछ भी नहीं कहा जा सकता। तुम पुरूष होओगे या स्त्री होओगे? कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि तुम जो भी हो, दूसरे के संबंध में हो। तुम बुद्धिमान होओगे या मूढ़?

धीरे-धीरे तुम पाओगे कि सब रूप समाप्त हो गए। और उन रूपों के समाप्त होने के साथ तुम्हारे भीतर के भी सब रूप समाप्त हो गए है। न तुम मूर्ख हो न बुद्धिमान, न अच्छे न बुरे, न कुरूप न सुंदर, न पुरूष न स्त्री। फिर तुम क्या होओगे। यदि तुम सब रूपों को हटाते चलो तो जल्दी ही तुम पाओगे कि कुछ भी नहीं बचा। हम रूपों को अलग-अलग देखते है। लेकिन वे अलग है नहीं, हर रूप दूसरों के साथ जुड़ा है। रूप एक श्रंखला में होते है।

यह सूत्र कहता है: 'सत्य में रूप अविभक्त है। सर्वव्यापी आत्मा तथा तुम्हारा अपना रूप अविभक्त है।'
तुम्हारा रूप और संपूर्ण अस्तित्व का रूप भी अविभक्त है। तुम उसके साथ एक हो। तुम उसके बिना नहीं हो सकते। और दूसरी बात भी सच है, लेकिन उसे समझना थोड़ा कठिन है: जगत भी तुम्हारे बिना नहीं हो सकता। जगत तुम्हारे बिना नहीं हो सकता। जैसे की तुम जगत के बिना नहीं हो सकते। तुम अलग-अलग रूपों में सदैव रहे हो और अलग-अलग रूपों में सदैव रहोगे। लेकिन तुम रहोगे ही। तुम इस जगत के एक अभिन्न अंग हो। तुम बाहरी नहीं हो, कोई अजनबी नहीं हो, कोई परदेशी नहीं हो। तुम एक अंतरंग, अभिन्न अंग हो। और जगत तुम्हें खो नहीं सकता। क्योंकि यदि वह तुम्हें खोता है तो स्वयं भी खो देगा। रूप विभक्त नहीं है। अविभक्त है। वे एक है। केवल आभास ही सीमाएं और परिधियां खड़ी करते है।

यदि तुम इस पर मनन करो। इसमें प्रवेश करो, तो यह एक अनुभूति बन सकती है। यह एक अनुभूति बन जाती है। कोई सिद्धांत नहीं, कोई विचार नहीं, बल्कि एक अनुभूति है, हां, मैं जगत के साथ एक हूं और जगत मेरे साथ एक है।

यही जीसस यहूदियों से कह रहे थे। लेकिन वह नाराज हुए,क्योंकि जीसस ने कहा, 'मैं और स्वर्ग में मेरे पिता एक ही है।' यहूदी नजारा हुए। जीसस क्या दावा कर रहे थे? क्या वह यह दावा कर रहे थे कि वह और परमात्मा एक ही है? यह तो ईश्वर विरोधी बात हो गई। उन्हें दंड मिलना चाहिए। लेकिन वह तो मात्र एक विधि दे रहे थे। और कुछ भी नहीं। वह मात्र यह विधि दे रहे थे कि यह विभक्त नहीं है, कि तुम और पूर्ण एक ही हो-'मैं और स्वर्ग में मेरे पिता एक ही है।' लेकिन यह कोई दावा नहीं था, यह मात्र एक विधि थी।

और जब जीसस ने कहा कि 'मैं और मेरे पिता एक ही है, तो उनका यह अर्थ नहीं था। कि तुम और पिता परमात्मा अलग-अलग हो। जब उन्होंने कहा, 'मैं तो उसमें हर 'मैं' आ गया। जहां भी 'मैं' है वह उस मैं और परमात्मा एक है। लेकिन इसे गलत समझा गया। और यहूदी तथा ईसाइयों, दोनों ने ही इसे गलत समझा। ईसाइयों

ने भी गलत समझा। क्योंकि वे कहते है कि जीसस परमात्मा के इकलौते बेटे है। परमात्मा के इकलौते बेटे ताकि कोई और यह दावा न कर सके कि वह भी परमात्मा का बेटा है।'

में एक बड़ी मजेदार पुस्तक पढ़ रहा था। उसका शीर्षक है, "तीन क्राइस्ट।" एक पागलख़ाने में तीन आदमी थे और तीनों ही यह दावा करते थे कि वे क्राइस्ट है। यह एक सच्ची घटना है। कोई कहानी नहीं है। तो एक मनोविश्लेषक ने तीनों को अध्ययन किया। फिर उसके मन में एक विचार आया कि यह उन तीनों को आपस में मिलवाया जाए तो देखें क्या होता है। बड़ी दिल्लगी रहेगी। वे एक दूसरे को कैसे परिचय देंगे और क्या उनकी प्रतिक्रिया होगी। तो उसने उन तीनों को इकट्ठा किया और आपस में परिचय करने के लिए एक कमरे में छोड़ दिया।

पहला बोला, "मैं इकलौता बेटा हूं, जीसस क्राइस्ट।"
दूसरा हंसा और उसने अपने मन में सोचा कि यह जरूर कोई पागल होगा। वह बोला: "तुम कैसे हो सकते हो। मेरी और देखो। परमात्मा का बेटा यहां है।"
तीसरे ने सोचा कि दोनों मूर्ख है। कि दोनों पागल हो गए है। उसने कहा, "तुम क्या बात करते हो। मेरी और देखो। परमात्मा का बेटा यहां है।"

फिर उस मनोविश्लेषक ने उनसे अलग-अलग पूछा। "तुम्हारी प्रतिक्रिया क्या है।"
उन तीनों ने कहा, "बाकी दोनों पागल हो गये है।"

और ऐसा केवल पागलों के साथ ही नहीं है। यदि तुम ईसाइयों से पूछो कि वे कृष्ण के विषय में क्या सोचते है तो वे उसे परमात्मा समझते है। तो वे कहेंगे कि उस पार से केवल एक ही आगमन हुआ है। वे है जीसस क्राइस्ट। इतिहास में केवल एक ही बार परमात्मा संसार में उतरा है। और जीसस क्राइस्ट के रूप में। कृष्ण भले है, महान है, लेकिन परमात्मा नहीं है।

यदि तुम हिंदुओं से पूछो, वे जीसस पर हंसेंगे। वही पागलपन चलता है। और वास्तविकता यह है कि सब परमात्मा के बेटे है-सब। इससे अन्यथा संभव ही नहीं है। तुम एक ही स्त्रोत से आते हो। चाहे तुम जीसस हो, कि कृष्ण हो, कि अ, ब, स कुछ भी हो, या कुछ भी नहीं हो, तुम एक ही स्त्रोत से आते हो। और हर "मैं" हर चेतना, हर क्षण दिव्य से संबंधित है। जीसस केवल एक विधि दे रहे थे। वह गलत समझे गए।

यह विधि वही है: "सत्य में रूप अविभक्त है। सर्वव्यापी आत्मा तथा तुम्हारा अपना रूप अविभक्त है। दोनों को इसी चेतना से निर्मित जानो।"

न केवल यह अनुभव करो कि तुम इस चेतना से बने हो। बल्कि अपने आस-पास की हर चीज को इसी चेतना से निर्मित जानो। क्योंकि यह अनुभव करना तो बड़ा सरल है कि तुम इस चेतना से बने हो। इससे तुम्हें बड़े अंहकार का भाव हो सकता है। अहंकार को इससे बड़ी तृप्ति मिल सकती है। लेकिन अनुभव करो कि दूसरा भी इसी चेतना से बना है। फिर यह एक विनम्रता बन जाती है।

जब सब कुछ दिव्य है तो तुम्हारा मन अहंकारी नहीं हो सकता। जब सब कुछ दिव्य है तो तुम विनम्र हो जाते हो। फिर तुम्हारे कुछ होने का कुछ श्रेष्ठ होने का प्रश्न नहीं रह जाता, फिर पूरा अस्तित्व दिव्य हो जाता है। और जहां भी तुम देखते हो, दिव्य को ही देखते हो। देखने वाला दृष्टा और देखा गया दृश्य दोनों दिव्य है। क्योंकि रूप विभक्त नहीं है। सब रूपों के पीछे अरूप छिपा हुआ है।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 106

'हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो। अंत: आत्मचिंता को त्यागकर प्रत्येक प्राणी हो जाओ।'

'हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो।'

वास्तव में ऐसा ही है, पर ऐसा लगता नहीं। अपनी चेतना को तुम अपनी चेतना ही समझते हो। और दूसरों की चेतना को तुम कभी अनुभव नहीं करते। अधिक से अधिक तुम यही सोचते हो कि दूसरे भी चेतन है। ऐसा तुम इसीलिए सोचते हो क्योंकि जब तुम चेतन हो तो तुम्हारे ही जैसे दूसरे प्राणी भी चेतन होने चाहिए। यह एक तार्किक निष्कर्ष है; तुम्हें लगता नहीं कि वे चेतन है। यह ऐसे ही है जैसे जब तुम्हें सिर में दर्द होता है तो तुम्हें उसका पता चलता है, तुम्हें उसका अनुभव होता है। लेकिन यदि किसी दूसरे के सिर में दर्द है तो तुम केवल सोचते हो, दूसरे के सिर-दर्द को तुम अनुभव नहीं कर सकते। तुम केवल सोचते हो कि वह जो कह रहा है सच ही होना चाहिए। और उसे तुम्हारे सिर-दर्द जैसा ही कुछ हो रहा होगा। लेकिन तुम उसे अनुभव नहीं कर सकते। अनुभव केवल तभी आ सकता है जब तुम दूसरों कि चेतना के प्रति भी जागरूक हो जाओ, अन्यथा यह केवल तार्किक निष्पति मात्र ही रहेगी। तुम विश्वास करते हो, भरोसा करते हो कि दूसरे ईमानदारी से कुछ कह रहे है; और वे जो कह रहे है यह भरोसा करने योग्य है, क्योंकि तुम्हें भी ऐसे ही अनुभव होते है।

तार्किकों की एक धारा है जो कहती है कि दूसरे के बारे में कुछ भी जानना असंभव है। अधिक से अधिक माना जा सकता है, पर निश्चित रूप से कुछ भी जाना नहीं जा सकता। यह तुम कैसे जान सकते हो कि दूसरे को भी तुम्हारे जैसी ही पीड़ा हो रही है। कि दूसरों को तुम्हारे ही जैसे दुःख है? दूसरें सामने है पर हम उनमें प्रवेश नहीं कर सकते, हम बस उनकी परिधि को छू सकते है। उनकी अंतस चेतना अनजानी रहती है। हम अपने में ही बंद रहते है।

हमारे चारों ओर का संसार अनुभवगत नहीं है। बस माना हुआ है। तर्क से, विचार से मन तो कहता है कि ऐसा है, पर ह्रदय इसे छू नहीं पाता। **यही कारण है कि हम दूसरों से ऐसा व्यवहार करते है जैसे वे व्यक्ति न हो वस्तुएं हो। लोगों के साथ हमारे संबंध भी ऐसे होते है। जैसे वस्तुओं के साथ होते है।** *पति अपनी पत्नी से ऐसा व्यवहार करता है जैसे वह कोई वस्तु हो: वह उसका मालिक है। पत्नी भी पति की इसी तरह मालिक होती है। जैसे वह कोई वस्तु हो। यदि हम दूसरों से व्यक्तियों की तरह व्यवहार करते तो हम उन पर मालकियत न जमाते, क्योंकि मालकियत केवल वस्तुओं पर ही की जा सकती है।*

व्यक्ति का अर्थ है स्वतंत्रता। व्यक्ति पर मालकियत नहीं की जा सकती। यदि तुम उन पर मालकियत करने का प्रयास करोगे। तो उन्हें मार डालोगे। वे वस्तु हो जाएंगे। वास्तव में दूसरों से हमारे संबंध कभी भी 'मैं-तुम' वाले नहीं होते। गहरे में वह बस–'मैं-यह' (यह यानी वस्तु) वाले होते है। दूसरा तो बस एक वस्तु होता है जिसका शोषण करना है। जिसका उपयोग करना है। यही कारण है कि प्रेम असंभव होता जा रहा है। क्योंकि प्रेम का अर्थ है दूसरे को व्यक्ति समझना, एक चेतन-प्राणी, एक स्वतंत्रता समझना, अपने जितना ही मूल्यवान समझना।

यदि तुम ऐसे व्यवहार करते हो जैसे सब लोग वस्तु है तो तुम केंद्र हो जाते हो और दूसरे उपयोग की जाने वाली वस्तुएं हो जाती है। संबंध केवल उपयोगिता पर निर्भर हो जाता है। वस्तुओं का अपने आप में कोई मूल्य नहीं होता; उनका मूल्य यही है कि तुम उनका उपयोग कर सकते हो, वे तुम्हारे लिए है। तुम अपने घर से संबंधित हो सकते हो; घर तुम्हारे लिए है। वह एक उपयोगिता है। कार तुम्हारे लिए है। लेकिन पत्नी तुम्हारे लिए नहीं है। न पति तुम्हारे लिए है। पति अपने लिए है और पत्नी अपने लिए है।

एक व्यक्ति अपने लिए ही होता है। यही व्यक्ति होने का अर्थ है। और यदि तुम व्यक्ति को व्यक्ति ही रहने देते हो। और उन्हें वस्तु न बनाओ। धीरे-धीरे तुम उसे महसूस करना शुरू कर देते हो। अन्यथा तुम महसूस नहीं कर सकते। तुम्हारा संबंध बस धारणागत, बौद्धिक, मन से मन का, मस्तिष्क से मस्तिष्क का ही रहेगा। कभी ह्रदय से ह्रदय का नहीं हो पाएगा।

यह विधि कहती है, 'हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो।'

यह भी वही बात है। लेकिन पहले दूसरा तुम्हारे लिए एक व्यक्ति की तरह होना चाहिए। वह स्वयं के लिए होना चाहिए। किसी शोषण या उपयोग के लिए नही, किसी साधन की तरह नहीं, उसे स्वयं में एक साध्य की तरह होना चाहिए। पहले वह व्यक्ति होना चाहिए; वह 'तुम होना चाहिए, तुम्हारे जितना ही मूल्यवान। केवल तभी वह विधि उपयोग की जा सकती है।'

'हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो।'

पहले अनुभव करो कि दूसरा भी चेतन है, तब यह हो सकता है कि तुम महसूस करो कि दूसरे में भी वही चेतना है जो तुममें है। वास्तव में दूसरा खो जाता है। और तुम्हारे तथा उसके बीच चैतन्य लहराता है। तुम चेतना की एक धारा के दो ध्रुव बन जाते है।

गहन प्रेम में ऐसा होता है कि दो व्यक्ति दो नहीं रहते। दोनों के बीच कुछ बहने लगता है और वे दोनों दो ध्रुव बन जाते है। दोनों के बीच में कुछ आंदोलित होने लगता है। जब यह बहाव घटित होता है तो तुम आनंद से भर उठते हो। यदि प्रेम आनंद देता है तो इसी कारण; दो व्यक्ति केवल एक क्षण के लिए अपने अहंकार खो देते है। 'दूसरा' खो जाता है और बस एक क्षण के लिए अद्वैत अंतस में उतर जाता है। यदि ऐसा होता है तो अहो भाव है, सौभाग्य है, तुम स्वर्ग में प्रवेश कर गए। केवल एक क्षण ओर वही क्षण तुम्हें रूपांतरित कर देता है।

यह विधि कहती है कि यह प्रयोग तुम सबके साथ कर सकते हो, प्रेम में तुम एक व्यक्ति के साथ हो सकते हो परंतु ध्यान में सबके साथ हो सकते हो। जो भी तुम्हारे पास आए उसमे डूब जाओ और अनुभव करो कि तुम दो जीवन नहीं हो। बस एक प्रवाहित जीवन हो। केवल गेस्टाल्ट बदलने की बात है। एक बार तुम जान जाओ कि कैसे यह होता है। एक बार तुम प्रयोग कर लो तो बहुत आसान है। शुरू-शुरू में यह असंभव लगता है। क्योंकि हम अपने अहंकार से बहुत जुड़े हुए है। अहंकार को छोड़ना और प्रवाह में बहना कठिन है। तो अच्छा होगा कि पहले तुम किसी ऐसी चीज से शुरू करो जिससे तुम भयभीत नहीं हो।

तुम वृक्ष से ज्यादा भयभीत नहीं होओगे। इसलिए वहां से शुरू करना सरल रहेगा। किसी वृक्ष के पास बैठकर महसूस करो कि तुम उसके साथ एक हो गए हो। कि तुम्हारे भीतर एक प्रवाह, एक संप्रेषण हो रहा है। तुम तिरोहित हो रहे हो। **किसी बहती हुई नदी के किनारे बैठ जाओ और प्रवाह को अनुभव करो, महसूस करो कि तुम और नदी एक हो गए हो। आकाश के नीचे लेटकर महसूस करो कि तुम और आकाश एक हो गए हो। शुरू-शुरू में तो यह कल्पना मात्र होगा लेकिन धीर-धीरे तुम्हें लगने लगेगा कि तुम कल्पना के माध्यम से वास्तविकता को छूने लगे हो।**

और फिर व्यक्तियों के साथ प्रयोग करो। शुरू में तो यह कठिन होगा। क्योंकि भय लगेगा। क्योंकि तुम वस्तु बनते रहे हो। तुम भयभीत हो कि यदि तुम किसी को इतने पास आने दोगे तो वह तुम्हें वस्तु बना लेगा। यही भय है तो कोई भी इतनी घनिष्ठता नहीं होने देता। एक अंतराल हमेशा बनाए रखना चाहता है। बहुत अधिक निकटता खतरनाक है। क्योंकि दूसरा तुमको वस्तु बना ले सकता है, वह तुम पर मालकियत करने की कोशिश कर सकता है। वह डर है तुम दूसरों को वस्तु बनना चाहता, कोई भी किसी का साधन बनना नहीं चाहता। कोई भी नहीं चाहता, कोई भी नहीं चाहता कि कोई उसका उपयोग करे। किसी का साधन बन जाना स्वयं में मूल्यवान न रहना। सबसे

निकृष्ट घटना है। लेकिन हर कोई प्रयास कर रहा है। इसी कारण इतना गहन भय है कि इस विधि को व्यक्तियों के साथ शुरू करना कठिन होगा।

तो किसी नदी के साथ, किसी पहाड़ी के साथ, तारों के साथ, आकाश के साथ, वृक्षों के साथ शुरू करो। एक बार तुम जान जाओ कि जब तुम वृक्ष के साथ एक हो जाते हो तो क्या होता है। एक बार तुम जान जाओ कि नदी के साथ जब तुम एक हो जाते हो तो कितना आनंद उतरता है। कैसे बिना कुछ खोए तुम पूरे अस्तित्व को पा लेते हो—तब तुम इसे व्यक्तियों के साथ शुरू कर सकते हो।

और यदि एक वृक्ष के साथ, एक नदी के साथ इतना आनंद आता है तो तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि एक व्यक्ति के साथ कितना अधिक आनंद आएगा। क्योंकि मनुष्य उच्चतर घटना है, अधिक विकसित चेतना है। एक व्यक्ति के साथ तुम अनुभव के उच्चतर शिखरों पर पहुंच सकते हो। यदि तुम एक पत्थर के साथ भी आनंदित हो सकते हो तो एक मनुष्य के साथ परम आनंदित हो सकते हो।

लेकिन किसी ऐसी चीज से शुरू करो जिससे तुम अधिक भयभीत नहीं हो, या यदि कोई व्यक्ति है जिसे तुम प्रेम करते हो—कोई मित्र है, कोई प्रियसी, कोई प्रेमी—जिससे तुम भयभीत नहीं हो। जिसके साथ तुम्हें यह भय न हो कि वह तुम्हें वस्तु बना लेगा और जिसमें तुम अपने को मिटा सको—यदि तुम्हारे पास ऐसा कोई है तो यह विधि करके देखो। स्वयं को होश पूर्वक उसमें मिटा दो।

जब तुम होश पूर्वक स्वयं को किसी में मिटा देते हो वह भी स्वयं को तुममें मिटा देगा; जब तुम खुले होते हो और दूसरे में बहते हो तो दूसरा भी तुममें बहने लगता है और एक गहन मिलन, एक संवाद घटित होता है। दो ऊर्जाऐं एक दूसरे में समाहित हो जाती है। उस स्थिति में कोई अहंकार, कोई व्यक्ति नहीं बचता,बस चेतना बचती है। और यदि यह एक व्यक्ति के साथ संभव है तो यह पूरे ब्रह्मांड के साथ संभव है। जिसे संतों ने परमानंद कहा है। समाधि कहा है, वह पुरूष ओर प्रकृति के बीच गहन प्रेम की घटना है।

'हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो। अंत: आत्मचिंता को त्याग कर प्रत्येक प्राणी हो जाओ।'
हम सदा अपने से मतलब रखते है। जब हम प्रेम में भी होते है तो अपने में ही उत्सुक होते है। यही कारण है कि प्रेम एक विषाद बन जाता है। प्रेम स्वर्ग बन सकता है। लेकिन नर्क बन जाता है। क्योंकि प्रेमी भी अपने ही स्वार्थों में लगे होते है। दूसरे को इसलिए प्रेम किया जाता है क्योंकि वह तुम्हें सुख देता है। क्योंकि उसके साथ तुम्हें अच्छा लगता है। लेकिन दूसरे को तुमने ऐसे प्रेम नहीं किया। वह अपने आप में ही मूल्यवान हो। मूल्य तुम्हारी प्रसन्नता से आता है। एक तरह से तुम परितुष्ट होते हो। संतुष्ट होते हो। इसलिए दूसरा महत्वपूर्ण है। यह भी दूसरे का उपयोग करना ही है।

आत्मचिंता का अर्थ है कि दूसरे का शोषण। और धार्मिक चेतना केवल तभी उतर सकती है जब स्वयं की चिंता खो जाए। क्योंकि तब तुम अ-शोषक हो जाते हो। अस्तित्व के साथ तुम्हारा संबंध शोषण का नहीं रहता। बल्कि बांटने का, आनंद का रह जाता है। न तुम किसी का उपयोग कर रहे हो, न कोई तुम्हारा उपयोग कर रहा हे। बस होने का उत्सव रह जाता है।

लेकिन इस आत्मचिंता को दूर करना है—और वह बहुत गहरे में जमी हुई है। यह इतनी गहरी है कि तुम्हें उसका पता नहीं है। एक उपनिषद में कहा गया है कि पति अपनी पत्नी को पत्नी नहीं, बल्कि अपने लिए प्रेम करता है। और मां अपने बेटे को बेटे के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए प्रेम करती है। स्वार्थ की जड़ें इतनी गहरी है कि तुम जो

भी करते हो अपने ही लिए करते हो। इसका अर्थ है कि तुम सदा अहंकार का ही पोषण कर रहे हो। तुम सदा अहंकार को, एक झूठे केंद्र को पोषित कर रहे हो। जो कि तुम्हारे और अस्तित्व के बीच बाधा बन गया है। स्वयं की चिंता छोड़ दो। यदि कभी कुछ क्षण के लिए भी तुम स्वयं की चिंता छोड़ सको और दूसरे से, दूसरे के अस्तित्व से जुड़ सको तो तुम एक भिन्न वास्तविकता में, एक भिन्न आयाम में प्रवेश कर जाओगे। इसीलिए सेवा, प्रेम, करूणा पर इतना बल दिया जाता है। क्योंकि करूणा, प्रेम, सेवा का अर्थ है दूसरे से संबंध, अपने से नहीं।
लेकिन देखो, मनुष्य का मन इतना चालाक है कि उसने सेवा, करूणा और प्रेम को भी स्वार्थ में बदल दिया है। *ईसाई मिशनरी सेवा करता है और अपनी सेवाओं में ईमानदार होता है। वास्तव में कोई और इतनी गहनता और लगन से सेवा नहीं कर सकता जितना कि एक ईसाई मिशनरी। कोई हिंदू, कोई मुसलमान ऐसा नहीं कर सकता। क्योंकि जीसस ने सेवा पर बहुत बल दिया है। एक ईसाई मिशनरी गरीबों की, बीमारों की, रोगियों कि सेवा कर रहा है। लेकिन गहरे में उसे अपने से ही मतलब है। उन लोगों से कोई लेना देना नहीं है। यह सेवा बस स्वर्ग पहुंचने का एक उपाय है। उसे उनसे कुछ भी लेना-देना नहीं है। बस अपने स्वार्थ से मतलब है। सेवा से श्रेष्ठ जीवन पा सकता है। इसलिए वह सेवा कर रहा है। लेकिन वह मूल बात ही चूक जाता है।* ***क्योंकि सेवा का अभिप्राय है दूसरे को महत्व देना, दूसरा केंद्र है और तुम परिधि बन गए।***

कभी ऐसा करके देखो। किसी को केंद्र बना लो। फिर उसका सुख तुम्हारा सुख हो जाता है। उसका दुःख तुम्हारा दुःख हो जाता है। जो भी होता है। उसको होता है लेकिन तुम तक प्रवाहित होता है। वह केंद्र है। यदि एक बार बस एक बार भी तुम अनुभव कर सको कि कोई और तुम्हारा केंद्र है। और तुम उसकी परिधि बन गए हो, तो तुम एक भिन्न अस्तित्व में अनुभव के एक भिन्न आयाम में प्रवेश कर गए। क्योंकि उस क्षण तुम एक गहन आनंद अनुभव करोगे। जो पहले कभी नहीं जाना होगा। पहले कभी महसूस न किया होगा। तुम स्वर्ग में प्रवेश कर गए।
ऐसा क्यों होता है? ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि अहंकार दुःख का मूल है। यदि तुम उसे भूल सको, उसे मिटा सको तो सभी दुःख उसी के साथ मिट जाते है।

'हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो। अत: आत्मचिंता को त्यागकर प्रत्येक प्राणी हो जाओ।'
वृक्ष बन जाओ, नदी बन जाओ, पति बन जाओ। बच्चा बन जाओ। मां बन जाओ, मित्र बन जाओ—इसका जीवन के हर क्षण में अभ्यास किया जा सकता है। लेकिन शुरू में यह कठिन होगा। तो कम से कम इसे एक घंटा रोज करो। उस एक घंटे में तुम्हारे करीब से जो भी गूजरें, वही बन जाओ। तुम सोचोगे कि यह कैसे हो सकता है। इसे जानने का और कोई उपाय नहीं है। तुम्हें करके ही देखना पड़ेगा।

किसी वृक्ष के साथ बैठो और महसूस करो कि तुम वृक्ष बन गए हो। और जब हवा चलती है तो और पूरा वृक्ष डोलता है, झूमता है, तो उस कंपन को अपने भीतर महसूस करो। जब सूरज उगता है और पूरा वृक्ष जीवंत हो जाता है, तो उस जीवंतता को अपने भीतर महसूस करो। जब वर्षा होती है और पूरा वृक्ष संतुष्ट और तृप्त हो जाता है, एक लंबी प्यास, एक लंबी प्रतीक्षा समाप्त हो जाती है। और वृक्ष परितृप्त हो जाता है, तो वृक्ष के साथ तृप्त और संतुष्ट अनुभव करो। और जब तुम वृक्ष के सूक्ष्म भाव-भंगिमाओं के प्रति सजग हो जाओगे।

तुम उस वृक्ष को अभी तक कई वर्षों से देखते रहे हो, पर तुम उसके भावों को नहीं जान पाए। कभी वह प्रसन्न होता है; कभी दुःखी होता है; कभी उदास, संतप्त, चिंतित, व्यथित होता है; कभी बहुत आनंदित और अहोभाव से भरा होता है, उसके भाव होते है। वृक्ष जीवंत है और महसूस करता है। और यदि तुम उसके साथ एक हो जाओ तो तुम भी वे अनुभव ले सकते हो। तब तुम अनुभव कर पाओगे कि वृक्ष जवान है या बूढ़ा। वृक्ष अपने जीवन से संतुष्ट है या नहीं। वृक्ष अस्तित्व के साथ प्रेम में है या नहीं। या कि विरूद्ध है, विपरीत है। क्रोधित है; वृक्ष हिंसक है या उसमे

गहन करूणा है। जैसे तुम हर क्षण बदल रह हो वैसे ही वृक्ष भी हर क्षण बदल रहा है। यदि तुम उसके साथ गहन आत्मीयता अनुभव कर सको, जिसे समानुभूति कहते है....।

समानुभूति का अर्थ है तुम किसी के साथ इतनी सहानुभूति से भर जाओ। कि उसके साथ ही हो जाओ। वृक्ष के भाव तुम्हारे भाव हो जाएं। और यदि वह गहरे से गहरा होता चला जाए तो तुम वृक्ष से बात भी कर सकते हो। एक बार तुम्हें उसकी भाव दशाओं का पता लगना शुरू हो जाए तो तुम उसकी भाषा समझना शुरू कर सकते हो। और वृक्ष अपने मन की बातें तुम्हें बताने लगेगा। अपने सुख-अपने दुख, वह तुम्हारे साथ बांटने लगेगा।

और यह पूरे जगत के साथ हो सकता है।

हर रोज कम से कम एक घंटे के लिए किसी भी चीज के साथ समानुभूति में चले जाओ। शुरू में तो तुम्हें लगेगा तुम पागल हो रहे हो। तुम सोचोगे, 'मैं किस तरह की मूर्खता कर रहा हूं?' तुम चारों और देखोगें और महसूस करोगे कि यदि कोई देख ले या किसी को पता लग जाए तो वह सोचेगा कि तुम पागल हो गए हो। लेकिन केवल शुरू में ही ऐसा होगा। ***एक बार समानुभूति के इस जगत में तुम प्रवेश कर जाओ तो सारा संसार तुम्हें पागल नजर आयेगा। वे लोग बेकार में ही इतना चूक रहे है। क्योंकि वे बंद है। वे जीवन को अपने भीतर प्रवेश नहीं करने देते। और जीवन तुममें केवल तभी प्रवेश कर सकता है जब कई-कई मार्गों से, कई-कई आयामों से तुम जीवन में प्रवेश करो। कम से कम एक घंटा हर रोज समानुभूति को साधो।***

प्रांरभ में हर धर्म की प्रार्थना का यही अर्थ था। प्रार्थना का अर्थ था ब्रह्मांड के साथ होना, ब्रह्मांड के साथ गहन संवाद में होना। प्रार्थना का अर्थ है पूर्णता। कभी तुम परमात्मा से नाराज हो सकते हो। कभी धन्यवाद दे सकते हो, पर एक बात पक्की है कि तुम संवाद में हो। परमात्मा केवल एक बौद्धिक धारणा नहीं रही। एक गहन और घनिष्ठ संबंध हो गया। प्रार्थना का यही अर्थ है।

लेकिन हमारी प्रार्थनाएं सड़ गल गई है। क्योंकि हमें तो यह भी नहीं पता कि प्राणियों से कैसे जुड़े। तुम किसी प्राणी से नहीं जुड़ सकते। तुम्हारे लिए यह असंभव है। यदि तुम किसी वृक्ष से नहीं जुड़ सकते तो पूरे अस्तित्व के साथ कैसे जुड़ सकते हो। और यदि एक वृक्ष से बात नहीं कर सकते, तुम्हें पागलपन लगता है। तो परमात्मा से बात करना और भी ज्यादा पागलपन लगेगा।

मन की प्रार्थना पूर्ण दशा के लिए हर रोज एक घंटा अलग से निकाल लो और अपनी प्रार्थना को शब्दिक मत बनाओ। उसमे भाव भरो। खोपड़ी से बोलने की बजाय अनुभव करो। जाओ और वृक्ष को छुओ। उसे गले लगाओ। चूमो; अपनी आंखें बंद कर लो और वृक्ष के साथ ऐसे हो जाओ जैसे तुम अपनी प्रेमिका के साथ हो। उसे महसूस करो। और शीध्र ही तुम्हें एक गहन बोध होगा कि अपने आप को छोड़ कर दूसरा बन जाने का क्या अर्थ है।
'हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो। अत: आत्मचिंता को त्यागकर प्रत्येक प्राणी हो जाओ।'

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 107

‘यह चेतना ही प्रत्येक प्राणी के रूप में है। अन्य कुछ भी नहीं है।’

अतीत में वैज्ञानिक कहा करते थे कि केवल पदार्थ ही है और कुछ भी नहीं है। केवल पदार्थ के ही होने की धारणा पर बड़े-बड़े दर्शन के सिद्धांत पैदा हुए। लेकिन जिन लोगों की यह मान्यता थी कि केवल पदार्थ ही है वे भी सोचते थे कि चेतना जैसा भी कुछ है। तब वह क्या था? वे कहते थे कि चेतना पदार्थ का ही एक बाई-प्रोडेक्ट है, एक उप-उत्पाद है। वह परोक्ष रूप में, सूक्ष्म रूप में पदार्थ ही था।

लेकिन इस आधी सदी ने एक महान चमत्कार होते देखा है। वैज्ञानिकों ने यह जानने का बहुत प्रयास किया कि पदार्थ क्या है। लेकिन जितना उन्होंने प्रयास किया उतना ही उन्हें लगा कि पदार्थ जैसा तो कुछ भी नहीं है। पदार्थ का विश्लेषण किया गया और पाया कि वहां कुछ नहीं है।

अभी सौ वर्ष पूर्व नीत्शे ने कहा था कि परमात्मा मर गया है। परमात्मा के मरने के साथ ही चेतना भी बच नहीं सकती क्योंकि परमात्मा का अर्थ है समग्र-चेतना। लेकिन इन सौ सालों में ही पदार्थ मर गया। और पदार्थ इसलिए नहीं मरा क्योंकि धार्मिक लोग ऐसा सोचते है, बल्कि वैज्ञानिक एक बिलकुल दूसरे निष्कर्ष पर पहुंच गए है कि पदार्थ केवल आभास है। यह केवल ऐसा दिखाई पड़ता है क्योंकि हम बहुत गहरे नहीं देख सकते। यदि हम गहरे में देख सके तो पदार्थ समाप्त हो जाता है। बस ऊर्जा बच रहती है।

यह उर्जा, यह अभौतिक ऊर्जा-शक्ति संतों द्वारा पहले से ही जान ली गई है। वेदों में, बाइबिल में, कुरान में, उपनिषदों में—संसार भर में संतों ने जब भी अस्तित्व में गहरे प्रवेश किया है तो पाया है कि पदार्थ केवल भासता है; गहरे में कोई पदार्थ नहीं है केवल ऊर्जा है। अब इस बात से विज्ञान सहमत है। और संतों ने एक और भी बात कहीं है जिससे विज्ञान को अभी राज़ी होना है—एक दिन उसे राज़ी होना ही पड़ेगा—संत एक दूसरे निष्कर्ष पर भी पहुंचे है, वे कहते है कि जब तुम ऊर्जा में गहरे प्रवेश करते हो तो ऊर्जा भी समाप्ति हो जाती है और बस चेतना बचती है।

तो ये तीन पर्तें है। पदार्थ पहली पर्त है, परिधि है। परिधि के भीतर प्रवेश कर जाओ तो दूसरी पर्त दिखाई पड़ती है। फिर विज्ञान ने भीतर प्रवेश करने का प्रयास किया। और संतों की दूसरी पर्त की पुष्टि हो गई। पदार्थ केवल भासता है, गहरे में वह बस ऊर्जा है। और संतों का दूसरा दावा है: ऊर्जा में भी गहरे प्रवेश करो तो ऊर्जा भी समाप्त हो जाती है। बस चेतना बचती है। वह चेतना ही परमात्मा है, वह अंतरतम केंद्र है।

यदि तुम अपने शरीर में प्रवेश करो तो वहां भी ये तीन पर्तें है। केवल सतह पर तुम्हारा शरीर है। शरीर भौतिक दिखाई पड़ता है, पर उसके भीतर प्राण की, जीवंत ऊर्जा की धाराएं बहती है। उस जीवंत ऊर्जा के बिना तुम्हारा शरीर बस एक लाश रह जाएगा। इसके भीतर कुछ बह रहा है। उसके कारण ही यह जीवित है। वहीं ऊर्जा है। लेकिन गहरे और गहरे में तुम द्रृष्टा हो, साक्षी हो। तुम अपने शरीर और ऊर्जा दोनों को देख सकते हो। वह द्रृष्टा ही तुम्हारी चेतना है।
हर अस्तित्व की तीन पर्तें है। गहनत्म पर्त साक्षी चेतना की है, मध्य में जीवन ऊर्जा है और सतह पर पदार्थ है, भौतिक शरीर है।
यह विधि कहती है, यह चेतना ही प्रत्येक प्राणी के रूप में है। अन्य कुछ भी नहीं है। हो तो अंततः तुम इसी निष्कर्ष पर पहुंचोगे कि तुम चेतना हो। बाकी सब कुछ तुम्हारा हो सकता है। पर तुम वह नहीं हो। शरीर तुम्हारा है। पर तुम शरीर को देख सकते हो। और जो शरीर को देख रहा है वह पृथक हो जाता है। शरीर जानी जाने वाली वस्तु हो जाता है और तुम जानने वाले हो जाते हो। तुम अपने शरीर को जान सकते हो। न केवल तुम जान सकते हो, बल्कि अपने शरीर को आज्ञा दे सकते हो, उसे सक्रिय कर सकते हो। निष्क्रिय कर सकते हो। तुम पृथक हो। तुम अपने शरीर के साथ कुछ भी कर सकते हो।
और न केवल तुम अपना शरीर नहीं हो, बल्कि तुम अपना मन भी नहीं हो। यदि विचार आते है तो तुम उन्हें देख सकते हो। या, तुम कुछ कर सकते हो: तुम उन्हें बिलकुल मिटा सकते हो, तुम विचारशून्य हो सकते हो। या, तुम अपने मन को एक ही विचार पर एकाग्र कर सकते हो। तुम स्वयं को वहां केंद्रित कर सकते हो। या तुम विचारों को नदी की तरह प्रवाहित होने देते हो। तुम अपने विचारों के साथ कुछ भी कर सकते हो। तुम्हें पता चलेगा कि अब कोई विचार नहीं रहे, अंतस में एक खाली पन आ गया है। लेकिन तुम फिर भी होओगे और उस खालीपन को देखोगें।

केवल एक चीज जिसे तुम अपने से अलग नहीं कर सकते, वह तुम्हारा साक्षित्व है। इसका अर्थ है कि तुम वही हो। तुम स्वयं को उससे अलग नहीं कर सकते। तुम बाकी हर चीज को स्वयं से अलग कर सकते हो। तुम जान सकते हो कि तुम न शरीर हो, न मन हो, लेकिन तुम यह नहीं जान सकते कि तुम अपने साक्षी नहीं हो। क्योंकि तुम जो भी करोगे वह साक्षी ही होगा। तुम साक्षी से स्वयं को अलग नहीं कर सकते। वह साक्षी ही चेतना है। और जब तक तुम उस अवस्था पर न पहुंच जाओ जहां से अब और पीछे जाना असंभव हो, तब तक तुम स्वयं तक नहीं पहुंचे। तो ऐसे उपाय है जिनसे साधक संबंध काटता चला जाता है—पहले शरीर, फिर मन और फिर वह उस बिंदु पर पहुंचता है जहां नहीं छोड़ा जा सकता है। उपनिषदों में वे कहते है, नेति-नेति। यह बड़ी गहरी विधि है। न यह , न वह। तो साधक कहता चला जाता है, 'यह मैं नहीं हूं, यह मैं नहीं हूं' जब तक कि वह ऐसी जगह न पहुंच जाए जहां यह न कहा जा सके कि 'यह मैं नहीं हूं'। केवल एक साक्षी बचता है। शुद्ध चेतना बचती है। यह शुद्ध चेतना ही प्रत्येक प्राणी है।

अस्तित्व में जो कुछ भी है इस चेतना का ही प्रतिफलन है, इसी की एक लहर, इसी का एक सधन रूप है। और कुछ भी नहीं है। लेकिन इसे अनुभव करना है। विश्लेषण सहयोगी हो सकता है। बौद्धिक समझ सहयोगी हो सकती है। लेकिन इसे अनुभव करना है कि और कुछ भी नहीं है। बस चेतना है। फिर व्यवहार भी ऐसा करो कि बस चेतना ही है।

मैंने एक झेन गुरु लिंची के बारे में सुना है। एक दिन वह अपनी झोपड़ी में बैठा था कि कोई उससे मिलने आया। जो आदमी मिलने आया था वह बहुत गुस्से में था—हो सकता है उसका अपनी पत्नी से, या अपने मालिक से, या किसी और से झगड़ा हुआ हो—पर वह बहुत गुस्से में था। उसने गुस्से से दरवाजा खोला, गुस्से से अपने जूते उतार कर फेंके और भीतर आकर बड़े आदर से वह लिंची के सामने झुका।

लिंची ने कहा, 'पहले जाओ और जाकर दरवाजे से तथा जूतों से क्षमा मांगो।'

उस आदमी ने बड़ी हैरानी से लिंची की और देखा। वहां दूसरे लोग भी बैठे थे, वे भी सभी हंसने लगे।

लिंची बोला, 'चुप रहो।' और उस आदमी से बोला, अगर तुम क्षमा नहीं मांगना चाहते हो तो यहां से चले जाओ। मुझे तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है। वह आदमी बोला, 'दरवाजे और जूतों से माफी मांगना तो बड़ा विचित्र लगता है।'

लिंची ने कहा, 'जब तुम उन पर गुस्सा निकाल रहे थे तब विचित्र नहीं लग रहा था। अब तुम्हें क्यों विचित्र लग रहा है। हर चीज में एक चेतना है। तो तुम जाओ और जब तक दरवाजा तुम्हें माफ न कर दे, मैं तुम्हें भीतर नहीं आने दूँगा।'

उस आदमी को बड़ा अजीब लगा, पर उसे जाना पडा। बाद में वह भी एक फकीर बन गया। और ज्ञान को उपलब्ध हो गया। जब वह ज्ञान को उपलब्ध हुआ तो उसने सारी कहानी सुनाई, 'जब मैं दरवाजे के सामने खड़ा होकर माफी मांग रहा था तो मुझे बड़ा विचित्र लग रहा था। लेकिन फिर मैंने सोचा कि अगर लिंची ऐसा कहता है तो इसमें जरूर कोई बात होगी। मुझे लिंची में भरोसा था। तो मैंने सोचा चाहे यह पागलपन ही क्यों न हो इसे कर ही डालों। पहले-पहले तो जो मैं दरवाजे से कह रहा था, वह झूठ था। दिखावटी था। लेकिन धीरे-धीरे मैं भाव से भर गया। मैं भूल ही गया कि बहुत से लोग मुझे देख रहे है। मैं लिंची के बारे में भी भूल गया। और मेरा भाव वास्तविक हो गया। सच्चा हो गया। मुझे लगने लगा कि दरवाजा और जूता अपनी मनोदशा बदल रहे है। और जिस क्षण मुझे लगा कि दरवाजा और जूता अब खुश है, लिंची ने उसी समय आवाज दी कि अब मैं भीतर आ सकता हूं। मुझे माफ कर दिया गया है।'

यह विधि कहती है,'चेतना ही प्रत्येक प्राणी के रूप में है। अन्य कुछ भी नहीं है।'
इस भाव के साथ जीओं। इसके प्रति संवेदनशील होओ। और जहां भी तुम जाओ। इसी मन और ह्रदय के साथ जाओ। कि सब कुछ चेतना है। और कुछ भी नहीं है। देर अबेर संसार अपना चेहरा बदल लेगा। देर अबेर पदार्थ मिट जायेगा। और प्राणी नजर आने लगेगा। असंवेदनशीलता के कारण मुर्दा पदार्थ के संसार में रह रहे थे। वरना तो सब कुछ जीवंत है, न केवल जीवंत है, बल्कि चेतना है।
सब कुछ गहरे में चेतना ही है। लेकिन यदि तुम एक सिद्धांत की तरह ही इसमें विश्वास करते हो तो कुछ भी नहीं होगा। तुम्हें इसे जीवन की एक शैली बनाना पड़ेगा। जीवन का ढंग बनाना पड़ेगा। ऐसे व्यवहार करना पड़ेगा जैसे कि सब कुछ चेतन है। शुरू में तो यह 'जैसे कि' ही होगा। और तुम्हें पागलपन लगेगा। लेकिन अगर तुम अपने पागलपन पर डटे ही रहो और यदि तुम पागल होने को साहस कर सको तो जल्दी ही संसार अपने रहस्य प्रकट करने लगेगा।

इस अस्तित्व के रहस्यों में प्रवेश करने का एकमात्र उपाय विज्ञान ही नहीं है। वास्तव में तो यह सबसे अपरिष्कृत ढंग है। सबसे धीमी विधि है। संत तो एक क्षण के भीतर अस्तित्व में प्रवेश कर सकता है। विज्ञान तो उतना भीतर उतरने में लाखों वर्ष लगाएगा। उपनिषद कहते है कि संसार माया है। कि पदार्थ केवल भासता है। लेकिन विज्ञान पाँच हजार साल बाद कह सकता कि पदार्थ झूठ है। उपनिषद कहते है वह ऊर्जा चेतना है। विज्ञान को अभी पाँच हजार साल लगेंगे। धर्म एक छलांग है। विज्ञान बहुत धीमी प्रक्रिया है। बुद्धि छलांग नहीं ले सकती है। उसे तर्क से चलना पड़ता है—हर तथ्य पर तर्क देना पड़ता है। सिद्ध करना पड़ता है। प्रयोग करना पड़ता है। लेकिन ह्रदय छलांग ले सकता है।

याद रखो, बुद्धि के लिए एक प्रक्रिया जरूरी है। फिर निष्कर्ष निकलता है—पहले प्रक्रिया, फिर तर्कपूर्ण निष्पति। ह्रदय के लिए निष्कर्ष पहले आता है। फिर प्रक्रिया आती है। यह बिलकुल विपरीत है। यही कारण है कि संत कुछ सिद्ध नहीं कर सकते। उनके पास निष्कर्ष है, पर प्रक्रिया नहीं है।

शायद तुम्हें पता न हो, शायद तुमने ध्यान न दिया हो। कि संत सदा निष्कर्षों की बात करते हो। यदि तुम उपनिषाद पढ़ो तो तुम्हें निष्कर्ष ही मिलेंगे। जब पहली बार उपनिषदों को पश्चिमी भाषाओं में अनुवादित किया गया। तो पश्चिमी दार्शनिक समझ ही नहीं पाए, क्योंकि उनके पीछे कोई तर्क नहीं था। उपनिषाद कहते है। ''ब्रह्म है'' और इसके लिए कोई तर्क नहीं देते। कि तुम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कैसे। क्या प्रमाण है? किसी आधार पर तुम घोषणा करते हो कि ब्रह्म है? नहीं, उपनिषाद कुछ नहीं कहते,बस निष्कर्ष देते है।
ह्रदय तत्क्षण निष्कर्ष पर पहुंच जाता है। और जब निष्कर्ष आ जाए तो तुम प्रक्रिया शुरू कर सकते हो। दर्शन का यही अर्थ है।
संत निष्कर्ष देते है। और दार्शनिक उसकी प्रक्रिया बनाते है। जीसस निष्कर्ष पर पहुंचे और फिर संत अगस्तीन,थाम अकीनस ने प्रक्रिया पैदा की। वह बाद की बात है। निष्कर्ष पहले आ गया,अब तुम्हें प्रमाण जुटाने होगे। प्रमाण संत के जीवन में है। वह इसके लिए विवाद नहीं कर सकता। वह स्वयं ही प्रमाण है। यदि तुम उसे देख सको। यदि तुम देख न सक,तब तो कोई प्रमाण नहीं है। तब धर्म व्यर्थ है।
तो इन विधियों को सिद्धांत मत बनाओ। ये तो छलाँगें है—अनुभव में,निष्कर्ष में।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 108

'यह चेतना ही प्रत्येक की मार्ग दर्शक सत्ता है, यही हो रहो।'

पहली बात, मार्गदर्शक तुम्हारे भीतर है, पर तुम उसका उपयोग नहीं करते। और इतने समय से, इतने जन्मों से तुमने उसका उपयोग नहीं किया है। कि तुम्हें पता ही नहीं है कि तुम्हारे भीतर कोई विवेक भी है। मैं कास्तानेद की पुस्तक पढ़ रहा था। उसका गुरु डान जुआन उसे एक सुंदर सा प्रयोग करने के लिए देता है। यह प्राचीनतम प्रयोगों में से एक है।

एक अंधेरी रात में, पहाड़ी रास्ते पर कास्तानेद का गुरु कहता है, तू भीतरी मार्गदर्शक पर भरोसा करके दौड़ना शुरू कर दे। यह खतरनाक था। यह खतरनाक था। पहाड़ी रास्ता था। अंजान था। वृक्षों झाड़ियों से भरा था। खाइयां भी थी। वह कहीं भी गिर सकता था। वहां तो दिन में भी संभल-संभलकर चलना पड़ता था। और यह तो अंधेरी रात थी। उसे कुछ सुझाई नहीं पड़ता था। और उसका गुरू बोला, चल मत दौड़।

उसे तो भरोसा ही न आया। यह तो आत्महत्या करने जैसा हो गया। वह डर गया। लेकिन गुरु दौड़ा। वह बिलकुल वन्य प्राणी की तरह दौड़ता हुआ गया और वापस आ गया। और कास्तानेद को समझ नहीं आया कि वह कैसे दौड़ रहा था। और न केवल वह दौड़ रहा था। बल्कि हर बार दौड़ता हुआ वह सीधी उसी के पास आता जैसे कि वह देख सकता हो। फिर धीरे-धीरे कास्तानेद ने साहस जुटाया। जब यह बूढ़ा आदमी दौड़ सकता है तो वह क्यों नहीं दौड़ सकता। उसने कोशिश की, और धीरे-धीरे उसे लगा कि कोई आंतरिक प्रकाश उठा रहा है। फिर वह दौड़ने लगा।

तुम केवल तभी होते हो जब तुम सोचना बंद कर देते हो। जिस क्षण तुम सोचना बंद करते हो। अंतस घटित होता है। यदि तुम न सोचो तो सब ठीक है। यह ऐसे ही है जैसे कोई भीतर मार्ग दर्शक कार्य कर रहा है। तुम्हारी बुद्धि ने तुम्हें भटकाया है। और सबसे बड़ा भटकाव यह है कि तुम अंतर्विवेक पर भरोसा नहीं कर सकते।

तो पहले तुम्हें अपनी बुद्धि को राज़ी करना पड़ेगा। यदि तुम्हारा विवेक कहता भी है कि आगे बढ़ो तो तुम्हें अपनी बुद्धि को राज़ी करना पड़ता है। और तब तुम अवसर चूक जाते हो। क्योंकि कई क्षण होते है, या तो तुम उनका उपयोग कर ले सकते हो, या उन्हें चूक जाओगे। बुद्धि समय लगाती है। और जब तक तुम सोचते हो, विचार करते हो, तब तक अवसर हाथ से निकल जाता है। जीवन तुम्हारे लिए इंतजार नहीं करेगा। तुम्हें तत्क्षण जीना होता है। तुम्हें योद्धा बनना पड़ता है। जैसे झेन में कहते है—क्योंकि जब तुम रणभूमि में तलवार लेकर लड़ रहे हो तो तुम सोचते नहीं, तुम्हें बिना सोचे विचारे लड़ना होता है।

झेन गुरूओं ने तलवार का ध्यान की विधि की तरह उपयोग किया है। और जापान में कहते है कि यदि दो झेन गुरु, दो ध्यानस्थ। व्यक्ति तलवारों से युद्ध कर रहे हों तो परिणाम कभी निकल ही नहीं सकता। न कोई हारेगा। न कोई जीतेगा। क्योंकि दोनों ही विचार नहीं कर रहे। तलवारें उनके हाथों में नहीं है। उनके अंतर्विवेक, विचारवान भीतरी मार्ग दर्शक के हाथों में है। और इससे पहले कि दूसरा आक्रमण करे,विवेक जान लेता है और प्रतिरक्षा कर लेता है। तुम उसके बारे में सोच नहीं सकते क्योंकि समय ही नहीं है। दूसरा तुम्हारा ह्रद का निशाना बना रहा है। एक ही क्षण में तलवार तुम्हारे ह्रदय में घुस जाएगी। इस विषय में सोचने का समय ही नहीं है। कि क्या करना है। जैसे ही उसके मन में यह विचार उठता है कि ह्रदय में तलवार धुसा दो। उसी समय तुममें विचार उठना चाहिए कि बचो। उसी क्षण बिना किसी विलंब के—केवल तभी तुम बच सकते हो। बरना तो तुम समाप्त हो जाओगे।
तो वे तलवार बाजी को ध्यान की तरह सिखते है और कहते है, '**हर क्षण अंतर्विवेक से जीओं, सोचो मत। अंतस जो चाहे उसे करने दो। मन के द्वारा हस्तक्षेप मत करो।'**

यह बहुत कठिन है, क्योंकि हम तो अपने मन से ही इतने प्रशिक्षित है। हमारे स्कूल हमारे कालेज, हमारे विश्वविद्यालय,हमारी संस्कृति, सभ्यता,सभी हमारे मस्तिष्क को भरते है। हमारा अपने अंतर्विवेक से संबंध टूट गया है। सब उस अंतर्विवेक के साथ ही पैदा होते है। लेकिन उसे काम नहीं करने दिया जाता। वह करीब-करीब अपंग हो जाता है। पर उसे पुनर्जीवित किया जा सकता है। यह सूत्र इसी अंतर्विवेक के लिए है।

'यह चेतना ही प्रत्येक की मार्गदर्शक सत्ता है, यही हो रहो।'

खोपड़ी से मत सोचो। सच में तो, सोचो ही मत। बस बढो। कुछ परिस्थितियों में इसे करके देखो। यह कठिन होगा, क्योंकि सोचने की पुरानी आदत होगी। तुम्हें सजग रहना पड़ेगा कि सोचना नहीं है। बस भीतर से महसूस करना है कि मन में क्या आ रहा है। कई बार तुम उलझन में पड़ सकते हो कि यह अंतर्विवेक से उठ रहा है। या मन की सतह से आ रहा है। लेकिन जल्दी ही तुम्हें अंतर पता लगना शुरू हो जाएगा।

जब भी कुछ तुम्हारे भीतर से आता है तो वह तुम्हारी नाभि से ऊपर की और उठता है। तुम उसके प्रवाह, उसकी उष्णता को नाभि से ऊपर उठते हुए अनुभव कर सकते हो। जब भी तुम्हारा मन सोचता है तो वह ऊपर-ऊपर होता है। सिर में होता है और फिर नीचे उतरता है। तुम्हारा मन सोचता है तो वह ऊपर-ऊपर होता है, सिर में होता है। और फिर नीचे उतरता है। यदि तुम्हारा मन कुछ सोचता है तो उसे नीचे धक्का देना पड़ता है। यदि तुम्हारा

अंतर्विवेक कोई निर्णय लेता है तो तुम्हारे भीतर कुछ उठता है। वह तुम्हारे अंतरतम से तुम्हारे मन की और आता है। मन उसे ग्रहण करता है। पर वह निर्णय मन का नहीं होता। वह पार से आता है। और यही कारण है कि मन उससे डरता है। बुद्धि उस पर भरोसा नहीं कर सकती। क्योंकि वह गहरे से आता है–बिना किसी तर्क के बिना किसी प्रमाण के बस उभर आता है।

तो किन्हीं परिस्थितियों में इसे करके देखो। उदाहरण के लिए, तुम जंगल में रास्ता भटक गए हो तो इसे करके देखो। सोचो मत बस, अपने आँख बंद कर लो, बैठ जाओ। ध्यान में चले जाओ। और सोचो मत। क्योंकि वह व्यर्थ है; तुम सोच कैसे सकते हो? तुम कुछ जानते ही नहीं हो। लेकिन सोचने की ऐसी आदत पड़ गई है कि तुम तब भी सोचते चले जाते हो। जब सोचने से कुछ भी नहीं हो सकता है। सोचा तो उसी के बारे में जा सकता है, जो तुम पहले से जानते हो, तुम जंगल में रास्ता खो गए हो, तुम्हारे पास कोई नक्शा नहीं है, कोई मौजूद नहीं है जिससे तुम पूछ लो। अब तुम क्या सोच सकते हो। लेकिन तुम तब भी कुछ न कुछ सोचोगे। वह सोचना बस चिंता करना ही होगा। सोचना नहीं होगा। और जितनी तुम चिंता करोगे उतना ही अंतर्विवेक कम काम कर पाएगा।

तो चिंता छोड़ो, किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाओ और विचारों को विदा हो जाने दो। बस प्रतीक्षा करो, सोचो मत। कोई समस्या मत खड़ी करो, बस प्रतीक्षा करो। और जब तुम्हें लगे कि निर्विचार का क्षण आ गया है, तब खड़े हो जाओ और चलने लगो। जहां भी तुम्हारा शरीर जाए उसे जाने दो। तुम बस साक्षी बने रहो। कोई हस्तक्षेप मत करो। खोया हुआ रास्ता बड़ी सरलता से पाया जा सकता है, लेकिन एकमात्र शर्त है कि मन के द्वारा हस्तक्षेप न हो।

ऐसा कई बार अनजाने में हुआ है। महान वैज्ञानिक कहते है कि जब भी कोई बड़ी खोज हुई है मन के द्वारा नहीं हुई , सदा अंतःप्रज्ञा के ही कारण हुई है।

मैडम क्यूरी गणित की एक समस्या को सुलझाने में लगी हुई थी। जो कुछ भी संभव था, उसने सब किया। फिर वह ऊब गई। कई दिन से, हफ्तों से वह उस पर कार्य कर रही थी। और कुछ हल नहीं निकल रहा था। वह पागल हुई जा रही थी। हल का कोई उपाय ही नजर नहीं आ रहा था। फिर एक रात थक कर वह लेट गई और सो गई। और रात को सपने में उसका उत्तर एकदम उभर आया वह उससे इतनी जुड़ी हुई थी कि उसका सपना टूट गया, वह जाग गई। उसी क्षण उसने उत्तर लिख दिया। क्योंकि सपने में यह तो आया नहीं था कि करना कैसे है, बस उत्तर सामने आ गया। उसने एक कागज पर उत्तर लिख दिया और फिर सो गई।

सुबह वह हैरान हुई; उत्तर बिलकुल ठीक था, पर वह जानती नहीं थी कि उसे निकाला कैसे गया था। कोई प्रक्रिया, कोई तरीका नहीं दिया हुआ था। फिर उसने प्रक्रिया खोजने की कोशिश की। अब वह आसान बात थी क्योंकि उत्तर हाथ में था। और उत्तर लेकिर पीछे बढ़ना सरल था। इस सपने के कारण उसने नोबल पुरस्कार जीता। लेकिन वह सदा ही हैरान रही कि यह हुआ कैसे।

जब तुम्हारा मन थक जाता है, और आगे नहीं बढ़ सकता, तो वह थक कर रूक जाता है; थकनें के उस क्षण में अंतर्विवेक इशारे दे सकता है। हल दे सकता है। कुंजियों दे सकता है। जिस व्यक्ति को मनुष्य की कोशिश की आंतरिक संरचना की खोज के लिए नोबल पुरस्कार मिला, उसने भी उसकी संरचना को एक सपने में देखा। उसने मानवीय कोशिका की पूरी आंतरिक संरचना को सपने में देखा और सुबह उठकर उसकी पिक्चर बना दी। उसे खुद

भी भरोसा नहीं था कि यह ठीक है, तो उसे कई वर्षों तक उस पर काम करना पडा। कई वर्ष उस पर काम करने के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सपना सच्चा था।

मैडम क्यूरी के साथ ऐसा हुआ कि जब उसे अंतःप्रज्ञा की इस प्रक्रिया का पता चला तो उसने निश्चय कर लिया कि वह प्रयोग करके देखेगी। एक बार एक समस्या आ गई जिसे वह हल करना चाहती थी। तो उसने सोचा, 'इसके लिए क्यों व्यर्थ ही चिंता करूं, और श्रम करूं? बस सो जाती हूं।' वह मजे से सो गई, पर कोई हल नहीं आया। तो वह थोड़ी परेशान हुई। कई बार उसने कोशिश की,जब भी कोई समस्या आती तो वह सो जाती। लेकिन कोई हल न निकलता। **पहले बुद्धि को पूरी तरह से थकाना होता है,तभी हल आता है। खोपड़ी को पूरी तरह से थका देना होता है। नहीं तो वह स्वप्न में भी चलती रहती है।**

तो अब वैज्ञानिक कहते है कि सभी बड़ी खोजें अंतःप्रज्ञा से आती है। बौद्धिक नहीं होती। भीतर मार्गदर्शक का यही अर्थ है।

'यह चेतना ही प्रत्येक की मार्गदर्शक सत्ता है,यहीं हो रहो।'

मस्तिष्क को छोड़ दो और इस अंत:प्रज्ञा में उतर जाओ। पुराने शास्त्र कहते है कि बाह्म गुरु केवल तुम्हें भीतर के गुरु से मिलवा ने में मदद कर सकता है। बस इतना ही। एक बार बाह्म गुरु तुम्हें भीतरी गुरू से मिलवा दे तो उसका काम समाप्त हो जाता है।

गुरु के द्वारा तुम सत्य तक नहीं पहुंच सकते;गुरु के द्वार तुम बस भीतर के गुरु तक पहुंच सकते हो। और तब वह भीतर का गुरु तुम्हें सत्य तक ले जाएगा। बाह्म गुरु तो बस एक प्रतिनिधि है,एक विकल्प है। उसने अपना भीतरी मार्ग दर्शक खोज लिया है और वह तुम्हारे मार्ग दर्शक को देख सकता है,क्योंकि वे दोनों एक ही तल पर है; एक ही लय में एक ही आयाम में है। यदि मैंने अपना अंतर्विवेक खोज लिया है तो मैं तुममें झांक कर तुम्हारे अंतर्विवेक को महसूस कर सकता हूं। और यदि में वास्तव में तुम्हारा पथ प्रदर्शक हूं तो मेरा सारा सहयोग तुम्हें तुम्हारे अंतर्विवेक तक पहुंचाने के लिए होगा।

एक बार तुम्हारा अपने अंतर्विवेक से संबंध बन जाए तो मेरी कोई जरूरत नहीं है। अब तुम अकेले चल सकते हो। तो गुरु बस इतना ही कर सकता है। कि वह तुम्हें खोपड़ी से नाभि पर ढकेल दे,तुम्हारी तार्किक बुद्धि से तुम्हें आस्थावान मार्गदर्शक की और धक्का दे दे। और ऐसा केवल मनुष्यों में नहीं है,ऐसा पशु-पक्षियों,वृक्षों,सबके साथ होता है। सब में अंत:प्रज्ञा होती है। और अब तो कई नहीं बातें पता चली है जो बहुत रहस्यमय है।

बहुत सी घटनाएं है। उदाहरण के लिए एक मादा मछली अंडे देते ही मर जाती है। पिता अंडों को सेता है। और फिर वह भी मर जाता है। अंडे बिना माता-पिता के रहते है। वे परिपक्व हो जाते है। नई मछलियाँ पैदा हो जाती है। ये मछलियाँ अपने माता-पिता के बारे में कुछ भी नहीं जानती। उन्हें नहीं पता होता कि वे कहां से आई थी। लेकिन ये मछलियाँ समुद्र के किसी भी हिस्से में हों, वे अंडे देने उसी जगह पहुंच जाएंगी जहां उनके माता पिता अंडे देने आए थे। वे स्त्रोत पर लौट जाएंगी। ऐसा बार-बार होता रहा है। और जब भी उन्हें अंडे देने होंगे वे इसी किनारे पर लौट आएँगी, अंडे देंगी और मर जाएंगी।

तो मां बाप और बच्चों के बीच कोई संपर्क नहीं है। पर किसी तरह बच्चे जानते है कि उन्हें कहां जाना है, और वे कभी चूकते नहीं। और तुम उन्हें भटका नहीं सकते ऐसा करने की कोशिश की गई है। लेकिन तुम उन्हें भटका नहीं सकते वे स्त्रोत पर लौट ही जाएंगे। कोई अंतर्प्रेरणा काम कर रही है।

सोवियत रूस में बिल्लियों, चूहों और छोटे जानवरों के साथ प्रयोग करते रह है। एक बिल्ली को उसके बच्चे से अलग कर लिया गया और बच्चों को समुद्र में गहरे ले जाया गया; उसे पता नहीं लग सकता था कि उसके साथ क्या हो रहा है। हर तरह के वैज्ञानिक यंत्र बिल्ली के साथ लगा दिए गये। ताकि यह पता चल सके कि बिल्ली के मन में और हृदय में क्या चल रहा है। फिर उसके बच्चे को मारा गया। गहरे समुद्र में–एक दम से मां को पता चल गया। उसका रक्तचाप बदल गया। वह चिंतित हो गई, उसके दिल की धड़कन बढ़ गई–जैसे ही बच्चे को मारा गया। और वैज्ञानिक यंत्रों ने बताया कि उसे बड़ी पीड़ा हुई। फिर कुछ समय बाद सब सामान्य हो गया। फिर दूसरा बच्चा मारा गया,फिर परिर्वतन हुआ। और तीसरे बच्चे के साथ भी ऐसा ही हुआ। हर बार बिलकुल उसी समय ही ऐसा हुआ। क्या हो रहा था।

अब रूसी वैज्ञानिक कहते है कि मां के पास एक अंतर्प्रेरणा होती है। अनुभूति का एक अंत केंद्र होता है। और वह बच्चों के साथ जुड़ा होता है, चाहे वे कहीं भी हों। और वह तत्क्षण एक टेलीपैथिक संवेदना अनुभव करती है। मनुष्य में मां इतना अनुभव कर सकती। यह बड़ी हैरानी की बात है; मनुष्य को अधिक अनुभव करना चाहिए क्योंकि वह अधिक विकसित है। लेकिन वह नहीं कर पाती क्योंकि मस्तिष्क ने सब कुछ अपने हाथों में ले लिया है और सारे आंतरिक केंद्र अपंग पड़ गए है।

'या चेतना ही प्रत्येक की मार्गदर्शक सत्ता है, यहीं हो रहो।'

जब भी तुम किसी परिस्थिति में बहुत परेशान होओ और तुम्हें पता न चले कि उसमें से कैसे निकलना है तो सोचों मत, बस गहरे निर्विचार में चले जाओ और अपने अंतर्विवेक को अपना मार्गदर्शन करने दो। शुरू-शुरू में तो तुम्हें भय लगेगा। असुरक्षा महसूस होगी। पर जल्दी ही जब तुम हर बार ही ठीक निष्कर्ष पर पहुंचोगे, जब तुम हर ठीक द्वार पर पहुंच जाओगे, तुममें साहस आ जाएगा और तुम भरोसा करने लगोगे।

यदि यह भरोसा आता है तो उसे ही मैं श्रद्धा कहता हूं। यह वास्तव में आध्यात्मिक श्रद्धा है, अंतर्विवेक में श्रद्धा। बुद्धि तुम्हारे अहंकार का हिस्सा है। वह तो अपने आप पर ही भरोसा है। जिस क्षण तुम अपने में गहरे उतरते हो, तुम ब्रह्मांड की आत्मा में पहुंच जाते हो। तुम्हारी अंत:प्रज्ञा परम विवेक का अंश है। जब तुम अपना ही अनुसरण करते हो तो सब कुछ उलझा देते हो और तुम्हें पता नहीं चलता कि तुम क्या कर रहे हो। तुम अपने को बहुत ज्ञानी समझ सकते हो पर हो नहीं।

ज्ञान तो हृदय से आता है, बुद्धि से नहीं। ज्ञान तुम्हारी आत्मा के अंतरतम से उठता है। मस्तिष्क से नहीं। अपनी खोपड़ी को अलग हटा कर रख दो और आत्मा का अनुसरण करो, चाहे वह जहां भी ले जाए। अगर वह खतरे में भी ले जाए तो खतरे में जाओ क्योंकि वही तुम्हारे लिए और तुम्हारे विकास के लिए मार्ग होगा। खतरे से तुम विकसित होओगे और पकोगे। यदि अंतर्विवेक तुम्हें मृत्यु की और भी ले कर जाये तो उसके पीछे जाओ। क्योंकि वहीं तुम्हारा मार्ग होगा। उसका अनुसरण करो,उसमें श्रद्धा करो और उस पर चल पड़ो।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 109

"अपने निष्क्रिय रूप को त्वचा की दीवारों का एक रिक्त कक्ष मानो–सर्वथा रिक्त।"

अपने निष्क्रिय रूप को त्वचा की दीवारों का एक रिक्त कक्ष मानो–लेकिन भीतर सब कुछ रिक्त हो। यह सुंदरतम विधियों में से एक है।

किसी भी ध्यानपूर्ण मुद्रा में, अकेले, शांत होकर बैठ जाओ। तुम्हारी रीढ़ की हड्डी सीधी रहे और पूरा शरीर विश्रांत, जैसे कि सारा शरीर रीढ़ की हड्डी पर टंगा हो। फिर अपनी आंखें बंद कर लो। कुछ क्षण के लिए विश्रांत, से विश्रांत अनुभव करते चले जाओ। लयबद्ध होने के लिए कुछ क्षण ऐसा करो। और फिर अचानक अनुभव करो कि तुम्हारा शरीर त्वचा की दीवारें मात्र है और भीतर कुछ भी नहीं है। घर खाली है, भीतर कोई नहीं है। एक बार तुम विचारों को गुजरते हुए देखोंगे, विचारों के मेघों को विचरते पाओगे। लेकिन ऐसा मत सोचो कि वे तुम्हारे है। तुम हो ही नहीं। बस ऐसा सोचो कि वे रिक्त आकाश में घूम हुए आधारहीन मेध है, वे तुम्हारे नहीं है। वे किसी के भी नहीं है। उनकी कोई जड़ नहीं है।

वास्तव में ऐसा ही है: विचार केवल आकाश में धूमते मेघों के समान है। न तो उनकी कोई जड़ें है, न आकाश से उनका कोई संबंध है। वे बस आकाश में इधर से उधर धूमते रहते है। वे आते है और चले जाते है। और आकाश अस्पर्शित, अप्रभावित बना रहता है। अनुभव करो कि तुम्हारा शरीर लय, पुराने सहयोग के कारण विचार आते रहेंगे। लेकिन इतना ही सोचो कि वे आकाश में धूमते हुए आधारहीन मेध है। वे तुम्हारे नहीं है, वे किसी के भी नहीं है। भीतर कोई भी नहीं है जिससे वे संबंधित हों, तुम तो रिक्त हो।

यह कठिन होगा, लेकिन केवल पुरानी आदतों के कारण कठिन होगा। तुम्हारा मन किसी विचार को पकड़कर उससे जुड़ना चाहते है। उसके साथ बहना, उसका आनंद लेना, उसमें रमना चाहेगा। थोड़ा रूको। कहो कि न तो यहां बहने के लिए कोई है, न लड़ने के लिए कोई है, इस विचार के साथ कुछ भी करने के लिए कोई नहीं है।

कुछ ही दिनों में, या कुछ हफ्तों में, विचार कम हो जाएंगे। वे कम-से कम होते जाएंगे। बादल छंटने लगेंगे, या यदि वे आयेंगे भी तो बीच-बीच में मेध-रहित आकाश के बड़े अंतराल होंगे जब कोई विचार न होगा। एक विचार गुजर जाएगा, फिर कुछ समय के लिए दूसरा विचार नहीं आएगा। फिर दूसरा विचार आयेगा और अंतराल होगा। उन अंतरालों में ही तुम पहली बार जानोगे कि रिक्तता क्या है। और उसकी एक झलक ही तुम्हें इतने गहन आनंद से भर जाएगी कि तुम कल्पना भी नहीं सकर सकते।

असल में, इसके बारे में एक भी कहना असंभव है, क्योंकि भाषा में जो भी कहा जाएगा वह तुम्हारी और इशारा करेगा और तुम हो ही नहीं। यदि में कहूं कि तुम सुख से भर जाओगे तो यह बेतुकी बात होगी। तुम तो होगे ही नहीं। तो मैं कैसे कह सकता हूं कि तुम सूख से भी जाओगे? सुख होगा। तुम्हारी त्वचा की चार दीवारी में आनंद का स्पंदन होगा। लेकिन तुम नहीं होओगे? एक गहन मौन तुम पर उतर आयेगा। क्योंकि यदि तुम ही नहीं हो तो कोई भी अशांति पैदा नहीं कर सकता।

तुम सदा यही सोचते हो कि कोई और तुम्हें अशांत कर रहा है। सड़क से गुजरते हुए ट्रैफिक की आवाज, चारों और खेलते हुए बच्चे, रसोईघर में काम करती हुई पत्नी—हर कोई तुम्हें अशांत कर रहा है।

कोई तुम्हें अशांत नहीं कर रहा है, तुम ही अशांति के कारण हो। क्योंकि तुम हो इसलिए कुछ भी तुम्हें अशांत कर सकता है। यदि तुम नहीं हो तो अशांति आएगी और तुम्हारी रिक्तता को बिना छुए गुजर जाएगी। तुम ऐसे हो कि सब कुछ बहुत जल्दी तुम्हें छू जाता है। एक घाव जैसे हो; कुछ भी तुम्हें तत्क्षण चोट पहुंचा जाता है।

मैंने एक वैज्ञानिक कहानी सुनी है। तीसरे विश्वयुद्ध के बाद ऐसा हुआ कि सब मर गए, अब पृथ्वी पर कोई भी नहीं था बस वृक्ष और पहाड़ियां ही बची थी। एक बड़े वृक्ष ने सोचा कि चलो खूब शोर करूं। जैसा कि वह पहले किया करता था। वह एक बड़ी चट्टान पर गिर पडा जो भी किया जा सकता था उसने सब किया। लेकिन कोई शोर नहीं हुआ। क्योंकि शोर के लिए तुम्हारे कानों की जरूरत होती है। आवाज के लिए तुम्हारे कानों की जरूरत है। यदि तुम नहीं हो तो आवाज पैदा नहीं की जा सकती है। यह असंभव है।

मैं यहां बोल रहा हूं। यदि कोई न हो तो मैं बोलता रह सकता हूं। लेकिन आवाज पैदा नहीं होगी। लेकिन मैं आवाज पैदा कर सकता हूं क्योंकि मैं स्वयं तो उसे सुन ही सकता है। यदि सुनने के लिए कोई भी न हो ता आवाज पैदा नहीं की जा सकती। क्योंकि आवाज तुम्हारे कानों की प्रतिक्रिया है।

यदि पृथ्वी पर कोई भी न हो तो सूरज उग सकता है। लेकिन प्रकाश नहीं होगा। यह बात अजीब लगती है। हम ऐसा सोच भी नहीं सकते क्योंकि हम तो सदा ही सोचते है कि सूरज उगेगा और प्रकाश हो जाएगा। लेकिन तुम्हारी आंखें चाहिए, तुम्हारी आंखों के बिना सूरज प्रकाश पैदा नहीं कर सकता। वह उगता रह सकता है। लेकिन सब व्यर्थ

होगा। क्योंकि उसकी किरणें रिक्तता से ही गुजरेंगी। कोई भी नहीं होगा। जो प्रतिक्रिया कर सके और कह सके कि यह प्रकाश है।

प्रकाश तुम्हारी आंखों के कारण है। तुम प्रतिक्रिया करते हो। ध्वनि तुम्हारे कानों के कारण है। तुम प्रतिक्रिया करते हो। तुम क्या सोचते हो, किसी बगीचे में एक गुलाब का फूल खिला है, लेकिन यदि उधर से कोई भी न गुजरे तो क्या उसमें सुगंध होगी। अकेला गुलाब ही सुगंध पैदा नहीं कर सकता। तुम और तुम्हारी नाक जरूरी है। कोई होना चाहिए जो प्रतिक्रिया कर सके और कह सके कि यह सुगंध है, यह गुलाब है। चाहे गुलाब कितनी ही कोशिश करे, बिना किसी नाक के वह गुलाब न होगा।

तो अशांति वास्तव में सड़क पर नहीं है। वह तुम्हारे अहंकार में है। तुम्हारा अहंकार प्रतिक्रिया करता है। यह तुम्हारी व्याख्या है। कभी किसी दूसरी स्थिति में तुम उसका आनंद भी ले सकते हो। तब वह अशांति नहीं होगी। किसी दूसरे मनोभव में तुम उसका आनंद लोगे और तब तुम कहोगे, 'कितना सुंदर, क्या संगीत है।' लेकिन किसी उदासी के क्षण में संगीत भी अशांति बन जाएगा।

लेकिन यदि तु नहीं हो, बस एक स्पेस है, एक रिक्तता है, तब न तो अशांति हो सकती है न संगीत। सब कुछ बस तुमसे होकर गुजर जाएगा,बिलकुल अनजाना, क्योंकि अब कोई घाव नहीं है। जो प्रतिक्रिया करे, भीतर कोई नहीं है। जो प्रत्युत्तर दे; किसी अहंकार का निर्माण भी नहीं होगा। इसी को बुद्ध निर्वाण कहते है।

और यह विधि तुम्हारी सहायता कर सकती है।
अपने निष्क्रिय रूप को त्वचा की दीवारों का एक रिक्त कक्ष मानो—सर्वथा रिक्त।

किसी भी निष्क्रिय अवस्था में बैठ जाओ, कुछ भी न करो क्योंकि जब भी तुम कुछ करते हो तो कर्ता बीच में आ जाता है। वास्तव में कोई कर्ता नहीं है। केवल क्रिया के कारण ही तुम समझते हो कि कर्ता है। बुद्ध को समझ पाना इसीलिए कठिन है। केवल भाषा के कारण ही समस्याएं खड़ी हुई है।

हम कहते है कि व्यक्ति चल रहा है। यदि हम इस वाक्य का विश्लेषण करें तो इसका अर्थ हुआ कि कोई है जो चल रहा है। लेकिन बुद्ध कहते है कि कोई चल नहीं रहा,बस चलने की क्रिया हो रही है। तुम हंस रहे हो। भाषा के कारण ऐसा लगता है कि जैसे कोई है जो हंस रहा है। बुद्ध कहते है कि हंसी तो हो रही है। लेकिन भीतर कोई नहीं है जो हंस रहा है।

जब तुम हंसते हो, इसे स्मरण करो और खोजा कि कौन हंसता है। तुम कभी किसी को न पाओगे। बस हंसी मात्र है, उसके पीछे कोई हंसने वाला नहीं है। जब तुम उदास हो तो भीतर कोई नहीं है जो उदास है, बस उदासी है। उसको देखो। बस उदासी है। यह एक प्रक्रिया है: हंसी,सुख, दुःख; इनके पीछे कोई मौजूद नहीं है।

केवल भाषा के कारण ही हम द्वैत में सोचते है। यदि कुछ होता है तो हम कहते है कि कोई होना चाहिए जिसने किया,कोई कर्ता होना चाहिए। हम क्रिया को अकेले नहीं सोच सकते है। लेकिन क्या कभी तुमने कर्ता को देखा है। क्या तुमने उसे कभी देखा है जो हंसता है।

बुद्‌ध कहते है कि जीवन है, जीवन की प्रक्रिया है, लेकिन भीतर कोई भी नहीं है जो जीवंत है। और फिर मृत्यु होती है। लेकिन कोई मरता नहीं है। बुद्‌ध के लिए तुम बंटे हुए नहीं हो। भाषा द्‌वैत निर्मित करती है। मैं बोल रहा हूं। ऐसा लगता है कि मैं कोई हूं जो बोल रहा है। लेकिन बुद्‌ध कहते है कि केवल बोलना हो रहा है। बोलने वाला कोई नहीं है। यह एक प्रक्रिया है। जो किसी से संबंधित नहीं है।

लेकिन हमारे लिए यह कठिन है। क्योंकि हमारा मन द्‌वैत में गहरा जमा हुआ है। हम जब भी किसी क्रिया की बात सोचते है तो हम भीतर किसी कर्ता के बारे में सोचते है। यही कारण है कि ध्यान के लिए कोई शांत, निष्क्रिय मुद्रा अच्छी है क्योंकि तब तुम खालीपन में अधिक सरलता से उतर सकते हो।

बुद्‌ध कहते है, 'ध्यान करो मत, ध्यान में होओ।'
अंतर बड़ा है। मैं दोहराता हूं, बुद्‌ध कहते है, ध्यान करो मत, ध्यान में होओ।' क्योंकि यदि तुम ध्यान करते हो तो कर्ता बीच में आ गया। तुम यही सोचते रहोगे कि तुम ध्यान कर रहे हो। तब ध्यान एक कृत्य बन गया। बुद्‌ध कहते है, ध्यान में होओ। इसका अर्थ है पूरी तरह निष्क्रिय हो जाओ। कुछ भी मत करो। मत सोचो कि कहीं कोई कर्ता है।

इसीलिए कई बार जब कर्ता क्रिया में खो जाता है तो तुम अचानक सुख कर एक स्फुरण अनुभव करते हो। ऐसा इसीलिए होता है क्योंकि तुम क्रिया में खो गए। नृत्य में ऐसा एक क्षण आता है जब नृत्य रह जाता है। और नर्तक खो जाता है। तब तत्क्षण एक आशीर्वादा एक सौंदर्य एक आनंद बरस उठता है। नर्तक एक अज्ञात आनंद से भर जाता है। वहां क्या हुआ। केवल क्रिया ही रह गई और कर्ता विलीन हो गया।

युद्‌ध भूमि में सैनिक कई बार बड़े गहन आनंद को उपलब्ध हो जाते है। यह सोच पाना भी कठिन है क्योंकि वे मृत्यु के इतने निकट होते है कि किसी भी क्षण वे मर सकते है। शुरू-शुरू में तो वह भयभीत हो जाते है, भय से कांपते है, लेकिन तुम रोज-रोज लगातार कांपते और भयभीत नहीं रहा सकते। धीरे-धीरे आदत पड़ जाती है। मनुष्य मृत्यु को स्वीकार कर लेता है, तब भय समाप्त हो जाता है।

और जब मृत्यु इतनी करीब हो और जरा सी चूक से मृत्यु घटित हो सकती है तो कर्ता भूल जाता है और केवल कर्म रह जाता है। केवल क्रिया रह जाती है। और वे क्रिया में इतने गहरे डूब जाते है कि वे सतत याद नहीं रख सकते कि 'मैं हूं'। और 'मैं हूं' तो परेशानी खड़ी करेगा। तुम चूक जाओगे तुम क्रिया में पूरे नहीं हो पाओगे। और जीवन दांव पर लगा है। इसलिए तुम द्‌वैत को नहीं ढो सकते। कृत्य समग्र हो जाता है। और जब भी कृत्य समग्र होता है तो अचानक तुम पाते हो कि तुम इतने आनंदित हो जितने तुम पहले कभी भी न थे।

योद्‌धाओं ने आनंद के इतने गहरे झरनों का अनुभव किया है जितना कि साधारण जीवन तुम्हें कभी नहीं दे सकता। शायद यही कारण हो कि युद्‌ध इतने आकर्षित करते है। और शायद यही कारण हो कि क्षत्रिय ब्राह्मणों से अधिक मोक्ष को उपलब्ध हुए है। क्योंकि ब्राह्मण हमेशा सोचते ही रहते है, बौद्‌धिक ऊहापोह में उलझे रहते है। जैनों के चौबीस तीर्थकर राम, कृष्ण, बुद्‌ध, सभी क्षत्रिय योद्‌धा थे। उन्होंने उच्चतम शिखर को छुआ है।

किसी दुकानदार को कभी इतने ऊंचे शिखर छूते नहीं सूना होगा। वह इतनी सुरक्षा में जीता है कि वह द्वैत में जी सकता है। वह जो भी करता है कभी पूरा-पूरा नहीं होता। लाभ कोई समग्र कृत्य नहीं हो सकता तुम उसका आनंद ले सकते हो, लेकिन वह कोई जीवन मृत्यु का सवाल नहीं हो सकता। तुम उसके साथ खेल सकते हो। लेकिन कुछ भी दांव पर नहीं लगा है। वह एक खेल है। दुकानदारी एक खेल ही है। धन का खेल है। खेल कोई बहुत खतरनाक बात नहीं है। इसलिए दुकानदार सदा कुनकुना रहता है। एक जुआरी भी दुकानदार से अधिक आनंद को उपलब्ध हो सकता है। क्योंकि जुआरी खतरे में उतरता है। उसके पास जो कुछ है वह दांव पर लगा देता है। पूरे दांव के उस क्षण में कर्ता खो जाता है।

शायद यही कारण है कि जुए में इतना आकर्षण है, युद्ध में इतना आकर्षण है। जहां तक मैं समझता हूं,जो भी कुछ आकर्षण है कहीं उसके पीछे कुछ आनंद भी छिपा होगा। कहीं अज्ञात का कोई इशारा छिपा होगा। कहीं जीवन के गहन रहस्य की झलक छिपी होगी। अन्यथा कुछ भी आकर्षण नहीं हो सकता।

निष्क्रियता.....ओर ध्यान में तुम जो मुद्रा लो वह शांत होना चाहिए। भारत में हमने सबसे निष्क्रिय आसन, सबसे शांत मुद्रा विकसित की है। सिद्धासन। और इसका सौंदर्य यह है कि सिद्धासन की मुद्रा में जिसमें बुद्ध बैठे है। शरीर गहनतम निष्क्रियता की अवस्था में होता है। लेट कर भी तुम इतने क्रिया शून्य नहीं होते। सोते समय भी तुम्हारी मुद्रा निष्क्रिय नहीं होती, क्रियाशील होती है।

सिद्धासन इतना शांत क्यों होता है? कई कारण है। इस मुद्रा में शरीर की विद्युत ऊर्जा एक वर्तुल में घूमती है। शरीर का एक विद्युतीय वर्तुल होता है: जब वर्तुल पूरा हो जाता है तो ऊर्जा शरीर में चक्राकर घूमने लगती है। बाहर नहीं निकलती। अब यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध तथ्य है कि कई मुद्राओं में तुम्हारे शरीर से ऊर्जा बाहर निकलती रहती है। जब शरीर ऊर्जा को बाहर फेंकता है तो उसे लगातार ऊर्जा पैदा करना पड़ती है। वह सक्रिय रहता है। शरीर तंत्र को लगातार कार्य करना पड़ता है क्योंकि तुम ऊर्जा फेंक रह हो। जब ऊर्जा शरीर तंत्र से बाहर निकल रहा है तो उसे पूरा करने के लिए भीतर से शरीर को सक्रिय होना पड़ता है। तो सबसे शांत मुद्रा वह होगी जब कोई ऊर्जा बाहर नहीं निकल रही हो।

अब पाश्चात्य देशों में, विशेषकर इंग्लैंड में वे रोगियों का इलाज उनके शरीर के विद्युतीय वर्तुल बनाकर करने लगे है। कई अस्पतालों में इन विधियों का उपयोग होता है। और वे बहुत सहयोगी है। व्यक्ति फर्श पर तारों के एक जाल में लेट जाता है। तारों का वह जाल बस उसके शरी की विद्युत का एक वर्तुल बनाने के लिए होता है। बस आधा घंटा ही पर्याप्त है—और वह इतना विश्रांत,इतना ऊर्जा से भरा हुआ, इतना शक्तिशाली अनुभव करेगा कि वह विश्वास भी नहीं कर पाएगा। कि जब वह आया तो इतना कमजोर था।

सभी पुरानी सभ्यताओं में लोग रात को एक विशेष दिशा में सोते थे। ताकि ऊर्जा बाहर न बहे। क्योंकि पृथ्वी में एक चुंबकीय शक्ति है। उस चुंबकीय शक्ति का उपयोग करने के लिए तुम्हें एक विशेष दिशा में लेटना पड़ेगा। तब पृथ्वी की शक्ति सारी रात तुम्हें चुंबकत्व में रखेगी। यदि तुम इससे विपरीत लेटे हुए हो तो वह शक्ति तुमसे संघर्ष में रहेगी और तुम्हारी ऊर्जा नष्ट होगी।

कई लोग सुबह बड़ा तनाव, बड़ी कमजोरी अनुभव करते है। ऐसा होना नहीं चाहिए, क्योंकि नींद तुम्हें तरो-ताजा करने के लिए, तुम्हें अधिक ऊर्जा देने के लिए है। लेकिन कई लोग है जो रात सोते समय ऊर्जा से भरे होते है। पर सुबह वे लाश की तरह होते है। इससे कई कारण हो सकते है, पर यह भी उनमें से एक कारण हो सकता है। वे गलत दिशा में सोए है। यदि वे पृथ्वी के चुंबकत्व के विपरीत लेटे हुए है तो वे बुझा-बुझा महसूस करेंगे।

तो अब वैज्ञानिक कहते है कि शरीर का अपना एक विद्युत यंत्र है और ऐसे आसन हो सकते है जिनमें ऊर्जा संरक्षित हो। और उन्होंने सिद्धासन में बैठे हुए कई योगियों का अध्यन किया है। उस अवस्था में शरीर न्यूनतम ऊर्जा बाहर फेंकता हे। ऊर्जा संरक्षित रहती है। जब ऊर्जा संरक्षित होती है तो आंतरिक यंत्रो को कार्य नहीं करना पड़ता। किसी क्रिया की कोई जरूरत ही नहीं रहती। इसलिए शरीर अक्रिय होता है। इस अक्रियता में तुम सक्रिय अवस्था में अधिक रिक्त हो सकते हो।

इस सिद्धासन की मुद्रा में तुम्हारी रीढ़ की हड्डी और पूरा शरीर सीधा होता है। अब कई अध्ययन हुए है। जब तुम्हारा शरीर पूरी तरह सीधा होता है तो तुम पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण से न्यूनतम प्रभावित होते हो। यही कारण है कि जब तुम किसी असुविधाजनक मुद्रा में बैठते हो—जिसे तुम असुविधाजनक कहते हो—वह असुविधाजनक इसीलिए होती है क्योंकि तुम्हारा शरीर अधिक गुरूत्वाकर्षण से प्रभावित हो रहा है। यदि तुम सीधे बैठे हुए हो तो गुरूत्वाकर्षण न्यूनतम प्रभावी होता है। क्योंकि वह मात्र तुम्हारी रीढ़ को खींच सकता है। और कुछ भी नहीं।

इसीलिए तो खड़े रहकर सोना कठिन है। शीर्षासन में, सिर के बल खड़े होकर सोना तो लगभग असंभव ही हे। सोने के लिए तुम्हें लेटना पड़ता है। क्यों? क्योंकि तब धरती का खिंचाव तुम पर अधिकतम होता है। और अधिकतम खिंचाव तुम्हें अचेतन कर देता है। न्यूनतम खिंचाव तुम्हें जगाता है। अधिकतम खिंचाव अचेतन कर देता है। सोने के लिए तुम्हें लेटना पड़ता है। ताकि पृथ्वी का गुरूत्वाकर्षण तुम्हारे सारे शरीर को छुए और उसकी प्रत्येक कोशिश को खींचे। तब तुम अचेतन हो जाते हो।

पशु मनुष्य से अधिक अचेतन होते है। क्योंकि वे सीधे खड़े नहीं हो सकते। विकासवादी, इवोल्यूशनिस्ट कहते है कि मनुष्य इसीलिए विकसित हो सका क्योंकि वह दो पांवों पर सीधा खड़ा हो सका। गुरूत्वाकर्षण का खिंचाव कम होने के कारण वह थोड़ा अधिक चैतन्य हो गया।

सिद्धासन में गुरूत्वाकर्षण शक्ति न्यूनतम होती है। शरीर निष्क्रिय और क्रिया-रहित होता है। भीतर से बंद होता है। स्वयं में एक संसार बन जाता है। न कुछ बाहर जाता है, न कुछ भीतर आता है। आंखें बंद है। हाथ जुड़े हुए है, पाँव जुड़े हुए है—ऊर्जा वर्तुल में गति करती है। और जब भी ऊर्जा वर्तुल में गति करती है। वह एक आंतरिक लय एक आंतरिक संगीत निर्मित करती है। जितना तुम उस संगीत को सुनते हो, उतने ही तुम विश्रांत अनुभव करते हो।

'अपने निष्क्रय रूप को त्वचा की दीवारों का एक रिक्त कक्ष मानो—बिलकुल जैसे कोई खाली कमरा होता है—सर्वथा रिक्त।'

उस रिक्तता में गिरते जाओ। एक क्षण आएगा जब तुम अनुभवकरोगे कि सब कुछ समाप्त हो गया। कि अब कोई भी नहीं बचा। घर खाली है, घर का स्वामी मिट गया, तिरोहित हो गया। उस अंतराल में जब तुम नहीं होओगे तो

परमात्मा प्रकट होगा। जब तुम नहीं होते, परमात्मा होता है। जब तुम नहीं होते, आनंद होता है। इसलिए मिटने का प्रयास करो। भीतर से मिटने का प्रयास करो।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 110

‘हे गरिमामयी, लीला करो। यह ब्रह्मांड एक रिक्त खोल है जिसमें तुम्हारा मन अनंत रूप से कौतुक करता है।’

यह दूसरी विधि लीला के आयाम पर आधारित है।
इसे समझो।

यदि तुम निष्क्रिय हो तब तो ठीक है कि तुम गहन रिक्तता में, आंतरिक गहराइयों में उतर जाओ। लेकिन तुम सारा दिन रिक्त नहीं हो सकते और सारा दिन क्रिया शून्य नहीं हो सकते। तुम्हें कुछ तो करना ही पड़ेगा। सक्रिय होना एक मूल आवश्यकता है। अन्यथा तुम जीवित नहीं रह सकते। जीवन का अर्थ ही है सक्रियता। तो तुम कुछ घंटों के लिए तो निष्क्रिय हो सकते हो। लेकिन चौबीस घंटे में बाकी समय तुम्हें सक्रिय रहना पड़ेगा।

और ध्यान तुम्हारे जीवन की शैली होनी चाहिए। उसका एक हिस्सा नहीं। अन्यथा पाकर भी तुम उसे खो दोगे। यदि एक घंटे के लिए तुम निष्क्रिय हो तो तेईस घंटे के लिए तुम सक्रिय होओगे। सक्रिय शक्तियां अधिक होंगी और निष्क्रिय में जो तुम भी पाओगे वे उसे नष्ट कर देंगे। सक्रिय शक्तियां उसे नष्ट कर देंगी। और अगल दिन तुम फिर वही करोगे: तेईस घंटे तुम कर्ता को इकट्ठा करते रहोगे और एक घंटे के लिए तुम्हें उसे छोड़ना पड़ेगा। यह कठिन होगा।

तो कार्य और कृत्य के प्रति तुम्हें दृष्टिकोण बदलना होगा। इसीलिए यह दूसरी विधि है। कार्य को खेल समझना चाहिए, कार्य नहीं। कार्य को लीला की तरह, एक खेल की तरह लेना चाहिए। इसके प्रति तुम्हें गंभीर नहीं होना चाहिए। बस ऐसे ही जैसे बच्चे खेलते है। यह निष्प्रयोजन है। कुछ भी पाना नहीं है। बस कृत्य का ही आनंद लेना है।

यदि कभी-कभी तुम खेलो तो अंतर तुम्हें स्पष्ट हो सकता है। जब तुम कार्य करते हो तो अलग बात होती है। तुम गंभीर होते हो। बोझ से दबे होते हो। उत्तरदायी होते हो। चिंतित होते हो। **परेशान होते हो। क्योंकि परिणाम तुम्हारा लक्ष्य होता है।** स्वयं कार्य मात्र ही आनंद नहीं देता, असली बात भविष्य में, परिणाम में होती है। खेल में कोई परिणाम नहीं होता। खेलना ही आनंदपूर्ण होता है। और तुम चिंतित नहीं होते। खेल कोई गंभीर बात नहीं है। यदि तुम गंभीर दिखाई भी पड़ते हो तो बस दिखावा होता है। खेल में तुम प्रक्रिया का ही आनंद लेते हो।

कार्य में प्रक्रिया का आनंद नहीं लिया जाता। लक्ष्य, परिणाम महत्वपूर्ण होता है। प्रक्रिया को किसी न किसी तरह झेलना पड़ता है। कार्य करना पड़ता है। क्योंकि परिणाम पाना होता है। यदि परिणाम को तुम इसके बिना भी पा सकते तो तुम क्रिया को एक और सरका देते और परिणाम पर कूद पड़ते।

लेकिन खेल में तुम ऐसा नहीं करोगे, यदि परिणाम को तुम बिना खेले पा सको तो परिणाम व्यर्थ हो जाएगा। उसका महत्व ही प्रक्रिया के कारण है। उदाहरण के लिए, दो फुटबाल की टीमें खेल के मैदान में है, बस एक सिक्का उछाल कर वे तय कर सकते है कि कौन जीतेगा और कौन हारेगा। इतने श्रम इतनी लंबी प्रक्रिया से क्यों गुजरना। इसे बड़ी सरलता से एक सिक्का उछाल कर तय किया जा सकता है। परिणाम सामने आ जाएगा। एक टीम जीत जाएगी और दूसरी टीम हार जाएगी। उसके लिए मेहनत क्या करनी।

लेकिन तब कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। कोई मतलब नहीं रह जाएगा। परिणाम अर्थपूर्ण नहीं है। **प्रक्रिया का ही अर्थ है। यदि न कोई जीते और न कोई हारे तब भी खेल का मूल्य है। उस कृत्य का ही आनंद है।**

लीला के इस आयाम को तुम्हारे पूरे जीवन मे जोड़ना है। तुम जो भी कर रहे हो, उस कृत्य में इतने समग्र हो जाओ। कि परिणाम असंगत हो जाए। शायद वह आ भी जाए, उसे आना ही होगा। लेकिन वह तुम्हारे मन में न हो। तुम बस खेल रहे हो और आनंद ले रहे हो।

कृष्ण का यही अर्थ है जब वे अर्जुन को कहते है कि भविष्य परमात्मा के हाथ में छोड़ दे। तेरे कर्मों का फल परमात्मा के हाथ में है, तू तो बस कर्म कर। यही सहज कृत्य लीला बन जाता है। यही समझने में अर्जुन को कठिनाई होती है, क्योंकि वह सकता है कि यदि यह सब लीला ही है। तो हत्या क्यों करें? युद्ध क्यों करें? यह समझ सकता है कि कार्य क्या है, पर वह यह नहीं समझ सकता कि लीला क्या है। और कृष्ण का पूरा जीवन ही एक लीला है।

तुम इतना गैर-गंभीर व्यक्ति कहीं नहीं ढूंढ सकते। उनका पूरा जीवन ही एक लीला है, एक खेल है, एक अभिनय है। वे सब चीजों का आनंद ले रहे है। लेकिन उनके प्रति गंभीर नहीं है। वे सघनता से सब चीजों का आनंद ले रहे है। पर परिणाम के विषय में बिलकुल भी चिंतित भी चिंतित नहीं है। जो होगा वह असंगत है।

अर्जुन के लिए कृष्ण को समझना कठिन है। क्योंकि वह हिसाब लगाता है, वह परिणाम की भाषा में सोचता है। वह गीता के आरंभ में कहता है, 'यह सब असार लगता है। दोनों और मेरे मित्र तथा संबंधी लड़ रहे है। कोई भी जीते, नुकसान ही होगा क्योंकि मेरा परिवार मेरे संबंधी, मेरे मित्र ही नष्ट होंगे। यदि मैं जीत भी जाऊं तो भी कोई अर्थ नहीं होगा। क्योंकि अपनी विजय मैं किसे दिखलाऊंगा? विजय का अर्थ ही तभी होता है, जब मित्र,संबंधी, परिजन उसका आनंद लें। लेकिन कोई भी न होगा,केवल लाशों के ऊपर विजय होगी। कौन उसकी प्रशंसा करेगा। कौन कहेगा कि अर्जुन, तुमने बड़ा काम किया है। तो चाहे मैं जीतूं चाहे मैं हारूं, सब असार लगता है। सारी बात ही बेकार है।'

वह पलायन करना चाहता है। वह बहुत गंभीर है। और जो भी हिसाब-किताब लगता है वह उतना ही गंभीर होगा। गीता की पृष्ठभूमि अद्भुत है: युद्ध सबसे गंभीर घटना है। तुम उसके प्रति खेलपूर्ण नहीं हो सकते। क्योंकि जीवन मरण का प्रश्न है। लाखों जानों का प्रश्न है। तुम खेलपूर्ण नहीं हो सकते। और कृष्ण आग्रह करते है कि वहां भी तुम्हें खेलपूर्ण होना है। तुम यह मत सोचो कि अंत में क्या होगा, बस अभी और यही जाओ। तुम बस योद्धा का अपना खेल पूरा करो। फलकी चिंता मत करो। क्योंकि परिणाम तो परमात्मा के हाथों में है। और इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि परिणाम परमात्मा के हाथों में है या नहीं। असली बात यह है कि परिणाम तुम्हारे हाथ में नहीं है। असली बात यह है कि परिणाम तुम्हारे हाथ में नहीं है। तुम्हें उसे नहीं ढोना है। यदि तुम उसे ढोते हो तो तुम्हारा जीवन ध्यानपूर्ण नहीं हो सकता।

यह दूसरी विधि कहती है: 'हे गरिमामयी लीला करो।'
अपने पूरे जीवन को लीला बन जाने दो।

'यह ब्रह्मांड एक रिक्त खोल है जिसमें तुम्हारा मन अनंत रूप से कौतुक करता है।'

तुम्हारा मन अनवरत खेलता चला जाता है। पूरी प्रक्रिया एक खाली कमरे में चलते हुए स्वप्न जैसी है। ध्यान में अपने मन को कौतुक करते हुए देखना होता है। बिलकुल ऐसे ही जैसे बच्चे खेलते है। और ऊर्जा के अतिरेक से कूदते-फांदते है। इतना ही पर्याप्त है। विचार उछल रहे है। कौतुक कर रहे है। बस एक लीला है। उसके प्रति गंभीर मत होओ। यदि कोई बुरा विचार भी आता है तो ग्लानि से मत भरो। या कोई शुभ विचार उठता है—कि तुम मानवता की सेवा करना चाहते हो—तो इसके कारण बहुत अधिक अहंकार से मत भर जाओ, ऐसा मत सोचो कि तुम बहुत महान हो गए हो। केवल उछलता हुआ मन है। कभी नीचे जाता है, कभी ऊपर आता है। यह तो बस ऊर्जा का बहाता हुआ अतिरेक है जो भिन्न-भिन्न रूप और आकार ले रही है। मन तो उमड़ कर बहता हुआ एक झरना मात्र है, और कुछ भी नहीं।

खेलपूर्ण होओ। शिव कहते है: 'हे गरिमामयी लीला करो।'

खेलपूर्ण होने का अर्थ होता है कि वह कृत्य का आनंद ले रहा है। कृत्य ही स्वयं में पर्याप्त है। पीछे किसी लाभ की आकांक्षा नहीं है। वह कोई हिसाब नहीं लगा रहा है। जरा एक दुकानदार की और देखो। वह जो भी कर रहा है उसमें लाभ हानि का हिसाब लगा रहा हे। कि इससे मिलेगा क्या। एक ग्राहक आता है। ग्राहक कोई व्यक्ति नहीं बस एक साधन है। उससे क्या कमाया जा सकता है। कैसे उसका शोषण किया जा सकता है। गहरे में वह हिसाब लगा रहा कि क्या करना है। क्या नहीं करना है। बस शोषण के लिए वह हर चीज का हिसाब लगा रहा है। उसे इस आदमी से कुछ लेना-देना नहीं है। बस सौदे से मतलब है। किसी और चीज से नहीं। उसे बस भविष्य से, लाभ से मतलब है।

पूर्व में देखो: गांवों में अभी भी दुकानदार बस लाभ ही नहीं कमाते और ग्राहक बस खरीदने ही नहीं आते। वे सौदे का आनंद लेते है। मुझे अपने दादा की याद है। वह कपड़ों के दुकानदार थे। और मैं तथा मेरे परिवार के लोग हैरान थे। क्योंकि इसमें उन्हें बहुत मजा आता था। घंटो-घंटो ग्राहकों के साथ वह खेल चलता था। यदि कोई चीज दस रूपये की होती तो वह उसे पचास रूपए मांगते। और वह जानते थे कि यह झूठ है। और उनके ग्राहक भी जानते थे कि वह चीज दस रूपये के आस-पास होनी चाहिए। और वे दो रूपये से शुरू करते। फिर घंटो तक लम्बी बहस होती। मेरे पिता और चाचा गुस्सा होते कि ये क्या हो रहा है। आप सीधे-सीधे कीमत क्यों नहीं बता देते। लेकिन उनके की अपने ग्राहक थे। जब वे लोग आते तो पूछते की दादा कहां है। क्योंकि उनके साथ तो खेल हो जाता था। चाहे हमे एक दो रूपये कम ज्यादा देना पड़े,इसमे कोई अंतर नहीं पड़ता।

उन्हें इसमे आनंद आता, वह कृत्य ही अपने आप में आनंद था। दो लोग बात कर रहे है, दोनों खेल रहे है। और दोनों जानते है कि यह एक खेल है। क्योंकि स्वभावत: एक निश्चित मूल्य ही संभव था।

पश्चिम में अब मूल्यों को निश्चित कर लिया गया है। क्योंकि लोग अधिक हिसाबी और लाभ उन्मुक्त हो गए है। समय क्यों व्यर्थ करना। जब बात को मिनटों में निपटाया जा सकता है। तो कोई जरूरत नहीं है। तुम सीधे-सीधे निश्चित मूल्य लिख सकते हो। घंटों तक क्यों जद्दोजहद करना? लेकिन तब सारा खेल खो जाता है। और एक दिनचर्या रह जाती है। इसे तो मशीनें भी कर सकती है। दुकानदार की जरूरत ही नहीं है। न ग्राहक की जरूरत है।

मैने एक मनोविश्लेषक के संबंध में सुना है कि वह इतना व्यस्त था और उसके पास इतने मरीज आते थे कि हर किसी से व्यक्तिगत संपर्क रख पाना कठिन था। तो वह अपने टेप रिकार्डर से मरीजों के लिए सब संदेश भर देता था जो स्वयं उनसे कहना चाहता था।

एक बार ऐसा हुआ कि एक बहुत अमीर मरीज का सलाह के लिए मिलने का समय था। मनोविश्लेषक एक होटल में भीतर जा रहा था। अचानक उसने उस मरीज को वहां बैठे देखा। तो उसने पूछा, तुम यहां क्या कर रहे हो। इस समय तो तुम्हें मेरे पास आना था। मरीज ने कहा कि: 'मैं भी इतना व्यस्त हूं कि मैंने अपनी बातें टेप रिकार्डर में भर दी है। दोनों टेप रिकार्डर आपस में बातें कर रहे है। जो आपको मुझसे कहना है वह मेरे टेप रिकार्डर में भर गया है। और जो मुझे आपको कहना है वह मेरे टेप रिकार्डर से आपके टेप रिकार्डर में रिकार्ड हो गया है। इससे समय भी बच गया और हम दोनों खाली है।'

यदि तुम हिसाबी हो जाओ तो व्यक्ति समाप्त हो जाता है। और मशीन बन जाता है। भारत के गांवों में अभी भी मोल-भाव होता है। यह एक खेल है। और रस लेने जैसा है। तुम खेल रहा हो। दो प्रतिभाओं के बीच एक खेल चलता है। और दोनों व्यक्ति गहरे संपर्क में आते है। लेकिन फिर समय नहीं बचता। खेलने से तो कभी भी समय की बचत नहीं हो सकती। और खेल में तुम समय की चिंता भी नहीं करते। तुम चिंता मुक्त होते हो। और जो भी होता है उसी समय तुम उसका रस लेते हो। **खेलपूर्ण होना ध्यान प्रक्रियाओं के गहनत्म आधारों में से एक है। लेकिन हमारा मन दुकानदार है। हम उसके लिए प्रशिक्षित किया गया है। तो जब हम ध्यान भी करते है तो परिणाम उन्मुख होते है। और चाहे जो भी हो तुम असंतुष्ट ही होते हो।**

मेरे पास लोग आते है और कहते है, 'हां ध्यान तो गहरा हो रहा है। मैं अधिक आनंदित हो रहा हूं, अधिक मौन और शांत अनुभव कर रहा हूं। लेकिन और कुछ भी नहीं हो रहो।'

और क्या नहीं हो रहा? मैं जानता हूं ऐसे लोग एक दिन आएँगे और पूछेंगे, 'हां मुझे निर्वाण का अनुभव तो हो रहा है, पर और कुछ नहीं हो रहा है। वैसे तो मैं आनंदित हूं, पर और कुछ नहीं हो रहा है।' और क्या चाहिए। वह कोई लाभ ढूंढ रहा है। और जब तक कोई ठोस लाभ उसके हाथों में नहीं आ जाता। जिसे वह बैंक में जमा कर सके। वह संतुष्ट नहीं हो सकता। मौन और आनंद इतने अदृष्य है। कि तुम उन पर मालकियत नहीं कर सकते हो। तुम उन्हें किसी को दिखा भी नहीं सकते हो।

रोज मेरे पास लोग आते है और कहते है कि वह उदास है। वे कसी ऐसी चीज की आशा कर रहे है जिसकी आशा दुकानदारी में भी नहीं होनी चाहिए। और ध्यान में वे उसकी आशा कर रहे है। दुकानदार, हिसाबी-किताबी मन ध्यान के भी बीच में आ जाता है—इससे क्या लाभ हो सकता है।

दुकानदार खेलपूर्ण नहीं होता। और यदि तुम खेलपूर्ण नहीं हो तो तुम ध्यान में नहीं उतर सकते। अधिक से अधिक खेलपूर्ण हो जाओ। खेल में समय व्यतीत करो। बच्चों के साथ खेलना ठीक रहेगा। यदि कोई और न भी हो तो तुम कमरे में अकेले उछल-कूद कर सकते हो। नाच सकते हो। और खेल सकते हो, आनंद ले सकते हो।

यह प्रयोग करके देखो। दुकानदारी में से जितना समय निकाल सको। निकाल कर जरा खेल में लगाओ। जो भी चाहो करो। चित्र बना सकते हो। सितार बजा सकते हो। तुम्हें जो भी अच्छा लगे। लेकिन खेलपूर्ण होओ। किसी

लाभ की आकांक्षा मत करो। भविष्य की और मत देखो। वर्तमान की और देखो। और तब तुम भीतर भी खेलपूर्ण हो सकते हो। तब तुम अपने विचारों पर उछल सकते हो। उनके साथ खेल सकते हो। उन्हें इधर-उधर फेंक सकते हो। उनके साथ नाच सकते हो। लेकिन उनके प्रति गंभीर नहीं होओगे।

दो प्रकार के लोग है। एक वे जो मन के संबंध में पूर्णतया अचेत है। उनके मन में जो भी होता है उसके प्रति वे मूर्छित होते है। उन्हें नहीं पता कि कहां उनका मन उन्हें भटकाए जा रहा है। यदि मन की किसी भी चाल के प्रति तुम सचेत हो सको तो तुम हैरान होओगे। कि मन में क्या हो रहा है।

मन एसोसिएशन में चलता है। राह पर एक कुत्ता भौंकता है। भौंकना तुम्हारे मस्तिष्क तक पहुंचता है। और वह कार्य करना शुरू कर देता है। कुत्ते के इस भौंकने को लेकर तुम संसार के अंत तक जा सकते हो। हो सकता है कि तुम्हें किसी मित्र की याद आ जाए। जिसके पास एक कुत्ता है। अब यह कुत्ता तो तुम भूल गए पर वह मित्र तुम्हारे मन में आ गया। और उसकी एक पत्नी है जो बहुत सुंदर है–अब तुम्हारा मन चलने लगा। अब तुम संसार के अंत तक जा सकते हो। और तुम्हें पता नहीं चलता कि एक कुत्ता तुम पर चाल चल गया। बस भौंका ओर तुम्हें रास्ते पर ले आया। तुम्हारे मन ने दौड़ना शुरू कर दिया।

तुम्हें बड़ी हैरानी होगी यह जानकर कि वैज्ञानिक इस बारे में क्या कहते है। वे कहते है कि यह मार्ग तुम्हारे मन में सुनिश्चित हो जाता है। यदि यही कुत्ता इसी परिस्थिति में दोबारा भौंके तो तुम इसी पर चल पड़ोगे: वहीं मित्र,वहीं कुत्ता, वहीं सुंदर पत्नी। दोबारा उसी रास्ते पर तुम घूम जाओगे।

अब मनुष्य के मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड डालकर उन्होने कई प्रयोग किए है। वे मस्तिष्क में एक विशेष स्थान को छूते है। और एक विशेष स्मृति उभर आती है। अचानक तुम पाते हो कि तुम पाँच वर्ष के हो, एक बग़ीचे में खेल रहे हो। तितलियों के पीछे दौड़ रहे हो। फिर पूरी की पूरी शृंखला चली आती है। तुम्हें अच्छा लग रहा है। हवा, बगीचा,सुगंध, सब कुछ जीवंत हो उठती है। वह मात्र स्मृति ही नहीं होती, तुम उसे दोबारा जीते हो। फिर इलेक्ट्रोड वापस निकाल लिए जाता है। और स्मृति रूक जाती हे। यदि इलेक्ट्रोड पुन: उसी स्थान को छू ले तो पुन: वही स्मृति शुरू हो जाती है। तुम पुन: पाँच साल के हो जाते हो। उसी बग़ीचे में, उसी तितली के पीछे दौड़ने लगते हो। वहीं सुगंध और वहीं घटना चक्र शुरू हो जाता है। जब इलेक्ट्रोड निकाल लिया जाता है। लेकिन इलेक्ट्रोड को वापस उसी जगह रख दो स्मृति वापस आ जाती है।

यह ऐसे ही है जैसे यांत्रिक रूप से कुछ स्मरण कर रहे हो। और पूरा क्रम एक निश्चित जगह से प्रारंभ होता है और निश्चित परिणति पर समाप्त होता है। फिर पुन: प्रारंभ से शुरू होता है। ऐसे ही जैसे तुम टेप रिकार्डर में कुछ भर देते हो। तुम्हारे मस्तिष्क में लाखों स्मृतियां है। लाखों कोशिकाएं स्मृतियां इकट्ठी कर रही है। और यह सब यांत्रिक है।

मनुष्य के मस्तिष्क के साथ किए गए ये प्रयोग अद्भुत है। और इनसे बहुत कुछ पता चलता है। स्मृतियां बार-बार दोहरायी जा सकती है। एक प्रयोगकर्ता ने एक स्मृति को तीन सौ बार दोहराया और स्मृति वही की वही रही–वह संग्रहीत थी। जिस व्यक्ति पर यह प्रयोग किया गया उसे तो बड़ा विचित्र लगा क्योंकि वह उस प्रक्रिया का मालिक

नहीं था। वह कुछ भी नहीं कर सकता था। जब इलेक्ट्रोड उस स्थान को छूता तो स्मृति शुरू हो जाती और उसे देखना पड़ता।

तीन सौ बार दोहराने पर वह साक्षी बन गया। स्मृति को तो वह देखता रहा, पर इस बात के प्रति वह जाग गया कि वह और उसकी स्मृति अलग-अलग है। यह प्रयोग ध्यानियों के लिए बहुत सहयोगी हो सकता है। क्योंकि जब तुम्हें पता चलता है कि तुम्हारा मन और कुछ नहीं बस तुम्हारे चारों और एक यांत्रिक संग्रह है। तो तुम उससे अलग हो जाते हो।

इस मन को बदला जा सकता है। अब तो वैज्ञानिक कहते है कि देर अबेर हम उन केंद्रों को काट डालेंगे जो तुम्हें विषाद ओर संताप देते है, क्योंकि बार-बार एक ही स्थान छुआ जाता है। और पूरी की पूरी प्रक्रिया को दोबारा जीना पड़ता है।

मैंने कई शिष्यों के साथ प्रयोग किए है। वही बात दोहराओं और वे बार-बार उसी दुष्चक्र में गिरते जाते हे। जब तक कि वे इस बात के साक्षी न हो जाएं कि यह एक यांत्रिक प्रक्रिया है। तुम्हें इस बात का पता है कि यदि तुम अपनी पत्नी से हर सप्ताह वहीं-वहीं बात कहते हो तो वह क्या प्रतिक्रिया करेगी। सात दिन में जब वह भूल जाए तो फिर वही बात कहो: वहीं प्रतिक्रिया होगी।

इसे रिकार्ड कर लो, प्रतिक्रिया हर बार वही होगी। तुम भी जानते हो, तुम्हारी पत्नी भी जानती है। एक ढांचा निश्चित है। और वही चलता रहता है। एक कुत्ता भी भौंक कर तुम्हारी प्रक्रिया की शुरूआत कर सकता है। कहीं कुछ छू जाता है। इलेक्ट्रोड प्रवेश कर जाता है। तुमने एक यात्रा शुरू कर दी।

यदि तुम जीवन में खेलपूर्ण हो तो भीतर तुम कन के साथ भी खेलपूर्ण हो सकते हो। फिर ऐसा समझो जैसे टेलीविजन के पर्दे पर तुम कुछ देख रहे हो। तुम उसमे सम्मिलित नहीं हो। बस एक द्रष्टा हो। एक दर्शक हो। तो देखो और उसका आनंद लो। न कहो अच्छा है, न कहो बुरा है, न निंदा करो, न प्रशंसा करो। क्योंकि वे गंभीर बातें है। यदि तुम्हारे पर्दे पर कोई नग्न स्त्री आ जाती है तो यह मत कहो कि यह गलत है, कि कोई शैतान तुम पर चाल चल रहा है। कोई शैतान तुम पर चाल नहीं चल रहा,इसे देखो जैसे फिल्म के पर्दे पर कुछ देख रहे हो।

और इसके प्रति खेल का भाव रखो। उस स्त्री से कहो कि प्रतीक्षा करो। उसे बाहर धकेलने की कोशिश मत करो। क्योंकि जितना तुम उसे बाहर धकेलोगे। उतना ही वह भीतर धुसेगी। **अब महिलाएं तो हठी हाथी है। और उसका पीछा भी मत करो। यदि तुम उसके पीछे जाते हो तो भी तुम मुश्किल में पड़ोगे। न उसके पीछू जाओ। न उस से लड़ो,यही नियम है। बस देखो और खेलपूर्ण रहो। बस हेलो या नमस्कार कर लो और देखते रहो, और उसके बेचैन मत होओ। उस स्त्री को इंतजार करने दो।**

जैसे वह आई थी वैसे ही अपने आप चली जाएगी। वह अपनी मर्जी से चलती है। उसका तुमसे कोई लेना-देना नहीं है। वह बस तुम्हारे स्मृतिपट पर है। किसी परिस्थिति वश वह चली आई बस एक चित्र की भांति। उसके प्रति खेलपूर्ण रहो।

यदि तुम अपने मन के साथ खेल सको तो वह शीध्र ही समाप्त हो जाएगा। क्योंकि मन केवल तभी हो सकता है। जब तुम गंभीर होओ। गंभीर बीच की कड़ी है। सेतु है।

'हे गरिमामयी लीला करो। यह ब्रह्मांड एक रक्त खोल है। जिसमें तुम्हारा मन अनंत रूप से कौतुक करता है।'

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 111

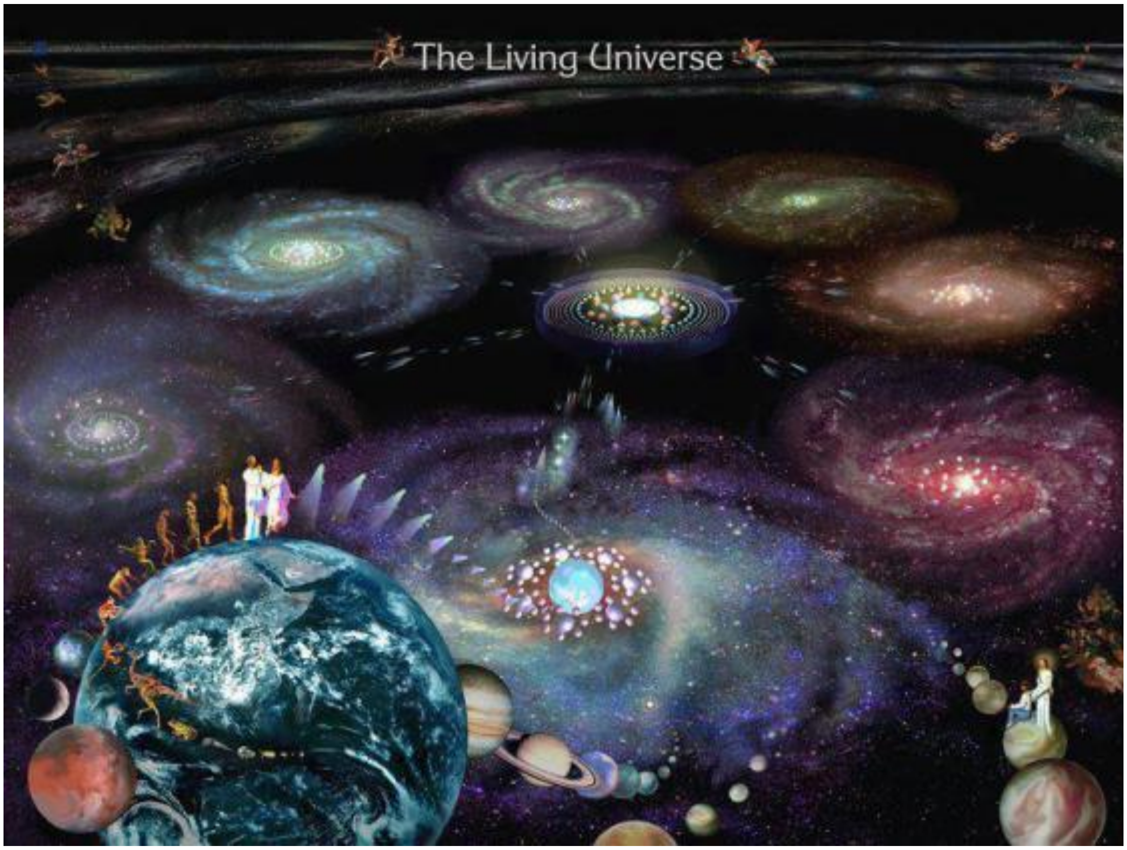

'हे प्रिये, ज्ञान और अज्ञान, अस्तित्व और अनस्तित्व पर ध्यान दो। फिर दोनों को छोड़ दो ताकि तुम हो सको।'

ज्ञान और अज्ञान, अस्तित्व और अनस्तित्व पर ध्यान दो।
जीवन के विधायक पहलू पर ध्यान करो और ध्यान को नकारात्मक पहलू पर ले जाओ, फिर दोनों को छोड़ दो क्योंकि तुम दोनों ही नहीं हो।
फिर दोनों को छोड़ सको ताकि तुम हो सको।

इसे इस तरह देखो: जन्म पर ध्यान दो। एक बच्चा पैदा हुआ, तुम पैदा हुए। फिर तुम बढ़ते हो, जवान होते हो–इसे पूरे विकास पर ध्यान दो। फिर तुम बूढ़े होते हो। और मर जाते हो। बिलकुल आरंभ से, उस क्षण की कल्पना करो जब तुम्हारे पिता और माता ने तुम्हें धारण किया था। और मां के गर्भ में तुमने प्रवेश किया था। बिलकुल पहला कोष्ठ। वहां से अंत तक देखो, जहां तुम्हारा शरीर चिता पर जल रहा है। और तुम्हारे संबंधी तुम्हारे चारों और खड़े है। फिर दोनों को छोड़ दो, वह जो पैदा हुआ और वह जो मरा। वह जो पैदा हुआ और वह जो मरा। फिर दोनों को छोड़ दो और भीतर देखो। वहां तुम हो, जो न कभी पैदा हुआ और न कभी मरा।

'ज्ञान और अज्ञान, अस्तित्व और अनस्तित्व....फिर दोनों को छोड़ दो, ताकि तुम हो सको।'

यह तुम किसी भी विधायक-नकारात्मक घटना से कर सके हो। तुम यहां बैठे हो, मैं तुम्हारी और देखता हूं। मेरा तुमसे संबंध होता है। जब मैं अपनी आंखें बंद कर लेता हूं तो तुम नहीं रहते और मेरा तुमसे कोई संबंध नहीं हो पाता। फिर संबंध और असंबंध दोनों को छोड़ दो। तुम रिक्त हो जाओगे। क्योंकि जब तुम ज्ञान और अज्ञान दोनों का त्याग कर देते हो तो तुम रिक्त हो जाते हो।

दो तरह के लोग है। कुछ ज्ञान से भरे है और कुछ अज्ञान से भरे है। ऐसे लोग है जो कहते है कि हम जाने है; उनका अहंकार उनके ज्ञान से बंधा हुआ है। और ऐसे लोग है जो कहते है, 'हम अज्ञानी है।' वे अपने अज्ञान से भरे हुए है। वे कहते है कि 'हम अज्ञानी है', हम कुछ नहीं जानते। एक ज्ञान से बंधा हुआ है और दूसरा अज्ञान से, लेकिन दोनों के पास कुछ है, दोनों कुछ ढो रहे है।

ज्ञान और अज्ञान दोनों को हटा दो, ताकि तुम दोनो से अलग हो सको। न अज्ञानी, न ज्ञानी। विधायक और नकारात्मक दोनों को हटा दो। फिर तुम कौन हो? अचानक वह 'कौन' अचानक वह कौन तुम्हारे सामने प्रकट हो जायेगा। तुम उस अद्‌वैत के प्रति बोधपूर्ण हो जाओगे जो दोनों के पार है। विधायक और नकारात्मक दोनों को छोड़कर तुम रिक्त हो जाओगे। तुम कुछ भी नहीं रहोगे, न ज्ञानी और न अज्ञानी। घृणा और प्रेम दोनों को छोड़ दो। मित्रता और शत्रुता दोनों को छोड़ दो। और जब दोनों ध्रुव छूट जाते है, तुम रिक्त हो जाते हो।

और यह मन की एक चाल है। वह छोड़ तो सकता है। लेकिन दोनों को एक साथ नहीं। एक चीज को छोड़ सकता है। तुम अज्ञान को छोड़ सकते हो। फिर तुम ज्ञान से चिपक सकते हो हो। तुम पीड़ा को छोड़ सकते हो। फिर तम सुख को पकड़ लोगे। तुम शत्रुओं को छोड़ दोगे तो मित्र को पकड़ लोगे। और ऐसे लोग भी है जो बिलकुल उलटा करेंगे। वे मित्रों को छोड़कर शत्रुओं को पकड़ लेंगे। प्रेम को छोड़ कर घृणा को पकड़ लेंगे। धन को छोड़कर निर्धनता को पकड़ लेंगे और ज्ञान तथा शास्त्रों को छोड़कर अज्ञान से चिपक जाएंगे। ये लोग बड़े त्यागी कहलाते है। तुम जो कुछ भी पकड़े हो वे उसे छोड़कर विपरीत को पकड़ लेते है। लेकिन पकड़ते वे भी है।

पकड़ ही समस्या है। क्योंकि यदि तुम कुछ भी पकड़े हो तो तुम रिक्त नहीं हो सकते। पकड़ो मत। इस विधि काय हीं संदेश है। किसी भी विधायक या नकारात्मक चीज को मत पकड़ो क्योंकि न पकड़ने से ही तुम स्वयं को खोज पाओगे। तुम तो हो ही, पर पकड़ के कारण छिपे हुए हो। पकड़ छोड़ते ही तुम उघड़ जाओगे। प्रकट हो जाओगे।

विज्ञान भैरव तंत्र विधि – 112

'आधारहीन, शाश्वत, निश्चल आकाश में प्रविष्ट होओ।'

इस विधि में आकाश के, स्पेस के तीन गुण दिए गए है।
1–आधारहीन: आकाश में कोई आधार नहीं हो सकता।
2–शाश्वत: वह कभी समाप्त नहीं हो सकता।
3–निश्चल: वह सदा ध्वनि-रहित व मौन रहता है।
इस आकाश में प्रवेश करो। वह तुम्हारे भीतर ही है।

लेकिन मन सदा आधार खोजता है। मेरे पास लोग आते है और मैं उनसे कहता हूं, 'आंखें बंद कर के मौन बैठो और कुछ भी मत करो।' और वे कहते है, हमें कोई अवलंबन दो, सहारा दो। सहारे के लिए कोई मंत्र दो। क्योंकि हम

खाली बैठ नहीं सकते है। खाली बैठना कठिन है। यदि मैं उन्हें कहता हूं कि मैं तुम्हें मंत्र दे दूं तो ठीक है। तब वह बहुत खुश होते है। वे उसे दोहराते रहते है। तब सरल है।

आधार के रहते तुम कभी रिक्त नहीं हो सकते। यही कारण है कि वह सरल है। कुछ न कुछ होना चाहिए। तुम्हारे पास करने के लिए कुछ न कुछ होना चाहिए। करते रहने से कर्ता बना रहता है। करते रहने से तुम भरे रहते हो—चाहे तुम ओंकार से भरे हो। ओम से भरे हो, राम से भरे हो। जीसस से, आवमारिया से। किसी भी चीज से—किसी भी चीज से भरे हो, लेकिन तुम भरे हो। तब तुम ठीक रहते हो। **मन खालीपन का विरोध करता है। वह सदा किसी चीज से भरा रहना चाहता है। क्योंकि जब तक वह भरा है तब तक चल सकता है। यदि वह रिक्त हुआ तो समाप्त हो जाएगा। रिक्तता में तुम अ-मन को उपलब्ध हो जाओगे। वही कारण है कि मन आधार की खोज करता है।**

यदि तुम अंतर-आकाश, इनर स्पेस में प्रवेश करना चाहते हो तो आधार मत खोजों। सब सहारे—मंत्र, परमात्मा, शास्त्र-जो भी तुम्हें सहारा देता है वह सब छोड़ दो। यदि तुम्हें लगे कि किसी चीज से तुम्हें सहारा मिल रहा है तो उसे छोड़ दो और भीतर आ जाओ। आधारहीन।

यह भयपूर्ण होगा; तुम भयभीत हो जाओगे। तुम वहां जा रहे हो जहां तुम पूरी तरह खो सकते हो। हो सकता है तुम वापस ही न आओ। क्योंकि वहां सब सहारे खो जाएंगे। किनारे से तुम्हारा संपर्क छूट जाएगा। और नदी तुम्हें कहां ले जाएगी। किसी को पता नहीं। तुम्हारा आधार खो सकता है। तुम एक अनंत खाई में गिर सकते हो। इसलिए तुम्हें भय पकड़ता है। और तुम आधार खोजने लगते हो। चाहे वह झूठा ही आधार क्यों न हो, तुम्हें उससे राहत मिलती है। झूठा आधार भी मदद देता है। क्योंकि मन को कोई अंतर नहीं पड़ता कि आधार झूठा है या सच्चा है, कोई आधार होना चाहिए।

एक बार एक व्यक्ति मेरे पास आया। वह ऐसे घर में रहना था जहां उसे लगता था कि भूत-प्रेत है, और वह बहुत चिंतित था। चिंता के कारण उसका भ्रम बढ़ने लगा। चिंता से वह बीमार पड़ गया, कमजोर हो गया। उसकी पत्नी ने कहा, यदि तुम इस घर से जरा रुके तो मैं तो रहीं हूं। उसके बच्चों को एक संबंधी के घर भेजना पडा।

वह आदमी मेरे पास आया और बोला, अब तो बहुत मुश्किल हो गयी है। मैं उन्हें साफ-साफ देखता हूं। रात वे चलते है, पूरा घर भूतों से भरा हुआ है। आप मेरी मदद करें।

तो मैंने उसे अपना एक चित्र दिया और कहा, इसे ले जाओ। अब उन भूतों से मैं निपट लुंगा। तुम बस आराम करो। और सो जाओ। तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं है। उनसे मैं निपट लुंगा। उन्हें मैं देख लूंगा। अब यह मेरा काम है। और तुम बीच में मत आना। अब तुम्हें चिंता नहीं करनी है।

वह अगले ही दिन आया और बोला, 'बड़ी राहत मिली मैं चेन से सोया। आपने तो चमत्कार कर दिया।' और मैंने कुछ भी नहीं किया था। बस एक आधार दिया। आधार से मन भर जाता है। वह खाली न रहा; वहां कोई उसके साथ था।

सामान्य जीवन में तुम कई झूठे सहारों को पकड़े रहते हो, पर वे मदद करते है। और जब तक तुम स्वयं शक्तिशाली न हो जाओ, तुम्हें उनकी जरूरत रहेगी। इसीलिए में कहता हूं कि यह परम विधि है—कोई आधार नहीं। बुद्ध मृत्युशय्या पर थे और आनंद ने उनसे पूछा, 'आप हमें छोड़कर जा रहे है, अब हम क्या करेंगें? हम कैसे उपलब्ध होंगे? जब आप ही चले जाएंगे तो हम जन्मों-जन्मों के अंधकार में भटकते रहेंगे, हमारा मार्गदर्शन करने के लिए कोई भी नहीं रहेगा, प्रकाश तो विदा हो रहा है।'

तो बुद्ध ने कहा, तुम्हारे लिए यह अच्छा रहेगा। जब मैं नहीं रहूंगा तो तुम अपना प्रकाश स्वयं बनोंगे। अकेले चलो, कोई सहारा मत खोजों, क्योंकि सहारा ही अंतिम बाधा है।

और ऐसा ही हुआ। आनंद संबुद्ध नहीं हुआ था। चालीस वर्ष से वह बुद्ध के साथ था, वह निकटतम शिष्य था, बुद्ध की छाया की भांति था, उनके साथ चलता था। उनके साथ रहता था। उनका बुद्ध के साथ सबसे लंबा संबंध था। चालीस वर्ष तक बुद्ध की करूणा उस पर बरसती रही थी। लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। आनंद सदा की भांति आज्ञानी ही रहा। और जिस दिन बुद्ध ने शरीर छोड़ा उसके दूसरे ही दिन आनंद संबुद्ध हो गया—दूसरे ही दिन।

वह आधार ही बाधा था। जब बुद्ध ने रहे तो आनंद कोई आधार न खोज सका। यह कठिन है। यदि तुम किसी बुद्ध के साथ रहो वह बुद्ध चला जाए, तो कोई भी तुम्हें सहारा नहीं दे सकता। अब कोई भी ऐसा न रहेगा जिसे तुम पकड़ सकोगे। जिसने किसी बुद्ध को पकड़ लिया वह संसार में किसी और को पकड़ पायेगा। यह पूरा संसार खाली होगा। एक बार तुमने किसी बुद्ध के प्रेम और करूणा को जान लिया हो तो कोई प्रेम, कोई करूणा उसकी तुलना नहीं कर सकती। एक बार तुमने उसका स्वाद ले लिया तो और कुछ भी स्वाद लेने जैसा न रहा।

तो चालीस वर्ष में पहली बार आनंद अकेला हुआ। किसी भी सहारे को खोजने का कोई उपाय नहीं था। उसने परम सहारे को जाना था। अब छोटे-छोटे सहारे किसी काम के नहीं, दूसरे ही दिन वह संबुद्ध हो गया। वह निश्चित ही आधारहीन, शाश्वत निश्चल अंतर-आकाश में प्रवेश कर गया होगा।

तो स्मरण रखो कोई सहारा खोजने का प्रयास मत करो। आधारहीन ही जानो। यदि इस विधि को कहने का प्रयास कर रहे हो तो आधारहीन हो जाओ। यही कृष्ण मूर्ति सिखा रहा है। **'आधारहीन हो जाओ, किसी गुरु को मत पकड़ो, किसी शस्त्र को मत पकड़ो। किसी भी चीज को मत पकड़ो।'**

सब गुरु यही करते रहे है। हर गुरू का सारा प्रयास ही यह होता हे। कि पहले वह तुम्हें अपनी और आकर्षित करे, ताकि तुम उससे जुड़ने लगो। और जब तुम उससे जुड़ने लगते हो, जब तुम उसके निकट और घनिष्ठ होने लगते हो, तब वह जानता है कि पकड़ छुड़ानी होगा। और अब तुम किसी और को नहीं पकड़ सकते—यह बात ही खतम हो गई। तुम किसी और के पास नहीं जा सकते—यह बात असंभव हो गई। तब वह पकड़ को काट डालता है। और अचानक तुम आधारहीन हो जाते हो। शुरू-शुरू में तोबड़ा दुःख होगा। तुम रोओगे और चिल्लाओगे और चीखोगे। और तुम्हें लगेगा कि सब कुछ खो गया। तुम दुःख की गहनत्म गहराइयों में गिर जाओगे। लेकिन वहां से व्यक्ति उठता है, अकेला और आधारहीन।

‘आधारहीन, शाश्वत, निश्चल आकाश में प्रविष्ट होओ।’

उस आकाश को न कोई आदि है न कोई अंत। और वह आकाश पूर्णत: शांत है, वहां कुछ भी नहीं है—कोई आवाज भी नहीं। कोई आवाज भी नहीं। कोई बुलबुला तक नहीं। सब कुछ निश्चल है।

वह बिंदु तुम्हारे ही भीतर है। किसी भी क्षण तुम उससे प्रवेश कर सकते हो। यदि तुममें आधारहीन होने का साहस है तो इसी क्षण तुम उसमें प्रवेश कर सकते हो। द्वार सुला है। निमंत्रण सबके लिए है। लेकिन साहस चाहिए—अकेले होने का, रिक्त होने का, मिट जाने का और मरने का। और यदि तुम अपने भीतर आकाश में मिट जाओ तो तुम ऐसे जीवन को पा लोगे जो कभी नहीं मरता, तुम अमृत को उपलब्ध हो जाओगे।